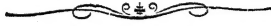


श्रीः ।

योगरत्नाकरः ।

(वैद्यकग्रन्थः ।)



नवरे इत्युपाभिधकृष्णशर्मणा

संशोधितः ।

THE ACADEMY OF SANSKRIT RESEARCH
131.

सच

मुम्बापुर्या

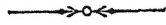
निर्णयसागरयन्त्रालयाधिपतिना तुकाराम जावजी
इत्यनेन स्वीयेऽङ्कनालये मुद्रयित्वा प्रकाशितः ।

शकाब्दाः १८२९, सन १९०७

मूल्यं रूप्यकद्वयम् ।

श्रीः ।

उपोद्धातः ।



धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः ॥

सर्वकार्येष्वन्तरंगं शरीरस्य हि रक्षणम् ॥ १ ॥

पुरा खलु अस्मिन् भरतखण्डे आत्रेय-भरद्वाज-धन्वंतरिप्रभृतयो मुनय आयु-र्वेदज्ञानिनः प्रादुरभूवन् ॥ ते च अग्निवेशप्रभृतीन् शिष्यान् आयुर्वेदमध्यापयामासुः अग्निवेशसुश्रुतादयः यथाभिलषितानि तंत्राण्यतनिष्ठ ।

आयुर्वेदोनाम-

आयुर्हिताहितं व्याधिर्निदानं शमनं तथा ॥

विद्यते यत्र विद्वद्भिः स आयुर्वेद उच्यते ॥

आयुर्वेदस्याष्टौ अंगान्यभिहितानि तानि च शल्यं शालाक्यं कायचिकित्सा भूत-विद्या कौमारभृत्यं अगदतंत्रं रसायनतंत्रं वाजीकरणतंत्रं चेति ।

आयुर्वेदस्य प्रयोजनं व्याध्युपसृष्टानां व्याधिपरिमोक्षः स्वस्थस्य रक्षणं च । तत्र व्याध्युपसृष्टविषये चिकित्सा मुख्यतः द्विविधा शस्त्रादिचिकित्सा औषधचिकित्सा च तत्र शस्त्रादिचिकित्सायां बीभत्सत्वादिना वा कालमाहात्म्येन वा राजकीया-श्रयाभावेन च आर्यविद्याभिषजो न प्रवर्तते । तद्विषयाणि प्राचीनतंत्राणि सुश्रुत-प्रभृतीनि विरलप्रचाराणि तथाप्याधुनिकमुद्रणकलया उपलब्धान्यभूवन् इति भारतभूमेः सुदैवमिति मन्यामहे । तथापि तेषां पठनपाठनाभ्यसनादिगुरुशिष्य-परंपरा लुप्तप्राया अभवत् ।

औषधचिकित्सायां औषधद्रव्याणि प्रधानानि तानि च अल्पप्रयासैरुपलभ्यन्ते तेषां कल्पयोजनादिव्यवस्था च निपुणतरबुद्धीनामनुभवसाध्या । यत उक्तं वाग्भटैः

“प्रयोगः शमयेद्वाधिं योन्यमन्यमुदीरयेत् ॥

नासौ विशुद्धः शुद्धस्तु शमयेद्यो न कोपयेत् ॥ १ ॥

आधुनिकरुग्णानां चिकित्सकानां च अत्यंतोपयोगार्थं सार्द्रहृदयः योगरत्नाकर-ग्रंथकर्ता कश्चित् भिषक् बहुभ्यः प्राचीनग्रंथेभ्यः भिषजां यशःप्रदान् आतुराणां व्याधिमोक्षसाधकान् बहून् प्रयोगान् एकत्र संग्राहयामास । अत एवास्य योगरत्ना-कर इति नाम । आधुनिकः कोपि यशस्वी भिषक् एतस्य संग्रहमंतरा न तिष्ठतीति दृश्यते । ग्रंथकृता च अस्मिन् संग्रहे पूर्वं मंगलाचरणादि व्यवस्थामभिधाय अष्ट-विधपरीक्षा अभिहिता अनंतरंच कालज्ञान-दोषप्रकोप-परिभाषादि यथायथ-

मुक्ता धान्यादिफलकंदशाकादिगुणान् मांसगुणान् सिद्धान्नादिपाकगुणान् नित्यप्रवृत्त्यादि दिनादिचर्यां द्रवादिगुणान् क्वाथादिकल्पनाः धात्वादिशोधनमारणादि उक्ता माधवानुसारेण ज्वरादिरोगाणां निदानानि चिकित्सा च संगृहीता । तत्र यथायथं क्वाथ-चूर्ण-गुटिका-सवा-रिष्ट-स्नेहादयः रसायनानि च अभिहितानि अंते वाजीकरणानि रसायनानि च संगृहीतानि ।

एवमतीव उपयुक्तोऽयं ग्रंथः सर्वेषां संग्रहायालमिति मत्वा निर्णयसागरमुद्रणालयाधिपतिभिः 'शेट तुकाराम जावजी' इत्येतैरहं प्रेरितः तैश्च प्राचीनं हस्तलिखितपुस्तकं संपाद्य शोधनार्थं दत्तम् ।

कहाडग्रामवासिनः वे० शा० संपन्नाः भिषजः वासुदेवशास्त्रिणः स्वहस्तलिखितमेकं पुस्तकं दत्तवन्तः तैश्च बहु उपकृताः स्मः । अपिच राजापुरग्रामसमीपवासिनः आंबर्डेकरोपनामानः गणेशशर्माणः एकं हस्तलिखितं शताधिकगतसंवत्सरकं प्राचीनपुस्तकमददुः । एवं पुस्तकानि गृहीत्वा यथामति संशोध्य मुद्रणायादाम् । तत्र प्रमादादिना मूलग्रंथानामनुपलभेन च यत्र कचन स्वलनं स्याच्चेत्तद्विद्वद्भिः सोढव्यमिति विज्ञप्तिरिति शिवम् ।

नवरे इत्युपाभिधः रामचंद्रात्मजः

कृष्णशर्मा.

विषयानुक्रमणिका ।

| विषयः | पृष्ठं. | विषयः | पृष्ठं. |
|--------------------------------|---------|---------------------------------------|-----------|
| अ. | | अञ्जनोद्धूलने | ९७ |
| अक्षिपाकात्ययमाह | ४२६ | अण्डबृद्धिचिकित्सा | ३३४ |
| अगस्तिमोदकः | १४० | अतिविषाद्यंचूर्णम् | ३८६ |
| अगस्तिसूतराजोरसः | १३५ | अतीसारग्रहण्योश्चिकित्सा | ४६४ |
| अगस्तिसारः | १९ | अतीसारचिकित्सितंन्याख्यास्यामः | ११९ |
| अगस्तिहरीतकीपाकः | १९३ | अतीसारनिदानम् | ११८ |
| अगस्त्यबलेहः | १७२ | अतीसारे अपथ्यानि | १२९ |
| अगारधूमादितैलम् | ३६१ | अतीसारे पथ्यानि | १२९ |
| अग्निकरंष्टतम् | १४९ | अधिमन्धान्यतोवातयोश्चिकित्सा | ४४२ |
| अग्निकुमारः | १५० | अनुक्तवातरोगसंग्रहार्थमाह | २४१ |
| अग्निमान्द्यम् | १४३ | अपक्वदुग्धगुणाः | ४१ |
| अग्निदग्धचिकित्सा | ३५४ | अपचीचिकित्सा | ३४० |
| अग्निदग्धव्रणनिदानम् | ३५४ | अपचीमाह | ३३६ |
| अग्निमुखचूर्णम् | १४७ | अपथ्यम् (मूर्च्छायां) | २२२ |
| अग्निमुखरसः | २८७ | अपराजितलेहः | १८८ |
| अग्निमुखोरसः | १५१ | अपस्मारचिकित्सा | २३५ |
| अग्निमसुरसः | १३५ | अपस्मारनिदानमाह | २३४ |
| अङ्गारकतैलम् | ११० | अपामार्गतैलम् | ४११ |
| अङ्गारिका | २१ | अपूर्वमालिनीवसन्तः | ११४ |
| अजकाजातमाह | ४२६ | अभाववर्गः | ७९ |
| अजमोदादितैलम् | ३३९ | अभिन्यासः | १०२ |
| अजमोदादिवटी | २५६ | अभिव्यन्दचिकित्सामाह | ४४१ |
| अजमोदाद्यंचूर्णम् | २६८ | अभ्यंगादिविधिः | २७ |
| अजीर्णकुलकण्डनगणः | १५० | अभ्रकगुणाः | ६२ |
| अजीर्णकटकोरसः | १५३ | अभ्रकसत्वपातनविधिः | ७८ |
| अजीर्णचिकित्सितं | १४६ | अभ्रकम् | ६१ |
| अजीर्णनिदानम् | १४५ | अभ्रकानुपानानि | ६३ |
| अजीर्णहरीवटी | १५० | अमृतकलानिधिरसः | ११३ |
| अजीर्णहरोरसः | १५२ | अमृतप्राश्याबलेहः | १८६ |
| अजीर्णारिरसः | १५२ | अमृतभल्लातकः | ४८२ |
| अजीर्णयोगः | १५१ | अमृतहरीतकी | १४९ |
| अञ्जनम् | ९७ | अमृतागुग्गुलुः | २६२ |
| अञ्जनम् (मसूरिकायाम्) | ३८९ | अमृताद्योगुग्गुलुः | ३५० |
| | | अम्लपञ्चकम् | ४९ |

| विषयः | पृष्ठं. |
|--|---------|
| अम्लपित्तनिदानम् | ३७६ |
| अम्लपित्तस्यचिकित्सा | ३७७ |
| अम्लाध्युषितमाह | ४४३ |
| अरिमेदादितैलम् | ४०६ |
| अरोचकचिकित्सा | २०७ |
| अरोचकनिदानं | २०७ |
| अर्दितलक्षणमाह | २३९ |
| अर्दितस्यचिकित्सा | २४३ |
| अर्धावभेदकमाह | ४१९ |
| अर्बुदचिकित्सा | ३४१ |
| अर्बुदान्याह | ३३७ |
| अर्शःकुठारोरसः | १४३ |
| अर्शश्चिकित्सां व्याख्यास्यामः | १३८ |
| अर्शसाहेतुमाह | १३६ |
| अर्शरोगनिदानम् | १३६ |
| अवबाहुकमाह | २४० |
| अवबाहुके | २४३ |
| अवलेहः | ५३ |
| अवलेहः (अजीर्णं) | १४९ |
| अवलेहः (श्वासरोगे) | २०४ |
| अवशिष्टयोनिव्यापद्रोगाणां चिकित्सा | ४५१ |
| अविकृतस्तन्यमाह | ४६१ |
| अविमूत्रम् | ४७ |
| अश्मरीचिकित्सा | ३०४ |
| अश्मरीनिदानम् | ३०३ |
| अश्वगन्धाष्टतम् | ४६६ |
| अश्वगन्धादिचूर्णम् | १७० |
| अश्वगन्धादितैलम् | १०९ |
| अश्वगन्धादितैलम् | १७६ |
| अश्वगन्धापाकः | ३११ |
| अश्वमूत्रम् | ४८ |
| अष्टगुणमण्डः | १९ |
| अष्टाङ्गमैथुनम् | ४८७ |
| अष्टीलामाह | २४१ |
| असाध्यंक्लेश्व्यमाह | ४८० |
| असाध्यगर्भिणीलक्षणमाह | ४५३ |
| असाध्यवृश्चिकदृष्ट्यलक्षणमाह | ४७४ |
| अहर्निशौदोषत्रयप्रवर्तनम् | ९ |

| विषयः | पृष्ठं. |
|------------------|---------|
| अहिफेनमाह | ७७ |

आ.

| | |
|---------------------------------|-----|
| आक्षेपकादिरोगलक्षणान्याह | २३८ |
| आखुदूषीविषलक्षणमाह | ४७४ |
| आखुविषचिकित्सा | ४७७ |
| आगन्तुज्वरचिकित्सा | १०३ |
| आगन्तुकज्वरेहितानि | ११७ |
| आजमूत्रम् | ४७ |
| आदित्तरसः | १५२ |
| आध्मानलक्षणं | २४१ |
| आनन्दभैरववटी | ३१५ |
| आनाहचिकित्सा | २८२ |
| आनाहनिदानम् | २८२ |
| आनूपजातिलक्षणंतद्गुणाश्च | १६ |
| आनूपमांसगुणाः | १७ |
| आभादिचूर्णम् | २४७ |
| आभाद्योगुग्गुलुः | ३५६ |
| आमग्रहणी | १३० |
| आमलक्यवलेहः | १५९ |
| आमलक्यादिचूर्णम् | १०७ |
| आमलक्यादिचूर्णम् | २०९ |
| आमवातचिकित्सा | २६७ |
| आमवातनिदानं | २६७ |
| आमव्याधिप्रतीकारः | ९ |
| आमव्याधिलक्षणम् | ९ |
| आमशूलचिकित्सा | २७४ |
| आमातिसारचिकित्सा | ११९ |
| आमातिसारलक्षणम् | ११८ |
| आमाशयवातलक्षणम् | २३७ |
| आम्रपाकः | ४८३ |
| आयुर्विचारमाह | २३ |
| आरोग्यलक्षणम् | १० |
| आर्द्रकमातुलुंगावलेहः | २०९ |
| आर्द्रकयोगः | २१० |
| आर्द्रकावलेहः | १९३ |
| आवृतवातलक्षणानि | २३८ |
| आश्वेतनविधिः | ४४० |
| आसवारिष्टः | ५४ |
| आस्यपरीक्षा | ७ |

विषयः पृष्ठं.

इ.

इक्षुगुणाः ... ४६

इच्छाभेदीरसः ... ३२६

उ.

उच्चिदिगदष्टस्यलक्षणमाह ... ४७५

उत्तरखण्डः... ४८०

उत्फुल्लिकाचिकित्सा ... ४७१

उत्फुल्लिकालक्षणमाह ... ४७०

उदकापाकः ... ४०

उदकोदरलक्षणम् ... ३१९

उदयमार्तडोरसः ... २८२

उदरचिकित्सा ... ३२०

उदरनिदानम् ... ३१८

उदावर्तचिकित्सा ... २८०

उदावर्तनिदानम् ... २७९

उन्मत्तभैरवरसः ... १९७

उन्मत्तमाह ... ७७

उन्मादगजकेसरीरसः ... २३१

उन्मादचिकित्सा ... २३०

उन्मादनिदानम् ... २२९

उपदंशचिकित्सा ... ३६०

उपदंशनिदानम् ... ३६०

उपदंशालिगलेपः ... ३६१

उपदंशस्फोटिलेपः ... ३६१

उपदेशेपूगादिलेपः ... ३६१

उपधातवः ... ६१

उपनाहनम् ... ३४९

उपविषाण्याह ... ७६

उपोदकाद्यंतैलम् ... ३९५

उरःक्षतचिकित्सा ... १८५

उरःक्षतनिदानम् ... १८४

उरोग्रहचिकित्सा ... २९४

उरोग्रहनिदानम् ... २९४

उशीरादिचूर्णम् ... ३०२

उष्णवारिगुणाः ... ३९

उष्णोदकनिषेधः ... ३९

ऊ.

ऊरुस्तम्भचिकित्सा ... २६५

विषयः पृष्ठं.

ऊरुस्तम्भनिदानमाह ... २६५

ऊ.

ऊतुचर्यामाह ... ३७

ऊतुविशेषजलक्राथनियमः ... ३९

ए.

एकाविंशतिकोगुग्गुलुः ... ३६९

एकादशक्षुद्रकुष्ठानि ... ३६५

एरंडतैलम् ... ४५

एरण्डपाकः... २५८

एरण्डबीजशुद्धिः ... ७४

एरण्डादिः ... २४६

एलादिगुटिका ... १६५

एलादिगुटिका ... १८५

एलादिचूर्णम् ... १७०

एलादिचूर्णम् ... २१३

एलादिचूर्णम् ... ३७८

ओ.

ओष्ठरोगाः ... ३९९

औ.

औषधग्रहणविचारः ... ९३

क.

कज्जलीरसः... २२६

कटभ्यादितैलम् ... २३६

कटफलदिः... १९०

कटफलदिचूर्णम् ... १०७

कटफलदिचूर्णं काथश्च ... ४१६

कणभदष्टस्यलक्षणमाह ... ४७४

कणाद्यंचूर्णम् ... ४०५

कदलीघृतम् ... ४४८

कनकसुन्दररसः ... १३५

कनकसुन्दररसः ... १७९

कनकारिष्टः ... ३७१

कपिकच्छूपाकः ... ४८८

कपित्थाष्टकम् ... १२७

| विषयः | पृष्ठं. | विषयः | पृष्ठं. |
|-------------------------------------|---------|------------------------------------|---------|
| कफकासः | १८९ | काञ्चनारगुग्गुलुः | ३३९ |
| कफकुञ्जरसः | १९७ | काञ्चनारादिकाथः | ३८९ |
| कफज्वरे | ९५ | कामलालक्षणमाह | १५६ |
| कफपानालयचिकित्सा | २२५ | कामाग्निसंदीपनोमोदकः | ४८४ |
| कफमेहचिकित्सा | ३०९ | कामेश्वरः | ४८७ |
| कफरोगे नागरसः | १९७ | कामेश्वरमोदकः | ४८३ |
| कफशूलचिकित्सा | २७३ | कालज्ञानम् | ७ |
| करवीराद्यतैलम् | ३५९ | कालवज्राशनिरसः | ४७६ |
| करञ्जादितैलम् | ३८२ | कालेप्रसवविलंबेचिकित्सा माह | ४५६ |
| कर्णकस्यचिकित्सा | १०१ | कासकण्डनावलेहः | १९३ |
| कर्णकंठकर्णगूथादीनांचिकित्सा | ४१२ | कासचिकित्सा | १८८ |
| कर्णपालीरोगनिदानम् | ४१० | कासनिदानम् | १८६ |
| कर्णपालीविकाराणांचिकित्सा | ४१३ | कासरोगचिकित्सा | ४६५ |
| कर्णपूरणम् | ८३ | कासश्वासः | १९१ |
| कर्णरोगाणांचिकित्सा | ४१० | कासश्वासचिकित्सा | ४६५ |
| कर्णरोगाधिकारः | ४०९ | कासश्वासविधूननोरसः | १९५ |
| कर्णशोथादीनांचिकित्सा | ४१३ | किटिभचिकित्सा | ३७२ |
| कर्णस्त्रावादीनांचिकित्सा | ४१२ | कीटजलौकादिविषचिकित्सा | ४७८ |
| कर्पूरशुद्धिः | ७५ | कुङ्कुमाद्यं तैलम् | ३९७ |
| कर्पूराद्यंचूर्णम् | १७० | कुटजाद्यवलेहः | १२७ |
| कर्पूराद्यंचूर्णम् | २०९ | कुटजाष्टकम् | १२७ |
| कलिङ्गपरिभाषा | ११ | कुमार्यासवः | २८९ |
| कलिङ्गाद्यवपीडः | ४१६ | कुमुदेश्वरोरसः | १८३ |
| कल्कः | ५१ | कुरण्टकादिनामालेहः | १०९ |
| कल्याणकावलेहः | १३२ | कुरण्डचिकित्सा | ३३५ |
| कल्याणकावलेहः | २४४ | कुशाद्यतैलघृते | २२८ |
| कल्याणकंचूर्णम् | २३६ | कुष्ठचिकित्सा | ३६७ |
| कल्याणघृतम् | २३१ | कुष्ठनिदानम् | ३६४ |
| कवलग्रहाः (अरोचके) | २०८ | कुष्ठादिचूर्णम् | ४०६ |
| कण्टकारीघृतम् | १९४ | कुष्ठादितैलम् | ४१२ |
| कण्टकार्यवलेहः | १८८ | कुसुमिकावर्तिः | ४३३ |
| कण्टकार्यवलेहः | १९४ | कुसुंभतैलम् | ४५ |
| कण्ठकुब्जचिकित्सा | १०१ | कूष्माण्डादिघृतम् | २३६ |
| कंदविषस्यकार्यमाह | ४७२ | कूष्माण्डावलेहः | १६५ |
| कंसहरीतकी | ३३० | कृकलासदष्टस्यलक्षणमाह | ४७४ |
| काकोल्यादिर्गणः | ४६८ | कृत्रिमविषचिकित्सा | ४७६ |
| काङ्कायनगुटिका | १३९ | कृमिकर्णयोगः | ४१२ |
| काङ्कायनगुटिका | २८८ | कृमिकर्णयोगचतुष्टयम् | ४१२ |
| काचोपक्रमः | ४३५ | | |

| विषयः | पृष्ठं. |
|------------------------------------|---------|
| कृमिकुठारः | १५५ |
| कृमिमुद्गरोरसः | १५५ |
| कृशलक्षणम् | ३१६ |
| कृष्णागतारोगचिकित्सा | ४३६ |
| कृष्णादिपुटपाकः | ४३८ |
| कृष्णाद्योमोदकः | ३४३ |
| केशरनामगुणाः | ४९ |
| केशरपाकः | ४८२ |
| केपुक्तुपुदोषोत्पत्तिः | ८ |
| केपुमासेषु वातादिदोषप्रकोपः | ८ |
| कैशोरगुग्गुलुः | २६२ |
| कोद्रवधत्तूप्रतीकारः | २२५ |
| कोलायं घृतम् | १७४ |
| क्रव्यादरसः | २८९ |
| क्रिमिचिकित्सितं | १५४ |
| क्रिमिनिदानम् | १५४ |
| कृब्यलक्षणं | ४८० |
| कृब्यस्यचिकित्सा | ४८० |
| कथिततत्क्रगुणाः | ४४ |
| काथः | ५२ |
| काथः (संनिपातेः) | ९८ |
| काथः (कृमिरोगे) | १५४ |
| काथः (हिक्कायाम्) | १९९ |
| काथाः (श्वासरोगे) | २०३ |
| काथाः (वातरक्ते) | २६१ |
| काथाः (आमवाते) | २६८ |
| काथाः (शोथे) | ३२९ |
| काथः (उपदंशे) | ३६० |
| काथाः (कुष्ठे) | ३६७ |
| काथाः (अम्लपित्ते) | ३७७ |
| काथाः (विसर्पे) | ३८२ |
| काथाः (विस्फोटे) | ३८४ |
| काथाः (नेत्ररोगे) | ४३४ |
| क्षतकासः | १९० |
| क्षतकासमाह | १८७ |
| क्षयकासः | १९० |
| क्षयजकासमाह | १८७ |
| क्षयानाहः | १६८ |

| विषयः | पृष्ठं. |
|----------------------------|---------|
| क्षवथुः | ८४ |
| क्षारकल्पना | ७८ |
| क्षारताम्ररसः | १३५ |
| क्षारत्रयम् | ५० |
| क्षारद्वयम् | ५० |
| क्षारद्वयचूर्णम् | ३२५ |
| क्षाराष्टकम् | ५० |
| क्षीरघृतम् | १८९ |
| क्षीरदोषचिकित्सा | ४६१ |
| क्षीरमित्राणि | ४२ |
| क्षीरषट्पलं घृतम् | २८६ |
| क्षीरामलकघृतम् | १८९ |
| क्षीरामित्राणि | ४२ |
| क्षुद्ररोगचिकित्सा | ३९४ |
| क्षुद्ररोगनिदानम् | ३९१ |
| क्षुद्रावलेहः | २०४ |
| क्षौद्रार्धभागघृतम् | ३०१ |
| क्षौमादितैलगुणाः | ४६ |

ख.

| | |
|--------------------------|-----|
| खदिरादिगुटिका | १९२ |
| खदिरादिगुटिका | ४०८ |
| खर्जूरादिचूर्णम् | २२७ |
| खर्जूरादिचूर्णम् | २९८ |
| खर्जूरादिलेहः | १८९ |
| खर्जूरासवः | १७७ |
| खर्परम् | ६६ |
| खल्लीमाह | २४१ |
| खण्डकायवलेहः | १६६ |
| खण्डकूष्माण्डकः | १६६ |
| खण्डकूष्माण्डः | ३७८ |
| खण्डपिप्पली | २७५ |
| खण्डपिप्पल्यवलेहः | १७२ |
| खण्डपिप्पल्यवलेहः | ३७८ |
| खण्डार्द्रकयोगः | २१० |
| खण्डशुण्ठ्यवलेहः | २७० |
| खादिरासवः | ३७१ |
| खाण्डवचूर्णम् | २०९ |

| विषयः | पृष्ठं. | विषयः | पृष्ठं. |
|-------------------------------------|---------|-------------------------------------|---------|
| ग. | | गुडूच्यादिमोदकः | १७७ |
| | | गुणैर्विषकार्यमाह | ४७२ |
| गजमूत्रम् | ४७ | गुर्विण्यारोगाणांचिकित्सा | ४५५ |
| गण्डमालाकण्डनोरसः | ३४० | गुल्मकुठारोरसः | २९० |
| गण्डमालापचीचिकित्सा | ३३८ | गुल्मचिकित्सा | २८४ |
| गण्डूषः (तृष्णायाम्) | २१८ | गुल्मनिदानम् | २८३ |
| गन्धकः | ७१ | गृध्रसीमाह | २४० |
| गन्धकतैलम् | ४१२ | गृहगोधिकाविषकार्यमाह | ४७५ |
| गन्धकरसायनम् | ४९० | गैरिकम् | ७४ |
| गंधकसेवनम् | ४८८ | गोक्षुरचूर्णम् | ४८२ |
| गरकार्यमाह | ४७४ | गोक्षुरादिगुटी | ३११ |
| गरुडाञ्जनम् | ४७९ | गोक्षुराबधृतम् | १७४ |
| गरनाशनरसः | ४७७ | गोमक्षिकायांयोगः | ४१२ |
| गरविषमाह | ४७४ | गोमूत्रम् | ४७ |
| गर्भनिवारणम् | ४५० | गोमूत्रमण्डूरम् | ३३० |
| गर्भपातनविधिः | ४५० | गोरक्षवटी | २०७ |
| गर्भपातस्योपद्रवाणांचिकित्सा | ४५५ | गौरवम् | ८५ |
| गर्भस्यमरणहेतुमाह | ४५३ | गौराबधृतम् | ३५३ |
| गर्भस्यस्रावपातयोर्निदानमाह | ४५२ | गौराबधृतसर्पिः | ३८२ |
| गलगण्डगण्डमालादिनिदानं | ३३६ | गौरीपाषाणभेदः | ७६ |
| गलगण्डचिकित्सा | ३३८ | ग्रन्थिचिकित्सा | ३४० |
| गलरोगाः | ४०२ | ग्रहग्रस्तबालरोगाणांचिकित्सा | ४६७ |
| गलरोगाणांचिकित्सा | ४०७ | ग्रहग्रस्तबालरोगलक्षणानि | ४६३ |
| गुग्गुलवः | २४७ | ग्रहणीकपाटः | १३४ |
| गुग्गुलुवटकः | ३५० | ग्रहणीगजकेसरीरसः | १३४ |
| गुजामाह | ७६ | ग्रहणीचिकित्सितं | १३० |
| गुजगर्भोरसः | २६६ | ग्रहणीनिदानम् | १२९ |
| गुज्जातैलम् | ३३९ | ग्रहाणांग्रहणकालमाह | २३३ |
| गुज्जातैलम् | ३९६ | ग्रन्थिनिदानम् | ३३६ |
| गुज्जाफललेपः | २५७ | ग्रीष्मेहिताहितमाह | ३९ |
| गुटिकाः (अजीर्णैः) | १४८ | ग्लानेर्लक्षणम् | ८४ |
| गुटिका (अरोचके) | २०८ | घ. | |
| गुटिका (तृष्णायाम्) | २१९ | | |
| गुटिकाः (कुष्ठे) | ३६८ | घटीयन्त्रग्रहणी | १३० |
| गुडः | ४७ | घृतकल्कावलेहादि | २७० |
| गुडूचीघृतम् | १५९ | घृतगुणाः | ४४ |
| गुडूचीसत्वगुणाः | ५१ | घृतम् (शूले) | २७६ |
| गुडूच्यादिक्वाथः | २१३ | घृतानि (विषमज्वरे) | १०९ |
| गुडूच्याद्यञ्जनम् | ४३३ | घृतानि (अजीर्णैः) | १४९ |

| विषयः | पृष्ठः |
|-----------------------------|--------|
| श्रुतानि (क्षयरोगे) | १७४ |
| श्रुतानि (उन्मादे) | २३१ |
| श्रुतानि (वातरक्ते) | २६३ |
| श्रुतानि (हृद्रोगे) | २९३ |
| श्रुतानि (उदरे) | ३२५ |
| श्रुतानि (उपदंशे) | ३६१ |
| श्रुतानि (कुष्ठे) | ३७० |
| श्रुतानि (विसर्पे) | ३८२ |
| श्रुतानि (नेत्ररोगे) | ४३५ |

च.

| | |
|------------------------------|-----|
| चतुर्थमदमाह | २२३ |
| चतुर्दशाङ्गलोहम् | १७१ |
| चतुरुषणम् | ४८ |
| चतुर्मुखरसः | १७७ |
| चतुर्भूर्तिरसः | १३३ |
| चतुःसं लोहम् | २७८ |
| चन्दनम् | ५० |
| चन्दनबलालाक्षादितैलम् | ११० |
| चन्दनबलालाक्षादितैलम् | १७५ |
| चन्दनादिचूर्णम् | १६५ |
| चन्दनादिचूर्णम् | २२७ |
| चन्दनादितैलम् | १७५ |
| चन्दनादितैलम् | ४८४ |
| चन्दनादिलेपः | ३८५ |
| चन्दनादिवर्तिः | ४३७ |
| चन्दनाद्ययमकम् | ३५४ |
| चन्दनावलेहः | २१२ |
| चन्द्रकलारसः | ११५ |
| चन्द्रकलारसः | २९८ |
| चन्द्रकलावटी | ३१३ |
| चन्द्रकलारसः | २२८ |
| चन्द्रप्रभागुटी | ३११ |
| चन्द्रप्रभावटी | १२८ |
| चन्द्रप्रभावर्तिः | ४३२ |
| चन्द्रशेखररसः | ११३ |
| चन्द्रोदयरसः | ४८५ |
| चन्द्रोदयवर्तिः | ४३२ |
| चन्द्रोदयवर्तिः | ४३७ |

| विषयः | पृष्ठः |
|-------------------------------|--------|
| चर्मकीललक्षणमाह | १३८ |
| चर्मोख्यचिकित्सा | ३७२ |
| चर्विकासवः | २८९ |
| चव्यादिष्टतम् | १४२ |
| चित्राक्षरादिशङ्खवटी | २८८ |
| चित्तभ्रमचिकित्सा | १०० |
| चित्रकहरीतकी | ४१७ |
| चित्रकहरीतक्यवलेहः | २०४ |
| चित्रकादिकाथः | ४३४ |
| चित्रकादिगुटिका | १३१ |
| चित्रकादिचूर्णम् | २६९ |
| चित्रकादितैलम् | ३७१ |
| चित्रकाद्यं शृतम् | २८५ |
| चित्रकाद्यं शृतम् | ३०२ |
| चित्रकाद्यं शृतम् | ३२२ |
| चुक्राद्यं तैलम् | १५३ |
| चूर्णकल्पना | ५२ |
| चूर्णम् (हिक्यायाम्) | २०० |
| चूर्णानि (अजीर्णे) | १४७ |
| चूर्णानि (कृमिरोगे) | १५४ |
| चूर्णानि (श्वासरोगे) | २०३ |
| चूर्णानि (अरोचके) | २०८ |
| चूर्णानि (आमवाते) | २६८ |
| चूर्णानि (शूले) | २७५ |
| चूर्णानि (उदावर्ते) | २८१ |
| चूर्णानि (शोथे) | ३२९ |
| चूर्णानि (कुष्ठे) | ३६८ |
| चूर्णानि (नेत्ररोगे) | ४३४ |
| चैतसशृतम् | २३१ |
| चोपचिनीपाकः | ३६२ |
| चोपचिन्याश्चूर्णम् | ३६१ |
| च्यवनप्राश्यावलेहः | १७२ |

छ.

| | |
|----------------------------|-----|
| छर्दिचिकित्सा | २१२ |
| छर्दिनिदानम् | २११ |
| छर्द्यतीसारचिकित्सा | १२४ |
| छर्द्यन्तकरसः | २१५ |
| छुच्छुन्दरीतैलम् | ३३९ |
| छेदनप्रकारः | ४५७ |

| विषयः | पृष्ठं. | विषयः | पृष्ठं. |
|--------------------------------|---------|------------------------------|---------|
| ज. | | | |
| जंगमविषचिकित्सा | ४७६ | ज्वरातिसारः | १२६ |
| जंगमविषस्यषोडशाश्रयानाह | ४७१ | ज्वरादिरोगोद्देशः | ८५ |
| जंगमविषाणांकार्याण्याह | ४७२ | ज्वरे चूर्णानि | १०६ |
| जम्बवाद्यंतैलम् | ४१२ | ज्वरेपथ्यानि | ९३ |
| जलगुणाः | ३९ | ज्वरेपाचनम् | ९४ |
| जलजामृतरसः | ३१४ | ट. | |
| जलमृतलक्षणम् | २३६ | टङ्कणशोधनम् | ७५ |
| जलोदरारिः | ३२६ | त. | |
| जलौकाविषकार्यमाह | ४७५ | तक्रगुणाः | ४३ |
| जाङ्गलमांसगुणाः | १६ | तक्रपानम् | ३२५ |
| जातीपत्रादिचूर्णम् | ४०६ | तक्रहरीतकी | १३२ |
| जातीफलाद्यंचूर्णम् | १३३ | तन्द्रिकाचिकित्सा | १०० |
| जात्यादिघृतम् | ३५० | तमासुगुणाः | १५ |
| जात्यादिधूमः | १९१ | तरुणज्वरेअहितानि | ११७ |
| जात्यादितैलम् | ३५३ | तरुणज्वरेपाचनानि | ११७ |
| जात्यादितैलम् | ४०५ | तर्पणविधिः | ४४० |
| जिह्वकचिकित्सा | १०२ | ताम्रम् | ५६ |
| जिह्वापरीक्षा | ७ | ताम्रपर्पटीरसः | १९५ |
| जिह्वायां लेपः | ४६४ | तारकेश्वररसः | ३१५ |
| जिह्वारोगाः | ४०१ | तारमण्डूरः | २७७ |
| जिह्वारोगाणांचिकित्सा | ४०६ | तारमाक्षिकम् | ६४ |
| जीरकतैलम् | ३७३ | तालकविधिः | ६४ |
| जीरकादिरसः | २१५ | तालकसत्वम् | ७८ |
| जीरकाद्यंचूर्णम् | ४०५ | तालीसादिचूर्णम् | १०७ |
| जीरकावलेहः | ४४६ | तालीसाद्यंचूर्णम् | १३२ |
| जीर्णज्वराकुशः | १११ | तालीसाद्यंचूर्णम् | १७० |
| जीर्णौषधलक्षणम् | ९३ | तालीसाद्यंचूर्णम् | २०९ |
| जीवनीयं तैलम् | ४१ | तालुकण्टकमाह | ४६२ |
| जीवन्त्यादिघृतम् | १७५ | तालुपाके | ४६७ |
| जुम्भालक्षणम् | ८४ | तालुरोगाः | ४०१ |
| जिपालपत्रवटी | ३४० | तालुरोगाणांचिकित्सा | ४०७ |
| जैपालमाह | ७७ | तिक्तषट्पलंघृतम् | ३७० |
| ज्योतिष्मतीतैलम् | ३७५ | तिक्तादिघृतम् | ३५३ |
| ज्वरघ्नीगुटिका | ११२ | तिमिरेसामान्यचिकित्सा | ४३१ |
| ज्वरमुरारिः | ११३ | तिलादिक्षारयोगः | ३०५ |
| ज्वरलक्षणम् | ८५ | तिलादिमोदकः | १३८ |
| ज्वरस्यचिकित्सा | ९० | तुत्थम् | ६५ |

| विषयः | पृष्ठं. |
|-----------------------------|---------|
| तृतीयमदमाह | २२३ |
| तृष्णाचिकित्सा | २१७ |
| तृष्णानिदानं | २१६ |
| तैलगुणाः | ४५ |
| तैलानि | २४९ |
| तैलानि (कुष्ठे) | ३७१ |
| तैलानि | ४९१ |
| त्रयोदशाङ्गुलगुलुः | २४७ |
| त्रिकटु | ४८ |
| त्रिकण्टकादिक्वाथः | २९७ |
| त्रिकण्टकादिगुलगुलुः | २९८ |
| त्रिजातगुटिका | १९२ |
| त्रिजातचतुर्जाते | ४८ |
| त्रिदोषगुल्मचिकित्सा | २८६ |
| त्रिनेत्रोरसः | २९३ |
| त्रिपुरभैरवोरसः | २७९ |
| त्रिफला | ४८ |
| त्रिफलाक्वाथः | ४३४ |
| त्रिफलागुलगुलुः | ३४६ |
| त्रिफलागुटिका | ३६९ |
| त्रिफलाचूर्णम् | ४३४ |
| त्रिफलाद्यंघृतम् | ४३५ |
| त्रिफलाद्यंतैलम् | ३१७ |
| त्रिफलाद्यंतैलम् | ३९६ |
| त्रिफलाद्यवेलहः | १६० |
| त्रिफलाद्योगुलगुलुः | ३३९ |
| त्रिफलामोदकः | ३६९ |
| त्रिसुवनकीर्तिरसः | ११२ |
| त्रिमूर्तिरसः | ३१७ |
| त्रिविक्रमरसः | ३०६ |
| त्रिवृताद्यंघृतम् | ३२५ |
| त्रैलोक्यचिन्तामणिः | १८० |
| त्रैलोक्यतापहरः | ११३ |
| त्रैलोक्यनाथरसः | १६० |
| त्र्यूपणादिघृतं | १९४ |
| त्र्यूपणादिवर्तिः | २३० |
| त्र्यूपणाद्यंलोहम् | ३१६ |
| द. | |
| दद्रुचिकित्सा | ३७२ |

| विषयः | पृष्ठं. |
|-------------------------------------|---------|
| दधिगुणाः | ४३ |
| दंतधावनप्रकारः | २५ |
| दन्तरोगाणांचिकित्सा | ४०५ |
| दन्तमूलरोगाणांचिकित्सा | ४०४ |
| दन्तरोगाः | ४०० |
| दन्तवेष्टरोगाः | ३९९ |
| दन्तोद्भेदजरोगेपु | ४६७ |
| दन्त्यादिगुटिका | २८६ |
| दन्तोद्भेदकान् रोगानाह | ४६३ |
| दरदालिपः | ३७२ |
| दर्वाकरलक्षणमाह | ४७३ |
| दशमूलम् | ४८ |
| दशमूलघृतम् | १४९ |
| दशमूलादिघृतम् | १८८ |
| दशमूलादितैलम् | २५१ |
| दशमूलादितैलघृते | ४०५ |
| दशसारचूर्णम् | २२७ |
| दष्टस्यभसाध्यत्वमाह | ४७३ |
| दाडिमपुटपाकौ | १२८ |
| दाडिमावलेहः | १२७ |
| दाडिमाष्टकम् | १२८ |
| दाव्याद्यंजनम् | ४३३ |
| दाहचिकित्सा | २२६ |
| दाहनिदानम् | २२६ |
| दीपिकातैलम् | ४११ |
| दुग्धगुणाः | ४० |
| दुरालभादिलेहः | ४६५ |
| दुर्जलजेतारसः | ११६ |
| दुर्जलजनितस्यज्वरस्यचिकित्सा | ११६ |
| दुष्टप्रतिश्यायालिंगमाह | ४१५ |
| दूतपरीक्षा | २ |
| दूर्वादितैलम् | ३५३ |
| दूर्वादिसर्पिः | ३८२ |
| दूर्वाद्यंघृतम् | १६४ |
| दूषीभेदेनविकारभेदमाह | ४७३ |
| दूषीविषचिकित्सा | ४७६ |
| दूषीविषस्यकार्यमाह | ४७३ |
| दूषीविषस्यनिरुक्तिमाह | ४७३ |

| विषयः | पृष्ठं. |
|--------------------------------|---------|
| दूषीविषलिगविशेषमाह | ४७३ |
| दृक्परीक्षा | ६ |
| दृष्टिगतारोगचिकित्सामाह | ४३० |
| दृष्टिरोगानाह | ४२३ |
| देवदार्वादिः काथः | ४५९ |
| देशाः | ८ |
| दोषत्रयकर्माणि | ८ |
| दोषत्रयशमनम् | ९ |
| द्रवन्तीनागवटी | ३२२ |
| द्राक्षादिः | ३८९ |
| द्राक्षादिगुटिका | ३७८ |
| द्राक्षादिघृतम् | ३७९ |
| द्राक्षाद्यंघृतम् | १८६ |
| द्राक्षादिचूर्णम् | १०७ |
| द्राक्षादिचूर्णम् | १७१ |
| द्राक्षादिचूर्णम् | ४६५ |
| द्राक्षापाकः | ३१२ |
| द्राक्षामलकादिलेहः | १८९ |
| द्राक्षासवः | १३३ |
| द्राक्षासवः | १४१ |
| द्राक्षासवः | १७६ |
| द्राक्षिशकोगुग्गुलुः | २४७ |
| द्रादशाङ्गः | ३८४ |
| द्विपञ्चमूलादिः | ३८४ |
| द्विरुत्तरचूर्णम् | २१८ |

ध.

| | |
|-------------------------------|-----|
| धनंजयवटी | १४८ |
| धात्र्यवलेहः | ३७० |
| धात्वादीनालक्षणशोधनम् | ५४ |
| धान्यकादियोगः | २१२ |
| धान्यकादिहिमः | २२७ |
| धान्यादिफलकन्दशाकगुणाः | ११ |
| धारोष्णदुग्धगुणाः | ४१ |
| धूपः (अर्शसि) | १४३ |
| धूपः (कृमिरोगे) | १५५ |
| धूपः (छर्दिरोगे) | २१५ |
| धूपः (बालग्रहे) | ४६७ |

| विषयः | पृष्ठं. |
|------------------------------|---------|
| धूपः (सर्पविषे) | ४७६ |
| धूपनम् (अपस्मारे) | २३६ |
| धूमतांबूलभक्षणप्रकारः | ३१ |
| ध्वजवृद्धिकरणम् | ४८७ |

न.

| | |
|---------------------------------------|-----|
| नकुलान्ध्यमाह | ४२५ |
| नक्तान्ध्यमाह | ४२५ |
| नखदंतविषचिकित्सा | ४७७ |
| नयनशाणनामाञ्जनं | ४३२ |
| नयनाभिघातस्यनिदानचिकित्से | ४४३ |
| नयनामृतम् | ४३३ |
| नवककषाय | ३६८ |
| नवकगुग्गुलुः | ३१६ |
| नवकार्षिककाथः | २६१ |
| नवकार्षिकोगुग्गुलुः | ३५९ |
| नवज्वरेभाङ्कुशोरसराजलक्ष्म्याः | १११ |
| नवनीतम् | ४४ |
| नवरत्नराजमृगाङ्गः | १७८ |
| नवाङ्गयूषः | १८९ |
| नवायसचूर्णम् | १५७ |
| नस्यम् | ८३ |
| नस्यम् | ९७ |
| नस्यादिविधिः | २६ |
| नागम् | ६१ |
| नागरादितैलम् | ४११ |
| नागराद्यंचूर्णम् | १३१ |
| नागवल्लभः | १९५ |
| नागवल्लीरसादिमर्दनम् | ४८९ |
| नाडीपरीक्षा | ३ |
| नाडीव्रणचिकित्सा | ३५७ |
| नाडीव्रणनिदानम् | ३५६ |
| नाराचघृतम् | ३२५ |
| नाराचचूर्णम् | २७५ |
| नाराचोरसः | ३२६ |
| नारायणघृतम् | ३७९ |
| नारायणचूर्णम् | ३२४ |
| नारायणज्वराङ्कुशः | १११ |

| विषयः | पृष्ठं. |
|--------------------------------|---------|
| नारायणतैलम् | २८५ |
| नारिकेलखण्डपाकः | ३७८ |
| नारिकेलोदकगुणाः | ४० |
| नासारोगाणांचिकित्सा | ४१५ |
| नासारोगाधिकारः | ४१३ |
| नित्यप्रवृत्तिप्रकारमाह | २५ |
| नित्योदितः | १४३ |
| निंबादिकाथः | ३८९ |
| निर्गुण्डितैलम् | ३३९ |
| निर्गुण्ड्यादिकाथः | ४५९ |
| निर्गुण्ड्यादितैलम् | ४११ |
| निर्जलोदरलक्षणम् | ३१८ |
| निशादितैलम् | ३५९ |
| निष्ठीवनम् | ९७ |
| नेत्ररोगाणांचिकित्सा | ४३० |
| नेत्ररोगाणामधिकारः | ४२२ |
| न्यग्रोधादिचूर्णम् | ३११ |
| न्यग्रोधादिलेपः | ३८८ |

प.

| | |
|----------------------------|-----|
| पक्षवधमाह | २३९ |
| पक्षाघातस्यचिकित्सा | २४२ |
| पक्ष्मरोगौ | ४२८ |
| पक्ष्मीनस्यलक्षणमाह | ४१५ |
| पक्षातिसारचिकित्सा | १२१ |
| पक्षाशयवातलक्षणमाह | २३७ |
| पञ्चकोलम् | ४८ |
| पञ्चजीरकपाकः | ४५९ |
| पञ्चनिबचूर्णम् | ३६८ |
| पञ्चतिक्तकण्टकम् | ३७० |
| पञ्चतिक्तवृत्तम् | २५६ |
| पञ्चतिक्तवृत्तम् | ३८५ |
| पञ्चबाणरसः | ४८५ |
| पञ्चभृङ्गगुणाः | ४९ |
| पञ्चमूलादिः | २४६ |
| पञ्चमूलादिः काथः | ४५९ |
| पञ्चमूलाद्यंघृतम् | १३० |
| पञ्चवक्रः | ११४ |

| विषयः | पृष्ठं. |
|-----------------------------------|---------|
| पञ्चवल्कलानि | ४९ |
| पञ्चसमचूर्णम् | २६८ |
| पञ्चसुगंधिकगुणाः | ५० |
| पञ्चाङ्गानि | ४९ |
| पञ्चामृतसरः | १११ |
| पञ्चामृतसरः | २६४ |
| पञ्चामृतपर्वटीरसः | १३४ |
| पञ्चामृताख्योरसः | १८३ |
| पटोलादिः | २६१ |
| पटोलादिः | ३८९ |
| पटोलादिकाथः | ३२८ |
| पटोलाद्यंघृतम् | २१४ |
| पटोलाद्यंघृतम् | ४३७ |
| पटोलाद्यंचूर्णम् | ३२४ |
| पटोलीतैलम् | ३५४ |
| पथ्यम् (स्वरभेदे) | २०७ |
| पथ्यम् (मूर्छायाम्) | २२२ |
| पथ्यम् (पानात्ययोरोगे) | २२६ |
| पथ्यम् (अश्मर्याम्) | ३०६ |
| पथ्यादिकाथः | ३२९ |
| पथ्यादिचूर्णम् | १४७ |
| पथ्यादिलेपः | ३५४ |
| पथ्यापथ्यं (ग्रहण्याम्) | १३५ |
| पथ्यापथ्यम् (अर्शसि) | १४३ |
| पथ्यापथ्यम् (पांडुरोगे) | १६१ |
| पथ्यापथ्यम् (कासरोगे) | १९८ |
| पथ्यापथ्यम् (हिक्कायाम्) | २०१ |
| पथ्यापथ्यम् (श्वासरोगे) | २०५ |
| पथ्यापथ्यम् (अरोचके) | २११ |
| पथ्यापथ्यम् (छर्दिरोगे) | २१६ |
| पथ्यापथ्यम् (तृष्णायां) | २२० |
| पथ्यापथ्यम् (दाह्ररोगे) | २२८ |
| पथ्यापथ्यम् (उन्मादे) | २३२ |
| पथ्यापथ्यम् (अपस्मारे) | २३६ |
| पथ्यापथ्यम् (वातव्याधौ) | २५९ |
| पथ्यापथ्यम् (वातरक्ते) | २६४ |
| पथ्यापथ्यम् (ऊरुस्तम्भे) | २६६ |
| पथ्यापथ्यम् (आमवाते) | २७१ |

| विषयः | पृष्ठं. | विषयः | पृष्ठं. |
|-------------------------------------|---------|---|---------|
| पथ्यापथ्यम् (शूले) | २७६ | परिणामशूलनिदानम् | २७६ |
| पथ्यापथ्यम् (परिणामशूले)... .. | २७९ | परिभाषा | १० |
| पथ्यापथ्यम् (आनाहे)... .. | २८३ | पर्पटाः | २० |
| पथ्यापथ्यम् (गुल्मे)... .. | २९१ | पर्पटीरसः | १९५ |
| पथ्यापथ्यम् (हृद्रोगे)... .. | २९४ | पलंकषादिधूपः | ४६४ |
| पथ्यापथ्यम् (मूत्रकृच्छ्रे)... .. | २९९ | पाटनम् | ३४९ |
| पथ्यापथ्यम् (मूत्राघाते)... .. | ३०२ | पाठादितैलम् | ४१६ |
| पथ्यापथ्यम् (मेहे)... .. | ३१५ | पाण्डुरोगचिकित्सा | १५७ |
| पथ्यापथ्यम् (मेदोरोगे)... .. | ३१७ | पाण्डुरोगनिदानम् | १५६ |
| पथ्यापथ्यम् (उदरे)... .. | ३२६ | पादचतुष्टयम् | २ |
| पथ्यापथ्यम् (शोथे)... .. | ३३२ | पानकम् (अरोचके)... .. | २०८ |
| पथ्यापथ्यम् (मुष्कवृद्धौ)... .. | ३३५ | पानकानि | २२ |
| पथ्यापथ्यम् (गलगण्डमालादौ) | ३४२ | पानाजीर्णपानविभ्रमावाह | २२४ |
| पथ्यापथ्यम् (स्त्रीपदे)... .. | ३४४ | पानात्ययपरमदपानाजीर्ण- पानविभ्रमनिदानम् | २२२ |
| पथ्यापथ्यम् (विद्रवौ)... .. | ३४७ | पानात्ययमाह | २२४ |
| पथ्यापथ्यम् (भगदरे)... .. | ३५९ | पानात्ययादीनांचिकित्सा | २२४ |
| पथ्यापथ्यम् (उपदंशे)... .. | ३६२ | पायसम् | २० |
| पथ्यापथ्यम् (कुष्ठे) | ३७५ | पायसम् | ४८१ |
| पथ्यापथ्यम् (शीतपित्तादौ) | ३७६ | पारदः | ६६ |
| पथ्यापथ्यम् (अम्लपित्ते)... .. | ३७९ | पारदादिचूर्णम् | १९५ |
| पथ्यापथ्यम् (विसर्पे) | ३८३ | पारदादिचूर्णम् | २१५ |
| पथ्यापथ्यम् (विस्फोटै)... .. | ३८५ | पारदादिमलहः | ३५१ |
| पथ्यापथ्यम् (मसूरिकायाम्) | ३९० | पारदादिलेपः (उपदंशे)... .. | ३६१ |
| पथ्यापथ्यम् (क्षुद्ररोगेषु)... .. | ३९९ | पारिगर्भिकमाह | ४६२ |
| पथ्यापथ्यविधिः | ४०९ | पाशुपतोरसः | १५२ |
| पथ्यापथ्यम् (कर्णरोगे)... .. | ४१३ | पाषाणभेदपाकः | ३०५ |
| पथ्यापथ्यम् (नासारोगे)... .. | ४१८ | पाषाणवज्रकरसः | ३०५ |
| पथ्यापथ्यम् (शिरोरोगे)... .. | ४२२ | पिण्डतैलम् | २६३ |
| पथ्यापथ्यम् (नेत्ररोगे)... .. | ४४४ | पिण्डिकाविधिः | ४४० |
| पथ्यापथ्यम् (स्त्रीरोगे)... .. | ४६२ | पित्तगुल्मचिकित्सा | २८५ |
| पथ्यापथ्यम् (बालरोगे)... .. | ४७१ | पित्तग्रहणी | १३१ |
| पथ्यापथ्यम् (विषरोगे)... .. | ४८० | पित्तज्वरे | ९४ |
| पथ्यापथ्यविधिमाह (ज्वरे) | ११६ | पित्तज्वरलक्षणम् | ८६ |
| पञ्चकण्टकम् | ३८५ | पित्तपानात्ययचिकित्सा | २२४ |
| पञ्चकाण्टकम् | २१४ | पित्तमेहचिकित्सा | ३०९ |
| पञ्चकाष्ठादितैलम् | २६३ | पित्तशूलचिकित्सा | २७३ |
| परमदमाह | २२४ | पित्तश्लेष्मज्वरे | ९६ |
| परिणामशूलचिकित्सा | २७७ | | |

| विषयः | पृष्ठं. |
|--------------------------------|---------|
| पित्तातिसारचिकित्सा | १२२ |
| पिपीलिकादिविषचिकित्सा | ४७८ |
| पिप्पलीकल्कः | २४४ |
| पिप्पलीघृतम् | ३७९ |
| पिप्पलीपाकः | १११ |
| पिप्पलीशुद्धिः | ७४ |
| पिप्पल्यरिष्टः... .. | १७६ |
| पिप्पल्यादिगुटिकाञ्जनम् | ४३८ |
| पिप्पल्यादिचूर्णम् | ३२९ |
| पिप्पल्यादिचूर्णम् | ३४३ |
| पिप्पल्याद्यवलेहः | १९० |
| पिप्पल्याद्यञ्जनम् | ४३३ |
| पीनसस्यचिकित्सामाह | ४१५ |
| पीनसस्यामस्यलक्षणमाह... .. | ४१५ |
| पुटपाककल्पना | ५१ |
| पुनर्नवादिक्वाथः | २६५ |
| पुनर्नवादिघृतम् | ३३१ |
| पुनर्नवादितैलम् | ३३४ |
| पुनर्नवादिरसायनानि | ४८९ |
| पुनर्नवाद्यचूर्णम् | ३२९ |
| पुनर्नवाद्यञ्जनम् | ४३३ |
| पुनर्नवासवः | ३३० |
| पुराणघृतम् | ४५ |
| पुराणज्वरेहितानि | ११७ |
| पुरीषक्षयः | १२५ |
| पुष्पाक्षदिरसक्रिया | ४३८ |
| पुष्यानुगंचूर्णम् | ४४६ |
| पूगपाकः | ३११ |
| पूगमदप्रतीकारः | २२५ |
| पूर्णंदुनामारसः | ४८६ |
| पृथुकादयः | २३ |
| पोलिका | २१ |
| प्रक्षालनम्(उपदेशे)... .. | ३६१ |
| प्रतापलङ्घेश्वरोरसः | ४६० |
| प्रतापाक्षिकुमारोरसः | २५९ |
| प्रतिश्यायमाह | ४१४ |
| प्रतिश्यायप्रतीकारः | ४१७ |
| प्रथममदमाह | २२३ |

| विषयः | पृष्ठं. |
|-------------------------------------|---------|
| प्रदरचिकित्सा | ४४५ |
| प्रदरारिरसः... .. | ४४७ |
| प्रदरस्यनिदानमाह | ४४४ |
| प्रमेहपिटिकाः | ३०८ |
| प्रवाहिकामाह | ११९ |
| प्रसूतायाउदरस्थापरोपद्रवानाह | ४५८ |
| प्रलेपः(उदावर्ते) | २८२ |
| प्रलापकचिकित्सा | १०२ |
| प्रमेहचिकित्सा | ३०९ |
| प्रकृतिः | ९ |
| प्रवाहिका | १२५ |
| प्रवालपञ्चाशृतरसः | २९१ |
| प्रसारिणीतैलम् | २४९ |
| प्राचेतसंचूर्णम् | ४७९ |
| प्राणदोमोदकः | १३९ |
| प्राणदापर्पटी | १८२ |
| प्राणहरमूषकविषकार्यमाह | ४७४ |
| झीहोदरयकृदुदरयोश्चिकित्सा | ३२१ |

फ.

| | |
|------------------------------|-----|
| फलघृतम् | ४५० |
| फलवर्तयः (उदावर्ते) | २८२ |
| फाणितम् | ४७ |
| फाण्टकल्पना | ५२ |

ब.

| | |
|---------------------------|-----|
| बबूलबीजादिलेपः... .. | ३८६ |
| बलादिक्वाथः | १८८ |
| बलाद्यंघृतम् | १९५ |
| बलार्घ्यं घृतम्... .. | १८५ |
| बलाद्यघृतम्... .. | १७४ |
| बहुमूत्रचिकित्सा | ३१५ |
| बहुमूत्रमेहनिदानम् | ३१५ |
| बालरोगाणांचिकित्सा | ४६४ |
| बालरोगाधिकारः | ४६२ |
| बालरोगाणांनिदानानि | ४६२ |
| बालरोगेपर्पटीरसः... .. | ४६७ |
| बालस्यज्वरचिकित्सा | ४६४ |
| बालहरीतकीयोगः | ३६२ |
| बाहुशालगुडः | १४० |

| विषयः | पृष्ठः |
|-------------------------------|--------|
| विल्वाद्यंघृतम् | १३३ |
| विडालकविधिः | ४४० |
| विन्दुघृतम् | ३२५ |
| विभीतकावलेहः | १९४ |
| विल्वादिचूर्णम् | ३३४ |
| विल्वतैलम् | ४११ |
| बृहत्कव्यादः | १५१ |
| बृहत्पटोलादिकाथः | ३८८ |
| बृहन्नवायसम् | १७१ |
| बृहद्भलातकलेहः | १४० |
| बृहन्मज्जिष्ठादिः | २६२ |
| बृहन्मरिचाद्यंघृतम् | २६३ |
| बृहन्मरीचाद्यंघृतम् | ३७३ |
| बृहद्भलाक्षादितैलम् | ११० |
| बृहत्सिन्दूराद्यंघृतम् | ३७३ |
| बोलपर्पटी | ४४७ |
| बोलपर्पटीरसः | १६७ |
| ब्राह्मीघृतम् | २३५ |
| ब्राह्म्यादिकल्कः | २३० |
| ब्राह्म्यादिस्वरसः | २३० |

भ.

| | |
|------------------------------------|-----|
| भगंदरचिकित्सा | ३५८ |
| भगन्दरनिदानम् | ३५८ |
| भग्नचिकित्सा | ३५६ |
| भग्नत्राणनिदानम् | ३५५ |
| भद्रमुस्तादिकाथःसर्वज्वरेषु | ४६४ |
| भद्रमुस्तादिवटिका | ४०४ |
| भयशोकातिसारचिकित्सा | १२५ |
| भरित्थम् | २३ |
| भल्लातकक्षारः | १३१ |
| भल्लातकादिलेपः | ३४० |
| भल्लातकावलेहः | ३६९ |
| भूतोन्मादनिदानमाह | २३२ |
| भूतोन्मादचिकित्सा | २३३ |
| भस्मकुरोगनिदानचिकित्से | १४४ |
| भस्मकलक्षणमाह | १४४ |
| भागोत्तरवटी | १९५ |
| भाङ्गार्थादिलेहः | १८८ |
| भाङ्गोहरीतक्यवलेहः | २०४ |

| विषयः | पृष्ठः |
|--------------------------------|--------|
| भास्करलवणचूर्णम् | १४७ |
| भास्करलवणाद्यंघृतम् | २८७ |
| भीममंडूरः | २७७ |
| भीमसेनीकर्पूरः | ४४३ |
| भुग्ननेत्रचिकित्सा | १०२ |
| भूतभैरवरसः | २३४ |
| भूतोन्मादचिकित्सा | २३३ |
| भूनिम्बादिः | ३८४ |
| भूनागसत्वादिरुणाः | ७४ |
| भृङ्गराजतैलम् | ३९६ |
| भृङ्गराजतैलम् | ४३५ |
| भृङ्गीमत्स्यविषचिकित्सा | ४७८ |
| भोजनक्रमः | ३० |
| भोजनस्य देशकालौ | २९ |
| भोजनादिपात्रं | २९ |
| अमरविषचिकित्सा | ४७८ |

म.

| | |
|---------------------------------|-----|
| मकलस्य चिकित्सा | ४५८ |
| मक्षिकादंशलक्षणमाह | ४७५ |
| मक्षिकापिटिकाविषचिकित्सा | ४७८ |
| मक्षिकाविडवलेहः | २१३ |
| मंगलाचरणादि | १ |
| मंडूकविषचिकित्सा | ४७८ |
| मण्डूरकरणम् | ६० |
| मण्डूरलवणम् | १५८ |
| मण्डूरवज्रवटकः | १५८ |
| मण्डूरवटकाः | १५८ |
| मंडूराद्योरिष्टः | १५८ |
| मत्स्यविषस्यकार्यमाह | ४७५ |
| मत्स्यादिजलजन्तवः | १७ |
| मदनकामदेवोरसः | ४८६ |
| मदेभसिहसूतोरसः | १६० |
| मदेभसिहसूतोरसः | २९१ |
| मधुगुणाः | ४६ |
| मधुमण्डूरः | १५८ |
| मधुरज्वरलक्षणम् | ११६ |
| मधुरत्रिकम् | ५० |
| मधुसूक्तम् | ४११ |
| मधुच्छिष्टाद्यंघृतम् | ३५४ |

| विषयः | पृष्ठं. | विषयः | पृष्ठं. |
|---|---------|---------------------------------------|---------|
| मध्यमज्वरे हितानि | ११७ | महावासाक्वाथः | ४३४ |
| मध्यमपञ्चमूलम् | ४९ | महाविषगर्भतैलम् | २४९ |
| मध्यममदमाह | २२३ | महाशाल्वणयोगः | २५७ |
| मध्यमलाक्षादितैलम् | ११० | महासुगन्धितैलम् | ३१७ |
| मनःशिलादितैलम् | ३९४ | महासुगन्धितैलम् | ४८५ |
| मनःशिलादिलेपः | ३५१ | महाहेमगर्भरसः | १९७ |
| मज्जिष्ठाद्यं तैलम् | ३९७ | मारणगुणानाह | ६४ |
| मज्जिष्ठाभया | ३८३ | मारणगुणानाह- | ५४ |
| मनःशिला | ६५ | मापतैलम् | २५४ |
| मन्यास्तम्भमाह | २४० | माषतैलं | २४३ |
| मयूराद्यं धृतम् | ४२२ | मापादिसप्तकम् | २४२ |
| मरीचशुद्धिः | ७४ | माषाद्यंतैलम् | २४३ |
| मरीचादिगुटिका | १९२ | मांसगुणाः | १६ |
| मरीचादिभोदकः | १३९ | मासानुमासिकं वक्ष्यामः | ४५४ |
| मलपरीक्षा | ५ | मांस्यादिधृतम् | ३३४ |
| मसूरिकाचिकित्सामाह | ३८८ | माहिषसूत्रम् | ४७ |
| मसूरिकानिदानम् | ३८६ | माहेश्वरधृतम् | ३७४ |
| मसूरिकाभेदस्य शीतलाया अधि- कारः | ३८९ | माहेश्वरधूपः | २३३ |
| महाकनकसिन्दूररसः | १७९ | मिश्रकलेहः | २८६ |
| महाकषायः... .. | ३६७ | मुक्तादिमहाजनं | ४३२ |
| मज्जिष्ठाद्यंतैलम् | ३७१ | मुक्तापञ्चामृतरसः... .. | ११२ |
| महाक्षारगुटी | ३६२ | मुखधावनम् (अरोचके) | २०८ |
| महाखदिरधृतम् | ३७१ | मुखरोगाणां चिकित्सा... .. | ४०३ |
| महाज्वराङ्कुशः | ११२ | मुखरोगाणां निदानानि | ३९९ |
| महातिक्तं धृतम् | २६३ | मुखस्त्रावेमुखपाकेच | ४६६ |
| महातिक्तं धृतम्... .. | ३७० | मुद्गकषायः | २१२ |
| महापद्ममाह | ४६२ | मुद्गतण्डुलकृशरा | २० |
| महापैशाचधृतम् | २३४ | मुद्गाद्यं धृतम् | ४४६ |
| महाबलाक्वाथः | २४६ | मुष्काब्रवृद्धिवर्ध्मरोगनिदानं | ३३२ |
| महाबलातैलम् | २५५ | मुस्तकादिस्वरसः | ४६५ |
| महारसोनपिण्डः | २६९ | मुस्तल्यादिचूर्णम् | ४८१ |
| महाराजवटीरसः | ४८६ | मूढगर्भस्य अष्टौ प्रकारानाह | ४५२ |
| महाराखादिः (शार्ङ्गधरात्) | २४६ | मूढगर्भस्य चिकित्सामाह... .. | ४५७ |
| महाराखादिः (योगसारात्) | २४६ | मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा | २९५ |
| महारोहीतकं धृतम् | ३२२ | मूत्रकृच्छ्रनिदानम् | २९४ |
| महालक्ष्मीनारायणतैलम् | २५१ | मूत्रपरीक्षा | ४ |
| महावज्रेश्वरः | ३१४ | मूत्राघातचिकित्सा | ३०१ |
| | | मूत्राघातनिदानम् | २९९ |

| विषयः | पृष्ठं. | विषयः | पृष्ठं. |
|------------------------------------|---------|--------------------------|---------|
| मूत्रातिसारस्यचिकित्सा... | ४४७ | र | |
| मूत्राष्टकम् ... | ४७ | रक्तगुल्मप्रतीकारः ... | २८६ |
| मूत्राष्टकमाह ... | ४६८ | रक्तपित्तकुलकुठारः ... | १६७ |
| मूर्छाचिकित्सा ... | २२१ | रक्तपित्तचिकित्सा... .. | १६२ |
| मूर्छानिदानं... .. | २२० | रक्तपित्तनिदानम् ... | १६१ |
| मूर्छाभ्रमतन्द्रानिद्राभेदानाह ... | २२१ | रक्तवर्णहेमगर्भरसः ... | १८४ |
| मूर्वाद्युद्धर्तनम् ... | ४६४ | रक्तातिसारचिकित्सा ... | १२२ |
| मूषकतैलम्... .. | ३९८ | रक्तघ्नीविचिकित्सा... .. | १०२ |
| मृगाङ्गः ... | १७८ | रक्तस्रुतिः ... | ८३ |
| मृतसजीवनीवटिका ... | २२७ | रक्ताशौलक्षणम् ... | १३७ |
| मृतसंजीवनोरसः ... | १२८ | रतिवृद्धिकरोमोदकः ... | ४८३ |
| मृत्युच्छर्दिष्टतम् ... | ४७९ | रतिबलुभाख्यपूगपाकः ... | ४८३ |
| मृत्युञ्जयरसः ... | १८४ | रत्नानां शोधनमारणे ... | ७२ |
| मेधनादरसः ... | ३१३ | रसः (मूर्छायाम्) ... | २२२ |
| मेधनादरेचनरसः... .. | ८२ | रसगंधककज्जली ... | ३६२ |
| मेदस्विलक्षणम् ... | ३१६ | रसपर्पटी ... | १३४ |
| मेदोरोगचिकित्सा ... | ३१६ | रसबन्धनम्... .. | ६८ |
| मेदोरोगनिदानम् ... | ३१५ | रसभस्मयोगः ... | ४८६ |
| मेहकुञ्जरकेसरीरसः ... | ३१३ | रसभस्मयोगः ... | ४८७ |
| मेहनिदानम् ... | ३०६ | रसमारणम् ... | ६९ |
| मेहान्तको रसः ... | ३१३ | रसवैकृतियोगः ... | ४८८ |
| मेहारिरसः ... | ३१३ | रसराजः ... | १८६ |
| य | | रसशेषलक्षणमाह... .. | १४५ |
| यवागूः (अजीर्णे)... | १४९ | रसः (सोमरोगे)... | ४४८ |
| यवागूः (हिक्कायाम्) ... | १९९ | रससारः ... | ४८८ |
| यष्ट्यायंष्टृतम् ... | १८५ | रसादिगुटिका ... | २२८ |
| यक्षकर्मगुणाः ... | ४९ | रसाः (रक्तपित्ते) ... | १६७ |
| यष्टीमध्वादितैलम् ... | ४०८ | रसाः (क्षयरोगे)... | १७७ |
| यूषाः ... | १९ | रसाः (कासरोगे)... | १९४ |
| यूषः (हिक्कायाम्) ... | १९९ | रसाः (श्वासरोगे)... | २०४ |
| योगराजगुग्गुलुः ... | २४७ | रसाः (छर्दिरोगे) ... | २१५ |
| योनिरोगाधिकारः ... | ४४८ | रसाः (तृष्णायाम्) ... | २१९ |
| योनिव्यापद्रोगाणांनिदाना- | | रसाः (दाहरोगे) ... | २२८ |
| न्याह ... | ४४८ | रसाज्जनादिचूर्णम्... .. | १३१ |
| योनिकंदस्यनिदानमाह ... | ४४९ | रसायनस्य उदाहरणानि... .. | ४८९ |
| योनिकन्दस्य चिकित्सा ... | ४५२ | रसादिगुटिका ... | २१९ |
| योनिव्यापद्रोगाणां चिकित्सा ... | ४४९ | रसादिलेपः... .. | १५५ |
| | | रसामृतम् ... | ३७९ |
| | | रसायनभैरवः ... | २३५ |

| विषयः | पृष्ठं. |
|---------------------------------|---------|
| रसायनाधिकारः | ४८९ |
| रसायनस्यफलमाह | ४८९ |
| रसायनस्यलक्षणमाह | ४८९ |
| रसायनस्यविधिमाह | ४८९ |
| रसाला शिखरिणी... .. | २२ |
| रसाला | ४८१ |
| रसेन्द्रस्य पथ्यापथ्यानि | ७० |
| रागखण्डवाः(मोरांबेः) | २२ |
| राजयक्ष्मनिदानम् | १६७ |
| राजिकातैलम् | ४६ |
| रास्त्राद्योगुग्गुलुः | ४१३ |
| रास्त्राद्योगुग्गुलुः | २४९ |
| रास्त्राद्योगुग्गुलुः | २४५ |
| राजयक्ष्मचिकित्सा | १६९ |
| रात्रिचर्या | ३५ |
| रास्त्रादिपञ्चदशकम् | २६८ |
| रास्त्राद्वादशकम् | २६८ |
| रास्त्रापञ्चकम् | २६८ |
| रास्त्रापूतिकतैलम् | २५५ |
| रीतिकांसे | ५७ |
| रुग्दाहस्यचिकित्सा | १०० |
| रूपपरीक्षा | ६ |
| रेचनम् | ८२ |
| रेचनम् (बालरोगे) | ४६६ |
| रोगविशेषे घृतनिषेधः | ४५ |
| रोगानुसारेण औषधस्यानुपानानि | ४९१ |
| रोगिणामष्टस्थाननिरीक्षणं | २ |
| रोदने | ४६७ |
| रौप्यम् | ५६ |
| रोमान्तिका आह | ३८७ |

ल

| | |
|--------------------------|-----|
| लक्ष्मीनारायणरसः | २५९ |
| लक्ष्मीविलासः | १८० |
| लक्ष्मीविलासतैलम् | १७६ |
| लघुक्रव्यादः... .. | १५१ |
| लघुगङ्गाधरचूर्णम् | १२१ |
| लघुचुक्रसंधानम् | २१० |
| लघुत्रिफलाघृतम् | ४३५ |

| विषयः | पृष्ठं. |
|-------------------------------|---------|
| लघुनारायणतैलम्... .. | २५० |
| लघुपुष्पधन्वारसः | ४८६ |
| लघुमधूकादिफाण्टः | २१८ |
| लघुमज्जिष्ठादिः | २६२ |
| लघुमरिचार्घतैलम् | २६३ |
| लघुमरीचार्घतैलम् | ३७२ |
| लघुमालिनीवसन्तः | ११४ |
| लघुलाक्षादितैलम् | ११० |
| लघुलायिचूर्णम् | १२८ |
| लघुलोकेश्वरोरसः | २९९ |
| लघुवाजिगंधासर्पिः... .. | ४८४ |
| लघुविपगर्भतैलम् | २४९ |
| लघुवैश्वानरचूर्णम् | १४७ |
| लघुशिवगुटिका | १७३ |
| लघुसुदर्शनचूर्णम् | १०७ |
| लघुसुरणमोदकः | १४० |
| लवङ्गादिचूर्णम् | १०८ |
| लवङ्गादिचूर्णम् | १७० |
| लवङ्गादिवटी | १९२ |
| लवणत्रयम् | ५० |
| लवणपञ्चकम्... .. | ५० |
| लशुनकल्कः... .. | २५७ |
| लशुनविधिः | २४३ |
| लाक्षादितैलम् | १७५ |
| लाक्षादितैलम् | ४०६ |
| लाक्षादितैलम् | ४६६ |
| लाक्षागुग्गुलुः | ३५६ |
| लाक्षारसविधिः | ५४ |
| लाङ्गलीघृतम् | ३५५ |
| लाङ्गलीमाह | ७६ |
| लाजसक्तववलेहिका | २१३ |
| लाजादियूषः | २१२ |
| लिङ्गाशमाह | ३६० |
| लीलाविलासोरसः | ३७९ |
| लूतानांविषमाहः | ४७४ |
| लूताविपचिकित्सा | ४७८ |
| लेपः(विषे)... .. | ४७५ |
| लेपनम् (वातरक्ते)... .. | २६४ |
| लेपनम् (प्रमेहपिटिकासु)... .. | ३१३ |

| विषयः | पृष्ठ. |
|------------------------------|--------|
| लेपाः (अंशंसि) | १४३ |
| लेपाः (नृष्णायाम्) | २१८ |
| लेपाः (उपदंशे) | ३६० |
| लेपाः (कुष्ठे) | ३६७ |
| लेपाः (विसर्पे) | ३८१ |
| लेपोद्वर्तने (मेदसि) | ३१६ |
| लोकेश्वरः | १८२ |
| लोकेश्वरपोटलीरसः | १८२ |
| लोचनशूलघ्नीपोटली | ४३३ |
| लोभ्रासवः | ३१२ |
| लोहम् | ५८ |
| लोहगुग्गुलुः... .. | ४९० |
| लोहगुग्गुलुः... .. | २७८ |
| लोहादिगुग्गुलुः | ४३७ |
| लोहानुपानानि | ५९ |

व.

| | |
|---------------------------------|-----|
| वज्रम् | ६० |
| वज्रेश्वरः | ३१३ |
| वज्रेश्वरः | ४८७ |
| वज्रक्षारः | ३२१ |
| वज्रम् | ७२ |
| वज्रक्षारः | २८८ |
| वज्रतैलम् | ३७१ |
| वटकाः | २१ |
| वटककल्पना | ५२ |
| वडवानलरसः | २९० |
| वर्त्मपक्ष्मजाः | ४२६ |
| वन्ध्याचिकित्सा | ४४९ |
| वन्ध्यायागर्भप्रदभेषजमाह | ४४९ |
| वमनम् | ८१ |
| वमनम् (विषे) | ४७५ |
| वमनामृतयोगः | २१५ |
| वयोविचारः | ९ |
| वरटीविषचिकित्सा | ४७८ |
| वरुणादिकाथः | २८६ |
| वरुणादिकाथः | ३४६ |
| वरुणादिघृतम् | ३०५ |
| वर्त्मपक्ष्मजाः | ४३८ |

| विषयः | पृष्ठ. |
|---|--------|
| वर्त्मचिकित्सामाह | ३३४ |
| वर्पासुहिताहितमाह | ३८ |
| वल्लभघृतम्... .. | २९३ |
| वंशत्वगादिकाथः | ३५३ |
| वसन्तकुसुमाकरः | १८२ |
| वसन्तकुसुमाकरः | ३१४ |
| वसन्तेहिताहितमाह | ३९ |
| वस्त्रादिधारणाम् | २८ |
| वाजिगन्धादिः | २४६ |
| वाजिगन्धाद्यं तैलम्... .. | २४४ |
| वाजीकरणद्रव्यस्यलक्षणमाह | ४८० |
| वाजीकरं विधिमाह... .. | ४८० |
| वाजीकराण्याह | ४८१ |
| वातगुल्मचिकित्सा... .. | २८४ |
| वातज्वरलक्षणम् | ८६ |
| वातज्वरे | ९४ |
| वानरीगुटिका | ४८१ |
| वातपर्ययशुष्काक्षिपाकयोश्चि- कित्सा | ४४३ |
| वातपित्तज्वरे | ९५ |
| वातमेहचिकित्सा | ३०९ |
| वातविध्वंसनोरसः | २५८ |
| वातव्याधिचिकित्सा | २४१ |
| वातशुष्कस्यगर्भस्यचिकित्सा | ४५६ |
| वातशूलचिकित्सा | २७२ |
| वातश्लेष्मज्वरे | ९६ |
| वातरक्तचिकित्सा | २६१ |
| वातरक्तनिदानम् | २६० |
| वातराक्षसरसः | २५८ |
| वातहा पोटली | २५७ |
| वातातीसारचिकित्सा | १२१ |
| वाते कथिका | २५६ |
| वांतिद्वयसः | २१५ |
| वातोल्बणादिलक्षणानि | ८८ |
| वालुकास्त्रेदः | ९७ |
| वासादिकाथः | २६१ |
| वासादिघृतम् | १६४ |
| वासावलेहः... .. | १७२ |
| वासासवः | ३३१ |

| विषयः | पृष्ठं. |
|-------------------------------|---------|
| वासायुतः | १६७ |
| वासाखण्डः | १६६ |
| विकृताकृतिगर्भलक्षणमाह | ४५३ |
| विजयभैरवतैलम् | २५५ |
| विजयेश्वरोरसः | ३७४ |
| विडङ्गादिगुगुलुः | ३५० |
| विडङ्गादिचूर्णम् | २१३ |
| विडङ्गादितैलम् | ३४३ |
| विडङ्गाद्यं तैलम् | ४२० |
| विडङ्गाद्यो मोदकः | २७८ |
| विडङ्गासवः | २४३ |
| विद्रधिचिकित्सा | ३४५ |
| विद्रधिनिदानम् | ३४४ |
| विपरीतमल्लतैलम् | ३५३ |
| विपादिकाचिकित्सा | ३७३ |
| विरेचनम् | ८१ |
| विडङ्गादितैलम् | १५५ |
| विशिष्टग्रहजुष्टानां चिकित्सा | ४६७ |
| विशिष्टग्रहजुष्टानालक्षणानि | ४६३ |
| विश्वाचीमाह | २४० |
| विश्वादिलेहः | १८८ |
| विषम् | ७५ |
| विषगुणाः | ७५ |
| विषतिन्दुकमाह | ७७ |
| विषतैलम् | ३७५ |
| विषदातृणालक्षणमाह | ४७२ |
| विषमज्वरः | १०४ |
| विषमज्वरलक्षणम् | ८९ |
| विषमज्वरेकाथाः | १०५ |
| विषमज्वरे हितानि | ११८ |
| विपलितशस्त्रहतस्य लक्षणमाह | ४७२ |
| विषशोधनम् | ७५ |
| विषस्य दशगुणानाह | ४७२ |
| विषस्य द्वैविध्यमाह | ४७१ |
| विषमाशुमारकं भवति तदाह | ४७३ |
| विपाधिकारः | ४७१ |
| विधूच्यादिचिकित्सा | १५३ |
| विध्वन्दनं तैलम् | ३५९ |
| विसर्पचिकित्सा | ३८१ |

| विषयः | पृष्ठं. |
|----------------------------------|---------|
| विसर्पनिदानम् | ३८० |
| विस्फोटनिदानम् | ३८३ |
| वीर्यस्तम्भवटी | ४८७ |
| वृद्धगङ्गाधरचूर्णम् | १२१ |
| वृद्धगङ्गाधरचूर्णम् | १३२ |
| वृद्धिचिकित्सामाह | ३३३ |
| वृद्धपुष्पधन्वारसः | ४८५ |
| वृश्चिकविपचिकित्सा | ४७७ |
| वृषादिसर्पिः | ३८२ |
| वेणुत्वगादिधूपः | ३८८ |
| वेसवारः | २३ |
| व्याघ्रादिप्रमुखानां विषकार्यमाह | ४७५ |
| वैक्रान्तम् | ७२ |
| वैक्रान्तगर्भनामारसः | २९९ |
| वैश्वानरचूर्णम् | २६९ |
| व्याघ्रीहरीतकीलेहः | १९३ |
| व्रणशोधचिकित्सा | ३४८ |
| व्याघ्रीष्टतम् | २०६ |
| व्यायामः | २६ |
| व्याघ्रीतैलम् | ४१६ |
| व्याघ्रीकुसुमाद्यवलेहिका | ४६५ |
| व्याघ्रादिप्रमुखानां विषकार्य- | |
| माह | ४७५ |
| व्योषादिष्टतम् | १५९ |
| व्योषादिवटी | ४१६ |
| व्योषाद्यंचूर्णम् | १४८ |
| व्योषाद्यंचूर्णम् | १४१ |

श.

| | |
|--------------------------|-----|
| शङ्खचूलोरसः | २०० |
| शंखद्रावः | २८८ |
| शङ्खवटी | २७५ |
| शङ्खवटी | १४८ |
| शंखकमाह | ४१९ |
| शंखादिगुणाः | १८ |
| शङ्खोदरः | १२८ |
| शतावर्यादिचूर्णम् | ४३४ |
| शतावर्यादिचूर्णम् | ४८१ |
| शतावरीष्टतम् | २९८ |

| विषयः | पृष्ठः |
|----------------------------------|--------|
| शब्दपरीक्षा... | ६ |
| शब्दपरिभाषाकथनम्... | ८४ |
| शम्बूकादिवटिका... | २७७ |
| शरदिहिताहितमाह... | ३८ |
| शशकादिघृतम्... | ४३८ |
| शर्करासवः... | १४० |
| शर्करागुणाः... | ४७ |
| शलाकाविशेषमाह... | ४३२ |
| शशाङ्कलेखादिलेहः... | ३७० |
| शशिकलावर्तिः... | ४३३ |
| शशिलेखावटी... | ३७५ |
| शाल्मलीघृतम्... | ४४६ |
| शिमुतैलम्... | ४१६ |
| शिरोत्पातशिराहर्षयोश्चिकित्सा... | ४४३ |
| शिरोवस्तिविधिः... | ४१९ |
| शिरोरोगाणांचिकित्सा... | ४१९ |
| शिरोरोगनिदानम्... | ४१८ |
| शिलाजतु... | ७३ |
| शिलाजतुयोगः... | १७१ |
| शिलाजतुकरणम्... | ५४ |
| शीतपित्तोदर्दकोठनिदानम्... | ३७५ |
| शीतलायाभेदानाह... | ३९० |
| शूकदोषचिकित्सा... | ३६४ |
| शुण्ठ्यादिक्वाथः... | ३२८ |
| शुक्लजाः... | ४३८ |
| शुक्लभागजारोगाः... | ४२६ |
| शुण्ठीघृतम्... | १३१ |
| शुंठीघृतम्... | २०६ |
| शुण्ठ्यादिक्वाथः... | ३०४ |
| शुद्धशिलाजतुपरीक्षा... | ७३ |
| शुद्धार्तवलक्षणमाह... | ४४५ |
| शूकदोषचिकित्सा... | ३६४ |
| शूलगजकेसरीरसः... | २७६ |
| शूलचिकित्सा... | २७२ |
| शूलदावानलः... | २७९ |
| शूलनिदानम्... | २७१ |
| शूले साधारणविधिः... | २७४ |

| विषयः | पृष्ठः |
|--------------------------|--------|
| शोथचिकित्सा... | ३२८ |
| शोथपाकयोश्चिकित्सा... | ४४३ |
| शोधनरोपणविधिः... | ३५० |
| शोफोदरचिकित्सा... | ३२५ |
| श्यामादिकषायः... | २८१ |
| श्लेपदचिकित्सा... | ३४२ |
| श्लेपदनिदानम्... | ३४२ |
| श्लेष्मातिसारचिकित्सा... | १२३ |
| श्लेष्मगुल्मचिकित्सा... | २८५ |
| श्वदंष्ट्राद्यं घृतम्... | १८५ |
| श्वयथुघातीरसः... | ३३२ |
| श्वानदष्टविषलक्षणमाह... | ४७५ |
| श्वानविषचिकित्सा... | ४७८ |
| श्वासकुठारः... | २०४ |
| श्वासनिदानमाह... | २०१ |
| श्वित्रमाह... | ३६६ |

ष.

| | |
|----------------------|-----|
| षट्कतैलम्... | ११० |
| षडशीतिगुग्गुलुः... | २४८ |
| षडङ्गयूषः... | १६९ |
| षड्वर्षणगुग्गुलुः... | ३३३ |
| षड्वर्षणम्... | ४८ |
| षड्जुणगन्धकजारणम्... | ६८ |
| षड्बिन्दुघृतम्... | ४१६ |
| षड्बिन्दुतैलम्... | ४२१ |
| षट्साः... | ५० |

स.

| | |
|------------------------------|-----|
| सदाभद्राद्यंचूर्णम्... | ३०२ |
| समस्तमुखरोगाः... | ४०३ |
| समस्तमुखरोगाणां चिकित्सा... | ४०८ |
| समस्तनेत्रजा रोगाः... | ४२९ |
| समस्तनेत्रजरोगचिकित्सामाह... | ४४० |
| समशर्करचूर्णम्... | १४१ |
| समीरपन्नगः... | २५८ |
| सप्तधातुगतज्वरचिकित्सा... | ११५ |
| सप्तमुष्टिकयूपः... | ९८ |
| समुद्रफेनः... | ७४ |

| विषयः | पृष्ठं. | विषयः | पृष्ठं. |
|---------------------------------------|---------|---|---------|
| सङ्कुमन्थः | २२७ | सार्षपतैलम् | ४५ |
| सद्योव्रणचिकित्सा | ३५२ | सार्षपतैलम् | २३६ |
| सद्योव्रणनिदानम् | ३५१ | सालमपाकः | ३१२ |
| सप्तविंशतिकोगुग्गुलुः | ३५३ | सारिवादितैलम् | २६३ |
| सप्तविंशतिकोगुग्गुलुः | ३५९ | सिद्धार्थादिप्रलेपकः | ९८ |
| सप्तधातुवर्णाः | ५५ | सिध्मचिकित्सा | ३७३ |
| सप्तधातुगताः मसूरिकाः | ३८७ | सितोपलाद्यचूर्णम् | १७० |
| सप्तधातुगतज्वराणालक्षणम् | ११५ | सिन्दूराद्यतैलम् | ३७९ |
| समुद्रफेनचूर्णम् | ४१२ | सितोपलादिचूर्णम् | १०७ |
| सरगुणाः | ४३ | सिद्धान्नादिपाकगुणकथनम् | १८ |
| सर्वकासः | १९१ | सिंहनादगुग्गुलुः | २६९ |
| सर्वज्वरे | ९५ | सिंहामृतघृतम् | ३१२ |
| सर्वरोगाणांसामान्यप्रतीकारानाह | २४५ | सिंदूरम् | ७३ |
| सर्वविषैगरुडमन्त्रमाह | ७८ | सुखाचारः | ३४ |
| सर्वविषचिकित्सामाह | ४७६ | सुवर्णभूपतिः | १८० |
| सर्वाङ्गवधमाह | २३९ | सुदर्शनचूर्णम् | १०७ |
| सर्वाङ्गवातलक्षणमाह | २३७ | सुगन्धितैलम् | २५१ |
| सर्वाङ्गसुन्दरीगुटिकाः | ३६८ | सुधानिधिरसः | १६७ |
| सहचरादिः कायः | ४५९ | सुवर्णरसपर्पटी | १३४ |
| सर्वव्रणरोगाणां पथ्यापथ्यं | ३५७ | सुवर्णपर्पटीरसः | १८३ |
| सर्वोपदेशरसघृतम् | ३६२ | सुतशेखररसः | ३७९ |
| सर्वोदरेषु सामान्यविधिः | ३२३ | सुतादिगुटिका | २१० |
| सर्विषमण्डूकदष्टस्यलक्षणमाह | ४७५ | सूतिकाभरणरसः | २५९ |
| सहाचरादितैलम् | ४०४ | सूतिकारोगचिकित्सामाह | ४५८ |
| साध्यासाध्यमाह (वातरोगे) | २४१ | सूतिकारोगनिदानम् | ४५८ |
| साध्यासाध्यत्वं (मसूरिकाणां) | ३८७ | सूतिकारोगाधिकारः | ४५८ |
| साधारणोन्मादलक्षणम् | २२९ | सूपाः | २० |
| सामान्यविधिः (गुल्मे) | २८७ | सूरणमोदकः | १३९ |
| सामान्यज्वरलक्षणम् | ८५ | सूरणपुटपाकः | १३९ |
| सामान्यविधिः (शोथे) | ३२९ | सूर्यप्रभागुटिका | १७४ |
| सामान्यविधिः (विद्रवौ) | ३४६ | सूर्यप्रभावटी | २७५ |
| सामान्यविधिः (वृद्धौ) | ३३४ | सूर्यावर्तमाह | ४१९ |
| सामान्यविधिः (मूत्रकृच्छ्रे) | २९८ | सूर्यावर्तार्थावभेदकयोश्चिकित्सा | ४२१ |
| सामान्यप्रमेहचिकित्सा | ३३० | सेकलेपस्वेदनानि | ४१६ |
| सामान्यहृदामयप्रतीकारः | २९३ | सेवन्तीपाकः | १११ |
| सामान्यविषचिकित्सा | ४७९ | सैन्धवाद्यं घृतम् | २३६ |
| सामान्यग्रहजुष्टानालक्षणानि | ४६३ | सैन्धवाद्यं तैलम् | २४४ |
| सामुद्राद्यचूर्णम् | १४७ | सोमनाथताम्रम् | ५७ |
| सामुद्राद्यचूर्णम् | २८९ | सोमरोगाधिकारः | ४४७ |

| विषयः | पृष्ठः |
|--|--------|
| सोमरोगस्य चिकित्सा | ४४७ |
| सौभाग्यशुण्ठी | ४५९ |
| सौरेश्वरघृतम् | ३४३ |
| संजीवनीगुटिका | १४८ |
| संतर्पणगुणाः | ४९ |
| संतानिकागुणाः | ४२ |
| संधिकादीनां चिकित्सा | ९९ |
| संधिरोगाः | ४२८ |
| संधिजानांचिकित्सामाह | ४३९ |
| संनिपातज्वरलक्षणम् | ८६ |
| संनिपातभेदाः | ८७ |
| संनिपातभैरवरसः | ११२ |
| संनिपातातिसारचिकित्सा | १२३ |
| संनिपाते | ९६ |
| संनिपाते जिह्वायां लेपः | ९८ |
| स्त्रीरोगाधिकारः | ४४४ |
| स्तनरोगचिकित्सा | ४६१ |
| स्तनरोगस्य निदानं | ४६० |
| स्तनविद्रधिनिदानम् | ३४५ |
| स्तन्यजननविधिः | ४६१ |
| स्थावरजंगमविषाणां सामान्य लक्ष- | |
| णान्याह... .. | ४७१ |
| स्थावरविषस्यचिकित्सा | ४७५ |
| स्थावरविषस्य दशाश्रयानाह | ४७१ |
| स्थावरादिविषमेव दूषीविषसंज्ञां लभ- | |
| ते तदाह... .. | ४७३ |
| स्थावरविषस्यप्रत्येकंलक्षणान्याह... .. | ४७२ |
| स्थूललक्षणम् | ३१६ |
| स्वेदनलेपनसेचनानि(ऊरुस्तम्भे) | २६६ |
| स्नानप्रकारः... .. | २७ |
| स्नायुकचिकित्सा | ३८५ |
| स्नायुकनिदानम् | ३८५ |
| स्नावाः | ४४० |
| स्त्रीगर्भरोगनिदानम् | ४५२ |
| स्त्रीगर्भरोगचिकित्सा | ४५३ |
| स्तुक् | ७६ |
| स्नावपातयोश्चिकित्सामाह | ४५३ |
| स्नावपातयोर्वधिमाह | ४५२ |
| स्रोतोजनम् | ६५ |

| विषयः | पृष्ठः |
|----------------------------|--------|
| स्वर्णमालिनीवसंतः | ११४ |
| स्वर्णम् | ५५ |
| स्वच्छन्दभैरवरसः | २५८ |
| स्वरभेदचिकित्सा | २०६ |
| स्वरभेदनिदानं | २०५ |
| स्वरसकल्पना | ५१ |
| स्वरसाः (उपदेश) | ३६१ |
| स्वरसादयः | ५१ |
| स्वर्जिकाघृतम् | ३५१ |
| स्वर्णमाक्षिकम् | ६३ |
| स्वल्पपञ्चगव्यघृतम् | २३६ |
| स्वल्पायुषोलक्षणानि | २३ |
| स्वाभाविकवांछा | २९ |
| स्वेदलेपविधिः | २५६ |
| स्मृतिसागररसः | २३६ |
| खेहपाकविधिः | ५३ |
| स्पर्शपरीक्षा | ६ |
| सरफलादिप्रथमनम् | ४२० |

ह.

| | |
|----------------------------|-----|
| हनुस्तम्भमाह | २३९ |
| हयारिमाह... .. | ७७ |
| हपुषादितक्रारिष्टः | १४२ |
| हलावादिलङ्घुकाः | २४५ |
| हरिद्रातैलम् | ४०८ |
| हरिशङ्कररसः | ३१३ |
| हरीतक्यनुपानानि... .. | ४८९ |
| हरीतक्याद्योमोदकः | १९१ |
| हरीतक्यादिकाथः | २९५ |
| हरीतक्यादिचूर्णम् | २८१ |
| हलीमकमाह | २७५ |
| हरिद्राद्यतैलम् | ३९६ |
| हरीतक्यवलेहः | २१५ |
| हिक्काचिकित्सा | १९९ |
| हिक्कानिदानं | १९८ |
| हिमकल्पना... .. | ५२ |
| हिक्काष्टकचूर्णम् | १४७ |
| हिङ्गवादिक्षारतैलम् | ४११ |

| विषयः | पृष्ठं. | विषयः | पृष्ठः |
|-------------------------|---------|--------------------------|--------|
| हिङ्गवादिघृतम् | ३२५ | हिङ्गवादिघृतम् | २९० |
| हिङ्गवादिघृतम् | २३१ | डुताशनः | १५२ |
| हिङ्गुलः | ७१ | हृदयार्णवरसः | २९४ |
| हिङ्गवादितैलम् | ४१७ | हृद्रोगनिदानम् | २९१ |
| हिङ्गुशुद्धिः | ७४ | हृद्रोगचिकित्सा | २९२ |
| हिङ्गवादिचूर्णम् | २४३ | हृल्लासलक्षणम् | ८५ |
| हिङ्गवादिचूर्णम् | २८७ | हेमगर्भपोटलीरसः | १९६ |
| हिङ्गवादिचूर्णम् | २६९ | हेमन्तेहिताहितमाह | ३८ |
| हिङ्गवादिचूर्णम् | २७५ | हेमाञ्जरससिन्दूरः | १८३ |
| हीबेरादिघृतम् | १४२ | हंसमण्डूरः | १६० |

श्रीः ।

योगरत्नाकरः ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीधन्वन्तरये नमः ॥ शिवं हरिं विधातारं तत्पत्नीस्तत्सु
तान्गुरुन् । नत्वा समस्तप्रत्युहशान्तये मङ्गलाय च ॥ १ ॥ अन्नदो जलदश्चैव
आतुरस्य चिकित्सकः । त्रयस्ते स्वर्गमायान्ति विना यज्ञेन भारत ॥ २ ॥ रो-
गपङ्कार्णवे मग्नं यः समुद्धरते नरम् । कस्तेन न कृतो धर्मः कां च पूजां न
सोऽर्हति ॥ ३ ॥ वैद्यः पुरोहितो मन्त्री दैवज्ञश्च चतुर्थकः । द्रष्टव्याः प्रातरैवैते
नित्यं श्रेयोविवृद्धये ॥ ४ ॥ गतश्रीर्गणकान्द्वेष्टि गतायुश्च चिकित्सकान् । गत-
श्रीश्च गतायुश्च ब्राह्मणान्द्वेष्टि भारत ॥ ५ ॥ ज्यौतिषं व्यवहारं च प्रायश्चित्तं
चिकित्सितम् । विना शास्त्रेण यो ब्रूयात्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ ६ ॥ कचिद्धर्मः
कचिन्मैत्री कचिदर्थः कचिद्यशः । कर्माभ्यासः कचिच्चेति चिकित्सा नास्ति नि-
ष्फला ॥ ७ ॥ जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते । तच्छान्तिरौषधैर्दानै-
र्जपहोमसुरार्चनैः ॥ ८ ॥ व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः । एतद्वैद्यस्य
वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥ ९ ॥ अग्निमूलं बलं पुंसां रेतोमूलं च जीवितम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वह्निं शुक्रं च रक्षयेत् ॥ १० ॥ जातमात्रश्चिकित्स्यस्तु
नोपेक्ष्योऽल्पतया गदः । वह्निशस्त्रविषैस्तुल्यः स्वल्पोऽपि विकरोत्यसौ ॥ ११ ॥
निवृत्तोऽपि पुनर्व्याधिः स्वल्पेनाऽऽयाति हेतुना । दोषैर्मागीकृते देहे शेषः सू-
क्ष्म इवानलः ॥ १२ ॥ यावत्कण्ठगतप्राणस्तावत्कार्या प्रतिक्रिया । कदाचिद्वै-
वयोगेन दृष्टरिष्टोऽपि जीवति ॥ १३ ॥ यथाशास्त्रं तु निर्णीतो यथाव्याधि चि-
कित्सितः । न शमं याति यो व्याधिः स ज्ञेयः कर्मजो बुधैः ॥ १४ ॥ पुण्यैश्च
भेषजैः शान्तास्ते ज्ञेयाः कर्मदोषजाः । विज्ञेया दोषजास्त्वन्ये केवला चाथ
संकराः ॥ १५ ॥ औषधं मङ्गलं मन्त्रो ह्यन्याश्च विविधाः क्रियाः । यस्यायु-
स्तस्य सिध्यन्ति न सिध्यन्ति गतायुषि ॥ १६ ॥ विकारनामाकुशलो न जि-
हीयात्कदाचन । न हि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः ॥ १७ ॥
नास्ति रोगो विना दोषैर्यस्मात्तस्माद्विचक्षणः । अनुक्तमपि दोषाणां लिङ्गैर्व्या-
धिमुपाचरेत् ॥ १८ ॥ रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम् । ततः कर्म
भिषक्कुर्याज्ज्ञानपूर्वं विचक्षणः ॥ १९ ॥ मूर्खश्चोरस्तथा म्लेच्छो ब्रह्मघ्नो मत्स्य-
घातकी । द्वेष्टा च ग्रामकूटश्च वंचको मांसविक्रयी ॥ २० ॥ एतांस्तु व्याधिना
अस्मान्न कुर्याच्छमनक्रियाम् । तेषां जीवाप्तिसंदाता वैद्यो भवति पापभाक्
॥ २१ ॥ दर्शनस्पर्शनप्रश्नैः परीक्षेत च रोगिणम् । रोगं निदानप्राग्रूपलक्षणो-
पशयाप्तिभिः ॥ २२ ॥

अथ पादचतुष्टयम् ।

भिषग्द्रव्याण्युपस्थाता रोगी पादचतुष्टयम् । चिकित्सितस्य निर्दिष्टं प्रत्ये-
कं तच्चतुर्गुणम् ॥ १ ॥ दक्षस्तीर्थात्तशास्त्रार्थो दृष्टकर्मा शुचिर्भिषक् । बहुकल्पं
बहुगुणं संपन्नं योग्यमौषधम् ॥ २ ॥ अनुरक्तः शुचिर्दक्षो बुद्धिमान्परिचारकः ।
आढ्यो रोगी भिषग्वश्यो ज्ञापकः सत्त्ववानपि ॥ ३ ॥

अथ दूतपरीक्षा ।

दूतस्य प्रश्नाक्षरयोगसंख्या त्रिघ्नाष्टभाज्या प्रवदन्ति शेषे । समे च मृत्यु-
र्विषमे च नैव विलोक्य वैद्याः खलु प्रश्नकाले ॥ १ ॥ दूतो रक्तकषायकृष्णव-
सनो दण्डी जटी मुण्डितस्तैलाभ्यक्तवपुर्भयंकरवचा दीनोऽश्रुपूर्णेक्षणः । भ-
स्माङ्गारकपालपाशमुशली सूर्येऽस्तगे व्याकुलो यः शून्यस्वरसंस्थितो गदवतो
दूतस्तु कालानलः ॥ २ ॥ स्वज्ञातिः श्वेतवस्त्रो द्रविणयुतकरः क्षत्रियो ब्राह्मणो
वा ताम्बूलास्यः सुशीलः शुभवचनवदः स्यात्प्रशस्तोऽत्र दूतः ॥ ३ ॥ संध्या-
काले तथा रात्रौ स्नानभोजनसंगमे । विपरीतेषु कालेषु न गच्छेत्तत्र बुद्धिमान्
॥ ४ ॥ न सुप्याद्रोगिसदने न भुञ्जीयात्कदाचन । विनाह्वानं न गच्छेच्च न
ब्रूयान्मरणं भिषक् ॥ ५ ॥

अथ शकुनाः ।

छत्रं गौर्द्विजकन्यकामिषसुरा पण्याङ्गना रोचनं माङ्गल्यं नृपवाजिवारणदधि
स्तोत्रादिपाठः शुभः । संगीतं करुणाभयानकमहारौद्रैर्विहीनं स्वरक्रीडाभावम-
नोहरं किमपि चेद्बालानि सद्योगिनः ॥ १ ॥ मार्गच्छेदोऽहिमार्जारगोधास-
रटवानरैः । रोगिद्वाराभिनिर्गच्छेन्मङ्गलं तदमङ्गलम् ॥ २ ॥ पुंनामा वाम-
तः श्रेष्ठो गजखेचरवर्जितः । स्त्रीनामा दक्षिणे श्रेष्ठः शिवाश्यामाविवर्जितः
॥ ३ ॥ दुर्गा काकस्तथाश्वान उलूकखरजम्बुकाः । निर्गमे वामतः श्रेष्ठाः प्रवेशे
दक्षिणाः शुभाः ॥ ४ ॥

अथ रोगिणामष्टस्थाननिरीक्षणम् ।

रोगाक्रान्तस्मरीरस्य स्थानान्यष्टौ निरीक्षयेत् । नाडीं मूत्रं मलं जिह्वां शब्दं
स्पर्शं दृग्गाकृती ॥ १ ॥ दोषकोपे घनेऽल्पे च पूर्वं नाडीं परीक्ष्य च । अन्ते
चाऽऽदौ स्थितिस्तस्या विज्ञेया भिषजा स्फुटम् ॥ २ ॥ यथा वीणागता तन्त्री
सर्वात्रागान्प्रभाषते । तथा हस्तगता नाडी सर्वात्रोगान्प्रकाशयेत् ॥ ३ ॥ सर्वे-
षामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः । तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसे-
वनम् ॥ ४ ॥ निदानार्थकरो रोगो रोगस्याप्युपलक्ष्यते । आदौ सर्वेषु रोगेषु
नाडीजिह्वाक्षिमूत्रतः ॥ ५ ॥ परीक्षां कारयेद्द्वेद्यः पश्चाद्रोगं चिकित्सयेत् ।
नाड्या मूत्रस्य जिह्वाया लक्षणं यो न विन्दति ॥ ६ ॥ मारयत्याशु वै जन्तुं

अथ नाडीपरीक्षा ।

नाडीमङ्गुष्ठमूलाधः स्पृशेदक्षिणगे करे । ज्ञानार्थं रोगिणो वैद्यो निजदक्षि-
णपाणिना ॥ १ ॥ स्थिरचित्तः प्रशान्तात्मा मनसा च विशारदः । स्पृशेदङ्गु-
लिभिर्नाडीं जानीयादक्षिणे करे ॥ २ ॥ प्रायः स्फुटा भवति वामकरे वधूनां
पुंसां च दक्षिणकरे तदियं परीक्षा । ईषद्विनाभितकरं वितताङ्गुलीकं बाहुं
प्रसार्य रहितं परिपीडनेन ॥ ३ ॥ ईषद्विनम्रकृतकूर्परवामभागे हस्ते प्रसारि-
तसदङ्गुलिसंधिके च । अङ्गुष्ठमूलपरिपश्चिमभागमध्ये नाडीं ग्रभातसमये प्रहरं
परीक्ष्य ॥ ४ ॥ वारत्रयं परीक्षेत धृत्वा धृत्वा विमोचयेत् । विमृश्य बहुधा
बुद्ध्या रोगव्यक्तिं विनिर्दिशेत् ॥ ५ ॥ अङ्गुलित्रितये स्पृष्ट्वा क्रमाद्वोपत्रयोद्भ-
वाम् । मन्दां मध्यगतिं तीक्ष्णां त्रिभिर्दोषैस्तु लक्षयेत् ॥ ६ ॥ वातं पित्तं
कफं द्वंद्वं त्रितयं सांनिपातिकम् । साध्यासाध्यविवेकं च सर्वं नाडी प्रकाश-
येत् ॥ ७ ॥ स्नायुर्नाडी ततो हंसी धमनी धरणी धरा । तन्नुकी जीवनज्ञाना
शब्दाः पर्यायवाचकाः ॥ ८ ॥ सद्यःस्नातस्य भुक्तस्य तथा स्नेहावगाहिनः ।
क्षुत्तृषार्तस्य सुप्तस्य नाडी सम्यङ् न बुध्यते ॥ ९ ॥ अङ्गुष्ठमूलभागे या ध-
मनी जीवसाक्षिणी । तच्चेष्टया सुखं दुःखं ज्ञेयं कायस्य पण्डितैः ॥ १० ॥
स्त्रीणां भिषग्वामहस्ते पादे वामे च यत्नतः । शास्त्रेण संप्रदायेन तथा स्नानु-
भवेन वै ॥ ११ ॥ परीक्षा रत्नवच्चास्यास्त्वभ्यासादेव जायते । वातनाडी भ-
वेद्ब्रह्मा पित्तनाडी च शंकरः ॥ १२ ॥ श्लेष्मनाडी भवेद्विष्णुस्त्रिदेवा नाडिसं-
स्थिताः । अग्रे वातवहा नाडी मध्ये वहति पित्तला । अन्ते श्लेष्मविकारेण
नाडी ज्ञेया बुधैः सदा ॥ १३ ॥ सर्पजलौकादिगतिं वदन्ति त्रिबुधाः प्रभञ्जने
नाडीम् । पित्तेन काकलावकमण्डूकादेस्तथा चपलाम् ॥ १४ ॥ राजहंसमयू-
राणां पारावतकपोतयोः । कुक्कुटस्य गतिं धत्ते धमनी कफसङ्गिनी ॥ १५ ॥
मुहुः सर्पगतिं नाडीं मुहुर्भैरवगतिं तथा । वातपित्तसमुद्भूतां तां वदन्ति वि-
चक्षणाः ॥ १६ ॥ सर्पहंसगतिं तद्वद्वातश्लेष्मवर्ती वदेत् । हरिहंसगतिं धत्ते
पित्तश्लेष्मान्विता धरा ॥ १७ ॥ काष्ठकुट्टो यथा काष्ठं कुट्टते चातिवेगतः ।
स्थित्वा स्थित्वा तथा नाडी संनिपाते भवेद्भुवम् ॥ १८ ॥ वृद्धहारीतात्—
स्पन्दते चैकमानेन त्रिंशद्द्वारं यदा धरा । स्वस्थानेन तदा नूनं रोगी जीवति
नान्यथा । स्थित्वा स्थित्वा वहति या सा ज्ञेया प्राणघातिनी ॥ १९ ॥ मन्दं
मन्दं शिथिलशिथिलं व्याकुलं व्याकुलं वा स्थित्वा स्थित्वा वहति धमनी
याति सूक्ष्मा च सूक्ष्मा । नित्यं स्कन्धे स्फुरति पुनरप्यङ्गुलीः संस्पृशेद्वा भा-
वैरेवं बहुविधतरैः संनिपातादसाध्या ॥ २० ॥ तस्य मृत्युं विजानीयाद्यस्येदं

नाडिलक्षणम् ॥ २१ ॥ पूर्वं पित्तगतिं प्रभञ्जनगतिं श्लेष्माणमाबिभ्रतीमत्यन्तं
 भ्रमणं मुहुर्विदधतीं चक्रादिरूढामिव । भीष्मत्वं दधतीं कलासु पतितां सू-
 क्ष्मत्वमातन्वतीं नो साध्यां धमनीं वदन्ति मुनयो नाडीगतिज्ञानिनः ॥ २२ ॥
 गम्भीरा या भवेन्नाडी सा भवेन्मांसवाहिनी । ज्वरवेगेन धमनी सोष्णा वे-
 गवती भवेत् ॥ २३ ॥ कामक्रोधाद्वेगवहा क्षीणा चिन्ताभयक्षुता । मन्दाग्नेः
 क्षीणधातोश्च नाडी मन्दतरा भवेत् ॥ २४ ॥ असूक्ष्मपूर्णा भवेत्सोष्णा गुर्वी
 सामा गरीयसी । लघ्वी वहति दीप्ताग्नेस्तथा वेगवती मता ॥ २५ ॥ चपला
 क्षुधितस्यापि नृत्स्य वहति स्थिरा । मरणे डमरुकस्य भवेदेकदिनेन च ॥ २६ ॥
 कम्पते स्पन्दतेऽत्यन्तं पुनः स्पृशति चाङ्गुलीः । तामसाध्यां विज्ञानीयान्नाडीं
 दूरेण वर्जयेत् ॥ २७ ॥ स्थिरा नाडी भवेद्यस्य विद्युद्द्युतिरिवेक्ष्यते । दिनैकं
 जीवितं तस्य द्वितीये मृत्युरेव च ॥ २८ ॥ शीघ्रा नाडी मलोपेता शीतला
 वाऽथ दृश्यते । द्वितीये दिवसे मृत्युर्नाडी ज्ञेया विचक्षणैः ॥ २९ ॥ मुखे
 नाडी बहेत्तीव्रा कदाचिच्छीतला बहेत् । आयाति पिच्छिलः स्वेदः सप्तरात्रं
 न जीवति ॥ ३० ॥ देहे शैल्यं मुखे श्वासो नाडी तीव्रा विदाहवत् । मासार्धं
 जीवितं तस्य नाडीविज्ञानभाषितम् ॥ ३१ ॥ मुखे नाडी यदा नास्ति मध्ये
 शैल्यं बहिः क्लमः । यदा मन्दा भवेन्नाडी त्रिरात्रं नैव जीवति ॥ ३२ ॥ अ-
 तिसूक्ष्मातिवेगा च शीतला च भवेद्यदि । तदा वैद्यो विज्ञानीयाद्रोगिणं
 च गतायुषम् ॥ ३३ ॥ विद्युद्ब्रजमिता नाडी दृश्यते च न दृश्यते । अकाल-
 विद्युत्पातेव स गच्छेद्यमशासनम् ॥ ३४ ॥ तिर्यगुष्णा च या नाडी सर्पगा
 वेगवत्तरा । कफपूरितकण्ठस्य जीवितं तस्य दुर्लभम् ॥ ३५ ॥ चैलाञ्जलित-
 वेगा च नासिकाधारसंयुता । शीतला दृश्यते या च याममध्ये च मृत्युदा
 ॥ ३६ ॥ दृश्यते चरणे नाडी करे नैवाभिविद्यते । मुखं विकसितं यस्य तं दूरं
 परिवर्जयेत् ॥ ३७ ॥ वातपित्तकफाश्चापि त्रयो यस्यां समाहिताः । कृच्छ्रसा-
 ध्यामसाध्यां वा प्राहुर्वैद्यविशारदाः ॥ ३८ ॥ वक्रा च चपला शीतस्पर्शा
 वातज्वरे भवेत् । द्रुता च सरला दीर्घा शीतपित्तज्वरे भवेत् ॥ ३९ ॥ मन्दा
 च सुस्थिरा शीता पिच्छिला श्लेष्मतो भवेत् । वक्रा च ईषच्चपला कठिना
 वातपित्तजा ॥ ४० ॥ ईषच्च दृश्यते स्पृष्ट्वा मन्दा स्याच्छ्लेष्मवातजा । सूक्ष्मा
 शीता स्थिरा नाडी पित्तश्लेष्मसमुद्भवा ॥ ४१ ॥ हंसगा चैव या नाडी तथैव
 गजगामिनी । मुखं प्रशस्तं च भवेत्तस्याऽऽरोग्यं भवेत्सदा ॥ ४२ ॥ यो रो-
 गिणः करं स्पृष्ट्वा स्पर्शं क्षालयेद्यदि । रोगास्तस्य विनश्यन्ति पङ्कः प्रक्षालना-
 द्यथा ॥ ४३ ॥ इति नाडीपरीक्षा ॥

अथ मूत्रपरीक्षा ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि मूत्रस्य च परीक्षणम् । येन विज्ञातमात्रेण रोगचिह्नं
 प्रकाश्यते ॥ १ ॥ निशान्त्ययामे घटिकाचतुष्टये उत्थाप्य वैद्यः किल रोगिणं

च । मूत्रं धृतं काचमये च पात्रे सूर्योदये तत्सततं परीक्षेत् ॥ २ ॥ तस्याऽऽ-
द्यधारां परिहृत्य मध्यधारोद्भवं तत्परिधारयित्वा । सम्यक्परिज्ञाय गदस्य हेतुं
कुर्याच्चिकित्सां सततं हिताय ॥ ३ ॥ वाते च पाण्डुरं मूत्रं सफेनं कफरो-
गिणः । रक्तवर्णं भवेत्पित्ते द्वंद्वजे मिश्रितं भवेत् । संनिपाते च कृष्णं स्यादे-
तन्मूत्रस्य लक्षणम् ॥ ४ ॥ अन्यच्च—परीक्षा विधिवत्कार्या रोगिमूत्रस्य त-
त्त्वतः । तृणेन दापयेत्तैलबिन्दुं तत्रातिलाघवात् ॥ ५ ॥ विकासितं तैलमथा-
ऽऽशु मूत्रे साध्यः स रोगी न विकासितं चेत् । स्यात्कष्टसाध्यस्तलगे त्वसा-
ध्यो नागार्जुनैश्च कृता परीक्षा ॥ ६ ॥ चर्पटतः—नीलं च रूक्षं कुपिते च
वायौ पीतारुणं तैलसमं च पित्ते । स्निग्धं कफे पल्लववारितुल्यं स्निग्धोष्ण-
रक्तं रुधिरप्रकोपे ॥ ७ ॥ मातुलुङ्गरसाभासं सौवीराभं जलोपमम् । प्रपाकर-
हितानां च मूत्रं चन्दनसंनिभम् ॥ ८ ॥ अजीर्णप्रभवे रोगे मूत्रं तण्डुलतोय-
वत् । नवज्वरे धूम्रवर्णं बहुमूत्रं प्रजायते ॥ ९ ॥ पित्तानिले धूम्रजलाभमुष्णं
श्वेतं मरुच्छेष्मणि बुद्बुदाभम् । तच्छेष्मपित्ते कलुषं सरक्तं जीर्णज्वरेऽसृ-
क्सदृशं च पीतम् । स्यात्संनिपातादपि मिश्रवर्णं तूष्णं विधिज्ञेन विचारणीयम्
॥ १० ॥ पूर्वार्शां वर्धते बिन्दुर्यदा शीघ्रं सुखी भवेत् । दक्षिणाशां ज्वरो ज्ञे-
यस्तथाऽऽरोग्यं क्रमाद्भवेत् ॥ ११ ॥ उत्तरस्यां यदा बिन्दोः प्रसरः संप्रजायते ।
अरोगिता तदा नूनं पुरुषस्य न संशयः ॥ १२ ॥ वारुण्यां प्रसरेद्बिन्दुः सुखा-
रोग्यं तदाऽऽदिशेत् । ऐशान्यां वर्धते बिन्दुर्ध्रुवं मासेन नश्यति ॥ १३ ॥
आग्नेय्यां तु तथा ज्ञेयं नैर्ऋत्यां प्रसरेद्यदि । छिद्रितश्च भवेत्पश्चाद्भुवं मरण-
मेव च ॥ १४ ॥ वायव्यां प्रसरेद्बिन्दुः सुधयापि विनश्यति । विकासितं
हलं कूर्मं सैरिभाकारसंयुतम् ॥ १५ ॥ करण्डमण्डलं वापि शिरोहीननरं
तथा । गान्धर्वखण्डं च शस्त्रं च खड्गं मुशलपट्टिशम् ॥ १६ ॥ शरं च लगुडं
चैव तथैव त्रिचतुष्पथम् । बिन्दुरूपं नरो दृष्ट्वा न कुर्वीत क्रियां क्वचित् ॥ १७ ॥
हंसकारण्डताडागं कमलं गजचामरम् । छत्रं वा तोरणं हर्म्यं सुपूर्णं दृश्यते
यदि ॥ १८ ॥ आरोग्यता ध्रुवं ज्ञेया तदा कुर्यात्प्रतिक्रियाम् । तैलबिन्दुर्यदा
मूत्रे चालनीसदृशो भवेत् ॥ १९ ॥ कुलदोषो ध्रुवं ज्ञेयः प्रेतदोषसमुद्भवः ।
नराकारं प्रजायेत किंवा स्यान्मस्तकद्वयम् । भूतदोषं विजानीयाद्भूतविद्यां त-
दाऽऽचरेत् ॥ २० ॥ मज्जिष्ठाभं धूम्रवर्णं च नीलं स्निग्धं मूत्रं वारितुल्यं च
शीतम् । ज्ञात्वा चित्ते बुद्धिमान्मानुपाणां कुर्यात्त्वन्तर्भेषजं रोगिणां च ॥ २१ ॥
सर्पाकारं भवेद्वाताच्छत्राकारं तु पित्ततः । मुक्ताकारं बलासात्स्यादेतन्मूत्रस्य
लक्षणम् ॥ २२ ॥ इति मूत्रपरीक्षा ।

अथ मलपरीक्षा ।

रुद्रतन्नात्—वातान्मले तु दृढता शुष्कता चापि जायते । पीतता जायते
पित्ताच्छुक्लता श्लेष्मतो भवेत् ॥ १ ॥ संनिपाते च सर्वाणि लक्षणानि भवन्ति

हि । त्रुटितं फेनिलं रुक्षं धूमलं वातकोपतः । वातश्लेष्मविकारे च जायते क-
पिशं मलम् ॥ २ ॥ बद्धं सुत्रुटितं पीतश्यामं पित्तानिलाद्भवेत् । पीतश्यामं
श्लेष्मपित्तादीषत्सान्द्रं च पिच्छिलम् ॥ ३ ॥ श्यामं त्रुटितपीताभं बद्धश्वेतं
त्रिदोषतः । दुर्गन्धः शीतलश्चैव विष्टोत्सर्गो यदा भवेत् ॥ ४ ॥ तदा जीर्णं
मलं वैद्यैर्दोषज्ञैः परिभण्यते । कपिलं गुटियुक्तं च यदि वर्चोऽवलोक्यते ॥ ५ ॥
प्रक्षीणमलदोषेण दूषितः परिकथ्यते । सितं महत्पूतिगन्धं मलं ज्ञेयं जलोदरे
॥ ६ ॥ श्यामं क्षये त्वामवति पीतं सकटिवेदनम् । अतिकृष्णं चातिशुभ्रम-
तिपीतं तथाऽरुणम् ॥ ७ ॥ मरणाय मलं किंतु भृशोष्णं मृत्यवे ध्रुवम् ॥ अ-
न्यच्च—वातस्य च मलं कृष्णं ततः पित्तस्य पीतविद् । रक्तवर्णं मलं किञ्चि-
न्मलं श्वेतं कफोद्भवम् ॥ ८ ॥ आमं वा श्लेष्मजं प्राहुर्मिश्रितं द्वंद्वजं वदेत् ।
अपक्वं स्यादजीर्णं तु पक्वं स्वच्छमलं भवेत् ॥ ९ ॥ अत्यग्नौ पिंडितं शुष्कं म-
न्दस्त्रौ तु द्रवीकृतम् । दुर्गन्धं चन्द्रिकायुक्तमसाध्यं मललक्षणम् ॥ १० ॥
इति मलपरीक्षा ।

अथ शब्दपरीक्षा ।

गुरुस्वरो भवेच्छ्लेष्मा स्फुटवक्ता च पित्तलः । उभाभ्यां रहितो वातः स्व-
रतश्चैव लक्षयेत् ॥ १ ॥ इति शब्दपरीक्षा ॥

अथ स्पर्शपरीक्षा ।

पित्तरोगी भवेदुष्णो वातरोगी च शीतलः । आर्द्रतः स भवेच्छ्लेष्मा
स्पर्शतश्चैव लक्षयेत् ॥ १ ॥ इति स्पर्शपरीक्षा ॥

अथ रूपपरीक्षा ।

विभुत्वादाशुकारित्वाद्बलित्वानन्यकोपनात् । स्वातङ्ग्याद्बुरोगत्वाद्दोषाणां
प्रबलोऽनिलः ॥ १ ॥ प्रायस्त एव पचनाध्युषिता मनुष्या दोषात्मकाः स्फु-
टितधूसरकेशगात्राः । शीतद्विषश्चलधृतिस्मृतिबुद्धिचेष्टासौहार्ददृष्टिगतयोऽपि
बहुप्रलापाः ॥ २ ॥ पित्तं वह्निर्वह्निजं वा यदस्मात्पित्तोद्विक्तस्तीक्ष्णतृष्णाबु-
भुक्षः । गौरोष्णाङ्गस्ताम्रहस्ताङ्घ्रिवक्त्रः शूरो मानी पिङ्गकेशोऽल्परोमा ॥ ३ ॥
श्लेष्मा सोमः श्लेष्मलस्तेन सौम्यो गूढस्निग्धश्छिष्टसंध्यस्थिमांसः । क्षुत्तृदशो-
कक्लेशधर्मैरतसो बुद्ध्या युक्तः सात्त्विकः सत्यसंधः ॥ ४ ॥ इति रूपपरीक्षा ।

अथ दृक्परीक्षा ।

रूक्षा धूम्रा तथा रौद्रा चला चान्तर्ज्वलत्यपि । दृष्टिर्यदा तदा वातरोगं
रोगविदो जगुः ॥ १ ॥ दीपद्वेपि च संतप्तं पीतं पित्तेन लोचनम् । जलाद्रौ
ज्योतिषा हीनं स्निग्धं मन्दं कफेन तत् ॥ २ ॥ द्वन्द्वदोषे भवेन्मिश्रं तूष्णं तूष्णं
विलोचनम् । श्यामवर्णं च निर्भुगं तन्द्रामोहसमन्वितम् ॥ ३ ॥ रौद्रं च र-

क्तवर्णं च भवेच्चक्षुस्त्रिदोषतः । एकं चक्षुर्यदा भीमं द्वितीयं मीलितं भवेत् ॥ ४ ॥ त्रिभिर्दिनैस्तदा रोगी स याति यममन्दिरम् । ज्योतिर्विहीनं सहसा रोगिणो यस्य लोचनम् ॥ ५ ॥ ईषत्कृष्णं स नियतं ग्रयाति यमशासनम् । सरक्तं कृष्णवर्णं च रौद्रं च प्रेक्षते यदा ॥ ६ ॥ इति लिङ्गैर्विजानीयान्मृत्युरेव न संशयः । एकदृष्टिरचैतन्यो अमन्स्फुरिततारकः । एकरात्रेण नियतं परलोकपथं व्रजेत् ॥ ७ ॥ यामलात्—शुष्कास्यः श्यामकोष्ठोऽप्यसितरदततिः शीतनासाग्रदेशः शोणाक्षश्चैकनेत्रो लुलितकरपदः श्रोत्रपातित्युक्तः । शीतश्वासोऽथ चोष्णश्वासनसमुदयः शीतगात्रप्रकम्पः सोद्वेगो निष्प्रपञ्चः प्रभवति मनुजः सर्वथा मृत्युकाले ॥ ८ ॥ इति दृक्परीक्षा ।

अथाऽऽस्यपरीक्षा ।

वाते च मधुरास्यत्वं पित्ते च कटुकं तथा । मधुराम्लं कफे चैव सर्वलिङ्गं त्रिदोषजे । अजीर्णे घृतपूर्णं स्यात्कषायं चाग्निमान्द्यके ॥ १ ॥ इत्यास्यपरीक्षा ।

अथ जिह्वापरीक्षा ।

जिह्वा शीता खरस्पर्शा स्फुटिता मास्तेऽधिके । रक्ता श्यामा भवेत्पित्ते कफे शुभ्राऽतिपिच्छिला ॥ १ ॥ कृष्णा सकण्टका शुष्का संनिपाताधिके तु सा । मिश्रिते मिश्रिता ज्ञेया सर्वलक्षणवर्जिता ॥ २ ॥ इति जिह्वापरीक्षा ।

अथ कालज्ञानम् ।

अत्रैर्लक्षितलक्षणेन पयसा पूर्णेन्दुना भानुना पूर्वादक्षिणपश्चिमोत्तरदिशं षट्त्रिंशद्विंशसैककम् । छिद्रं पश्यति चेत्तदा दशदिनं धूमाकृतिं पञ्चमे ज्वालां पश्यति सद्य एव मरणं कालोचितज्ञानिनाम् ॥ १ ॥ अरुन्धतीं ध्रुवं चैव विष्णोस्त्रीणि पदानि च । आयुर्हीना न पश्यन्ति चतुर्थं मातृमण्डलम् ॥ २ ॥ अरुन्धती भवेज्जिह्वा ध्रुवो नासाग्रमेव च । विष्णुस्तु ब्रूयोरर्मध्यो ब्रूद्वयं मातृमण्डलम् ॥ ३ ॥ नासाग्रं ब्रूयुगं जिह्वां मुखं चैव न पश्यति । कर्णघोषं न जानाति स गच्छेद्यममन्दिरम् ॥ ४ ॥ नवभ्रूः पञ्चचक्षुश्च सप्तकर्णस्त्रिनासिका । जिह्वा च दिनमेकं तु कालचिह्नं दिने दिने ॥ ५ ॥ अकस्माच्च भवेत्स्थूलो ह्यकस्माच्च कृशो भवेत् । अकस्मादन्यथाभावः षण्मासैश्च विनश्यति ॥ ६ ॥ रसनायां कृष्णभावो मुखं कुङ्कुमसंनिभम् । जिह्वा स्वल्पखरस्पर्शा दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥ ७ ॥ स्वेदो ललाटे हिमवन्नरस्य शीतार्द्रितस्यापि सुपिच्छिलस्य । कण्ठे स्थितो यस्य न याति वक्षो नूनं यमस्यैति गृहं स मर्त्यः ॥ ८ ॥ रात्रौ दाहोऽभितपति दिवा जायते शीतलत्वं कण्ठे श्लेष्मा विरसवदनं कुङ्कुमाकारनेत्रे । जिह्वा कृष्णा वहति च सदा स्थूलसूक्ष्मा च नाडी तद्भैषज्यं स्मरणमधुना रामरामेति नाम्नः ॥ ९ ॥ सौम्या दृष्टिर्वदति विमलं हस्तपादौ सदोष्णौ

स्वल्पो दाहः सुरसवदनं कोमला यस्य जिह्वा । नासाश्वासो वहति सरलः
स्वेदहीनो ज्वरोऽसौ साध्यो रोगी भवति नियतं वैद्यभैषज्ययोग्यः ॥ १० ॥
इति कालज्ञानम् ।

अथ देशाः ।

देशोऽल्पवारिद्रुनगो जाङ्गलः स्वल्परोगदः । अनूपो विपरीतोऽस्मात्समः
साधारणः स्मृतः ॥ १ ॥ जाङ्गलं वातभूयिष्ठमनूपं तु कफोल्बणम् । साधारणं
सममलं त्रिधा भूदेशमादिशेत् ॥ २ ॥ मतान्तरे—देशः प्रचुरपानीयो बहुवृ-
क्षसमाकुलः । बहुवातकफव्याधिरनूप इति कथ्यते ॥ ३ ॥ स्वल्पोदकः स्व-
ल्पवृक्षो बहुपित्तासृगामयः । कथ्यते जाङ्गलो देशस्ताभ्यां साधारणः परः
॥ ४ ॥ इति देशाः ।

अथ केषु मासेषु वातादिदोषप्रकोपः ।

मार्गे पौषे तथा माघे आषाढे श्रावणेऽपि च । भाद्रे मासि चिकित्साज्ञै-
र्वातो राजा प्रकीर्तितः ॥ १ ॥ आश्विने कार्तिके मासे वैशाखज्येष्ठयोर्ध्रुवम् ।
सर्वशास्त्रविचारज्ञैः पित्तं राजा प्रकीर्तितः ॥ २ ॥ फाल्गुने चैत्रमासे च जन्तु-
पीडाकरो मतः । शीतलाम्बुसमुद्भूतः श्लेष्मा राजा प्रकीर्तितः ॥ ३ ॥

अथ केषु ऋतुषु दोषोत्पत्तिः ।

हेमन्तवर्षाशिशिरेषु वायोः पित्तस्य तोयान्तनिदाघयोश्च । कफस्य कोपः
कुसुमागमे च कर्वातं यद्यद्विहितं तथैव ॥ १ ॥ इति ऋतुदोषोत्पत्तिः ।

अथ वातादिप्रकोपः ।

संधारणाध्यशनजागरणोच्चभाषाव्यायामर्यानकटुतिक्तकषायरूक्षैः । चिन्ता-
व्यवायभयलङ्घनशीतशोकैर्वातः प्रकोपमुपयाति घनागमे च ॥ १ ॥ कटुम्ल-
मद्यलवणोष्णविदाहितीक्ष्णक्रोधातपानलभयश्रमशुष्कशार्कैः । क्षाराद्यजीर्णवि-
षमाशनभोजनैश्च पित्तं प्रकोपमुपयाति घनालये च ॥ २ ॥ स्वमादिवा मधुर-
शीतलमस्यमांसगुर्वम्लपिच्छिलतिलेक्षुपयोविकारैः । स्निग्धातिवृषिलवणोद-
कपानभक्ष्यैः श्लेष्मा प्रकोपमुपयाति तथा वसन्ते ॥ ३ ॥

अथ दोषत्रयकर्माणि ।

पारुष्यसंकोचनतोदशूलश्यावत्वभङ्गव्यथचेष्टभावान् । सुप्तत्वशीतत्वखर-
त्वशोषान्कर्माणि वायोः प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ १ ॥ परिश्रमस्वेदविदाहरागवैग-
न्ध्यसंक्लेदविपाककोथाः । प्रलापमूर्च्छाभ्रमपित्तदाहाः पित्तस्य कर्माणि वदन्ति
तज्ज्ञाः ॥ २ ॥ श्वेतत्वशीतत्वगुरुत्वकण्डूस्त्रेहोपदेहस्तिमितत्वलेपान् । उत्सेध-
संक्लेदचिरक्रियां च कफस्य कर्माणि वदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ३ ॥

अथ दोषत्रयशमनम् ।

स्निग्धोष्णस्थिरवृष्यबल्यलवणस्वाद्वस्त्वैलातपस्त्रानाभ्यञ्जनबस्तिमांसमदिरासंवाहनोद्वर्तनम् । स्नेहस्वेदनिरूहनस्यशयनस्थानोपनाहानादिकं पानाहारविहारभेषजमिदं वातं प्रशान्तिं नयेत् ॥ १ ॥ तिक्तस्वादुकषायशीतपवनच्छायानिशावीजनज्योत्स्नाभृगृहवारियञ्जलजस्त्रीगात्रसंस्पर्शनम् । सर्पिःक्षीरविरेकसेकरुधिरस्त्रावोपदेहादिकं पानाहारविहारभेषजमिदं पित्तं प्रशान्तिं नयेत् ॥ २ ॥ रूक्षक्षारकषायतिक्तकटुकव्यायामनिष्ठीवनं स्त्रीसेवाध्वनियुद्धजागरजलक्रीडापदाघातनम् । धूमस्तापशिरोविरेकवमनं स्वेदोपनाहादिकं पानाहारविहारभेषजमिदं श्लेष्माणमुग्रं जयेत् ॥ ३ ॥ अन्यच्च—कफं दुर्जनवत्तीक्ष्णैर्वातं स्नेहेन मित्रवत् । पित्तं जामातरमिव मधुरैः शीतलैर्जयेत् ॥ ४ ॥ कफप्रकोपे वमनं सनस्यं विरेचनं पित्तभवे विकारे । वातामये बस्तिविशोधनं च संसर्गजे च प्रविमिश्रमेतत् ॥ ५ ॥

अथाहर्निशौ दोषत्रयप्रवर्तनम् ।

श्लेष्मा प्रायस्तु पूर्वाह्णे प्रदोषे च प्रवर्तते । पित्तं प्रायस्तु मध्याह्णे क्षपामध्ये प्रवर्तते ॥ १ ॥ अपराह्णेऽनिलः प्रायो पररात्रे प्रवर्तते ॥

अथाऽऽमव्याधिलक्षणम् ।

आलस्यतन्द्राहृदयाविशुद्धिदोषप्रवृत्त्याकुलमूत्रभावैः । गुरुदरत्वारुचिसुस्ताभिरामान्वितं व्याधिमुदाहरन्ति ॥ १ ॥

अथ तत्प्रतीकारः ।

आमं जयेल्लङ्घनकोष्णपेयालध्वन्नरूक्षौदनतिक्तभूषैः । निरूहणैः स्वेदनपाचनैश्च संशोधनैरूर्ध्वमधस्तथा च ॥ १ ॥

अथ वयोविचारः ।

बाल्यमाषोडशाद्वर्षान्मध्यमाससतेस्ततः । वृद्धत्वमूर्ध्वं विज्ञेयं वयोमानमिति त्रिधा ॥ १ ॥

अथ प्रकृतिः ।

अष्टतिरदृढसौहृदः कृतघ्नः कृशपरुषो धमनीततः प्रलापी । द्रुतगतिरदृष्टोऽनवस्थितात्मा वियति च गच्छति संभ्रमेण सुप्तः ॥ १ ॥ अव्यवस्थितमतिश्रलदृष्टिर्मन्दरत्नधनसंचयमित्रः । किञ्चिदेव विलपत्यनिबद्धं मारुतप्रकृतिरेष मनुष्यः ॥ २ ॥ मेधावी निपुणमतिर्विगल्भवक्ता तेजस्वी समितिषु दुर्निवारवीर्यः । सुप्तः सन्कनकपलाशकर्णिकारान्संपश्येदपि च द्रुताशविद्युदुल्काः ॥ ३ ॥ न भयात्प्रणमेद्वनतेष्वमृदुः प्रणतेष्वपि सान्त्वनदानपरः । भवतीह सदा व्यथितास्यगतिः स भवेदिह पित्तमयप्रकृतिः ॥ ४ ॥ शुक्लाक्षः स्थिरकुटिला-

लिनीलकेशो लक्ष्मीवाञ्जलदमृदङ्गसिंहघोषः । सुप्तः सन्सकमलहंसचक्रवाकान्-
 संपश्येदपि च जलाशयान्मनोज्ञान् ॥ ५ ॥ रक्तान्तनेत्रः सुविभक्तगात्रः स्नि-
 ग्धच्छविः सत्त्वगुणोपपन्नः । क्लेशक्षमो मानयिता गुरुणां ज्ञेयो बलासप्रकृति-
 र्मनुष्यः ॥ ६ ॥ द्वयोर्वा तिसृणां वापि प्रकृतीनां तु लक्षणैः । ज्ञात्वा संसर्ग-
 जा वैद्यः प्रकृतीरभिदर्शयेत् ॥ ७ ॥ विपजातो यथा कीटो न विपेण विपद्यते ।
 तद्वत्प्रकृतयो मर्त्यं शक्नुवन्ति न बाधितुम् ॥ ८ ॥ इति प्रकृतयः ।

अथाऽऽरोग्यलक्षणम् ।

मङ्गलाचारसंपन्नः परिवारस्तथाऽऽतुरः । श्रद्धानोऽनुकूलश्च प्रभूतद्रव्यसं-
 ग्रहः ॥ १ ॥ सत्त्वलक्षणसंयुक्तो भक्तिर्वैद्यद्विजातिषु । चिकित्सायामनिर्वेदस्त-
 दारोग्यस्य लक्षणम् ॥ २ ॥

अथ परिभाषा ।

न मानेन विना युक्तिर्द्रव्याणां जायते क्वचित् । अतः प्रयोगकार्यार्थं मान-
 मत्रोच्यते मया ॥ १ ॥ मानं च द्विविधं प्रोक्तं कालिङ्गं मागधं तथा । का-
 लिङ्गान्मागधं श्रेष्ठमिति मानविदो विदुः ॥ २ ॥ त्रसरेणुर्बुधैः प्रोक्तस्त्रिशङ्गिः
 परमाणुभिः । त्रसरेणुस्तु पर्यायनाम्ना वंशी निगद्यते ॥ ३ ॥ जालान्तरगतैः
 सूर्यकरैर्वंशी विलोक्यते । षड्वंशीभिर्मरीचिः स्यात्ताभिः पङ्क्तिश्च राजिका ॥ ४ ॥
 तिसृभी राजिकाभिश्च सर्वपः प्रोच्यते बुधैः । यवोऽष्टसर्पपैः प्रोक्तो गुञ्जा
 स्यात्तच्चतुष्टयम् ॥ ५ ॥ पङ्क्तिस्तु रक्तिकाभिः स्यान्मापको हेमधानकौ । मा-
 पैश्चतुभिः शाणः स्याद्धरणः स निगद्यते ॥ ६ ॥ टङ्कः स एव कथितस्तद्वयं
 कोल उच्यते । क्षुद्रभो वटकश्चैव द्रङ्गणः स निगद्यते ॥ ७ ॥ कोलद्वयं तु
 कर्षः स्यात्स प्रोक्तः पाणिमानिका । अक्षः पिचुः पाणितलं किञ्चित्पाणिश्च
 तिन्दुकम् ॥ ८ ॥ बिडालपदकं चैव तथा षोडशिका मता । करमध्यं हंसपदं
 सुवर्णं कवलग्रहः ॥ ९ ॥ उदुम्बरं च पर्यायैः कर्ष एव निगद्यते । स्यात्कर्पा-
 भ्यामर्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा ॥ १० ॥ शुक्तिभ्यां च पलं ज्ञेयं मुष्टिरात्रं
 चतुर्थिका । प्रकुञ्चः षोडशी बिल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते ॥ ११ ॥ पलाभ्यां प्र-
 सृतिर्ज्ञेया प्रसृतश्च निगद्यते । प्रसृतिभ्यामञ्जलिः स्यात्कुडवोऽर्धशरावकः
 ॥ १२ ॥ अष्टमानं च विज्ञेयं कुडवाभ्यां च मानिका । शरावोऽष्टपलं तद्वज्जे-
 यमत्र विचक्षणैः ॥ १३ ॥ शरावाभ्यां भवेत्प्रस्थश्चतुप्रस्थैस्तथाऽऽढकम् ।
 भाजनं कंसपात्रं च चतुःषष्टिपलं च तत् ॥ १४ ॥ चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशो
 नल्वणोऽर्मणः । उन्मानश्च घटो राशिर्द्रोणपर्यायसंज्ञिताः ॥ १५ ॥ द्रोणाभ्यां
 शूर्पकुम्भौ च चतुःषष्टिशरावकः । शूर्पाभ्यां च भवेद्द्रोणी बाहो गोणी च सा
 स्मृता ॥ १६ ॥ द्रोणीचतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः । चतुःसहस्रप-
 लिका पणवत्यधिका च सा ॥ १७ ॥ पलानां द्विसहस्रं च भार एकः प्रकी-

र्तितः । तुला पलशतं ज्ञेया सर्वत्रैवं विनिश्चयः ॥ १८ ॥ मापटङ्काक्षबिल्वानि
कुडवः प्रस्थमाढकम् । राशिर्गोणी खारिकेति यथोत्तरचतुर्गुणाः ॥ १९ ॥ गु-
ञ्जादिमानमारभ्य यावत्स्यात्कुडवस्थितिः । द्वाद्रेःशुष्कद्रव्याणां तावन्मानं
समं मतम् ॥ २० ॥ प्रस्थादिमानमारभ्य द्विगुणं तद्द्वाद्रेयोः । मानं तथा
तुलायास्तु द्विगुणं न क्वचित्समृतम् ॥ २१ ॥ मृद्वृक्षवेणुलोहादेर्भाण्डं यच्चतुर-
ङ्गुलम् । विस्तीर्णं च तथोच्चं च तन्मानं कुडवं वदेत् ॥ २२ ॥ यदौषधं तु
प्रथमं यस्य योगस्य कथ्यते । तन्नाम्नैव स योगो हि कथ्यतेऽत्र विनिश्चयः
॥ २३ ॥ इति मागधपरिभाषा ॥

अथ कलिङ्गपरिभाषा ।

स्थितिर्नास्त्येव मात्रायाः कालमग्निं वयो बलम् । प्रकृतिं दोषदेशौ च
दृष्ट्वा मात्रां प्रकल्पयेत् ॥ १ ॥ यतो मन्दाग्नयो ह्रस्वा हीनसत्त्वा नराः कलौ ।
अतस्तु मात्रा तद्योग्या प्रोच्यते सुज्ञसंमता ॥ २ ॥ यवो द्वादशभिर्गौरसर्षपैः
प्रोच्यते बुधैः । यवद्वयेन गुञ्जा स्यान्निगुञ्जो बल उच्यते ॥ ३ ॥ माषो गु-
ञ्जाभिरष्टाभिः सप्तभिर्वा भवेत्कचित् । स्याच्चतुर्माषकैः शाणः स निष्कष्टक
उच्यते ॥ ४ ॥ गद्याणो माषकैः षड्भिः कर्षः स्याद्दशमाषकः । चतुष्कषैः
पलं प्रोक्तं दशशाणमितं बुधैः ॥ चतुष्पलैश्च कुडवः प्रस्थाद्याः पूर्ववन्मताः
॥ ५ ॥ इति कलिङ्गपरिभाषा ॥

अथ धान्यादिफलकन्दशाकगुणाः ।

श्वेता रक्ताः स्थूलसूक्ष्मा ये चान्ये शालयः शुभाः । स्वादुपाकरसाः
स्निग्धा वृष्या बद्धाल्पवर्चसः ॥ १ ॥ कपायानुरसाः पथ्या लववो मूत्रला
हिमाः । षष्टिका व्रीहिषु श्रेष्ठा गौरश्चासितगौरतः ॥ २ ॥ रूक्षः शीतो गुरुः
स्वादुः सरो विद्धातकृद्यवः । संधानकारी मधुरो गोधूमः स्थैर्यकृत्सरः ॥ ३ ॥
गुग्गंधरस्त्रिदोषघ्नः स्वादुः पथ्यो रसायनः । मुद्गाढकीमसूरादि शिम्बी-
धान्यं विबन्धकृत् ॥ ४ ॥ कपायं स्वादु संग्राहि कटुपाकं हिमं लघु । मेदश्ले-
ष्मास्रपित्तेषु हितं लेपोपसेकयोः ॥ ५ ॥ मुद्गस्तु पथ्यः संशुद्धव्रणकण्ठाक्षि-
रोगिणाम् । वातानुलोमी कौलत्थो गुल्मतूनिप्रतूनिजित् ॥ ६ ॥ वरोऽत्र
मुद्गोऽल्पचलः कलायस्त्वतिवातलः । चणको वातलस्तद्वत्कुलत्थः कफवा-
तहृत् ॥ ७ ॥ वास्तुकं ग्रहणीकुष्ठत्रिदोषार्शोहरं सरम् । तद्रलघुदला चिल्ली
काचमाची च मेथिका ॥ ८ ॥ तन्दुलीयो हिमो रूक्षो विपपित्तास्रका-
सजित् । चाङ्गेरी कफवातास्रसंग्रहण्यतिसारजित् ॥ ९ ॥ हयं पटोलं क-

१ गोधूमशालितुवरीयवयवनालावार्तगिलंकमसूराश्चणकाः कुलित्थाः ॥

मुद्गाः प्रियंगुतिलकोद्रवकातसी च श्यामाकमाषचबला इति धान्यवर्गः ॥ १ ॥

२ जोषळे.

मिजित्स्वादु शीतं रुचिप्रदम् । पटोलपत्रं पित्तघ्नं नालं तस्य कफापहम् ॥ १० ॥ फलं त्रिदोषशमनं मूलं चास्य विरेचनम् । पित्तलं दीपनं भेदि वातघ्नं बृहतीद्वयम् ॥ ११ ॥ कारवेल्लं सतिक्तं स्याद्दीपनं कफजित्परम् । कर्कोटकं ज्वरश्वासददुःकुष्ठविपापहम् ॥ १२ ॥ वार्ताकं कफवातघ्नं किञ्चित्पित्तप्रकोपनम् । सरलं मूत्रलं प्रोक्तं बलकृद्बालमेव तत् ॥ १३ ॥ भेण्डी त्वम्लरसा सोष्णा ग्राहिका रुचिकारिका । बिम्बीफलं स्वादु शीतं स्तम्भनं लेखनं गुरु ॥ १४ ॥ पित्तास्रदाहशोफघ्नं वाताध्मानविबन्धकृत् । कूष्माण्डं बृंहणं शीतं गुरु पित्तास्रवातजित् ॥ १५ ॥ बालं पित्तापहं शीतं मध्यमं कफकारकम् । पक्वं नातिहिमं स्वादु सारकं दीपनं लघु ॥ १६ ॥ बस्तिशुद्धिकरं चेतोरोगदोषत्रयापहम् । मिष्टतुम्बीफलं वृष्यं कफपित्तहरं गुरु ॥ १७ ॥ कटुतुम्बी हिमा हृद्या पित्तास्रकफापहा । त्रिपुसं मूत्रलं शीतं रुक्षं पित्तास्रकृच्छ्रजित् ॥ १८ ॥ तत्पक्वमुष्णमम्लं स्यात्पित्तलं कफवातजित् । को-
शातकी लघुस्तिक्ता रुक्षाऽऽमाशयशोधिनी ॥ १९ ॥ शोफपाण्डूदरह्रीहकु-
ष्ठार्शःकफपित्तजित् । तत्पत्रं भेदनं शीतं लघु मेहविशोपजित् ॥ २० ॥ शै-
तपुष्पा कटुः स्निग्धा तिक्तोष्णा श्लेष्मवातहा । रुच्या बस्तिहिता नेत्र्या बद्ध-
विदक्रिमिशुक्रनुत् ॥ २१ ॥ चक्रवर्त्याभिधं शाकं गुणैर्वास्तुकवन्मतम् । सरं शीतं त्रिदोषघ्नं लघु दीपनपाचनम् ॥ २२ ॥ शाकं तु सर्षपोद्भूतं चक्षुर्ध-
दाहि रोचनम् । बद्धविट् बद्धमूत्रं गुरुष्णं च त्रिदोषकृत् ॥ २३ ॥ कौसुम्भं स्वादु रुक्षोष्णं कफजित्पित्तलं लघु । चणकं शाकमुद्दिष्टं दुर्जरं कफवातकृत् ॥ २४ ॥ शिमुस्तीक्ष्णो लघुर्ग्राही वह्निदः कफवातजित् । तीक्ष्णोष्णो विद्र-
धिप्रीहव्रणघ्नश्चाम्लपित्तजित् ॥ २५ ॥ ग्रन्थान्तरे—मधुशिशुः कटुस्तिक्तः शोफघ्नो दीपनः सरः । तत्पत्रं वातपित्तघ्नं चक्षुष्यं स्वादु शीतलम् ॥ २६ ॥ शिशुजं कुसुमं स्वादु कफपित्तहरं गुरु । सकपायं गुरु ग्राहि चक्षुष्यं क्रिमि-
नाशनम् ॥ २७ ॥ सौभाग्नफलं स्वादु कषायं कफपित्तजित् । शूलकुष्ठक्ष-
यश्वासगुल्मघ्नं दीपनं परम् ॥ २८ ॥ आर्द्रा कुस्तुस्वरी कुर्यात्स्वादुसौगन्ध्य-
हृद्यताः । शुष्का स्निग्धा स्वादुपाका कषाया कटुका लघुः ॥ २९ ॥ कदली-
कुसुमं तिक्तं कषायं ग्राहि दीपनम् । उष्णवीर्यं बलासघ्नं तद्रुणं चास्फुटं द-
लम् ॥ ३० ॥ आगस्त्यपुष्पं शिशिरं चतुर्थज्वरशान्तिकृत् । नक्तान्ध्यना-
शनं प्रोक्तं दीपनं श्लेष्मपित्तनुत् ॥ ३१ ॥ सतिक्तं कटुकं पाके कषायं वातलं मतम् । आगस्त्यशिम्बः सदृशो गुणैः पुष्पस्य दुर्जरः ॥ ३२ ॥ शतपत्री तरुण्युक्ता कर्णिका चारुकेसरा । सहाकुमारी गन्धाढ्या लाक्षापुष्पातिमञ्जुला ॥ ३३ ॥ शतपत्री हिमा हृद्या ग्राहिणी शुक्रला लघुः । दोषत्रयास्रजिद्वर्ण्य

तिक्ता कट्वी च पाचनी ॥ ३४ ॥ मूलकं बालकं रुच्यं वीर्योष्णं पाचनं लघु ।
महत्तदेव रूक्षोष्णं गुरु दोषत्रयप्रदम् ॥ ३५ ॥ सूरणो दीपनो रूक्षः कफा-
शः किमिजिल्लघुः । तद्बद्धन्यो विशेषेण कफघ्नो रक्तपित्तकृत् ॥ ३६ ॥ गर्जरं
मधुरं तीक्ष्णं तिक्तोष्णं दीपनं लघु । संग्राहि रक्तपित्ताशौग्रहणीकफवातजित्
॥ ३७ ॥ शीतलः कदलीकन्दो ग्राही रूक्षोऽस्रपित्तजित् । ईषत्कषायः क-
फकृद्वातलः प्रदरे हितः ॥ ३८ ॥ रूक्षाऽतिपित्तकृद्बुर्वी वातला गौरबा-
कुची । तिक्ता नोदरिणां पथ्या ग्रहण्यशौविकारनुत् ॥ ३९ ॥ क्षुपजं म-
रिचं रुच्यं दोषलं सर्वरोगकृत् । विशेषतः प्रमेहाशौविकारेषु न शस्यते ॥ ४० ॥
बृहन्मरीचं क्षुपजं ततोऽप्यल्पतरं गुणैः । क्षीरा कर्कटिका त्वन्वा राजक-
र्कटिका च सा ॥ ४१ ॥ सुदीर्घा राजिलफला बाणैः कुलककर्कटी । वालुकं
श्लेष्मलं स्वादु लघु भेदि च पित्तजित् ॥ ४२ ॥ मधुराम्लरसं पित्तरक्तजित्प-
क्वमुत्तमम् । अग्निदीप्तिकरं श्वेतं शाकूटममलं सरम् । दुर्नामकिमिमेहघ्नं क-
फपित्तहरं परम् ॥ ४३ ॥ दुर्नामहृच्छ्यामलशाकुटं तु मन्दाग्निविण्मूत्रवि-
बन्धहन्तृ । द्राक्षाबालफलं कटूष्णविशदं पित्तास्रदोषप्रदं मध्यं चाम्लरसं
रसान्तरगतं रुच्यातिवह्निप्रदम् । पक्वं चेन्मधुरं तथाऽऽम्लसहितं तृष्णास्रपि-
त्तापहं पक्वं शुष्कतमं श्रमार्तिशमनं संतर्पणं पुष्टिदम् ॥ ४४ ॥ द्राक्षा पक्का
सरा शीता चक्षुष्या बृंहणी गुरुः । हन्ति तृष्णाज्वरश्वासवांतिवातास्रकामलाः
॥ ४५ ॥ कृच्छ्रास्रपित्तसंमोहदाहशोषमदात्ययान् । आमा स्वल्पगुणा गुर्वी
सैवाम्ला रक्तपित्तजित् ॥ ४६ ॥ आम्रो ग्राही प्रमेहास्रकफपित्तव्रणाञ्जयेत् ।
तत्फलं बालमत्यम्लं रूक्षं दोषत्रयास्रकृत् ॥ ४७ ॥ बद्धास्थि तादृगेवोक्तं
वातहारि च पित्तलम् । पक्वं तु मधुरं वृष्यं स्निग्धं हृद्यं बलप्रदम् । गुरु वा-
तहरं रुच्यं वर्ण्यं शीतमपित्तलम् ॥ ४८ ॥ संतर्पणो यः सकलेन्द्रियाणां बल-
प्रदो वृष्यतमश्च हृद्यः । स्त्रीषु ग्रहर्षं प्रचुरं ददाति फलाधिराजः सहकार एव
॥ ४९ ॥ रसस्त्वस्य सरः स्निग्धो रोचनो बलवर्णकृत् । आम्रबीजं कषायं
स्याच्छर्द्यतीसारनाशकृत् ॥ ५० ॥ आम्रपुष्पमतीसारकफपित्तप्रमेहनुत् । अ-
सृग्दोषहरं शीतं रुचिकृद्वातनाशनम् ॥ ५१ ॥ आम्रस्य पल्लवं रुच्यं कफपि-
त्तविनाशनम् । पनसं शीतलं पक्वं स्निग्धं पित्तानिलापहम् ॥ ५२ ॥ बल्यं
शुक्रप्रदं हन्ति रक्तपित्तक्षतक्षयान् । आमं तदेव विष्टम्भि वातलं तुवरं गुरु
॥ ५३ ॥ ईषत्कषायं मधुरं तद्वीजं वातलं गुरु । तत्फलस्य विकारघ्नं रुच्यं
त्वग्दोषनाशनम् ॥ ५४ ॥ कदली योनिदोषाश्मरक्तपित्तहरा हिमा । तत्क-
न्दः शीतलो बल्यः केश्यः पित्तकफास्रजित् ॥ ५५ ॥ तत्फलं मधुरं शीतं
विष्टम्भि बलकृद्गुरु । स्निग्धं पित्तास्रहृद्वाहक्षतक्षयसमीरजित् ॥ ५६ ॥ बालं
फलं मधुरमम्लमथो कषायं पित्तापहं शिशिररुच्यमथापि नालम् । पुष्पं
तदप्यनुगुणं किमिहारि कन्दं पर्णं च शूलशमनं कदलीभवं स्यात् ॥ ५७ ॥

रम्भापक्वफलं कषायमधुरं बल्यं च शीतं तथा पित्तं चास्त्रविमर्दनं गुरुतरं
 पथ्यं न मन्दानले । सद्यः शुक्रविवर्धनं क्रिमिहरं तृष्णापहं कान्तिदं दीप्ताग्नौ
 सुखदं कफामयहरं संतर्पणं दुर्जरम् ॥ ५८ ॥ नारीकेलफलं शीतं दुर्जरं
 बस्तिशोधनम् । विष्टम्भि बृंहणं बल्यं वातपित्तास्रदाहजित् ॥ ५९ ॥ तस्या-
 म्भः शीतलं हृद्यं दीपनं शुक्रलं लघु । तत्पादपशिरोमज्जा शुक्रला वात-
 पित्तजित् ॥ ६० ॥ विशेषतः कोमलनारिकेलं निहन्ति पित्तज्वरपित्तदो-
 षान् । तदप्यजीर्णं गुरु पित्तकारि विदाहि विष्टम्भि मतं भिषग्भिः ॥ ६१ ॥
 खर्जूरिकाफलं शीतं स्वादु स्निग्धं क्षुधास्रजित् । बल्यं हन्ति मरुत्पित्तमद-
 मूर्छामदात्ययान् ॥ ६२ ॥ तस्मात्स्वल्पगुणं ज्ञेयमन्यत्खर्जूरिकाफलम् ।
 दाडिमं ग्राहि दोषघ्नं हृद्यं रोचनदीपनम् ॥ ६३ ॥ तद्वदामलकं पथ्यं मधु-
 राम्लरसं सरम् । बदरं लघु संग्राहि रुच्यमुष्णं समीरजित् ॥ ६४ ॥ कफपि-
 त्तकरं तद्वत्कोमलं गुरु संमतम् । सौवीरं बदरं शीतं भेदनं गुरु शुक्रलम्
 ॥ ६५ ॥ बृंहणं पित्तदाहास्रक्षयतृष्णानिलापहम् । जम्बूफलं ग्राहि रुक्षं क-
 फपित्तव्रणास्रजित् ॥ ६६ ॥ क्षुद्रजम्बूफलं तद्वद्विषेपाद्वातनाशनम् । ख-
 र्बुजं मूत्रलं बल्यं कोष्ठशुद्धिकरं गुरु ॥ ६७ ॥ स्निग्धं स्वादुतरं शीतं वृष्यं
 पित्तानिलापहम् । वाताममुष्णं सुस्निग्धं वातहृद्बलशुक्रकृत् ॥ ६८ ॥ अ-
 क्षोटं मधुरं बल्यं गुरूष्णं वातहृत्सरम् । सेव्यं समीरपित्तघ्नं बृंहणं कफकृद्गुरु
 ॥ ६९ ॥ रसे पाके च मधुरं शिशिरं रुचिशुक्रकृत् । शीताफलं तु मधुरं
 शीतं पित्तविनाशनम् ॥ ७० ॥ हृद्यं बलकरं स्वादु पुष्टिदं स्वल्पवातलम् ।
 रामाह्वयफलं तद्वदीपत्स्वादु च वातकृत् ॥ ७१ ॥ शृङ्गाटं मधुरं रुक्षं गुरु
 ग्राहि हिमं तथा । शुक्रानिलश्लेष्मकरं शुष्कमाद्रं विशेषतः ॥ ७२ ॥ विरेच-
 नफलः शाखी श्यामः करभवल्लभः । अर्कार्धः कटुकः पीलुः कषायो मधुरा-
 म्लकः ॥ ७३ ॥ रसः स्वादुश्च गुल्मार्शशमनो दीपनः परः । मधुरस्तु महा-
 पीलुर्वृष्यो विषविनाशनः । पित्तप्रशमनो रुच्यो ह्यामघ्नो दीपनः परः ॥ ७४ ॥
 सुस्वादु पाकरसयोगुरु शीतलं च श्लेष्मामवातकरमज्जिरमग्निशत्रु ॥ ७५ ॥
 आमं तु कैतकं रुच्यं कफपित्तकरं गुरु । अन्नप्ररोचकं हृद्यं श्रमक्लमनिबर्ह-
 णम् । पक्वं तु पित्तहृत्स्वादुरसमातपदोषनुत् । बीजपूरफलं रुच्यं रसेऽम्लं
 दीपनं लघु ॥ ७६ ॥ रक्तपित्तकरं ग्राहि जिह्वाहृच्छोधनं परम् । त्वक्तस्य
 तित्का गुर्व्युष्णा क्रिमिवातकफापहा ॥ ७७ ॥ तन्मांसं बृंहणं शीतं गुरु पि-
 त्तसमीरजित् । केसरो मधुरो ग्राही शूलगुल्मोदरापहः ॥ ७८ ॥ बीजमुष्णं
 क्रिमिश्लेष्मवातजिह्वर्भदं गुरु । तत्पुष्पं शीतलं ग्राहि रक्तपित्तहरं लघु ॥ ७९ ॥
 मधुकर्कटिका शीता रक्तपित्तहरा गुरुः । कालिङ्गं ग्राहि दृक्पित्तशुक्रह-
 र्छीतलं गुरु ॥ ८० ॥ नारङ्गमम्लमत्युष्णं रुच्यं वातहरं सरम् । कट्फलमपरं
 हृद्यं दुर्जरं वातनाशनम् ॥ ८१ ॥ जम्बीरमम्लं शूलघ्नं गुरूष्णं कफवात-

जित् । आस्यवैरस्यहृत्पीडावह्निमान्द्यकृमीञ्जयेत् ॥ ८२ ॥ अम्लवेतसमत्प-
म्लं भेदनं शतवेधि च । हृद्रोगशूलगुल्मघ्नं पित्तास्रकफदूषणम् ॥ ८३ ॥
साराम्लमम्लं वातघ्नं गुरु पित्तकफप्रदम् । कर्मरङ्गं हिमं ग्राहि स्वाद्वम्लं
कफपित्तजित् ॥ ८४ ॥ निम्बूकमम्लं वातघ्नं पाचनं दीपनं लघु । राजनि-
म्बूफलं स्वादु कफपित्तसमीरजित् ॥ ८५ ॥ मिष्टनिम्बूफलं पित्तवातहृद्गुरु
रोचनम् । अमृतद्विदाहपित्तास्रच्छर्दिक्षयगरापहम् ॥ ८६ ॥ आम्लिकाऽऽमा
गुरुवातहरा पित्तकफास्रजित् । पक्का तद्वत्सरा रुच्या वह्निवस्तिविशुद्धिकृत्
॥ ८७ ॥ शुष्का हृद्या श्रमभ्रान्तिवृष्णाकृमिहरा लघुः । तित्तिडीकं समी-
रघ्नमाममुष्णं परं गुरु ॥ ८८ ॥ तत्पक्वं लघु संग्राहि ग्रहणीकफवातजित् ।
कर्मर्दं गुरुष्णाम्लं रक्तपित्तकफप्रदम् ॥ ८९ ॥ तत्पक्वं मधुरं रुच्यं लघु
पित्तसमीरजित् । शुष्कं पक्वदप्यामं पक्वमप्यार्द्रमामवत् ॥ ९० ॥ कपि-
त्थमामं संग्राहि लघु दोषत्रयापहम् । पक्वं गुरु तृषाहिकाशमनं वातपित्त-
जित् ॥ ९१ ॥ स्वाद्वम्लं तुवरं कण्ठशोधनं ग्राहि दुर्जरम् । आम्रातमामं
वातघ्नं गुरुष्णं रुचिकृत्सरम् ॥ ९२ ॥ पक्वं स्वादु हिमं वृष्यं मरुत्पित्तक्षता-
स्रजित् । पूगं गुरु हिमं रुक्षं कषायं कफपित्तजित् ॥ ९३ ॥ मोहनं दीपनं
रुच्यमास्यवैरस्यनाशनम् । आर्द्रं तु गुर्वभिष्यन्दि वह्निदृष्टिकरं सरम् ॥ ९४ ॥
स्निग्धं त्रिदोषहृत्सर्वं तद्भेदांस्तद्वदादिशेत् । लशुनो बृंहणो वृष्यः स्निग्धोष्णः
पाचनः सरः ॥ ९५ ॥ भग्नसंधानकृत्केदयो गुरुः पित्तास्रबुद्धिदः । रसायनं
कफश्वासकासगुल्मज्वरारुचीः ॥ हन्ति शोफप्रमेहार्शः कोष्ठशूलानिलं कृमीन्
॥ ९६ ॥ तत्पत्रं मधुरं क्षारं नालो मधुरपिच्छिलः ॥ ९७ ॥ पलाण्डुस्तु
गुणैस्तुल्यः कफकृन्नातिपित्तलः । अनुष्णः केवलं वातं स्वादुपाकरसैर्जयेत्
॥ ९८ ॥ आर्द्रं पाचनदीपनं रुचिकरं वृष्यं कटूष्णं वरं स्वर्थं भेदहरं कफाम-
यहरं शोफापहं शूलजित् । जिह्वाकण्ठविशोधनं सलवणं पथ्यं सदा भोजने
निम्बूतोयविमिश्रितं रुचिकरं संदीपनं सारणम् ॥ ९९ ॥ कुष्ठे पाण्ड्वामये
कृच्छ्रे रक्तपित्ते व्रणे ज्वरे । दाहे निदाघे शरदि नैव पूजितमार्द्रकम् ॥ १०० ॥
शाकेषु सर्वेषु वसन्ति रोगाः सहेतवो देहविनाशनाय । तस्माद्बुधः शाकवि-
वर्जनं हि कुर्यात्तथाऽम्लेषु स एव दोषः ॥ १०१ ॥

अथ तमाखुगुणाः ।

धूमाख्यो धूमवृक्षश्च बृहत्पत्रश्च धूसरः । तमाखुर्गुच्छफलको धूमयन्त्रप्रका-
शकः ॥ १ ॥ बहुबीजो बहुफलः सूक्ष्मबीजस्तु दीर्घकः । दीर्घं पाटलवर्णं च
पुष्पं तस्य प्रकीर्तितम् ॥ २ ॥ तस्य पत्रं तु तीक्ष्णोष्णं कफवातहरं परम् ।
श्वासकासहरं चैव कोष्ठवातहरं तथा ॥ ३ ॥ वातानुलोमनकरं बस्तिशोधनमु-
त्तमम् । दन्तरुक्शमनं चैव क्रिमिकण्ड्वादिनाशनम् ॥ ४ ॥ मदपित्तभ्रमकरं

वमनं रेचनं स्मृतम् । दृष्टिमान्द्यकरं चैव तीक्ष्णशुक्रकरं तथा ॥ ५ ॥ तस्यैव धूमपानं तु विशेषाद्बुद्धि शुक्रहृत् । देशान्तरप्रभेदेन तीक्ष्णं चाऽऽर्तवपित्तलम् ॥ ६ ॥ वमनस्य प्रभावेण वृश्चिकादिविषं हरेत् । रेचनत्वाद्धरेद्वातं श्लेष्माणं च नियच्छति ॥ ७ ॥ इति धान्यादिफलकन्दशाकादिवर्गः ॥

अथ मांसगुणाः ।

मांसवर्गो द्विधा ज्ञेयो जाङ्गलानूपभेदतः । तत्र जाङ्गललक्षणं गुणाश्च—
मांसवर्गेऽत्र जङ्घाला बिलस्थाश्च गुहाशयाः ॥ १ ॥ तथा पर्णमृगा ज्ञेया वि-
ष्किरा प्रतुदा अपि । प्रसहा अथ च ग्राम्या अष्टौ जाङ्गलजातयः ॥ २ ॥
हरिणैकुरङ्गमृगादयो जङ्घालाः । गोधाशशभुजंगाखादयो बिलस्थाः । सिं-
हव्याघ्रवृकक्षादयो गुहाशयाः । वानरर्क्षमार्जारादयः पर्णमृगाः । वार्तिकलाव-
तित्तिरविकिरकपिञ्जलादयो विष्किराः । हारीतकपोतसारिकाखज्जरीटपिका-
दयः प्रतुदाः । काकोलूकगृध्रशशचिल्लचापादयः प्रसहाः । प्रसह्य आहत्य भ-
क्षणात् । छागमेघवृषाश्वाद्या ग्राम्याः प्रोक्ता महर्षिभिः ॥३॥ इत्यष्टौ जाङ्गलाः ।

अथानूपजातिलक्षणं तद्गुणाश्च ।

कूलेचराः प्लवाश्चापि कोशस्थाः पादिनस्तथा । मत्स्या एतेऽत्र विख्याताः
पञ्चधाऽनूपजातयः ॥ १ ॥ महिषा गण्डवाराहाश्चमरीवारणादयः । एते कूले-
चराः प्रोक्ता यस्मात्कूले चरन्त्यपाम् ॥ २ ॥ हंससारसबकवृहद्वकक्रौञ्चादयः
प्लवसंज्ञकाः । शुक्तिशङ्खशम्बूकादयः कोशस्थाः । कूर्मनक्रघण्टिकाशिशुमारक-
र्कटादयः पादिनः । रोहिताद्यास्तु ये जीवास्ते मत्स्याः परिकीर्तिताः ॥ ३ ॥
इत्यनूपजाः पञ्च ।

अथ जाङ्गलमांसगुणाः ।

एणमांसं हिमं रुच्यं ग्राहि दोषत्रयापहम् । पङ्कसं बलदं पथ्यं लघु रुक्षं
ज्वरास्त्रजित् ॥ १ ॥ इति हरिणः ॥ चित्राङ्गो वातुलः कश्चिन्मधुरो बलवर्धनः ।
तद्वच्छम्बरमांसं तु वृष्यं दोषत्रयापहम् ॥२॥ इति चितलसांबरा ॥ शशः शीतो
लघुः स्वादुर्ग्राही पथ्योऽग्निदीपनः । संनिपातज्वरश्चासरक्तपित्तकफापहः ॥ ३ ॥
इतिशशः ॥ गोधाऽनिलहरा बल्या वृष्या मेध्या च कीर्तिता । मूषको बद्धविष्मूत्रो
बल्यो वृष्योऽनिलापहः ॥ ४ ॥ सल्लकः श्वासकासास्त्रशोपदोषत्रयापहः । सेधा
तथैव विज्ञेया विशेषाद्वलवर्धिनी ॥५॥ इतिसारसल ॥ शृगालो बलदो वृष्यः
सर्ववातक्षयापहः । वानरः पवनश्वासमेदःपाण्डुकिमीज्येत् ॥ ६ ॥ इतिजं-
बूकवानरः ॥ वार्तिको मधुरः शीतो रुक्षश्च कफवातजित् । पारावतो गुरुः स्वादुः
कषायो रक्तपित्तहा ॥७॥ इतिवार्तिक पारावत ॥ चटकः शीतलः स्निग्धः स्वादुः
शुक्रकफप्रदः । संनिपातहरो वेश्मचटकः शुक्रलः परः ॥८॥ इतिचिमणि ॥ ला-
वा वह्निकराः स्निग्धा मधुरा ग्राहिणो हिमाः । पांशुलः श्लेष्मलस्तेषु वीर्योष्णो-

ऽनिलनाशनः ॥ ९ ॥ गौरो लघुतरो रूक्षो वह्निकारी त्रिदोषजित् । पौण्ड्रकः
पित्तकृत्किंचिल्लघुर्वातकफापहः ॥ १० ॥ दर्भरो रक्तपित्तघ्नो हृदामयहरो हिमः ।
इति लावा चतुर्विधः ॥ तित्तिरः कृष्णवर्णः स्यात्स तु गौरः कपिञ्जलः
॥ ११ ॥ तित्तिरो वर्णदो ग्राही हिक्कादोषत्रयापहः । श्वासकासज्वरहरस्त-
स्माद्गौरोऽधिको गुणैः ॥ १२ ॥ इतितित्तिर । तित्तिपा ॥ मयूरमांसं सुस्निग्धं वा-
तघ्नं शुक्रवर्धनम् । बल्यं मेधाकरं प्रोक्तं चक्षुरोगविनाशनम् ॥ १३ ॥ सेव्यं
मयूरजं मांसं हेमन्ते शिशिरे मधौ । न शरद्गीष्मयोः पथ्यं वर्षास्वपि हितं
न च ॥ १४ ॥ इतिमयूरः ॥ स्वादुः कपायश्च लघुः कपोतः कफपित्तहा । शु-
को बल्योऽतिवृष्यश्च वीर्यवृद्धिकरः परः ॥ इतिहोरावा ॥ १५ ॥ कुक्कुटो
बृंहणः स्निग्धो वीर्योष्णोऽनिलजिह्वरुः । चक्षुष्यः शुक्रकफकृद्बन्धो हृद्यः कफा-
न्तकः ॥ १६ ॥ पानीयकुक्कुटः स्निग्धो बृंहणः श्लेष्मलो गुरुः । इतिकुक्कुटः ॥ छा-
गमांसं गुरु स्निग्धं लघुपाकं त्रिदोषजित् ॥ १७ ॥ अदाहि बृंहणं नातिशीतं
पीनसनाशनम् । देहधातुसमानत्वादनभिष्यन्दि बृंहणम् ॥ १८ ॥ तत्रापि को-
मलच्छागमांसं पथ्यं त्रिदोषजित् । इति छागमांसं ॥ मेपमांसं गुरु स्निग्धं ब-
ल्यं पित्तकफप्रदम् ॥ मेदः पुष्ट्यामदं वृष्यं कफपित्तकरं गुरु ॥ १९ ॥ इतिमे-
ढामेढी । इति जाङ्गलमांसानि ॥

अथानूपमांसगुणाः ।

सौकरं पित्तलं स्वादु बल्यं वातापहं गुरु ॥ १ ॥ मधुरं सृष्टविष्मूत्रं वात-
पित्तास्रनाशनम् ॥ २ ॥

अथ मत्स्यादिजलजन्तवः ।

मोरिका वातहृद्बल्या बृंहणी मधुरा गुरुः । पित्तहृत्कफकृद्बुद्ध्या वृष्या दी-
प्ता कृशे हिता ॥ १ ॥ इतिमोरी ॥ शिलीन्ध्रः श्लेष्मलो बल्यो विपाके मधुरो
गुरुः । वातपित्तहरो हृद्य आमवातकरश्च सः ॥ २ ॥ इतिरसंगाः ॥ वाम्बम-
त्स्यो हरेद्वातपित्तं रुचिकरो लघुः । शकुली ग्राहिणी हृद्या मधुरा-
तुवरा स्मृता ॥ ३ ॥ इतिबोंविलविखणः । कविका मधुरा स्निग्धा
कषाया रुचिकारिणी । किंचित्पित्तकरी वातनाशिनी बलवर्धिनी ॥ ४ ॥
इतिकर्लि ॥ गरद्भी मधुरा तिक्ता तुवरा वातपित्तहृत् । कफघ्नी रुचिकृद्बुद्धिदिपनी
बलवीर्यकृत् ॥ ५ ॥ इतिसेवटे । मद्गुरो वातहृद्बुद्ध्यो बल्यः कफकरो लघुः । इ-
तिसुडदसा ॥ मत्स्यगर्भो भृशं वृष्यः स्निग्धः पुष्टिकरो गुरुः ॥ ६ ॥ इतिमत्स्य-
गर्भः ॥ दग्धमत्स्यो गुणैः श्रेष्ठः पुष्टिकृद्बलवर्धनः । इतिदग्धमत्स्यः ॥ महाश-
फरसंज्ञस्तु तिक्तः पित्तकफापहः ॥ ७ ॥ शिशिरो मधुरो रुच्यो वाते साधारणः
स्मृतः । शुद्रमत्स्याः स्वादुरसा दोषत्रयविनाशनाः ॥ ८ ॥ लघुपाका रुचिक-
राः सर्वदा ते हिता मताः । अतिसूक्ष्माः पुंस्त्वहारा रुच्याः कासानिलापहाः

॥ ९ ॥ नादेया बृंहणा मत्स्या गुरवोऽनिलनाशनाः । काप्या वृष्याः कफाष्टी-
लामूत्रकृच्छ्रविबन्धदाः ॥ १० ॥ ताडागा गुरवो वृष्याः शीतला बलमूत्र-
दाः । सरोजा मधुराः स्निग्धा बल्या वातनिबर्हणाः ॥ ११ ॥ सामुद्रा गु-
रवो नातिपित्तलाः पवनापहाः । तत्रापि लवणाम्भोजा ग्राहिणो दृष्टिनाशनाः
॥ १२ ॥ हृदोद्भवा बलकरास्ते तु स्वच्छजलोद्भवाः । हेमन्ते कूपजा मत्स्याः
शिशिरे सारसा हिताः ॥ १३ ॥ वसन्ते तु नदीजाता ग्रीष्मे हृदसमुद्भवाः ॥
तडागजाता वर्षासु तास्वपथ्या नदीभवाः ॥ १४ ॥ नैर्ऋराः शरदि श्रेष्ठा वि-
शेषोऽयमुदाहृतः ॥ इति मत्स्यगुणाः ।

अथ शङ्खगदिगुणाः ।

शङ्खो वराटकश्चैव शुक्तिशम्बूकभल्लाकाः । जीवाश्चैवंविधाः सर्वे कोशस्थाः
परिकीर्तिताः ॥ १ ॥ कोशस्था मधुराः स्निग्धाः पित्तवातहरा हिमाः । बृं-
हणाश्च तथा वृष्या वर्चस्याः कफवर्धनाः ॥ २ ॥ कर्कटो बृंहणो वृष्यः शीत-
लोऽसृग्गदापहः । कच्छपो बलदः स्निग्धो वातघ्नः पुंस्त्वकारकः ॥ ३ ॥

इत्यानूपमांसानि ।

अथ सिद्धान्नादिपाकगुणकथनम् ।

अथ भक्तम् — जले चतुर्दशगुणे तण्डुलानां चतुष्पलम् । विपचेत्त्रावये-
न्मण्डं स भक्तो मधुरो लघुः ॥ १ ॥ अत्युष्णं बलहृत्कं शीतं शुष्कं च दुर्जरम् ।
अतिक्लिन्नं ग्लानिकरं दुर्जरं तण्डुलान्वितम् ॥ २ ॥ अतिद्रवं तु यद्भक्तं श्वास-
कासाग्निपीनसैः । हरेद्वर्णबलं ज्ञेयं शकृद्वातनिरोधकृत् ॥ ३ ॥ इतिभक्तं । तक्र-
सिद्धं तु यद्भक्तं ग्रहण्यर्शःश्रमापहम् । वातघ्नं बलदं श्लेष्मपित्तरक्ताभिवर्धनम्
॥ ४ ॥ इतितक्रसिद्धभक्तं । शृष्टतण्डुलजं भक्तं रुचिकृत्कफजिलघु । वातपित्तहरं ग्रा-
हिज्वरयक्ष्मातिसारनुत् ॥ ५ ॥ इतिशृष्टतण्डुलभक्तं । यथोचिते जले धौतांस्तण्डुला-
न्विपचेत्सुधीः । मण्डं संस्त्राव्य सर्पिस्तु तत्र किञ्चिद्विनिक्षिपेत् ॥ ६ ॥ ज्वलन्तमेकम-
ङ्गारं तदुपर्यर्पयेदथ । घटिकानन्तरं दर्व्योपरिभागं विनिर्हरेत् ॥ ७ ॥ भक्तं विभक्त-
मेतत्तु राजयोग्यं मनोहरम् ॥ अथ यवागूः—यवागूः षड्गुणैस्तोयैः संसिद्धा
विरलद्रवा ॥ ८ ॥ यवागूर्ग्राहिणी तृष्णाज्वरघ्नी बस्तिशोधनी ॥ अथ विलेपी—
चतुर्गुणे तु संसिद्धा विलेपी घनसिक्थका ॥ ९ ॥ विलेपी दीपनी बल्या हृद्या
संग्राहिणी लघुः । व्रणाक्षिरोगिणां पथ्या तर्पणी तृड्ज्वरापहा ॥ १० ॥ आम-
शूलहरा स्वादुर्दीपनी रुचिपुष्टिकृत् । इति विलेपी ॥ अथ पेयाः—पेया सि-
क्थान्विता तोये चतुर्दशगुणे कृता ॥ ११ ॥ पेया कुक्षिगदक्लान्तिज्वरस्तम्भा-
तिसारजित् । रुच्याऽग्निकृलघुदोषमलस्वेदानुलोमनी ॥ १२ ॥ अथमण्डः—
मण्डश्चतुर्दशगुणे सिद्धस्तोये त्वसिक्थकः । मण्डो ग्राही लघुः शीतो दीपनो

धातुसाम्यकृत् ॥ १३ ॥ खोतोमार्दवकृत्पित्तज्वरश्लेष्मभ्रमापहः । वाद्यमण्डो
यवैर्भृष्टैर्लाजमण्डस्तु शालिभिः ॥ १४ ॥ वाद्यमण्डो लघुग्राही शूलदाह-
त्रिदोषनुत् । नवज्वरेऽपि पथ्योऽयं पटोलमगधान्वितः ॥ १५ ॥ लाजमण्डो
लघुग्राही हृद्यः पाचनदीपनः । अतीसारग्रहण्यशोरोचकोरुक्त्रिदोषनुत् ॥ १६ ॥

अथाष्टगुणमण्डः ।

तण्डुलैरर्धमुद्गांशैः किंचिद्भृष्टैः सुपाचितैः । हिङ्गुसिन्धूत्थधनिका तैलत्रिक-
टुसंस्कृतः ॥ १ ॥ ज्ञेयः सोऽष्टगुणो मण्डो ज्वरदोषत्रयापहः । रक्तक्षुद्रधनः
प्राणप्रदो बस्तिविशोधनः ॥ २ ॥

अथ साराणि ।

सारं भोजनसारं सारं सारङ्गलोचनाधरतः । पिब खलु वारं वारं नो चे-
न्मुधा भवति संसारः ॥ १ ॥ अम्लिकायाः पलं पक्वं प्रस्थे नीरे विनिक्षिपेत् ।
अर्धावशिष्टे पूते च मरीचार्धपलं तथा ॥ २ ॥ सैन्धवं जरणं हिङ्गु यथायोग्यं
प्रकल्पयेत् । श्लक्ष्णपिष्टकृतं सर्वं तस्मिंस्तोये विनिक्षिपेत् ॥ ३ ॥ कालशाकेन
संयोज्य चाऽऽर्द्रां कुस्तुम्बरीं भिषक् । पुनः पाकं विधायथ यथाकालं च से-
वयेत् ॥ ४ ॥ अम्लिकाफलसंभूतं सारं वातविनाशनम् । पित्तश्लेष्मकरं किं-
चित्सुरुच्यं वह्निबोधकम् ॥ ५ ॥

अथ यूषाः ।

वैदलयूषः—यूषः स्मृतो वैदलानामष्टादशगुणेऽम्भसि । यूषो बल्यो
लघुः पाके रुच्यः कण्ठकफापहः ॥ १ ॥ अथ मुद्रयूषः—मुद्रानामुत्तमो यूषो
दीपनः शीतलो लघुः । व्रणोर्ध्वजत्रुरुगदाह कफपित्तज्वरास्रजित् ॥ २ ॥ दा-
डिमामलकाभ्यां तु मुद्रयूषः सुसाधितः । पित्तवातहरः पथ्यो लघुरग्निप्रदः
सरः ॥ ३ ॥ अथ मुद्रामलकयूषः—मुद्रामलकयूषस्तु भेदनः कफपित्तजित् ।
तृड्दाहशमनः शीतो मूर्छाभ्रममदापहः ॥ ४ ॥ अथ कुलित्थयूषः—कुलि-
त्थयूषो गुल्मार्शः कफवाताश्मशर्कराः । तूनीप्रतूनीमेदांसि मेहं हन्त्यग्निकृत्सरः
॥ ५ ॥ अथ चणकयूषः—चणकैर्विहितो यूषोऽनुष्णस्तुवरको लघुः । रक्तपित्तप्र-
तिश्याय कासपित्तकफापहः ॥ ६ ॥ अथ मकुष्ठयूषः—मकुष्ठयूषः संग्राही पित्त-
श्लेष्मज्वरापहः । लघुः संतर्पणः पथ्यो हृद्यः पीनसकासजित् ॥ ७ ॥ अथ मसू-
रयूषः—मसूरयूषः संग्राही बृंहि स्वादुः प्रमेहजित् । तथा कषायो मधुरश्च यू-
षो विशोषणो वातहृदाढकीनाम् । पित्तापहः श्लेष्महरो ज्वराणां कृमीन्निहन्त्या-
द्भुददारणं च ॥ ८ ॥ इति यूषाः ।

अथागस्तिसारः ।

अगस्तिसारः सुस्वादुस्तिको वायुकफप्रणुत् । पाण्डुशोफारुचिप्लीह गुल्मशूल-
गदापहः ॥ १ ॥ इति अगस्तिसारः ।

अथ सूपाः ।

मुद्गसूपो लघुग्राही कफपित्तहरो हिमः । स्वादुर्नेत्र्योऽनिलहरः कुलमाषाः शुक्रवर्धनाः ॥ १ ॥ माषसूपश्च कुलमाषस्निग्धो वृष्योऽनिलापहः । उष्णः संतर्पणो बल्यः सुस्वादुरुचिकारकः ॥ २ ॥ आढकीसूप उद्दिष्टः श्लेष्मपित्तहरो हिमः । किञ्चित्कपायो रुचिकृत्साज्यो दोषत्रयप्रणुत् ॥ ३ ॥ चाणकः सूप आख्यातो रोचनः पाचनः परः । बलासपित्तनुद्बल्यो रक्तजिन्नातिवातलः ॥ ४ ॥ मकुष्ठसूपोऽल्पबलः पाचनो दीपनो लघुः । चक्षुष्यो बृंहणो वृष्यः पित्तश्लेष्मास्ररोगनुत् ॥ ५ ॥ मसूरसूपः संग्राही शीतलो मधुरो लघुः । कफपित्तास्रजिद्वर्ण्यो विषमज्वरनाशनः ॥ ६ ॥ राजमाषभवः सूपः स्वादुरूक्षः कपायकः । ग्राही गुरुर्वातकरः स्तन्यकृदुचिकारकः ॥ ७ ॥ निष्पावसूपः पित्तास्र मूत्रस्तन्यानिलप्रदः । विदाबुष्णो गुरुः शोफ कफकृच्छुक्रलः सरः ॥ ८ ॥ कुलत्थसूपो वातघ्नः कटुः पाके कपायकः । कफाविरोधी पित्तास्रकरोष्णः श्वासकासनुत् ॥ ९ ॥ इति सूपाः ।

अथ पर्पटाः ।

पटुजीरकबाह्लीकस्वर्जिकामरिचान्विताः । अरोचकजिगीषूणां पर्पटाः पुरतो भटाः ॥ १ ॥ माषजाः पर्पटा बल्या रोचनाः पाचनाः सराः । गुरवो रक्तपित्ताग्नि कफदा बहुवर्चसः ॥ २ ॥ मुद्गजाः पर्पटाः पथ्या ज्वराक्षिश्रवणाभये । अरोचकच्छिदः स्निग्धा लघवो दोषनाशनाः ॥ ३ ॥ इति पर्पटाः ।

अथ मुद्गतण्डुलकृशरा ।

मुद्गतण्डुलजा ज्ञेया कृशराऽल्पबला लघुः । भक्ततो दुर्जरा बल्या पुष्टिकृत्तर्पणी हिमा ॥ १ ॥ इति मुद्गतण्डुलकृशरा ॥ तण्डुलैर्मौक्तिकाकारैः कण्डितैर्न च खण्डितैः । चतुर्थभागैर्माषस्य वैदलैः परिमिश्रितैः ॥ २ ॥ यथोचिताम्बुसंसिद्धैः सहिङ्गुलवणाद्रकैः । सस्नेहा कामिनीवेयं कृशरा शिशिरे हिता ॥ ३ ॥ कृशरा दुर्जरा बल्या गुर्वी वातविनाशिनी । बलपुष्टिमलश्लेष्मपित्तेतःप्रदा सरा ॥ ४ ॥ इति माषतण्डुलकृशरा ।

अथ पायसम् ।

अर्धावशिष्टे कथनाहुग्धेऽष्टांशांश्च तण्डुलान् । पचेन्नातिद्रवधनं परमान्नमिदं स्मृतम् ॥ १ ॥ पायसं दुर्जरं बल्यं धातुपुष्टिप्रदं गुरु । शुक्रलं मधुरं पाके पित्तघ्नं बृंहणं सरम् ॥ २ ॥ इति तण्डुलपायसम् ॥ गोधूमपायसं बल्यं मेदः कफकरं गुरु । शीतलं पित्तशमनं वातकृच्छुक्रवर्धनम् ॥ ३ ॥ इति गोधूमपायसम् ।

अथ पोलिका ।

गोधूमपोलिका बल्या कफला वातनुदुरुः । शुक्रला मधुरा पाके पित्तघ्नी
बृंहणी सरा ॥ १ ॥ गोधूमचूर्णं वस्त्रं शचणकक्षोदमिश्रितम् । यवानीहिङ्गुलवणैः
किञ्चिदाज्यैश्च मर्दितम् ॥ २ ॥ संमर्द्य चक्रिकास्तस्य कार्या निश्नास्तु मध्यतः ।
निर्धूमाङ्गारसंभृष्टा अदग्धास्ताम्रोचिषः ॥ ३ ॥ अङ्गारकर्करी बल्या बृंहिणी
शुक्रला लघुः । दीपनी कफहृद्गोगपीनसश्वासवातनुत् ॥ ४ ॥ इति पूरणपोलिका ।

मण्डको लघुरुष्णस्तु पथ्यो दोषत्रयापहः । रेतःपुष्टिप्रभादृष्टिप्रदः स्निग्धश्च
बृंहणः ॥ ५ ॥ (इति मांडा.)

अथाङ्गारिका ।

मर्दिता दृढपाणिभ्यां शर्कराघृतसंयुता । अङ्गारिका महावृष्या वातपित्तहरा
गुरुः ॥ १ ॥ (मालिदा)

अथ वटकाः ।

लवणमरिचहिङ्गुशृङ्गबेरैः समुपचितो वरमाषजः सुपकः । अतिसुरभिघृते-
ऽथवा सुतैले विशति मुखे वटकः सुपुण्यभाजात् ॥ १ ॥ पवनारुचिदन्यजयो-
द्भटकाः क्षपितार्दितकम्पमरुकटकाः । रसनातलरङ्गधरानटकाः कफपित्तविका-
रकरा वटकाः ॥ २ ॥ अथ काञ्जिकवटकः—बाह्लीकधूपयुतनिर्मलवारिपूर्णं कुम्भे
यथोचितपट्टमराजिकाद्यैः । संधूपिताः कतिविधानि दिनानि रुच्या वातघ्न-
काञ्जिकवटाः कफपित्तलाः स्युः ॥ ३ ॥ इति काञ्जिकवटकः । मुद्गवटी गुरु
रुच्या वातपित्तास्रदा मता । श्लेष्मला पुष्टिबलकृच्छुकला मृदुलाऽल्पतृद ॥ ४ ॥
इति मुद्गवटकः । वैदलैश्चाणकैः स्विन्नैः सगुडैः सूक्ष्मपेषितैः । किंवा सलवणा-
जाजीहिङ्गुभिः पूरणीकृतैः ॥ ५ ॥ एतैर्भृताश्च तलिताः कृतगोधूमपूरिकाः ।
पूरिका मधुरा बल्याः श्रमवातामयापहाः ॥ ६ ॥ शुक्रला बृंहणी श्वासपथ्या हृद्गो-
गनाशिनी । इयं सलवणा लघ्वी श्लेष्मवातविनाशिनी ॥ ७ ॥ इति वैदलपूरिका ।
सुशालिपिष्टं घनदुग्धमिश्रितं सशर्करं वस्त्रसुपूतमेतत् । घृते सुपकं पृथुलीकृतं
बुधैर्निगद्यते शालिजघेवरोऽयम् ॥ ८ ॥ इति शालिजघेवरः ॥ माषपिष्टयथवा
मुद्गपिष्टी सपट्टरामठा । जीरकार्द्रकसंयुक्ता पिण्डिता मुष्टिमात्रया ॥ ९ ॥ तृणा-
म्बुगर्भिते पात्रे सुस्विन्ना तलिता ततः । खादयेदिण्डरीं शुष्कां किंवाऽऽम्लाद्यैः
प्रलोडिताम् ॥ १० ॥ माषेण्डर्युदिता बल्या रोचिकाऽनिलजिह्वरुः । शुक्रला
बृंहिणी चाथ मुद्गजा स्वल्पजा लघुः ॥ ११ ॥ शालिपिष्टकृता भक्ष्या नाति-
बल्या विदाहिनः । अवृष्या गुरवश्चोष्णाः कफपित्तप्रकोपनाः ॥ १२ ॥ गोधू-
मविहिता भक्ष्या बल्याः पित्तानिलापहाः । वैदला वातला भक्ष्या गुरुवस्तुव-
रा हिमाः ॥ १३ ॥ माषपिष्टकृता भक्ष्या बल्याः पित्तकफप्रदाः । इति पिष्ट-
भक्ष्यगुणाः ॥

घृतपाचितभक्ष्यास्तु बल्याः पित्तानिलापहाः । तैलजा दक्समीरघ्ना उष्णाः
पित्तास्रदूषणाः ॥ १ ॥ दुग्धालोडितगोधूमशालिपिष्टादिनिर्मिताः । वातपि-
त्तहरा भक्ष्या हृद्याः शुक्रबलप्रदाः ॥ २ ॥ इति स्नेहपाचितभक्ष्यगुणाः ।

अथ पानकानि ।

द्राक्षाम्लिकापरुषादिजलं खण्डादिमिश्रितम् । मरीचार्द्रककर्पूरचातुर्जातादि-
संस्कृतम् ॥ १ ॥ पानकं द्विविधं तत्स्यादम्लानम्लविभेदतः । पानकं मूत्रलं
हृद्यं प्रीणनं तृद्भ्रमापहम् ॥ २ ॥ यथाद्रव्यगुणात्तत्तु गुरुलघ्वादि निर्दिशेत् ।
द्राक्षादिपानकं हृद्यं मूत्रलं तृद्भ्रमापहम् ॥ ३ ॥ पित्तवातकृमच्छर्दिदाहमोह-
मदप्रणुत् । परुषकाणां कोलानां हृद्यं विष्टम्भि पानकम् ॥ ४ ॥ अपक्वाभ्रर-
सोद्भूतं पानकं वातनाशनम् । कफपित्तकरं किञ्चित्प्रत्यहं यदि पीयते ॥ ५ ॥
पक्वाभ्रसंभवं तत्तु स्वादूष्णं गुरु पित्तकृत् । रुचिदं श्लेष्मलं बल्यं वर्ण्यं वृष्यं
तु वातनुत् ॥ ६ ॥ धान्यकल्कसिताजातं पानकं शशिवासितम् । शीतं परं
पित्तहरं मूत्रकृच्छ्रविनाशनम् ॥ ७ ॥ भागैकं निम्बुजं तोयं षड्भागं शर्करोद-
कम् । लवङ्गमरिचोन्मिश्रं पानकं पानकोत्तमम् ॥ ८ ॥ निम्बूफलभवं पान-
मत्यम्लं वातनाशनम् । वन्हिदीप्तिकरं रुच्यं समस्ताहारपाचकम् ॥ ९ ॥
इति पानकानि ।

अथ रागखाण्डवाः (मोरांवे) ।

आममात्रं त्वचा हीनं द्विस्त्रिर्वा खण्डितं ततः । भृष्टमाज्ये मनोगस्तं खण्ड-
पाकेऽथ युक्तितः ॥ १ ॥ सुपकं च समुत्तीर्य मरीचैलेन्दुवासितम् । स्थापितं
स्निग्धमृद्भाण्डे रागखाण्डवसंज्ञितम् ॥ २ ॥ पुष्टिदो बलदः पित्तवातास्रा-
चिनाशनः । स्निग्धो गुरुस्तर्पणश्च सुस्वादू रागखाण्डवः ॥ ३ ॥ इति रागखाण्ड-
वः ॥ सितारुचैकसिन्धूतैः सवृक्षाम्लपरुषकैः । जम्बूफलरसैर्युक्तो रागो राजि-
कया कृतः ॥ ४ ॥ खाण्डवा मधुराम्लादिरससंयोगसंभवाः । दीपना बृंहणा-
रुच्यास्तीक्ष्णा हृद्याः श्रमापहाः ॥ ५ ॥ इति नानाखाण्डवाः ।

अथ रसाला शिखरिणी । (श्रीखंड)

दधिवद्धं तुल्यसितं त्वर्धपयो गालितं शनकैः । मरिचैलाशशिसहितं भव-
ति रसालाभिधं लोके ॥ १ ॥ अन्यच्च—ससितं दधिमध्वाज्य मरिचैलादिस-
स्कृतम् । मथितं कान्तकामिन्या कर्पूरपरिवासितम् ॥ २ ॥ रसाला शिखरि-
ण्युक्ता मार्जारी मार्जिका बुधैः । रसाला शुक्रला बल्या रोचना वातपित्तजित्
॥ ३ ॥ स्निग्धा गुरुः प्रतिश्यायं विशेषेण विनाशयेत् ।

अथ भरित्थम् ।

लवणमरिचचूर्णेनाऽऽवृतं रामठाढ्यं दहनवदनपक्वं निम्बुतोयेन युक्तम् । हरति पवनसंघं श्लेष्महन्तृ प्रसिद्धं जठरभरणयोग्यं चारुभोज्यं भरित्थम् ॥ १ ॥ अथार्द्रकम्—धौतं खण्डितमार्द्रकं च सलिलैः क्षिप्तं सुतप्ते घृते सिन्धूत्थं मरिचं सुजीरयुगलं चूर्णीकृतं प्रक्षिपेत् । चूर्णं भृष्टचणोद्भवं च वितुषं हिङ्गवाज्यधूमे दहेदित्थं दोषविहीनमार्द्रकवरं सुस्वादु संजायते ॥ इत्यार्द्रकम् ।

अथ पृथुकादयः ।

पृथुका गुरवो बल्याः श्लेष्मला वातनाशनाः । दुर्जराः शुक्ररुचिदा आम-
विष्टम्भकारिणः ॥ १ ॥ इति पृथुकाः । लाजा लघुतराः शीता बल्याः पित्तक-
फच्छिदः।वम्यतीसारदाहास्त्रमेदोमेहतृषापहाः॥२॥ इति लाजाः ॥ शिम्बीधान्यै-
रर्धपक्कैः सुभृष्टैर्होलका मताः । होलकाल्पानिला मेदः कफदाश्च स्वभावतः॥३॥
इति होलाः (हौला) ।

अथ वेसवारः ।

शुण्ठीमरीचपिप्पल्यो धान्यकाजाजिदाडिमम् । पिप्पलीमूलसंयुक्तो वेसवार
इति स्मृतः ॥ १ ॥ वेसवारो गुरुः स्निग्धो बल्यो वातरूजापहः । पुष्टिदः
सर्वधातूनां विशेषान्मलनाशनः ॥ २ ॥ इति सिद्धान्नादिपाकगुणकथनम् ।

अथाऽऽयुर्विचारमाह ।

भिषगादौ परीक्षेत रुग्णस्याऽऽयुः प्रयत्नतः । सत्यायुषि तु विस्तीर्णे चिकि-
त्सा सफला भवेत् ॥ १ ॥ तत्र दीर्घायुषोलक्षणानि—सौम्या दृष्टिर्भवेद्यस्य
श्रोत्रं त्वक्च तथैव च । स्वादुगन्धं विजानाति स साध्यो नात्र संशयः ॥२॥
पाणी पादौ च यस्योष्णौ दाहः स्वल्पतरो भवेत् । जिह्वा सुकोमला यस्य
स रोगी न विनश्यति ॥ ३ ॥ स्वेदहीनो ज्वरो यस्य श्वासो नासिकयासरेत् ।
कण्ठश्च कफहीनः स्यात्स रोगी जीवति ध्रुवम् ॥ ४ ॥ यस्य निद्रा सुखेन
स्याच्छरीरं सोद्यमं भवेत् । इन्द्रियाणि प्रसन्नानि स रोगी नैव नश्यति ॥ ५ ॥

अथ स्वल्पायुषो लक्षणानि ।

अथ कालस्य विज्ञानं प्रवक्ष्यामि यथाश्रुतम् । जीवितं मरणं वापि येन
जानाति निश्चितम् ॥ १ ॥ कालग्रहस्य यस्येदं दंष्ट्रायाः संयुगे जगत् ।
अद्यैव वा प्रभाते वा सोऽवश्यं भक्षयिष्यति ॥ २ ॥ रसं रसायनं योग्यं
कालं ज्ञात्वा समाचरेत् । तस्याज्ञाने वृथा सर्वं तस्मात्तत्प्रोच्यते मया ॥ ३ ॥
शरीरशीलयोर्यस्य प्रकृतेर्विकृतिर्भवेत् । तदरिष्टं समासेन व्यासतश्च निबोध

मे ॥ ४ ॥ शृणोति विविधान्शब्दान्विपरीतं शृणोति वा । न शृणोति च
 योऽकस्मात्तं वदन्ति गतायुषम् ॥ ५ ॥ यत्तूष्णमिव गृह्णाति शीतमुष्णं च
 शीतवत् । उष्णगात्रोऽतिमात्रं यो भृशं शीतेन कम्पते ॥ ६ ॥ प्रहारं नैव
 जानाति यो मच्छेदन्यथाऽपि वा । पांशुनेवावकीर्णानि यश्च गात्राणि मन्यते
 ॥ ७ ॥ वर्णोऽन्यथा वा राज्यो वा यस्य गात्रे भवन्ति हि । स्नातानुलिप्तं यं
 चापि भजन्ते नीलमक्षिकाः ॥ ८ ॥ विपरीतेन गृह्णाति रसान्यश्चोपयोजि-
 तान् । यो वा रसान्न संवेत्ति तं गतासुं प्रचक्षते ॥ ९ ॥ सुगन्धं वेत्ति दुर्गन्धं
 दुर्गन्धं च सुगन्धवत् । गृह्णाति योऽन्यथा गन्धं शान्ते दीपे निरामयः ॥ १० ॥
 रात्रौ सूर्यं ज्वलन्तं वा दिवा वा चन्द्रवर्चसम् । दिवा ज्योतींषि यश्चापि ज्वलि-
 तानीव पश्यति ॥ ११ ॥ विद्युत्वतः सितान्मेघान्गगने निर्धने घनान् । वि-
 मानयान्प्रासादैर्यश्च संकुलमम्बरम् ॥ १२ ॥ यश्चानिलं मूर्तिमन्तमन्तरिक्षेऽव-
 लोकेते । धूमनीहारवासोभिरावृतां यश्च मेदिनीम् ॥ १३ ॥ प्रदीप्तमिव यो
 लोकं यो वा पुतमिवाम्भसा । भूमिमष्टापदाकारां लेखाभिर्यश्च पश्यति ॥ १४ ॥
 यो न पश्यति ऋक्षाणि यश्च देवीमरुन्धतीम् । ध्रुवमाकाशगङ्गां च तं वदन्ति
 गतायुषम् ॥ १५ ॥ आदर्शेऽम्बुनि घर्मे वा छायां यश्च न पश्यति । पश्यत्ये-
 काङ्गहीनां वा विकृतां वाऽन्यसत्त्वजाम् ॥ १६ ॥ ह्रीभियौ नश्यतो यस्य तेज-
 ओजः स्मृतिः प्रभा । अकस्माद्यं भजन्ते वा स परासुरसंशयम् ॥ १७ ॥ यस्या-
 धरोष्ठः पतितः क्षिप्तश्चोर्ध्वं तथोत्तरः । उभौ वा जाम्बवाभासौ दुर्लभं तस्य
 जीवितम् ॥ १८ ॥ आरक्ता दशना यस्य श्यावा वा स्युः पतन्ति वा । खञ्ज-
 नप्रतिमा वाऽपि तं गतायुषमादिशेत् ॥ १९ ॥ कृष्णा तथाऽनुलिप्ता च जि-
 ह्वा शूना च यस्य वै । कर्कशा वा भवेद्यस्य सोऽचिराद्विजहात्यसून् ॥ २० ॥
 कुटिला स्फुटिता चापि शुष्का वा यस्य नासिका । अवस्फूर्जति भग्ना वा स
 न जीवति मानवः ॥ २१ ॥ अवस्फूर्जति श्वासवेगेनोच्चैः शब्दं करोति ॥ संक्षि-
 प्ते विषमे स्तब्धे रूक्षे स्रस्ते च लोचने । स्यातां च प्रसृते यस्य स गतायुर्नरो
 ध्रुवम् ॥ २२ ॥ केशाः सीमन्तिनो यस्य संक्षिप्ते विनते भ्रुवौ । लुलन्ति वाऽक्षि-
 पक्षमाणि सोऽचिराद्याति मृत्यवे ॥ २३ ॥ नाऽऽहरत्यन्नमास्यस्थं न धारयति यः
 शिरः । एकाग्रदृष्टिर्भूदात्मा, सद्यः प्राणान्स मुञ्चति ॥ २४ ॥ उत्थाप्यमानो बहु-
 शः संमोहं योऽधिगच्छति । बलवान्दुर्बलोवाऽपि तं पक्वं भिषगादिशेत् ॥ २५ ॥
 निद्रा निरन्तरं यस्य यो जागर्ति च सर्वदा । मुखेद्वा वक्तुकामश्च प्रत्याख्येयः
 स जानता ॥ २६ ॥ उत्तरोष्ठं च यो लिह्यात्फूत्कारांश्च करोति यः । प्रेतैर्वा भाषते
 सोऽयं प्रेतरूपं तमादिशेत् ॥ २७ ॥ खेभ्यः सरोमकूपेभ्यो यस्य रक्तं प्रवर्तते ।
 पुरुषस्याविषार्तस्य स सद्यो जीवितं त्यजेत् ॥ २८ ॥ सम्यक्चिकित्स्यमानस्य वि-
 कारो योऽभिवर्धते । प्रक्षीणबलमांसस्य लक्षणं तद्गतायुषः ॥ २९ ॥ भूताः प्रे-
 ताः पिशाचाश्च रक्षांसि विविधानि च । मरणाभिमुखं जन्तुमुपसर्पन्ति नित्य-

शः ॥ ३० ॥ तानि भेषजवीर्याणि प्रतिघ्नन्ति जिघांसया । तस्मान्मोघाः क्रियाः
सर्वा भवन्त्येव गतायुषाम् ॥ ३१ ॥ जलजा नवलक्षास्तु दशलक्षास्तु पक्षिणः ।
रुद्रलक्षास्तु किम्याद्याः स्थावराणां च विंशतिः ॥ ३२ ॥ त्रिंशलक्षं गवादीनां
चतुर्लक्षास्तु मानवाः । शतायुः पुरुषश्चैव वृक्षाणां तु सहस्रकम् ॥ ३३ ॥ द्वात्रिंशच्च
तुरंगाणां शतं कुञ्जरासिंहयोः । व्याघ्राणां च चतुःषष्टिः सहस्रं फणिकाकयोः ३४ ॥
जम्बुकानां षोडशाब्दं शुनां द्वादशवत्सरम् । चतुर्विंशतिरुक्तं गोमहिष्योः सू-
करस्य च ॥ ३५ ॥ अजानां द्वादश प्रोक्तं मत्स्यानामयुतं तथा । कुक्कुटा नव व-
र्षाणि मृगाणां विंशतिर्भवेत् ॥ ३६ ॥ पक्षिणां दश वर्षाणि खराणां द्वादशद्वय-
म् । चतुर्विंशतिरुष्ट्राणां रासभानां तथैव च ॥ ३७ ॥ इत्यायुर्विचारः ।

अथ नित्यप्रवृत्तिप्रकारमाह ।

दिनचर्यां निशाचर्यामृतचर्यां यथोदिताम् । पुरुषः संव्यवहरन्सदा तिष्ठति
नान्यथा ॥ १ ॥ समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः । प्रसन्नात्मेन्द्रियम-
नाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥ २ ॥ ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत स्वस्थो रक्षार्थमायुषः ।
तत्र सर्वाघशान्त्यर्थं स्परेच्च मधुसूदनम् ॥ ३ ॥ दध्याज्यादर्शसिद्धार्थंबिल्वगो-
रोचनस्रजाम् । दर्शनं स्पर्शनं कार्यं प्रबुद्धेन शुभावहम् ॥ ४ ॥ स्वमाननं घृ-
ते पश्येद्यदीच्छेच्चिरजीवितम् । आयुष्यमुपसि प्रोक्तं मलादीनां विसर्जनम् ।
तदन्त्रकूजनाध्मानोदरगौरववारणम् ॥ ५ ॥ आटोपशूलौ परिकर्तिका च सङ्गः
पुरीषस्य तथोर्ध्ववातः । पुरीषमास्यादथवा निरेति पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य
॥ ६ ॥ वातमूत्रपुरीषाणां सङ्गोऽध्मानं क्लमो रुजा । जठरे वातजाश्चान्ये रोगाः
स्युर्वातनिग्रहात् ॥ ७ ॥ बस्तिमेहनयोः शूलं मूत्रकृच्छ्रं शिरोरुजा । विनामो
वंक्षणानाहः स्याल्लिङ्गं मूत्रनिग्रहे ॥ ८ ॥ न वेगितोऽन्यकार्यः स्यान्न वेगानीरयेद्व-
लात् । कामशोकभयक्रोधान्मनोवेगान्विधारयेत् ॥ ९ ॥ गुदादिमलमार्गाणां
शौचं कान्तिबलप्रदम् । पावित्र्यकरमायुष्यमलक्ष्मीकलिपापहृत् ॥ १० ॥ प्र-
क्षालनं हि पाण्योश्च पादयोः शुद्धिकारणम् । मलश्रमहरं वृष्यं चक्षुष्यं राक्ष-
सापहम् ॥ ११ ॥

दंतधावनप्रकारः—अर्कन्यग्रोधखदिरकरञ्जककुभादिकम् । प्रागुदङ्मुख-
मासीनो निश्चलो मौनवानपि ॥ १२ ॥ मधुको मधुरे श्रेष्ठः करञ्जः कटुके
तथा । निम्बस्तु तिक्तके श्रेष्ठः कषाये खदिरस्तथा ॥ १३ ॥ समयं तु समालोक्य दोषं
च प्रकृतिं तथा । यथोचितं रसैर्वीर्यैर्युक्तं द्रव्ये प्रयोजयेत् ॥ १४ ॥ तेनाऽऽसरसवैर-
स्यगन्धजिह्वास्यजा गदाः । रुचिवैशद्यलघुता न भवन्ति भवन्ति च ॥ १५ ॥ अर्के
वीर्यं वटे दीप्तिः करञ्जे विजयो भवेत् । प्लक्षे चैवार्थसंपत्तिर्बदर्यां मधुरो ध्वनिः ॥ १६ ॥
खदिरे मुखसौगन्ध्यं बिल्वे तु विपुलं धनम् । उदुम्बरे तु वाक्सिद्धिस्त्वाग्रे
त्वारोग्यमेव च ॥ १७ ॥ कदम्बे च घृतिर्मेघा चम्पके दृढवाक्श्रुतिः । शिरीषे
कीर्तिसौभाग्यमायुरारोग्यमेव च ॥ १८ ॥ अपामार्गे घृतिर्मेघा प्रज्ञाशक्तिस्तथा

ध्वनिः । दाडिम्यां सुन्दराकारः ककुभे कुटजे तथा ॥ १९ ॥ जातीतगरमन्दारैर्दुः-
स्वप्नश्च विनश्यति । भक्षयेदन्तधवनं द्वादशाङ्गुलमायतम् ॥ २० ॥ कनिष्ठिकाव-
त्स्थूलं च मृद्वग्रन्थि तथाऽव्रणम् । एकैकं वर्षयेदन्तं मृदुना कूर्चकेण तु
॥ २१ ॥ दन्तशोधनचूर्णेन दन्तमांसान्यबाधयन् । क्षौद्रत्रिकटुकाक्तेन तैलसि-
न्धुभवेन वा ॥ २२ ॥ चूर्णेन तेजोवत्याश्च दन्तान्नित्यं विशोधयेत् । शिरोरुजा-
तैस्तृषितः श्रान्तो पानक्लृमान्वितः ॥ २३ ॥ अर्दिती कर्णशूली च नेत्ररोगी
नवज्वरी । वर्जयेदन्तकाष्ठं तु हृदामययुतोऽपि च ॥ २४ ॥ न खादेद्वलता-
ल्वोष्ठजिह्वादन्तगदेषु तत् । मुखस्य पाके शोथे च इवासकासवमीषु च ॥ २५ ॥
दुर्बलोऽजीर्णभुक्तश्च हिकामूर्छामदान्वितः । जिह्वानिलैर्लेखनं हैमं राजतं ताम्रजं
तथा ॥ २६ ॥ पाटितं मृदु तत्काष्ठं मृदुपत्रमयं तथा । दशाङ्गुलं मृदु स्निग्धं
तेन जिह्वां लिखेत्सुखम् ॥ २७ ॥ तेनाऽऽस्यमलवैरस्यगन्धा जिह्वास्यदन्तजाः ।
नश्यन्ति रुचिवैशद्यं लघुता च भवन्ति हि ॥ २८ ॥ गण्डूषमथ कुर्वीत शीते-
न पयसा मुहुः । कफतृष्णामलहरं सुखान्तःशुद्धिकारणम् ॥ २९ ॥ सुखोष्णो-
दकगण्डूषः कफारुचिमलापहः । दन्तजाड्यहरश्चापि मुखलाघवकारकः ॥ ३० ॥
विषमूर्छामदार्तानां शोषिणां रक्तपित्तिनाम् । कुपिताक्षिमलक्षीणरूक्षाणां स न
शस्यते ॥ ३१ ॥ मुखप्रक्षालनं शीतपयसा रक्तपित्तजित् । मुखस्य पिडकाशो-
पनीलिकाव्यङ्गनाशनम् ॥ ३२ ॥ कुर्याद्वाऽपि कटुष्णेन पयसाऽऽस्यविशोधन-
म् । कफवातहरं स्निग्धं मुखशोषविनाशनम् ॥ ३३ ॥

नस्यादिविधिः—कटुतैलादि नस्यार्थं नित्याभ्यासेन योजयेत् । प्रातः श्लेष्मणि
मध्याह्ने पित्ते सायं समीरणे ॥ ३४ ॥ सुगन्धवदनाः स्निग्धनिःस्वना विमलेन्द्रियाः ।
निर्वलीपलितव्यङ्गा भवेयुर्नस्यशीलिनः ॥ ३५ ॥ सौवीरमज्जनं नित्यं पथ्यमक्षोस्त-
तो भजेत् । लोचने तेन भवतः सुस्निग्धे घनपक्ष्मणी ॥ ३६ ॥ वक्रे त्रिवेणीविमले-
मनोऽंशे सूक्ष्मदर्शने । चक्षुस्तेजोमयं तस्य विशेषाच्छ्लेष्मतो भयम् ॥ ३७ ॥ स्रोतो-
ज्जनमतः श्रेष्ठं विशुद्धं सिन्धुसंभवम् । दृष्टेः कण्डूमलहरं दाहक्केदरुजापहम्
॥ ३८ ॥ अक्ष्णो रूपावहं चैव सहते मारुतातपौ । नेत्ररोगा न जायन्ते तस्मा-
दज्जनमाचरेत् ॥ ३९ ॥ रात्रौ जागरितः श्रान्तश्छर्दितो भुक्तवांस्तथा । ज्वरा-
तुरः शिरःस्नातो नाक्ष्णोरज्जनमाचरेत् ॥ ४० ॥ पञ्चरात्रान्नखश्मश्रुकेशरोमाणि
कर्तयेत् । केशश्मश्रुनखादीनां कर्तव्यं संप्रसाधनम् ॥ ४१ ॥ पौष्टिकं धन्य-
मायुष्यं शौचकान्तिकरं परम् । उत्पाटयेत्तु रोमाणि नासायां न कदाचन
॥ ४२ ॥ तदुत्पाटनतो दृष्टेर्दौर्बल्यं त्वरया भवेत् । केशपाशे प्रकुर्वीत प्रसाधन्या
प्रसाधनम् ॥ ४३ ॥ केशप्रसाधनं केश्यं रजोजन्तुमलापहम् । आदर्शालोकनं प्रोक्तं
माङ्गल्यं कान्तिकारकम् ॥ ४४ ॥ पौष्टिकं बल्यमायुष्यं पापालक्ष्मीविनाशनम् ।

व्यायामः—लाघवं कर्मसामर्थ्यं विभक्तघनगात्रता ॥ ४५ ॥ दोष-
क्षयोऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते । व्यायामदृढगात्रस्य व्याधिर्नास्ति

कदाचन ॥ ४६ ॥ विरुद्धं वाऽविपक्वं वा भुक्तं शीघ्रं विपच्यते । भवन्ति शीघ्रं नैतस्य बलीशितिलतादयः ॥ ४७ ॥ न चैनं सहसाऽऽक्रम्य जरा समधिरोहति । न चास्ति सदृशं तेन किञ्चित्स्थौल्यापकर्षणम् ॥ ४८ ॥ स सदा गुणमाधत्ते बलिनां स्निग्धभोजिनाम् । वसन्ते शीतसमये सुतरां स हितो मतः ॥ ४९ ॥ अन्यदाऽपि च कर्तव्यो बलार्धेन यथाबलम् । हृदयस्थो यदा वायुर्वक्त्रं शीघ्रं प्रपद्यते ॥ ५० ॥ मुखं च शोषं लभते तद्वलार्धस्य लक्षणम् । किंवा ललाटे नासायां गात्रसंधिषु कक्षयोः ॥ ५१ ॥ यदा संजायते स्वेदो बलार्धं तु तदाऽऽदिशेत् । भुक्तवान्कृतसंभोगः कासी श्वासी कृशः क्षयी ॥ ५२ ॥ रक्तपित्ती क्षती शोषी न तं कुर्यात्कदाचन । अतिव्यायामतः कासो ज्वरश्छर्दिर्भ्रमः क्लमः ॥ ५३ ॥ तृष्णा क्षयः प्रतमको रक्तपित्तं च जायते ।

अभ्यंगादिविधिः—अभ्यङ्गमाचरेन्नित्यं सर्वेष्वङ्गेषु पुष्टिदम् ॥ ५४ ॥ शिरःश्रवणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत् । सार्षपं गन्धतैलं च यत्तैलं पुष्पवासितम् ॥ ५५ ॥ अन्यद्रव्ययुतं तैलं न दुष्यति कदाचन । अभ्यङ्गो वातकफहृच्छ्रमशान्तिबलं सुखम् ॥ ५६ ॥ निद्रावर्णमृदुत्वायुः कुरुते दृष्टिपुष्टिकृत् । अभ्यङ्गः शीलितो मूर्ध्नि सकलेन्द्रियतर्पणः ॥ ५७ ॥ दृष्टिपुष्टिकरो हन्ति शिरोभूमिगतान्नादान् । केशानां बहुतां दाढ्यं मृदुतां दीर्घतां तथा ॥ कृष्णतां कुरुते कुर्याच्छिरसः पूर्णतामपि ॥ ५८ ॥ न कर्णरोगा न मलं नच मन्याहनुग्रहः । नोच्चैःश्रुतिर्न बाधिर्यं स्यान्नित्यं कर्णपूरणात् ॥ ५९ ॥ रसाद्यैः पूरणं कर्णे भोजनात्प्राक्प्रशस्यते । तैलाद्यैः पूरणं कर्णे भास्करोऽस्तमुपागते ॥ ६० ॥ पादाभ्यङ्गस्तु सुस्थैर्यनिद्रादृष्टिप्रसादकृत् । पादसुप्तिभ्रमस्तम्भसंकोचस्फुटनप्रणुत् ॥ ६१ ॥ मूर्ध्नीऽभ्यङ्गात्कर्णयोः शीतमाहुः कर्णाभ्यङ्गात्पादयोरेवमेव । पादाभ्यङ्गो नेत्ररोगान्दहरेच्च नेत्राभ्यङ्गादन्तर्गोशश्च नश्येत् ॥ ६२ ॥ व्यायामक्षुण्णवपुषं पद्भ्यां संमर्दितं तथा । व्याधयो नोपसर्पन्ति वैनतेयमिवोरगाः ॥ ६३ ॥ रोमकूपशिराजालधमनीभिः कलेवरम् । तर्पयेद्वलमाधत्ते स्नेहो युक्तोऽवगाहने ॥ ६४ ॥ अङ्गिः संसिक्तमूलानां तरुणां पल्लवादयः । वर्धन्ते हि तथा वृणां स्नेहसंसिक्तातवः ॥ ६५ ॥ नवज्वरी ह्यजीर्णी च नाभ्यक्तव्यः कदाचन । तथा विरिक्तो वान्तश्च निरुद्धो यश्च मानवः ॥ ६६ ॥ पूर्वयोः कृच्छ्रता व्याधेरसाध्यत्वमथापि वा । शोषाणां बहवः प्रोक्ता वह्निसादादयो गदाः ॥ ६७ ॥ उद्धर्तनं कफहरं मेदोघ्नं शुक्रदं परम् । बल्यं शोणितकृत्कान्तित्वक्प्रसादमृदुत्वकृत् ॥ ६८ ॥ मुखलेपावृढं चक्षुः पीनो गण्डस्तथाऽऽसनम् । कान्तमव्यङ्गपिटकं भवेत्कमलसंनिभम् ॥ ६९ ॥

स्नानप्रकारः—दीपनं वृष्यमायुष्यं स्नानमोजोबलप्रदम् । कण्डूमलश्रमस्वेदतन्द्वावृद्धाहपापनुत् ॥ ७० ॥ बाह्यैश्च सेकैः शीताद्यैरूष्माऽन्तर्याति पीडितः । नरस्य स्नातमात्रस्य दीप्यते तेन पावकः ॥ ७१ ॥ प्रातः स्नानमलञ्च पापहरणं दुःस्वप्नविध्वंसनं शौचस्याऽऽयतनं मलापहरणं संवर्धनं तेजसाम् । रूपद्योतकरं

शरीरसुखदं कामाशिसंदीपनं स्त्रीणां मन्मथगाहनं श्रमहरं स्नाने दशैते गुणाः ॥७२॥ शीतेन पयसा स्नानं रक्तपित्तप्रशान्तिकृत् । तदेवोष्णेन तोयेन बल्यं वातकफापहम् ॥७३॥ उष्णाम्बुनाऽधःकायस्य परिषेको बलावहः । तेनैव चोत्तमाङ्गस्य बलहृत्केशचक्षुषाम् ॥७४॥ शिरःस्नानमचक्षुष्यमत्युष्णेनाऽम्बुना सदा । वातश्लेष्मप्रकोपे तु हितं तच्च प्रकीर्तितम् ॥७५॥ यः सदाऽऽमलैकः स्नानं करोति स विनिश्चितम् । वलीपलितनिर्मुक्तो जीवेद्वर्षशतं नरः ॥ ७६ ॥ अशीतेनाम्भसा स्नानं पयःपानं युवस्त्रियः । एतद्धि मानवाः पथ्यं स्निग्धमल्पं च भोजनम् ॥ ७७ ॥ स्नानं ज्वरेऽतिसारे च नेत्रकर्णानिलातिष्ठु । आध्मानपीनसाजीर्णमुक्तवत्सु च गर्हितम् ॥७८॥ स्नानस्यानन्तरं सम्यग्वस्त्रेण तनुमार्जनम् । कान्तिप्रदं शरीरस्य कण्डूत्वग्दोषनाशनम् ॥७९॥

वस्त्रादिधारणम् । कौशेयं चित्रवस्त्रं च रक्तवस्त्रं तथैव च । वातश्लेष्महरं शीतकाले तत्तु विधारयेत् ॥ ८० ॥ मेध्यं सुशीतं पित्तघ्नं काषायं वस्त्रमुच्यते । तद्धारयेदुष्णकाले तच्चापि लघु शस्यते ॥ ८१ ॥ शुद्धं तु शुभदं वस्त्रं शीतातपनिवारणम् । न चोष्णं न च वा शीतं तच्च वर्षासु धारयेत् ॥ ८२ ॥ यशस्यं काम्यमायुष्यं श्रीदमानन्दवर्धनम् । त्वच्यं वशीकरं रुच्यं नवं निर्मलमम्बरम् ॥ ८३ ॥ कदाऽपि न जनैः सद्भिर्धर्म्यं मलिनमम्बरम् । तत्तु कण्डूक्रिमिकरं ग्लान्यलक्ष्मीकरं परम् ॥ ८४ ॥ कुङ्कुमं चन्दनं चापि कृष्णागुरुविमिश्रितम् । उष्णं वातकफध्वंसि शीतकाले तदिष्यते ॥ ८५ ॥ चन्दनं घनसारेण वालकेन च मिश्रितम् । सुगन्धि परमं शीतमुष्णकाले प्रशस्यते ॥ ८६ ॥ चन्दनं घुसृणोपेतं मृगनाभिसमायुतम् । न चोष्णं न च शीतं वा वर्षाकाले तदिष्यते ॥ ८७ ॥ अनुलेपस्तृषामूर्छादुर्गन्धश्रमदाहजित् । सौभाग्यतेजस्त्वर्ग्वर्णकान्त्योजोबलवर्धनः । स्नानानर्हस्य लोकस्य त्वनुलेपोऽपि नो हितः ॥ ८८ ॥ सुगन्धिपुष्पपत्राणां धारणं कान्तिकारणम् । पापरक्षोग्रहरं कामौजःश्रीविवर्धनम् ॥ ८९ ॥ भूषणैर्भूषयेदङ्गं यथायोग्यं विधानतः । शुचि सौभाग्यसंतोषदायकं काञ्चनं स्मृतम् ॥ ९० ॥ ग्रहदुष्टिहरं पुष्टिकरं दुःस्वप्ननाशनम् । पापदौर्भाग्यशमनं रत्नाभरणधारणम् ॥ ९१ ॥ माणिक्यं तरणेः सुनिर्मलमथो चन्द्रस्य मुक्ताफलं माहेयस्य च विद्रुमो निगदितः सौम्यस्य गारुत्मतम् । देवैज्यस्य च पुष्परागमसुराचार्यस्य वज्रं शनेर्नीलं निर्मलमन्ययोश्च गदिते गोमेदवैदूर्यके ॥ ९२ ॥ वासःस्नगादिरत्नानां धारणं प्रीतिवर्धनम् । रक्षोघ्नमर्थ्यमोजस्यं सौभाग्यकरमुत्तमम् ॥ ९३ ॥ सततं सिद्धमन्त्रस्य महौषध्यास्तथैव च । शोचनासर्षपादीनां मङ्गल्यानां च धारणम् ॥ ९४ ॥ आयुर्लक्ष्मीकरं रक्षोहरं मङ्गलदं शुभम् । हिंसादिभयविध्वंसि वशीकरणकारकम् ॥ ९५ ॥ देवगोविप्रवृद्धानां गुरुणां चैव पूजनम् । आयुष्यं वृद्धिदं पुण्यमलक्ष्मीकिलिषापहम् ॥ ९६ ॥ ततो भोजनवेलायां कुर्यान्मङ्गलदर्शनम् । तेषां प्रतिक्षणं

नित्यमायुर्धर्मविवर्धनम् ॥ ९७ ॥ लोकेऽस्मिन्मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौर्दुताशनः।
हिरण्यं सर्पिरादित्यः स्त्रियो राजा तथाऽष्टमः ॥ ९८ ॥ पादुकारोहणं कुर्या-
त्पूर्वं भोजनतः परम् । पादरोगहरं वृष्यं चक्षुष्यं चाऽऽयुषे हितम् ॥ ९९ ॥

स्वाभाविकवांछाः—शरीरे जायते नित्यं वाञ्छा नृणां चतुर्विधा। बुभुक्षा
च पिपासा च सुषुप्सा सुरतस्पृहा ॥ १०० ॥ भोजनेच्छाविधातात्स्यादङ्गम-
र्दोऽरुचिः श्रमः । तन्द्रा लोचनदौर्बल्यं धातुदाहो बलक्षयः ॥ १०१ ॥ वि-
घातेन पिपासायाः शोषः कण्ठास्ययोर्भवेत् । श्रवणस्यावरोधश्च रक्तशोषो हृदि
व्यथा ॥ १०२ ॥ निद्राविघाततो जृम्भा शिरोलोचनगौरवम् । अङ्गमर्दस्तथा
तन्द्रा स्यादन्नापाक एव च ॥ १०३ ॥ बुभुक्षितो न योऽश्नाति तस्याऽऽहारे-
न्धनक्षयात् । मन्दी भवति कायाग्निर्नाग्निर्वर्धेन्निरिन्धनः ॥ १०४ ॥ आहारं
पचति शिखी दोषानाहारवर्जितः पचति । दोषक्षये च धातूपचति च धातुक्ष-
ये प्राणान् ॥ १०५ ॥ आहारः प्रीणनः सद्यो बलकृद्देहधारणः । स्मृत्यायुःश-
क्तिवर्णैः सत्त्वशोभाविवर्धकः ॥ १०६ ॥ यथोक्तगुणसंपन्नमुपसेवेत भोजनम् ।
विचार्य देशकालादीन्कालयोरुभयोरपि ॥ १०७ ॥

भोजनस्य देशकालौ—सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं श्रुतिचोदितम्। नान्तरा
भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः ॥ १०८ ॥ याममध्ये न भोक्तव्यं यामयुग्मं
न लङ्घयेत् । याममध्ये रसोत्पत्तिर्यामयुग्माद्वलक्षयः ॥ १०९ ॥ क्षुत्संभवति पक्षे
रसदोषमलेषु च । काले वा यदि वाऽकाले सोऽन्नकाल उदाहृतः ॥ ११० ॥
उद्गारशुद्धिरुत्साहो वगोत्सर्गो यथोचितः । लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य
लक्षणम् ॥ १११ ॥ आहारं तु रहः कुर्यान्निर्हारमपि सर्वदा । उभाभ्यां
लक्ष्म्युपेतः स्यात्प्रकाशो हीयते श्रिया ॥ ११२ ॥ ज्वरितं ज्वरमुक्तं वा दिनान्ते
भोजयेत्लघु । श्लेष्मक्षये प्रवृद्धोष्मा बलवाननलस्तदा ॥ ११३ ॥ आहारनिर्हार-
विहारयोगाः सदैव सद्भिर्विजने विधेयाः । हीनदीनक्षुधार्तानां पापपाखण्डरो-
गिणाम् । कुक्कुटादिशुनां दृष्टिर्भोजने नैव शोभना ॥ ११४ ॥ पितृमातृसुहृद्द्वैद्यपा-
ककृद्धंसबर्हिणाम् । सारसस्य चकोरस्य भोजने दृष्टिरुत्तमा ॥ ११५ ॥

भोजनादिपात्रं—दोषहृद्दृष्टिदं पथ्यं हैमं भोजनभाजनम् । रौप्यं भवति च-
क्षुष्यं पित्तहृत्कफवातकृत् ॥ ११६ ॥ कांस्यं बुद्धिप्रदं रुच्यं रक्तपित्तप्रसादनम्। पैतलं
वातकृद्बलक्षमुष्णं किमिकफप्रणुत् ॥ ११७ ॥ आयसे कान्तपात्रे च भोजनं सिद्धिका-
रकम् । शोथपाण्डुरहरं बल्यं कामलापहमुत्तमम् ॥ ११८ ॥ शैलजे मृन्मये पात्रे
भोजनं श्रीनिवारणम् । दारुद्रवे विशेषेण रुचिदं श्लेष्मकृत्तथा ॥ ११९ ॥ पात्रं
पत्रमयं रुच्यं दीपनं विषपापनुत् । जलपात्रं तु ताम्रस्य तदभावे मृदो हितम्
॥ १२० ॥ पात्रं पवित्रं शीतं च घटितं स्फटिकेन यत् । काचेन रचितं तद्व-
त्तथा वैदूर्यसंभवम् ॥ १२१ ॥

भोजनक्रमः—भोजनाग्रे सदा पथ्यं लवणार्द्रकभक्षणम् । अग्निसेदीपकं रुच्यं जिह्वाकण्ठविशोधनम् ॥ १२२ ॥ अन्नं ब्रह्मा रसो विष्णुर्भोक्ता देवो महेश्वरः । इति संचिन्त्य यो भुङ्क्ते दृष्टिदोषो न बाधते ॥ १२३ ॥ अञ्जनीगर्भसंभूतं कुमारं ब्रह्मचारिणम् । दृष्टिदोषविनाशाय हनूमन्तं स्मराम्यहम् ॥ १२४ ॥ अश्लीयात्तन्मना भूत्वा पूर्वं तु मधुरं रसम् । मध्येऽम्ल-लवणौ पश्चात्कटुतिक्तकषायकान् ॥ १२५ ॥ फलान्यादौ समश्लीयाद्वाडिमादीनि बुद्धिमान् । विना मोचफलं तद्बद्धजनीया च कर्कटी ॥ १२६ ॥ मृणालविस-शालककन्देक्षुप्रभृतीन्यपि । पूर्वमेव हि भोज्यानि न तु भुक्त्वा कदाचन ॥ १२७ ॥ प्रियालजम्बूबदरीफलानि गाङ्गेरिकोदुम्बरतित्तिडीकम् । ताली-फलानागरनारिकेलसारं च भक्ष्यं तिलमिश्रमात्रम् । अङ्गोलरम्भाफलसाव-लानां फलानि वर्ज्यानि सदा प्रभाते ॥ १२८ ॥ गुरु पिष्टमयं द्रव्यं लङ्गुका न्पृथुकानपि । न जातु भुक्तवान्खादेन्मात्रां खादेद्भुक्षितः ॥ १२९ ॥ घृतपूर्वं समश्लीयात्कठिनं प्राक्ततो मृदु । अन्ते पुनर्द्रवाशी तु बलारोग्ये न मु-ञ्चति ॥ १३० ॥ यद्यत्स्वादुतरं तद्धि विदध्यादुत्तरोत्तरम् । भुक्त्वा यत्प्रार्थ्यते भूयस्तदुक्तं स्वादुभोजनम् ॥ १३१ ॥ सौमनस्य बलं पुष्टिमुत्साहं रसनासुखम् । स्वादु संजनयत्यन्नमस्वादु च विपर्ययम् ॥ १३२ ॥ अत्युष्णान्नं बलं हन्ति शीतं शुष्कं च दुर्जरम् । अतिक्लिन्नं ग्लानिकरं युक्तियुक्तं हि भोजनम् ॥ १३३ ॥ मधुराद्वर्धते रक्तमम्लान्मज्जाप्रवर्धनम् । लवणाद्वर्धते त्वस्थि तित्कान्मेदः प्रव-र्धते ॥ १३४ ॥ कटुकाद्वर्धते मांसं कषायाद्वर्धते रसः । अन्नाच्च वर्धते शुक्रं ष-ड्भा धातुवर्धनाः ॥ १३५ ॥ अतिद्रुताशिताहारो गुणान्दोषान्न विन्दति । भोज्यं शीतमहृद्यं च स्याद्विलम्बितमश्रुतः ॥ १३६ ॥ मन्दानलो नरो द्रव्यमात्रां गुर्वी विवर्जयेत् । स्वभावतश्च गुरु यत्तथा संस्कारतो गुरु ॥ १३७ ॥ मात्रागुरुस्तु मुद्गादिर्माषादिः प्रकृतेर्गुरुः । संस्कारगुरु पिष्टान्नं प्रोक्तमित्युप-लक्षणम् ॥ १३८ ॥ आहारं पङ्क्तिं चोष्यं पेयं लेह्यं तथैव च । भोज्यं भक्ष्यं तथा चर्व्यं गुरुं विद्याद्यथोत्तरम् ॥ १३९ ॥ गुरुणामर्धसौहिल्यं लघूनां नाति-नृसता । द्रवो द्रवोत्तरश्चापि न मात्रागुरुरिष्यते ॥ १४० ॥ द्रवाढ्यमपि शुष्कं तु सम्यग्वोपपद्यते । विशुष्कमन्नमभ्यस्तं न पाकं साधु गच्छति ॥ १४१ ॥ पिण्डीकृतमसंक्लिन्नं विदाहमुपगच्छति । शुष्कं विरुद्धं विष्टम्भि वह्निव्यापद-मावहेत् ॥ १४२ ॥ न भुक्त्वा न रदैश्छित्त्वा न निशायां न वा बहून् । न जलान्तरितान्न द्विः सक्तूनद्यान्न केवलान् ॥ १४३ ॥ पुनर्दानं पृथक्पानं सामि-षं पयसा निशि । दन्तच्छेदनमुष्णं च सप्त सक्तुषु वर्जयेत् ॥ १४४ ॥ बहु स्तोकमकाले वा ज्ञेयं तद्विषमाशनम् । आलस्यगौरवाटोपशब्दांश्च कुरुते गदान् । हीनमात्रं तनोः कार्यं करोति च बलक्षयम् ॥ १४५ ॥ अप्राप्तकाले भुञ्जानो ह्यसमर्थतनुर्नरः । तांस्तान्व्याधीनवाप्नोति मरणं चाधिगच्छति

॥ १४६ ॥ कालेऽतीतेऽश्वतो जन्तोर्वायुनाऽपहतेऽनले । कृच्छ्राद्विपच्यते भुक्तं न स्याद्भोक्तुं पुनः स्पृहा ॥ १४७ ॥ कुक्षेर्भागद्वयं भोज्यैस्तृतीये वारि पूरयेत् । वायोः संचारणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत् ॥ १४८ ॥ रसेनान्नस्य रसना प्रथमे नोपतर्पिता । न तथा स्वादुतामेति ततः सेव्याऽम्बुनाऽन्तरा ॥ १४९ ॥ अत्यम्बुपानान्न विपच्यतेऽन्नं निरम्बुपानाच्च स एव दोषः । तस्मान्नरो वह्निविवर्धनाय मुहुर्मुहुर्वारि पिबेद्भूरि ॥ १५० ॥ भुक्तस्याऽऽदौ जलं पीतं कार्श्यमन्दाग्निदोषकृत् । मध्येऽग्निदीपनं श्रेष्ठमन्ते स्थौल्यकफप्रदम् । समस्थूलकृशा भुक्तमध्यान्तप्रथमाऽम्बुपाः ॥ १५१ ॥ तृषितस्तु न चाश्नीयात्क्षुधितो न पिबेज्जलम् । तृषितस्तु भवेद्बुल्मी क्षुधितस्तु जलोदरी ॥ १५२ ॥ अश्नीयात्तन्मना भूत्वा पूर्वं तु मधुरं रसम् । मध्येऽम्ललवणौ पश्चात्कटुतिक्तकषायकान् ॥ १५३ ॥ एवं भुक्त्वा समाचामेच्चूषग्रहणपूर्वकम् । भोजने दन्तलग्नानि निर्हृत्याऽऽचमनं चरेत् ॥ १५४ ॥ दन्तान्तरगतं चान्नं शोधनेनाऽऽहरेच्छनैः । कुर्यादनिर्हितं तद्धि मुखस्यानिष्टगंधताम् ॥ १५५ ॥ दन्तलग्नमनिर्हार्यं लेपमन्ये तु दन्तवत् । न तत्र बहुशः कुर्याद्यत्नं निर्हरणं प्रति ॥ १५६ ॥ आचम्य जलयुक्ताभ्यां पाणिभ्यां चक्षुषी स्पृशेत् । भुक्त्वा पाणितले घृष्ट्वा चक्षुषोर् यदि दीयते ॥ जातरोगा विनश्यन्ति तिमिराणि तथैव च । भुक्त्वा च संस्मरेन्नित्यमगस्त्यादीन्सुखावहान् ॥ १५७ ॥ आदौ सूपाज्यभक्तं सकथिकमुदितं पायसं वाऽथ रम्यं पक्वान्नं मध्यमध्ये बहुविधपललं व्यञ्जनान्यत्र भोज्ये । अन्ते दुग्धं सिताढ्यं शृतमतुलरसं सान्नमत्यन्तमिष्टं दध्यन्नं वा यथेच्छं परिकलितमिदं देशरीत्या विदध्यात् ॥ १५८ ॥ आदिमध्यावसानेषु भोजने पयसा युते । कार्श्यं साम्यं तथा स्थौल्यमिति स्युः क्रमशो गुणाः ॥ १५९ ॥ आदौ द्रवं समश्नीयात्तन्नाम्बु न पिबेद्बहु । मध्ये तु कठिने भक्ष्ये यथेष्टं शस्यते जलम् ॥ १६० ॥ तथा च भोजनस्यान्ते पीतमम्बु बलप्रदम् । द्रवप्रधानभुक्तान्ते किंतु तन्मात्रया पिबेत् ॥ १६१ ॥ विष्णुरन्नं तथैवान्नपरिणामश्च वै यथा । सत्येन तेन मञ्जुक्तं जीर्यत्वन्नमिदं तथा ॥ १६२ ॥ अगस्तिरग्निर्वडवानलश्च भुक्तं ममान्नं जरयन्त्वशेषम् । सुखं ममैतत्परिणामसंभवं यच्छत्वरोगं मम चारुदेहम् ॥ १६३ ॥ अङ्गारकमगस्तिं च पावकं सूर्यमश्विनौ । यश्चैतान्संस्मरेन्नित्यमन्नं तस्याऽऽशु जीर्यति ॥ १६४ ॥ अगस्तिं कुम्भकर्णं च शनिं च वडवानलम् । आहारपरिपाकार्ये स्मरामि च वृकोदरम् ॥ १६५ ॥ इत्युच्चार्य स्वहस्तेन परिमार्ज्यं तथोदरम् । अनायासप्रदायीनि कुर्यात्कर्माण्यतन्द्रितः ॥ १६६ ॥

धूमतांबूलभक्षणप्रकारः—जीर्णेऽन्ने वर्धते वायुर्विदग्धे पित्तमेधते । भुक्तमात्रे कफश्चापि क्रमोऽयं भोजनोपरि ॥ १६७ ॥ धूमेनापोह्य हृद्यैर्वा कटुतिक्तकषायकैः । पूगकर्पूरकस्तूरीलवङ्गसुमनःफलैः ॥ १६८ ॥ फलैः कटुकषायैर्वा मुखवैशद्यकारिभिः । ताम्बूलपत्रसहितैः सुगन्धैर्वा विचक्षणः

॥१६९॥ रते सुसोत्थिते स्नाते भुक्ते वान्ते च संगरे । सभायां विदुषां राज्ञां
 कुर्यात्ताम्बूलचर्वणम् ॥१७०॥ प्रत्युषसि भुक्तसमये युवतीनां च संगमे विर-
 मे । विद्वद्वाजसभायां ताम्बूलं यो न खादयेत्स पशुः ॥१७१॥ ताम्बूलं कटु-
 त्तिकमुष्णमधुरं क्षारं कषायान्वितं वातघ्नं किमिनाशनं कफहरं दुर्गन्धिनिर्णा-
 शनम् । वक्रस्याऽऽभरणं विशुद्धिकरणं कामाग्निसंदीपनं ताम्बूलस्य सखे त्र-
 योदश गुणाः स्वर्गेऽपि ते दुर्लभाः ॥१७२॥ ताम्बूलमुक्तं तीक्ष्णोष्णं रोचनं
 तुवरं सरम् । तित्कं क्षारोषणं कामरक्तपित्तकरं लघु ॥१७३॥ वश्यं श्लेष्मास्य-
 दौर्गन्ध्यमलवातश्रमापहम् । मुखवैशद्यसौगन्ध्यकान्तिसौष्टवकारकम् ॥१७४॥
 तत्तु दन्तमलध्वंसि जिह्वेन्द्रियविशोधनम् । मुखप्रसेकशमनं गलामयविनाश-
 नम् ॥१७५॥ नवं तदेव मधुरं कषायानुरसं गुरु । बलासजननं प्रायः पत्र-
 शाकगुणं स्मृतम् ॥१७६॥ वज्रदेशोद्भवं पर्णं परं कटुरसं सरम् । पाचनं
 पित्तजनकमुष्णं कफहरं मतम् ॥१७७॥ पर्णं पुराणमकटु क्षुल्लकं तनु पाण्डु-
 रम् । विशेषाद्गुणवद्वेद्यमन्यद्दीनगुणं मतम् ॥१७८॥ पूगं गुरु हिमं रुक्षं
 कषायं कफपित्तनुत् । मोहनं दीपनं रुच्यमास्यवैरस्यनाशनम् ॥१७९॥ पूगं
 स्यादृढमध्यं यत्स्निग्धं चापि त्रिदोषनुत् । सरसं गुर्वभिष्यन्दि तद्भृशं वह्निना-
 शनम् ॥१८०॥ खदिरः कफपित्तघ्नश्चूर्णं वातबलासनुत् । संयोगतस्त्रिदोषघ्नं
 सौमनस्यं करोति च ॥१८१॥ पूगाधिकं प्रभाते स्यान्मध्याह्ने खादिराधिकम् ।
 चूर्णाधिकं निशायां तु ताम्बूलं भक्षयेत्सदा ॥ १८२ ॥ तस्मादग्रं तथा मूलं
 मध्यं पर्णस्य वर्जयेत् । पर्णमूले भवेद्वाधिः पर्णाग्रे पापसंभवः ॥ १८३ ॥ चूर्ण-
 पत्रं हरत्यायुः शिरा बुद्धिविनाशिनी । आयुरग्रे यशो मूले लक्ष्मीर्मध्ये व्यव-
 स्थिता ॥१८४॥ आद्यं विषोपमं पीतं द्वितीयं मेहि दुर्जरम् । तृतीयादि तु
 पातव्यं सुधातुल्यं रसायनम् ॥१८५॥ आलस्यविद्रध्युपजिह्विकानां सतालुद-
 न्तार्बुदरोगिणां च । गलास्यगण्डापचितालुशोषश्लेष्मामयानां तदतिप्रशस्तम्
 ॥१८६॥ न नेत्रकोपे न च रक्तपित्ते क्षते न दाहे न विषे न शोषे । मदात्यये
 नापि न मोहमूर्छाश्वासेषु ताम्बूलमुशन्ति वैद्याः ॥१८७॥ ताम्बूलं नातिसेवे-
 त विरिक्तो न बुभुक्षितः । देहदृक्केशदन्ताग्निश्रोत्रवर्णबलक्षयः ॥१८८॥ शोष-
 पित्तानिलास्त्रं स्यादतिताम्बूलभक्षणात् । ताम्बूलं न हितं दन्तदुर्बलक्षणरोगि-
 णाम् । विषमूर्छामदातानां क्षतिनां रक्तपित्तिनाम् ॥ १८९ ॥

शतपद्यादिक्रमः—भुक्त्वा शतपदं गच्छेच्छनैस्तेन तु जायते । अन्नसंघातशै-
 थिल्यं ग्रीवाजानुकटीसुखम् ॥१९०॥ भुक्त्वोपविशतस्तुन्दं शयानस्य बलं भवेत् ।
 आयुश्चक्रममाणस्य मृत्युर्धावति धावतः ॥१९१॥ श्वासानष्टौ समुत्तानस्तान्द्रिः पाश्चै-
 तु दक्षिणे । ततस्तद्विगुणान्वामे पश्चात्स्वप्याद्यथासुखम् ॥१९२॥ वामदिशया-
 मनलो नाभेरूर्ध्वोऽस्ति जन्तूनाम् । तस्माच्च वामपाश्चै शयीत भुक्तप्रपाकार्थ-

म् ॥ १९३ ॥ त्रिदोषशमनी खट्वा तूली वातकफापह । भूशय्या बृंहणी वृष्या का-
ष्ठपट्टी तु वातला ॥ १९४ ॥ भूशय्या वातलाऽतीव रूक्षा पित्तास्त्रनाशिनी । सु-
शय्याशयनं हृद्यं पुष्टिनिद्राद्यतिप्रदम् ॥ १९५ ॥ श्रमानिलहरं वृष्यं विपरीतम-
तोऽन्यथा । संवाहनं मांसरक्तत्वक्प्रसादकरं परम् ॥ १९६ ॥ प्रीतिनिद्राकरं वृ-
ष्यं कफवातश्रमापहम् । प्रवातं रौक्ष्यवैवर्ण्यस्तम्भकृदाहपित्तनुत् ॥ १९७ ॥
स्वेदमूर्च्छापिपासाघ्नमप्रवातमतोऽन्यथा । सुखं प्रवातं सेवेत ग्रीष्मे शरदि चो-
त्तरम् ॥ १९८ ॥ निर्वातमायुषे सेव्यमारोग्यं यत्र सर्वदा । पूर्वोऽनिलो गुरुः
सोष्णः स्निग्धः पित्तास्त्रदूषकः ॥ १९९ ॥ विदाही वातलः शान्तिकफशोषवतां
हितः । स्वादुः पटुरभिष्यन्दी त्वग्दोषार्शोविषक्रिमीन् ॥ २०० ॥ संनिपातज्व-
रश्वासमामवातं प्रकोपयेत् । दक्षिणः पवनः स्वादुः पित्तरक्तहरो लघुः ॥ २०१ ॥
वीर्येण शीतलो बल्यश्चक्षुष्यो न च वातलः । पश्चिमः पवनस्तीक्ष्णः शोषणो
बलहल्लघुः ॥ २०२ ॥ मेदपित्तकफध्वंसी प्रभञ्जनविवर्धनः । उत्तरो मास्तः
शीतः स्निग्धो दोषप्रकोपकृत् ॥ २०३ ॥ क्लेदनः प्रकृतिस्थानबलदो मधुरो
लघुः । आग्नेयो दाहकृद्रूक्षो नैर्ऋतो न विदाहकृत् ॥ २०४ ॥ वायव्यस्तु भवेत्ति-
क्त ऐशानः कटुकः स्मृतः । विष्वग्वायुरनायुष्यः प्राणिनां बहुरोगकृत् ॥
॥ २०५ ॥ अतस्तं नैव सेवेत सेवितः स्यान्न शर्मणे । व्यजनस्यानिलो दाह-
स्वेदमूर्च्छाश्रमापहः ॥ २०६ ॥ तालवृन्तभवो वातस्त्रिदोषशमको मतः । वंश-
व्यजनजस्तूष्णो रक्तपित्तप्रकोपनः ॥ २०७ ॥ चामरो वस्त्रसंभूतो मायूरो वेत्र-
जस्तथा । एते दोषजितो वाताः स्निग्धा हृद्याः सुपूजिताः ॥ २०८ ॥ दिवास्वापं
न कुर्वीत यतोऽसौ स्यात्कफावहः । ग्रीष्मवर्जेषु कालेषु दिवास्वापो निषिध्यते
॥ २०९ ॥ उचितो हि दिवास्वापो नित्यं तेषां शरीरिणाम् । वातादयः प्रकु-
प्यन्ति येषामस्त्रपतां दिवा ॥ २१० ॥ भोजनाद्याग्दिवास्वापः पाषाणमपि
जीर्यति । भोजनान्ते दिवास्वापाद्वातपित्तकफोद्भवः ॥ २११ ॥ व्यायामग्रम-
दाध्ववाहनरतान्कृन्तान्तातीसारिणः शूलइवासवतस्तृषापरिगतान्हिक्कामरूपी-
डितान् । क्षीणान्क्षीणकफाच्छिशून्मदहतान्वृद्धान्नसाजीर्णिनो रात्रौ जागरितान्न-
रात्रिरशनान्कामं दिवा स्वापयेत् ॥ २१२ ॥ दिवा वा यदि वा रात्रौ निद्रा
सात्मीकृता तु यैः । न तेषां स्वपतां दोषो जाग्रतां चोपजायते ॥ २१३ ॥
भोजनानन्तरं निद्रा वातं हरति पित्तहृत् । कफं करोति वपुषः पुष्टिं सौख्यं
तनोति हि ॥ २१४ ॥ शयनं पित्तनाशाय वातनाशाय मर्दनम् । वमनं
कफनाशाय ज्वरनाशाय लङ्घनम् ॥ २१५ ॥ शब्दान्स्पर्शांश्च रूपाणि रसान् गं-
न्धान्मनःप्रियान् । भुक्तवानपि सेवेत तेनान्नं साधु तिष्ठति ॥ २१६ ॥ शब्दः
स्पर्शस्तथा रूपं रसो गन्धो जुगुप्सितः । भुक्तमग्रयतं चान्नमतिहास्यं च वाम-
येत् ॥ २१७ ॥ शयनं चाशनं चाति न भजेन्न द्रवाधिकम् । नाग्न्यातपौ न प्ल-
वनं न यानं नापि बाहनम् ॥ २१८ ॥ व्यायामं च व्यवायं च धावनं पानमेव च ।

युद्धं गीतं च पाठं च सुहृते भुक्तवांस्यजेत् ॥ २१९ ॥ अत्यम्बुपानाद्विषमाश-
नाच्च संधारणात्स्वप्नविपर्ययाच्च । कालेऽपि सात्म्यं लघु चापि भुक्तमन्नं न
पाकं भजते नरस्य ॥ २२० ॥ अजीर्णे भुज्यते यत्तु तदध्यशनमुच्यते प्राग्भुक्ते
त्वनले मन्दे द्विरहो न समाहरेत् ॥ पूर्वभुक्तेऽविदग्धेऽन्ने भुञ्जानो हन्ति
पावकम् ॥ २२१ ॥ भवेद्यदि प्रातरजीर्णशङ्का तदाऽभयानागरसैन्धवानाम् ।
विचूर्णितं शीतजलेन भुक्त्वा मुक्तामशङ्को मितमन्नमद्यात् ॥ २२२ ॥

सुखाचारः—अध्वा वर्णकफस्थौल्यसौकुमार्यविनाशनः । पादचङ्क्रमणं नाति
देहपीडाकरं भवेत् ॥ २२३ ॥ तदायुर्वलमेधाग्निप्रदमिन्द्रियबोधनम् । आस्यवर्णकफ-
स्थौल्यसौकुमार्यसुखप्रदा ॥ उष्णीषं कान्तिकृत्केश्यं रजोवातकफापहम् ॥ २२४ ॥
पादाभ्यामनुपानदूभ्यां सदा चङ्क्रमणं नृणाम् । अनारोग्यमनायुष्यमिन्द्रिय-
घ्नमदृष्टिदम् ॥ २२५ ॥ छत्रस्य धारणं वर्षातपवातरजोपहम् । हिमघ्नं हितम-
क्ष्णोश्च माङ्गल्यमपि कीर्तितम् ॥ २२६ ॥ सत्त्वोत्साहबलस्थैर्यधैर्यवीर्यविवर्ध-
नम् । अवष्टम्भकरं चापि भयघ्नं दण्डधारणम् ॥ २२७ ॥ ऊर्ध्वाच्छादनसंयुक्ता
शिविका सर्ववल्लभा । तस्यामारोहणं नृणां त्रिदोषशमकं मतम् ॥ २२८ ॥
वातश्लेष्मगदार्तानामहिता भ्रमकृत्तरिः । पित्तानिलकरो हस्ती लक्ष्म्यायुःपुष्टि-
वर्धनः ॥ २२९ ॥ घोटकारोहणं वातपित्ताग्निश्रमकृन्मतम् । मंदोवर्णकफघ्नं
च हितं तद्वलिनां परम् ॥ २३० ॥ आतपः स्वेदमूर्च्छास्त्रपित्ततृष्णाक्लमश्रमान् ।
दाहं विवर्णतां कुर्यादेतांश्छाया व्यपोहति ॥ २३१ ॥ वृष्टिर्वृष्या हिमा बल्या
निद्रालस्यविवर्धनी । भयावहा मोहकरी कुहतिः कफवातला ॥ २३२ ॥
अग्निर्वातकफस्तम्भशीतवेपथुनाशनः । आमाभिष्यन्दशमनो रक्तपित्तप्रकोपनः
॥ २३३ ॥ सद्यः श्लेष्मकरो धूमो नेत्रयोरहितो भृशम् । शिरोगौरवकृच्चापि
वातपित्तं च कोपयेत् ॥ २३४ ॥ मैत्रीं सद्भिरसद्भिश्च कुर्यात्सत्सु तु सर्वथा ।
संसर्गः साधुभिः कुर्यादसत्सङ्गं परित्यजेत् ॥ २३५ ॥ सेवेत देवभूदेववृद्ध-
वैद्यनृपातिथीन् । विमुखान्नार्थिनः कुर्यान्नावमन्येत कानपि ॥ २३६ ॥ गुरुणां
संनिधौ तिष्ठेत्सदैव विनयान्वितः । पादप्रसारणादीनि तत्र नैव समाचरेत्
॥ २३७ ॥ अपकारपरेऽपि स्यादुपकारपरः पुमान् । आत्मवत्सकलान्पश्येद्वैरिणो
दूरतो वसेत् ॥ २३८ ॥ न कंचिदात्मनः शत्रुं नाऽऽत्मानं कस्यचिद्विपुम् ।
प्रकाशयेन्नापमानं न च निःस्नेहतां प्रभोः ॥ २३९ ॥ नाऽऽत्मानमुदके पश्येन्न
नग्नः प्रविशेज्जलम् । तथा नाज्ञातगाम्भीर्यं न हिंस्रप्राणिसेवितम् ॥ २४० ॥
काले हितं मितं सत्यं संवादे मधुरं वदेत् । भुञ्जीत मधुरं प्रायः स्निग्धं काले
हितं मितम् ॥ २४१ ॥ न रात्रौ दधि भुञ्जीत न च निर्लवणं तथा । नामुद्र-
सूपं नाक्षौद्रं न चाप्यघृतशर्करम् ॥ २४२ ॥ जनस्याऽऽशयमालक्ष्य यो यथा
परितुष्यति । तं तथैवानुवर्तेत पराराधनपण्डितः ॥ २४३ ॥ नैकः सुखी न
सर्वत्र विश्वस्तो न च शङ्कितः । नोद्यमाद्विरमेत्कापि हेतावीर्येत्फले न तु

॥ २४४ ॥ वेगान्न धारयेत्किञ्चिन्मनोवेगान्विधारयेत् । न पीडयेदिन्द्रियाणि न चैतान्यतिलालयेत् ॥ २४५ ॥ वर्षातपादिषुच्छत्री दण्डीरान्यटवीषु च । सोपानत्कस्तनुं रक्षन्विचरेद्युगमात्रदृक् ॥ २४६ ॥ नदीं तरेन्न बाहुभ्यां नाग्निस्कन्धमभिव्रजेत् । संदिग्धनोवं वृक्षं च नाऽऽरोहेदुष्टयानवत् ॥ २४७ ॥ नासंवृतमुखः कुर्यात्सभायां सुविचक्षणः । कासं हासं तथोद्गारं जृम्भणं क्षवथुं तथा ॥ २४८ ॥ नासिकां न विकुण्णीयान्नासीतोत्कटकः क्वचित् । नोर्ध्वजानुश्चिरं तिष्ठेन्न नखैर्विलिखेद्भुजम् ॥ २४९ ॥ संमार्जनीरजो नैव देहे दध्यात्कदाचन । न नखेन तृणं छिन्द्यान्नोच्छिष्टो ब्राह्मणं स्पृशेत् ॥ २५० ॥ नोपरक्तं न चोद्यन्तं नास्तं यान्तं दिवाकरम् । सर्वथा तु समीक्षेत न जले प्रतिबिम्बितम् ॥ २५१ ॥ नेक्षेत प्रततं सूक्ष्मं दीप्तमेध्याप्रियाणि च । पौरंदरं धनुर्नैव दर्शयेत्कमपि क्वचित् ॥ २५२ ॥ रिपोरन्नं न भुञ्जीत गणिकान्नमपि क्वचित् । प्रतिभूर्न भवेत्कापि न च साक्षी वृथा वदेत् ॥ २५३ ॥ स्थर्गां न धारयेज्जातु द्यूतं दूरात्परित्यजेत् । विश्वासं नाऽऽचरेत्स्त्रीणां ताः स्वतन्त्राश्च नाऽऽचरेत् ॥ २५४ ॥ रक्षणीया सदा पत्नी यौवने तु विशेषतः । न भिन्नशयने स्वप्यान्न चैको विवरे बिले । नैको देवालये नैव रात्रौ-तरुतले न च ॥ २५५ ॥ एवं दिनानि गमयेत्सदाचारपरः सदा । ततो रात्रिप्रयुक्तानि कुर्यात्कर्माणि मानवः ॥ २५६ ॥ इत्याचारं समासेन भाषितं यः समाचरेत् । स विन्दत्यायुरारोग्यं प्रीतिं धर्मं धनं यशः ॥ २५७ ॥ एतानि पञ्च कर्माणि संध्यायां वर्जयेद्बुधः । आहारं मैथुनं निद्रां संपाठं गतिमध्वनि ॥ २५८ ॥ भोजनाज्जायते व्याधिमैथुनाद्भवेकृतम् । निद्राया निःस्वता पाठादायुर्हानिर्गतेर्भयम् ॥ २५९ ॥

अथ रात्रिचर्या ।

ज्योत्स्ना शीता स्मरानन्दप्रदा तृदपित्तदाहहृत् । ततो हीनगुणः कुर्यादवश्या-योऽनिलं कफम् ॥ १ ॥ तमो भयावहं मोहदिङ्मोहजननं भवेत् । पित्तहृत्कफ-कृत्कामवर्धनं क्लमकृच्च तत् ॥ २ ॥ रात्रौ तु भोजनं कुर्यात्प्रथमप्रहरान्तरे । किञ्चिदूनं समश्रीयादुर्जरं तत्र वर्जयेत् ॥ ३ ॥ शरीरे जायते नित्यं देहिनां सु-रतस्पृहा अव्यवायान्मेहमदोवृद्धिः शिथिलता तनोः ॥ ४ ॥ बलिनो मनसो रोधात्क्रोधाद्वा ब्रह्मचर्यतः । नारीणामरसज्ञत्वात्क्षीणं शुक्रं भवेन्नृणाम् ॥ ५ ॥ दौर्बल्यं मुखशोषश्च पाण्डुत्वं सदनं भ्रमः । क्लैब्यं शुक्रविसर्गश्च क्षीणशुक्रस्य लक्षणम् ॥ ६ ॥ संबन्धिन्यरिवल्लभा नृपवधूर्मित्राङ्गना रोगिणी शिष्यब्राह्मणवल्ल-भातिपतितोन्मत्ता महापापिनी । पिङ्गा प्रव्रजिता सती गुरुवधूर्वृद्धा तथा गर्भिणी म्लेच्छा कृष्णतमा तथाऽपरिचिता त्याज्या इमा योषिताः ॥ ७ ॥ सेवनं यो-षितां कुर्याद् बुधो बुद्ध्वा रतिक्रमम् । बालामुग्धाधिरूढानामनुरागविभावनात् ॥ ८ ॥ बालेति गीयते नारी यावद्दर्षाणि षोडश । ततस्तु तरुणी ज्ञेया द्वात्रिंश-

द्वत्सरावधि ॥ ९ ॥ तदूर्ध्वमधिरूढा स्यात्पञ्चाशद्वत्सरावधि । वृद्धा तत्परतो
 ज्ञेया सुरतोत्सववर्जिता ॥ १० ॥ निदाघशरदोर्बाला हिता विपयिणे मता । तरुणी
 शीतसमये प्रौढा वर्षावसन्तयोः ॥ ११ ॥ नित्यं बाला सेव्यमाना नित्यं वर्धयते
 बलम् । तरुणी हासेयच्छक्तिं प्रौढोद्भासयते जराम् ॥ १२ ॥ सद्योमांसं नवान्नं च
 बाला स्त्री क्षीरभोजनम् । घृतमुष्णोदकस्नानं सद्यःप्राणकराणि पद ॥ १३ ॥ पूति-
 मांसं स्त्रियो वृद्धा बालार्कस्तरुणं दधि । प्रभाते मैथुनं निद्रा सद्यः प्राणहराणि पद
 ॥ १४ ॥ वृद्धोऽपि तरुणीं गत्वा तरुणत्वमवाप्नुयात् । वयोधिकां स्त्रियं गत्वा तरुणः
 स्थविरायते ॥ १५ ॥ आयुष्मन्तो मन्दजरा वपुर्वर्णबलान्विताः । स्थिरोपचित-
 मांसाश्च भवन्ति स्त्रीषु संयताः ॥ १६ ॥ सेवेत कामतः कामं तृप्तो वाजीकृतां
 हिमे । प्रकामं तु निषेवेत मैथुनं शिशिरागमे ॥ १७ ॥ ज्यहाद्वसन्तशरदोः
 पक्षाद्वर्षानिदाघयोः । शीते रात्रौ दिवा ग्रीष्मे वसन्ते तु दिवा निशि ॥ १८ ॥
 वर्षासु वारिदध्वाने शरत्सु सरसः स्मरः । त्रिभिस्त्रिभिरहोभिर्हि समेयात्प्रमदां
 नरः ॥ १९ ॥ सर्वेष्वृतुषु धर्मेषु पक्षात्पक्षाद्ब्रजेद्बुधः । आयुःक्षयभयाद्द्विद्वान्ना-
 ह्नि सेवेत कामिनीम् ॥ २० ॥ अवशो यदि सेवेत तदा ग्रीष्मवसन्तयोः ॥ २१ ॥
 नोपेयात्पुरुषो नारीं संध्ययोर्न च पर्वसु । गोसर्गे चार्धरात्रे च तथा संध्यादिनेऽ-
 पि च ॥ २२ ॥ कल्पस्योदग्रवयसो वाजीकरणसेविनः । सर्वेष्वृतुष्वहरहर्व्यवा-
 यो न निवार्यते ॥ २३ ॥ घृतक्षीराशनो निर्भीर्निर्व्याधिर्नित्यगो युवा । विहारं
 भार्यया कुर्याद्देशेऽतिशयसंवृते ॥ २४ ॥ रम्ये श्राव्याङ्गनागाने सुगन्धिसुखमा
 रुते । देशे गुरुजनासन्नेऽनिभृतेऽतित्रपाकारे ॥ २५ ॥ श्रूयमाणव्यथाहेतुवचने
 च रमेत न । स्नातश्चन्दनलिप्ताङ्गः सुगन्धसुमनोन्वितः ॥ २६ ॥ सुक्तवृष्यः
 सुवसनः सुवेषः समलङ्कृतः । ताम्बूलवदनः पत्न्यामनुरक्तोऽधिकस्मरः ॥ २७ ॥
 पुत्रार्थी पुरषो नारीमुपेयाच्छयने शुभे । अत्याशितोऽधृतिः क्षुद्धान्सव्यथाङ्गः पि-
 पासितः ॥ २८ ॥ बालो वृद्धोऽन्यवेगार्तस्त्यजेद्गोत्री च मैथुनम् । भार्या तु-
 ल्यगुणोपेतां तुल्यशीलां कुलोद्भवाम् ॥ २९ ॥ अभिकामोऽभिकामां च हृष्टो
 हृष्टामलङ्कृताम् । सेवेत प्रमदां युक्त्या वाजीकरणवृंहितः ॥ ३० ॥ सीमन्ता-
 क्ष्यधरे कपोलगलके कुक्षौ कुचोरःस्थले नाभिश्चोणिवराङ्गजानुषु तथा गुल्फे
 पदाङ्गुष्ठके । वामाङ्गे हरिणीदशां मनसिजो मासस्य पक्षद्वये शुक्लश्यामविभा-
 गतः सुविहरत्यूर्ध्वाध एव क्रमात् ॥ ३१ ॥ सीमन्ते नखरं सुसुम्बनविधिं नेत्रे
 कपोलेऽधरे दन्ताग्रं विदधीत किंच नखरं कुक्षौ सुकण्ठेऽपि च । मन्दं वक्षसि
 ताडनं कुचयुगे श्रोणौ दृढं मर्दनं नाभौ किंच चपेटिकां स्मरगृहे मातङ्गली-
 लायितम् ॥ ३२ ॥ गुल्फजानुपदाङ्गुष्ठसमये घातनानि च । इष्टचन्द्रक-
 लास्पर्शाद्वावयेदम्बुजेक्षणाम् ॥ ३३ ॥ रजस्वलामकामां च मलिनाम-
 प्रियां तथा । वर्णवृद्धां वयोवृद्धां तथा व्याधिप्रपीडिताम् ॥ ३४ ॥ हीनाङ्गीं
 गर्भिणीं द्वेष्यां योनिरोगसमन्विताम् । सगोत्रां गुरुपत्नीं च तथा प्रव्रजितामपि

॥ ३५ ॥ नाभिगच्छेत्ततो नारीं भूरिवैगुण्यशङ्कया । रजस्वलां गतवतो नर-
स्यासंयतात्मनः ॥ ३६ ॥ दृष्ट्याऽऽयुस्तेजसां हानिरधर्मश्च ततो भवेत् ।
लिङ्गिनीं गुरुपत्नीं च सगोत्रामथ पर्वसु ॥ ३७ ॥ वृद्धां च संध्ययोश्चापि
गच्छतो जीवनक्षयः । गर्भिण्यां गर्भपीडा स्याद्वाधितायां बलक्षयः ॥ ३८ ॥
हीनाङ्गीं मलिनां द्वेष्यां क्षामां बन्ध्यामसंवृते । देशेऽभिगच्छतो रेतः क्षीणं
म्लानं मनो भवेत् ॥ ३९ ॥ क्षुधितः क्रुद्धचित्तश्च मध्याह्ने नृषितोऽबलः । स्थि-
तस्य हानिं शुक्रस्य वायोः कोपं च विन्दति ॥ ४० ॥ व्याधितस्य रुजा ग्रीवा
मूर्छां मृत्युश्च जायते । प्रत्युषस्यर्धरात्रे च वातपित्ते प्रकुप्यतः ॥ ४१ ॥ तिर्य-
ग्योनावयोनौ वा दुष्टयोनौ तथैव च । उपदंशस्तथा वायोः कोपः शुक्रसुख-
क्षयः ॥ ४२ ॥ उच्चारिते मूत्रिते च रेतसश्च विधारणे । उत्ताने च भवेच्छीघ्रं
शुक्राश्मर्यास्तु संभवः ॥ ४३ ॥ सर्वमेतत्त्यजेत्तस्माद्यतो लोकद्वयेऽहितम् । शुक्रं
तूपस्थितं मोहान्न संधार्यं कदाचन ॥ ४४ ॥ स्नानानुलेपनहिमानिलखण्डखा-
द्यशीताम्बुदुग्धरसयूषसुराप्रसन्नाः । सेवेत चानुशयनं विरतौ रतस्य तस्यैव-
माशु वपुषः पुनरेति धाम ॥ ४५ ॥ स्नानं सशर्करं क्षीरं भक्ष्यमैश्वर्यसंस्कृत-
म् । ततो मांसरसः स्वप्नो व्यवायान्ते हिता अमी ॥ ४६ ॥ अतिव्यवायाजा-
यन्ते रोगाश्चाऽऽक्षेपकादयः । शूलकासज्वरश्वासकार्श्यपाण्ड्वामयक्षयाः ॥ ४७ ॥
रात्रौ जागरणं रुक्षं कफदोषविषार्तिजित् । निद्रा तु सेविता काले धातुसाम्य-
मतन्द्रितम् ॥ पुष्टिवर्णबलोत्साहबह्विदीप्तिं करोति च ॥ ४८ ॥ यो लेढि
शयनसमये मधुमिश्रं बीजपूरदलचूर्णम् । स बीडाकरवातप्रसरनिरोधात्सुखं
स्वपिति ॥ ४९ ॥ सवितुरुदयकाले प्रसूतीः सलिलस्य पिबेदद्वौ । रोगजराप-
रिमुक्तो जीवेद्वत्सरशतं साग्रम् ॥ ५० ॥ अनुदिनं त्वनुदिते रविमण्डले पिबति
तोयमनुज्झितमूत्रविद् । अनिलपित्तकफानलदोषहृच्छतसमा रमते तरुणीश-
तम् ॥ ५१ ॥ विगतघननिशीथे प्रातरुत्थाय नित्यं पिबति खलु नरो यो घ्राण-
रन्ध्रेण वारि । स भवति मतिपूर्णश्चक्षुषा तार्क्ष्यतुल्यो बलिपलितविहीनः सर्व
रोगैर्विमुक्तः ॥ ५२ ॥ अर्शःशोथग्रहण्यो ज्वरजठरजराकोष्ठमेदोविकारा मूत्रा-
घातास्त्रपित्तश्रवणगलशिरःश्रोणिशूलाक्षिरोगाः । ये चान्ये वातपित्तक्षतजक-
फकृता व्याधयः सन्ति जन्तोस्तांस्तानभ्यासयोगादपहरति पयः पीतमन्ते
निशायाः ॥ ५३ ॥ स्नेहपीते क्षतेऽशुद्धावाध्माने स्तिमितोदरे । हिक्कायां कफ-
वातोत्थे व्याधौ तद्वारि वारयेत् ॥ ५४ ॥ नरो दिनादिचर्याभिर्यो न वर्तेत
नित्यशः । स एव लभते रोगं ततः पथ्यं समाचरेत् ॥ ५५ ॥

इति दिनरात्रिचर्या ।

अथ ऋतुचर्यामाह—

शिशिरः पुष्पसमयो ग्रीष्मो वर्षाः शरद्धिमः । माघादिमासयुग्मे स्युर्ऋ-

तवः षट् क्रमादमी ॥ १ ॥ उत्तरायणमन्त्राऽऽद्यैः परैः स्याद्दक्षिणायनम् । आद्य-
मुष्णं बलहरं ततोऽन्यद्वलदं हिमम् ॥ २ ॥ शिशिरः शीतलोऽतीव रूक्षो वा-
ताग्निवर्धनः । वसन्तो मधुरः स्निग्धः श्लेष्मवृद्धिकरश्च सः ॥ ३ ॥ ग्रीष्मो
रूक्षोऽतिकटुकः पित्तकृत्कफनाशनः । वर्षाः शीतविदाहिन्यो वह्निमान्द्यानिल-
प्रदाः ॥ ४ ॥ शरदुष्णा पित्तकर्त्री नृणां मध्यबलावहा । हेमन्तः शीतलः
स्निग्धः स्वादुर्जठरवह्निकृत् ॥ ५ ॥ चयप्रकोपप्रशमा वायोर्ग्रीष्मादिषु त्रिषु ।
वर्षादिषु च पित्तस्य श्लेष्मणः शिशिरादिषु ॥ ६ ॥ चयकोपशमान्दोषा विहा-
राहारसेवनैः । समानैर्यान्त्यकालेऽपि विपरीतैर्विपर्ययम् ॥ ७ ॥ स्वस्थानस्थस्य
दोषस्य वृद्धिः स्यात्स्तब्धकोष्ठता । पीतावभासता वह्निमन्दता चाङ्गगौरवम्
॥ ८ ॥ आलस्यं चयहेतौ तु द्वेषश्च चयलक्षणम् । संचयेऽपहता दोषा लभन्ते
नोत्तरा गतीः । ते तूत्तरासु गतिषु भवन्ति बलवत्तराः ॥ ९ ॥

अथ वर्षासु हिताहितमाह—

वर्षासु प्रबलो वायुस्तस्मान्मिष्टादयस्त्रयः । रसाः सेव्या विशेषेण पवनस्यो-
पशान्तये ॥ १ ॥ भवेद्वर्षासु वपुषि क्लिन्नत्वं यद्विशेषतः । तत्क्लेदशान्तये
सेव्या अपि कट्टादयस्त्रयः ॥ २ ॥ स्वेदनं मर्दनं सेव्यं दध्युष्णं जाङ्गलामिषम् ।
गोधूमाः शालयो माषा जलं कौपं दिवश्चयुतम् ॥ ३ ॥ न भजेत्पूर्वपवनं वृष्टिं
धर्मं हिमं श्रमम् । नदीनीरं दिवास्वापं रूक्षं नित्यं च मैथुनम् ॥ ४ ॥

अथ शरदि हिताहितमाह—

सर्पिः स्वादुकषायतिक्तकरसा यच्छीतलं यल्लघु क्षीरं स्वच्छसितैक्षवः पटु-
रसः स्वल्पः पलं जाङ्गलम् । गोधूमा यवमुद्रशालिसहिता नादेयमंशूदकं चन्द्र
श्रन्दनमिन्दुरादिरजनी माल्यं पटो निर्मलः ॥ १ ॥ विश्रामः सुहृदां गणेषु
मधुरा वाचः सरःक्रीडनं पित्तानां च विरेचनं बलवतो युक्तं शिरामोक्षणम् ।
एतान्यत्र घनावसानसमये पथ्यानि मुञ्चेद्दधि व्यायामाम्लकद्रूष्णतीक्ष्णदिव-
सस्वप्नं हिमं चाऽऽतपम् ॥ २ ॥ दिवा रविकरैर्जुष्टं निशि शीतकरांशुभिः । ज्ञे-
यमंशूदकं नाम स्निग्धं दोषत्रयापहम् ॥ ३ ॥ इक्षवः शालयो मुद्राः सरोऽम्भः
क्रथितं पयः । शरद्येतानि पथ्यानि प्रदोषे चेन्दुरश्मयः ॥ ४ ॥

अथ हेमन्तै हिताहितमाह—

प्रातर्भोजनमम्लपिष्टलवणानभ्यङ्गधर्मश्रमान्नोधूमैक्षवशालिमापपिशितं
पिष्टं नवान्नं तिलान् । कस्तूरीं वरकुङ्कुमागुस्युतामुष्णाम्बु शौचेऽनलं स्निग्धं
स्त्रीस्वसुखं गुरुष्णवसनं सेवेत हेमन्तके ॥ १ ॥

अथ शिशिरे हिताहितमाह—

शिशिरे शीतमधिकं रौक्ष्यं चाऽऽदानकालजम् । विशेषतस्तु तत्रैव हेमन्त-
स्य सतो विधिः ॥ १ ॥

अथ वसन्ते हिताहितमाह—

वान्ति नस्यमथाभयां च मधुना व्यायाममुद्वर्तनं संसेवेत मधौ कफघ्नकवलं मांसं तथा जाङ्गलम् । गोधूमान्बहुभेदशालिसहितान्मुद्रान्यवान्पष्टिकल्लिपं चन्दनकुङ्कुमागुरुकृतं रूक्षं कटूष्णं लघु ॥ १ ॥ मिष्टमम्लं दधि स्निग्धं दिवास्वप्नं च दुर्जरम् । अवश्यायमपि प्राज्ञो वसन्ते परिवर्जयेत् ॥ २ ॥

अथ ग्रीष्मे हिताहितमाह—

स्वादु स्निग्धहिमं लघु द्रवमयं द्रव्यं रसालां सितां सक्तुक्षीरदशाङ्गुलानि सितया शालिं रसं मांसजम् । शीतांशुं स्वपनं दिवा मलयजं शीतं पयः पानकं सेवेतोष्णदिने त्यजेत्तु कटुकक्षाराम्लवर्मश्रमान् ॥ १ ॥ ऋतुष्वेषु य एतैस्तु विधिभिर्वर्तते नरः । दोषानृतुकृताच्चैव लभते स कदाचन ॥ २ ॥ तप्तं तप्तांशुकिरणैः शीतं शीतांशुरश्मिभिः । समन्तादप्यहोरात्रमगस्त्योदयनिर्विषम् ॥ ३ ॥ शुचि हंसोदकं नाम निर्मलं मलजिजलम् । नाभिष्यन्दिनं वा रूक्षं पानादिष्वमृतोपमम् ॥ ४ ॥

अथ जलगुणाः ।

पानीयं शीतलं रूक्षं हन्ति पित्तविषश्रमान् । दाहाजीर्णश्रमच्छर्दिमोहमूर्छामदात्ययान् ॥ १ ॥ मूर्छापित्तोष्मदाहेषु विषे रक्ते मदात्यये । अमक्लमातिसारेषु मार्गोत्थवमथौ तथा । ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते च शीतमग्भः प्रशस्यते ॥ २ ॥

अथोष्णवारिगुणाः ।

यत्काथ्यमानं निर्वेगं निष्फेनं निर्मलं भवेत् । अर्धावशिष्टं भवति तदुष्णोदकमुच्यते ॥ १ ॥ कफमेदोनीलामघ्नं दीपनं बस्तिशोधनम् । कासश्वासज्वरहरं पथ्यमुष्णोदकं सदा ॥ २ ॥ तप्तं पाथः पादभागेन हीनं पथ्यं प्रोक्तं वातजातामयघ्नम् । अर्धांशोनं नाशयेद्वातपित्तं पादप्रायं तत्तु दोषत्रयघ्नम् ॥ ३ ॥ तप्तायःपिण्डसंसिक्तं लोष्टनिर्वापितं जलम् । सर्वदोषहरं पथ्यं सदा नैरुज्यकारकम् ॥ ४ ॥ उष्णोदकं श्रेष्ठतमं वदन्ति विश्वायवानीसहितं क्रमेण । कफे च वाते न च पित्तरोगे सर्वेषु रोगेषु न शीतलाम्बु ॥ ५ ॥

अथ ऋतुविशेषे जलक्वाथनियमः । शारदं चार्धपादोनं पादहीनं तु हैमतम् । शिशिरे च वसन्ते च ग्रीष्मे चार्धावशेषितम् । विपरीते ऋतौ तद्व्यावृष्यष्टावशेषितम् ॥ १ ॥

अथ रात्रिसेवितोष्णोदकगुणाः । भिनत्ति श्लेष्मसंघातं नास्तं चापकर्षति । अजीर्णं जरयत्याशु पीतमुष्णोदकं निशि ॥ १ ॥

उष्णोदकनिषेधः । दिवा शृतं तु यत्तोयं रात्रौ तद्गुरुतां व्रजेत् । रात्रौ शृतं दिवा तद्गुरुत्वमधिगच्छति ॥ १ ॥

शीतोदकनिषेधः । पार्श्वशूले प्रतिश्याये वातरोगे गलग्रहे । आध्माने स्तिमिते कोष्ठे सद्यःशुद्धे नवज्वरे ॥ हिक्कायां स्नेहपीते च शीताम्बु परिवर्जयेत् ॥ १ ॥

उदकमंदचरणं । अरोचके प्रतिश्याये प्रसेके श्वयथुक्षये । मन्दाग्नावुदरे कोष्ठे ज्वरे नेत्रामये तथा ॥ व्रणे च मधुमेहे च पानीयं मन्दमाचरेत् ॥ १ ॥

अथ शृतशीतगुणाः । गुल्मार्शोग्रहणीक्षयेषु जठरे मन्दानलाध्मानके शोफे पाण्डुगलग्रहे व्रणगदे मेहे च नेत्रामये । वातारुच्यतिसारके कफयुते कुष्ठे प्रतिश्यायके उष्णं वारि सुशीतलं शृतहिमं स्वल्पं प्रदेयं जलम् ॥ १ ॥

उदकपाकः । तदाधिक्यपरिणामश्च । आमं जलं जीर्यति याममात्रं तदर्धमात्रं शृतशीतलं च । तदर्धमात्रं तु शृतं कदुष्णं प्रायः प्रपाके त्रय एव कालाः ॥ १ ॥ जलाधिक्यान्मनुष्याणामामवृद्धिः प्रजायते । आमवृद्ध्या तु मन्दाग्निर्मन्दाग्नौ चाप्यजीर्णता ॥ २ ॥ अजीर्णेन ज्वरोत्पत्तिज्वराद्वै धातुनाशनम् । धातुनाशात्सर्वरोगा जायन्ते चोत्तरोत्तरम् ॥ ३ ॥ शर्करासहितं नीरं कफकृत्पवनापहम् । सितासितोपलायुक्तं शुक्रलं दोषनाशनम् ॥ ४ ॥ सगुडं मूत्रकृच्छ्रघ्नं पित्तश्लेष्मकरं भवेत् ।

नारिकेलोदकगुणाः । स्निग्धं स्वादु हिमं हृद्यं दीपनं बस्तिशोधनम् । वृष्यं पित्तपिपासाघ्नं नारिकेलोदकं लघु ॥ १ ॥ इति जलगुणाः ।

अथ दुग्धगुणाः ।

दीप्तानले कृशे पुंसि बाले वृद्धे रतिप्रिये । मतं हिततमं यस्मात्सद्यःशुक्रकरं पयः ॥ १ ॥ जीर्णज्वरे मूत्रकृच्छ्रे रक्तपित्ते मदात्यये । कासे श्वासे प्रशंसन्ति गव्यं क्षीरं भिषग्वराः ॥ २ ॥ गोक्षीरं मधुरं शीतं गुरु स्निग्धं रसायनम् । बृंहणं स्तन्यकृद्बल्यं जीवनं वातपित्तनुत् ॥ ३ ॥ गव्यं माहिषमाजं च कारभं श्वैणमाविकम् । ऐभमैकशफं चेति क्षीरमष्टविधं मतम् ॥ ४ ॥

अथ तत्र वर्णभेदाः ।

कृष्णगव्या वरं क्षीरं वातपित्तकफप्रणुत् । पीताया वातपित्तघ्नं रक्ताया वातहृत्परम् ॥ १ ॥ चित्रायास्तद्वदाख्यातं श्वेतायाः श्लेष्मलं गुरु । बालवत्साविवत्सानां गवां क्षीरं त्रिदोषकृत् ॥ २ ॥ बष्कयण्यास्त्रिदोषघ्नं तर्पणं बलकृत्पयः । पिण्याकाद्यशनाज्जातं क्षीरं गुरु कफावहम् ॥ ३ ॥ निद्रारेतो बलस्थौल्यवह्निमान्धकरं हिमम् । कृष्णगव्या पयःफेनो ह्यजानां चातिशस्यते ॥ ४ ॥ मन्दाग्नीनां कृशानां च विशेषादतिसारिणाम् । उत्साहदीपनं बल्यं मधुरं वातनाशनम् ॥ ५ ॥ सद्यो बलकरं दण्डतप्तक्षीरं विलोडितम् । क्षीणे ज्वरातिसारे च सामे च विषमे ज्वरे ॥ मन्दाग्नौ कफमाश्रित्य पयःफेनः प्रशस्यते ॥ ६ ॥

अथ माहिषम् । माहिषं मधुरं क्षीरं स्निग्धं गुरु बलप्रदम् । निद्राशुक्र-
करं शीतमभिष्यन्धश्मिमान्धकृत् ॥ १ ॥

अथाऽऽजम् । आजं गव्यगुणं ग्राहि विशेषादीपनं लघु । हन्ति क्षयाशौ-
तिसारत्रिदोषास्त्रभ्रमज्वरान् ॥ १ ॥ अजानामल्पकायत्वात्कटुतिक्तनिषेवणात् ।
नात्यम्बुपानाव्यायामाग्निदोषघ्नमजापयः ॥ २ ॥

अथाऽऽविकम् । आविकं मधुरं केश्यं स्निग्धं वातकफापहम् । गुरु कालेऽ
निलोद्भूते केवले चानिले वरम् ॥ १ ॥

अथौष्ट्रम् । औष्ट्रं स्वादु पयो रूक्षं लवणं लघु दीपनम् । किमिकुष्ठकफा-
नाहशोफोदरहरं परम् ॥ १ ॥

अथैभम् । हस्तिन्या दुर्जरं दुग्धं वातश्लेष्मकरं गुरु । मधुरं पित्तनुद्वल्यं
शीतं श्रमवतां हितम् ॥ १ ॥

अथाऽऽश्वम् । आश्वमुष्णं पयो रूक्षं बल्यं श्वासानिलापहम् । अम्लं पटु
लघु स्वादु सर्वमैकशफं तथा ॥ १ ॥

अथ गार्दभम् । श्वासवातहरं साम्लं लवणं रुचिदीप्तिकृत् । कफकासहरं
बालरोगघ्नं गर्दभीपयः ॥ १ ॥

अथ मानुषम् । नार्यो लघु पयः शीतं दीपनं वातपित्तजित् । चक्षुःशूला-
भिघातघ्नं नस्याश्चोतनयोर्हितम् ॥ १ ॥ प्रलापमूर्छाभ्रमदाहयुक्ते तृषान्विते
दोषसमूहमूर्तौ । पयोऽङ्गनानां पिबतां नराणां प्रागेव जूर्तिः प्रशमं प्रयाति ॥ २ ॥
॥ २ ॥ स्तन्यं रुद्राक्षसंयुक्तमाहारार्थं प्रयोजयेत् । योगसारे—दोषज्वरेऽतिसारे च
शूले च ग्रहणीगदे ॥ ३ ॥ पाण्डुरोगे क्षये चार्शःशोफे मन्दाक्षिकेऽरुचौ । प्रसेके च
प्रतिश्याये क्रिमिरोगे भगंदरे । उदावर्ते विषूच्यां च स्तन्यपानं प्रशस्यते ॥ ४ ॥
मानुष्यं मधुरं स्तन्यं कषायानुरसं हिमम् । नस्याश्चोतनपथ्यं च जीवनं
लघु दीपनम् ॥ ५ ॥

अथ धारोष्णगुणाः ।

धारोष्णं शस्यते गव्यं धाराशीतं तु माहिषम् । शृतोष्णमाविकं पथ्यं शृत-
शीतमजापयः ॥ १ ॥ पित्तघ्नं माहिषं क्षीरं वातघ्नं चाऽऽविकं पयः । वातपित्तह-
रं गव्यं त्रिदोषघ्नमजापयः ॥ २ ॥ धारोष्णं पवनप्रकोपशमनं दुग्धं गवां पुष्टि-
कृत्पाण्डुं कामलकां निहन्ति तरसा क्षीणोर्जकृच्छ्रीकरम् । दाहं देहगतं करा-
ङ्गिनयनज्वालां च पित्तोन्नतिं दुष्टास्त्रं कृशतां कृशानुजनितां कृच्छ्रांश्च रोगा-
ञ्जयेत् ॥ ३ ॥

अथाऽपक्वदुग्धगुणाः ।

आमं क्षीरमभिष्यन्दि गुरु श्लेष्मामवर्धनम् । तदपथ्यं भवेत्सर्वं गव्यमा-
हिषवर्जितम् ॥ १ ॥

अथऽकथितदुग्धगुणाः ।

शृतोष्णं कफवातघ्नं शृतशीतं तु पित्तनुत् । अर्धोदकं क्षीरशिष्टमामाल्यु-
तरं हितम् ॥ १ ॥ अकथितं दश घटिकाः कथितं द्विगुणाश्च ताः पयः पथ्य-
म् । उपसि रसाढ्यं यावत्तावद्रुचिकृत्पयः प्राश्यम् ॥ २ ॥ जीर्णज्वरे किंतु
कफे विलीने स्याद्दुग्धपानं तु सुधासमानम् । तदेव पीतं तरुणज्वरे च नि-
हन्ति हालाहलवन्मनुष्यम् ॥ ३ ॥ चतुर्थभागं सलिलं निधाय यत्नाद्यदाव-
र्तितमुत्तमं तत् । सर्वाभयघ्नं बलपुष्टिकारि ओजःप्रदं क्षीरमतिप्रशस्तम् ॥ ४ ॥
बल्यं वृंहणमग्निवृद्धिजननं पूर्वाह्नकाले पयो मध्याह्ने बलदायकं रुचिकरं
कुच्छ्राश्मरीछेदनम् । बालेष्वग्निकरं क्षये बलकरं वृद्धस्य रेतःप्रदं रात्रौ
क्षीरमनेकदोषशमनं सेव्यं सदा प्राणिनाम् ॥ ५ ॥ नवज्वरे च मन्दाग्नी
ह्यामदोषेषु कुष्ठिनाम् । शूलिनां कफदोषेषु कासिनामतिसारिणाम् ॥ ६ ॥
पयःपानं न कुर्वीत विशेषात्किमिदोपदम् । शर्करासहितं क्षीरं कफकृत्पवना-
पहम् ॥ ७ ॥ सितासितोपलायुक्तं शुक्रलं दोषनाशनम् । सगुडं मूत्रकृच्छ्रघ्नं
पित्तश्लेष्मकरं तथा ॥ ८ ॥ क्षीरं न भुञ्जीत कदाऽप्यतप्तं तप्तं च नैतल्लवणेन
सार्धम् । पिष्टेन संधानकपायमुद्रकोशातकीकन्दफलादिकैश्च ॥ ९ ॥

अथ क्षीरमित्राणि ।

सहकारफलं चैव गोस्तनी माक्षिकं घृतम् । नवनीतं शृङ्गबेरं पिप्पली
मरिचानि च ॥ १ ॥ सितापृथुकसिन्धूत्थं पटोलं नागराभयाः । क्षीरेण सह
शस्यन्ते वर्गेषु मधुरादिषु ॥ २ ॥ तथा—अम्लेष्वामलकं पथ्यं शर्करा मधुरेषु
च । पटोलः शाकवर्गेषु कटुकेष्वाद्वार्द्रकं भवेत् । कषायेषु यवाश्चैव लवणेषु च
मैन्धवम् ॥ ३ ॥

अथ क्षीरामित्राणि ।

मत्स्यमांसगुडमुद्रमूलकैः कुष्ठमावहति सेवितं पयः । शाकजाम्बवसुरादि-
सेवितं मारयत्यबुधमाशु सर्पवत् ॥ १ ॥ तथा—नैकध्यं पयसाऽक्षीयात्सर्वं चो-
ष्णं द्रवद्रावम् । मूलकाद्या हरितकास्तैलपिण्याकसर्षपाः ॥ २ ॥ कपित्थं जम्बु
जम्बीरं पनसं मातुलिङ्गकम् । वांशं करीरं बदरं कदलीं चाम्लदाडिमम् ॥ ३ ॥
फलमीदृग्विधं चान्यत्तद्वद्विल्वफलान्यपि । क्षीरे विरुद्धान्यैकध्यं सह वै भुज्यते
यदि ॥ ४ ॥ बाधिर्यमान्ध्यं वैवर्ण्यं मूकत्वं चाथ मारणम् ॥

अथ संतानिकागुणाः ।

संतानिका स्वानुरूपा शृतदुग्धोपरि स्थिता । संतानिका गुरुः शीता वृष्या
पित्तास्रवातनुत् ॥ १ ॥ इति दुग्धगुणाः ॥

अथ दधिगुणाः ।

राव्यं दध्युत्तमं बल्यं पाके स्वादु रुचिप्रदम् । पवित्रं दीपनं स्निग्धं पुष्टिकृ-
त्पवनापहम् ॥ १ ॥ माहिपं दधि सुस्निग्धं श्लेष्मलं वातपित्तनुत् । स्वादुपा-
कमभिष्यन्दि वृष्यं गुर्वसूक्ष्मपणम् ॥ २ ॥ आजं दध्युत्तमं ग्राहि लघु दोषत्रया-
पहम् । शस्यते श्वासकासारः क्षयकार्श्येषु दीपनम् ॥ ३ ॥

अथ निःसारदुग्धदधिगुणाः । असारं दधि संग्राहि कषायं वातलं ल-
घु । विष्टम्भि दीपनं रुच्यं ग्रहणीरोगनाशनम् ॥ १ ॥

अथ मन्दादिदधिगुणाः । विदाहि सृष्टविषमूत्रं मन्दजातं त्रिदोषजित् ।
॥ १ ॥ मन्दं दुग्धवदव्यक्ततरुं किञ्चिद्धनं भवेत् । सशर्करं दधि श्रेष्ठं तृष्णा-
पित्तास्रदाहजित् ॥ २ ॥ सगुडं वातनुद्वृष्यं बृंहणं तर्पणं गुरु । न रात्रौ
दधि सेवेत न चाप्यघृतशर्करम् ॥ ३ ॥ नामुद्गसूपं नाक्षौद्रं नोष्णं नाऽऽमल-
कैर्विना । शस्यते दधि नो रात्रौ शस्तं चाम्बुघृतान्वितम् ॥ ४ ॥ रक्तपित्तक-
फोत्थेषु विकारेषु हितं न तत् । मूत्रकृच्छ्रे प्रतिश्याये शीतगे विषमज्वरे ॥ ५ ॥
अतिसारेऽरुचौ कार्श्ये दिवा च दधि शस्यते । हेमन्ते शिशिरे चैव वर्षासु
दधि शस्यते ॥ ६ ॥ शरद्रीष्मवसन्तेषु प्रायशस्तद्विगार्हितम् । दध्नस्तूपरि यत्तोयं
तन्मस्तु परिकीर्तितम् ॥ ७ ॥ मस्तु क्लमहरं बल्यं लघु भक्ताभिलाषकृत् ।
स्रोतोविशोधनाह्लादि कफतृष्णानिलापहम् ॥ अवृष्यं ग्रीणनं शीघ्रं भिनत्ति
मलसंग्रहम् ॥ ८ ॥

अथ सरगुणाः । दध्नस्तूपरि भागो यो घनः स्नेहसमन्वितः । लोके सर-
इति ख्यातो दध्नो वारि तु मस्त्विति ॥ १ ॥ सरः स्वादुर्गुरुवृष्यो वातवह्नि-
प्रणाशनः । बस्तेर्विधमनश्चाग्लपित्तश्लेष्मविवर्धनः ॥ २ ॥ इति दधिगुणाः ॥

अथ तक्रगुणाः ।

घोलं मथितमुदश्वित्तक्रं चतुर्विधं ज्ञेयम् । ससरं निर्जलं घोलं मथितं सर-
वर्जितम् । तक्रं पादजलं प्रोक्तमुदश्वित्तार्धवारिकम् ॥ १ ॥ दिवोदासप्रभृत-
यस्तक्रमर्धजलं जगुः । पादतोयं विनिगदन्त्युदश्विदपि तत्तथा ॥ २ ॥ वात-
पित्तहरं घोलं मथितं कफपित्तनुत् । तक्रं त्रिदोषशमनमुदश्वित्तकफदं स्मृ-
तम् ॥ ३ ॥ गव्यं तु दीपनं तक्रं मेध्यमर्शस्त्रिदोषनुत् । हितं गुल्मातिसारेषु
प्लीहाशौग्रहणीगदे ॥ ४ ॥ माहिपं श्लेष्मलं तक्रं सान्द्रं शोफकरं गुरु । सु-
स्निग्धं छागलं तक्रं लघु दोषत्रयापहम् ॥ ५ ॥ गुल्माशौग्रहणीशोफपाण्डूमा-
यविनाशनम् । वातेऽम्लं सैन्धवोपेतं स्वादु पित्ते सशर्करम् ॥ ६ ॥ पिबेत्तक्रं
कफे रुक्षं व्योषक्षारसमन्वितम् । मूत्रकृच्छ्रे तु सगुडं पाण्डुरोगे सचित्रकम्
॥ ७ ॥ हिङ्गुजीरयुतं घोलं सैन्धवेनावधूलितम् । तद्भवेदतिवातघ्नमर्शोतीसा-
रनाशनम् ॥ ८ ॥ सुरुच्यं पुष्टिदं बल्यं वस्तिशूलविनाशनम् । शीतकालेऽ

प्रिमाम्ने च कफवातामयेषु च ॥ ९ ॥ अरुचौ स्रोतसां रोधे तक्रं स्यादमृतो-
पमम् । नैव तक्रं क्षते दद्यान्नोष्णकाले न दुर्बले ॥ १० ॥ न मूर्छाभ्रमदाहेषु
न रोगे रक्तपित्तजे । तक्रं तल्लवणोपेतं दीपनं ग्रहणीगदे ॥ तक्रं लवणहीनं
यद्ग्रहण्यर्शोविकारकृत् ॥ ११ ॥ क्षुद्धर्धनं नेत्ररूजापहं च प्राणप्रदं शोणितमां-
सदं च । आमाभिघातं कफवातहन्तृ त्वष्टौ गुणा वै कथिता हि तत्रे ॥ १२ ॥

अथ कथिततक्रगुणाः ।

तक्रमांसं कफं कोष्ठे हन्ति कण्ठे करोति च । पीनसश्वासकासादौ पक्वमेव
विशिष्यते ॥ १ ॥ न तक्रसेवी व्यथते कदाचिन्न तक्रदग्धाः प्रभवन्ति
रोगाः । यथा सुराणाममृतं प्रधानं तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः ॥ २ ॥ त-
क्राल्लघुतरो मन्थः कूर्चिका दधितक्रवत् । गोजाविमहिषीतक्रं तद्वद्विगुणाः
पृथक् ॥ ३ ॥ कैलासे यदि तक्रमस्ति गिरिशः किं नीलकण्ठो भवेद्वैकुण्ठे
यदि कृष्णतामनुभवेदद्यापि किं केशवः । इन्द्रो दुर्भगतां क्षयं द्विजपतिर्ल-
म्बोदरत्वं गणः कुष्ठित्वं च कुबेरको दहनतामग्निश्च किं विन्दति ॥ ४ ॥ इति
तक्रगुणाः ॥

अथ नवनीतम् ।

नवनीतं हिमं गव्यं वृष्यं वर्णबलाग्निकृत् । संग्राहि वातपित्तार्शःक्षयेष्व-
र्दितकासजित् ॥ १ ॥ तद्धितं बालके वृद्धे विशेषादमृतं शिशोः । माहिषं
नवनीतं तु वातश्लेष्मकरं गुरु ॥ २ ॥ दाहपित्तश्रमहरं मेदःशुक्रविवर्धनम् ।
आजं त्रिदोषशमनं नवनीतं तयोर्वरम् ॥ ३ ॥ क्षीरोत्थं तदतिस्निग्धं चक्षुष्यं
रक्तपित्तनुत् । वृष्यं बलकरं ग्राहि मधुरं शीतलं परम् ॥ ४ ॥ नवनीतं तु
सद्यस्कं स्वादु ग्राहि हिमं लघु । मेध्यं किंचित्कषायाम्लमीषत्क्रांशसंक्रमात् ५

अथ चिरंतननवनीतगुणाः । सक्षारकटुकाम्लत्वाच्छर्द्यशःकुष्ठकोपनम् ।
श्लेष्मलं गुरु मेदस्यं नवनीतं चिरंतनम् ॥ १ ॥ इति नवनीतगुणाः ॥

अथ घृतगुणाः ।

धीकान्तिस्मृतिकारकं बलकरं मेधाकरं शुद्धिकृद्वातघ्नं श्रमनाशनं स्वरकरं
पित्तापहं पुष्टिदम् । वह्नेर्वृद्धिकरं विपाकमधुरं वृष्यं वपुःस्थैर्यदं सेव्यं गव्य-
घृतोत्तमं बहुगुणं सद्यः समावर्तितम् ॥ १ ॥ सर्पिर्गवां चामृतकं विषघ्नं च-
क्षुष्यमारोग्यकरं च वृष्यम् । रसायनं मन्दमतीव मेध्यं स्नेहोत्तमं चेति बुधाः
स्तुवन्ति ॥ २ ॥ इति गव्यम् ॥

अथ माहिषम् । सर्पिर्माहिषमुत्तमं घृतिकरं सौख्यप्रदं कान्तिदं वातश्ले-
ष्मनिबर्हणं बलकरं वर्णप्रसादक्षमम् । दुर्नामग्रहणीविकारशमनं मन्दानलो-
दीपनं चक्षुष्यं नवगव्यतः परमिदं हृद्यं मनोहारि च ॥ १ ॥

अथाऽऽजम् । आजं घृतं दीपनं च चक्षुष्यं बलवर्धनम् । कासे श्वासे क्षये वाऽपि पथ्यं पानेषु तल्लघु ॥ १ ॥

अथाऽऽविकम् । आविकं घृतमतीव गुरुत्वाद्वर्ज्यमेव सुकुमारनराणाम् । सद्य एव बलपुष्टिकरं स्यादौष्ठकं श्वयथुनाशकरं च ॥ १ ॥ इत्याविकमौष्टं च ॥

अथ नूतनघृतगुणाः । योजयेन्नवमेवाऽऽज्यं भोजने तर्पणे श्रमे । बल-क्षये पाण्डुरोगे कामलानेत्ररोगयोः ॥ १ ॥

अथ पुराणघृतम् । सर्पिः पुराणं विज्ञेयं दशवर्षं स्थितं तु यत् । सर्पिः पुरातनं श्रेष्ठं त्रिदोषतिमिरापहम् ॥ १ ॥ मूर्लाकुष्ठविषोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् । दशसंवत्सरादूर्ध्वमाज्यमुक्तं रसायनम् ॥ २ ॥ शतवर्षस्थितं यत्तु कुम्भसर्पिस्तदुच्यते । रक्षोघ्नं कुम्भसर्पिः स्यात्परतस्तु महाघृतम् ॥ ३ ॥ पेयं महाघृतं भूपैः सर्वतोऽपि गुणाधिकम् । यथा यथा जरां याति गुणवत्स्यात्तथा तथा ॥ ४ ॥ भक्षणात्कासरोगघ्नमञ्जनाच्चेत्ररोगजित् । शिरोभ्यङ्गादूर्ध्वज्वरुरोगघ्नं तत्पुरातनम् ॥ ५ ॥

अथ रोगविशेषे घृतनिषेधः । राजयक्ष्मणि बाले च वृद्धे श्लेष्माश्रये गदे । रोगे सामे विषूच्यां च विबन्धे च मदात्यये ॥ ज्वरे मन्दानले मेहे न सर्पिर्बहु मन्यते ॥ १ ॥ इति घृतगुणाः ।

अथ तैलगुणाः ।

सर्वं वातहरं तैलं विशेषात्तिलसंभवम् । तैलं संयोगसंस्कारात्सर्वरोगहरं स्मृतम् ॥ १ ॥ तिलतैलमलंकरोति केशान्मधुरं तिक्तकषायमुष्णतीक्ष्णम् । बलकृत्कफवातजन्तुखर्जूरघ्नकण्डूतिहरं च कान्तिदायि ॥ २ ॥ कण्डूहरं कान्तिविवर्धनं च वर्चोविबृद्धिघ्नरोपणं च । तिलस्य जातं खलु यच्च तैलं बालेषु वृद्धेष्वपि पथ्यमेतत् ॥ ३ ॥ न पित्तरोगे न च शोणिते च पथ्यं महावातविकारसंघे । तिलोद्भवं तैलमुदाहरन्ति वाताश्रितान्हन्ति समस्तदोषान् ॥ ४ ॥ इति तिलतैलम् ।

अथैरण्डतैलम् । तैलमेरण्डजं बल्यं गुरुष्णं मधुरं सरम् । तिक्तोष्णं पित्तलं विस्त्रं रक्तैरण्डोद्भवं भृशम् ॥ १ ॥ एरण्डतैलं क्रिमिनाशनं च सर्वत्र शूलघ्नमरुप्रणाशम् । कुष्ठापहं चापि रसायनं च पित्तप्रकोपानिलशोधनं च ॥ २ ॥ वर्ध्मगुल्मानिलकफानुदरं विषमज्वरम् । वातशूलगजेन्द्राणामेरण्डस्नेहकेसरी ॥ ३ ॥ इत्यैरण्डतैलम् ।

अथ सार्षपतैलम् । सार्षपं क्रिमिनुत्तैलं कुष्ठकण्डूहरं लघु । पित्तास्रदूषणं हन्ति मेदःकर्णशिरोग्रहान् ॥ १ ॥

अथ कुसुम्भतैलम् । कुसुम्भतैलं विष्टम्भि पाके च कटुकं गुरु । विदाहि च विशेषेण सर्वदोषप्रकोपणम् ॥ १ ॥

अथ राजिकातैलम् । सार्षपेण समं तैलं राजिकायाश्च कृच्छ्रजित् ।
कण्डूपासाहरं दद्रुकृमिनुत्तीक्ष्णकं पुनः ॥ १ ॥

अथ क्षौमादितैलगुणाः । क्षौमं तैलमचक्षुष्यं पित्तकृद्वातनाशनम् ।
अक्षजं कफवातघ्नं केश्यं दृक्श्रोत्रतर्पणम् ॥ १ ॥ इत्यतसीबिभीतकतैलम् ।

ज्योतिष्मतीभवं तैलं पित्तलं स्मृतिबुद्धिदम् । निम्बतैलं जयेत्कुष्ठव्रणमे-
हमहाकिमीन् ॥ २ ॥

अथ धान्यतैलम् । सर्वधान्यसमावर्तजातानि फलजानि च । तैलव-
त्तानि तलेपः खर्जूकण्डूविनाशनः ॥ १ ॥ इति तैलानि ॥

अथ मधुगुणाः ।

त्रिदोषघ्नं मधु प्रोक्तमन्यत्स्यात्संनिपातहम् । हिक्काश्वासक्रिमिच्छर्दिमोह-
तृष्णाविषापहम् ॥ १ ॥ माक्षिकं आमरं क्षौद्रं पौतिकं छात्रमेव च । आर्ध्य-
मौदालकं दालमित्यष्टौ मधुजातयः ॥ २ ॥ माक्षिकं तैलसंकाशं आमरं स्फ-
टिकोज्ज्वलम् । क्षौद्रं कपिशवर्णं च पौतिकं तैलसंनिभम् ॥ ३ ॥ छात्रं त-
त्पीतकपिलमार्ध्यं श्वेतपिशङ्गकम् । औदालं पीतकपिलं नानावर्णं तु दालकम्
॥ ४ ॥ माक्षिकं मधुकं श्रेष्ठं नेत्रामयहरं लघु । पौतिकं लघु संग्राहि कफघ्नं
वातपित्तकृत् ॥ ५ ॥ क्षौद्रं माक्षिकवज्जेयं विशेषान्मेहनाशनम् । आमरं
रक्तपित्तघ्नं मूत्रजाड्यकरं गुरु ॥ ६ ॥ नवीनं मध्वभिष्यन्दि स्निग्धं श्लेष्महरं
सरम् । पुराणं ग्राहि तद्भक्षं मेदोघ्नमतिलेखनम् ॥ ७ ॥ त्रिदोषशोषज्वरना-
शनं च श्वासं प्रमेहं व्रणशोधनं च । पित्तं च तृष्णां नयने जलं च रक्तं च
गुल्मं क्रिमिशूलकुष्ठम् ॥ ८ ॥ शस्त्राभिघातं ह्युरसोऽभिघातं क्षयं प्रमेहं ह्युदरं
च हिक्काम् । पित्तातिसारं ग्रहणीगदं च सर्वांश्च रोगान्विनिहन्ति क्षौद्रम् ॥ ९ ॥

अथ विशिष्टगुणाः ।

क्षये माक्षिकमुद्दिष्टं आमरं रक्तपित्तनुत् । क्षौद्रं मेहहरं प्रादुर्वर्णे पौतिक-
मुत्तमम् ॥ १ ॥ छात्रं सर्वत्र शस्तं स्यादार्ध्यं चक्षुष्यमुत्तमम् । औदालकं कु-
ष्ठहरं रुचिकृद्दालमीरितम् ॥ २ ॥ एते विशिष्टाः कथिता मधुनो मुनिभि-
र्गुणाः । प्रस्थं च मधुनः क्षीरं गवां च कुडवद्वयम् ॥ ३ ॥ निशाभयारजो
दद्यात्प्रत्येकं च पलं पलम् । मध्वऽवसानं विपचेन्मधुपाके त्वयं विधिः
॥ ४ ॥ इति मधुगुणाः ॥

अथेक्षुगुणाः ।

इक्षुः स्वादुर्गुरुः शीतो वृष्यः स्निग्धो बलप्रदः । जीवनो वातपित्तघ्नः कु-
र्यान्मूत्रकफकिमीन् ॥ १ ॥ स मूले मधुरोऽत्यर्थं मध्ये मधुर एव च । अग्रे
ग्रन्थिषु विज्ञेयो लवणो रसतस्तथा ॥ २ ॥ इति सामान्येक्षुः ॥

अथ इक्षुभेदाः—लोहितेक्षुर्गुरुः शीतो दाहपित्तास्रकृच्छ्रजित् । पौण्ड्रकः शीतलः स्निग्धो बृंहणः कफकृत्सरः ॥ १ ॥ कृष्णेक्षुस्तदुणैर्ज्ञेयो विशेषादाहनाशनः । वंशेक्षुरीपत्कफकृद्दृष्यः स्निग्धो विबन्धनुत् ॥ २ ॥ कृत्वा पौण्ड्रकगण्डकान्सुरचिरांश्चन्द्रांश्चुभिर्भावितान्प्रत्यूषेऽथ यथाबलं भजति यो युक्त्या ज्वरार्तश्चिरम् । मुक्तः स्यादचिरेण शीतकमुखाजीर्णज्वराद्यक्षमतः पित्तं याति शमं प्रयाति वपुषः पुष्टिं बलं पावकः ॥ ३ ॥ वृष्यो रक्तास्रपित्तश्रमशमनपरः शीतलः श्लेष्मदोऽल्पः स्निग्धो हृद्यश्च रुच्यो रचयति स मुदं मूत्रशुद्धिं विधत्ते । कान्तिं देहस्य धत्ते बलमपि कुरुते बृंहणस्तृप्तिदायी दन्तैर्निष्पीड्य काण्डे मृदु यदि रसितो भक्षितश्चेक्षुदण्डः ॥ ४ ॥ अभुक्ते पित्तहन्तारो भुक्ते पित्तप्रकोपणाः । भुक्तिमध्ये गुरुतमा इतीक्षूणां गुणास्त्रयः ॥ ५ ॥

अथ फाणितम् । (काकवी)—फाणितं गुर्वभिप्यन्दि दोषलं मूत्रशोधनम् ॥ १ ॥

अथ गुडः । गुडः समधुरक्षारो गुरुष्णः कफवातनुत् । अहितः पित्तरक्ते च जीर्णश्चैव रसायनः ॥ १ ॥

अथ जीर्णगुडगुणाः । पित्तघ्नः पवनापहो रुचिकरो हृद्यस्त्रिदोषार्तिनुत्संयोगेन विशेषतो ज्वरहरः संतापशान्तिप्रदः । विण्मूत्रामयनाशनोऽग्निजननः पाण्डुप्रमेहापहः स्निग्धः स्वादुरसो लघुः श्रमहरः पथ्यः पुराणो गुडः १

अथ शर्करागुणाः । सितोपला सरा गुर्वी वातपित्तहरा हिमा । वृष्या श्रमक्लमच्छर्दिदाहमूर्छामदापहा ॥ १ ॥ इति शर्करा ॥

अथ रायपुरी । रुच्या पुष्टिप्रदा स्निग्धा मोहदाहमदभ्रमान् । निहन्ति खण्डा शिशिरा गुरुः पित्तसमीरजित् ॥ १ ॥ अथातिश्वेतशर्करा—सितामत्स्यङ्किापल्ली इति मदनपालनिबंठौ चिनीशर्करा ॥ सिता हिमा सरा वृष्या बलनुत्तिकरा लघुः । तृदक्लमश्रमपित्तास्रदाहमोहानिलापहा ॥ २ ॥ माधवी शर्करा रूक्षा कफपित्तास्रजिह्वरुः ॥ इति शर्करागुणाः ॥

अथ मूत्राष्टकम् ।

माहिषाजाविगोश्वानां खराणामुग्रहस्तिनाम् । मूत्राष्टकमिति ख्यातं सर्वशास्त्रेषु संमतम् ॥ १ ॥ गोमूत्रं कटु तिक्तोष्णं सक्षारं लेखनं सरम् । लव्वग्निदीपनं मेध्यं पित्तलं कफवातजित् ॥ २ ॥ शूलगुल्मोदरानाहविकारे स्थापनादिषु । मूत्रप्रयोगसारेषु गव्यं मूत्रं प्रयोजयेत् ॥ ३ ॥ आजमूत्रं—कासश्वासापहं शोफकामलापाण्डुरोगजित् । छागं रूक्षोष्णकटुकमीषन्मारुतकोपनम् ॥ ४ ॥ अविमूत्रं—झीहोदरश्वासकासशोफवर्चोप्रहे हितम् । सक्षारकटुकं तिक्तमुष्णवातघ्नमाविकम् ॥ ५ ॥ माहिषमूत्रं—दुर्नामोदरशूलेषु कुष्ठमेहविप्लूचिषु । आनाहशोफगुल्मेषु पाण्डुरोगे च माहिषम् ॥ ६ ॥ गजमूत्रं—स-

तिक्तं लवणं भेदि वातघ्नं पित्तकोपनम् । तीक्ष्णं क्षारं किलासे च गजमूत्रं
प्रयोजयेत् ॥ ७ ॥ अश्वमूत्रं—दीपनं कटु तीक्ष्णोष्णं वातरोगविकारघ्नुत् ।
आश्वं कफहरं रुक्षं क्रिमिदद्गुविनाशनम् ॥ ८ ॥ उष्ट्रमूत्रं—औष्ट्रं कुष्ठोदरोन्मा-
दशोफार्शःक्रिमिवातनुत् । गरचेतोविकारघ्नं तीक्ष्णं जठररोगजित् ॥ ९ ॥
गर्दभमूत्रं—दीपनं गार्दभं मूत्रं क्रिमिवातकफापहम् । कषायतिक्तमेतेषु हि-
क्काश्वासहरं परम् ॥ १० ॥ मानुषमूत्रं—पित्तरक्तक्रिमिहरं रेचनं कफवात-
जित् । तिक्तं मोहहरं मूत्रं मानुषं तु विषापहं ॥ ११ ॥ इत्यष्ट मूत्राणि ॥

अथ त्रिफला ।

एका हरीतकी योज्या द्वौ च योज्यौ बिभीतकौ । चत्वार्यामलकान्येव
त्रिफलैषा प्रकीर्तिता ॥ १ ॥ त्रिफला शोथमेहघ्नी नाशयेद्विषमज्वरान् । दी-
पनी श्लेष्मपित्तघ्नी कुष्ठहन्त्री रसायनी । सर्पिर्मधुभ्यां संयुक्ता सैव नेत्रामया-
जयेत् ॥ २ ॥

अथ त्रिकटु ।

पिप्पली मरिचं शुण्ठी त्रयमेतद्विमिश्रितम् । त्रिकटुं द्यूषणं व्योषं कटु-
त्रिकमथोच्यते । दीपनं रुचिदं वातश्लेष्ममन्दाग्निशूलनुत् ॥ १ ॥

अथ पञ्चकोलम् ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः । एकत्र मिश्रितैरेभिः पञ्चकोलक-
मुच्यते ॥ १ ॥ पञ्चकोलं त्रिदोषघ्नं रुच्यं दीपनपाचनं । स्वरमेदोहरं चैव शू-
लगुल्मार्तिनाशनम् ॥ २ ॥ इति पञ्चकोलम् ॥

अथ षडूषणम् ।

पञ्चकोलं समरिचं षडूषणमुदीर्यते । पञ्चकोलगुणं तत्तु विशेषाद्बह्विबर्ध-
नम् ॥ १ ॥ इति षडूषणम् ॥

अथ चतुरूषणम् ।

द्यूषणं ग्रन्थिकयुतं जायते चतुरूषणम् । चतुरूषणमाख्यातं गुणैरूषण-
बहुधैः । कफाग्निमान्द्यविष्टम्भारुचिपीनसकासननुत् ॥ १ ॥

अथ त्रिजातचातुर्जाते ।

त्वगेलापत्रकैस्तुल्यैस्त्रिसुगन्धि त्रिजातकम् । नागकेसरसंयुक्तं चातुर्जातक-
मुच्यते ॥ १ ॥ स्वरभेदश्वासकासमुखदोषविनाशनम् । वृष्यं बल्यं च योगाहं
चातुर्जातं रसायनम् ॥ २ ॥

अथ दशमूलम् ।

बिल्वोऽग्निमन्थः स्योनाकः काश्मरी पाटला तथा । शालिपर्णी पृश्निपर्णी
बृहतीद्वयगोक्षुरं । दशमूलमिदं श्वाससंनिपातज्वरापहम् ॥ १ ॥ शालिपर्णी

पृश्निपर्णी बृहती कण्टकारिका । तथा गोकुलसंयुक्तं पञ्चमूलमिदं लघु ॥ २ ॥
बिल्वोऽग्निमन्थः स्योनाकः काश्मरी चाथ पाटला । ज्ञेयं महत्पञ्चमूलं दश-
मूलमुभे युते ॥ ३ ॥ पञ्चमूलं त्रिदोषघ्नं वातघ्नं दशमूलकम् । ज्वरकासश्वा-
सशूलमन्दाग्नेयरुचिनाशनम् ॥ ४ ॥ इति दशमूलगुणाः ।

अथ मध्यमपञ्चमूलं । बलापुनर्नवैरण्डशूर्पपर्णीद्वयेन च । मध्यमं कफ-
वातघ्नं नातिपित्तकरं परम् ॥ १ ॥

अथ पञ्चवल्कलानि । न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षवेतसवल्कलैः । सवैरेकत्र
मिलितैः पञ्चवल्कलमुच्यते ॥ १ ॥ रसे कषायं शीतं च वर्ण्यं दाहतृषापहम् ।
योनिदोषं कफं शोफं हन्तीदं पञ्चवल्कलम् ॥ २ ॥

अथ पञ्चभृङ्गगुणाः । देवदाली शमी भृङ्गी निर्गुण्डी शमकं तथा ।
रोगार्ते स्नानपानार्हं पञ्चभृङ्गमिति स्मृतम् ॥ १ ॥

अथाऽम्लपञ्चकम् । बीजपूरं च जम्बीरं नारिङ्गं साम्लवेतसम् । फलप-
ञ्चाम्लकं ख्यातं तित्तिडीसहितं परम् । पञ्चाम्लकं समुद्दिष्टं तथोक्तं चाम्ल-
पञ्चकम् ॥ १ ॥

अथ पञ्चाङ्गानि । त्वक्पत्रफलमूलानि पुष्पाण्येकस्य शाखिनः । पञ्चाङ्ग-
मिति बोद्धव्यं प्राज्ञैरेकत्र मिश्रितम् ॥ १ ॥

अथ संतर्पणगुणाः ।

द्राक्षादाडिमखर्जूरैर्मर्दिताम्बु सशर्करम् । लाजचूर्णं सुमध्वाढ्यं संतर्पणमु-
दाहृतम् ॥ १ ॥ तर्पणं शीतलं पाने नेत्ररोगविनाशनम् । बल्यं रसायनं हृद्यं
वीर्यवृद्धिकरं परम् ॥ २ ॥

अथ यक्षकर्मगुणाः ।

कुङ्कुमागुरुकर्पूरकस्तूरीचन्दनानि च । महासुगन्ध इत्युक्तो नामतो यक्ष-
कर्मः ॥ १ ॥ यक्षकर्म एवं स्याच्छीतस्त्वग्दोषहृच्च सः । सुगन्धिः कान्ति-
दश्चैव शिरोर्तिविषनाशनः ॥ २ ॥

अथ राजनिघंटे केशरनामगुणाः ।

ज्ञेयं कुङ्कुममग्निशेखरमसृक्काश्मीरजं पीतकं काश्मीरं रुचिरं वरं च पिशुनं
रक्तं शठं शोणितम् । बाह्लीकं घुसृणं वरेण्यमसृणं कालेयकं जागुडं कान्तं
वह्निशिखं च केशरवरं गौरीवराक्षीरितम् ॥ १ ॥ कुङ्कुमं सुरभि तित्तकटूष्णं
कासवातकफकण्ठरुजाघ्नम् । मूर्धशूलविपदोषविमोचं रोचनं च तनुकान्तिकरं
च ॥ २ ॥ वसन्तकाले घुसृणेन युक्तः कस्तूरिकाचन्दनचारुलेपः । आवासि-
तश्चेन्नवमल्लिकाभिस्त्रिदोषजिन्मन्मथजन्मभूमिः ॥ ३ ॥

अथ पञ्चसुगन्धिकगुणाः ।

कंकोलकं पूगफलं लवङ्गकुसुमानि च । जातीफलानि कर्पूरमेतत्पञ्चसुग-
न्धिकम् ॥ १ ॥ सुगन्धिपञ्चकं शीतं रक्तपित्तविनाशनम् । हन्त्याशु मुखवै-
रान्ध्यं पीनसं वा कफास्रजित् ॥ २ ॥

अथ षड्रसाः ।

कटुस्तिक्तः कषायश्च लवणोऽम्लस्तु पञ्चमः । मधुरेण समायुक्ताः कथिताः
षड्रसा अमी ॥ १ ॥

अथ मधुरत्रिकम् । घृतं गुडोऽथ माक्षीकं विज्ञेयं मधुरत्रयम् । ज्ञेयं
त्रिमधुरं चैव प्रोक्तं च मधुरत्रयम् ॥ १ ॥

अथ समत्रिकम् । हरीतकी नागरं च गुडं चैकत्र मिश्रितम् । त्रिसमं
भाप्यते प्राज्ञैस्तथा चापि समत्रिकम् ॥ १ ॥

अथ क्षारत्रयम् । स्वर्जिक्षारो यवक्षारष्टङ्गणक्षार एव च । क्षारत्रयं स-
माख्यातं त्रिक्षारं च प्रकीर्तितम् ॥ १ ॥

अथ क्षारपञ्चकम् । पलाशतिलमुष्काणां क्षाराः स्वर्जियवाग्रजैः । समां-
शमलिताः पञ्च क्षारपञ्चकमादिशेत् ॥ १ ॥

अथ क्षाराष्टकम् । अपामार्गपलाशार्कतिलमुष्कयवाग्रजम् । स्वर्जिटङ्क-
णसंयुक्तं क्षाराष्टकमुदाहृतम् ॥ १ ॥

अथ क्षारद्वयम् । स्वर्जिका यावशूकश्च क्षारद्वयमुदाहृतम् । ज्ञेयौ वह्निसमौ
क्षारौ स्वर्जिकायावशूकजौ ॥ १ ॥ क्षाराश्चान्येऽपि गुल्माशोऽग्रहणीरुक्छिदः
क्षराः । पाचनाः क्रिमिपुंस्त्वघ्नाः शर्कराश्मरिनाशनाः ॥ २ ॥

अथ लवणत्रयम् । सैन्धवं रुचकं चैव बिडं च लवणत्रयम् । एतन्निल-
वणं प्रोक्तं नामतः शास्त्रकोविदैः ॥ १ ॥

अथ लवणपञ्चकम् । सौवर्चलं सैन्धवं च बिडमौद्गिदमेव च । सामु-
द्रेण समायुक्तं ज्ञेयं लवणपञ्चकम् ॥ १ ॥ एकद्वित्रिचतुष्पञ्चलवणानि क्रमा-
द्विदुः । मधुरं सृष्टविष्मूत्रं स्निग्धं सूक्ष्मं बलापहम् ॥ वीर्योष्णं दीपनं तीक्ष्णं
कफहृत्पित्तवर्धनम् ॥ २ ॥

अथ लवणषट्कम् । सामुद्रं सिन्धुरुचकं बिडं रोमकपांशवम् । षडेते
च समाख्याता लवणाः शास्त्रकोविदैः ॥ १ ॥

अथ चन्दनम् ।

स्वादे तिक्तं कपे पीतं छेदे रक्तं तनौ सितम् । ग्रन्थिकोटरसंयुक्तं चन्दनं
श्रेष्ठमुच्यते ॥ १ ॥ इति चन्दनपरीक्षा ॥ चन्दनं शीतलं रुक्षं तिक्तमाह्लादनं
लघु । हृद्यं वर्ण्यं विषश्लेष्मवृष्णापित्तास्रदाहजित् ॥ २ ॥ कालीयकं रक्तगुणं
विशेषाद्रोगनाशनम् । कृष्णागुरुष्णं कर्णाक्षिरोगनुच्छीतलं लघु ॥ ३ ॥

अथ गुडूचीसत्त्वगुणाः ।

छिन्नासत्त्वं हरति सकलं दुस्तरं तीव्रतापं काले चोक्तं भवति च नृणां यौ-
वनेषु ज्वरेषु । दाहं मेहं ज्वरमरुचितृदश्वासपाण्डुशंहिकाः स्त्रीणां रक्तप्रदरज-
निते रोगराजेऽपि युक्तम् ॥ १ ॥

अथ स्वरसादयः ।

अथात्र स्वरसः कल्कः क्वाथश्च हिमफाण्टकौ । ज्ञेयाः कषायाः पञ्चैते लघवः
स्युर्यथोत्तरम् ॥ १ ॥

अथ स्वरसकल्पना ।

आहतात्क्षणाकृष्टाद्रव्यात्क्षुण्णात्समुद्भवेत् । वस्त्रनिष्पीडितो यः स्या-
त्स्वरसो रस उच्यते ॥ १ ॥ कुडवं चूर्णितं द्रव्यं क्षिप्तं च द्विगुणे जले । अ-
होरात्रं स्थितं तस्माद्भवेद्वा रस उत्तमः ॥ २ ॥ आदाय शुष्कं द्रव्यं वा स्वर-
सानामसंभवे । जलेऽष्टगुणिते साध्यं पादशिष्टं च गृह्यते ॥ ३ ॥ स्वरसस्य
गुरुत्वाच्च पलमर्थं प्रयोजयेत् । निशोषितं चाग्निसिद्धं पलमात्रं रसं पिबेत्
॥ ४ ॥ मधुश्चेतागुडक्षाराजीरकं लवणं तथा । घृतं तैलं च चूर्णादीन्कोलमा-
त्रान् रसे क्षिपेत् ॥ ५ ॥ स यथा—अमृताया रसः क्षौद्रयुक्तः सर्वप्रमेहजित् ।
हरिद्राचूर्णयुक्तो वा रसो धान्याः समाक्षिकः ॥ ६ ॥

अथ पुटपाककल्पना ।

पुटपाकस्य मात्रेयं लेपस्याङ्गारवर्णता । लेपं च झङ्गुलं स्थूलं कुर्याद्वाऽङ्गुष्ठ-
मात्रकम् ॥ १ ॥ काश्मरीवटजम्बवादिपत्रैर्वेष्टनमुत्तमम् । पलमात्रो रसो
ग्राह्यः कर्षमात्रं मधु क्षिपेत् ॥ कल्कचूर्णद्रवाद्यास्तु देयाः स्वरसबहुधैः ॥ २ ॥
स यथा—तत्कालाकृष्टकुटजत्वचं तण्डुलवारिणा । पिष्टां चतुष्पलमितां ज-
म्बूपलववेष्टिताम् ॥ ३ ॥ सूत्रबद्धां च गोधूमपिष्टेन परिवेष्टिताम् । लिप्तां च
घनपङ्केन गोमये वह्निना दहेत् ॥ ४ ॥ अङ्गारवर्णी च मृदं दृष्ट्वा वह्नेः समु-
द्धरेत् । ततो रसं गृहीत्वा च शीतं क्षौद्रयुतं पिबेत् । जयेत्सर्वानतीसारान्दु-
स्तरान्सुचिरोत्थितान् ॥ ५ ॥

अथ कल्कः ।

द्रव्यमार्द्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा सजलं भवेत् । प्रक्षेपावापकल्कास्ते तन्मात्रा
कर्षसंमिता ॥ १ ॥ कल्के मधु घृतं तैलं देयं द्विगुणमात्रया । सितां गुडं समं
दद्याद्वा देयाश्चतुर्गुणाः ॥ २ ॥ स यथा—त्रिवृज्ज्ञा पञ्चवृज्ज्ञा वा सप्तवृ-
ज्ज्ञाऽथवा कणाः । पिबेत्पिष्ट्वा दशदिनं तास्तथैवापकर्षयेत् ॥ ३ ॥ एवं विंश-
दिनं सिद्धं पिप्पलीवर्धमानकम् । अनेन पाण्डुवातास्रकासश्वासारुचिज्वराः ॥
उदरार्शःक्षयश्लेष्मवाता नश्यन्त्युरोग्रहाः ॥ ४ ॥

अथ काथः ।

पांनीयं षोडशगुणं क्षुण्णे द्रव्यपले क्षिपेत् । मृत्पात्रे काथयेद्वाह्यमष्टमांशा-
वशेषितम् ॥ १ ॥ तज्जलं पाययेद्धीमान्कोष्णं मृद्वभिसाधितम् । शृतः काथः
कषायश्च निर्यूहः स निगद्यते ॥ २ ॥ आहाररसपाके च संजाते द्विपलोन्मि-
तम् । वृद्धवैद्योपदेशेन पिबेत्काथं सुपाचितम् ॥ ३ ॥ काथे क्षिपेत्सितामंशै-
श्चतुर्थाष्टमपोडशैः । पित्तवातकफातङ्गे विपरीतं मधु स्मृतम् ॥ ४ ॥ जीरकं
गुग्गुलुं क्षारं लवणानि शिलाजतु । हिङ्गु त्रिकटुकं चैव काथे शाणमितं क्षि-
पेत् ॥ ५ ॥ क्षीरं घृतं तैलमूत्रं चान्यद्रव्यं तथा क्षिपेत् । कल्कचूर्णादिकं काथे
निक्षिपेत्कर्षसंमितम् ॥ ६ ॥ स यथा—गुडूचीधान्यकारिष्टरक्तचंदनपद्मकैः ।
गुडूच्यादिरयं काथः सर्वज्वरहरः स्मृतः ॥ ७ ॥

अथ हिमकल्पना ।

क्षुण्णद्रव्यपलं सम्यक्पङ्क्तिर्निरपलैः धुतम् । निशोपितं हिमः स स्यात्तथा
शीतकषायकः ॥ तन्मानं फाण्टवज्जेयं सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥ १ ॥ स यथा—
आम्रं जम्बू च ककुभं चूर्णीकृत्य जले क्षिपेत् । हिमं तस्य पिबेत्प्रातः सक्षौद्रं
रक्तपित्तजित् ॥ २ ॥

अथ फाण्टकल्पना ।

क्षुण्णद्रव्यपले सम्यग्जलमुष्णं विनिक्षिपेत् । मृत्पात्रे कुडवोन्मानं ततस्तु
स्त्रावयेत्पटात् ॥ १ ॥ स स्याच्चूर्णद्रवः फाण्टस्तन्मानं द्विपलोन्मितम् । मधु-
श्चेतागुडादींश्च काथवत्तत्र निक्षिपेत् ॥ २ ॥ स यथा—मधूकपुष्पं मधुकं च-
न्दनं सपरूषकम् । मृणालं कमलं लोभ्रं गम्भारीं नागकेसरम् ॥ ३ ॥ त्रिफ-
लासारिवाद्राक्षालाजान्कोष्णजले क्षिपेत् । सितामधुयुतः पेयः फाण्टो वाऽसौ
हिमोऽथवा ॥ ४ ॥ वातपित्तज्वरं दाहं तृष्णामूर्छारतिभ्रमान् । रक्तपित्तं मर्दं
हन्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ ५ ॥

अथ चूर्णकल्पना ।

अत्यन्तशुष्कं यद्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम् । तत्स्याच्चूर्णं रजः क्षोदस्तन्मात्रा
कर्षसंमिता ॥ १ ॥ चूर्णे गुडः समो देयः शर्करा द्विगुणा भवेत् । चूर्णेपु भ-
जितं हिङ्गु जीरकं चेति केचन ॥ २ ॥

अथ वटककल्पना ।

वटका अथ कथ्यन्ते तन्नाम गुटिका वटी । मोदको वटिका पिण्डी गुडो
वर्तिस्तथोच्यते ॥ १ ॥ लेहवत्साध्यते वह्नौ गुडो वा शर्कराऽथवा । गुग्गुलुर्वा
क्षिपेत्तत्र तच्चूर्णं निर्मिता वटी ॥ २ ॥ कुर्यादवह्निसिद्धेन कचिद्गुग्गुलुना वटीम् ।
द्रवेण मधुना वाऽपि गुटिकां कारयेद्बुधः ॥ ३ ॥ सिता चतुर्गुणा देया व-

टीषु द्विगुणो गुडः । सर्वचूर्णसमः कार्यो गुग्गुलुर्मधु तत्समम् ॥ ४ ॥ द्रवं च द्विगुणं देयं मोदकेषु भिषग्वरैः । कर्षप्रमाणां तन्मात्रां बलं दृष्ट्वा प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥

अथावलेहः ।

काथादेर्यत्पुनः पाकाद्धनत्वं सा रसक्रिया । सोऽवलेहश्च लेहश्च तन्मात्रा स्यात्पलोन्मिता ॥ १ ॥ सिता चतुर्गुणा कार्या चूर्णाच्च द्विगुणो गुडः । द्रवं चतुर्गुणं दद्यादिति सर्वत्र निश्चयः ॥ २ ॥ दुग्धमिक्षुरसो यूषः पञ्चमूलकषायकः । वासाक्काथो यथायोग्यमनुपानं प्रशस्यते ॥ ३ ॥

अथ स्नेहपाकविधिः ।

आदौ संचारयेत्काथं दुग्धं कल्कं ततः क्रमात् । ततोऽन्यत्सुरभि द्रव्यमेष स्नेहविधिः क्रमात् ॥ १ ॥ इति मालतीमुकुरात्—तैलं कृत्वा कटाहे दृढतरविमले मन्दमन्दानले तन्पक्वं निष्फेनभावं गतमिह हि यदा शैत्यभावं समेत्य । मज्जिघ्रात्रिलोध्रैर्जलधरतनुकैः सामलैः साक्षपथ्यैः सूचीपुष्पाङ्घ्रिनीरैरुपहितमथ तैस्तैलगन्धं जहाति ॥ २ ॥ तैलस्येन्दुकलांशकेन विकसा ग्राह्या तु मूर्छाविधौ ये चान्ये त्रिफलापयोदरजनीहीबेरलोध्रान्विताः । सूचीपुष्पवटावरोहनलिकास्तस्याथ पादांशकाः पाच्यास्तैलगन्धदोषहतये कल्कीकृतास्तद्विदैः ॥ ३ ॥ आम्रजम्बूकपित्थानां बीजपूरकबिल्वयोः । शोधनं तिलतैलस्य पलवानां तु पञ्चकम् ॥ ४ ॥ कल्काच्चतुर्गुणः स्नेहः स्नेहात्काथं चतुर्गुणम् । काथाच्चतुर्गुणं वारि काथः काथ्यसमो मतः ॥ ५ ॥ मृदौ चतुर्गुणं देयं कठिनेऽष्टगुणं जलम् । कठिनात्कठिने द्रव्ये वारि षोडशभागिकम् ॥ ६ ॥ कर्षादितः पलं यावद्वारि षोडशकं क्षिपेत् । तदूर्ध्वं कुडवं यावत्क्षिपेदष्टगुणं जलम् ॥ ७ ॥ प्रस्थादितः क्षिपेन्नीरं खारी यावच्चतुर्गुणम् । शब्दहीनोऽग्निनिक्षिप्तः स्नेहः सिद्धो भवेत्तदा ॥ ८ ॥ इति । योगरत्नावलितः—यदा फेनोद्गमस्तैले फेनशान्तिश्च सर्पिषि । वर्णगन्धरसोत्पत्तिः स्नेहसिद्धिस्तदा भवेत् ॥ ९ ॥ अकल्कद्रव्ययोगानां कठिनानां विचारतः । काथो विधीयतेऽन्येषां कल्क एव भिषज्जातः ॥ १० ॥ इति वैद्यालंकारात् । ईषत्पिष्टो भवेत्कल्कः काथोऽग्निक्रथितो मतः । स्नेहपाकस्त्रिधा प्रोक्तो मृदुर्मध्यः खरस्तथा ॥ ११ ॥ ईषत्सरसकल्कस्तु स्नेहपाको मृदुर्भवेत् । मध्यपाकस्य सिद्धिश्च कल्के नीरसकोमले ॥ १२ ॥ ईषत्कठिनकल्कश्च स्नेहपाको भवेत्खरः । तदूर्ध्वं दग्धपाकः स्याद्वाहकृन्निष्प्रयोजकः ॥ १३ ॥ आमपाकश्च निर्वीर्यो वह्निमान्द्यकरो गुरुः । नस्यार्थं स्यान्मृदुः पाको मध्यमः सर्वकर्मसु ॥ १४ ॥ अभ्यङ्गार्थं खरः प्रोक्तो युञ्ज्यादेवं यथोचितम् । घृततैलगुडादींश्च साधयेन्नैकवासरे । प्रकुर्वन्त्युपिताश्चैते विशेषाद्गुणसंचयम् ॥ १५ ॥ इति शार्ङ्गधरात् । तैलं संस्थाप्य पात्रे विधिवदथ पचेद्वासरादग्निमा-

नात्काथैर्दुर्गैश्च कलकैस्तदनु सुरभिभिः शोधनीयैर्विशुद्धैः । कस्तूरीचन्दनग्लो-
जलजलदसटीरक्तपाटीरकुष्ठत्वङ्गाजिष्ठानुरुक्कागुरुनखरदलैः पीतकङ्गोलमुख्यैः
॥ १६ ॥ इति स्नेहपाकविधिः ।

अथ लाक्षारसविधिः ।

दशांशं लोघ्रमादाय तद्दशांशां च सर्जिकाम् । किञ्चिच्च बदरीपत्रं बारि
पोडशधा स्मृतम् । वस्त्रपूतो रसो ग्राह्यो लाक्षायाः पादशेषितः ॥ १ ॥

अथाऽऽसवारिष्टः ।

द्रवेषु चिरकालस्थं द्रव्यं यत्संधितं भवेत् । आसवारिष्टमेदैम्नप्रोच्यते भे-
पजोचितम् ॥ १ ॥ यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः । अरिष्टः क्वा-
थसिद्धः स्यात्तयोर्मानं पलोन्मितम् ॥ २ ॥ अनुक्तमानारिष्टेषु द्रवद्रोणे गुडा-
त्तुलाम् । क्षौद्रं क्षिपेद्गुडादर्थं प्रक्षेपं दशमांशकम् ॥ ३ ॥ ज्ञेयः शीतरसः
शीथुरपक्वमधुरद्रवैः । सिद्धः पक्वरसः सीधुः संपक्वमधुरद्रवैः ॥ ४ ॥ परिपक्वा-
न्नसंधानसमुत्पन्नां सुरां जगुः । सुरामण्डः प्रसन्ना स्यात्ततः कादम्बरी घना
॥ ५ ॥ तदधो जगलो ज्ञेयो मेदको जगलाद्धनः । पक्वोसौ हृतसारः स्यात्सुरा-
बीजं च किण्वकम् ॥ ६ ॥ यत्तालखर्जूररसैः साधितं सा हि वारुणी । कन्द-
मूलफलादीनि सस्नेहलवणानि च ॥ ७ ॥ यत्र द्रवेऽभिषूयन्ते तत्सूक्तमभि-
धीयते । विनष्टमम्लतां यातं मधु वा मधुरद्रवः ॥ ८ ॥ विनष्टः संधितो यस्तु
तच्चक्रमभिधीयते । गुडाम्बुना सतैलेन कन्दशाकफलैस्तथा ॥ ९ ॥ साधितं
चाम्लतां यातं गुडसूक्तं प्रचक्षते । एवमेवेक्षुसूक्तं स्यान्मृद्वीकासंभवं तथा
॥ १० ॥ तुषाम्बु संधितं ज्ञेयं मामैर्विदलितैर्यवैः । यवैः सुनिस्तुपैः पक्वैः सौ-
वीरं संधितं भवेत् ॥ ११ ॥ कुल्माषधान्यमण्डादिसंधितं काञ्जिकं विदुः ।
सण्डाकी संधिता ज्ञेया मूलकैः सर्षपादिभिः ॥ १२ ॥

अथ शिलाजतुकरणम् ।

मुख्यां शिलाजतुशिलां सूक्ष्मखण्डां प्रकल्पयेत् । निक्षिप्यात्युष्णपानीये
यामैकं स्थापयेत्सुधीः ॥ १ ॥ मर्दयित्वा ततो नीरं गृहीयाद्द्वस्त्रगालितम् ।
स्थापयित्वा च मृत्पात्रे धारयेदातपे बुधः ॥ २ ॥ उपरिस्थं घनं यत्स्यान्निक्षि-
पेदन्यपात्रके । धारयेदातपे तस्मादुपरिस्थं घनं नयेत् ॥ ३ ॥ एवं पुनः पुन-
नीत्वा द्विमासाभ्यां शिलाजतु । भूयात्कार्यक्षमं वह्नौ क्षिप्तं लिङ्गोपमं भवेत्
॥ ४ ॥ निर्धूमं च ततः शुद्धं सर्वकार्येषु योजयेत् । अधःस्थितं च यच्छेषं
तस्मिन्नीरं विनिक्षिपेत् ॥ ५ ॥ इति शिलाजतुकरणम् ।

अधुना धात्वादीनां लक्षणशोधनमारणगुणानाह—

स्वर्णतारारताम्राणि नागवज्रौ च तीक्ष्णकम् । धातवः सप्त विज्ञेया अष्टमः

कापि पारदः ॥ १ ॥ एकीयमतं । स्वर्णं तारं च ताम्रं च वङ्गो नागस्तु पञ्चमः । रीतिका च तथा घोषो लोहं चेत्यष्ट धातवः ॥ २ ॥ तैले तत्रे गवां मूत्रे का-
जिके च कुलत्थके । सप्तधा तप्तनिर्वापात्सर्वलोहं विशुध्यति ॥ ३ ॥

अथ सप्तधातुवर्णाः ।

स्वर्णं चम्पकवर्णाभं कृष्णत्वं तारताम्रयोः । कांस्यं धूसरवर्णं स्यान्नागः पा-
रावतप्रभः ॥ १ ॥ वङ्गं शुभ्रत्वमायाति तीक्ष्णं जम्बूफलोपमम् । अञ्जकं चे-
ष्टिकाभं स्याद्धातूनां वर्णनिर्णयः ॥ २ ॥

अथ सर्वधातुसामान्यमारणम् ।

शिलार्कदुग्धगन्धकैर्युताश्च सप्त धातवः । पुटैश्च द्वादशैः परं व्रजन्ति भ-
स्मतां सदा ॥ १ ॥

अथ स्वर्णम् ।

दाहे रक्तं सितं छेदे निकषे कुङ्कुमप्रभम् । तारशुल्बोत्थितं स्निग्धं मृदु
हेम गुरुत्तमम् ॥ १ ॥ श्वेताङ्गं कठिनं रूक्षं विवर्णं समलं दलम् । दाहे छेदे
सितं श्वेतं कषे लघु च तत्त्यजेत् ॥ २ ॥ इति लक्षणम् ।

अथ शोधनम् ।

सुवर्णमुत्तमं वह्नौ विद्रुतं निक्षिपेन्निशः । काञ्चनारद्रवैः शुद्धं काञ्चनं जा-
यते भृशम् ॥ १ ॥

अथ मारणम् ।

काञ्चने गलिते नागं षोडशांशेन निक्षिपेत् । चूर्णयित्वा तथाऽऽम्लेन घृष्ट्वा
कृत्वा च गोलकम् ॥ १ ॥ गोलकेन समं गन्धं दत्त्वा चैवाधरोत्तरम् । शरा-
वसंपुटे धृत्वा पुटेद्विशद्वनोत्पलैः ॥ २ ॥ एवं सप्तपुटेर्हेम निरुत्थं भस्म जा-
यते ॥ अन्यच्च—स्वर्णपत्रसमं नागभस्म निम्बूविलेपितम् ॥ ३ ॥ त्रिवारं वै ग-
जपुटे सुवर्णं भस्मतां व्रजेत् । अन्यच्च—पारावतमलैर्लेप्यान्यथवा कुङ्कुटोद्भवैः
॥ ४ ॥ हेमपत्राणि लेप्यानि प्रदद्यादुत्तरोत्तरम् । गन्धचूर्णं समं कृत्वा शरा-
वयुतसंपुटे ॥ ५ ॥ प्रदद्यात्कुङ्कुटपुटं पञ्चभिर्गोमयोत्पलैः । एवं नवपुटं दद्याद्-
शर्म च महापुटम् । त्रिंशद्वनोत्पलैर्दैर्यं जायते हेमभस्म तु ॥ ६ ॥

अथ गुणाः ।

स्वर्णं शीतं पवित्रं क्षयवमिकसनश्वासमेहास्रपित्तक्षैण्यक्ष्वेदक्षतास्रप्रदरग-
दहरं स्वादु तिक्तं कषायम् । वृष्यं मेधाशिकान्तिप्रदमधुरसरं काश्यहारि त्रि-
दोषोन्मादापसारशूलज्वरजयि वपुषो बृंहणं नेत्रपथ्यम् ॥ १ ॥ एतद्भस्म सु-
वर्णजं कटु घृतोपेतं द्विगुञ्जोन्मितं लीढं हन्ति नृणां क्षयाग्निसदनं श्वासं च
कासारूची । ओजोधातुविवर्धनं बलकरं पाण्ड्यामयध्वंसनं पथ्यं सर्वविषापहं

गदहरं दुष्टग्रहण्यादिहत् ॥ २ ॥ बलं च वीर्यं हरते नराणां रोगव्रजान्पोषय-
तीह काये । असौख्यकार्येव सदैव हेमापकं सदोषं मरणं करोति ॥ ३ ॥

अथ शुद्धस्वर्णदलगुणाः ।

शुद्धं स्वर्णदलं समस्तविषहृच्छूलाम्लपित्तापहं हृद्यं पुष्टिकरं क्षयव्रणहरं
कायाग्निमान्द्यं जयेत् । हिक्कानाहहरं परं कफहरं नृणां हितं सर्वदा तत्तद्दोग-
हरानुपानसहितं सर्वामयध्वंसनम् ॥ १ ॥ इति स्वर्णम् ।

अथ रौप्यम् ।

गुरु स्निग्धं मृदु श्वेतं दाहे छेदे च यत्क्षमम् । वर्णाग्र्यं चन्द्रवत्स्वच्छं तार-
मत्र गुणान्वितम् ॥ १ ॥ कृत्रिमं कठिनं रुक्षं रक्तपीतदलं लघु । दाहे छेदे
च यन्नष्टं रूप्ये दोषा दश स्मृताः ॥ २ ॥

अथ शोधनम् ।

पत्रीकृतं तु रजतं संतप्तं जातवेदसि । निर्वापितमगस्त्यस्य रसे वारत्रयं
शुचि ॥ १ ॥

अथ मारणम् ।

तारपत्राणि सूक्ष्माणि कृत्वा तत्तुल्ययोः पृथक् । सूतगन्धकयोस्तुल्यतालयोः
खल्वसंस्थयोः ॥ २ ॥ कलकं कृत्वा कुमार्यङ्गिस्तेन तानि प्रलेपयेत् । शरावसं-
पुटे रुद्धं त्रिंशद्वन्योत्पलैः पुटेत् । एवं रजतमाप्नोति मृत्तिं वारद्वयेन वै ॥ २ ॥
अन्यच्च—विधाय पिष्टं सूतेन रजतस्याथ मेलयेत् । तालगन्धसमं पश्चान्मर्द-
येन्निम्बुकद्रवैः ॥ द्वित्रैः पुटेर्भवेद्भस्म योज्यमेतद्रसादिषु ॥ ३ ॥ अन्यच्च—
साक्षिकं दरदनिम्बुजडुतं सूक्ष्मरौप्यदलसंचयं पुटेत् । द्वित्रिवारमथ भस्मतां
व्रजेत्पातकौघ इव शंकरस्मृतेः ॥ ४ ॥ इति रौप्यमारणम् ।

अथ रौप्यगुणाः ।

तारं शीतकषायमम्लमधुरं दोषत्रयच्छेदनं स्निग्धं दीपनमक्षिकुक्षिगदजिह्वाहं
विषादिं हरेत् । मेदोद्भेदि मदात्ययात्ययकरं कांत्यायुरारोग्यकृच्चक्ष्मापस्मृतिशूल-
पाण्डुपलितप्लीहज्वरघ्नं त्वरम् ॥ १ ॥ अशुद्धं रजतं कुर्यात्पाण्डुकण्डुगलग्रहान् ।
विबन्धं वीर्यनाशं च बलहानिं शिरोरुजम् ॥ २ ॥ इति रजतम् ।

अथ ताम्रम् ।

न विषं विषमित्याहुस्ताम्रं तु विषमुच्यते । एको दोषो विषे ताम्रे त्वष्टौ
दोषाः प्रकीर्तिताः ॥ १ ॥ भ्रमो मूर्छा विदाहश्च स्वेदक्लेदनवान्तयः । अरुचि-
श्चित्तसंताप एते दोषा विषोपमाः । तस्मात्संशोधयेत्ताम्रं तद्दोषविनिवृत्तये ॥ २ ॥

अथ शोधनम् ।

वज्रीदुग्धैः सलवणैस्ताम्रपत्रं विलेपयेत् । अग्नौ संताप्य निर्गुण्डीरसैः

संसेचयेन्निशः । सुहृत्कक्षीरसेचैर्वा शुल्बशुद्धिः प्रजायते ॥ १ ॥ अन्यच्च—
गोमूत्रेण पचेद्यामं ताम्रपत्रं दृढाग्निना । साम्लक्षारेण संशुद्धिस्ताम्रं प्राप्नोति
सर्वथा ॥ २ ॥ इति शोधनम् ।

अथ मारणम् ।

चूर्णं शुद्धस्य ताम्रस्य समसूतं विमर्दयेत् । खल्वे जम्बीरनीरेण तयोस्तुल्यं
तु गन्धकम् । दिनं गजपुटे पाच्यं ताम्रभस्म प्रजायते ॥ १ ॥ अन्यच्च—तिल-
पर्णीरसैस्ताम्रपत्राणि परिलेपयेत् । शुभ्रवर्णं भवेत्क्षिप्रं नात्र कार्या विचारणा ॥ २ ॥

अथान्यच्च त्रपुताम्रम् ।

शुद्धताम्रस्य पत्राणि शुक्तिद्वयमितानि च । त्रपु शुक्तिमितं तेन वेष्टयि-
त्वाऽथ तानि तु ॥ १ ॥ यामं पचेद्द्वितीयन्ने यदा त्रपुमयं तदा । तत्स्वाङ्गशीतं
निष्कास्य भक्षयेद्बलसंमितम् ॥ २ ॥ शृङ्गवेरयवक्षारशोषणैस्तन्निहन्ति च ।
कफामयारुचिह्नीहृस्त्रपुताम्रमिदं क्षणात् ॥ ३ ॥

अथ सोमनाथताम्रम् ।

शुल्बतुल्येन सूतेन बलिना तत्समेन च । तदर्धशेन तालेन शिलया च
तदर्धया ॥ १ ॥ विधाय कज्जलीं श्लक्ष्णां सूक्ष्मकज्जलसंनिभाम् । कज्जल्या
ताम्रपत्राणि पर्यायेण विलेपयेत् ॥ २ ॥ यन्नाध्यायविनिर्दिष्टवालुकायन्त्रगं पचेत् ।
प्रपचेद्युगयामं तु स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ ३ ॥ तत्तद्गोगहरानुपानसहितं ताम्रं
द्विवल्लोन्मितं तल्लीढं परिणामशूलमुदरं शूलं च पाण्डुज्वरम् । गुल्मप्लीहक्ष-
याग्निसादसदनं श्वासं च कासं तथा दुष्टां च ग्रहणीं हरेद्भुवमिदं तत्सो-
मनाथाभिधम् ॥ ४ ॥ इति सोमनाथताम्रम् । अन्यच्च योगरत्नसमुच्चये पा-
ठान्तरम्—नेपालं समरुद्रबीजमसुरस्तुल्यस्तयोस्तालकस्तस्यार्धार्धशिलां वि-
धाय विधिना श्लक्ष्णां परां कज्जलीम् । लिप्त्वा ताम्रदलान्यधोर्ध्वमनया भाण्डे
पचेद्यामकं यन्नाध्यायसमुक्तशास्त्रविधिना तत्स्वाङ्गशीतं हरेत् ॥ १ ॥

अथ सामान्यताम्रगुणाः ।

ताम्रं शीतं निहन्याद्गणकृमिजठरानाहसंघ्नीहपाण्डुश्वासश्लेष्मास्त्रवातक्षय-
पवनगदं शूलयुग्मं च गुल्मम् । कुष्ठान्यष्टादशापि स्मरबलरुचिकृद्रक्तमेदो-
म्लपित्तच्छेदि प्रोक्तं त्वशुद्धं क्रिमिसुदरगदाध्मानकुष्ठादि कुर्यात् ॥ १ ॥

इति ताम्रम् ।

अथ रीतिकांस्ये ।

रीतिका द्विविधा ज्ञेया तत्राऽऽद्या राजरीतिका । काकतुण्डी द्वितीया सा
तयोराद्या गुणाधिका ॥ १ ॥ संतप्ता काञ्जिके क्षिप्ता ताम्रा स्याद्राजरीतिका ।

काकतुण्डी तु कृष्णा स्यान्नासौ सेव्या विजानता ॥ २ ॥ कांस्यं च द्विविधं
 प्रोक्तं पुष्पतैलिकभेदतः । पुष्पं श्वेततमं तत्र तैलिकं कपिशप्रभम् ॥ ३ ॥
 एतयोः प्रथमं श्रेष्ठं संसेव्यं रोगशान्तये । राजरीतिस्तथा घोषं ताम्रवच्छो-
 धयेद्भिषक् ॥ ४ ॥ ताम्रवन्मारणं चापि तयोरुक्तं भिषग्वरैः । रीतिकायुगुलं
 रूक्षं सत्तिकं लवणं सरम् । शोधनं पाण्डुरोगघ्नं किमिधं लेखनं हिमम् ॥ ५ ॥
 कांस्यं कषायं तिक्तोष्णं लेखनं विशदं सरम् । रूक्षं गुरु च चक्षुष्यं कफपि-
 त्तहरं परम् ॥ ६ ॥ इति रीतिकांस्यमारणगुणाः ।

अथ लोहम् ।

मुण्डं तीक्ष्णं तथा कान्तमिति लोहं त्रिधा स्मृतम् । मुण्डाच्छताधिकं
 तीक्ष्णं तीक्ष्णात्कान्तं शताधिकम् ॥ १ ॥ मुण्डं तु वर्तुलं भूमौ पर्वतेषु च
 जायते । गजबल्यादि तीक्ष्णं स्यात्कान्तं चुम्बकसंभवम् ॥ २ ॥ यत्राङ्गं
 दृश्यते लोहे तीक्ष्णं लोहं तदुत्तमम् । कासीसामलकल्काक्ते लोहेऽङ्गं दृश्यते
 सुखम् ॥ ३ ॥

अथ कान्तलक्षणम् । यत्पात्रस्थः प्रसरति जले तैलबिन्दुर्न दत्तो हि-
 ज्जुर्गन्धं विसृजति निजं तिक्ततां निम्बकल्कः । पाच्यं दुग्धं भवति शिखरा-
 कारकं नैति भूमिं दग्धाङ्गाः स्युः सजलचणकाः कान्तलोहं तदुत्तमम् ॥ १ ॥

लोहशोधनम् ।

शशरक्तेन संलिप्तं किंचार्कपयसाऽयसः । दलं हुताशने ध्मातं सिक्तं त्रैफ-
 लवारिणा ॥ एवं त्रिशः कृते लोहं शुद्धिमाप्नोत्यसंशयम् ॥ १ ॥ अन्यच्च—
 क्वाथ्यमष्टगुणे तोये त्रिफला षोडशं पलम् । तत्क्वाथे पादशेषे तु लोहस्य
 पलपञ्चकम् ॥ २ ॥ कृत्वा पत्राणि तप्तानि सप्तवारं निपेचयेत् । एवं प्रली-
 यते धातुर्गिरिजो लोहसंभवः ॥ ३ ॥ इति शोधनम् ।

लोहमारणम् ।

लोहानां मारणं श्रेष्ठं सर्वेषां रसभस्मना । मध्यमं मूलिकाभिश्च कनिष्ठं
 गन्धकादिभिः ॥ १ ॥ शुद्धस्य सूतराजस्य भागो भागद्वयं बलेः । द्वयोः समं
 सारचूर्णं मर्दयेत्कन्याम्बुना ॥ २ ॥ यामद्वयं तस्य गोलं संवेष्टयैरण्डजैर्दलैः ।
 ततः सूत्रेण संबध्य स्थापयेत्ताम्रसंपुटे ॥ ३ ॥ मुद्रयेद्भद्रं तस्य मृदा संशो-
 ष्य तत्पुनः । त्रिदिनं धान्यराशिस्थं तत उद्धृत्य मर्दयेत् ॥ ४ ॥ रजस्तद्वस्त्रग-
 लितं नीरे तरति हंसवत् । सोमामृताभिधमिदं लोहभस्म प्रकीर्तितम् ॥ ५ ॥
 अन्यच्च—द्वादशांशेन दरदं तीक्ष्णचूर्णस्य मेलयेत् । कन्यानीरेण संमर्धं
 यामयुग्मं तु तत्पुनः ॥ ६ ॥ शरावसंपुटे कृत्वा पुटेद्भजपुटेन वै । सप्तधैवं
 कृतं लोहरजो वारितरं भवेत् ॥ ७ ॥ अन्यच्च—लोहचूर्णं पलं खल्वे सोरक-

स्य पलं तथा । अश्वगन्धापलं चापि सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥ ८ ॥ कुमारीन्द्रि-
नं पश्चाद्गोलकं स्तुपत्रकैः । संवेष्ट्य च मृदा लिप्त्वा पुटेद्गजपुटे पचेत् ॥ ९ ॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य सिन्दूराभमयोरजः । मृतं वारितरं ग्राह्यं सर्वकार्यकरं प-
रम् ॥ १० ॥ अन्यच्च—दाडिमीपत्रजरसैर्लोहचूर्णं च भावितम् । आतपे स-
सधा तेन पुनर्गजपुटद्वयम् ॥ ११ ॥ इत्थं कृतं च तद्गन्धं शुद्धं वारितरं भ-
वेत् । योजयेत्सर्वरोगेषु सत्यं गुरुवचो यथा ॥ १२ ॥ अन्यच्च—गृहीत्वा ती-
क्ष्णजं चूर्णं तथैव च गवां दधि । एकत्र कारयेद्गण्डे यावच्छोषत्वमाप्नुयात्
॥ १३ ॥ उद्धृत्य गालयेद्गन्धौ त्रिफलायाः पुटत्रयम् । देयं वारितरं सद्यो जाय-
ते नात्र संशयः ॥ १४ ॥ अन्यच्च—एकभागं लोहचूर्णं तत्समो नवसागरः ।
किञ्चित्तप्तोदकं ग्राह्यं सर्वं वस्त्रे निबध्य च ॥ १५ ॥ यामान्ते वर्षयेत्पाणौ स-
द्यो वारितरं भवेत् । योजयेत्सर्वरोगेषु सर्वरोगापनुत्तये ॥ २ ॥

अथ निरुत्थानम् ।

सर्वमेतन्मृतं लोहं ध्मातव्यं मित्रपञ्चकैः । इत्येवं स्यान्निरुत्थानं सेव्यं वा-
रितरं भवेत् ॥ १ ॥ पञ्चमित्रं यथा—मधुगुडघृतगुजादं कणं पञ्चमित्रं इति
अन्यच्च—रक्तिकाघृतं लाक्षया युतं क्षौद्रमिश्रितं टङ्कणान्वितम् । ऊर्णया तथा
ध्माततां गताः सप्त धातवो यान्ति जीवताम् ॥ २ ॥ गन्धकं चोत्थितं लोहं
तुल्यं खल्वे विमर्दयेत् । दिनैकं कन्यकाद्रावै रुष्का गजपुटे पचेत् ॥ इत्येवं
सर्वलोहानां कर्तव्यं तन्निरुत्थितम् ॥ ३ ॥

अथ लोहगुणाः ।

कान्तं तु शीतं मधुरं कषायमायुष्करं धातुविवर्धनं च । हन्यान्निदोषव्रण-
मेहकुष्ठघ्नीहोदरग्रन्थिविषकिर्मिंश्च ॥ १ ॥ पाण्डुं पीडयति क्षयं क्षपयति
क्षेप्यं क्षिणोति क्षणात्कासं नाशयति भ्रमं शमयति श्लेष्मामयान्खादति । अ-
स्त्रं गुल्मसञ्चलपीनसवमिश्वासप्रमेहारुचिराशून्मूलयति प्रकम्पनहरं लोहं हिमं
चाक्षुषम् ॥ २ ॥ शुद्धं पित्तकफानिलमोहं हन्ति हितं शिवशक्त्या लो-
हम् । पाण्डुगदामयशूलविनाशि प्रोक्तमशुद्धं रोगविकासि ॥ ३ ॥ ये गुणा
मृतरूपस्य ते गुणाः कान्तभस्मिनः । कान्ताभावे प्रदातव्यं रूप्यमित्याह भै-
रवः ॥ ४ ॥ कूष्माण्डं तिलतैलं च माषान्नं राजिकां तथा । मद्यमम्लरसं चै-
व त्यजेल्लोहस्य सेवकः ॥ ५ ॥ मत्स्यं जीवकवार्ताकमाषं च कारवेल्लकम् । व्या-
यामं तीक्ष्णकं मद्यं तैलाम्लं दूरतस्त्यजेत् ॥ ६ ॥

अथ लोहानुपानानि ।

वल्लं वल्लार्धमानं च यथायोगेन योजयेत् । त्रिफला लोहचूर्णं च वलीपलि-
तनाशनम् ॥ १ ॥ व्योषं भार्गी च मधुना लोहं धातुरुजापहम् । कज्जलीमधु-
कृष्णाभ्यां श्लेष्मरोगनिवारणम् ॥ २ ॥ शर्करा च चतुर्जातं रक्तपित्तरुजापहम् ।

पुनर्नवा च गोक्षीरैर्बलवृद्धिकरं परम् ॥ ३ ॥ पुनर्नवारसेनैव पाण्डुरोगनिवृ-
दनम् । हरिद्रा लोहचूर्णं च पिप्पली मधुना सह ॥ विंशतिं च प्रमेहानां
नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ४ ॥ शिलाजतुसमायुक्तं मूत्रकृच्छ्रनिवारणम् । वास-
कः पिप्पली द्राक्षा लोहं च मधुना सह ॥ ५ ॥ गुटिकां भक्षयेत्प्रातः
पञ्चकासनिवारणम् । ताम्बूलेन समायुक्तं भक्षयेद्दोहमुत्तमम् ॥ ६ ॥
अग्निदीप्तिकरं वृष्यं देहकान्तिविवर्धनम् । किमत्र बहुनोक्तेन देहलोहक-
रं मतम् ॥ ७ ॥ अल्पौषधैस्तोऽपुटैर्हीनं गन्धकपारदैः । अपक्वं लोहजं चूर्णमा-
युःक्षयकरं नृणाम् ॥ ८ ॥ इति लोहम् ।

अथ मण्डूरकरणम् ।

शताब्दमुत्तमं किट्टं मध्यं चाशीतिवार्षिकम् । अधमं षष्टिवर्षीयं ततो हीनं
विषोपमम् ॥ १ ॥ अक्षाङ्गैरर्धमेत्किट्टं लोहजं तद्गवां जलैः । सेचयेदक्षपात्रान्तः
सप्तवारं पुनः पुनः ॥ २ ॥ चूर्णयित्वा ततः काथैर्द्विगुणैस्त्रिफलोद्भवैः । आलो-
ढ्य भर्जयेद्ब्रह्मौ मण्डूरं जायते वरम् ॥ ३ ॥ मण्डूरं शिशिरं रुच्यं पाण्डुश्वयथु-
शोषजित् । हली मकं कामलां च घ्नीहानं कुम्भकामलाम् ॥ ४ ॥

इति मण्डूरम् ।

अथ वङ्गम् ।

खुरकं मिश्रकं चेति द्विविधं वङ्गमुच्यते । खुरं तत्र गुणैः श्रेष्ठं मिश्रकं न
हितं मतम् ॥ १ ॥ धवलं मृदुलं स्त्रिधं द्रुतद्रावं सगौरवम् । निःशब्दं खुरवङ्गं
स्यान्मिश्रकं श्यामशुभ्रकम् ॥ २ ॥

अथ वङ्गशोधनम् । द्रावयित्वा निशायुक्ते क्षिप्तं निर्गुण्डिकारसे । विशुध्यति
त्रिवारेण खुरवङ्गं न संशयः ॥ १ ॥

अथ वंगमारणम् ।

शाणमात्रं भवेद्ब्रह्मं भुजंगो रक्तिकामितः । खर्परे गलितं सर्वं लोहद्वर्या
विघर्षयेत् ॥ १ ॥ प्रहराजायते भस्म भिन्नकज्जलसंनिभम् । शुक्लतां याति त-
द्भस्म तीव्रखर्परवह्निना ॥ २ ॥ अन्यच्च—पलाशद्रवयुक्तेन वङ्गपत्राणि लेप-
येत् । तालेन पुटितं भस्म त्रिवारं जायते ध्रुवम् ॥ १ ॥ अन्यच्च—भल्लाततै-
लसंलितं वङ्गं वस्त्रेण वेष्टितम् । चिञ्चापिप्पलपालाशकाष्ठाग्नौ याति पञ्चताम्
॥ १ ॥ अन्यच्च—मृत्पात्रे द्राविते वङ्गे चिञ्चाश्वत्थत्वचो रजः । क्षिप्त्वा क्षि-
प्त्वा चतुर्थींशं लोहद्वर्या विचालयेत् । ततो द्वियाममात्रेण वङ्गभस्म प्रजायते
॥ १ ॥ अथ भस्मसमं तालं क्षिप्त्वाऽम्लेन प्रमर्दयेत् । ततो गजपुटे पक्त्वा
पुनरम्लेन मर्दयेत् ॥ २ ॥ तालेन दशमांशेन याममेकं ततः पुटेत् । एवं दश-
पुटैः पक्वं वङ्गं तु त्रियते ध्रुवम् ॥ ३ ॥

अथ वंगगुणाः ।

वज्रं तिक्तोष्णकं रूक्षमीषद्वातप्रकोपणम् । मेहश्लेष्मामयघ्नं च मेदोघ्नं क्रि-
मिनाशनम् ॥ १ ॥ अशुद्धममृतं वज्रं प्रमेहादिगदप्रदम् । गुल्महृद्रोगशूला-
र्शःकासश्वासवमिप्रदम् ॥ २ ॥ इति वज्रम् ।

अथ नागम् ।

द्रुतद्रावं महाभारं छेदे कृष्णं समुज्ज्वलम् । पूतिगन्धं बहिःकृष्णं शुद्धं सी-
समतोऽन्यथा ॥ १ ॥

अथ नागशोधनम् । नागो द्रुतोऽग्निसंयोगाद्रविदुग्धे निपातितः । सच्छि-
द्रहण्डिकासंस्थस्त्रिवारं शुद्धिमाप्नुयात् ॥ १ ॥

अथ नागमारणम् ।

अश्वत्थचिञ्चात्वग्भस्म नागस्य चतुरंशतः । क्षिपेन्नागं पचेत्पात्रे चालयेल्लोह-
चाटुना ॥ १ ॥ यामाद्भस्म तदुद्धृत्य भस्मतुल्यां मनःशिलां । जम्बीरैरारनालैर्वा
पिष्ट्वा रुद्ध्वा पुटे पचेत् ॥ २ ॥ स्वाङ्गशैल्यं पुनः पिष्ट्वा विंशत्यंशशिलायुतम् ।
अम्लेनैव तु यामैकं पूर्ववत्पाचयेत्पुटे । एवं षष्टिपुटैः पक्वो नागः
स्यात्सुनिरुत्थितः ॥ ३ ॥ अन्यच्च—मनःशिलागन्धयुताटरूपपरिशुतं
नागदलं विमृष्टम् । पुटैस्त्रिभिः कुम्भमितैः प्रयाति भस्मत्वमेतत्प्रवदन्ति तज्ज्ञाः
॥ ४ ॥ अन्यच्च—ताम्बूलीरससंपिष्टशिलालेपात्पुनः पुनः । द्वात्रिंशद्भिः पु-
टैर्नागो निरुत्थो जायते ध्रुवम् ॥ ५ ॥

अथ नागगुणाः ।

अत्युष्णं सीसकं स्निग्धं तिक्तं वातकफापहम् । प्रमेहतोयदोषघ्नं दीपनं चाऽऽ
मवातनुत् ॥ १ ॥ अशुद्धः कुरुते नागः प्रमेहक्षयकामलाः । तस्मात्संशुद्ध ए-
वायं मारणीयो भिषग्वरैः ॥ २ ॥ इति नागः ।

अथोपधातवः ।

अभ्रकं माक्षिकं तालं शिला नीलाञ्जनं तथा । तुल्यकं रसकं चैव प्रोक्ताः
सप्तोपधातवः ॥ १ ॥

अथाभ्रकम् ।

शुद्धं रक्तं तथा पीतं कृष्णं चैव यथाक्रमम् । पिनाकं दर्दुरं नागं वज्रं चेति
चतुर्विधम् ॥ १ ॥ दलानि मुञ्चत्यनले पिनाकं भेकं स्वरावं कुरुतेऽनलस्थम् ।
फूत्काररावं भुजगः करोति ह्यविक्रियं वह्निगतं सुवज्रम् ॥ २ ॥ पिनाकं कुरुते कु-
ष्ठं दर्दुरं मृत्युदायकम् । नागं भगदरं कुर्याद्वाज्राभ्रं गदवृन्दजित् ॥ ३ ॥

अथाभ्रकशोधनम् ।

प्रतप्तं सप्तवाराणि निक्षिप्तं काञ्जिकेऽभ्रकम् । निर्दोषं जायते नूनं प्रक्षिप्तं

वाऽपि गोजले । त्रिफलाकथिते वाऽपि गवां दुग्धे विशेषतः ॥ १ ॥ अन्यच्च—
कृष्णाभ्रकं धमेद्वह्नौ ततः क्षीरे विनिक्षिपेत् । भिन्नपत्रं ततः कृत्वा तण्डुलीया-
म्लयोर्द्रवैः ॥ २ ॥ भावयेदष्टयामं तु ह्येवं शुध्यति चाभ्रकम् ॥ ३ ॥

अथ धान्याभ्रकम् । पादांशशालिसंयुक्तमभ्रं बद्ध्वाऽथ कम्बले । त्रिरात्रं
स्थापयेन्नीरे तत्क्लिन्नं मर्दयेत्कैः ॥ १ ॥ कम्बलाद्गलितं सूक्ष्मं बालुकासदृशं
च यत् । तद्धान्याभ्रमिति प्रोक्तमथ मारणसिद्धये ॥ २ ॥

अथाभ्रमारणम् ।

कृत्वा धान्याभ्रकं तच्च शोषयित्वाऽथ मर्दयेत् । अर्कक्षीरैर्दिनं खल्वे चक्रा-
कारं च कारयेत् ॥ १ ॥ वेष्टयेदर्कपत्रैश्च सम्यग्गजपुटे पचेत् । पुनर्मर्द्यं पुनः
पाच्यं सप्तवारं पुनः पुनः ॥ २ ॥ ततो वटजटाकाथैस्तद्देयं पुटत्रयम् । त्रिय-
ते नात्र संदेहः सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ३ ॥ तुल्यं घृतं मृताभ्रेण लोहपात्रे
विपाचयेत् । घृते जीर्णे तदभ्रं तु सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ४ ॥ धान्याभ्रकं र-
विक्षीरै रविमूलद्रवेण वा । पिष्ट्वा पिष्ट्वा पुटेत्पाकात्सप्तधा त्रियतेऽभ्रकः ॥ ५ ॥
अन्यच्च—धान्याभ्रं मेघनादैः कदलिघनजलैश्चङ्कणाङ्गोलतोयैः खल्वे संमर्द्यं
गाढं तदनु गजपुटान्द्रादशैवं प्रदद्यात् । मीनाक्षीभृङ्गतोयैस्त्रिफलजलयुतैर्मर्द-
येत्सप्तवारं गन्धं तुल्यं च दत्त्वा प्रवरगजपुटात्पञ्चतां याति मेघः ॥ ६ ॥
अन्यच्च—दुग्धत्रयं कुमार्यम्बु गजमूत्रं नृमूत्रकम् । वटभृङ्गमजारक्तमेभिर-
भ्रं सुमर्दितम् ॥ शतधा पुटितं भस्म जायते पञ्चरागवत् ॥ ७ ॥ अन्यच्च—
धान्याभ्रकं समादाय मुस्ताकाथैः पुटत्रयम् । तद्वत्पुनर्नवानीरैः कासमर्दरसै-
स्तथा ॥ ८ ॥ नागवल्लीदलैः सर्पिः क्षीरैर्देयं पृथक् पृथक् । दिने दिने मर्दयि-
त्वा काथैर्वटजटोद्भवैः ॥ ९ ॥ दत्त्वा पुटत्रयं पश्चात्त्रिपुटं सुसलीद्रवैः । त्रिर्गो-
क्षुरर्कषायेण त्रिः पुटेद्गानरीरसैः ॥ १० ॥ मोचाकन्दरसैः पाच्यं त्रिवारं को-
किलाक्षजैः । रसैः पुटेत्ततो धेनुक्षीरादेकं पुटं मृदु ॥ ११ ॥ दध्ना घृतेन म-
धुना स्वच्छया सितया तथा । एकमेकं पुटं दद्यादभ्रस्यैवं मृतिर्भवेत् ॥ १२ ॥
अन्यच्च—धान्याभ्रकस्य भागैकं द्वौ भागौ टङ्कणस्य च । पिष्ट्वा तदन्धमूषा-
यां रुद्ध्वा तीव्राग्निना पचेत् ॥ स्वभावशीतलं चूर्णं सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ १३ ॥
इति मारणम् ।

अथअभ्रकगुणाः ।

निश्चन्द्रकं भजेत्तत्तु शुद्धदेहे रसायनम् । सचन्द्रं विषवज्जेयं मृत्युकृद्वा-
घ्रोमवत् ॥ १ ॥ वराम्बु गोघृतं चाभ्रं कलाषडदिक्समांशकम् । मृद्वग्निना
पचेद्दोहे ह्यमृतीकरणं त्विदम् ॥ २ ॥ वेष्टव्योपसमन्वितं घृतयुतं वल्लोन्मितं
सेवितं दिव्याभ्रं क्षयपाण्डुरुग्रहणिकाशूलामकोष्ठामयान् । आर्तिश्चासगदं प्र-
मेहमरुचिं कासामयं दुर्धरं मन्दाग्निं जठरव्यथां विजयते खं हन्ति सर्वाभयान्

॥ ३ ॥ गौरीतेजः परमममृतं वातपित्तक्षयघ्नं प्रज्ञाबोधि प्रशमितजरं वृ-
ष्यमायुष्यमश्रयम् । बल्यं स्निग्धं रुचिदमकफं दीपनं शीतवीर्यं तत्तद्योगैः स-
कलगदहृद्योम सूतेन्द्रबन्धि ॥४॥ क्षाराम्लं द्विदलं कोलं कर्कटी कारवेल्लकम् ।
वृन्ताकं च करीरं च तैलं चाग्रे विवर्जयेत् ॥ ५ ॥

अथाभ्रकानुपानानि ।

अभ्रकं च निशायुक्तं पिप्पली मधुना सह । विंशतिं च प्रमेहानां नाशयेन्ना-
त्र संशयः ॥ १ ॥ अभ्रकं हेमसंयुक्तं क्षयरोगविनाशनम् । रौप्यहेमाभ्रकं चै-
व धातुवृद्धिकरं परम् ॥ २ ॥ अभ्रकं च हरीतक्या गुडेन सह योजितम् ।
एलाशर्करया युक्तं रक्तपित्तविनाशनम् ॥ ३ ॥ त्रिकटु त्रिफलां चैव चातुर्जातं
सशर्करम् । मधुना लेहयेत्प्रातः क्षयार्शःपाण्डुनाशनम् ॥४॥ गुडूचीसत्त्वखण्डा-
भ्यां मिश्रितं मेहनाशनम् । एलागोक्षुरभूधात्रीसितागव्येन मिश्रितम् ॥ ५ ॥
प्रातः संसेवनान्नित्यं मेहकृच्छ्रनिवारणम् । पिप्पलीमधुसंयुक्तं भ्रमजीर्णज्वराप-
हम् ॥ ६ ॥ मधुत्रिफलया युक्तं दृष्टिपुष्टिकरं मतम् । मूर्वासत्त्वयुतं व्योम
व्रणानां च विनाशनम् ॥ ७ ॥ गोक्षीरक्षीरकन्दाभ्यां बलवृद्धिकरं परम् । भ-
ल्लातकयुतं व्योम त्वर्शोदोषनिवारणम् ॥ ८ ॥ नागरं पौष्करं भार्गी गगनं म-
धुना सह । अश्वगन्धायुतं खादेद्वातव्याधिनिवारणम् ॥ ९ ॥ चातुर्जातं सितम्
चाभ्रं पित्तरोगनिवारणम् । कटफलं पिप्पली क्षौद्रं श्लेष्मरोगनिवारणम् ॥१०॥
सर्वक्षारयुतं चाभ्रमग्निवृद्धिकरं परम् । मूत्राघातं मूत्रकृच्छ्रमश्वरीमपि नाश-
येत् ॥ ११ ॥ विजयारससंयुक्तं शुक्रस्तम्भकरं परम् । लवङ्गमधुसंयुक्तं धातु-
वृद्धिकरं परम् ॥ १२ ॥ गोक्षीरं शर्करायुक्तं पित्तरोगविनाशनम् । अभ्रकं वि-
धिसंयुक्तं पथ्ययोगेन योजितम् ॥ १३ ॥ वलीपलितनाशं स्याज्जीवेच्च शरदांश-
तम् । वेल्लव्योषसमन्वितं घृतयुतं बल्लोन्मितं सेवितं दिव्याभ्रं क्षयपाण्डुसंग्रह-
णिकाशूलं च कुष्ठामयम् । सर्वश्वासगदं प्रमेहमरुचिं कासामयं दुर्धरं मन्दा-
ग्निं जठरव्यथां परिहरेच्छेष्माभ्रमयान्निश्चितम् ॥ १४ ॥ नातः परतरं किञ्चिज्जरा-
मृत्युविनाशनम् ॥ १५ ॥ इति सहस्रपुटाभ्रकानुपानानि ।

अथ स्वर्णमाक्षिकम् ।

स्वर्णवर्णं गुरु स्निग्धमीषशीलच्छविच्छटम् । कषे कनकवद्गुहं तद्वरं हेम
माक्षिकम् ॥ १ ॥ अशुद्धं माक्षिकं कुर्यादान्ध्यं कुष्ठं क्षयं क्रिमीन् । शोधनीयं
प्रयत्नेन तस्मात्कनकमाक्षिकम् ॥ २ ॥

अथ शोधनम् । त्रिभागं माक्षिकं ग्राह्यं चतुर्थांशेन सैन्धवम् । जम्बीरजर-
सैर्वाऽपि बीजपूरद्वैः पचेत् ॥ १ ॥ घर्षितं लोहपात्रे च याति पात्रं च रक्त-
ताम् । ततः शुद्धत्वमायाति स्वर्णमाक्षिकमीदृशम् ॥ २ ॥

अथान्यप्रकारः । एरण्डतैललुङ्गाम्बुसिद्धं शुध्यति माक्षिकम् । शुद्धं वा कदलीकन्दतोयेन घटिकाद्वयम् । तप्तं क्षिप्तं वराकाथे शुद्धिमायाति माक्षिकम् ॥ १ ॥ अन्यच्च—अगस्तिपत्रनिर्यासैः शिग्रुमूलं सुपेषितम् । तन्मध्ये पुटितं शुद्धं निम्बूजाम्लेन पाचितम् ॥ २ ॥ इति शोधनम् ।

अथ स्वर्णमाक्षिकमारणम् ।

माक्षिकस्य चतुर्थांशं दत्त्वा गन्धं विमर्दयेत् । उरुबूकस्य तैलेन ततः कार्या सुचक्रिका ॥ १ ॥ शरावसंपुटे कृत्वा पुटेद्भजपुटेन च । धान्यस्य तुषमूर्ध्वाधो दत्त्वा शीतं समुद्धरेत् । सिन्दूरामं भवेद्भस्म माक्षिकस्य न संशयः ॥ २ ॥ अन्यच्च—अजामूत्रेऽथवा तैले कषाये वा कुलत्थजे । तत्रे वा घर्षितं पक्वं त्रियते स्वर्णमाक्षिकम् ॥ ३ ॥ इति मारणम् ।

अथ स्वर्णमाक्षिकगुणाः ।

माक्षिकं तिक्तमधुरं मेहार्शःक्षयकुष्ठनुत् । कफपित्तहरं शीतं योगवाहि रसायनम् ॥ १ ॥ माक्षिको रजतहाटकप्रभः शोधितोऽतिगुणदः सुसेवितः । मेहकुष्ठमिशोफपाण्डुतापस्मृतीर्हरति सोऽश्मरीं जयेत् ॥ २ ॥ मन्दानलत्वं बलहानिमुग्रां विष्टम्भतामन्यगदांश्च दुष्टान् । करोति मालां व्रणपूर्विकां च माक्षिकधातुर्गुरुरप्यपक्वः ॥ ३ ॥ माक्षिकधातुः सकलामयघ्नः प्राणो रसेन्द्रस्य परं हि वृष्यः । दुर्मेललोहद्वयमेलकश्च गुणोत्तरः सर्वरसायनाग्र्यः ॥ ४ ॥ इति स्वर्णमाक्षिकम् ।

अथ तारमाक्षिकम् ।

कांस्यवत्तारमाक्षिकं कषे घृष्टं तु रूप्यवत् । गुरु स्निग्धं सितं यत्तच्छ्रेष्ठं स्यात्तारमाक्षिकम् ॥ १ ॥ स्वर्णमाक्षिकवद्दोषा विज्ञेयास्तारमाक्षिके । अतस्तद्दोषशान्त्यर्थं शोधनं कथ्यते यथा ॥ २ ॥

अथ शोधनम् । कर्कोटीमेषशृङ्गीजै रसैर्जम्बीरजैर्दिनम् । आतपे भावना देया शुद्धं स्यात्तारमाक्षिकम् ॥ १ ॥ इति शुद्धिः ।

अथ तन्मारणम् । स्वर्णमाक्षिकवज्ज्ञेयं तारमाक्षिकमारणम् । विमलाया गुणाः किञ्चिन्न्यूनाः कनकमाक्षिकात् ॥ १ ॥

अथ तालकविधिः ।

अशुद्धं तालमायुर्हृत्कफमारुतमेहकृत् । तापस्फोटाङ्गसंकोचान्कुरुते तेन शोधयेत् ॥ १ ॥

अथ शोधनम् । तालकं कणशः कृत्वा तच्चूर्णं काञ्जिके क्षिपेत् । दोलायत्रेण यामैकं ततः कूष्माण्डजद्रवैः ॥ १ ॥ तिलतैले पचेद्यामं यामं च त्रिफलाजले । चूर्णोदके च यामैकं पक्वं शुध्यति तालकम् ॥ २ ॥

अथ तालकमारणम् ।

सदलं तालकं शुद्धं पुनर्नव्या रसेन तु । खल्वे विमर्दयेदेकदिनं पश्चाद्वि-
शोषयेत् ॥ १ ॥ संशोष्य गोलकं तस्य कुर्यात्तच्च विशोषयेत् । ततः पुनर्नवा-
क्षारैः स्थाल्यर्धं तु प्रपूरयेत् ॥ २ ॥ तत्र तद्गोलकं धृत्वा पुनस्तेनैव पूरयेत् ।
आकण्ठं पिठरं तस्य पिधानं धारयेन्मुखे ॥ ३ ॥ स्थालीं चुह्यां समारोप्य क्र-
माद्वह्निं विवर्धयेत् । दिनान्यन्तरशून्यानि पञ्च वह्निं प्रदीपयेत् ॥ ४ ॥ एवं तु
त्रियते तालं मात्रा तस्यैकरक्तिका । अनुपानान्यनेकानि यथायोग्यं
प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥

अथ तालकगुणाः ।

हरितालं कटु स्निग्धं कषायोष्णं हरेद्विषम् । कण्डूकुष्ठाल्यरोगास्रवातपित्तक-
फव्रणान् ॥ १ ॥ तालकं हरते रोगान्कुष्ठं मृत्युजरापहम् । शोधितं कुरुते वीर्यं
कान्तिं वृद्धिं तथाऽऽयुषः ॥ २ ॥

अथ मनःशिला ।

मनःशिला मन्दबलं करोति जन्तुं ध्रुवं शोधनमन्तरेण । मलस्य बन्धं कि-
ल मूत्ररोगं सशर्करं कृच्छ्रगदं च कुर्यात् ॥ १ ॥

अथ मनःशिलाशोधनम् ।

पचेद्भयहमजामूत्रे दोलायत्रे मनःशिलाम् । भावयेत्सप्तधा मूत्रैरजायाः शुद्धि-
मृच्छति ॥ १ ॥ अन्यच्च—अगस्तिपत्रतोयेन भाविता सप्तवारकम् । शृङ्ग-
वेररसे वाऽपि विशुध्यति मनःशिला ॥ २ ॥

अथ मनःशिलागुणाः ।

मनःशिला गुरुर्वर्ण्या सरोष्णालेखनी कटुः । तिक्ता स्निग्धा विषश्वासकास-
भूतविषास्रनुत् ॥ १ ॥ इति मनःशिला ।

अथ स्रोतोञ्जनम् ।

स्रोतोञ्जनं द्विधा प्रोक्तं श्वेतकृष्णप्रभेदतः । त्रिफलावारिणा स्वेद्यं तद्वयं
शुद्धिमृच्छति ॥ १ ॥

अथ गुणाः । सौवीरं ग्राहि मधुरं चक्षुष्यं कफपित्तजित् । हिष्माक्षयास्रनु-
च्छीतं स्रोतोञ्जनमपीदृशम् ॥ १ ॥

अथ तुथम् ।

विष्टया मर्दयेत्तुथं मार्जारिककपोतयोः । दशांशं टङ्कणं दत्त्वा पचेल्लघुपुटे
ततः पुटं दत्त्वा पुटं क्षौद्रैर्देयं तुथं विशुध्यति ॥ १ ॥ अन्यच्च—ओतोर्विशा ॥

समं तुत्थं सक्षौद्रं-टङ्कणाङ्घ्रियुक् । त्रिधैवं पुटितं शुद्धं वान्तिभ्रान्तिविवर्जितम् ॥ १ ॥

अथ गुणाः ।

तुत्थकं कटुकं क्षारं कषायं विशदं लघु । लेखनं भेदि चक्षुष्यं कण्डूकृमि-विषापहम् ॥ कफास्रपित्तकुष्ठघ्नं मेहमेदोविनाशनम् ॥ २ ॥ इति तुत्थम् ॥

अथ खर्परम् ।

नृमूत्रे वाऽथ गोमूत्रे सप्ताहं रसकं पचेत् । दोलायत्रेण शुद्धं स्यात्ततः कार्येषु योजयेत् ॥ १ ॥ खर्परं कटुकं क्षारं कषायं वामकं लघु । लेखनं भेदनं शीतं चक्षुष्यं कफपित्तनुत् ॥ विषास्रकुष्ठकण्डूनां नाशनं परमं मतम् ॥ २ ॥ इति धानूपधातुशोधनमारणगुणाः ॥

अथ पारदः ।

रसो विप्रः सितो रक्तः क्षत्रियः पीत ऊरुजः । शूद्रः कृष्ण इति प्रोक्तो वर्णभेदाच्चतुर्विधः ॥ १ ॥ ब्राह्मणः कल्प्यते कल्पे गुटिकायां च बाहुजः । धातुवादे तथा वैश्यः शूद्रश्चेतरकर्मणि ॥ २ ॥ अन्तः सुनीलो बहिरुज्ज्वलाङ्गो मध्याह्नचन्द्रप्रतिमप्रकाशः । शस्तोऽथ धृत्रः परिपाण्डुरश्च चित्रो न योज्यो रसकर्मसिद्धयै ॥ ३ ॥ पूर्वैर्दोषा रसेन्द्रस्य ये च प्रोक्ता मनीषिभिः । अतस्तेषां प्रशान्त्यर्थं प्रोच्यते कर्म सांप्रतम् ॥ ४ ॥ यथा—मलशिखिविषनामानो रसस्य नैसर्गिकास्त्रयो दोषाः । मूर्छां मलेन कुरुते शिखिना दाहं विषेण मृत्युं च ॥ ५ ॥ अन्यच्च—मलेन मूर्छां दहनेन दाहं विषेण मृत्युं वितनोति सूतः । मलादिदोषत्रयमेतदत्र नैसर्गिकं शुद्धिमतोऽभिधास्ये ॥ १ ॥ नागो वज्रो मलो वह्निश्चाञ्चल्यं च गिरिर्विषम् । पारदे कञ्चुकाः सप्त सन्ति नैसर्गिका इमे ॥ २ ॥ रक्तेष्टि कानिशाधूमसारोर्णाभस्मचूर्णकैः । जम्बीरद्रवसंयुक्तैर्नागदोषापनुत्तये ॥ ३ ॥ विशालाङ्गोलमूलानां रजसा काञ्जिकेन च । शनैः शनैः स्वहस्तेन वज्रदोषविमुक्तये ॥ ४ ॥ राजवृक्षस्य मूलोत्थचूर्णेन सह कन्यका । मलदोषापनुत्त्यर्थं चित्रको वह्निदूषणम् ॥ ५ ॥ चाञ्चल्यं कृष्णधतूरो गिरिं हन्ति कटुत्रयम् । त्रिफला विषनाशाय कन्यका सप्त कञ्चुकान् ॥ ६ ॥

अथान्यः प्रकारः । आरग्वधो हन्ति मलं प्रयत्नात्कुमारिका सप्त हि कञ्चुकांश्च । अङ्गोलमूलं च विषं निहन्याद्रसस्य वह्निः किल पावकं च ॥ १ ॥ प्रत्येकं सप्तवारं च मर्दितः पारदो भवेत् । तदा विशुद्धतां याति सर्वयोगार्हितो भवेत् ॥ २ ॥ अन्यच्च—कुमारीत्रिफलाव्योषचित्रकं निम्बुकं रसम् । दिनैकं मर्दितं कृत्वा शुद्धो भवति पारदः ॥ १ ॥ अथ च—आरनालेन चोष्णेन क्षालयेत्प्रतिमर्दनम् । रसं तत्र प्रयातं तु शोषयित्वाऽथ पातयेत् ॥ १ ॥ गृहीत्वा प्रक्षिपेत्सू-

तं स्यादेवं पारदः शुचिः । पारदात्पोडशांशं तु मिलित्वा सकलं भिषक् ॥२॥
चूर्णं प्रदेयं च पलं मर्दने तप्तखल्वके । अजाशकृत्तुषाग्निं च खनित्वा भूमि
मावपेत् ॥ ३ ॥ तस्योपरि स्थितं खल्वं तप्तखल्वं जगुर्बुधाः । एतन्मर्दनमाख्या-
तं रससंशुद्धये बुधैः ॥ ४ ॥ इति मर्दनम् । त्र्यूषणं त्रिफला बन्ध्याकन्दक्षुद्रा
द्वयान्वितम् । चित्रकेण निशाक्षारकन्यार्ककनकद्रवैः ॥ १ ॥ सूतं कृतेन काथे-
न वारान्सप्त विमर्दयेत् । इत्थं संमूर्च्छितः सूतो जह्यात्सप्तापि कञ्जुकान् ॥२॥
इति मूर्च्छनम् ।

अथोत्थापनम् ।

तत उत्थापयेत्सूतमातपे निम्बुकार्दितम् । उत्थापनं विशिष्टं तु चूर्णपातन-
यन्त्रके । घृत्वाऽग्नावूर्ध्वभाण्डान्तं संग्रहेत्पारदः शुचिः ॥ १ ॥ इत्युत्थापनम् ।

अथ स्वेदनम् ।

रसं चतुर्गुणे वस्त्रे रसोनकशरावके । नियज्य दोलायत्रे तु प्रकल्प्य दिवसं प-
चेत् ॥ १ ॥ सव्योषत्रिफलावह्निकन्याकलके तुषाम्बुनि । शेषदोषापनुत्त्यर्थमि-
दं स्वेदनमीरितम् ॥ २ ॥ इति स्वेदनम् । पलादूनस्य सूतस्य शतपलाधिकस्य
च । न संस्कारः प्रकर्तव्यः संस्कारः स्यात्ततोऽपरः ॥ २ ॥ शुभेऽहनि प्रकर्तव्य
आरम्भो रसशोधने । एकान्ते धामनि शुभे पुराऽभ्यर्च्योहि भैरवः ॥ २
इति रसशोधनप्रकारः ।

अथ गुणागुणाः ।

सूतोऽशुद्धतया गुणं न कुरुते कुष्ठाग्निमान्द्यक्रिमिच्छर्मारोचकजाड्यदाहम-
रणं धत्ते नृणां सेवनात् । शुद्धः स्यात्सकलामयौघशमनो यो योगवाहो मृतो
युक्त्या षड्गुणगन्धयुग्मादहरो योगेन धात्वादिभुक् ॥ १ ॥ मूर्च्छार्तो गदहृत्त-
थैव खगतिं दत्ते निबद्धोऽर्थदस्तद्गस्सामयवार्धकादिहरणं दृक्पुष्टिकान्तिप्रदम् ।
वृष्यं मृत्युविनाशनं बलकरं कान्ताजनानन्ददं शार्दूलालुलसत्त्वकृत्कमभुजां
योगानुसारि स्फुटम् ॥ २ ॥ अन्यच्च—मूर्च्छां गतो यो हरते च रोगान्बद्धो यदा
खेचरतामुपैति । लीनो भवेत्सर्वसमृद्धिदायी विराजतेऽसौ नितरां रसेन्द्रः ॥ १ ॥
मूर्च्छित्वा हरति रुजं बन्धनमनुभूय मुक्तिदो भवति । अमरीकरोति हि मृतः
कोऽन्यः करुणाकरः सूतात् ॥ २ ॥ अर्थाः सहाया निखिलं च शास्त्रं हस्त-
क्रिया कर्मणि कौशलं च । नित्योद्यमस्तत्परता च बह्निरेभिर्गुणैः सिध्यति सू-
तकेन्द्रः ॥ ३ ॥ अथवा दरदाकृष्टं स्विन्नं लवणाम्बुभाजि दोलायाम् । रसमा-
दाय यथेच्छं कर्तव्यस्तेन भैषजो योगः ॥ ४ ॥ निम्बूरसेन संपिष्टं ग्रहरं दरदं
दृढम् । ऊर्ध्वपातनयन्त्रेण संग्राह्यो निर्मलो रसः ॥ ५ ॥ इति दरदाकृष्टिः ।

अथ रसस्य मुखकरणम् ।

अथ षड्विन्दुकीटैश्च रसो मर्द्यस्त्रिवासरम् । लवणाम्लैर्मुखं तस्य जायते धा-
तुभक्षकम् ॥ १ ॥ अन्यच्च—सास्यो रसः स्यात्पटुशिग्रुतुथैः सराजिकैः शोषण-
कैस्त्रिरात्रम् । पिष्टस्ततः स्विन्नतनुः सुवर्णमुख्यानयं खादति सर्वधातून् ॥ १ ॥
इति मुखकरणम् ।

अथ षड्गुणगन्धकजारणम् ।

तप्तखल्वे रसं क्षिप्त्वा अधश्चुह्यास्तुषाग्निभिः । स्तोकं स्तोकं क्षिपेद्गन्धमेवं वै
षड्गुणं चरेत् ॥ १ ॥ अथवा कच्छपयन्त्रेण गन्धकजारणम्—मृत्कुण्डे निक्षिपे-
त्रीरं तन्मध्ये च शरावकम् । मृत्कुण्डे च पिधानाभं मध्ये मेखलया युतम्
॥ १ ॥ क्षिप्त्वा च मेखलामध्ये संशुद्धं रसमुत्तमम्, । रसस्योपरि गन्धस्य
रजो दद्यात्समांशकम् ॥ २ ॥ दत्त्वोपरि शरावं च भस्ममुद्रां प्रदापयेत् ।
तस्योपरि पुटं दद्याच्चतुर्भिर्गोमयोपलैः ॥ ३ ॥ एवं पुनः पुनर्गन्धं षड्गुणं
जीर्यते बुधैः । गन्धे जीर्णे भवेत्सूतस्तीक्ष्णाग्निः सर्वकर्मसु ॥ ४ ॥

इति गन्धकजारणम् ।

अथ तद्गुणाः ।

समे गन्धे तु रोगघ्नो द्विगुणे राजयक्ष्मनुत् । जीर्णे तु त्रिगुणे गन्धे कामिनीद-
र्पनाशनः ॥ १ ॥ चतुर्गुणे तु तेजस्वी सर्वशास्त्रविशारदः । भवेत्पञ्चगुणे सिद्धः
षड्गुणे मृत्युनाशनः ॥ २ ॥ इति षड्गुणगन्धकजारणम् । दिनमेकं रसेन्द्रस्य
यो ददाति हुताशनम् । द्रवन्ति तस्य पापानि कुर्वन्नपि न लिप्यते ।

इति शिवागमोक्तम् ।

अथ रसबन्धनम् ।

रम्भा वीरास्तुही चैव क्षीरकञ्चुकिरेव च । दिनारिश्चैव गोरम्भा मीनाक्षी
काचमाचिका । एभिस्तु मर्दितः सूतः पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १ ॥ अन्यच्च—
पुष्पितमनोजमन्दिरमध्ये सूतो नियोजितो युक्त्या । बद्धो भवति कियद्भि-
र्दिवसैः पुष्पप्रभावेण ॥ २ ॥ अन्यच्च—भूलताशीवरीमूलं वारिणा मर्दयेद्दृढ-
म् । तन्मूषां लेपयेन्मध्ये तन्मध्ये निक्षिपेद्रसम् ॥ ३ ॥ पञ्चटङ्कप्रमाणां तां
मूषामङ्गारके क्षिपेत् । एवं बद्धो भवेत्सूतो मूषान्तःस्थो दृढो भवेत् ॥ ४ ॥
मुखमध्यगतस्तिष्ठेन्मुखरोगविनाशनः । शरीरे क्रमिते सूते जरापलितजिन्नरः
॥ ५ ॥ स्तम्भयेच्छस्त्रसंघातं कामोत्पादनकारकः । पुनर्नवं वयः कुर्यात्साधका-
नां न संशयः ॥ ६ ॥ इति रसबन्धनम् ।

टीका—केलिकंद, श्वेतकणेर, निवडुंगचीक, दुधाणि, रक्त पुनर्वसा, शिवलिंगी, होनगुंदा,
कांगोणीइत्यादि.

अथ रसमारणम् ।

अपामार्गस्य बीजानां मूषायुग्मं प्रकल्पयेत् । तत्संपुटे न्यसेत्सूतं मलयूदु-
ग्धमिश्रितम् ॥ १ ॥ द्रोणपुष्पीप्रसूनानि विडङ्गमरिमेदकः । एतच्चूर्णमधश्चो-
र्ध्वं दत्त्वा मुद्रां प्रदापयेत् ॥ २ ॥ तं गोलं मुद्रयेत्सम्यङ्मूषासंपुटे सुधीः ।
मुद्रां दत्त्वा शोषयित्वा ततो गजपुटे पचेत् । एवमेकपुटेनैव जायते सूतभ-
स्सकम् ॥ ३ ॥ अन्यच्च—शुद्धसूतं समं गन्धं वटक्षीरैर्विमर्दयेत् । पाचये-
न्मृत्तिकापात्रे वटकाष्ठैर्विघट्टयेत् ॥ १ ॥ लध्वग्निना दिनं पाच्यं भस्मसूतं भ-
वेद्भुवम् । द्विगुञ्जं पर्णखण्डेन पुष्टिमग्निं च वर्धयेत् ॥ २ ॥ इति रसमारणम् ।

अथ रससिन्दूरः ।

पलद्वयं शुद्धरसं पलार्धं शुद्धगन्धकम् । कर्षार्धं नवसारं च जम्बीरेण विम-
र्दयेत् ॥ १ ॥ काचकूप्यां क्षिपेच्चैव सप्तधा मृदकर्पटैः । विलेप्य काचकूपीं
तामातपे शोषयेद्दृढम् ॥ २ ॥ छिद्रभाण्डे ततः कूपीं न्यसेत्सिकतयन्त्रके । कू-
पिकां कण्ठमानेन पूजयेदिष्टदेवताः ॥ ३ ॥ पञ्च पूज्याः कुमार्यश्च ततश्चुल्यां
विनिक्षिपेत् । पचेद्यामाष्टकं चैव कूपिकां च क्षणे क्षणे ॥ ४ ॥ संशोध्य पाच-
येद्यन्त्रे स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् । ग्राह्यं च दरदाकारं देवदानवदुर्लभम् ॥ ५ ॥ से-
वयेद्रोगनाशाय तत्तद्रोगानुपानतः । वल्लं वा वल्लयुग्मं वा कणया मधुना स-
ह ॥ ६ ॥ सेवितं कामिनीकामं दर्शयेदतिकौतुकम् । वीर्यबन्धकरं शीघ्रं यो-
षामदविनाशनम् ॥ ७ ॥ सिन्दूरं हरवीर्यसंभवमिदं रूक्षाग्निमान्द्यापहं य-
क्ष्मादिक्षयपाण्डुशोफमुदरं गुल्मप्रमेहापहम् । शूलप्लीहविनाशनं ज्वरहरं दुष्ट-
व्रणान्नाशयेदशीसि ग्रहणीभगन्दरहरं छर्दित्रिदोषापहम् ॥ ८ ॥ इति रससि-
न्दूरः ॥ अन्यच्च—सूतः पञ्चपलः स्वदोषरहितस्तत्तुल्यभागो बलिद्रौ चैतौ नव-
सारपादकलितौ संमर्द्य कूप्यां न्यसेत् । तां यन्त्रे सिकताख्यके तलबिले
पक्त्वाऽर्क्यामं हिमं भित्त्वाकुङ्कुमपिञ्जरं रसवरं भस्माऽऽदेद्वैद्यराट् ॥ १ ॥ वा-
ते सक्षौद्रपिप्पल्यपि च कफरुजि त्र्यूषणं साग्निचूर्णं पित्ते सैला सिता स्याद्
व्रणवति बृहतीनागरार्द्रामृताम्बु । पुष्टौ साज्यत्रियामा हरनयनफला शाल्म-
लीपुष्पवृन्तं किंवा कान्तालालाटाभरणरसपतेः स्यादन्नूपानमेतत् ॥ २ ॥ अन्य-
च्च—भागो रसस्य त्रय एव भागा गन्धस्य माषः पवनाशनस्य । संमर्द्य गाढं
सकलं सुभाण्डे तां कज्जलीं काचकृते निदध्यात् ॥ १ ॥ संरुध्य मृत्कर्पटकैर्व-
टीनां मुखे सचूर्णीं गुटिकां च दत्त्वा । क्रमाग्निना त्रीणि दिनानि पक्त्वा तां-
वालुकायन्त्रगतां ततः स्यात् ॥ २ ॥ बन्धूकपुष्पाख्यमीशजस्य भस्म प्रयोज्यं
च किलाऽऽमयेषु । निजानुपानैर्मरणं जरां च हन्त्यस्य वल्लः क्रमसेवनेन ॥ ३ ॥

अपहरति रोगवृन्दं द्रढयति कायं महद्वलं कुर्वते । शुक्रशतानि च सूते सि-
न्दूराख्यो रसः पुंसां ॥ ४ ॥ निखिलक्षयभक्षणदक्षतरं व्रणकुष्ठभगंदरमेह-
हरम् । बलदीधितिशुक्रसमृद्धिकरं रसभस्म समस्तगदापहरम् ॥ ५ ॥ अन्य-
च्च—पलमात्रं रसं शुद्धं तावन्मात्रं तु गन्धकम् । विधिवत्कज्जर्लीं कृत्वा न्यग्रो-
धाङ्कुरवारिणा ॥ १ ॥ भावनान्नितयं दत्त्वा स्थालीमध्ये निधापयेत् । विधाय
काच्छपं यत्रं बालकाभिः प्रपूरयेत् ॥ २ ॥ दद्यात्तदनु मन्दाग्निं भिषग्यामचतु-
ष्टयम् । जायते रससिन्दूरं तरुणारुणसंनिभम् ॥ ३ ॥ अनुपानविशेषेण करो-
ति विविधान्गुणान् । क्षयकुष्ठमरुत्प्लीहमेहघ्नं पाण्डुनाशनम् ॥ ४ ॥

अथ विशिष्टानुपानानि

यथा जलगतं तैलं तत्क्षणादेव सर्पति । एवमौषधमङ्गेषु प्रसर्पत्यनुपानतः
॥१॥ पिप्पली मधुना सार्धं वातमेहं हिनस्ति च । त्रिफला शर्करासार्धं पित्त-
मेहहरा स्मृता ॥ २ ॥ पिप्पली मरिचं शुण्ठी भार्गी च मधुना सह । कास-
श्वासप्रशमनः शूलस्य च विनाशनः ॥ ३ ॥ हरिद्रा शर्करासार्धं रुधिरस्य वि-
कारनुत् । व्यूषणं त्रिफला वासा कामलापाण्डुमान्द्यहृत् ॥ ४ ॥ पिप्पली चि-
त्रकं पथ्या तथा सौवर्चलं क्षिपेत् । अग्निमान्द्यबद्धकोष्ठहृद्यथानाशनं परम्
॥ ५ ॥ शिलाजतु तथैला च सितोपलसमन्वितम् । मूत्रकृच्छ्रे प्रशस्तोऽयं सत्यं
नागार्जुनोदितम् ॥ ६ ॥ लवङ्गं कुङ्कुमं पत्री हिङ्गुलं करहाटिका । पिप्पली वि-
जया चैव समानीमानि कारयेत् ॥ ७ ॥ कर्पूरादहिफेना च नागान्नागार्धकं क्षिपेत् ।
सर्वमेकत्र संमर्द्य धातुवृद्धौ प्रदापयेत् ॥ ८ ॥ सौवर्चलं लवङ्गं च भूनिम्ब-
श्च हरीतकी । अस्यानुपानयोगेन सर्वज्वरविनाशनः ॥ ९ ॥ तथा रेचकरः प्रो-
क्तः सौवर्चलपलत्रिकात् । लवङ्गं कुङ्कुमं चैव दरदेन च संयुतः ॥ १० ॥ ताम्बू-
लेन समं भक्ष्यो धातुवृद्धिकरः परः । विदारीचूर्णयोगेन धातुवृद्धिकरो मतः ॥
विजयादीप्यसंयुक्तो वमनस्य विकारनुत् ॥ ११ ॥ सौवर्चलं हरिद्रा च वि-
जया दीप्यकस्तथा । अनेनोदरपीडां च सद्योजातां विनाशयेत् ॥ १२ ॥ च-
तुर्वल्लं पलाशस्य बीजाच्च द्विगुणं गुडात् । अस्यानुपानयोगेन कृमिदोषविना-
शनः ॥ १३ ॥ अहिफेनं लवङ्गं च दरदं विजया तथा । अस्यानुपानतः सद्यः
सर्वातीसारनाशनः ॥ १४ ॥ सौवर्चलेन दीप्येन चाग्निमान्द्यहरः परः ।
क्षुद्रोद्धजनकश्चैव सिद्धनागेश्वरोदितम् ॥ १५ ॥ गुडूचीसत्त्वयोगेन सर्वपुष्टिकरः
स्मृतः । युक्तानुपानसहितः सर्वान् रोगान्विनाशयेत् ॥ १६ ॥

अथ रसेन्द्रस्य पथ्यापथ्यानि ।

सैन्धवामृतधान्याकजीरकार्द्रकसंयुतम् । तण्डुलीयकवार्ताकपटोललाजसाधि-

तम् ॥ १ ॥ गोधूमजीर्णशाल्यन्नं गव्यं क्षीरं घृतं दधि । हंसोदकं मुद्गरसं रसे-
न्द्रे च हितं विदुः ॥ २ ॥ ग्रन्थान्तरे—अभ्यङ्गं मलिने योज्यं तैलैर्नारायणा-
दिभिः । अबला शीततोयेन मस्तके परिषेचयेत् ॥ १ ॥ तृष्णायां नारिकेला-
म्बु मुद्गयूषं सशर्करम् । द्राक्षादाडिमखर्जूरकदलीनां फलं भजेत् ॥ २ ॥ बृह-
तीबिल्वकूष्माण्डं वंशाग्रं कारवेल्लकम् । माषान्मसूरनिष्पावं कुलत्थाल्लवणं
तिलान् ॥ ३ ॥ लङ्घनोद्वर्तनं स्नानं ताम्रभाण्डे सुरासवम् । अनूपमांसं
धान्याम्लं भोजनं कदलीदले ॥ ४ ॥ कांस्यके गुरु विष्टम्भि तीक्ष्णं चोष्णं भृ-
शं तथा । अपथ्यं सूतराजस्य पुरा प्रोक्तं महर्षिभिः ॥ ५ ॥ कूष्माण्डं कर्कटी
कोलं कलिङ्गं करमर्दकम् । करीरं चेति पटकादीनुरसभुग्वर्जयेज्जनः ॥ ६ ॥

अथ गन्धकः ।

चतुर्धा गन्धकः प्रोक्तो रक्तः पीतः सितोऽसितः । रक्तो हेमक्रियासूक्तः पी-
तश्चैव रसायने ॥ व्रणादिलेपने श्वेतः श्रेष्ठः कृष्णः सुदुर्लभः ॥ १ ॥ सद्गन्धभा-
ण्डस्य पटस्थितोऽयं शुद्धो भवेत्कूर्मपुटेन गन्धः । आभ्यां कृता कज्जलिकाऽनु-
पानैः सर्वामयघ्नी रसगन्धकाभ्याम् ॥ २ ॥ इति गन्धकशोधनम् । गन्धकः
कटुकस्तिक्तो वीर्योष्णस्तुवरः सरः । पित्तलः कटुकः पाके कण्डूविसर्पजन्तुजित्
॥ १ ॥ हन्ति कुष्ठक्षयप्लीहकफवातात्रसायनम् । अशोधितो गन्ध एष कुष्ठसं-
तापकारकः । शुक्रौजःक्षयमाबल्यं करोति च रुचिप्रणुत् ॥ २ ॥ इति गन्धकः ।

अथ हिङ्गुलः ।

दरदस्त्रिविधः प्रोक्तश्चर्मारः शुक्रतुण्डकः । हंसपादस्तृतीयस्तु गुणवानुत्तरो-
त्तरम् ॥ १ ॥ चर्मारस्त्वतिरक्तः स्यात्किञ्चित्पीतः शुक्रास्यकः । श्वेतरेशः प्र-
वालाभो हंसपादः स उच्यते ॥ २ ॥ अशुद्धो दरदः कुर्यादान्ध्यं क्षैण्यं क्लृप्तं
भ्रमम् । मोहं मेहं च संशोध्यः क्रमाद्वैद्यैस्तु हिङ्गुलः ॥ ३ ॥ मेषीक्षीरेण द-
रदम्लवर्गैश्च भावितम् । सप्तवारं प्रयत्नेन शुद्धिमायाति निश्चितम् ॥ ४ ॥
इति शोधनम् ।

अथ मारणम् ।

बल्लमात्रं तालपिष्टं शरावे स्थापयेत्ततः । तस्मिन्कर्षसमं देयं शकलं दरदस्य
च ॥ १ ॥ पूरयेद्दर्द्रकरसं द्विगुणं तत्र बुद्धिमान् । पुष्पाणि माषमात्राणि प-
रितः स्थापयेत्ततः ॥ २ ॥ शरावसंपुटं दत्त्वा चुह्यां मध्याग्निना पचेत् । घटि
कात्रयपर्यन्तं तत उत्तार्य पेपयेत् ॥ ३ ॥ ताम्बूले गुञ्जमात्रं तु देयं पुष्टिकरं
मतम् । पाण्डौ क्षये च शूले च सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ४ ॥ इति दरदमारणम् ।

अथ रत्नानां शोधनमारणे ।

तत्र वज्रम् ।

व्याघ्रीकन्दगतं वज्रं दोलायत्रेण पाचयेत् । सप्ताहं कोद्रवक्काथैः कुलिशं विमलं भवेत् ॥ १ ॥ इति शोधनम् ।

अथ मारणम् ।

त्रिवर्षारूढकार्पासीमूलमादाय पेपयेत् । त्रिवर्षनागवह्या वा निजद्रावैः प्रपेपयेत् ॥ १ ॥ तद्गोलके क्षिपेद्वज्रं रुद्ध्वा गजपुटे पजेत् । एवं सप्तपुटैर्नूनं कुलिशं मृत्तिमृच्छति ॥ २ ॥ अन्यच्च—त्रिःसप्तकृत्वः संतप्तं खरमूत्रेण सेचितम् । मत्कुणैस्तालकं पिष्ट्वा तद्गोले कुलिशं क्षिपेत् ॥ १ ॥ प्रध्मातं वाजिमूत्रेण सिक्तं पूर्वक्रमेण वै । भस्मीभवति तद्वज्रं शङ्खशीतांशुसुन्दरम् ॥ २ ॥ अन्यच्च—हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तकाथे कौलत्थजे क्षिपेत् । तप्तं तप्तं पुनर्वज्रं भूयाच्चूर्णं त्रिसप्तधा ॥ १ ॥ मण्डूकं कांस्यजे पात्रे निगृह्य स्थापयेत्सुधीः । स भीतो मूत्रयेत्तत्र तन्मूत्रे वज्रमावपेत् ॥ तप्तं तप्तं च बहुधा वज्रस्यैवं मृत्तिर्भवेत् ॥ २ ॥ इति मारणम् । वज्रं समीरकफपित्तगदान्निहन्ति वज्रोपमं च कुरुते वपुरुत्तमश्चि । शोषक्षयभ्रमभगंदरमेहमेदः पाण्डूदरश्चयथुहारि च षण्डषाण्ड्यम् ॥ १ ॥ इति गुणाः ॥

अथ वैक्रान्तम् ।

वैक्रान्तं वज्रवच्छोध्यं नीलं वा लोहितं तथा । हयमूत्रेण सिञ्चेत तप्तं तप्तं द्विसप्तधा ॥ १ ॥ ततस्तु मेषदुरध्यास्तु पञ्चाङ्गे गोलके क्षिपेत् । पुटेन्मूषापुटे रुद्ध्वा कुर्यादेवं च सप्तधा । वैक्रान्तं भस्मतां याति वज्रस्थाने नियोजयेत् ॥ २ ॥ इति मारणम् । वातपित्तानिलध्वंसि षड्सं देहदार्ढ्यकृत् । पाण्डूदरज्वरश्वासकासयक्ष्मप्रमेहनुत् ॥ १ ॥ इति वैक्रान्तम् ।

अथ शेषरत्नशोधनमारणानि ।

शुध्यत्यन्लेन माणिक्यं जयन्त्या मौक्तिकं शुचि । विद्रुमं क्षारवर्गेण ताक्ष्यं गोदुग्धतः शुचि ॥ १ ॥ पुष्परगां च कौलत्थकाथयोगेन शुध्यति । रोचनाभिश्च गोमेदं वैडूर्यं त्रिफलाजलैः । नीलं नीलीरसैर्वज्रं विना शुध्यति दोलाया ॥ २ ॥ इति रसरत्नाकरात् । अन्यच्च—स्वेदयेद्गोलिकायत्रे जयन्त्याः स्वरसेन च । मणिमुक्ताप्रवालानि यामैकं शोधनं भवेत् ॥ १ ॥ इति शार्ङ्गधरात् ।

अथ मारणम् ।

लकुचद्रावसंपिष्टैः शिलातालकगन्धकैः । वज्रं विनाऽन्यरत्नानि त्रियन्ते ऽष्टपुटैः खलु ॥ १ ॥ अन्यच्च—कुमार्या तण्डुलीयेन स्तन्येन च निषेचयेत् ।

प्रत्येकं सप्तवेलं च तप्ततप्तानि कृत्स्नशः ॥ १ ॥ मौक्तिकानि प्रवालानि तथा
रत्नान्यशेषतः । क्षणाद्विविधवर्णानि भ्रियन्ते नात्र संशयः ॥ २ ॥ उक्तमा
क्षिकवन्मुक्ताप्रवालानि च मारयेत् । वज्रवत्सर्वरत्नानि शोधयेन्मारयेत्तथा
॥ ३ ॥ इति शार्ङ्गधरात् । इति मारणम् ।

अथ गुणाः ।

रत्नानि चोपरत्नानि चक्षुष्याणि सराणि च । शीतलानि कषायाणि मधु-
राणि शुभानि च ॥ १ ॥ वृष्याणि मङ्गलान्यायुस्तुष्टिपुष्टिकराणि च । ग्रहा-
लक्ष्मीविषक्षैण्यपापसंतापनानि च ॥ २ ॥ यक्षमपाण्डुप्रमेहार्शःकासश्वासभ-
गंदरान् । ज्वरविसर्पकुष्ठानि शूलकृच्छ्रव्रणामयान् । घ्नन्ति पुष्टिं यशः कान्तिं
पुण्यानि च नृणां भृशम् ॥ ३ ॥ इति गुणाः ।

अथ शिलाजतु ।

निदाघे घर्मसंतप्ता धातुसारं धराधराः । निर्यासवत्प्रमुञ्चन्ति तच्छिलाजतु-
कीर्यते ॥ १ ॥

अथ शोधनम् ।

अथोष्णकाले रवितापयुक्ते व्यग्रे निवाते समभूमिभागे । चत्वारि पात्रा-
ण्यसितायसानि न्यस्याऽऽतपे दत्तमनोवधानः ॥ १ ॥ शिलाजतु श्रेष्ठमवाप्य
पात्रे प्रक्षिप्य तोयं द्विगुणं ततोऽस्मात् । उष्णं तदर्धं शृतमत्र दत्त्वा विशोधये-
त्तन्मृदितं यथावत् ॥ २ ॥ ततस्तु यत्कृष्णमुपैति चोर्ध्वं संतानिकावद्विर-
श्मयोगात् । पात्रात्तदन्यत्र ततो निदध्यात्तस्यान्तरे चोष्णजलं निधाय ॥ ३ ॥
ततश्च तस्मादपरत्र पात्रे तस्माच्च पात्रादपरत्र तत्र । पुनस्ततोऽन्यत्र निधाय
कृष्णं यत्संहतं तत्पुनराहरेच्च ॥ ४ ॥ यदा विशुद्धं जलमच्छमूध्वं प्रसन्नभावा-
न्मलमेत्यधस्तात् । तदा त्यजेत्तत्सलिलं मलं च शिलाजतु स्याज्जलशुद्धमेवम्
॥ ५ ॥ इति शोधनम् ।

अथ शुद्धशिलाजतुपरीक्षा ।

वह्नौ क्षिप्तं तु निर्धूमं यत्तु लिंगोपमं भवेत् । तृणाप्रेणास्मसि क्षिप्तमधो
गलति तन्तुवत् । गोमूत्रगन्धि मलिनं शुद्धं ज्ञेयं शिलाजतु ॥ १ ॥ शिलाज-
तु रसायनं कटुकतिक्तमुष्णं कृमिक्षयोदरभिदश्मरीश्वयथुपाण्डुकण्डूहरम् । प्र-
मेहवमिकुष्ठजिक्फसमीरदुर्नामहृद्वलीपलितमानसानपि सकासकृच्छ्रप्रणुत्
॥ २ ॥ अशुद्धं दाहमूर्छायभ्रमपित्तास्रशोषताः । शिलाजतु प्रकुर्वते मान्द्यम-
ग्रेष्व विद्महम् ॥ ३ ॥ इति शिलाजतु ।

अथ सिन्दूरम् ।

सिन्दूरं निम्बुकद्रावैः पिष्ट्वा वह्नौ विशोषयेत् । ततस्तण्डुलतोयेन तथा-

भूतं विशुध्यति ॥ १ ॥ सिन्दूरमुक्तं वीसर्पकुष्ठकण्डूविपापहम् । भग्नसंधान-
जननं व्रणशोधनरोपणम् ॥ २ ॥

अथ समुद्रफेनः ।

समुद्रफेनश्चक्षुष्यो लेखनः शीतलः सरः । कर्णस्त्रावरुजागूथहरः पाचनदी-
पनः ॥ १ ॥ अशुद्धः स करोत्यङ्गभङ्गं तस्माद्विशोधयेत् । समुद्रफेनः संपिष्टो
निम्बुतोयेन शुध्यति ॥ २ ॥

अथ गैरिकम् ।

गैरिकं किञ्चिदाज्येन भृष्टं शुद्धं प्रजायते । कायकान्तिवयःस्थैर्यबलौजो-
वृद्धिकारकम् ॥ १ ॥ प्रमेहकुष्ठपिटकासर्वव्रणविपापहम् । स्वर्णगैरिकमन्यत्तु
श्रेष्ठं सामान्यगैरिकात् ॥ २ ॥

अथैरण्डबीजशुद्धिः ।

गन्धर्वहस्तबीजानां नारिकेलोदकेन च । याममात्राद्भवेच्छुद्धिर्दन्तीबीजं
पचेद्यथा ॥ १ ॥

अथ मरीचशुद्धिः ।

मरीचं चाम्लतकेण भावितं घटिकात्रयम् । मरीचं निस्तुपं कृत्वा शुद्धं
भवति निश्चितम् ॥ १ ॥

अथ पिप्पलीशुद्धिः ।

वैदेही चित्रकरसैरातपे भावयेत्पुटे । सम्यक् शुद्धा भवत्यत्र रसयोगेषु
योजयेत् ॥ १ ॥ इति पिप्पलीशुद्धिः ।

अथ हिङ्गुशुद्धिः ।

पद्मपत्ररसे याममातपे भावितं विदुः । रामठं शुद्धिमाप्नोति रसयोगेषु
योजयेत् ॥ १ ॥

अथ शङ्खः ।

शङ्खः क्षारो हिमो ग्राही ग्रहणीरेकनाशनः । नेत्रपुष्पहरो वर्ण्यस्तरुण्यपिट-
काप्रणुत् । अशुद्धो गुणदो नैष शुद्धोऽम्लैः स गुणप्रदः ॥ १ ॥ दक्षिणावर्त-
शङ्खस्तु त्रिदोषघ्नः शुचिर्निधिः । ग्रहालक्ष्मीक्षयक्ष्वेडक्षामतिक्तक्षयाक्षमी ॥ २ ॥

अथ भूनागसत्त्वमयूरपक्षसत्त्वगुणाः ।

ताम्रभूभवभूनागांस्त्रिंशत्पिण्यान्समेन तान् । पुरलाक्षोर्णनाभिः स्यान्मत्स्य-
पिण्याकटङ्गणैः ॥ १ ॥ द्रवमेतैश्च संयोज्य मर्दयित्वा धमेत्सुखम् । मुञ्चन्ति
ताम्रवत्सत्त्वं तत्पक्षा अपि बर्हिणाम् ॥ २ ॥ भूनागसत्त्वं शिशिरं सर्वकुष्ठव्र-

णप्रणुत् । तत्सृष्टजलपानेन स्थावरं चापि जङ्गमम् ॥ ३ ॥ विषं नश्यति तत्पा-
त्रगतः सूतोऽग्नितो दृढः । एवं मयूरपक्षोत्थसत्त्वस्यापि गुणो मतः ॥ ४ ॥

अथ कर्पूरशुद्धिः ।

गोदुग्धे त्रिफलाकाथे भृङ्गद्रावे समांशके । मर्दयेद्याममात्रं तु कर्पूरं शुद्धि-
माप्नुयात् ॥ १ ॥

अथ टङ्कणशोधनम् ।

अशुद्धटङ्कणो वान्तिभ्रान्तिकारी प्रयोजितः । अतस्त्वं शोधयेदेवं गोमयेना
ऽऽवृतः शुचिः ॥ १ ॥ टङ्कणो वह्निक्वत्स्वर्णरूप्ययोः शोधनः सरः । विषदोषह-
रो हृद्यो वातश्लेष्मविकारनुत् ॥ २ ॥

अथ विषम् ।

कालकूटो वत्सनाभः शृङ्गकश्च प्रदीपनः । हालाहलो ब्रह्मपुत्रो हरिद्रः सक्तुक-
स्तथा । सौराष्ट्रिक इति प्रोक्ता विषभेदा अमी नव ॥ १ ॥ ब्राह्मणः पाण्डुर-
स्तेषु क्षत्रियो रक्तवर्णकः । वैश्यः पीतप्रभः शूद्रः कृष्णाभः स तु निन्दितः
॥ २ ॥ रसायने विषं विप्रं देहपुष्टौ तु बाहुजम् । कुष्ठनाशे प्रयुज्जीत वैश्यं शू-
द्रं तु धातुषु ॥ ३ ॥ विषं प्राणहरं युक्त्या प्राणकृच्च रसायनम् । योगवाहि प-
रं श्लेष्मवातहृत्संनिपातजित् ॥ ४ ॥

अथ विषशोधनम् ।

विषं तु खण्डशः कृत्वा वस्त्रखण्डेन बन्धयेत् । गोमूत्रमध्ये निक्षिप्य
स्थापयेदातपे त्र्यहम् ॥ १ ॥ गोमूत्रं तु प्रदातव्यं नूतनं प्रत्यहं बुधैः । त्र्यहेऽतीते
तदुद्धृत्य शोषयेन्मृदु पेषयेत् । शुध्यत्येवं विषं सेव्यं योग्यं भवति चार्तिजित्
॥ २ ॥ अन्यच्च—खण्डीकृत्य विषं वस्त्रपरिवद्धं तु दोलया । अजापयसि सं-
स्त्रिजं यामतः शुद्धिमाप्नुयात् । अजादुग्धाभावतस्तु गव्यक्षीरेण शोधयेत्
॥ १ ॥ अन्यच्च—विषग्रन्थि मले न्यस्य माहिषे दृढमुद्रितम् । करीषाग्नौ प-
चेद्यामं वस्त्रपूतं विषं शुचि ॥ १ ॥ अन्यच्च—कणशो वत्सनागं च कृत्वा बद्ध्वा
च कर्पटे । दोलायन्ने जलक्षीरे प्रहराच्छुद्धिमृच्छति ॥ १ ॥

अथ विषमारणम् ।

तुल्येन टङ्कणेनैव द्विगुणेनोपणेन च । विषं संयोजितं शुद्धं मृतं भवति
सर्वथा ॥ १ ॥

अथ गुणाः ।

विषं रसायनं बल्यं वातश्लेष्मविकारनुत् । कटुतिक्तकपायं च मदकारि सु-

खप्रदम् ॥ १ ॥ व्यवायि शीतनुदाहि कुष्ठवातास्रनाशनम् । अग्निमान्द्यश्वासकासप्लीहोदरभगंदरान् । गुल्मपाण्डुव्रणाशौंसि नाशयेत्क्रमशो नृणाम् ॥ इति विषम् ॥

अथ गौरीपाषाणभेदः ।

गौरीपाषाणकः प्रोक्तो द्विविधः श्वेतरक्तकः । श्वेतः शङ्खसद्व्यक्तो दाडिमाभः प्रकीर्तितः ॥ १ ॥ श्वेतः कृत्रिमकः प्रोक्तो रक्तः पर्वतसंभवः । विषरूपधरौ तौ हि रसकर्मणि पूजितौ ॥ २ ॥ नामान्याह—गौरीपाषाणकश्चान्यो विकटो रक्तचूर्णकः ॥ १ ॥ गुणानाह—रसबन्धकरः स्निग्धो दोषघ्नो रसवीर्यकृत् ॥ १ ॥ शुद्धिमाह—घननादरसान्विते च मल्लः परिपाच्यः किल दोलकाह्वयत्रे । शुभवह्निरथो दिनं च मन्दः परिदेयः परिजायते स शुद्धः ॥ १ ॥ अन्यच्च—उल्लीपाषाणसंशुद्धिर्वक्ष्यते शास्त्रसंमतम् । चूर्णीकृतं पटे बद्ध्वा शिलाक्षारोदकेन च ॥ १ ॥ दोलायत्रे दिनैकं तु पाचितः शुद्धिमाप्नुयात् । विकटं पोटलीं बद्ध्वा दोलायत्रेण काञ्जिके ॥ २ ॥ टङ्कणे वा गवां दुग्धे पाचयेद्दटिकाद्वयम् । आजमांसरसे वाऽपि शुद्धो भवति निश्चयात् ॥ ३ ॥ उल्लीपाषाणमल्लं च केचिन्नामान्तरं विदुः । वाते कफे तथा शीते योजयन्ति चिकित्सकाः ॥ ४ ॥

अथोपविषाण्याह—

अर्कक्षीरसुहीक्षीरलाङ्गलीकरवीरकाः । गुञ्जाहिफेनधत्तूराः सप्तोपविषजातयः ॥ १ ॥

अथ मतान्तरम् ।

अर्कसुगन्धलाङ्गलीगुञ्जाहयारिविषमुष्टयः । धूर्तौऽहिफेनजैपालौ नवोपविषजातयः ॥ १ ॥ अर्कद्वयं सरं वातकुष्ठकण्डूविषापहम् । निहन्ति प्लीहगुल्माशौयकृच्छ्रेष्मोदरक्रिमीन् ॥ २ ॥ इत्यर्कगुणाः ॥

अथ स्नुक् ।

सेहुण्डो रेचनस्तीक्ष्णो दीपनः कटुको गुरुः । शूलमष्टीलिकाध्मानगुल्मशोफोदरानिलान् ॥ १ ॥ हन्ति दोषान्यकृत्प्लीहकुष्ठोन्मादाश्रमपाण्डुताः । अर्कसेहुण्डयोर्दुग्धं तत्स्वयं शुद्धमुच्यते ॥ २ ॥

अथ लाङ्गलीमाह—

लाङ्गली शुद्धिमायाति दिनं गोमूत्रसंस्थिता । कलिकारी सरा कुष्ठशोफाशौव्रणशूलजित् । तीक्ष्णोष्णा कृमिनुल्लघ्वी पित्तला गर्भपातिनी ॥ १ ॥

अथ गुञ्जामाह—

गुञ्जा काञ्जिकसंस्विन्ना शुद्धिमायाति यामतः । गुञ्जा लघुहिमा रुक्षा भेदनी श्वासकासजित् । कोष्णा वृष्या कुष्ठकण्डूश्लेष्मपित्तव्रणापहा ॥ १ ॥

अथ हयारिमाह—

हयारिर्विषवच्छेद्यो गोदुग्धे दोलकेन तु । करवीरद्वयं नेत्ररोगकुष्ठव्रणापह-
म् । लघूष्णं कृमिकण्डूघ्नं भक्षितं विषवन्मतम् ॥ १ ॥

अथ विषतिन्दुकमाह—

किञ्चिदाज्येन संभृष्टो विषमुष्टिर्विशुध्यति । विषमुष्टिस्तिक्तकटुस्तीक्ष्णोष्णः
श्लेष्मवातहा । सारमेयविषोन्मादहरो मदकरः स्मृतः ॥ १ ॥

अथ जैपालमाह—

जैपालोऽस्ति गुरुस्तिक्तो वान्तिकृज्ज्वरकुष्ठनुत् । उष्णः सरो व्रणश्लेष्मकण्डू-
कृमिविषापहः ॥ १ ॥

अथ शुद्धिमाह—

जैपालं रहितं त्वगङ्गुररसज्ञाभिर्मले माहिषे निक्षिप्तं त्र्यहमुष्णतोयविमलं
खल्वे सवासोर्दितम् । लिप्तं नूतनखर्परेषु विगतस्नेहं रजःसंनिभं निम्बूकाम्बु-
विभावितं च बहुशः शुद्धं गुणाढ्यं भवेत् ॥ १ ॥ अन्यच्च—जैपालं निस्तुषं
कृत्वा दुग्धे दोलायुतं पचेत् । अन्तर्जिह्वां परित्यज्य युञ्ज्याच्च रसकर्मणि
॥ १ ॥ अन्यच्च—वस्त्रे बद्धा तु जैपालं गोमयस्योदके न्यसेत् । पाचयेद्या-
ममात्रं तु जैपालः शुद्धतां व्रजेत् ॥ २ ॥

अथोन्मत्तमाह—

धत्तूरबीजं गोमूत्रे चतुर्यामोषितं पुनः । कंडितं निस्तुषं कृत्वा शुद्धं योगेषु
योजयेत् ॥ १ ॥ धत्तूरो मदवर्णाग्निवातकृज्ज्वरकुष्ठनुत् । उष्णो गुरुर्व्रणश्ले-
ष्मकण्डूकृमिविषापहः ॥ २ ॥

अथाहिफेनमाह—

अहिफेनं शृङ्गबेररसैर्भाव्यं त्रिसप्तधा । शुध्यत्युक्तेषु योगेषु योजयेत्तद्विधा-
नतः ॥ १ ॥ अफुकं शोषणं ग्राहि श्लेष्मघ्नं वातपित्तलम् । मदतृड्दाहकृच्छ्र-
क्रस्तम्भनायासमोहकृत् ॥ २ ॥ अतिसारे ग्रहण्यां च हितं दीपनपाचनम् ।
सेवितं दिवसैः कैश्चिद्भ्रमयत्यन्यथाऽऽर्तिकृत् ॥ ३ ॥ नवभिर्मर्दितः सूतश्छि-
न्नपक्षः प्रजायते । मुखं च जायते तस्य धातृश्च ग्रसतेतराम् ॥ ४ ॥ भङ्गिका
पित्तला तिक्ता तीक्ष्णोष्णा ग्राहिणी लघुः । कर्षणी दीपनी रुच्या मदकृत्क-
फवातहृत् ॥ ५ ॥ बच्चूलत्वक्कषायेण भङ्गां संस्वेद्य शोषयेत् । गोदुग्धभावनं
दत्त्वा शुष्कां सर्वत्र योजयेत् ॥ ६ ॥

अथ सर्वविषे गरुडमन्त्रमाह—

ॐ नमः प्रचण्डगरुडाय पक्षिराजाय विष्णुवाहनाय विनतासुताय हे गरु-
ड कश्यपसुत वैनतेय ताक्ष्यं स्वर्णवज्र चञ्चुवज्र तुण्डनखप्रहरणायानन्तवासु-
कितक्षककर्कोटकपद्ममहापद्मशङ्खपालकुलिकजयविजयाष्टमहानागकाल उच्चाट-
नीमूषकविषप्रहरणावहनधूनन शीघ्रकम्प २ आवेश २ ढण्ढर हे श्रीगरुडाय
नमः । मन्त्रेणानेन मन्त्रज्ञो जलं तुलकमात्रकम् । सप्तवाराभिजितं तु पाययेद्भक्त-
चेतनम् ॥ १ ॥ सर्पादिविषवेगेण सद्यो निर्विषमामुयात् । त्रिवारमेवं पानीयं
प्रातर्व्यं न पिबेदपि ॥ २ ॥ मुखमध्ये तदाक्षेपः कर्तव्यस्तज्जलेन हि । अथवा
मस्तके तस्य तर्ज्या ताडयेद्बुधः । त्रिवारं मन्त्रपूर्वं तु निर्विषो भवति
क्षणात् ॥ ३ ॥ इति विषोपविषविधिः ॥

अथाभ्रकसत्त्वपातनविधिः ।

भावयेच्चूर्णितं त्वभ्रं दिनैकं काञ्जिकेन च । रम्भासूरणजैर्नारैर्मूलकैश्च सुमे-
लयेत् ॥ १ ॥ तुर्यांशटङ्कणेनैव क्षुद्रमत्स्यैः समं पुनः । महिषीमलसंमिश्रा-
न्विधायास्याथ गोलकान् ॥ २ ॥ खराग्निना धमेद्वाढं सत्त्वं मुञ्चति कांस्यवत् ।
मारितं तान्नवत्त्वभ्रपारदाभ्यां निषेवयेत् ॥ ३ ॥ सत्त्वमभ्रस्य शिशिरं त्रिदो-
षघ्नं रसायनम् । विशेषात्पुंस्त्वजननं वयसः स्तम्भनं परम् ॥ ४ ॥ इत्यभ्रस-
त्त्वम् । अगस्त्यपत्रनिर्यासमर्दितं सूरणस्थितम् । अभ्रं गोष्ठगतं मासं जायते
पारदोपमम् ॥ ५ ॥ इत्यभ्रकद्रुतिः ॥

अथ तालकसत्त्वम् ।

लाक्षाराजितिलान्दिशु टङ्कणं लवणं गुडम् । तालकार्धेन संमिश्रं मूषायां
स्थिरभाजने ॥ रुद्ध्वा पुटेदधोयन्त्रे सत्त्वं मुञ्चति सर्वथा ॥ १ ॥

इति तालकसत्त्वम् ।

अथ क्षारकल्पना ।

क्षारवृक्षस्य काष्ठानि शुष्काण्यग्नौ प्रदीपयेत् । नीत्वा तद्भस्म मृत्पात्रे क्षि-
प्त्वा नीरे चतुर्गुणे ॥ १ ॥ विमर्द्य धारयेद्वात्रौ प्रातरच्छं जलं नयेत् । तन्नी-
रं काथयेद्ब्रह्मौ यावत्सर्वं विशुष्यति ॥ २ ॥ ततः पात्रात्समुद्धृत्य क्षारो ग्राह्यः
सितप्रभः । चूर्णाभः प्रतिसार्यः स्यात्तैजसः काथवत्स्थितः ॥ इति क्षारद्व-
यं धीमान् युक्तकार्येषु योजयेत् ॥ ३ ॥ इति क्षारकल्पना ।

इति रसोपरसविषोपविषाभ्रतालकसत्त्वक्षारकल्पनाकथनम् ॥

अथाभाववर्गः ।

सत्त्वाभावे गुडूच्यास्तु अमृताया रसः स्मृतः । चित्रकाभावतो दन्ती
क्षारः शिखरिजोथवा ॥ १ ॥ अभावे धन्वयासस्य प्रक्षेप्याऽथ दुरालभा । तगर-
स्याप्यभावे तु कुष्ठं देयं भिषगवरैः ॥ २ ॥ मूर्वाभावे त्वचो ग्राह्या जिङ्गिनीप्र-
भवा बुधैः । अहिंखाया अभावे तु मानकन्दः प्रशस्यते ॥ ३ ॥ लक्ष्मणाया
अभावे तु नीलकण्ठशिखा सता । बकुलाभावतो देयं कल्लारोत्पलपङ्कज-
म् ॥ ४ ॥ नीलोत्पलस्याभावे तु कुसुदं तत्र दीयते । कमलस्याप्यभावे तु
कमलाक्ष इति स्मृतः ॥ ५ ॥ बकुलस्याप्यभावे तु आभात्वक्तत्र दीयते । जाती-
पत्रं न यत्रास्ति लवङ्गं तत्फलं स्मृतम् ॥ ६ ॥ अर्कपर्णादिपयसो ह्यभावे तद्रसो
मतः । पौष्कराभावतः कुष्ठं तथैरण्डजटा सता ॥ ७ ॥ स्थौण्यकस्याभावे तु
भिषग्भिर्दीयते गदः । चविकागजपिप्पल्यौ पिप्पलीमूलवत्स्मृते ॥ ८ ॥ अभावे
सोमराज्यास्तु प्रपुञ्जोत्फलं मतं । यत्र न स्याद्दारुनिशा तदा देया निशा बुधैः
॥ ९ ॥ रसाञ्जनस्याभावे तु सम्यग्दार्वी प्रयुज्यते । सौराष्ट्र्यभावतो ज्ञेया स्फु-
टिका तद्रुणा जनैः ॥ १० ॥ तालीसपत्रकाभावे स्वर्णताली प्रशस्यते । भार्ग्य-
भावे तु तालीसं कण्टकारी जटाऽथवा ॥ ११ ॥ रुचकाभावतो दद्याल्लवणं पां-
सुपूर्वकम् । लवणानामभावे च सैन्धवं तत्र दीयते ॥ १२ ॥ अभावे मधुयष्ट्या-
स्तु धातकीं च प्रयोजयेत् । अम्लवेतसकाभावे चुक्रं दातव्यमिष्यते ॥ १३ ॥
तदभावे तु सर्वत्र जम्बीरादिरसः स्मृतः । द्राक्षा यदि न लभ्यन्ते प्रदेयं
काश्मरीफलम् ॥ १४ ॥ तयोरभावे कुसुमं मधुकस्य मतं बुधैः । लवंगकुसुमं
देयं नखस्याभावतः पुनः ॥ १५ ॥ वरी विदारी मुसली जीरकं च निशाद्वयम् ।
दीप्यकं देवदारुश्चाभावे त्वेकं प्रयोजयेत् ॥ १६ ॥ कण्टकारीयुगं चैव धाव-
नीयुगमेव च । शतपुष्पाद्वयं चैव उशीरयुगलं तथा ॥ १७ ॥ मुद्गपर्णीमाष-
पर्णीयुगं चैव ततो भवेत् । तर्करीयुगलं चैव सर्वत्रेति विनिश्चयः ॥ १८ ॥
पृथक्पृथग्द्वन्द्वमध्येऽभावे तत्र प्रयोजयेत् । परस्परस्याभावे तु एकं तत्र प्रयो-
जयेत् ॥ १९ ॥ कस्तूर्यभावे कंकोलं देयं तत्र भिषगवरैः । कंकोलस्याप्यभावे
तु जातीपुष्पं प्रदीयते ॥ २० ॥ अथवा मालतीपुष्पं पत्रं वा दीयते बुधैः ।
कर्पूराभावतो देयं सुगन्धि मुस्तकं तथा ॥ २१ ॥ कर्पूराभावतो देयं ग्रन्थिपर्णं
विशेषतः । कुङ्कुमाभावतो दद्यात्कुसुम्भकुसुमं नवम् ॥ २२ ॥ श्रीखण्डचन्द-
नाभावे कर्पूरं देयमिष्यते । अभावे च ततो वैद्यः प्रक्षिपेद्रक्तचन्दनम् ॥ २३ ॥
रक्तचन्दनकाभावे नवोशीरं विदुर्बुधाः । निर्गन्धं च सगन्धं च द्विविधं रक्त-
चन्दनम् ॥ २४ ॥ अन्योन्यस्याप्यभावे तु योजयेन्मतिमान्भिषक् । परस्पर-
स्याभावे तु योजयेच्चन्दनत्रयम् ॥ २५ ॥ मुस्ता चातिविषाभावे

देवा तत्र शिवा मता । अभावे च हरीतक्या मता कर्कटशृङ्गिका ॥ २६ ॥ अभावे नागपुष्पस्य पद्मकेसरमिष्यते । भ्रूतातकस्याभावे तु नदीभ-
 र्छातको मतः ॥ २७ ॥ मेदाजीवककाकोलीऋद्धिद्वंद्वेपि वाऽसति । वरीविदा-
 र्यश्वगन्धवाराहीश्च क्रमात्क्षिपेत् ॥ २८ ॥ वाराह्याश्च तथाऽभावे चर्मकारालु-
 को मतः । वाराहीकन्दकः प्रोक्तः पश्चिमे गृष्टिसंज्ञकः ॥ २९ ॥ क्षीरान्विता
 मूलकतुल्यकन्दा सप्ताष्टपत्रा सितरक्तकाण्डा । विभर्ति या पल्लवमब्दमब्दात्सा
 कञ्जुकी श्वेतवपुर्वरेण्या ॥ ३० ॥ श्यावकर्कशवाराहवृषणामानक-
 न्दकाः । ताम्बूलवल्ली छदनावल्ली वाराहकुट्टिका ॥ ३१ ॥ भ्रूताभावात्तश्चि-
 त्रं नलश्वेक्षोरभावतः । कुशस्य चाप्यभावे तु काशो ग्राह्यः प्रयत्नतः ॥ ३२ ॥
 बिल्वकाशमर्यतर्कारीपाटलाटुण्डुकैर्महत् । ह्रस्वं बृहत्पुंशुमतीद्वयगोक्षुरकैर्भवे-
 त् ॥ ३३ ॥ एतेषां दशमूलानामेकमूलं प्रयोजयेत् । अभावे तद्गुणं मूलं यो-
 ज्यं वैद्यविशारदैः ॥ ३४ ॥ मधु यत्र न लभ्येत तत्र जीर्णगुडो मतः । मत्स्य-
 ण्डिकाखण्डसिताः क्रमेण गुणवत्तराः ॥ ३५ ॥ मत्स्यण्ड्यभावतो देयं खण्डं
 च परिकीर्तितम् । तदभावे सिता योज्या बुधैः सर्वत्र निश्चयः ॥ ३६ ॥
 निर्गुण्ड्याश्चाप्यभावे तु सुरसा दीयते बुधैः । तुलस्या अप्यभावे तु निर्गुण्डीं
 योजयेत्ततः ॥ ३७ ॥ कुठेरिकायाश्चाभावे तुलसीं तत्र योजयेत् । पुनर्न-
 वायाश्चाभावे रक्ता सा च प्रकीर्तिता ॥ ३८ ॥ राज्ञा यदि न लभ्येत कोला-
 ज्ञनमिति स्मृतम् । सुवर्णस्याप्यभावे तु स्वर्णमाक्षिकमुच्यते ॥ ३९ ॥ तारमा-
 क्षिकमायोज्यं तदभावे तु यत्नतः । माक्षिकस्याप्यभावे तु प्रदद्यात्स्वर्णगैरि-
 कम् ॥ ४० ॥ शुद्धो रसो हाटकादि मृतं यत्र न लभ्यते । तत्र लोहेन कर्मा-
 णि भिषक्कुर्यात्प्रयत्नतः ॥ ४१ ॥ कान्ताभावे तीक्ष्णलोहं योजयेद्वैद्यसत्तमः ।
 अभावे मौक्तिकस्यापि मुक्ताशुक्तिं प्रयोजयेत् ॥ ४२ ॥ वैदूर्यादीनि रत्नानि
 न लभ्यन्तेऽत्र धीमता । तत्र मुक्तादिभूतिं च योजयेच्च भिषगवरः ॥ ४३ ॥
 अभावे रसभूत्याश्च सिन्दूरं रसपूर्वकम् । तदभावे तु द्रवदं योजयेत्तत्र बुद्धि-
 मान् ॥ ४४ ॥ अलाभे यच्च तद्रव्यं प्रत्याग्रायेन योजयेत् । गोक्षीराभावत-
 श्छागं पयः सर्वत्र दीयते ॥ ४५ ॥ गोघृतस्याप्यभावे तु चाऽऽजं सर्वत्र दी-
 यते । अत्र प्रोक्तानि वस्तूनि तानि तेषु च योजयेत् ॥ ४६ ॥ क्षीराभावे रसो
 मौद्गो मासूरो वा प्रयुज्यते । अथ वाग्भटोक्तिः । उष्णशीतगुणोत्कर्षात्तत्र वीर्यं
 द्विधा स्मृतम् ॥ त्रिधा विपाको द्रव्यस्य स्वाद्भलकटुकात्मकः ॥ ४७ ॥
 आदौ षड्समप्यन्नं मधुरीभूतमीरयेत् । फेनीभूतं कफं यातं विदाहादम्लतां
 ततः ॥ अग्निना शोषितं पक्वं पिण्डितं कटु मास्तत् ॥ ११ ॥ चरकाचार्यस्तु—
 तीक्ष्णं रुक्षं लघु स्निग्धं मृदूष्णं गुरु शीतलम् । वीर्यमष्टविधं केचिद्विचि-
 धं प्राहुरत्रयः ॥ १ ॥ रसवीर्यविपाकाद्यैः समं द्रव्यं विचिन्त्य च । युज्या-

तद्विधमन्यच्च द्रव्याणां च रसादिकम् ॥ २ ॥ कुठेरिकायाः स्वरसेन सम्यक् स्वर्णादिकानां च भवेच्च भस्म । वान्त्यादिदोषं न करोति तत्तु वन्योपलाभि-
र्गजसंज्ञकं पुटम् ॥ ३ ॥ वमनं रेचनं नस्यं कर्णपूरणमेव च । रक्तखुतिः स-
मासेन कथ्यते नातिविस्तरम् ॥ ४ ॥

अथ वमनम् ।

शरत्काले वसन्ते च प्रावृद्धकाले च देहिनाम् । वमनं रेचनं चैव कारये-
त्कुशलो भिषक् ॥ १ ॥ बलवन्तं कफव्यासं हृल्लासादिनिपीडितम् । तथा व-
मनसात्म्यं च धीरचित्तं च वामयेत् ॥ २ ॥ विषदोषे सान्यरोगे मन्दाग्नौ
श्लेष्मिपदेऽर्बुदे । हृद्रोगकुष्ठविसर्पमेहाजीर्णभ्रमेषु च ॥ ३ ॥ विदारिकापचीकास
श्वासपीनसवृद्धिषु । अपस्मारे ज्वरोन्मादे तथा रक्तातिसारिषु ॥ ४ ॥ नासा-
ताल्वोष्ठपाके च कर्णस्त्रावेऽधिजिह्वके । गलशुण्ड्यामतीतारे पित्तश्लेष्मगदे त-
था ॥ ५ ॥ मेदोदोषेऽरुचौ चैव वमनं कारयेद्विषक् । न वामनीयस्तिमिरी न
गुल्मी नोदरी कृशः ॥ ६ ॥ नातिवृद्धो गर्भिणी च न स्थूलो न क्षतातुरः ।
सुकुमारं कृशं बालं वृद्धं भीरुं न वामयेत् ॥ ७ ॥ वमने चापि वेगाः स्युर-
ष्टौ पित्तान्त उत्तमाः । षड्वेगा मध्यमा वेगाश्चत्वारस्त्ववरा मताः ॥ ८ ॥
कृष्णाराठफलं सिन्धुं कफे कोष्णजलैः पिबेत् । पटोलवासानिम्बैश्च पित्ते
शीतजलं पिबेत् ॥ ९ ॥ सश्लेष्मवातपीडायां सक्षीरं मदनं पिबेत् । अजीर्णे
कोष्णपानीयं सिन्धुं पीत्वा वमेत्सुधीः ॥ १० ॥

अथ ग्रन्थान्तरे ।

पटोलनिम्बसलिलं चाम्लपित्ते च वान्तिकृत् । लवणं घृतयुक्तं च वमना-
र्थं सुखावहम् ॥ १ ॥ हृत्कण्ठशिरसां शुद्धिर्दीप्तिरग्नेश्च लाघवम् । कफपित्त-
विनाशश्च सम्यग्वान्तस्य चेष्टितम् ॥ २ ॥ ततोऽपराह्णे दीप्ताग्निं सुदृषष्टिक-
शालिभिः । हृद्यैश्च जाङ्गलरसैः कृत्वा यूषं च भोजयेत् ॥ ३ ॥ अजीर्णं शीतपा-
नीयं व्यायामं मैथुनं तथा । स्नेहाभ्यङ्गं प्रकोपं च दिनैकं वर्जयेत्सुधीः ॥ ४ ॥
इति वमनविधिः ॥

अथ विरेचनम् ।

स्निग्धस्विन्नाय वान्ताय दद्यात्सम्यग्विरेचनम् । अवान्तस्य त्वधः सस्तो
ग्रहणीं छादयेत्कफः ॥ १ ॥ मन्दाग्निं गौरवं कुर्याज्जनयेद्वा प्रवाहिकाम् । अ-
थवा पाचनेनैव बलासं चापि पाचयेत् ॥ २ ॥ स्निग्धस्य स्नेहनैः कार्यं स्वेदैः
स्विन्नस्य रेचनम् । शरदृतौ वसन्ते च देहशुद्धौ विरेचयेत् ॥ ३ ॥ अन्यदा-
त्ययिके कार्ये स्वेदनं शीलयेद्बुधः । प्रित्ते विरेचनं युज्यादामोद्धूते गदे तथा
॥ ४ ॥ उदरे च तथाऽऽध्माने कोष्ठशुद्धौ विशेषतः । दोषाः कदाचित्कुप्यन्ति

जिता लङ्घनपाचनैः ॥ ५ ॥ ये तु संशोधनैः शुद्धा न तेषां पुनरुद्भवः ।
 बालवृद्धावतिस्त्रिगुणः क्षतक्षीणो भयान्वितः ॥ ६ ॥ श्रान्तस्तृषार्तः स्थूलश्च ग-
 भिणी च नवज्वरी । नवप्रसूता नारी च मन्दाग्निश्च मदात्ययी ॥ ७ ॥ शल्या-
 र्दितश्च रूक्षश्च न विरेच्या विजानता । जीर्णज्वरी गरव्याप्तो वातरक्ती भगं-
 री ॥ ८ ॥ अर्शःपाण्डूदरग्रन्थिहृद्रोगारुचिपीडितः । योनिरोगप्रमेहातो
 गुल्मप्लीहव्रणार्दितः ॥ ९ ॥ विद्रधिच्छर्दिविस्फोटविपूचीकुष्ठसंयुताः ।
 कर्णनासाशिरोवक्त्रगुदमेढ्रामयान्विताः ॥ १० ॥ प्लीहशोफाक्षिरोगार्ताः कृ-
 मिक्षारानलार्दिताः । शूलिनो मूत्रघातार्ता विरेकार्हा नरा मताः ॥ ११ ॥

अथ रेचनम् ।

एरण्डतैलं त्रिफलाक्वाथेन द्विगुणेन च । युक्तं पीत्वा पयोभिर्वा नचिरेण
 विरिच्यते ॥ १ ॥ त्रिवृता कौटजं बीजं पिप्पली विश्वभेषजम् । समृद्धीकारसं-
 क्षौद्रं वर्षाकाले विरेचनम् ॥ २ ॥ त्रिवृदुरालभा मुस्ता शर्करोदीच्यचन्द-
 नम् । द्राक्षाम्बुना सयष्ट्याह्नं शीतलं च घनास्ये ॥ ३ ॥ पिप्पली नागरं सि-
 न्धुश्यामां च त्रिवृता सह । लिहेत्क्षौद्रेण शिशिरे वसन्ते च विरेचनम् । त्रि-
 वृता शर्करा तुल्या ग्रीष्मकाले विरेचनम् ॥ ४ ॥ अथ ग्रन्थान्तरे—एरण्डतैलं
 पवने विरेचनं द्राक्षा पयश्चाम्बु घृतं च पित्ते । क्वाथः कफे त्रैफलको गुडेन दुग्धा-
 भया सर्वमलं तथैव ॥ १ ॥ अन्यच्च—पिप्पलीपिप्पली मूलमभया द्विगुणोत्तरम् ।
 चूर्णमुष्णाम्बुना पेयं स्वस्थे सुखविरेचनम् ॥ १ ॥ अन्यच्च—पादमदकर्णह-
 सैः पथ्या त्रिवृतं च नागरं लवणम् । निष्कथितपीतसारं नरपतियोग्यं विरेचनं
 भवति ॥ १ ॥ अन्यच्च—प्रपथ्यासैन्धवकणाचूर्णमुष्णाम्बुना सह । एतन्नाराचकं
 ख्यातं रेचनं च हितावहम् ॥ १ ॥ अन्यच्च—वराम्बुना देशसमाख्यबीजं सु-
 वर्णमित्रं कुसुमाभिधानम् । विचित्रविद्याधरनामकोऽयं मलं विना मुञ्चति चा-
 ऽऽममेव ॥ १ ॥

अथ मेघनादरेचनरसः ।

दरदं टङ्कणं चैव सैन्धवं च कटुत्रयम् । त्रिफला हारहूरा च कृमिघ्नं रामतं
 तथा ॥ १ ॥ दस्युदीप्यं समानं च दन्ती सर्वार्धभागिका । जम्बीरवारा सं-
 मर्द्यं चणकस्य प्रमाणतः ॥ २ ॥ उष्णोदकानुपानेन कृम्यामान्तं विरेचनम् ।
 तस्योपरि हितं देयं पथ्यं दध्योदनं परम् ॥ ३ ॥ उदरे पाण्डुशोफे च शोफो-
 दरजलोदरे । सर्वज्वरे च विषमे मेघनादः प्रशस्यते ॥ ४ ॥ इति मेघनादरे-
 चनम् । पीत्वा विरेचनं शीतजलैः संसिच्य चक्षुषी । सुगन्धि किञ्चिदाग्राय
 ताम्बूलं शीलयेद्भरम् ॥ १ ॥ न वातस्थो न वेगांश्च धारयेन्न स्वपेत्तथा । शी-
 ताम्बु न स्पृशेत्कापि कोष्णं नीरं पिबेन्नरः ॥ २ ॥ इन्द्रियाणां बलं बुद्धेः प्र-

सादो वह्निदीप्तिता । धातुस्थैर्यं वयस्थैर्यं भवेद्वेचनसेवनात् ॥ ३ ॥ प्रवातसेवा शीताम्बुस्नेहाभ्यङ्गमजीर्णताम् । व्यायामं मैथुनं चैव न सेवेत विरेचितः ॥ ४ ॥ शालिषष्टिकमुद्राद्यैर्यवागूं भोजयेत्कृताम् । जाङ्गलैर्विष्कराणां वा रसैः शाल्योदनं हितम् ॥ ५ ॥ विरेकस्यातिवेगेन मूर्छां भ्रंशो गुदस्य च । शूलं कफातियोगः स्यान्मांसधावनसंनिभम् ॥ ६ ॥ मेदोनिभं जलाभासं रक्तं वाऽपि विरिच्यते । तस्य शीताम्बुभिः सिक्त्वा शरीरं तण्डुलाम्बुभिः ॥ ७ ॥ सहकारत्वचाकल्को दक्ष्णा सौवीरकेण वा । पिष्ट्वा नाभिप्रलेपेन हन्त्यतीसारमुल्बणम् ॥ ८ ॥ इति विरेचनविधिः ॥

अथ नस्यम् ।

नस्यं विधेयं गुडनागरेण जलेन वा सैन्धवपिप्पलीभ्याम् । घ्राणास्यमन्या-
हनुबाहुपृष्ठशिरोक्षिकण्ठश्रवणामयेषु ॥ १ ॥ भुक्तवत्यथवा स्नाते नस्यं योज्यं न कर्हिचित् । कृते नस्ये शिरःस्नानं क्रोधादींश्च विवर्जयेत् ॥ २ ॥ इति नस्यम् ।

अथ कर्णपूरणम् ।

रसाद्यैः पूरणं कर्णे भोजनात्प्राक् प्रशस्यते । तैलाद्यैः पूरणं कर्णे भास्करेऽस्त-
मुपागते ॥ १ ॥ स्वेदयेत्कर्णदेशं तु परिवर्तनशायिनः । मूत्रैः स्नेहै रसैः कोष्णैः
पूरयेच्च ततो भिषक् ॥ स्वस्थस्य पूरणे स्नेहैर्मात्राशतमवेदने । शतत्रयं श्रोत्र-
गदे शिरोरोगे तथैव च ॥ ३ ॥ कर्णं प्रपूरयेत्सम्यक् स्नेहाद्यैर्मात्रयोक्तया । नोच्चैः
श्रुतिर्न बाधिर्यं स्यान्नित्यं कर्णपूरणात् ॥ ४ ॥

अथ मात्रा ।

दक्षजानुकरावर्तच्छोटिका वाऽङ्गुलिद्वयात् । निमिषोन्मेषकालो वा वस्तौ
मात्रा कृता बुधैः ॥ १ ॥ इति प्रयोगपारिजातात्कर्णपूरणमात्राविधिः ।

अथ रक्तस्रुतिः ।

शरत्काले स्वभावेन कुर्याद्रक्तस्रुतिं नरः । त्वग्दोषग्रन्थिशोथाद्या न स्यु
रक्तस्रुजो यतः ॥ १ ॥ इन्द्रगोपनिभं ज्ञेयं प्रकृतिस्थमसंहतम् । शोथे दाहे-
ऽङ्गपाके च रक्तवर्णेऽसृजः स्रुतौ ॥ २ ॥ वातरक्ते तथा कुष्ठे सपीडे दुर्जया-
निले । पाणिरोगे श्लीपदे च विषदुष्टे च शोणिते ॥ ३ ॥ ग्रन्थ्यर्बुदापची-
क्षुद्ररोगरक्ताधिमन्थिषु । विदारीस्तनरोगेषु गात्राणां सादगौरवे ॥ ४ ॥
रक्ताभिष्यन्दतन्द्रायां पूतिघ्राणास्यदाहके । यकृत्प्लीहविसर्पेषु विद्रवौ पिटको
ज्वमे ॥ ५ ॥ कणौष्ठघ्राणवक्त्राणां पाके दाहे शिरोरुजि । उपदंशे रक्तपित्ते रक्त
स्त्रावः प्रशस्यते ॥ ६ ॥ गोशृङ्गेण जलौकाभिरलाबुभिरपि त्रिधा । चातपित्त-
कफैर्दुष्टं शोणितं स्त्रावयेद्बुधः ॥ ७ ॥ द्विदोषाभ्यां च संदुष्टं त्रिदोषैरपि दू-

पितम् । शोणितं स्नावयेद्युक्त्या शिरामोक्षैः पदैस्तथा ॥ ८ ॥ गृह्णाति शोणितं
शृङ्गं दशाङ्गुलमितं बलात् । जलौका हस्तमात्रं तु तुम्बी च द्वादशाङ्गुलम्
॥ ९ ॥ पदमङ्गुलमात्रं स्याच्छिरा सर्वाङ्गशोधिनी । शीतोपचारैः कुपिते सुतरक्तस्य
मारुते ॥ १० ॥ कोष्णेन सर्पिषा शोथं शनकैः परिषेचयेत् । क्षीणस्यैणशशो-
रभ्रहरिणच्छागमांसजः ॥ ११ ॥ रसः समुचितः पाने क्षीरं वा षष्टिका हिताः ।
व्यायाममैथुनक्रोधशीतस्नानप्रवातकान् ॥ १२ ॥ एकासनं दिवा निद्रां क्षा-
राम्लकटुभोजनम् । शोकं वादमजीर्णं च त्यजेद्यवद्वलं भवेत् ॥ १३ ॥ इति
रक्तखुतिः । इति वमनरेचनादिकथनम् ।

अथ शब्दपरिभाषाकथनम् ।

तत्र सहेतुकान्सलक्षणान्कतिचिद्विकारानाह—

सुश्रुते तन्द्रालक्षणम्—इन्द्रियार्थेष्वसंवित्तिगौरवं जृम्भणं क्लमः । निद्रार्त-
स्येव यस्यैते तस्य तन्द्रां विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥

अथ जृम्भालक्षणम् ।

पीत्वैकमनिलोच्छ्वासमुद्वमेद्विवृताननः । यं मुञ्चति सनेत्राश्रु स जृम्भ
इति संज्ञितः ॥ १ ॥

अथ क्लमः ।

योऽनायासश्रमो देहे प्रवृद्धश्वासवर्जितः । क्लमः स इति विज्ञेय इन्द्रिया-
र्थप्रबाधकः ॥ १ ॥

अथ क्षवथुः ।

प्राणोदानौ समौ स्यातां मूर्ध्नि स्रोतःपथे स्थितौ । नस्तः प्रवर्तते शब्दः
क्षवथुं तं विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥

अथाऽऽलस्यम् ।

सुखस्पर्शाग्रसङ्गित्वं दुःखद्वेषेऽप्यलोलता । शक्तस्य चाप्यनुत्साहः कर्मस्वा-
लस्यमुच्यते ॥ १ ॥

अथोत्क्लेशः ।

उत्किंश्यान्नं न निर्गच्छेत्प्रसेकष्टीवनेरितम् । हृदयं पीड्यते चास्य तमुत्क्ले-
शं विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥

अथ ग्लानेर्लक्षणम् ।

वक्त्रे मधुरता तन्द्रा हृदयोद्वेष्टनं भ्रमः । न चान्यदभिकाङ्क्षेत ग्लानिं
तस्य विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥

अथ गौरवम् ।

आर्द्रचर्मावनद्धं च यो गात्रं मन्यते नरः । तथा गुरु शिरोत्थं गौरवं तद्विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥

अथ हृल्लासलक्षणम् ।

हृल्लासो हृदयादीष्वथः पट्टम्बुनिर्गमः ॥ १ ॥

अथ हेमाद्रौ ज्वरादिरोगोद्देशः ।

ज्वरातिसारौ ग्रहणी ह्यर्शोजीर्णं विषूचिका । सालसा च विलम्बी च कृमि-
रूक्पाण्डुकामलाः ॥ १ ॥ हलीमकं रक्तपित्तं राजयक्ष्मा उरःक्षतं । कासो
हिक्का तथा श्वासः स्वरभेदस्त्वरोचकः ॥ २ ॥ छर्दिस्तृष्णा च मूर्च्छा च तथा
पानालयादयः । दाहाख्यश्च तथोन्मादो ह्यपस्मारोऽनिलामयः ॥ ३ ॥ वातर-
क्तमूरुस्तम्भ आमवातोऽथ शूलरूक् । पक्तिजं शूलमानाह उदावर्तोऽथ गुल्मरूक्
॥ ४ ॥ हृद्रोगो मूत्रकृच्छ्रं च मूत्राघातस्तथाऽश्मरी । प्रमेहो मधुमेहश्च पि-
टिकाश्च प्रमेहजाः ॥ ५ ॥ मेदोदोषोदरं शोथो वृद्धिश्च गलगण्डकः । गण्डमाला-
ऽपची ग्रन्थिरर्बुदं श्लीपदं तथा ॥ ६ ॥ विद्रधिर्व्रणशोथश्च द्वौ व्रणौ भग्नना-
डिकौ । भगंदरोपदंशौ च शूलदोषस्त्वगामयः ॥ ७ ॥ शीतपित्तमुददंश्च उत्को-
ठश्चाम्लपित्तकम् । विसर्पश्च सविस्फोटस्तथैव च मसूरिकाः ॥ ८ ॥ क्षुद्रास्यक-
र्णनासाक्षिशिरःस्त्रीबालकामयाः । विषं चेत्येवमुद्देशः संग्रहेऽस्मिन्प्रकीर्तितः ॥ ९ ॥

अथ क्रमप्राप्तं प्रथमं ज्वरलक्षणम् ।

दक्षापमानसंकुद्धरुद्रनिःश्वाससंभवः । ज्वरोऽष्टधा पृथग्द्वंद्वसंघातागन्तुजः
स्मृतः ॥ १ ॥ ज्वरस्य संग्राप्तिमाह—मिथ्याहारविहारारभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्र-
याः । बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यू रसानुगाः ॥ २ ॥ पूर्वरूपमाह—श्रमोऽर-
तिर्विवर्णत्वं वैरस्यं नयनप्लवः । इच्छाद्वेषौ मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु ॥ ३ ॥
जृम्भाङ्गमर्दो गुरुता रोमहर्षोऽरुचिस्तमः । अग्रहर्षश्च शीतं च भवन्त्युत्पत्स्य-
ति ज्वरे ॥ ४ ॥ सामान्यतो विशेषात्तु जृम्भाऽत्यर्थं समीरणात् । पित्तान्नयन-
योर्दाहः कफान्नान्नाभिनन्दनम् ॥ ५ ॥ सर्वलिङ्गसमवायः सर्वदोषप्रकोपजे ।
रूपैरन्यतराभ्यां तु संसृष्टैर्द्वंद्वजं विदुः ॥ ६ ॥ सामान्यज्वरलक्षणम्—स्वेदाव-

१ अकाले चातिमात्रं च ह्यसात्यं दुष्टभोजनम् । विषमान्नं च यद्भुक्तं मिथ्याहारः
स उच्यते ॥ १ ॥ अशक्तः कुरुते कर्म शक्तो नैतत्करोति हि । मिथ्याविहार इत्युक्तः सदा
चैनं विवर्जयेत् ॥ २ ॥ आहारस्य रसः सारो यो न पक्वोऽग्निलाघवात् । आमसंज्ञां स
लभते बहुव्याधिसमाश्रयः ॥ ३ ॥

रोधः संतापः सर्वाङ्गग्रहणं तथा । युगपद्यत्र रोगे तु स ज्वरो व्यपदिश्यते ॥७॥

अथ वातज्वरलक्षणम् ।

वेपथुर्विषमो वेगः कण्ठोष्ठपरिशोषणम् । निद्रानाशः क्ष्वस्तम्भो गात्राणां
रौक्ष्यमेव च ॥ १ ॥ शिरोहृद्गात्ररुग्वक्त्रवैरस्यं बद्धविदकता । शूलाध्माने जृ-
म्भणं च भवन्त्यनिलजे ज्वरे ॥ २ ॥

अथ पित्तज्वरलक्षणम् ।

वेगस्तीक्ष्णोऽतिसारश्च निद्राल्पत्वं तथा वमिः । कण्ठोष्ठमुखनासानां पाकः
स्वेदश्च जायते ॥ १ ॥ प्रलापो वक्त्रकटुता मूर्छा दाहो मदस्तृषा । पीतवि-
ष्मूत्रनेत्रत्वक् पैत्तिके भ्रम एव च ॥ २ ॥

अथ श्लेष्मज्वरलक्षणम् ।

स्तेमित्यं स्तिमितो वेग आलस्यं मधुरास्यता । शुक्लमूत्रपुरीषत्वक् स्तम्भस्तृ-
प्तिरथापि च ॥ १ ॥ गौरवं शीतमुक्लेदो रोमहर्षोऽतिनिद्रता । स्रोतोरोधो
विडलपत्वं प्रसेको बहुमूत्रता ॥ २ ॥ नात्युष्णगात्रता छर्दिरग्निसादोऽविपाक-
ता । प्रतिश्यायोऽरुचिः कासः कफजेऽक्ष्णोश्च शुक्लता ॥ ३ ॥

अथ वातपित्तज्वरलक्षणम् ।

तृष्णा मूर्छा भ्रमो दाहः स्वप्ननाशः शिरोरुजा । कण्ठास्यशोषो वमथू रोम-
हर्षोऽरुचिस्तमः । पर्वभेदश्च जृम्भा च वातपित्तज्वराकृतिः ॥ १ ॥

अथ वातश्लेष्मज्वरलक्षणम् ।

स्तेमित्यं पर्वणां भेदो निद्रा गौरवमेव च । शिरोग्रहः प्रतिश्यायः कासः
स्वेदाप्रवर्तनम् ॥ संतापो मध्यवेगश्च वातश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ १ ॥

अथ पित्तश्लेष्मज्वरलक्षणम् ।

लिसतिक्तास्यता तन्द्रा मोहः कासोऽरुचिस्तृषा । मुहुर्दाहो मुहुः शीतं पि-
त्तश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ १ ॥

अथ संनिपातज्वरलक्षणम् ।

विरोधिकैरन्नपानैरजीर्णाभ्यसनेन च । व्यामिश्रसेवनाच्चापि संनिपातः प्र-
कुप्यति ॥ १ ॥ क्षणे दाहः क्षणे शीतमस्थिसंधिशिरोरुजा । सास्त्रावे कलुषे
रक्ते निर्भुग्ने चापि लोचने ॥२॥ सखनौ सरुजौ कर्णौ कण्ठः शूकैरिवाऽऽवृतः ।
तन्द्रा मोहः प्रलापश्च कासः श्वासोऽरुचिर्भ्रमः ॥ ३ ॥ तद्वच्छीतं महानिद्रा
दिवा जागरणं निशि । सदा वा नैव वा निद्रा महास्वेदोऽति नैव वा ॥ ४ ॥
गीतनर्तनहास्यादिविकृतेहाप्रवर्तनम् । परिदग्धा खरस्पर्शा जिह्वा स्रस्ताङ्गता
परम् ॥ ५ ॥ द्धीवनं रक्तपित्तस्य कफेनोन्मिश्रितस्य च । शिरसो लोटनं तृ-

ष्णा निद्रानाशो हृदि व्यथा ॥ ६ ॥ स्वेदमूत्रपुरीषाणां चिराद्दर्शनमल्पशः ।
कृशत्वं नाति गात्राणां प्रतप्तं कण्ठकूजनम् ॥ ७ ॥ कोठानां श्यावरक्तानां म-
ण्डलानां च दर्शनम् । मूकत्वं स्रोतसां पाको गुरुत्वमुदरस्य च ॥ चिरात्पाक-
श्च दोषाणां संनिपातज्वराकृतिः ॥ ८ ॥ इति संनिपातज्वरलक्षणम् ।

अथ ग्रंथांतरात्संनिपातभेदाः ।

अम्लस्निग्धोष्णतीक्ष्णैः कटुमधुरसुरातापसेवाकषायैः कामक्रोधातिरूक्षैर्गु-
हृतरपिशिताहारसौहित्यशीतैः । शोकव्यायामचिन्ताग्रहगणवनितात्यन्तसङ्गप्र-
सङ्गैः प्रायः कुप्यन्ति पुंसां मधुसमयशरद्वर्षणे संनिपाताः ॥ १ ॥ तेषां त-
न्त्रान्तरे नामानि—संधिकश्चान्तकश्चैव रुग्दाहश्चित्तविभ्रमः । शीताङ्गस्त-
न्द्रिकश्चैव कण्ठकुब्जश्च कर्णकः ॥ २ ॥ विख्यातो भुम्नेत्रश्च रक्तष्ठीवी
प्रलापकः । जिह्वकश्चेत्यभिन्यासः संनिपातास्त्रयोदश ॥ ३ ॥ तेषां दिनमर्या-
दामाह—संधिके वासराः सप्त चान्तके दश वासराः । रुग्दाहे विंशतिज्ञेया
वह्नयष्टौ चित्तविभ्रमे ॥ ४ ॥ पक्षमेकं तु शीताङ्गे तन्द्रिके पञ्चविंशतिः । वि-
ज्ञेया वासराश्चैव कण्ठकुब्जे त्रयोदश ॥ ५ ॥ कर्णके च त्रयो मासा भुम्नेत्रे
दिनाष्टकम् । रक्तष्ठीविनि दिग्घस्त्राः प्रलापे स्युश्चतुर्दश ॥ ६ ॥ जिह्वके षोडशा-
हानि पक्षोऽभिन्यासलक्षणे । परमायुरिदं प्रोक्तं भ्रियते तत्क्षणादपि ॥ ७ ॥
सांध्यसाध्यानाह—संधिकस्तन्द्रिकश्चैव कर्णकः कण्ठकुब्जकः ॥ जिह्वकश्चित्त-
विभ्रंशः षट् साध्याः सप्त मारकाः ॥ ८ ॥

तेषां पृथग्लक्षणान्याह—पूर्वरूपकृतशूलसंभवं शोषवातबहुवेदनान्वितम् ॥
श्लेष्मतापबलहानिजागरं संनिपातमिति संधिकं वदेत् ॥ ९ ॥ दाहं करोति परिता-
पनमातनोति मोहं ददाति विदधाति शिरःप्रकम्पम् । हिक्कां तनोति कसनं च
समाजुहोति जानीहि तं विबुधवर्जितमन्तकाख्यम् ॥ १० ॥ इत्यन्तकस्यासाध्य-
त्वादौषधं नास्ति ॥ प्रलापपरितापनप्रबलमोहमान्द्यश्रमः परिभ्रमणवेदनाव्य-
थितकण्ठमन्याहनुः । निरन्तरतृषाकरः श्वसनकासहिक्काकुलः स कष्टतरसाध-
नो भवति हन्ति रुग्दाहकः ॥ ११ ॥ यदि कथमपि पुंसां जायते कायपीडा
भ्रममदपरितापो मोहवैकल्यभावः । विकलनयनहासो गीतनृत्यप्रलापोऽभि-
दधति तमसाध्यं केऽपि चित्तभ्रमाख्यम् ॥ १२ ॥ हिमसदृशशरीरो वेपथुश्चा-
सहिक्काशिथिलितसकलाङ्गो खिन्ननादोग्रतापः । क्लमथुद्वथुकासच्छर्द्यतीसा-
रयुक्तस्त्वरितमरणहेतुः शीतगात्रः प्रभावात् ॥ १३ ॥ शीताङ्गसंनिपातो-
ऽसाध्यः ॥ प्रभूता तन्द्रार्तिज्वरकफपिपासाकुलतरो भवेच्छयामा जिह्वा पृथुल-
कठिना कण्ठकवृता । अतीसारश्वासक्लमथुपरितापश्चतिरुजो भृशं कण्ठे जाड्यं
शयनमनिशं तन्द्रिकगदे ॥ १४ ॥ शिरोर्तिकण्ठग्रहदाहमोहकम्पज्वरा रक्तस-
मीरणार्तिः । हनुग्रहस्तापविलापमूर्छाः स्यात्कण्ठकुब्जः खलु कष्टसाध्यः ॥ १५ ॥

प्रलापश्रुतिहासकण्ठग्रहाङ्गव्यथाश्वासकासप्रसेकप्रभावम् । ज्वरस्तापकर्णा-
न्तयोर्गल्लपीडा बुधाः कर्णकं कष्टसाध्यं वदन्ति ॥ १६ ॥ संनिपातज्वरस्यांते
कर्णमूले सुदारुणः ॥ शोथः संजायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते ॥ १७ ॥ ज्वरस्य
पूर्वं ज्वरमध्यतो वा ज्वरांततो वा श्रुतिमूलशोथः ॥ क्रमादसाध्यः खलु
कष्टसाध्यः सुखेन साध्यो मुनिभिः प्रदिष्टः ॥ १८ ॥ ज्वरबलापचयः स्मृतिशू-
न्यताश्चसनभुग्नविलोचनमोहितः । प्रलपनभ्रमकम्पनशोफवांस्त्यजति जीवित-
माशु स भुग्नदृक् ॥ १९ ॥ रक्तष्टीवी ज्वरवमितृपामोहशूलातिसारा हिक्का-
ध्मानभ्रमणदवथुश्वाससंज्ञाप्रणाशाः । श्यामा रक्ताधिकतररसना मण्डलोत्था-
नरूपा रक्तष्टीवी निगदित इह प्राणहन्ता प्रसिद्धः ॥ २० ॥ कम्पप्रला-
पपरितापनशीर्षपीडाप्रौढप्रभावपवमानपरोऽन्यचिन्ता । प्रज्ञाप्रणाशविकलः प्र-
चुरप्रवादः क्षिप्रं प्रयाति पितृपालपदं प्रलापी ॥ २१ ॥ श्वसनकासपरिता-
पविह्वलः कठिनकण्ठकवृतातिजिह्वकः । बधिरमूकबलहानिलक्षणो भवति
कष्टतरसाध्यजिह्वकः ॥ २२ ॥ दोषत्रयस्त्रिगुणमुखत्वनिद्रावैकल्यनिश्चेतनकष्ट-
वाग्मी । बलप्रणाशः श्वसनादिनिग्रहोऽभिन्यास उक्तो ननु मृत्युकल्पः ॥ २३ ॥

इति त्रयोदश संनिपाताः ।

अथ वातोल्बणादिलक्षणानि ।

श्वासः कासो भ्रमो मूर्छा प्रलापो मोहवेपथू । पार्श्वयोर्वेदनाजृम्भा कपाय-
त्वं मुखस्य च ॥ १ ॥ वातोल्बणस्य लिङ्गानि संनिपातस्य लक्षयेत् । एष वि-
स्फारको नाम्ना संनिपातः सुदारुणः ॥ २ ॥ अतिसारो भ्रमो मूर्छा मुखपाक-
स्तथैव च । गात्रे च बिन्दवो रक्ता दाहोऽतीव प्रजायते ॥ ३ ॥ पित्तोल्बण-
स्य लिङ्गानि संनिपातस्य लक्षयेत् । भिषग्भिः संनिपातोऽयमाशुकारी प्रकी-
र्तितः ॥ ४ ॥ जडता गद्गदा वाणी रात्रौ निद्रा भवत्यपि । प्रस्तब्धे नयने चै-
व मुखमाधुर्यमेव च ॥ ५ ॥ कफोल्बणस्य लिङ्गानि संनिपातस्य लक्षयेत् ।
मुनिभिः संनिपातोऽयमुक्तः कम्पनसंज्ञकः ॥ ६ ॥ दोषे विवृद्धे नष्टेऽग्नौ सर्व-
संपूर्णलक्षणः । संनिपातज्वरोऽसाध्यः कृच्छ्रसाध्यस्ततोऽन्यथा ॥ ७ ॥ सप्तमे दि-
वसे प्राप्ते दशमे द्वादशेऽपि वा । पुनर्वोरतरो भूत्वा प्रशमं याति हन्ति वा
॥ ८ ॥ सप्तमी द्विगुणा यावन्नवम्येकादशी तथा । एषा त्रिदोषमर्यादा मोक्षा-
य च वधाय च ॥ ९ ॥ पित्तकफानिलवृद्ध्या दशदिवसद्वादशाहसप्ताहात् ।
हन्ति विमुञ्चति पुरुषं त्रिदोषजो धातुमलपाकात् ॥ १० ॥ मलपाकधातुपा-
कलक्षणे—दोषप्रकृतिवैकृत्यं लघुता ज्वरदेहयोः । इन्द्रियाणां च वैमल्यं दोषा-
णां पाकलक्षणम् ॥ ११ ॥ नाभेरूर्ध्वं हृदोऽधस्तात्पीडिते चेद्वथा भ-
वेत् । धातोः पाकं विजानीयादन्यथा तु मलस्य च ॥ १२ ॥ अन्यत् दो-
षपाकधातुपाकलक्षणम्—शश्वद्धीन्द्रियपञ्चकस्य पटुता वह्नेश्च यत्र क्रमात्तृणा-

द्विप्रशमो ज्वरस्य स्मृता तं दोषपाकं वदेत् । हृन्नाभ्योरतिवेदनातिसंरणं तीव्रो ज्वरस्तृट् क्लमः श्वासाधिक्यमरोचकोऽरतिरिति स्याद्वातुपाकाकृतिः ॥ १३ ॥ इति ॥
 आगन्तुज्वरः—अभिचाराभिधाताभ्यामभिषङ्गाभिशापतः । आगन्तुर्जायते दोषैर्यथास्वं तं विभावयेत् ॥ १४ ॥ भूतादौषधिगन्धाच्च भयाच्छोकाद्विषेण च । कामात्क्रोधाच्च जातो यः सोऽभिषङ्गज्वरः स्मृतः ॥ १५ ॥ श्वावास्यता विषकृते तथाऽतीसार एव च । भक्तारुचिः पिपासा च तोदश्च सह मूर्छया ॥ १६ ॥ ओषधीगन्धजे मूर्छा शिरोरुग्वमथुस्तमः ॥ कामजे चित्तविभ्रंशस्तन्द्रालस्यमरोचकम् ॥ १७ ॥ हृदये वेदना चाऽऽस्य गात्रं च परिशुष्यति । भयात्प्रलापः शोकाच्च भवेत्कोपाच्च वेपथुः ॥ १८ ॥ अभिचाराभिशापाभ्यां मोहस्तृष्णा च जायते । भूताभिषङ्गादुद्वेगो हास्यरोदनकम्पनम् ॥ १९ ॥ कामशोकभयाद्वायुः क्रोधात्पित्तं त्रयो मलाः । भूताभिषङ्गात्कुप्यन्ति भूतसामान्यलक्षणाः ॥ २० ॥ प्रशापाच्चाभिधातोत्थश्चेतनाप्रभवस्तु यः । राज्यह्नोः षट्सु कालेषु प्रेरितेषु यथा पुरा ॥ २१ ॥ प्रसह्य विषमोऽभ्येति मानवं बहुधा ज्वरः । स चापि विषमो देहं न कदाचिद्विमुञ्चति ॥ २२ ॥ यस्माद्वैरवैवर्ण्यकाश्रयैभ्यो न विमुञ्चति । वेगे तु समतिक्रान्ते गतोऽयमिति लक्ष्यते ॥ २३ ॥ शिरसो गौरवं ग्लानिर्नातिश्रद्धाऽतिभोजने । माधुर्यमतिवैरस्यं तिक्तत्वमथवा पुनः ॥ २४ ॥ वक्त्रस्य जायते यस्मात्प्रवेशे विगते सति । तस्मात्तु नियतो जुष्टः शरीरे विषमज्वरः ॥ २५ ॥ धात्वन्तरस्थो लीनत्वात्सूक्ष्मत्वादुपलभ्यते । अल्पदोषे न्यूनः क्षीणः क्षीणेन्यून इवानलः ॥ २६ ॥

विषमज्वरलक्षणं—दोषोऽल्पोऽहितसंभूतो ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः । धातुमन्यतमं प्राप्य करोति विषमज्वरम् ॥ २७ ॥ क्वचिदुष्णेन शीतेन क्वचिद्रात्रौ क्वचिद्दिवा । प्रशमं याति कोपं च ज्वरः स विषमः स्मृतः ॥ २८ ॥ यः स्यादनियतात्कालात् शीतोष्णाभ्यां तथैव च । वेगतश्चापि विषमः स ज्वरो विषमः स्मृतः ॥ २९ ॥ संततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकाः । पञ्चैते विषमाः ख्याताः संनिपातोद्भवा ज्वराः ॥ ३० ॥ संततो रसधातुस्थो रक्तस्थः सततो मतः । ज्वरः समभवन्नृणां सोऽन्येद्युः पिशिताश्रितः ॥ ३१ ॥ मेदोगतस्तृतीयेऽह्नि त्वस्थिमजागतः पुनः । कुर्याच्चातुर्थकं घोरमन्तकं रोगसंकरम् ॥ ३२ ॥ सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा । संतत्या योऽ विसर्गी स्यात्संततः स निगद्यते ॥ ३३ ॥ अहोरात्रे सततको द्वौ कालावनुवर्तते । अन्येद्युष्कस्त्वहोरात्रादेककालं प्रवर्तते ॥ ३४ ॥ तृतीयकस्तृतीयेऽह्नि चतुर्थेऽह्नि चतुर्थकः । इत्यादयस्तु विज्ञेया ज्वरा नानाविधा बुधैः ॥ ३५ ॥ यथा दोषप्रकोपस्तु तथा मन्येत तं ज्वरम् । यथा वेगागममे वेलां छादयित्वा महोदधेः ॥ ३६ ॥ वेगहानौ तदेवाभस्तत्रैवान्तर्बिलीयते । दोषवेगोदये तद्बुदीयेत ज्वरोऽस्य तु ॥ ३७ ॥ वेगहा-

नौ प्रशाम्येत तथाऽम्भः सागरे यथा । श्लेष्मप्रायस्तु पूर्वाह्ने प्रदोषे च प्रवर्तते ॥ ३८ ॥ पित्तप्रायस्तु मध्याह्ने त्वर्धरात्रे प्रवर्तते । अपराह्नेऽनिलप्रायः प्रत्यूषे च प्रवर्तते ॥ ३९ ॥ नर्ते वातात्तु विषमो ज्वरः समुपजायते । कफपित्ते च निश्चेष्टे चेष्टयत्यनिलो यतः ॥ ४० ॥ तस्मान्नर्तेऽनिलाद्रोगाः संभवन्ति ज्वरादयः । श्लेष्मप्रायस्तु विषमः शीतपूर्वः प्रजायते ॥ ४१ ॥ पित्तप्रायस्तु विषमो दाहपूर्वः प्रजायते । वातप्रायस्त्वनियते काले समुपजायते ॥ ४२ ॥ कृत्वा चिराद्वि देहस्य क्षिप्रवेपथुमुत्तमम् । श्लेष्मपित्ते विदह्येत रसस्थाने यदाऽनिलः ॥ ४३ ॥ तस्मिन्काले मनुष्याणां विषमो जायते ज्वरः । श्वासो मूर्छारुचिदृष्टिर्दिस्तृष्णातीसारविद्ग्रहाः ॥ ४४ ॥ हिक्का कासोऽङ्गभेदश्च ज्वरस्योपद्रवा दश । तन्द्रालस्याविपाकास्यैवरस्यं गुरुगात्रता ॥ ४५ ॥ क्षुब्धाशो बहुमूत्रत्वं स्तब्धता बलवाञ्ज्वरः । आमज्वरस्य लिङ्गानि न दद्यात्तत्र भेषजम् ॥ ४६ ॥ भेषजं ह्यामदोषस्य भूयो जनयति ज्वरम् । शोधनं शमनीयं वा करोति विषमज्वरम् ॥ ४७ ॥ ज्वरवगोऽधिका तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः । मलप्रवृत्तिरुल्लेखः पच्यमानस्य लक्षणम् ॥ ४८ ॥ क्षुत्क्षामता लघुत्वं च गात्राणां ज्वरमार्दवम् । दोषप्रवृत्तिरुत्साहो निरामज्वरलक्षणम् ॥ ४९ ॥ प्रकाङ्क्षा लाघवं ग्लानिः स्वस्थता सुप्रसन्नता । उपद्रवनिवृत्तिश्च सम्यगलङ्कितलक्षणम् ॥ ५० ॥ निद्रा तन्दा क्लमो भ्रान्तिस्तृष्णा शोषो बलक्षयः । उपद्रवाश्च श्वासाद्याः संभवन्त्वतिलङ्घिते ॥ ५१ ॥ स्वेदो लघुत्वं शिरसः कण्डूः पाको मुखस्य च । क्ष्वथुश्चान्नकाङ्क्षा च ज्वरमुक्तस्य लक्षणम् ॥ ५२ ॥ विगतक्लममोहं च त्वत्यर्थं विमलेन्द्रियम् । युक्तं प्रकृतिसत्त्वैश्च तं विद्याद्विगतज्वरम् ॥ ५३ ॥ ज्वरमुक्तस्य यस्यापि शिरोरुद्धैव मुञ्चति । अविमुक्तः स विज्ञेयो ज्वरः पुनरुपैति तम् ॥ ५४ ॥ इति संक्षेपतो ज्वरनिदानम् ॥

अथ क्रमप्राप्तस्य ज्वरस्य चिकित्सा ।

ज्वरादौ लङ्घनं शस्तं ज्वरमध्ये तु पाचनम् । ज्वरान्ते रेचनं प्रोक्तमेतज्वरचिकित्सितम् ॥ १ ॥ ज्वरे लङ्घनमेवाऽऽदावुपदिष्टमृते ज्वरात् । क्षयानिलभयक्रोधकामशोकश्रमोद्भवात् ॥ २ ॥ आमाशयस्थो हत्वाऽग्निं सामो मार्गान्निधापयन् । विदधाति ज्वरं दोषस्तस्मात्कुर्वीत लङ्घनम् ॥ ३ ॥ प्राग्रूपेषु ज्वरादौ वा बलं यत्नेन पालयन् । बलाधिष्ठानमरोग्यमारोग्यार्थः क्रियाक्रमः ॥ ४ ॥ अनवस्थितदोषाग्नेर्लङ्घनं दोषपाचनम् । ज्वरघ्नं दीपनं काङ्क्षारुचिर्लाघवकारणम् ॥ ५ ॥ न लङ्घयेन्मारुतजे ज्वरे च क्षयोद्भवे च क्षुधिते च जन्तौ । नगुर्विणीदुर्बलबालबृद्धान्भीतांस्तृषार्तानपि सोर्ध्ववातान् ॥ ६ ॥ दोषाणामेव सा शक्तिर्लङ्घने या सहिष्णुता । न हि दोषक्षये कश्चि-

त्सहते लङ्घनं महत् ॥ ७ ॥ वातजः सप्तरात्रेण दशरात्रेण पित्तजः । श्ले-
ष्मजो द्वादशाहेन ज्वरः पाकं प्रपद्यते ॥ ८ ॥ वाते द्वे पित्तजे चैकं कफे
दिनचतुष्टयम् । सप्ताहं वातपित्ते च कफपित्ते दश स्मृताः ॥ कफवाते द्वाद-
शाहं त्रिदोषे चैकविंशतिः ॥ ९ ॥ आसप्तरात्रं तरुणं ज्वरमाहुर्मनीषिणः ।
मध्यं द्वादशरात्रं तु पुराणमत उत्तरम् ॥ १० ॥ सप्ताहेन तु पच्यन्ते सप्तधा-
तुगता मलाः । निरामश्वाप्यतः प्रोक्तो ज्वरः प्रायोऽष्टमेऽहनि ॥ ११ ॥ इति
खरनादेनोक्तं । तथोक्तं वृद्धवाग्भटे—सर्वज्वरेषु दातव्यः कषायः सप्तमेऽहनि ।
अथवा लङ्घयेत्तावद्यावदारोग्यदर्शनम् ॥ १२ ॥ न कषायं प्रशंसन्ति कदाचित्तरु-
णे ज्वरे । कषायेणाऽऽकुलीभूता दोषा जेतुं सुदुस्तराः ॥ १३ ॥ अत्र विदेहः—
सर्वज्वरेषु सप्ताहे मात्रया लघु भोजयेत् । वेगापायेऽन्यथा तद्धि ज्वरवेगं
विवर्धयेत् ॥ १ ॥ क्षुत्संभवति पक्वेषु दोषधातुमलेषु च । काले वा यदि वा-
ऽकाले सोऽन्नकाल उदाहृतः ॥ २ ॥ अथ च वाग्भटः—ज्वरितं ज्वरमुक्तं वा
दिनान्ते भोजयेत्लघु । श्लेष्मक्षयप्रवृद्धोष्मा बलवाननलस्तदा ॥ १ ॥ यथोचि-
तेऽथवा काले देशसात्म्यानुरोधतः । प्रागल्पवह्निर्भुञ्जानो न ह्यजीर्णं पीड्यते
॥ २ ॥ कषायपानपथ्यान्नैर्दशाह इति लङ्घिते । ऊष्मा पित्ताहते नास्ति ज्व-
रो नास्त्यूष्मणा विना ॥ ३ ॥ तस्मात्पित्तविरोधीनि त्यजेत्पित्ताधिकेऽधिक-
म् । स्नानाभ्यङ्गप्रदेहांश्च परिशेषं च लंघनम् ॥ ४ ॥ अजीर्णं इव शूलघ्नं सामे
तीव्ररुजि ज्वरे । न पिबेदौषधं तद्धि भूय एवाऽऽसमावहेत् ॥ ५ ॥ तिक्तः पित्ते
विशेषेण प्रयोज्यः कटुकः कफे । पित्तश्लेष्महरत्वेपि कषायस्तु न शस्यते ॥ ६ ॥ नव-
ज्वरे मलस्तम्भात्कषायो विषमज्वरम् । कुरुतेऽरुचिहृल्लासहिष्माध्मानादिका-
नपि ॥ ७ ॥ सप्ताहादौषधं केचिदाहुरन्ये दशाहतः । केचिल्लघ्वन्नमुक्तस्य दे-
यमामोल्बणे न तु ॥ ८ ॥ तीव्रज्वरपरीतस्य दोषवेगोदये यतः । दोषेऽथवा-
ऽतिनिचिते तन्द्रा स्तैमित्यकारिणि ॥ ९ ॥ अपच्यमानं भैषज्यं भूयो जनयति
ज्वरम् । मृदुर्ज्वरो लघुर्देहश्चलिताश्च मला यदा । अचिरज्वरितस्यापि भेषजं
योजयेत्तदा ॥ १० ॥ अथ वृद्धवाग्भटः—षड्दशद्वादशाहेषु व्यतीतेषु क्रमे-
ण वै । वातपित्तकफातङ्गेष्वन्नकाला इमे त्रयः ॥ १ ॥ द्वंद्वजे संनिपाते च
व्याध्वावारोग्यदर्शने । सति यवागूयूषादि कल्पयेदतिनैपुणात् ॥ २ ॥ मुद्गा-
न्मसूरांश्चणकान्कुलत्थान्मकुष्टकान्पाचनयूषहेत् । हितान्हितानां विहितांश्च
पेयान्दद्याद्यवागूमपि पाचनैः स्वैः ॥ ३ ॥ अथ चक्रदत्तात्—नवज्वरे दिवा-
स्वापस्नानभोजनमैथुनम् । क्रोधप्रवातव्यायामकषायांश्च विवर्जयेत् ॥ १ ॥
निर्वातभवने वासमुष्णवारिनिषेवणम् । अभूरिजल्पं निष्क्रोधकामशोकं च रो-
गिणम् ॥ २ ॥ कुर्यादारोग्यसंपन्नं शीघ्रं वैद्यो विचक्षणः । कफमेदोनिला-

मध्नं दीपनं वस्तिशोधनम् ॥ ३ ॥ कासश्वासज्वरहरं पथ्यमुष्णोदकं सदा । यत्काथ्यमानं निर्वेगं निष्फेनं निर्मलं भवेत् ॥ ४ ॥ अर्धवशिष्टं भवति तदुष्णोदकमुच्यते । तत्पादहीनं वातघ्नमर्धहीनं तु पित्तनुत् ॥ ५ ॥ त्रिपादहीनं श्लेष्मघ्नं पाचनं दीपनं लघु । द्वंद्वजे संनिपाते च ज्वरे पथ्यं तदार्तिजित् ॥ ६ ॥ शरदि त्वर्धपादोनं पादहीनं तु हैमते । शिशिरे च वसन्ते च ग्रीष्मे चार्धवशिष्टं ॥ ७ ॥ विपरीते ऋतौ तद्व्यावृष्यष्टावशेषितम् । भिनत्ति श्लेष्मसंघातं मारुतं चापकर्षति ॥ ८ ॥ अजीर्णं जरयत्याशु पीतमुष्णोदकं निशि । धारापातेन विष्टम्भि दुर्जरं पवनाहतम् ॥ ९ ॥ शृतशीतं त्रिदोषघ्नं बाह्यान्तर्भावशीतलम् । दिवा शृतं तु यत्तोयं रात्रौ तदुरुतां व्रजेत् ॥ १० ॥ रात्रौ शृतं तु दिवसे गुरुत्वमधिगच्छति । तप्तायःपिण्डसंसिक्तं लोष्टनिर्वापितं जलम् ॥ ११ ॥ सर्वदोषहरं पथ्यं सदा नैरुज्यकारकम् । उष्णीकृतं जलं पथ्यं दोषवृद्धकासजिह्वु ॥ १२ ॥ शृतशीतं जलं पथ्यं त्रिदोषशमनं लघु । नवज्वरे प्रतिश्याये पार्श्वशूले गलग्रहे ॥ १३ ॥ सद्यःशुद्धौ तथाऽऽध्माने व्याधौ वातकफोद्धवे । अरुचिग्रहणीगुल्मश्वासकासेषु विद्रधौ ॥ १४ ॥ हिक्कायां स्नेहपाने च पिबेदुष्णं जलं नरः । अरोचके प्रतिश्याये प्रसेके श्वयथौ क्षये ॥ १५ ॥ मन्दाग्नावुदरे कुष्ठे ज्वरे नेत्रामये तथा । व्रणे च मधुमेहे च पानीयं मन्दमाचरेत् ॥ १६ ॥ मूर्च्छापित्तोष्णदाहेषु विषमे च मदात्यये । अमङ्गमपरीतेषु मार्गोत्थे वमथौ तथा ॥ ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते च शीतमम्भः प्रशस्यते ॥ १७ ॥ पानीयं पानीयं शरदि वसन्ते च पानीयम् । नादेयं नादेयं शरदि वसन्ते च नाऽऽदेयम् ॥ १८ ॥ उक्तं हि तन्त्रान्तारे—अमर्मोपहते देशे शिरासंध्यस्थिवर्जिते ॥ वर्षावसन्तसमये कौपं वारि प्रशस्यते । अम्भः शरदि ताडगं नादेयमृतुषु त्रिषु ॥ १ ॥ उत्तमस्य पलं मात्रा त्रिभिरक्षैश्च मध्यमा । जघन्यस्य पलार्धेन स्नेहकाथौषधेषु च ॥ २ ॥ कर्षश्चूर्णस्य कल्कस्य गुटिकानां च सर्वशः । द्रवः शुक्त्याऽवलेढव्यः पातव्यश्च चतुर्द्रवः ॥ ३ ॥ मात्रा मधुघृतादीनां काथे स्नेहेषु चूर्णवत् । द्विचत्वारिंशता माषैरष्टादशकबद्धकैः ॥ ४ ॥ पलं द्वादशबद्धं स्याद्भुजापट्टसमन्वितम् । काथ्यद्रव्यपले वारि द्विरष्टगुणमिष्यते ॥ ५ ॥ चतुर्भागावशेषं तु पेयं पलचतुष्टयम् । दीप्तानलं महाकायं पाययेदञ्जलिं जलम् ॥ ६ ॥ अन्ये त्वर्धं परित्यज्य प्रसृतं तु चिकित्सकाः । काथत्यागमनिच्छन्तस्त्वष्ट्रभागावशेषितम् ॥ ७ ॥

१. अस्यार्थः—पानीयं जलं शरदि पानार्हं भवति निर्मलत्वात्त्रिदोषघ्नत्वाद्विशेषतः पित्तोपशान्तिहेतुत्वाच्च । वसन्ते च पुनस्तदेव पानीयं पानीयं रक्षणीयमल्पं पेयमिति भावः । पा रक्षण इत्यस्य धातो रूपमेतत् । नदीभवं जलं नादेयं जलं शरदि अदेयं न, अपि तु देयं दातव्यमित्यर्थः । वसन्ते च नादेयं जलं नाऽऽदेयं न ग्राह्यमिति ॥

पारम्पर्योपदेशेन वृद्धवैद्याः पलद्वयम् । पाययन्त्यातुरं सामे पाचनं सप्तमेऽहनि ८

अथौषधाद्यजीर्णेऽन्नस्य ग्राह्याग्राह्यविचारः ।

वीर्याधिकं भवति भेषजमन्नहीनं हन्यात्तथाऽऽमयमसंशयमाशु चैव । तद्बालवृद्धयुवतीमृदवो निपीय ग्लानिं परां समुपयान्ति बलक्षयं च ॥ १ ॥ जीर्णौषधलक्षणम्—अनुलोमोऽनिलः स्वास्थ्यं क्षुत्तृष्णा सुमनस्कता । लघुत्वमथ चोद्गारः शुद्धो जीर्णौषधाकृतिः ॥ २ ॥

अजीर्णौषधलक्षणम् ।

कुमो दाहोऽङ्गसदनं भ्रमो मूर्छा शिरोरुजः । अरतिर्वसनं मोहो ह्यजीर्णौषधवैकृतिः ॥ १ ॥ औषधशेषे भुक्तं शेषेऽप्यन्ने तथौषधं पीतम् । न करोति गदोपशमं प्रकोपयत्यन्यरोगांश्च ॥ २ ॥ शीघ्रं विपाकमुपयाति बलं न हन्यादन्नावृतं न च पुनर्वदनाच्चिरिति । प्राग्भक्तसेवितमथौषधमेतदेव दद्याच्च भीरुशिथुवृद्धवराङ्गनाभ्यः ॥ ३ ॥ इति सर्वज्वरोपक्रमः ॥

अथ ज्वरे पथ्यानि ।

तण्डुलीयकवास्तूकबालमूलकपर्पटान् । पटोलं तिक्तशाकं च गुडूचीपलवान्यपि ॥ १ ॥ कालशाकं निम्बपुष्पं मारीषं दार्विकादलम् । जीवन्ती चापि चाङ्गेरी सुनिषण्णकमाविकैः ॥ २ ॥ पत्रशाकप्रियाणां तु ज्वरितानां प्रदापयेत् । मुद्गान्मसूरांश्चणकान्कुलित्थांश्च मकुष्ठकान् ॥ ३ ॥ यूषार्थं यूषसात्म्यानां ज्वरितानां प्रदापयेत् । लावान्कपिञ्जलानेणान्पृषताञ्जशरभान्जशान् ॥ ४ ॥ कालपुच्छान्कुरङ्गांश्च तथैव मृगमात्रकान् । मांसार्थं मांससात्म्यानां ज्वरितानां प्रदापयेत् ॥ ५ ॥ सारसक्रौञ्चशिखिनस्तथा तित्तिरकुक्कुटाः । ज्वरितानां न शस्यन्ते इति केचिद्व्यवस्थिताः ॥ ६ ॥ वृन्ताकपीलुकर्कोटपटोलककठिल्लकम् । फलशाककृते देयं सर्वं निःस्नेहमेव च ॥ ७ ॥ वत्सरोषितधान्यस्य तण्डुलान्धो ज्वरे हितम् । रोटिकार्थं प्रदातव्यं द्विवर्षोपितमल्पशः ॥ गोधूमादि यदा सात्म्यमन्यदप्यल्पमर्पयेत् ॥ ८ ॥ इति सुश्रुतात् ॥

अथौषधग्रहणविचारः ।

तत्रोपविश्य विश्रान्तः प्रसन्नवदनेक्षणः । औषधं हेमरजतमृद्भाजनपरिष्ठितम् ॥ १ ॥ पिवेत्प्रसन्नवदनः पीत्वा पात्रमधोमुखम् । निक्षिप्य पात्रे सलिलं ताम्बूलाद्युपकल्पयेत् ॥ २ ॥ यमदूतपिशाचाद्या यक्षगन्धर्वराक्षसाः । ते धन्यौषधवीर्याणि ततो गण्डूषवर्जनम् ॥ ३ ॥ काथस्य कलकस्य रसस्य यामं मा-

सत्रयं चाञ्जनचूर्णवीर्यम् । षण्मासवीर्यं गुडलेहयोश्च संवत्सरं तैलघृतस्य वीर्यम् ॥ ४ ॥

अथ ज्वरे पाचनम् ।

यत्पचत्याममाहारं पचेदामं रसं च यत् । यदपक्रान्पचेद्दोषांस्तद्धि पाचनमुच्यते ॥ १ ॥ न शोधयति यद्दोषान्समान्नोदीरयत्यपि । समीकरोति विषमांस्तत्संशमनमुच्यते ॥ २ ॥ तयोः संप्रदानकालं चाऽऽह—पाययेदातुरं सामं पाचनं सप्तमे दिने । शमनेनाथवा दृष्ट्वा निरामं तमुपाचरेत् ॥ ३ ॥

अथ वातज्वरे ।

गुडूचीपिप्पलीमूलनारैः पाचनं स्मृतम् । दद्याद्वातज्वरे पूर्णलिङ्गे सप्तमवासरे ॥ १ ॥ इति गुडूच्यादिपाचनम् । किराताब्दामृतोदीच्यबृहतीद्वयगोक्षुरैः । सस्थिराकलशीविश्वैः काथो वातज्वरापहः ॥ २ ॥ इति किरातादिः । शालिपर्णी बला रास्ना गुडूची सारिवा तथा । आसप्तं काथं पिबेत्कोष्णं तीव्रवातज्वरच्छिदम् ॥ ३ ॥ इति शालिपर्ण्यादिः । काश्मरीसारिवाद्राक्षान्नायमाणामृतोद्भवः । कषायः सगुडः पीतो वातज्वरविनाशनः ॥ ४ ॥ इति काश्मर्यादिः ॥ मरीचं रुचकं शुण्ठी किरातं च हरीतकी । पिप्पली कटुका चैव वातज्वरविनाशनम् ॥ ५ ॥ इति मरीचादिचूर्णं । त्रिफलाव्योषगुडयुक्शर्करात्रिवृताधकम् । मोदकं भक्षयित्वा तु पिबेच्चोष्णं जलं पुनः ॥ पार्श्वशूलेऽरुचौ कासे ज्वरे चानिलसंभवे ॥ ६ ॥ इति त्रिफलाद्यो मोदकः ॥

अथ पित्तज्वरे ।

कट्फलेन्द्रयवाम्बष्टातिक्तामुस्तैः शृतं जलम् । पाचनं दशमेऽह्नि स्यात्तीव्रे पित्तज्वरे नृणाम् ॥ १ ॥ इति कट्फलादिपाचनम् । दुरालभापर्पटकप्रियङ्गुभूनिम्बवासाकटुरोहिणीनाम् । काथं पिबेच्छर्करयाऽवगाढं तृष्णास्रपित्तज्वरदाहयुक्तः ॥ २ ॥ इति दुरालभादिः । द्राक्षाभयापर्पटकाब्दतिक्ताकाथं सशम्याकफलं विदध्यात् । प्रलापमूर्च्छाभ्रमदाहशोषतृषान्विते पित्तभवे ज्वरे च ॥ ३ ॥ इति द्राक्षादिः । एकः पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वरविनाशनः । किं पुनर्यदि युज्येत चन्दनोशीरधान्यकैः ॥ ४ ॥ इति पर्पटादिः वृन्दात् । औदुम्बरस्य निर्यासः सितया दाहनाशनः । छिन्नासारः सितायुक्तः पित्तज्वरनिषूदनः ॥ ५ ॥ द्राक्षा चैव गुडूची च मुस्ता पर्पटकं तथा । कटुका च समैः काथः पित्तज्वरविनाशनः ॥ ६ ॥ चन्दनं च सगन्धं च वालकोशीरपर्पटाः ।

१ क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्यां प्रयोजयेत् । पूर्वस्यां शान्तवेगायां न क्रियासंकरो हितः ।

मुस्ताशुण्ठीसमायुक्तः पित्तज्वरनिषूदनः ॥ ७ ॥ अहो किमर्थं बहवः कषा-
याः पराशराद्यैर्मुनिभिः प्रदिष्टाः । पित्तज्वरध्वंसकृते न किं स्यात्काथो गुड-
व्यामलपर्पटानाम् ॥ ८ ॥ जलजलजलवाहरेणुविश्वौषधशिशिरैः शिशिरीकृतः
कषायः । ननु खलु हरति ज्वरं प्रकृष्टं सवमिनिदाघतृषं निपीयमानः ॥ ९ ॥
अशीतवारिणा सिता सितायुता तु रोहिणी । विदाहतृड्भ्रमान्वितं निहन्ति
पित्तजं ज्वरम् ॥ १० ॥ निम्बपल्लवसंभूतरसफेनप्रलेपनात् । तृड्दाहमोहाः प्र-
शमं यान्ति पित्तसमुद्भवाः ॥ ११ ॥ केसरं मातुलङ्गस्य मधुसैन्धवसंयुतम् ।
जिह्वातालुगलक्कोमशोपमूर्धनि दापयेत् ॥ १२ ॥

अथ कफज्वरे ।

बीजपूरशिफापथ्यानागरग्रन्थिकैः शृतम् । सक्षारं पाचनं श्लेष्मज्वरे द्वाद-
शवासरे ॥ १ ॥ इति बीजपूरादिपाचनम् । भूनिम्बनिम्बपिप्पल्यः शटी शु-
ण्ठी शतावरी । गुडूची बृहती चेति काथो हन्यात्कफज्वरम् ॥ २ ॥ पटोल-
त्रिफलातिक्ताशटीवासामृतोद्भवः । काथो मधुयुतः पीतो हन्यात्कफकृतं ज्वर-
म् ॥ ३ ॥ निदिग्धिकाछिन्नरुहोपकुल्याविश्वौषधैः साधितमम्बु पीतम् । ह-
न्ति ज्वरश्वासबलासकासशूलान्निमान्धं जठरानिलं च ॥ ४ ॥ शृङ्गीकणाकट-
फलपौष्कराणां क्षौद्रान्वितानां विहितोऽवलेहः । आसेन कासेन युतं बलास-
ज्वरं जयेदत्र न काऽपि शङ्का ॥ ५ ॥ इति चातुर्भद्रावलेहिका । भार्ङ्गीगुडूची-
घनदारुसिंहीशुण्ठीकणापुष्करजः कषायः । ज्वरं निहन्ति श्वसनं क्षिणोति क्षु-
धं करोति प्ररुचिं तनोति ॥ ६ ॥

अथ सर्वज्वरे ।

आमलक्यभया कृष्णा चित्रकश्चेत्ययं गणः । सर्वज्वरभयातङ्को भेदी दीपन-
पाचनः ॥ १ ॥ अमृतारिष्टकचन्दनपद्मकधान्योद्भवः काथः । ज्वरहृत्सासच्छर्दितृ-
ष्णादाहारुचीर्हन्यात् ॥ २ ॥ छिन्नोद्भवाम्बुधरधन्वयवासविश्वैर्दुःस्पर्शपर्पटकमेघ-
किराततिकैः । मुस्ताटरूपकमहौषधधन्वयासैः काथं पिबेदनिलपित्तकफज्वरेषु
॥ ३ ॥ इति पृथक्चरणत्रयकाथाः ॥ धान्यत्रिकटुसिन्धूत्थमुद्गसैन्धवयोजि-
तः । भृष्टश्च हिङ्गुतैलाभ्यां स मण्डोऽष्टगुणः स्मृतः ॥ ४ ॥ दीपनः प्राणदो ब-
स्तिशोधनो रक्तवर्धनः । ज्वरजित्सर्वदोषघ्नो मण्डोऽष्टगुण उच्यते ॥ ५ ॥ इत्य-
ष्टगुणमण्डः ।

अथ वातपित्तज्वरे ।

छिन्नोद्भवार्पटवारिवाहभूनिम्बशुण्ठीजनितः कषायः । समीरपित्तज्वरजर्ज-
राणां करोति भद्रं खलु पञ्चभद्रः ॥ १ ॥ पञ्चमूल्यमृतामुस्ताविश्वभूनिम्ब-
साधितः । कषायः शमयत्याशु वायुमायुभवं ज्वरम् ॥ २ ॥ इति वैद्यजी-

वनात् ॥ त्रिफलाकाशमरीरास्त्राराजवृक्षाटरूपकैः । शृतमम्बु हरेत्तूर्णं वातपित्तो-
द्भवं ज्वरम् ॥ ३ ॥ इति वृन्दात् ।

अथ वातश्लेष्मज्वरे ।

सिंहीयवानीछिन्नानां काथश्चपलया युतः । कफवातज्वरश्वासशूलपीनसका-
सजित् ॥ १ ॥ क्षुद्रामृतानागरपुष्कराह्वैः कृतः कषायः कफमारुतोत्तरे । स-
श्वासकासारुचिपादर्वशूले ज्वरे त्रिदोषप्रभवेऽपि शस्यते ॥ २ ॥ आरग्वधक-
णामूलमुस्तातिक्ताभयाकृतः । काथः शमयति क्षिप्रं ज्वरं वातकफोद्भवम् ॥ ३ ॥
मुस्ता पर्पटकं शुण्ठी गुडूची च दुरालभा । कफवातारुचिच्छर्दिदाहशोषज्वराप-
हाः ॥ ४ ॥ भूनिम्बमुस्ताकटुकीगुडूचीदुरालभापर्पटनागराख्यैः । काथं मरु-
च्छेष्महरं वदन्ति सूर्यो यथा नाशयतेऽन्धकारम् ॥ ५ ॥

अथ पित्तश्लेष्मज्वरे ।

अमृतारिष्टकटुकामुस्तेन्द्रयवनागरैः । पटोलचन्दनाभ्यां च पिप्पलीचूर्णयुक्
शृतः ॥ १ ॥ अमृताष्टकमेतच्च पित्तश्लेष्मज्वरापहम् । छर्द्यरोचकहृत्पासदाहवृ-
ष्णानिवारणम् ॥ २ ॥ इत्यमृताष्टकम् । पटोलं चन्दनं मूर्वा पाठा तिक्ताऽमृता
कणा । पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहकण्डूविषापहाः ॥ ३ ॥ इति पटोलादिः ।
पटोलं पिचुमन्दं च त्रिफला मधुकं बला । साधितोऽयं कषायः स्यात्पित्त-
श्लेष्मभवे ज्वरे ॥ ४ ॥ तिक्तोशीरबलाधान्यपर्पटाम्बोधरैः कृतः । काथः पुनः
समायातं ज्वरं शीघ्रं निवारयेत् ॥ ५ ॥ इति तिक्तादिः । कण्टकार्यमृताभाङ्गी
नागेरेन्द्रयवासकम् । भूनिम्बं चन्दनं मुस्ता पटोलं कटुरोहिणी ॥ ६ ॥ कषायं
पायवेदेतं पित्तश्लेष्मज्वरापहम् । दाहवृष्णारुचीहिक्काकासहृत्पाशर्वशूलहृत्
॥ ७ ॥ लोहितचन्दनपद्मकधान्यच्छिन्नरुहापिचुमन्दकषायः । पित्तकफज्वरदा-
हपिपासावान्तिविनाशदुताशकरः स्यात् ॥ ८ ॥ लाजैर्वा तण्डुलैर्भृष्टैर्लाजम-
ण्डः प्रकीर्तितः । श्लेष्मपित्तहरो ग्राही पिपासाज्वरजिन्मतः ॥ ९ ॥ इति लाज-
मण्डः । जीरकं कारवेल्लम्बु शीतपूर्वज्वरे हितम् ॥ १० ॥

अथ संनिपाते ।

संनिपातज्वरे पूर्वं कुर्यादामकफापहम् । पश्चाच्छ्लेष्मणि संक्षीणे शमयेत्पित्त-
मारुतौ ॥ १ ॥ लङ्घनं बालुकास्वेदो नस्यं निष्ठीवनं तथा । अवलेहोऽञ्जनं चैव
प्राक्प्रयोज्यं त्रिदोषजे ॥ २ ॥ त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा दशरात्रमथापि वा । लङ्घ-
नं संनिपातेषु कुर्यादारोग्यदर्शनात् ॥ ३ ॥ दोषाणामेव सा शक्तिर्लङ्घने
या सहिष्णुता । न कश्चिदोपरहितो लङ्घनं सहते नरः ॥ ४ ॥ रसस्थे रस-
संशुद्धी रक्तस्थे रक्तमोक्षणम् । मांसस्थे रेचनं शस्तं मेदोघ्नं मेदसि स्थिते ॥ ५ ॥

रेचनं वमनं स्वेदश्चास्थिस्थे स्वेदमर्दनम् । मज्जशुक्राशयं दृष्ट्वा तमसाध्यं ज्वरं
वदेत् ॥ ६ ॥ क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्यां प्रयोजयेत् । पूर्वस्यां शा-
न्तवेगायां न क्रियासंकरो हितः ॥ ७ ॥ तप्तायोलान्छनं पञ्चताल्वादिषु त्रि-
दोषजे । रुद्राभिषेकभूदेवभोजनग्रहजाप्यतः । मन्त्ररक्षादिभिः कार्या संनिपा-
ते प्रतिक्रिया ॥ ८ ॥

अथ पाचनम् ।

कण्टकारीद्वयं शुण्ठी धान्यकं सुरदारु च । एभिः शृतं पाचनं स्यात्सर्वज्वरनि-
वारणम् ॥ १ ॥

अथ वालुकास्वेदः ।

खर्परभृष्टपटस्थितकाञ्जिकसंसिक्तवालुकास्वेदः । शमयति वातकफामयमस्त-
कशूलान्गभेदादीन् ॥ १ ॥

अथ नस्यम् ।

मातुलुङ्गार्द्रकरसं कोष्णं त्रिलवणान्वितम् । अन्यद्वा सिद्धविहितं नस्यं ती-
क्ष्णं प्रयोजयेत् ॥ १ ॥ तेन प्रभिद्यते श्लेष्मा प्रभिन्नस्तु प्रसिच्यते । शिरोहृदय-
कण्ठास्यपार्श्वरुक्चोपशाम्यति ॥ २ ॥ मधूकसारसिन्धूत्थवचोपणकणाः समाः ।
श्लक्ष्णं पिष्ट्वाभसा नस्यं कुर्यात्संज्ञाप्रबोधनम् ॥ ३ ॥ सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्ष-
पाः कुष्ठपिप्पली । वस्तमूत्रेण पिष्टानि नस्यं तन्द्रानिवारणम् ॥ ४ ॥

अथ निष्ठीवनम् ।

आर्द्रकस्वरसोपेतं सैन्धवं सकटुत्रयम् । आकण्ठं धारयेच्चाऽऽस्ये निष्ठीवेच्च
पुनः पुनः ॥ १ ॥ तेनास्य हृदयाच्छ्लेष्मा मन्यापार्श्वशिरोगलान् । लीनो व्याकृ-
त्यते शुष्को लाघवं चास्य जायते ॥ २ ॥

अवलेहः—कटफलं पौष्करं शृङ्गी कृष्णा च मधुना सह । आसकासज्वर-
हरः श्रेष्ठो लेहः कफान्तकः ॥ १ ॥ अष्टांगावलेहिका—कटफलं पौष्करं शृ-
ङ्गी व्योषं यासश्च कारवी । श्लक्ष्णं चूर्णीकृतं चैतन्मधुना सह लेहयेत् ॥ २ ॥
एषाऽवलेहिका हन्ति संनिपातं सुदारुणम् । हिक्कां आसं च कासं च कण्ठरोधं च
शुर्धुरम् । एतद्योज्यं कफोद्रेके चूर्णमार्द्रकजै रसैः ॥ ३ ॥ इत्यष्टाङ्गावलेहिका ।

अथ अञ्जनं नस्यंच ।

शिरीषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैन्धवैः । अञ्जनं स्यात्प्रबोधाय सरसोनशि-
लावचैः ॥ १ ॥ कस्तूरी मरिचं वाजिलाला च मधुनाऽञ्जनम् । तन्द्रां निवा-
रयत्याशु व्योषप्रधमनं तथा ॥ २ ॥

अथाञ्जनोज्ज्वलने ।

तुरङ्गलालासहिता मनःशिला निहन्ति तन्द्रांसकटदञ्जनेन । बन्धूलपत्राणि ह-

रीतकी च संस्वेदिता स्वेदविकारहन्त्री ॥ १ ॥ भूनिम्बकटुकाकुष्ठं कारवीन्द्र-
यवः सटी । एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ २ ॥ प्रस्वेदे कण्ठ-
रोधे च संधिमर्दनमिष्यते । एतदुद्धूलनं श्रेष्ठं संनिपातहरं परम् ॥ ३ ॥ स्वेदो-
द्गमे भृष्टकुलत्थचूर्णैरुद्धूलनं शस्तमिति ब्रुवन्ति । जीर्णं शकृद्गोर्लवणस्य भाण्डं
स्वेदापहं गुण्डनमुत्तमं हि ॥ ४ ॥ अथ वृद्धवाग्भटः—यवानिका वचा शुण्ठी
पिप्पली कारवी तथा । एतैरुद्धूलनं शस्तं त्रिदोषोत्थे ज्वरे नृणाम् ॥ ५ ॥
किरातं कटुका पथ्या कणा कायफलं वचा । उद्धूलनं त्रिदोषे च सदा शैत्ये
च शस्यते ॥ ६ ॥ विषभागो भवेदेको मरीचात्रिगुणो मतः । आरण्योपलजं
भस्म षोडशांशसमन्वितम् ॥ ७ ॥ एकत्र मिलितं चूर्णं धूर्तस्वरसभावितम् ।
आतपे शोषितं तच्च शीतं स्वेदहरं परम् ॥ ८ ॥ अथवा चणका भृष्टा यवानी-
चूर्णमिश्रिताः । वचोषणरजोयुक्ताः स्वेदसंशोषणा मताः ॥

अथ संनिपाते जिह्वायां लेपः ।

उच्छुष्कां स्फुटितां जिह्वां द्राक्षया मधुपिष्टया । प्रलेपयेत्सधृतया संनिपा-
तात्मके ज्वरे ॥ १ ॥ सुवर्णमुक्तारजतप्रवालैः कस्तूरिकाकुङ्कुमरोचनं च । वराट-
रुद्राक्षमधूकबिल्वं कुष्ठं च खर्जूरपुनर्नवा च ॥ २ ॥ द्राक्षा कणा नागरपुत्र-
जीवी सारङ्गशृङ्गं कतकस्य बीजं । एरण्डमूलं शरसर्पं च मयूरिका श्वेतपुन-
र्नवा च ॥ स्तन्येन पिष्ट्वा कुरु संनिपाते लेपं सदा सर्वगदं निहन्ति ॥ ३ ॥
पंचमुष्टिकयूषः—यवकोलकुलित्थानां मुद्गसूलकयोरपि । एकैकं मुष्टिमादाय
पचेदष्टगुणे जले ॥ ४ ॥ पञ्चमुष्टिक इत्येष वातपित्तकफापहः । शस्यते गुल्म-
शूले च श्वासे कासे क्षये ज्वरे ॥ ५ ॥

अथ सप्तमुष्टिकयूषः ।

कुलित्थयवकोलैश्च मुद्गैर्मूलकशुष्कैः । शुण्ठीधान्यकयुक्तैश्च यूषः श्लेष्मा-
निलापहः । सप्तमुष्टिक इत्येष संनिपातज्वराजयेत् ॥ १ ॥

अथ सिद्धार्थादिप्रलेपकः ।

सिद्धार्थको वचा हिङ्गु करञ्जः सुरदारु च । मज्जिष्ठा त्रिफला श्वेता क-
टभीत्वक्कटुत्रयम् ॥ १ ॥ प्रियङ्गुश्च शिरीषं च निशा दावीं समांशतः । अ-
जामूत्रेण संपिष्टो गोमूत्रैर्वाऽथ चूर्णितः । सर्वज्वरं निहन्त्याशु सिद्धार्थादिप्र-
लेपकः ॥ २ ॥

अथ काथः ।

भार्ङ्गीभूनिम्बनिम्बैर्धनकटुकवचाव्योपवासाविशालारास्त्रानन्तापटोलीसुर-
तरुजनीपाटलाटुण्डुकैश्च । ब्राह्मीदावीगुडूचीत्रिवृदतिविषिकापुष्करत्रायमाणै-
र्व्याघ्रीसिंहीकलिङ्गैस्त्रिफलसटियुतैः कल्पितस्तुल्यभागैः ॥ १ ॥ काथो द्वात्रिंश-

दाख्यरूपधिकदशमहासंनिपातान्निहन्त्याच्छूलं कासादिहिकाकसनगुदरुजाध्मानविध्वंसकारी । ऊरुस्तम्भाच्चवृद्धिं गलगदमरुचिं सर्वसंधिग्रहार्तिं मातङ्गं यो निहन्त्यामृगरिपुर्विव चेद्रोगजालं तथैव ॥ इतिद्वान्निशदंगः ॥ २ ॥ भूनिम्बदारुदशमूलमहौषधावदित्तेन्द्रबीजधनिकेभकणाकषायः । तन्द्राप्रलापकसनारुचिदाहमोहश्वासादियुक्तमखिलज्वरमाशु हन्यात् ॥ ३ ॥ इत्यष्टादशाङ्गः ॥ क्षुद्रा-पौष्करभूनिम्बगुडूचीविश्वभेषजैः । पञ्चतित्तकनामाऽयं काथो हन्यष्टधाज्वरम् ॥ ४ ॥ अथान्यच्च—दाव्यम्बुदस्तित्तफलत्रिकं च क्षुद्रा पटोली रजनी च निम्बः । काथं विदध्याज्वरसंनिपाते निश्चेतने पुंसि विबोधनार्थम् ॥ ५ ॥

कफप्रधानसंनिपाते—ग्रन्थीन्द्रजामरतरुकिमिशत्रुभार्गीभृङ्गत्रिकट्वनल-कटफलपौष्कराणाम् । रास्ना भयावृहतिकाद्वयदीप्यभूतकेशीकिरातकवचाचवि कावृकीणाम् ॥ ६ ॥ काथो हन्यात्संनिपातान्समग्रान्बुद्धिभ्रंशंस्वेदशैत्यप्रलापान् शूलाध्मानं विद्रधिं श्लेष्मवातान्वातव्याधीन्सूतिकानां च तद्वत् ॥ ७ ॥

वातप्रधानसंनिपाते—अर्कानन्ताकिरातामरतरुसनासिन्दुवारोग्रगन्धा तर्कारीशिमुपञ्चोषणघुणदयितामार्कवाणां कषायः । सद्यस्तीव्रांश्चिदोषानपहरति धनुर्मारुतं दन्तबन्धं शैल्यं गात्रेषु गाढं श्वसनकसनकं सूतिकावातरोगान् ॥ ८ ॥ अन्यच्च अर्कग्रन्थिकशिमुदारुचविकानिर्गुण्डिका पिप्पली रास्नाभृङ्गपुन-र्नवानलवचाभूनिम्बशुण्ठीकृतः । काथः संहरति त्रिदोषमखिलं स्वापानिलं सूतिकानानामारुतशैत्यशान्तिकृदपसारसरय्यम्बकः ॥ ९ ॥ बिल्वोऽग्निमन्थः स्योनाकः काश्मरी पाटला स्थिरा । त्रिकण्टकः पृश्निपर्णी बृहती कण्टका-रिका ॥ १० ॥ दशमूलमिदं श्वाससंनिपातज्वरापहम् । दशमूली शटी शृङ्गी पौष्करं सदुरालभम् ॥ ११ ॥ शुण्ठी कुटजबीजं च पटोलं कटुरोहिणी । अष्टा-दशाङ्ग इत्येष संनिपातज्वरापहः ॥ कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिंश्वासहिक्कावमीहरः ॥ १२ ॥ इति दशमूल्याद्यष्टादशाङ्गः । लशुनं तित्तकं काण्डं भार्गी चातिविषा तथा । नरमूत्रेण च काथः संनिपाते सुदारुणे ॥ १३ ॥

इति लशुनादिः ।

अथ संधिकादीनां चिकित्सा ।

संधिस्थे हितमस्ति लङ्घनविधिस्वेदोपनाहादिकं रुक्षं कर्म समग्रमेव वि-हितं कुर्याद्यवागूरसम् । मूलीपञ्चककल्ककल्पितमिदं सन्मागधीमिश्रितं कौ-लत्थेन रसेन सैन्धवयुतं पेयं च विश्वौषधम् ॥ १ ॥ रास्नागुडूचीसटिवृद्धदारु-सुराह्विश्वात्रिफलावरीभिः । काथं पिबेद्गुगुलुसंप्रयुक्तं समस्तसंधिग्रहसंनिपा-ते ॥ २ ॥ रास्नाशुण्ठीगुडूचीसहचरजलदाभीरुपथ्यासुराह्वैस्तित्ताकर्चूरवासानि-लरिपुसहितैः पञ्चमूलीद्वयेन । एभिर्द्रव्यैः कषायस्त्वरितमपहरेत्पीतमात्रः प्रभा-ते मन्यास्तम्भाच्चवृद्धिं ज्वरपित्तकटीसंधिसर्वाङ्गपीडाः ॥ ३ ॥ अमृतोरुबृकवि-श्वासुरतरुरास्नाहरीतकीकाथः । सकलसमीरणरोगान्प्रातः सद्यो हरेत्पीतः

॥ ४ ॥ ग्रन्थिककलितरूपथ्याकृतमालशिवाटरूपकैर्विहितः । एरण्डतैलयुक्तः
काथो हन्यान्मरुन्मान्द्यम् ॥ ५ ॥ इति संधिकचिकित्सा ॥

अथान्तकस्यासाध्यत्वादौषधं नास्ति ॥

अथ रुग्दाहस्य चिकित्सा ।

जलधरमलयजनागरसवालकोशीरपर्पटैः कथितम् । यः पिबति पयः शीतं
शाम्यति रुग्दाहकस्तस्य ॥ १ ॥ बदरीपल्लवलेपः श्रीखण्डारिष्टफेनसंयुक्तः ।
दातव्यः पदतलयो रुग्दाहकसंनिपातघ्नः ॥ २ ॥ पर्युषितधान्यसलिलं प्रातः
पीतं सशर्करं पुंसाम् । अन्तर्दाहं शमयति प्रवृद्धमपि तत्क्षणादेव ॥ ३ ॥
ब्राह्मीद्राक्षाजलधरवचोशीरशम्याकतित्तापथ्याधात्रीकलितरुबलानिम्बकोशा-
तकीभिः । भूनिम्बाद्यो भवति सहितः पञ्चमूलीद्वयेन पीतः काथः सकलपव-
नव्याधिरुग्दाहहन्ता ॥ ४ ॥ अगुरुघनसारसल्लककररुहनतनीरचन्दनैर्युक्तः ।
रुग्दाहसंनिपातं निहन्ति मधुमिश्रितो धूपः ॥ ५ ॥ निर्गुण्डीपुरसहितः सि-
द्धार्थकनिम्बसंयुक्तः । सर्जरसेन समेतो धूपो रुग्दाहकं हन्ति ॥ ६ ॥ पयोधरा-
भ्यां कुशलां सुरूपां नवयौवनाम् । प्रमदां स्वभुजाश्लेषैर्भजेद्गुग्दाहमूर्छितः ॥ प्रल्हादं
चास्य विज्ञाय तां स्त्रीमपनयेत् पुनः ॥ हितं च भोजयेदन्नं येनाप्नोति सुखं म-
हत् ॥ ७ ॥ प्रल्हादं कामकृतहर्षं ॥ इति भावप्रकाशात् ॥ इति रुग्दाहक-
चिकित्सा ॥

अथ चित्तविभ्रमचिकित्सा ।

पथ्यापर्पटकटुकाष्टुकीकादारुजलदभूनिम्बाः । शम्याकपटोलशिवाकाथश्चि-
त्तभ्रमं हन्ति ॥ १ ॥ हरीतकीपर्पटहारहूराशम्बूकपुष्पीकटुकापयोदैः । श-
म्याकदेवाह्वयभारतीभिश्चित्तभ्रमं हन्ति कृतः कषायः ॥ २ ॥ कणोषणोग्राल-
वणोत्तमानि करंजबीजप्रमदामलानि । पथ्याक्षसिद्धार्थकहिङ्गुशुंठीयुतानि बस्तां-
बुविमिश्रितानि ॥ ३ ॥ पिष्ट्वागुटीयं नयने विधेया प्रचेतनेतिप्रथितान्वितार्था ।
चित्तभ्रमापस्मृतिभूतदोषशिरोक्षिरोगभ्रमनाशहेतुः ॥ ४ ॥ इति भावप्रकाशात्
॥ इति चित्तभ्रमचिकित्सा ।

शीताङ्गसंनिपातोऽसाध्यः ॥ शीताङ्गस्य चिकित्सा—भास्वन्मूलं जीरकव्यो-
षभागी व्याघ्री शुंठी पुष्करं गोजलेन ॥ सिद्धं सद्यः शीतगान्नातिमोहश्वासश्ले-
ष्मोद्रेककासान्निहति ॥ १ ॥ भास्वन्मूलं अर्कमूलं ॥ रसविपमरिचमहेशप्रियफ-
लभस्मैकभूचतुर्वसुभिः ॥ २ ॥ भागैर्मितमुद्धूलनमिदमतिस्वेदशैत्यहरं ॥ इति
भावप्रकाशात् ॥ ३ ॥

अथ तन्द्रिकचिकित्सा ।

ज्वरे प्रथममुत्पन्ने चक्षुर्भ्यां नैव पश्यति । तन्द्रिकः संनिपातोऽयं कष्टसाध्यो
भवेत्ततः ॥ १ ॥ भागीपुष्करपथ्यानिदिग्धकानागरामृताकाथः । अपनयति
तन्द्रिकमिमं निःसंशयं प्रगे पीतः ॥ २ ॥ रास्त्रामनःशिलैलाञ्जनमेतत्तन्द्रि-

केऽपीष्टम् । अमृतापटोलवासाव्योषयुस्तन्निद्रके काथः ॥ ३ ॥ कुष्ठगवाक्षीना-
गरमरिचनिशाद्वयवचाकणायुक्तः । बस्तसलिलेन पिष्टं तन्निद्रकनिघ्नं भवेन्नस्यम्-
॥ ४ ॥ इति तन्निद्रकचिकित्सा ।

अथ कण्ठकुब्जचिकित्सा ।

त्रिकटुककलिङ्गकटुकाहरीतकीविभीतकामलकैः । ध्वंसयति कण्ठकुब्जं वृ-
षरजनीद्वययुतः काथः ॥ १ ॥ शृङ्गीवत्सकचेतकीघनसटीभूनिम्बभार्गानिशा-
तिकापुष्करचित्रकैः समरिचैर्व्याघ्रीवृषामिश्रितैः । धात्रीदारुविभीतकैश्च चवि-
काविश्वाकणाकट्फलैः पीतः कृन्तति कण्ठकुब्जमचिरात्कोष्णः कषायस्त्वह
॥ २ ॥ अपनयति कण्ठकुब्जं कृष्णापामार्गबीजदं नस्यम् । अथ हन्ति सलि-
लसहितं त्रिकटुककटुतुम्बिनीनस्यम् ॥ ३ ॥ इति कण्ठकुब्जचिकित्सा ।

अथ कर्णकस्य चिकित्सा ।

रक्तस्त्रावो जलौकाभिर्धृतपानं च युज्यते । कर्णग्रन्थिविनाशार्थमायुर्वेदवि-
दां वरः ॥ १ ॥ तत्र रक्तं हरेत्क्षिप्रं जलौकाभिरनन्तरम् । त्रिफलासर्पिषः पा-
नं कार्यं जीर्णघृतस्य च ॥ २ ॥ प्रदेहाः कफपित्तघ्नाः कार्याः संशमनानि च ।
मुद्गपर्णनिभा पृष्टे रक्तवर्णा यथोदरे । षडङ्गुलप्रमाणेन जलौका भद्रिका म-
ता ॥ ३ ॥ रास्त्रावृहतीपथ्याव्योषकटुकाघनपुष्कराह्वैश्च । शृङ्गीधाराभार्गाङ्गि-
थः कर्णकरुजं हरेत्पानात् ॥ ४ ॥ मरीचदशमूलमगधाफलत्रयनिशामहौष-
धीतिकाः । भूनिम्बसैन्धवयुतः कर्णकहन्ता भवेत्काथः ॥ ५ ॥ हिङ्गुद्विनि-
शविशालसैन्धवसुरदारुकुष्ठरविदुग्धैः । दत्तः क्रमेण लेपो हन्ति महाकर्णकग्र-
न्थिम् ॥ ६ ॥ दशशतकरदुग्धारुष्करत्वक्समेतं दहनगुडनिकुम्भाकुष्ठकासीस-
युक्तम् । अपनयति वितीर्णं लेपनं ससरात्राच्छ्रयथुहरणयुक्तं कर्णकग्रन्थिमेतत्
॥ ७ ॥ अशिशिरजलयुक्तं नावनं कर्णकातौ जनयति सुखसिद्धिं घ्राणरन्ध्रप्रवे-
शात् । लवणपरमकृष्णाचूर्णयुक्तं प्रभाते सकलमुनिभिरुक्तं व्याधिविध्वंसकारि
॥ ८ ॥ दन्तीचित्रकयोर्मूलं स्नुहार्कपयसी गुडः । भल्लातकास्थि कासीसं लेपो
भवति कर्णके ॥ ९ ॥ सनागरं देवदारुस्त्राचित्रकपेषितम् । प्रलेपनमिदं श्रेष्ठं
गलशोथविनाशनम् ॥ १० ॥ कुलत्थः कट्फलं शुण्ठी कारवी च समांशकैः ।
सुखोष्णं लेपनं कार्यं कर्णमूले मुहुर्मुहुः ॥ ११ ॥ इति कुलित्थादिलेपः । बी-
जपूरकमूलत्वग्बद्धिमन्थस्तथैव च । शरपुङ्खाशिखीतुम्बीसकृष्णाविषमुष्टिभिः
॥ १२ ॥ प्रलेपो वा हिडम्बीभिः श्वयथौ कर्णमूलजे । वज्रमुष्टिभवः कन्दः
शोथविध्वंसनक्षमः ॥ १३ ॥ कर्कटस्य च मांसेन स्वेदनं बन्धनं तथा । कर्णमूलभवं
शोथं नाशयत्यविलम्बितम् ॥ १४ ॥ सिद्धार्थसैन्धववचाग्रहधूमविश्वैः पिष्टैर्ज-
लेन निशया सहितश्च सूक्ष्मम् । लेपो हितो रुधिरनिष्क्रमणप्रतीतशोफव्रणस्य
शमनः सरुजश्च कर्णे ॥ १५ ॥ इति कर्णकचिकित्सा ।

अथ भुग्ननेत्रचिकित्सा ।

दाढ्यम्बुदातिकफलत्रिकं च क्षुद्रा पटोली रजनी सनिम्बा । क्वाथं विदध्या-
ज्ज्वरसंनिपाते निश्चेतने पुंसि विबोधनार्थम् ॥ १ ॥ भूनिम्बमाक्षिकवचास-
हितं च कुर्याद्देहं कणोषणरसोनसुराजिकाभिः । नेत्राञ्जनं च लवणोत्तमपिप्प-
लीभ्यां नस्यं वचामरिचहिङ्गुमधूकसारैः ॥ २ ॥ मरिचतुरगगन्धामागधी
सिन्धुजातं लशुनमधुकसारैरुग्रगन्धार्द्रकाभ्याम् । लगलकजलपिष्टः संयुतः
शास्त्रविद्धिः सपदि भवति नस्यो भुग्ननेत्रप्रमाथी ॥ ३ ॥

इति भुग्ननेत्रचिकित्सा ।

अथ रक्तष्टीविचिकित्सा ।

पर्पटधन्वयवासकवासाभूस्तृणकैः कटुकीफलनीभ्याम् । शर्करया सहितोऽपि
कषायो लोहितमास्यगतं विनिहन्ति ॥ १ ॥ जलदाह्यपद्मकपर्पटकैर्मलयोज्ज-
्वजातिवरीमधुकैः । मधुनिम्बजलानलचन्दनकैः कथितं मुखरक्तहरं सलिलम्
॥ २ ॥ इति रक्तष्टीविचिकित्सा ।

अथ प्रलापकचिकित्सा ।

तगरतुरगगन्धा पर्पटी शङ्खपुष्पी त्रिदशविटपित्तिका भारती भूतकेशी ।
जलधरकृतमालश्चेतकीगोस्तनीभ्यां सह हरति कषायो मङ्गु पानात्प्रलापम् ॥ १ ॥
जलधरदशमूलं वारि शुण्ठीसमेतं मलयजकृतमालं वासकं पर्पटं च । समध-
रणदृतांशः क्वाथ एष प्रभाते शमयति समुदीर्णं पीतमात्रः प्रलापम् ॥ २ ॥

इति प्रलापकचिकित्सा ।

अथ जिह्वकचिकित्सा ।

सिंहीनागरपुष्करैः सकटुकैः रास्त्रागुडूचीयुतैर्भर्गीकर्कटशृङ्गिकाशटिसमैर्दुः-
स्पर्शवासावनैः । पीतं जिह्वकहारि वारि भवति ब्राह्मीवचामिश्रितैः प्रोक्तं वै-
द्यवरेण वन्द्यमुनिभिर्भूनिम्बमिश्रं शृतम् ॥ १ ॥ सुरतरुकटुनिम्बैरक्षपथ्यापटो-
लीरजनियुगुलविश्वासिंहिकापुष्कराह्वैः । सलिलधरगुडूचीवासकैः सर्वमेभिः प्र-
शमयति कषायो जिह्वकं कष्टसाध्यम् ॥ २ ॥ तीक्ष्णद्रव्यैः सलवणैर्मौतुलुङ्गर-
सपुतैः । जिह्वायां च सकृद्वेपः कटुतीक्ष्णेन संयुतैः ॥ ३ ॥

इति जिह्वकचिकित्सा ।

अथाभिन्यासः ।

रामठनागरसहितं भृङ्गरसाम्लं विलेहयेत्प्रातः । अथ कटुतिक्तोपयुतं भव-
द्वा सुखप्रबोधनं तस्य ॥ १ ॥ मरिचलवणकृष्णाभूतकेशीमधूकैः कटुफलमधु-
कृत्वा कोष्णनीरेण नस्यः । प्रकटयति विकीर्णश्चाष्टभिर्वा चतुर्भिः सकलकरणबो-
धं बिन्दुभिर्दीयमानः ॥ २ ॥ लशुनमरिचकृष्णामाणिमन्थोग्रगन्धाशुक्ततरु-

लबीजैर्विश्वगोमूत्रपिष्टैः । कफपवनविकारे रक्तपित्तप्रभेदे गदितमगदविद्धि-
 नेत्रयोरञ्जनं स्यात् ॥ ३ ॥ संज्ञा यस्य न जायते चरणयोर्द्वंद्वं समादह्यते
 भाले लोहशलाकया शशिकृते सर्वक्रियाकर्मणि । शृङ्गीधन्वयवासपुष्करजटा-
 भार्गीशटीसिंहिकाकाथः पानविधानतः कफहरोऽभिन्यासविध्वंसकः ॥ ४ ॥
 त्रायन्तीदशमूलपुष्करजटावातारिभिः कारवी भार्गी स्यादमृताटरूपकशटीगो-
 मूत्रसंयोजितैः । शृङ्गीव्योषपुनर्नवाभिरचिरादुष्णः कपायो हरेत्सोऽभिन्यासग-
 दं कफज्वरहरो निःसंशयं पानतः ॥ ५ ॥ मञ्जिष्ठाशिखिबालबिल्वकशटीशुण्ठी
 करञ्जानिशात्रायन्तीबृहतीवृषोषणकणाकाथस्तु पेयीयते । यैः प्रातः प्रणिधाय
 लक्षितगदैः सद्रैद्यराट्संनिधौ तस्यापि प्रशमं व्रजन्ति सहसा सर्वाङ्गजा व्याधयः
 ॥ ६ ॥ सुरभिसलिलयुक्तः सिंहिकाश्रीफलाभ्यां प्रवरलवणयासाविश्वपापाण-
 भेदैः । पवनरिपुजटाभिः संयुतः काथ एष प्रतिदिनमपि पीतो हन्त्यभिन्या-
 सशूलम् ॥ ७ ॥ शृङ्गीभार्ग्यभयाजाजी कणाभूर्निबर्पटाः । देवदारुवचा-
 कुष्ठयासकटफलनारैः ॥ ८ ॥ मुस्तधान्याकतिकेन्द्रयवपाठाहरेणुभिः । हस्तिपि-
 प्लव्यपामार्गपिप्पलीमूलचित्रकैः ॥ ९ ॥ विशालारग्वधारिष्टशटीबाकुचिकाफलैः ।
 विडंगरजनीदार्वीयवानीद्वयसंयुतैः ॥ १० ॥ समांशैर्विहितः काथो हिङ्ग्वार्द्रकर-
 साचितः । अभिन्यासं ज्वरं घोरं हन्ति तंदां च तत्क्षणात् ॥ ११ ॥ प्रमेहं कर्णशूलं
 च संनिपातांस्त्रयोदश । हिक्कां श्वासं च कासं च तथा सर्वालुपद्रवान् ॥ १२ ॥
 इति शृङ्ग्यादिः भावप्रकाशात् । अत्र पूर्वोक्तो भार्ग्यादिकाथः पूर्वोक्तान्यौषधानि
 च देयानि ॥ यावच्च श्वसते जीवो यावत्क्रामति भेषजम् । तावत्क्रिया प्रकर्तव्या
 दैवस्य कुटिला गतिः ॥ १३ ॥

इति त्रयोदशसंनिपातचिकित्सा ।

अथाऽऽगन्तुज्वरचिकित्सा ।

अभिचाराभिशापोत्थौ ज्वरौ होमादिना जयेत् । दानस्वस्त्ययनातिथ्यैरुत्पा-
 तग्रहपीडने ॥ १ ॥ भूतविद्यासमुद्दिष्टैर्बन्धावेशनताडनैः । जयेद्भूताभिषङ्गो-
 त्थं मनःशान्त्या च मानसम् ॥ २ ॥ मधूकसारं मरिचं सैन्धवं पिप्पली वचा ।
 संज्ञाप्रबोधनं नखं देयं भूतज्वरे सदा ॥ ३ ॥ अभिघातज्वरी कुर्यात्क्रियामुष्ण-
 विवर्जिताम् । कषायान्मधुरान्स्निग्धान्यथादोषमथापि वा ॥ ४ ॥ अभिघात-
 ज्वरो नश्येत्पानाभ्यङ्गेन सर्पिषः । मेध्यैर्द्रव्यैश्च सात्त्व्यैश्च तथा मांसरसौदनैः
 ॥ ५ ॥ वधबन्धसमावेशमग्ननष्टसमुद्भवान् । ज्वरानुपाचरेत्पूर्वं मदिराक्षीर-
 भोजनैः ॥ ६ ॥ औषधीगन्धविषजौ विपपित्तप्रसादनैः । जयेत्कषायैर्मतिमा-
 न्सर्वगन्धकृतैर्भिषक् ॥ ७ ॥ क्रोधजे पित्तजित्काम्ये नार्यः सद्वाक्यमेव च । आ-
 श्वासनेष्टलाभेन वायोः प्रशमनेन च ॥ ८ ॥ हर्षेण च शमं यान्ति कामशो-

१ चातुर्जातकफपूरककोलागुरुकुङ्कुमम् । लवङ्गसहितं चैव सर्वगन्धं विनिर्दिशेत् ।

कभयज्वराः । व्याघ्रचित्रकघातार्थं स्थापयेज्जलमध्यगम् ॥ ९ ॥ अनया शीतक्रियया भयरोगः प्रशाम्यति । कामात्क्रोधज्वरो नाशं क्रोधात्कामसमुद्भवः । याति ताभ्यामुभाभ्यां वा भयशोकसमुत्थितः ॥ १० ॥

इत्यागन्तुकज्वरचिकित्सा ।

अथ विषमज्वरः ।

दोषोलपोहितसंभूतो ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः ॥ धातुमन्यतमं प्राप्य करोति विषमज्वरम् । शीतपूर्वः स विज्ञेयो दाहपूर्वो निरन्तरम् ॥ १ ॥ आतङ्कमुक्तौ कृशताश्रयाणां विमुक्तपथ्याद्युचितक्रियाणाम् । अल्पोऽपि दोषो विषमं विदध्याज्वरं प्रवृद्धं प्रतिपक्षरुद्धम् ॥ २ ॥ एकद्वित्रिचतुर्थः स्याद्विषमोऽन्यस्तु जीर्णकः । एते पञ्च ज्वराः पीडां यान्त्येव बहुवासरम् ॥ ३ ॥ विषमज्वरनाशाय चिकित्सा वक्ष्यतेऽधुना । वातप्रधानं सर्पिर्भिर्बस्तिभिः सानुवासनैः ॥ ४ ॥ स्निग्धोष्णैरन्नपानैश्च शमयेद्विषमज्वरम् । विरेचनेन पयसा सर्पिषा संस्कृतेन च ॥ ५ ॥ विषमं तिक्तशीतैश्च ज्वरं पित्तोत्तरं जयेत् । वमनं पाचनं रूक्षमन्नपानं च लङ्घनम् ॥ ६ ॥ कषायोष्णं च विषमज्वरे शस्तं कफोत्तरे । त्रायन्तीकटुकानन्तासारिवाभिः शृतं जलम् ॥ ७ ॥ संतताख्ये ज्वरे देयं वातादीनां निवृत्तये । षोडशाष्टचतुर्भागं वातपित्तकफार्तिषु ॥ ८ ॥ क्षौद्रं कषाये दातव्यं विपरीतं तु शर्करा । वासापटोलत्रिफलाद्राक्षाशम्याकनिम्बजः ॥ समधुः ससितः काथो हन्यादैकाहिकं ज्वरम् ॥ ९ ॥ इति वासादिः । उल्कदक्षिणः पक्षः सितसूत्रेण वेष्टितः । धारणाद्वामकर्णे तु हरत्यैकाहिकं ज्वरम् ॥ १० ॥ द्राक्षापटोलनिम्बाब्दशक्राव्हत्रिफलामृता । जलजं तु पिबेच्छीतमन्येद्युर्ज्वरशान्तये ॥ ११ ॥ इति द्राक्षादिः । सशिशिरः सघनः समहौषधः सनलदः सकणः सपयोधरः । समधुशर्कर एष कषायको जयति बालमृगाक्षि तृतीयकम् ॥ १२ ॥ ऊर्णनाभिस्थजालेन कज्जलं ग्राहयेत्ततः । अञ्जयेन्नेत्रयुगलं व्याहिकं तु ज्वरं जयेत् ॥ २ ॥ वासाधात्रीस्थिरादारुधान्यनागरसाधितम् । सितामधुयुतं कुर्याच्चातुर्थिकनिवारणम् ॥ ३ ॥ पथ्यास्थिरानागरदेवदारुधात्रीवृषैरुत्कथितः कषायः । सितोपलामाक्षिकसंग्रयुक्तश्चातुर्थिकं हन्यचिरेण पीतः ॥ ४ ॥ चातुर्थिको गच्छति रामठस्य धृतेन जीर्णेन युतस्य नस्यात् । लीलावतीनां नवयौवनानां मुखावलोकादिव साधुभावः ॥ ५ ॥ अखण्डितशरत्कालकलानधिसमानने । चातुर्थिकहरं नस्यं मुनिद्रुमदलाम्बुना ॥ ६ ॥ कल्कः शिरीषपुष्पस्य रजनीद्वयसंयुतः । नस्ये सर्पिःसमायोगाज्ज्वरं चातुर्थिकं जयेत् ॥ ७ ॥ विवस्त्रेण धृता देवी मूलिका कर्णबन्धनात् । चातुर्थिकं ज्वरं हन्ति द्रोणपुष्पीरसाञ्जनात् ॥ ८ ॥ कन्याकर्तितसूत्रेण त्वपामार्गस्य मूलिका । रवौ बद्धा ज्वरं हन्ति तृतीयकचतुर्थकम् ॥ ९ ॥ काकजङ्घा बला श्यामा भृङ्गराजोऽपमार्गकः । एकैकं पुण्ययोगेण बद्धा

चातुर्थिकं हरेत् ॥ १० ॥ कृष्णाम्बरे दृढं बद्धो गुग्गुलुलपुच्छकः । धूपश्चातु-
र्थिकं हन्यात्तमः सूर्य इवोदितः ॥ ११ ॥ कुमारीमूलकपैकं पीत्वा कोष्णजले-
र्वमेत् । विषमं तु ज्वरं हन्ति वमनेन चिरंतनम् ॥ १२ ॥ भवति विषमहृत्त्री
चेतकी क्षौद्रयुक्ता भवति विषमहृत्त्री पिप्पली वर्धमाना । विषमरुजमजाजी
हन्ति युक्ता गुडेन प्रशमयति तथाऽऽया सेव्यमाना गुडेन ॥ १३ ॥ त्रिभि-
रथ परिवृद्धं पञ्चभिः सप्तभिर्वा दशभिरथ विवृद्धं पिप्पली वर्धमाना । अनुपि
वंति पयो यस्तस्य न श्वासकासज्वरजठरगुदाशौवातरक्तक्षयाः स्युः ॥ १४ ॥ क्षी-
रेण पिप्पली भुक्त्वा क्षीरान्नं भुज्यते यतः । दशाहं पञ्चवृद्धिः स्यादपकर्षस्त-
थैव च ॥ १५ ॥ इति वर्धमानपिप्पलीयोगः ॥ सर्पिः क्षौद्रं शृतं क्षीरं पिप्पत्यः
सितशर्करा ॥ १६ ॥ पिबेत्त्वजेन मथितं पञ्चसारमिति स्मृतम् । विषमज्वरहृद्दो-
गश्वासकासक्षयापहम् ॥ १७ ॥ इति पञ्चसारम् ॥ निदिग्धिकानागरकामृतानां का-
थं पिबेन्निमिश्रितपिप्पलीकम् । जीर्णज्वरारोचककासशूलश्वासाग्निमान्धादितपीन-
सेषु ॥ १ ॥ पटोलयष्टीमधुतिक्तरोहिणीघनाभयाभिर्विषमज्वरघ्नः । कृतः कषा-
यस्त्रिफलामृतावृषैः पृथक्पृथक्वा विषमज्वरापहः ॥ २ ॥ इति पटोलपञ्चकं वा
त्रिफलादित्रयम् । द्राक्षालवङ्गशुण्ठीत्वग्धनिका च हरीतकी । मिसी मुस्ताऽ-
मृता चैव कृतमालकषायकः ॥ १ ॥ वातपित्तज्वरं हन्ति पाचनो लघुदीपनः ।
दशभिश्चौषधैरेतैः सर्वज्वरविनाशनः ॥ २ ॥ ग्रन्थान्तरे—भार्य्यवदपर्पटकधन्व-
यवासविश्वभूनिम्बकुष्ठकणसिंह्यमृताकषायः । जीर्णज्वरं सततसन्तकौ निहन्या-
दन्येद्युक्तं सहतृतीयचतुर्थकौ च ॥ १ ॥ भार्गीपर्पटविश्ववासककणाभूनिम्बनिम्बामृ-
तामुस्ताधन्वयभेषजैस्तु दशभिर्हन्तीह सर्वज्वरान् । जीर्णान्धातुगतांस्तथा च
विषमान्सोपद्रवान्दारुणान्काथोऽयं यदि युग्मवासरमितं दत्तो यमाद्रक्षति ॥ २ ॥
इति भार्य्यादिः ॥ वाङ्माधुर्यजितामृतेऽमृतलता लक्ष्मीशिवाभे शिवा विश्वा
विश्ववरे घनो घनकुचे सिंही च सिंहोदरि । एभिः पञ्चभिरौषधैर्मधुकणायुक्तः
कषायः कृतः पीतश्चेद्विषमज्वरः किमु तदा तन्वङ्गि न क्षीयते ॥ १ ॥ अबले
कृतकामवले चपले चलदृक्कमले खलु रत्नकले । अमृताब्दशिवं मधुमद्विषमे वि-
षमेषुविलासविलासरते ॥ २ ॥ द्राक्षामृतानागरतोयमुष्णं कृष्णाविपाकं बहुरोगनि-
घ्नम् । श्वासं च शूलं कसनं च मान्द्यं जीर्णज्वरं चैव जलेन तृष्णाम् ॥ ३ ॥ दुःस्पृशौ
शीरसिंहीघनमधुकशिवाजाजिविश्वाटरूषच्छिन्नारेणूकषायः समधुमगधको
वापितश्चाष्टमांशम् । दाहं स्वेदं च शोषं कृमिमथ रुधिरं शैत्यमुद्भ्रान्तचित्तं श्वासं
शूलं च तृष्णामहरहरसमं हन्ति चातुर्थिकाद्यम् ॥ ४ ॥ मुस्तामलकगुडूचीवि-
श्वौषधकण्टकारिकाकाथः । पीतः सकणाचूर्णः समधुर्विषमज्वरं हन्ति ॥ ५ ॥ दा-
र्वीदारुकलिङ्गलोहितलताशम्याकपाठाशटीशौण्डीविश्वकिरातवारणकणात्राय-
न्तिकापन्नकैः । उग्राधान्यकनागराब्दसरलैः शिशुत्वगम्भःशिवाव्याघ्रीपर्पटदर्भ-
मूलकटुकानन्तामृतापौष्करैः ॥ ६ ॥ धातुस्थं विषमं त्रिदोषजनितं चैकाहिकं

ब्राह्मिकं काथो हन्ति तृतीयकज्वरभयं चातुर्थिकं भूतजम् ॥ ७ ॥ इत्यारोग्यदर्पणतो दान्यादिः । शृङ्गीरामठरामसेनरजनीरुग्नेणुकारोहिणीरात्रैरण्डरसोनदारुरजनीराजद्रुराजीफलैः । त्रायन्तीत्रिवृताहुताशननतानन्तामृतामुद्रितादन्ती-तुम्बुरुचित्रतण्डुलतृटीत्वक्तिक्तनक्तं चरैः ॥ १ ॥ वासावत्सकबीजवासवसुराबल्यावरीवल्लिजं ब्राह्मीब्राह्मणयष्टिवारणकणाविश्रवावयस्थावृषैः । मूर्वामालविकासमूलमगधामुस्ताजमोदाद्रयैर्मिश्रेयागुरुचन्दनेन्द्रचविकास्फोतावचाकदफलैः ॥ २ ॥ इत्येतैर्दशमूलयुग्मिगदितः काथश्चतुःषष्टिकः शृङ्ग्यादिर्मदनाहिसिंह-भिषजासर्वाभयोन्मूलने । पुंसामष्टविधज्वरार्तिशमने वाताग्निसंधुक्षणे सर्वाङ्गेषु समीरणद्विपधटे शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ३ ॥ इति चतुःषष्टिः शृङ्ग्यादिः । क्षुद्रानागरमुस्तपर्पटधनाभूनिम्बनिम्बामृताभार्गीचन्दनपुष्कराह्मकुलकैस्तिकादरूषान्वितैः । पद्मास्थेन्द्रयवान्वितैश्च रचितः काथो निपीतः प्रगे शीताद्यं ज्वरमुच्छ्रितं तु विषमं त्रिद्व्येकघस्रोद्धवम् ॥ १ ॥ इति क्षुद्रादिः । शकाह्मदद्रुघ्नविषामृतानां निर्गुण्डिकाभृङ्गमहौषधानाम् । क्षुद्रायवानीसहितः कषायः शीतज्वरारण्यहिरण्यरेताः ॥ १ ॥ रसोनकल्कं तैलेन सर्पिषा वा तिलैरपि । सेवितं विषमं हन्ति वातश्लेष्मगदानपि ॥ २ ॥ इति रसोनकल्कम् । रास्त्रानागरकृष्णानां कल्कमुष्णाम्बुना पिबेत् । श्वासकासाग्निमान्द्यं च शीतज्वरहरं भवेत् ॥ १ ॥ जीरकं लशुनं व्योषं पाठां पिष्ट्वोष्णवारिणा । शीतज्वरस्याऽऽगमने पिबेद्बुडयुतेन च ॥ २ ॥ पीतो मरिचचूर्णेन तुलसीपत्रजो रसः । द्रोणपुष्पीरसो वाऽपि निहन्ति विषमज्वरान् ॥ ३ ॥ इति स्वरसः । ज्वरेऽञ्जनं निशातैलकृष्णामरिचसैन्धवैः । वचाहरीतकीसर्पिर्धूपः स्याद्विषमज्वरे ॥ १ ॥ इत्यञ्जनधूपौ । अजायाश्चर्मरोमाणि वचा कुष्ठं पलंकपानिम्बपत्राणि मधु च धूपनं ज्वरनाशनम् ॥ १ ॥ इति धूपनम् । सर्पत्वचा सर्षपहिङ्गुनिम्बपत्राण्यमीषां समचूर्णधूपः । विनिग्रहं राक्षसडाकिनीनां करोति रक्षां विषमज्वरस्य ॥ १ ॥ इति द्वितीयधूपः ॥ पलंकषानिम्बपत्रं वचा कुष्ठं हरीतकी । सर्षपाः सयवाः सर्पिर्धूपनं ज्वरनाशतम् ॥ १ ॥ इत्यष्टाङ्गधूपः ॥ कार्पासास्थिमथूरपिच्छबृहतीनिर्माल्यपिण्डीतकत्वङ्मासीवृषदशविणखवचाकेशाहिनिर्मोचनैः । नागेन्द्रद्विजशृङ्गहिङ्गुमरिचैस्तुल्यैः कृतं धूपनं स्कन्दोन्मादपिशाचराक्षससुरावेशज्वरघ्नं परम् ॥ १ ॥ इति माहेश्वरधूपः ।

अथ चूर्णानि ।

धान्यं लवङ्गं त्रितयं च शुण्ठी कोष्णाम्बुपीतं तरुणज्वरापहम् । तेभ्यः शृतं वारि तथाऽग्निमान्द्यं श्वासाद्यजीर्णं विषमं च वातम् ॥ १ ॥ गोरोचनं च मरिचं रास्त्रा कुष्ठं च पिप्पली । उष्णोदकेन पीतं च सर्वज्वरविनाशनम् ॥ २ ॥ भार्जी कर्कटशृङ्गी च चव्यं तालीसपत्रकम् । मरीचं मागधीमूलं प्रत्येकं द्विपलं भवे-

त् ॥ ३ ॥ पट्टपलं शृङ्गबेरं च द्विपलं पिप्पलीद्वयम् । चातुर्जातमुशीरं च पल-
मेकं पृथक् पृथक् ॥ ४ ॥ चातुर्जातसमा शुभ्रा शर्करा समयोजिता । ज्वरमष्ट-
विधं हन्ति कासं श्वासं च दारुणम् ॥ ५ ॥ शोफशूलोदराध्मानदोषत्रयहरं
परम् । अनन्ता वालकं मुस्ता नागरं कटुरोहिणी ॥ ६ ॥ सुखाम्बुना प्रागुदया-
त्पिबेदक्षसमं रवेः । एतत्सद्यो ज्वरान्हन्ति दीपयत्याशु चानलम् ॥ ७ ॥ द्राक्षा-
ऽमृता सटी शृङ्गी मुस्तकं रक्तचन्दनम् । नागरं कटुका पाठा भूनिम्बः सटुरा-
लभः ॥ ८ ॥ उशीरं पद्मकं धान्यं वालकं कण्टकारिका । पुष्करं पिचुमन्दं च
दशाष्टाङ्गमिदं स्मृतम् । जीर्णज्वरारुचिश्वासकासश्वयधुनाशनम् ॥ ९ ॥ इति
द्राक्षादिः । धात्रीशिवालैन्धवचित्रकाणां कणायुतानां समभागचूर्णम् । जीर्ण-
ज्वरारोचकवह्निमान्द्ये विड्विग्रहे शस्तमिति प्रतिज्ञा ॥ १० ॥ इत्यामलक्यादिचूर्ण-
म् । तालीसं मरिचं शुण्ठी पिप्पली वंशरोचना । एकद्वित्रिचतुष्पञ्चकषैर्भागा-
न्प्रकल्पयेत् ॥ १ ॥ एलात्वाचोस्तु कर्षार्धं प्रत्येकं भागमावहेत् । द्वात्रिंशत्कर्ष-
तुलिता प्रदेया शर्करा बुधैः ॥ २ ॥ तालीसाद्यमिदं चूर्णं रोचनं पाचनं स्मृ-
तम् । कासश्वासज्वरहरं छर्द्यतीसारनाशनम् ॥ ३ ॥ शोफाध्मानहरं ल्पीहग्रह-
णीपाण्डुरोगजित् । पक्त्वा वा शर्करां चूर्णं क्षिपेत्सा गुटिका भवेत् ॥ ४ ॥
इति तालीसाद्यं चूर्णम् । सितोपलाषोदशः स्यादष्टौ स्याद्वंशरोचना । पिप्पली
स्याच्चतुष्कर्षा एला च स्याद्विकर्षिका ॥ १ ॥ एककर्षस्त्वचः कार्यश्चूर्णयेत्सर्वमेक-
तः । सितोपलादिकं चूर्णं मधुसर्पियुतं लिहेत् ॥ २ ॥ श्वासका-
सक्षयहरं हस्तपादाङ्गदाहजित् । मन्दाग्निं सुसजिह्वं च पार्श्वशूलमरोचकम् ।
ज्वरमूर्ध्वगतं रक्तपित्तामाशु व्यपोहति ॥ ३ ॥ इति सितोपलादिचूर्णम् । का-
सश्वासज्वरहरा पिप्पली त्रिफलायुता । चूर्णिता मधुना लीढा भेदनी चाग्नि-
बोधिनी ॥ १ ॥ इति त्रिफलापिप्पली । कटुफलं मुस्तकं तिक्ता सटी शृङ्गी
च पौष्करम् । चूर्णमेपां च मधुना शृङ्गबेररसेन वा ॥ १ ॥ लिहेज्वरहरं क-
ण्ठ्यं कासश्वासारुचीर्जयेत् । वायुं शूलं तथा छर्दिं क्षयं चैव व्यपोहति ॥ २ ॥
इति कटुफलादिचूर्णम् ।

अथ योगरत्नसमुच्चये लघुसुदर्शनचूर्णम् ।

गुडूची पिप्पलीमूलं कणा तिक्ता हरीतकी । नागरं देवकुसुमं निम्बत्वक्चन्दनं
तथा ॥ १ ॥ सर्वचूर्णस्य चाधीशं कैरातं प्रक्षिपेत्सुधीः । एतत्सुदर्शनं नाम्ना
लघु दोषत्रयापहम् । ज्वरांश्च निखिलान्हन्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ २ ॥
इति लघुसुदर्शनचूर्णम् ।

अथ भेडादिप्रणीतं सुदर्शनचूर्णम् ।

तालीसत्रिफलातृटीत्रिकटुकं त्वक्त्रायमाणात्रिवृन्मूर्वाग्रन्थिनिशायुगं शटि
बलास्कण्टकारीयुगम् । मुस्तापर्पटनिम्बपुष्करजटाभार्गीयवानीहिमं चव्यं

चित्रकपुण्डरीकतगरं सेव्यं विडङ्गं वचा ॥ १ ॥ यासो वत्सककुण्डलीन्द्र-
यवकं देवद्रुमं वालकं बीजं शिशुभवं पटोलकटुकापद्माह्वपत्रं विषा । काकोली-
मधु कुङ्कुमं च सतवक्षीरीलवङ्गं पृथक्पर्णीशैलजशालिपर्णिसहितं शामन्तकीपु-
ष्पकम् ॥ २ ॥ सर्वं समं चूर्णतदर्धभागं कैरातकं श्रेष्ठतमं हि चूर्णम् । सुदर्श-
नं नाम मरुद्वलासामयोद्भवान्हन्ति पृथक्कृतान्ज्वरान् ॥ ३ ॥ संसर्गजान्सक-
लजान्विषमाग्निहत्याद्धातूद्भवान्विषकृतानभिघातजांश्च । सामान्समानसकृता-
नतिदाहयुक्ताङ्गीतांस्तृतीयकचतुर्थविपर्ययांश्च ॥ ४ ॥ ऐकाहिकान्ध्याहिकसं-
निपातान्नानाविधान्पाक्षिकमासजातान् । तृददाहमोहभ्रमदैन्यतन्द्रा सश्वासका-
सारुचिपाण्डुरोगान् ॥ ५ ॥ हलीमकं कामलपार्श्वशूलं पृष्ठोद्भवं जानुभवं त-
थैव । त्रिकग्रहं वातविकारजातं विनाशयत्येव शिरोग्रहं च ॥ ६ ॥ नानाप्र-
देशोद्भववारिदोषान्दूषीविषादिप्रभवान्विकारान् । स्त्रीणां रजोदोषसमुद्भवां-
श्च विनाशयेदुष्णजलेन पीतम् ॥ ७ ॥ शीताम्बुना पित्तभवान्विकारान्नाना-
मुनीन्द्रैर्गदितं जगद्धितम् । सुदर्शनं दानवनाशनं यथा सुदर्शनं रोगविनाश-
नं तथा ॥ ८ ॥ इति भेडादिप्रणीतं सुदर्शनं चूर्णम् ॥

अथ शार्ङ्गधरात्—त्रिफला रजनीयुग्मं कण्टकारीयुगं सटी । त्रिकटु ग्रन्थिकं
मूर्वा गुडूची धन्वयासकः ॥ १ ॥ कटुका पर्पटो मुस्ता त्रायमाणा च वालकम् । निम्बः
पुष्करमूलं च मधुयष्टी च वत्सकः ॥ २ ॥ यवानीन्द्रयवा भार्गी शिशुबीजं सु-
राष्ट्रजा । वचात्वक्पद्मकोशीरचन्दनातिविषा बला ॥ ३ ॥ शालिपर्णी पृथिप-
र्णी विडङ्गं तगरं तथा । चित्रको देवदारुश्च चव्यं पत्रं पटोलजम् ॥ ४ ॥ जी-
वकर्षभकौ चैव लवङ्गं वंशलोचना । पुण्डरीकं च काकोली पत्रजं जातिपत्रक-
म् ॥ ५ ॥ तालीसपत्रं च तथा समभागानि चूर्णयेत् । सर्वचूर्णस्य चाधीशं
कैरातं प्रक्षिपेत्सुधीः ॥ ६ ॥ एतत्सुदर्शनं नाम चूर्णं दोषत्रयापहम् । ज्वरां-
श्च निखिलान्हन्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ ७ ॥ पृथग्द्वंद्वान्तुजांश्च धातु-
स्थान्विषमज्वरान् । संनिपातोद्भवांश्चापि मानसानपि नाशयेत् ॥ ८ ॥ जीर्ण-
ज्वरैकाहिकादीन्मोहं तन्द्रां भ्रमं तृषाम् । श्वासं कासं च पाण्डुं च हृद्रोगं हन्ति
कामलाम् ॥ ९ ॥ त्रिकपृष्ठकटीजानुपार्श्वशूलनिवारणम् । शीताम्बुना पिबेद्धी-
मान्सर्वज्वरनिवृत्तये ॥ १० ॥ सुदर्शनं यथा चक्रं दानवानां विनाशनम् ।
तद्वज्वराणां सर्वेषामिदं चूर्णं प्रणाशनम् ॥ ११ ॥ इति सुदर्शनं चूर्णम् ॥

अथ लवङ्गादिचूर्णम् ।

लवङ्गजातीफलपिप्पलीनां भागं प्रकल्प्याक्षसमानमेषाम् । पलार्धमेकं मरिच-
स्य दद्यात्पलानि चत्वारि महौषधस्य ॥ १ ॥ सितासमं चूर्णमिदं प्रगृह्य रोगां-
श्च वातप्रभवान्हन्ति । कासज्वरारोचकमेहगुल्मश्वासाग्निमान्द्यग्रहणीप्रदोषा-
न् ॥ २ ॥ अथ लवंगादिचूर्णं शार्ङ्गधरात्—लवंगं शुद्धकर्पूरमेला त्वग्नाग-
केशरं । जातीफलमुशीरं च नागरं कृष्णजीरकम् । कृष्णागरस्तुगाक्षीरी मांसी

नीलोत्पलं कणा । चंदनं तगरं वालं कंकोलं चेति चूर्णयेत् । समभागानि सर्वाणि सर्वेभ्योर्धा सिता भवेत् । लवंगाद्यमिदं चूर्णं राजाहं वह्निदीपनं । रोचनं तर्पणं वृष्यं त्रिदोषघ्नं बलप्रदम् । हृद्रोगं कंठरोगं च कासंहिक्कां च पीनसं । यक्ष्माणं तमकश्वासमतीसारमुरःक्षतं । प्रमेहारुचिगुल्मादीन् ग्रहणीमपि नाशयेत् ॥

अथ कुरण्टकादिनामा लेहः ।

कुरण्टकं समूलं च क्षुण्णं प्रस्थं समाहरेत् । पानीयमष्टप्रस्थं वा काथ्यमष्टावशेषकम् ॥ १ ॥ शेषकाथं भाण्डमध्ये पुनस्तं वह्निना पचेत् । काथे त्रिभागपचिते चूर्णद्रव्याणि निक्षिपेत् ॥ २ ॥ एला लवङ्गं त्रिफला चव्यं पत्रककेसरम् । द्विर्भागीं ग्रन्थिकं पाठा मागधी चित्रकुष्ठकम् ॥ ३ ॥ कोलाञ्जनं चाजमोदा वज्रवल्ली विडङ्गकम् । जीरद्वयं चेन्द्रयवं मुस्तादीप्यकसैन्धवम् ॥ ४ ॥ कटुकाऽतिविपा मूर्वा करञ्जस्त्वरलूग्रकम् । एतद्रव्यं सूक्ष्मचूर्णं पूर्वकाथेन संयुतम् ॥ ५ ॥ लेहपाकं च विधिवद्वात्रीफलसमानकम् । उष्णोदकानुपानेन सेवयेद्दिनविंशतिम् ॥ ६ ॥ द्वंद्वज्वरं पुराणं च ह्यग्निमान्धमरोचकम् । त्वग्गतास्थिगतौ रक्तगतं मांसगतं ज्वरम् ॥ ७ ॥ संधिज्वरं च ह्यत्युग्रं रात्रिज्वरमथो हरेत् । त्रिदोषजं ज्वरं हन्ति श्वासकासज्वरापहः ॥ ८ ॥ गलरोगोपशमनो विषमज्वरनाशनः । कुरण्टकादिनामाऽयं लेहो रोगाहितः सदा ॥ ९ ॥

अथ घृतानि ।

ज्वराः कषायैर्वमनैर्लङ्घनैर्लघुभोजनैः । रूक्षस्य येन शाम्यन्ति तेषां सर्पिर्भिषग्जितम् ॥ १ ॥ सर्पिर्दद्यात्कफे मन्दे वातपित्तोत्तरे ज्वरे । पक्केषु दोषेष्वमृतं तद्विषोपममन्यथा ॥ २ ॥ अथ पंचतित्तकं घृतम् । वृषनिम्बामृताव्याघ्रीपटोलानां शृतेन च । कल्केन पक्वं सर्पिस्तु निहन्याद्विषमज्वरान् ॥ पाण्डुं कुष्ठं विसर्पं च कृमीनशांसि नाशयेत् ॥ ३ ॥ अथामृताद्यं घृतम्—अमृतात्रिफलापटोलयासैः सपयस्कं विधिवद्धृतं विपकम् । विषमज्वरनाशनप्रधानं क्षयगुल्मारुचिकामलापहारि ॥ १ ॥ अथ षट्पलं घृतम्—पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनारैः । ससैन्धवैश्च पलिकैर्धृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १ ॥ क्षीरं चतुर्गुणं दद्यात्तद् घृतं ग्रीहनाशनम् । विषमज्वरमन्दाग्निहरं रुचिकरं परम् ॥ २ ॥ अथ महाषट्पलं घृतम्—पृतीकाग्निकपञ्चकोलरुचकैः साजाजियुग्मोद्भिदैः सक्षारैः सबिडैः सहिङ्गुहपुषासिन्धूद्भवैः कल्कितैः । सूक्तेनाऽऽर्द्रकसंभवेन च रसेनैतन्महाषट्पलं सर्पिः पक्वमरोचकाग्निसदनग्रीहज्वरश्वासजित् ॥ १ ॥

अथ तैलानि ।

अथाश्वगन्धादितैलम्—अश्वगन्धाबलालाक्षा प्रस्थं प्रस्थं पृथक्पृथक् । जलद्रोणे विपक्तव्यं चतुर्भागावशेषितम् ॥ १ ॥ तैलं त्रिमानिकं दद्याद्द्विषमस्तु चतुर्गु-

णम् । अश्वगन्धानिशादारुकौन्तीकुष्ठाब्दचन्दनैः ॥ २ ॥ निशा तिक्ता शता-
ह्वा च लाक्षा मूर्वा समूलकैः । सुरदारु च मञ्जिष्ठा मधुकोशीरसारिवाः
॥ ३ ॥ समभागानि कुर्वीत कल्कीकृत्य विपाचयेत् । सर्वज्वरं
हरत्याशु सर्वधातुविवर्धनम् ॥ एतदभ्यञ्जनेनाऽऽशु क्षयरोगं विमुञ्चति ॥ ४ ॥
अथ षट्कृततैलम् । सुवर्चिकानागरकुष्ठमूर्वालाक्षानिशालोहितयष्टिकाभिः ।
तैलं ज्वरे षड्गुणतक्रसिद्धमभ्यञ्जनाच्छीतविदाहनुत्स्यात् ॥ १ ॥ दध्नः ससा-
रकस्य स्यात्षट्कृतं तक्रमुत्तमम् ॥ २ ॥ अथ लघुलाक्षादितैलम् । लाक्षा-
हरिद्रामञ्जिष्ठाकल्कैस्तैलं विपाचयेत् । षड्गुणेनाऽऽरनालेन दाहशीतज्वराप-
हम् ॥ १ ॥ अथ बृहत्लाक्षादि तैलम् । तैलं लाक्षारसं क्षीरं पृथक्प्रस्थं समं
पचेत् । चतुर्गुणेरिते काथे द्रव्यैरेतैः पलोन्मितैः ॥ १ ॥ लोघ्रकदफलम-
ञ्जिष्ठामुस्तकेसरपद्मकैः । चन्दनोत्पलयष्ट्याह्वैस्तैलं गण्डूषधारणात् ॥ २ ॥ दन्त-
रोगाः प्रणश्यन्ति लेपात्सर्वज्वराञ्जयेत् । एतलाक्षादिकं तैलं बलपुष्टिप्रदायक-
म् ॥ ३ ॥

अथ षट्चरणतैलम् ॥ लाक्षामधुकमञ्जिष्ठासर्वाचन्दनसारिवाः । तैलं षट्-
चरणं नाम त्वभ्यङ्गाज्वरनाशनम् ॥ १ ॥ अथांगारकतैलम् । लाक्षा मूर्वा हरिद्रे
द्वे मञ्जिष्ठा चेन्द्रवारुणी । बृहती सैन्धवं कुष्ठं रास्त्रा मांसी शतावरी ॥ २ ॥
आरनालाढकेनात्र तैलप्रस्थं विपाचयेत् । तैलमङ्गारकं नाम सर्वज्वरविमोक्षणम्
॥ ३ ॥ अथ मध्यमलाक्षादितैलम् । तैलं प्रस्थमितं चतुर्गुणजतुकाथं चतुर्मस्तु-
रग्यष्टीदारुनिशाब्दमूर्वकदुकामिश्यश्च कौन्तीहिमैः । रास्त्राह्वैः पिचुसमितैः कृत-
मिदं शस्तं तु जीर्णज्वरे सर्वस्मिन्विषमेऽपि यक्ष्मणि शिशौ वृद्धे सगर्भासु च ॥ १ ॥

अथ चन्दनबलालाक्षादितैलम् ।

चन्दनं च बलामूलं लाक्षा लामज्जकं तथा । पृथक्पृथक्प्रस्थमात्रं द्रोणे च
सलिले पचेत् ॥ चतुर्भागावशेषेऽस्मिन्तैलं प्रस्थद्वयं क्षिपेत् ॥ १ ॥ चन्दनोशी-
रमधुकशताह्वाः कटुरोहिणी । देवदारुनिशाकुष्ठमञ्जिष्ठामृगशालकम् ॥ २ ॥
अश्वगन्धा बला दार्वी मूर्वा मुस्ता समूलकाः । एला त्वङ्नागकुसुमं रास्त्रा
लाक्षा सुगन्धिका ॥ ३ ॥ चम्पकं पीतसारं च सारिवा रोचकद्वयम् । कल्कै-
रेतैः समायुक्तं क्षीराढकसमन्वितम् ॥ ४ ॥ तैलमभ्यञ्जने श्रेष्ठं सप्तधातुविवर्ध-
नम् । कासश्वासक्षयहरं सर्वच्छर्दिनिवारणम् ॥ ५ ॥ असृग्दरं रक्तपित्तं हन्ति
पित्तकफामयम् । कान्तिकृद्दाहशमनं कण्डूविस्फोटनाशनम् ॥ ६ ॥ शिरोरोगं
नेत्रदाहमङ्गदाहं च नाशयेत् । वातामयहतानां च क्षीणानां क्षीणरेतसाम्
॥ ७ ॥ बालमध्यमवृद्धानां शस्यते शोफकामलाम् । पाण्डुरोगे विशेषेण
सर्वज्वरविनाशनम् ॥ ८ ॥ इति तैलानि ॥

अथ पाकाः ।

अथ सेवंतीपाकः—श्वेतपुष्पसहस्राणि घृतप्रस्थे विपाचयेत् । घृतपक्वे कृते तस्मिन्निक्षिपेदेतदौषधम् ॥ १ ॥ सितोपला चतुर्भागा चातुर्जातं पलं पलम् । मृद्रीकाषट्पलं चैव क्षिपेन्मधुपलाष्टकम् ॥ २ ॥ धारासत्त्वं चार्धपलं सर्वमेकत्र कारयेत् । कर्षप्रमाणं तत्सेव्यं सततं च गदातुरैः ॥ ३ ॥ जीर्णज्वरे क्षये कासे चाग्निमान्द्ये प्रमेहके । प्रदरं रक्तजान् रोगान्कुष्ठाशांसि विनाशयेत् ॥ नेत्ररोगान्सुदुःसाध्यांस्तथा सर्वान्मुखोत्थितान् ॥ ४ ॥ अथ पिप्पलीपाकः—पिप्पलीप्रस्थमादाय क्षीरेणैवानुपेषयेत् । अर्धाढकं घृतं गव्यं शुद्धं खण्डाढकं तथा ॥ १ ॥ पचेन्मृद्वग्निना तावद्यावत्पाकमुपागतम् । शीतीभूते क्षिपेत्तस्मिन्श्चातुर्जातं पलत्रयम् ॥ ३ ॥ योजयेन्मात्रया युक्तं दोषधात्वग्निसाम्यतः । बल्यं वृष्यं तथा हृद्यं तेजोवृद्धिकरं तथा ॥ ३ ॥ जीर्णज्वरे क्षतक्षीणमश्रान्तं चैव बृंहयेत् । छर्दिस्तृष्णारुचिश्चासशोषहिक्काः सकामलाः ॥ ४ ॥ हृद्रोगं पाण्डुरोगं च कण्ठरोगं त्रिदोषजम् । वातरक्तं प्रतिश्यायमाम्बातं विनाशयेत् ॥ संवत्सरप्रयोगेण वलीपलितवर्जितः ॥ ५ ॥

अथ रसाः ।

नवज्वरेभाङ्कुशो रसराजलक्ष्म्याः—सगन्धटङ्कं रसमूपणं च विमर्दितं भावय मीनपित्तैः । दिनत्रयं वल्लयुगं प्रदद्याद् वृन्ताकतक्रौदनपथ्यमत्र ॥ १ ॥ नवज्वरेभाङ्कुशनामधेयः क्षणेन घर्मोद्गममातनोति ॥ २ ॥ नारायणज्वराङ्कुशस्तरुणज्वरे—सोमलं वत्सनागं च सूतगंधकतालकं । कटुत्रयं कपर्दीं च विजया कनकस्य च ॥ २ ॥ टंकणं समभागानि शृंगबेररसैरुह्यं । शीतज्वरे संनिपाते विषूच्यां विषमज्वरे ॥ ३ ॥ नाशयेदतिवेगेन धान्यमात्रं प्रदापयेत् । वस्त्रमाच्छादयेत्तेन प्रस्वेदोयं प्रजायते ॥ ४ ॥ पथ्यं यदीच्छया देयं दधिशीतोदकादिकम् । सरो नारायणो नाम संनिपातज्वरापहः ॥ ५ ॥ इति । अथ पञ्चामृतरसः—स्वर्णरौप्यरविपन्नगलोहं चन्द्रदृक्शिखिचतुःशरभागम् । मर्दितं तनुतरं दिनमेकं भावितं मकरपित्तरसेन ॥ १ ॥ वल्लयुग्ममखिलज्वरशान्त्यै शर्करार्द्रकरसेन ददीत ॥ २ ॥ अथ जीर्णज्वराङ्कुशः—मृतं सूताभ्रनागार्ककान्तवैक्रान्तमेव च । हिङ्गुलं टङ्कणं गन्धं विषं कुष्ठं समांशकम् ॥ १ ॥ त्रिकटुत्रिफलामुस्तामृद्गनिर्गुण्डिकाद्रवैः । भावयेच्चिदिनं चैव माषमात्रानुपानतः ॥ २ ॥ जीर्णज्वरे क्षये कासे दोषे मन्दानलेषु च । पाण्डुं हलीमकं गुल्ममुदरं चार्दितं जयेत् ॥ ३ ॥ ग्रहणीमूलरोगांश्च त्वरोचकमनेकधा । कान्तिं तेजो बलं पुष्टिं वीर्यवृद्धिं विवर्धयेत् ॥ साध्यासाध्यं निहन्त्याशु रसो जीर्णज्वराङ्कुशः ॥ ४ ॥ इति जीर्णज्वराङ्कुशः ॥

अथ मुक्तापञ्चामृतरसः ।

मुक्ताप्रवालखुरवङ्गककम्बुशुक्तिभूतिं वसूदधिदगिन्दुसुधांशुभागाम् ।
इक्षो रसेन सुरभेः पयसा विदारीकन्यावरीसुरसहंसपदीरसैश्च ॥ १ ॥ संमर्द्य
यामयुगलं च वनोपलाभिर्दद्यात्पुटानि मृदुलानि च पञ्च पञ्च । पञ्चा-
मृतं रसविभुं भिषजा प्रयुज्य गुञ्जाचतुष्टयमितं चपलारजश्च ॥ २ ॥ पात्रे
निधाय चिरसूतपयस्विनीनां दुग्धेन च प्रपिबतः खलु चाल्पभोक्तुः । जीर्णज्वरः
क्षयमियादथ सर्वरोगाः स्वीयानुपानकलिताश्च शमं प्रयान्ति ॥ ३ ॥

अथ त्रिभुवनकीर्तिरसः ।

हिङ्गुलं च विषं व्योषं टङ्गणं मागधीशिफाम् । संचूर्ण्य भावयेन्नेधा
सुरसार्द्रकहेमभिः ॥ १ ॥ रसस्त्रिभुवनकीर्तिर्गुञ्जैर्कार्द्वरसेन वै । विनाशयेज्ज्व-
रान्सर्वान्संनिपातांस्त्रयोदश ॥

अथ महाज्वराङ्कुशः ।

शुद्धसूतं विषं गन्धं धूर्तबीजं त्रिभिः समम् । चतुर्णां द्विगुणं व्योषं
हेमक्षीरीविभावितम् ॥ १ ॥ चतुर्वारं घर्मशुष्कं चूर्णं गुञ्जाद्वयोन्मितम् ।
पक्वजम्बीरकद्रवैर्युक्तार्द्रस्य द्रवैर्युतः ॥ २ ॥ महाज्वराङ्कुशो नाम ज्वराणामन्त-
को भवेत् । एकाहिकं व्याहिकं वा त्र्याहिकं वा चतुर्थकम् । विषमं वा त्रिदोषो-
त्थं नाशयेद्याममात्रतः ॥ ३ ॥

अथ शीताङ्कुशः ।

तुत्थं टङ्गणसूतखर्परविषं स्याद्गन्धकं तालकं सर्वं खल्वतले विमर्द्य घटिकां
तत्कारवल्लीरसैः । गुञ्जैका गुटिका सुशर्करयुता सज्जीरकेणाथवा एकद्वित्रि-
चतुर्थशीतहरणः शीताङ्कुशो नामतः ॥ १ ॥

अथ ज्वरघ्नी गुटिका ।

भागैकः स्याद्रसान्छुद्धादैलेयः पिप्पली शिवा । आकारकरभो गन्धः कटुतैलेन
शोधितः ॥ १ ॥ फलानि चेन्द्रवारुण्याश्चतुर्भांगमिता अमी । एकत्र मर्दये-
च्चूर्णमिन्द्रवारुणिकारसैः ॥ २ ॥ माषोन्मितां गुटीं कृत्वा दद्यात्सद्योज्वरे बुधः ।
छिन्नारसानुपानेन ज्वरघ्नी गुटिका मता ॥ ३ ॥

अथ संनिपातभैरवरसः ।

रसो गन्धस्त्रिकर्पः कुर्यात्कज्जलिकां द्वयोः । तारारताम्रवङ्गाहिसाराश्चैकै-
ककार्षिकाः ॥ १ ॥ शिशुज्वालामुखीशुण्ठीबिल्वेभ्यस्तण्डुलीयकात् । प्रत्येकं
स्वरसैः कुर्याद्यामैकैकं विमर्दनम् ॥ २ ॥ कृत्वा गोलं वृतं वस्त्रैर्लवणापूरिते न्य-
सेत् । काचभाण्डे ततः स्थाल्यां काचकूपीं निवेशयेत् ॥ ३ ॥ बालुकाभिः प्रपूर्याथ

वह्निर्यामद्वयं भवेत् । तत उद्धृत्य तं गोलं चूर्णयित्वा विमिश्रयेत् ॥४॥ प्रवा-
लचूर्णकर्षेण शाणमात्रविषेण च । कृष्णसर्पस्य गरलैर्द्विवारं भावयेत्तथा
॥ ५ ॥ तगरं मुख्यली मांसी हेमाह्वा वेतसः कणा । नलिनीपत्रकं चैला चि-
त्रकश्च कुठेरकः ॥ ६ ॥ शतपुष्पा देवदाली धत्तूरागस्त्यमुण्डिकाः । मधूकजा-
तिमदनरसैरेषां विमर्दयेत् ॥ ७ ॥ प्रत्येकमेकवेलं च ततः संशोष्य धारयेत् ।
बीजपूराद्रकद्रावैर्मरीचैः षोडशोन्मितैः ॥ ८ ॥ रसो द्विगुञ्जप्रमितः संनिपातेषु
दीयते । प्रसिद्धोऽयं रसो नाम्ना संनिपातस्य भैरवः ॥ ९ ॥ अन्यच्च—सूतं
गन्धं लोहकिट्टं विमर्द्य सर्वैस्तुल्यं वत्सनाभं नियुञ्ज्यात् । आर्द्रं शृङ्गं बीजपूरं
जयन्त्या निर्गुण्डिकाव्यस्तराजद्रवैश्च ॥ १ ॥ युक्त्या वैद्यैर्भावयित्वा विधेयः
जाणार्धार्धं संनिपातस्य नूनम् । शीतैर्वातैर्निर्मलं स्नानपानं पथ्यं दुग्धं शर्करा-
भिर्युतं च ॥ २ ॥

अथ त्रैलोक्यतापहरः ।

सूतशुल्वबन्निघृताबलितिक्तादन्तिबीजचपला विषतिन्दुः । पथ्यया सह विचू-
र्य समांशं हेमवारिसहितं दिनमेकम् ॥ १ ॥ वहल्युग्मगुटिकाद्रकवारा ना-
शयेदभिनवज्वरमाशु । विश्वतापहरणोऽत्र च पथ्यं मुद्रयूपसहितं लघु भु-
क्तम् ॥२॥ अथ मृत्युंजयरसः—वत्सनाभं गन्धकं च मरिचं टंकणं कणा ॥ एकै-
कं भागमादाय द्विभागं हिङ्गुलं भवेत् ॥ १ ॥ आर्द्रकस्वरसेनैव मुद्रमानां वर्टी
चरेत् । मधुना लेहनं प्रोक्तं सर्वज्वरविनाशनम् ॥२॥ जंबीरस्य रसेनैव जीर्णज्वर
विनाशनम् । अजाजीगुडसंमिश्रं विषमज्वरनाशनम् । आर्द्रकस्य रसेनैव दारुणं
संनिपातकम् ॥ ३ ॥

अथामृतकलानिधिरसः ।

अमृतवराटकमरिचैर्द्विपञ्चनवमांशैः । मुद्रप्रमाणवटको ज्वरपित्तकफाग्निमा-
न्धहारी स्यात् ॥ १ ॥

अथ ज्वरमुरारिः ।

रसबलिफणिलोहव्योमताम्राणि तुल्यान्यथ रसदलभागो वत्सनागं प्रष्टुष्टम् ।
स्रवति गदमुरारिश्चास्य गुञ्जार्द्रवारा क्षपयति दिवसेन प्रौढमामज्वराख्यम् ॥ १ ॥

अथ चन्द्रशेखररसः ।

शुद्धसूतसमं गन्धं मरिचं टङ्कणं तथा । चतुस्तुल्या सिता योज्या मत्स्य-
पित्तेन भावयेत् ॥ १ ॥ द्विगुञ्जामार्द्रकद्रावैर्देयं शीतोदकं पुनः । तक्रभक्तं च
वृन्ताकं पथ्यं तत्र विधापयेत् ॥ २ ॥ त्रिदिनाच्छेषमपित्तोत्थमत्युष्णं नाश-
येज्ज्वरम् ॥ ३ ॥

अथ स्वर्णमालिनी वसन्तः ।

स्वर्णं मुक्तादरदमरिचं भागवृद्ध्या प्रदेयं खर्पर्यष्टौ प्रथमनवनीतेन निम्बव-
बुना च । यावत्स्नेहो व्रजति विलयं मर्दयेद्दीयतेऽसौ गुञ्जाद्वद्वं मधुचपलया
सर्वरोगे वसन्तः ॥ १ ॥

अथ लघुमालिनीवसन्तः ।

रसकयुगुलभागं वलिजं भागमेकं द्वितयमथ सुखल्वे मर्दयेन्म्रक्षणेन । भ-
वति घृतविमुक्तो निम्बुनीरेण यावज्जरहरमधुकुल्या मालिनीप्राग्वसन्तः ॥ १ ॥
जीर्णज्वरे धातुगतेऽतिसारे रक्तान्विते रक्तभवे विकारे । घोरव्यथे पित्तभवे च
दोषे बलद्वयं दुग्धयुतं च पथ्यम् ॥ २ ॥ प्रदरं नाशयत्याशु तथा दुर्नाम-
शोणितम् । विषमं नेत्ररोगं च गजेन्द्रमिव केसरी ॥ ३ ॥ वसन्तो मालिनीपू-
र्वः सर्वरोगहरः शिशोः । गर्भिण्यै तत्र देयो वै जयन्त्याः पुष्पकैः सह ॥ सर्व-
ज्वरहरः श्रेष्ठो गर्भपोषण उत्तमः ॥ ४ ॥ इति लघुमालिनीवसन्तः । अन्यच्च—
नराम्बुमध्ये रसकस्य चूर्णं दिनानि सप्त त्रिगुणानि पूर्वम् । धृत्वाऽऽतपे
शोषितमेतदेव नृवारि जीर्णं भवतीति यावत् ॥ १ ॥ पलप्रमाणं मरिचं च नि-
स्तुषं पलद्वयं स्याद्रसकस्य तस्य । एकत्र संचूर्ण्य कृतं तदेव पलार्धकं गोम-
नीतकं च ॥ २ ॥ निम्बूत्थतोयेन विमर्दनीयं शतैकमानं भिषजा वरिष्ठम् ।
बलद्वयं चास्य कणामधुभ्यां प्रदापयेद्ब्याधिगजस्य केसरी ॥ ३ ॥ नाम्ना प्रसि-
द्धो रसरज एष सद्यो ग्रहण्यामतिसारके च । ज्वरे क्षयेऽर्शःसु तथैव तापे
शूलाग्निमान्द्यानिलजे विकारे ॥ ४ ॥ अन्यच्च—खर्परं मानुषे मूत्रे स्थितं घ-
स्रत्रिससकम् । निस्त्वक्तर्धमरिचं नवनीतेन मर्दयेत् ॥ १ ॥ शतधा भावये-
न्निम्बुरसैः स्याद्रसकेश्वरः । पिप्पलीमधुयुग्दत्तः ससितो वाऽस्य भेषजम् ॥ २ ॥
ज्वरं धातुगतं पित्तं भ्रमं पित्तास्रजान्गदान् । रक्तातिसारं ग्रहणीं दुर्नामास्रं
निवारयेत् ॥ अनम्लं दधि वा दुग्धं पथ्यं चास्मिन्प्रयोजयेत् ॥ ३ ॥

अथापूर्वमालिनीवसन्तः ।

वैक्रान्तमभ्रं रविताप्यरौप्यं वङ्गं प्रवालं रसभस्म लोहम् । सुटङ्कणं कम्बुक-
भस्म सर्वं समांशकं सेव्यवरी हरिद्रा ॥ १ ॥ द्रव्यैर्विभाव्यं मुनिसंख्यया च
मृगाङ्गाजाशीतकरेण पश्चात् । बलप्रमाणो मधुपिप्पलीभिर्जीर्णज्वरे धातुगते
नियोज्यः ॥ गुडूचिकासत्त्वसितायुतश्च सर्वप्रमेहेषु नियोजनीयः ॥ २ ॥ कृच्छ्राश्म-
रीं निहन्त्याशु मातुलुङ्गाङ्गिजैर्द्रवैः । रसो वसन्तनामाऽयमपूर्वो मालिनीपदः ॥ ३ ॥

अथ पञ्चवक्त्रः ।

शुद्धसूतं विषं गन्धं मरीचं टङ्कणं कणाम् । मर्दयेद्भूतजद्रावैर्दिनमेकं च

शोषयेत् ॥ १ ॥ पञ्चवक्त्ररसो नाम द्विगुञ्जः संनिपातजित् । अर्कमूलकषा-
यं तु त्र्यूषणं चानुपानयेत् ॥ २ ॥ युक्तं दध्योदनं पथ्यं जलयोगं च कारयेत् ।
रसेनानेन शाम्यन्ति सक्षौद्रेण कफादयः ॥ ३ ॥ मधु त्वर्करसं चानु पिबेदग्नि-
विवृद्धये । यथेष्टं घृतमत्स्याशु दीप्तो भवति पावकः ॥ ४ ॥

अथ चन्द्रकलारसः ।

गगनदरदयुक्तं शुद्धसूतं च गन्धं प्रहरमथ सुपिष्टं वल्लयुग्मं नरोऽद्यात् ।
ज्वरहरगजसिंहः शृङ्गवेरोदकेन प्रथमजनितदाहे तक्रभक्तं च भोज्यम् ॥ १ ॥
मुस्तादाडिमदूर्वातथैः केतकीस्तनजद्रवैः । सहदेव्याः कुमार्याश्च पर्पटस्यापि
वारिणा ॥ २ ॥ रामशीतलिकातोयैः शतावर्या रसेन च । भावयित्वा प्रयत्ने-
न दिवसे दिवसे पृथक् ॥ ३ ॥ तित्ता गुडूचिकासत्त्वं पर्पटोशीरमाधवी ।
श्रीगन्धं सारिवा चैषां समानं सूक्ष्मचूर्णितम् ॥ ४ ॥ द्राक्षाफलकषायेण स-
प्तधा परिभावयेत् । ततः पोताश्रयं कृत्वा वध्यः कार्याश्चणोपमाः ॥ ५ ॥ अ-
यं चन्द्रकलानाम्ना रसेन्द्रः परिकीर्तितः । सर्वपित्तगदध्वंसी वातपित्तगदाप-
हः ॥ ६ ॥ अन्तर्बाह्यमहादाहविध्वंसनमहाघनः । ग्रीष्मकाले शरत्काले वि-
शेषेण प्रशस्यते ॥ ७ ॥ कुरुते नाग्निमान्द्यं च महातापज्वरं हरेत् । भ्रममूर्च्छा-
हरश्चाऽऽशु स्त्रीणां रक्तं महास्रवम् ॥ ८ ॥ ऊर्ध्वाधो रक्तपित्तं च रक्तवान्ति
विशेषतः । मूत्रकृच्छ्राणि सर्वाणि नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ९ ॥ इति रसाः ॥

अथ सप्तधातुगतज्वराणां लक्षणम् ।

गुरुता हृदयोत्क्लेशः सदनं छर्द्यरोचकौ । रसस्थे च ज्वरे लिङ्गं दैन्यं चा-
स्योपजायते ॥ १ ॥ रक्तनिष्ठीवनं दाहो मोहश्छर्दनविभ्रमौ । प्रलापः पिटिका
नृष्णा रक्तप्राप्ते ज्वरे नृणाम् ॥ २ ॥ पिण्डकोद्वेष्टनं मूर्च्छा सृष्टमूत्रपुरीषता ।
जष्मान्तर्दाहविक्षेपौ ग्लानिः स्यान्मांसगे ज्वरे ॥ ३ ॥ भृशं स्वेदस्तृषा मूर्च्छा
प्रलापश्छर्दिरेव च । दौर्गन्ध्यारोचकौ ग्लानिर्मेदस्थे चासहिष्णुता ॥ ४ ॥
भेदोऽस्त्वां कूजनं श्वासो विरेकश्छर्दिरेव च । विक्षेपणं च गात्राणां विद्यादस्थि-
गतेज्वरे ॥ ५ ॥ तमःप्रवेशनं हिक्का कासः शैत्यं वमिस्तथा । अन्तर्दाहो महाश्वसो
सर्मच्छेदश्च मज्जगे ॥ ६ ॥ मरणं प्राप्नुयात्तत्र शुक्रस्थानगते ज्वरे । शेषसः स्त-
ब्धता मोक्षः शुक्रस्य च विशेषतः ॥ ७ ॥ इति सप्तधातुगतज्वरलक्षणम् ।

अथ सप्तधातुगतज्वरचिकित्सा ।

रसस्थे च ज्वरे तस्मिन्कुर्याद्वमनलङ्घने । सेकसंशमनालेपरक्तमोक्षास्त्व-
सृगते ॥ १ ॥ तीक्ष्णान्विरेकांश्च तथा कुर्यान्मांसगते ज्वरे । मेदोगे मेदसो
नाशमस्थिस्थे वातनाशनम् ॥ २ ॥ बस्तिकर्म प्रयोक्तव्यमभ्यङ्गोद्वर्तनं तथा ।
मज्जशुक्ले क्रिया नोक्ता मरणं तत्र भाषितम् ॥ ३ ॥ कटुका रोहिणीमुस्ता पि-
प्लीमूलमेव च । हरीतकी च तत्तोयमामाशयगते ज्वरे ॥ ४ ॥

अथ मधुरज्वरलक्षणम् ।

ज्वरो दाहो भ्रमो मोहो ह्यतीसारो वमिस्तृषा । अनिद्रा च मुखं रक्तं तालु जिह्वा च शुष्यति ॥ १ ॥ ग्रीवायां परिदृश्यन्ते स्फोटकाः सर्षपोपमाः । एभिस्तु लक्षणैर्विद्यान्मन्थराख्यं ज्वरं नृणाम् ॥ २ ॥ अथ चिकित्सा । मुस्ता पर्पटको यष्टी गोस्तनी समभागतः । अष्टावशेषतः काथो निपीतो मधुना सह ॥ ३ ॥ पित्तभ्रमं ज्वरं दाहं हन्ति छदिं समन्थराम् । चन्दनोशीरधान्यं च वालकं पर्पटं तथा ॥ ४ ॥ मुस्ता शुण्ठी समं युक्तं मन्थरज्वरनाशनम् । मक्षिका गुडसंयुक्ता ज्वरे मन्थरके हिता । भ्रममोहातिसारांश्च नाशयत्यविलम्बतः ॥ ५ ॥ इति मधुरज्वरचिकित्सा ॥ चलदलतरुसेवाहोममन्त्रास्त्रिनेत्रद्विजगुरुजनपूजा विष्णुनाम्नां सहस्रम् । मणिधृतिरपि दानान्याशिषस्तापसानां सकलमिदमरिष्टं स्पष्टमष्टज्वराणाम् ॥ १ ॥ समुद्रस्योत्तरे तीरे द्विरदो नाम वानरः । तस्य स्मरणमात्रेण ज्वरा यान्ति दिगन्तरम् ॥ २ ॥ अथ दुर्जलजनितस्य ज्वरस्य चिकित्सा—हरीतकीनिंबपत्रं नागरं सैध्वोनलः । एषां चूर्णं सदाखादेर्दुर्जलज्वरशांतये ॥ १ ॥ अरुचिमनलमांघ्रं पीनसश्वासकासानुदरमुदकदोषानाशुह न्यादशेषान् । जनयति तनुकांतिं चित्तनेत्रप्रसादं पलपरिमितशुंठीक्षौद्रसिद्धः कषायः ॥ २ ॥ अथ दुर्जलजेता रसः—विषं भागद्वयं दग्धं कपर्दं पंचभागकं । मरिचं नागरं चैव चूर्णं वस्त्रेण शोधयेत् ॥ १ ॥ आर्द्रकस्य रसेनास्य कुर्यान्मुद्गनिभां वटीम् । वारिणा वटिकायुग्मं प्रातः सायं च भक्षयेत् ॥ २ ॥ अयं रसो ज्वरे योज्यः सामे दुर्जलजेपि च । अजीर्णाध्मानविष्टं भ्रूलेषु श्वासकासयोः ॥ ३ ॥ अथ पटोलादिक्वाथः—पटोलमुस्तामृतवलिवासकं सनागरं धान्यकिराततित्तकम् ॥ कषायमेषां मधुनापिबेन्नरो निवारयेद्दुर्जलदोषमुल्बणम् ॥ ४ ॥ भोजनाग्रे नरैर्भुक्तं शुंठीराज्यभयोत्थितं । कल्कं तु सहते नित्यं नानादर्शोद्भवं जलम् ॥ ५ ॥ इति भावप्रकाशात् इति ज्वरचिकित्साकथनम् ॥

अथ पथ्यापथ्यविधिमाह ।

आलोक्य वैद्यतन्त्राणि यत्नादेष निबध्यते । व्याधितानां चिकित्सार्थं पथ्यापथ्यविनिश्चयः ॥ १ ॥ निदानौषधपथ्यानि त्रीणि यत्नेन चिन्तयेत् । तेनैव रोगाः शीर्यन्ते शुष्के नीर इवाङ्कुराः ॥ २ ॥ रुक्षु सर्वास्वपथ्यानि यथास्वं परिवर्जयेत् । तास्वपथ्यैर्विवर्धन्ते तोयदैरिव वीरुधः ॥ ३ ॥ विनाऽपि भेषजैर्व्याधिः पथ्यादेव विलीयते । न तु पथ्यविहीनस्य भेषजानां शतैरपि ॥ ४ ॥ दोषान्दूष्यान्देशकालौ सात्त्वं सत्त्वं बलं वयः । विकृतिं भेषजं बह्निमाहारं च विशेषतः ॥ ५ ॥ निरीक्ष्य मतिमान्वैद्यश्चिकित्सां कर्तुमुद्यतः । पथ्यानि योजयेन्नित्यं यथास्वं सर्वरोगिणु ॥ ६ ॥ मतः सर्वेषु रोगेषु प्रायः श्रेष्ठतमो ज्वरः । अतस्त्वस्यैव प्रथमं पथ्यापथ्यं वदाम्यहम् ॥ ७ ॥

अथ तरुणज्वरे पाचनानि ।

वमनं लङ्घनं काले यवागूः स्वेदनानि च । कटुतिक्तस्राश्चैव पाचनं तरुणे ज्वरे ॥ १ ॥ सन्निपाते हितान्याह—सन्निपाते त्विदं सर्वं कुर्यादामकफापह-
म् । अवलेहोऽञ्जनं नस्यं गण्डूषाश्च रसक्रियाः ॥ १ ॥ पादयोर्हस्तयोर्मूले क-
ण्ठे कूपे च गण्डयोः । स्वेदे भृष्टकुलत्थानां चूर्णघर्षणमाचरेत् ॥ २ ॥

अथ तरुणज्वरेऽहितानि ।

स्नानं विरेकं सुरतं कषायं व्यायाममभ्यञ्जनमहि निद्राम् । दुग्धं घृतं वैदल-
मा^१ भेषं च तक्रं सुरां स्वादुगुरुद्रवं च ॥ अन्नं प्रवातं भ्रमणं प्रकोपं त्यजेत्प्रय-
त्ना तरुणज्वरार्तः ॥ १ ॥

अथ मध्यमज्वरे हितानि ।

पुरातनाः षष्टिकशालयश्च वार्ताकसौभाञ्जनकारवेल्लम् । वेन्नाग्रमाषाढपलं
पटोलं कर्कोटकं मूलकपोतिका च ॥ १ ॥ मुद्गैर्मसूरैश्चणकैः कुलत्थैर्मकुष्टकै-
र्वा विहितश्च यूषः । पाठामृतावास्तुकतण्डुलीयजीवन्तिशकानि च काकमा-
ची ॥ २ ॥ द्राक्षाकपित्थानि च दाडिमानि वैकङ्कतान्येव पचेलिमानि ।
लघूनि सात्म्यानि च भेषजानि पथ्यानि मध्यज्वरिणाममूनि ॥ ३ ॥

अथ पुराणज्वरे हितानि ।

विरेचनं छर्दनमञ्जनं च नस्यं च धूमोऽप्यनुवासनं च । शिराव्यधः संशम-
नं प्रदेहोऽभ्यङ्गोऽवगाहः शिशिरोपचारः ॥ १ ॥ अन्यान्यपि पुराणज्वरे हिता-
नि—एणः कुलिङ्गो हरिणो मयूरो लावः शशस्तिर्तिरकुकुटौ च । क्रौञ्चः कुर-
ङ्गः पृषतश्चकोरः कपिञ्जलो वर्तककालपुच्छौ ॥ १ ॥ गवामजायाश्च पयो घृतं
च हरीतकी पर्वतनिर्झराम्भः । एरण्डतैलं सितचन्दनं च द्रव्याणि सर्वाणि पु-
रेरितानि । ज्योत्स्ना प्रियालिङ्गनमप्ययं स्याद्वर्गः पुराणज्वरिणां सुखाय ॥ २ ॥

अथाऽऽगन्तुकज्वरे हितानि ।

आगन्तुके ज्वरे नैव नरः कुर्वीत लङ्घनम् । अभिचाराभिशापोत्थे जपहोमा-
दि भेषजम् ॥ १ ॥ उत्पातग्रहपीडोत्थे दानस्वस्त्ययनादिभिः । कामशोकभ-
योद्भूते सर्वा वातहरी क्रिया ॥ २ ॥ आश्वासनं चेष्टलाभो हर्षदायीनि यानि
च । हर्षेण च समायान्ति कामशोकभयज्वराः ॥ ३ ॥ क्रोधजे पित्तजित्कार्यं
प्रियासद्वाक्यमेव च । ओषधीगन्धविषजौ विषपित्तप्रसादनैः ॥ ४ ॥
अध्वश्रान्तेषु चाभ्यङ्गं दिवा निद्रां च कारयेत् । मनःक्षोभसमुत्पन्ने मनसः सा-
न्त्वनानि च ॥ ५ ॥ अभिघातसमुत्थाने पानाभ्यङ्गौ च सर्पिपः । रक्तावसेक-
मद्यैश्च तथा मांसरसौदनैः ॥ ६ ॥ क्षतजे व्रणजे चापि क्षतव्रणचिकित्सितम् ।
इत्यागन्तुज्वरे पूर्वं मिषग्भिः पथ्यमीरितम् ॥ ७ ॥

अथ विषमज्वरे हितानि ।

विष्णोर्नामसहस्रस्य पठनं श्रवणं श्रुतेः । देवानां ब्राह्मणानां च गुरुणाम-
पि पूजनम् ॥ १ ॥ ब्रह्मचर्यं तपो होमः प्रदानं नियमो जपः । साधूनां दर्श-
नं श्रेष्ठं रत्नौषधिविधारणम् ॥ मङ्गलाचरणं चेति वर्गः सर्वज्वराजयेत् ॥ २ ॥
व्यायामं च व्यवायं च स्नानं चङ्क्रमणानि च । ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्नो
बलवान्भवेत् ॥ ३ ॥ इति ज्वरचिकित्साकथनं समाप्तम् ॥

अथातीसारनिदानम् ।

क्षीरमत्स्यादि यद्भुक्तं तद्विरुद्धाशनं मतम् । भुक्तस्योपरि यद्भुक्तं तदध्यश-
नमुच्यते ॥ १ ॥ गुर्वतिस्निग्धरुक्षोष्णद्रवस्थूलातिशीतलैः । विरुद्धाध्यशना-
जीर्णैर्विषमैश्चातिभोजनैः ॥ २ ॥ स्नेहाद्यैरतियुक्तैश्च मिथ्यायुक्तैर्विषैर्भयैः ।
शोकदुष्टास्त्रुमद्यातिपातैः सात्म्यविपर्ययैः ॥ ३ ॥ जलाभिरमणैर्वैगविघातैः
कृमिदोषतः । नृणां भवत्यतीसारो लक्षणं तस्य वक्ष्यते ॥ ४ ॥ संशम्यापां
धातुरग्निं प्रवृद्धो वर्चोमिश्रो वायुनाऽधः प्रणुन्नः । सरत्यतीवासारं तमाहु-
र्व्याधिं घोरं षड्विधं तं वदन्ति ॥ ५ ॥ एकैकशः सर्वशश्चापि दोषैः शोके-
नान्यः षष्ठ आमेन चोक्तः । केचिच्चाऽहुनैकरूपप्रकारं नेत्येवं तं काशिरा-
जस्त्ववोचत् ॥ ६ ॥ हृन्नाभिपायूदरकुक्षितोदगान्नावसादानिलसंनिरोधाः । विद्रुसं-
गमाध्मानमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥ ७ ॥ अरुणं फेनिलं रू-
क्षमल्पमल्पं मुहुर्मुहुः । शक्रदामं सरुक्शब्दं मारुतेनातिसार्यते ॥ ८ ॥ पित्तात्पी-
तं नीलमालोहितं वा तृष्णामूर्च्छादाहपाकोपपन्नम् । शुक्लं सान्द्रं श्लेष्मणा श्लेष्म-
जुष्टं विस्रं शीतं हृष्टरोमा मनुष्यः ॥ ९ ॥ वराहस्नेहमांसास्त्रुसदृशं सर्वरूपिणम् ।
कृच्छ्रसाध्यमतीसारं विद्यादोषत्रयोद्भवम् ॥ १० ॥ तैस्तैर्भावैः शोचतोऽ-
ल्पाशनस्य बाष्पोष्मा वै वह्निमाविश्य जन्तोः ॥ कोष्ठं गत्वा क्षोभयेत्तस्य रक्तं
तच्चाधस्तात्काकणन्तीप्रकाशम् ॥ ११ ॥ निर्गच्छेद्वै विड्विमिश्रं ह्यविड्वा नि-
र्गन्धं वा गन्धवद्वाऽतिसारः । शोकोत्पन्नो दुश्चिकित्सोऽतिमात्रं रोगो वैद्यैः क-
ष्ट एष प्रदिष्टः ॥ १२ ॥ अन्नाजीर्णात्प्रदुताः क्षोभयन्तः कोष्ठं दोषा धातुसंघा-
न्मलांश्च । नानावर्णं नैकशः सारयन्ति शूलोपेतं कष्टमेनं वदन्ति ॥ १३ ॥
आमातिसारलक्षणं—संसृष्टमेभिर्दोषैस्तु न्यस्तमप्स्ववसीदति । पुरीषं भृशदुर्ग-
न्धि पिच्छिलं चाऽऽमसंज्ञितम् ॥ १४ ॥ आमाशयस्थः कायाग्नेर्दौर्बल्यादवि-
पाचितः । अपक्वाहारधातुर्यः स आम इति संज्ञितः ॥ १५ ॥ ऊष्मणोऽल्पब-
लत्वेन धातुमाद्यमपाचितम् । दुष्टमामाशयगतं रसमामं प्रचक्षते ॥ १६ ॥
पक्वलक्षणम्—एतान्येव तु लिङ्गानि विपरीतानि यस्य वै । लाघवं च विशेषेण

तस्य पक्वं विनिर्दिशेत् ॥ १७ ॥ असाध्यलक्षणम्—नान्युपद्रवतायुक्तं नातिदुष्टेषु धातुषु । बाले वृद्धेऽप्यसाध्योऽयं रूपैरेतैरुपद्रवैः ॥ १८ ॥ अपि यूनामसाध्यः स्यादतिदुष्टेषु धातुषु ॥ १९ ॥ लघुनकुणपगन्धं पूतिगन्धं वनं वा पललजलसमानं पक्वजम्बूफलाभम् । घृतमधुपयआभं तैलशैवालनीलं सुघनदधिसवर्णं वर्जयेच्चातिसारम् ॥ २० ॥ तस्योपद्रवाः—शोफं शूलं ज्वरं तृष्णां श्वासं कासमरोचकम् । छादिं मूर्छां च हिक्कां च दृष्ट्वाऽतीसारिणं त्यजेत् ॥ २१ ॥ पित्तकृन्ति यदाऽत्यर्थं द्रव्याण्यश्नाति पैत्तिके । तदोपजायते तीव्रो रक्तातीसार उलबणः ॥ दोषलिङ्गेन मतिमान्संसर्गं तत्र लक्षयेत् ॥ २२ ॥ प्रवाहिकामाह—वायुः प्रवृद्धो निचितं बलासं नुदत्यधस्तादहिताशनस्य । प्रवाहतोऽल्पं बहुशो मलाक्तं प्रवाहिकां तां प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ २३ ॥ प्रवाहिका वातकृता सशूला पित्तात्सदाहा सकफा कफाच्च । सशोणिता शोणितसंभवा च ताः स्नेहरूक्षप्रभवा मतास्तु ॥ तासामतीसारवदादिशेच्च लिङ्गं क्रमं चाऽऽमविपक्वतां च ॥ २४ ॥ यस्योच्चारं विना मूत्रं सम्यग्वायुश्च गच्छति । दीप्ताग्नेर्लघुकोष्ठस्य स्थितस्तस्योदरामयः ॥ २५ ॥ ज्वरातिसारयोरुक्तं निदानं च पृथक्पृथक् । तस्माज्ज्वरातिसारस्य तेन नात्रोदितं पुनः ॥ २६ ॥ स्तम्भो वेपथुराध्मानमुष्णागात्रविपर्ययः । गतायुषामतीसारे व्यञ्जनान्युपलक्षयेत् ॥ २७ ॥ तृदकासशोषज्वरदाहमूर्छाहिक्कात्रविद्वेषणवान्तिशूलैः । युक्तोतिसारी स्मरतु प्रसह्य गोविन्द गोपाल गदाधरेति ॥ २८ ॥ इत्यतीसारनिदानम् ॥

अथातीसारचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

हितं लङ्घनमेवाऽऽदौ पूर्ववत्तेन मानवः । षडङ्गं वाऽथवा यूषं पिप्पल्यादिं प्रयोजयेत् ॥ १ ॥ मुद्गयूषं रसं तक्रं धान्यजीरकसंयुतम् । षडङ्गं यूषमित्याहुः सैन्धवेन समन्वितम् ॥ २ ॥ अग्निसंदीपनं प्रोक्तं ग्रहणीदोषनाशनम् । अरोचके ज्वरे चैव श्रेष्ठमेव प्रवाहिके ॥ ३ ॥ विल्वं च धान्यं च सजीरकं च पाठां च शुण्ठीं तिलसंयुतां च । पिष्ट्वा षडङ्गः स हितो नराणां यूषो ह्यतीसारहरः प्रदिष्टः ॥ ४ ॥ इति षडङ्गयूषः । तृष्णापनयनी लघ्वी दीपनी मलशोधिनी । चिरे चैवातिसारे च यवागूः सर्वदा हिता ॥ ५ ॥ इत्यतीसारपूर्वरूपचिकित्सा ॥

अथाऽमातिसारचिकित्सा ।

आमपक्वक्रमं हित्वा नातिसारं क्रिया यतः । अतः सर्वातिसारेषु ज्ञेयं पक्वमलक्षणम् ॥ १ ॥ आमे विलङ्घनं शस्तमादौ पाचनमेव च । कार्यं वाऽनशनस्यान्ते सद्रवं लघु भोजनम् ॥ २ ॥ लङ्घनमेकं मुक्त्वा नान्यदस्तीह भेषजं बलिनाम् । समुदीर्णदोषनिचयं शमयति तत्पाचयत्येव ॥ ३ ॥ ह्रीबेरश-

ङ्गबेराभ्यां मुस्तपर्पटकेन वा । मुस्तोदीच्यशृतं तोयं देयं चापि पिपासवे ॥ ४ ॥
 न तु संग्रहणं दद्यात्पूर्वमामातिसारिणाम् । दोषो ह्यादौ वर्धमानो जनयत्याम-
 यान्बहून् ॥ ५ ॥ शोफपाण्ड्वामयप्लीहकुष्ठगुल्मोदरज्वरान् । दण्डकालसका-
 ध्मानग्रहण्यशौगदांस्तथा ॥ ६ ॥ डिम्भजः स्थविरो वाऽपि वातपित्तात्मकश्च
 यः । क्षीणधातुर्ज्वरार्तश्च बहुदोषोऽतिविषतः ॥ ७ ॥ आमोऽपि स्तम्भनी-
 यः स्यात्पाचनान्मरणं भवेत् । अतिसारे ज्वरे चैव रक्तपित्ते दृगामये ॥ ८ ॥
 आदौ न प्रतिकुर्वीत व्याधिवेगो हि दुस्तरः । स्तोकं स्तोकं विबद्धं वा सशूलं
 योऽतिसार्यते ॥ ९ ॥ अभयापिप्पलीकलैः सुखोष्णैस्तं विरेचयेत् ॥ दीप्ताग्निर्बहुदो-
 षो यो विबन्धमतिसार्यते ॥ १० ॥ विडङ्गत्रिफलाकृष्णाकषायैस्तं विरेचयेत् ।
 ध्रुवक्षामस्य विरिक्ते तु पेयां युक्त्याद्विचक्षणः ॥ ११ ॥ भेषजैर्मारुतैश्च
 दीपनीयैश्च कल्पिताम् । योऽतिबद्धं प्रभूतं च पुरीषमतिसार्यते ॥ १२ ॥
 तस्याऽऽदौ वमनं योज्यं पश्चालङ्घनमुच्यते । देवदारुवचामुस्तं नागरा-
 तिविषाभयम् । सर्वाजीर्णप्रशमनं पेयमेतैः शृतं पयः ॥ १३ ॥ त्र्यूषणा-
 तिविषाहिङ्गुवचासौवर्चलाभयाः । पीत्वोष्णेनाम्भसा जह्यादामातिसारमुद्धतम्
 ॥ १४ ॥ पाठाहिङ्गवजमोदोप्रापञ्चकोलाब्दजं रजः । उष्णाम्बुपीतं सरुजं
 जयत्यामं ससैन्धवम् ॥ १५ ॥ चित्रकं पिप्पलीमूलं वचा कटुकरोहिणी ।
 पाठावत्सकबीजानि हरीतक्यो महौषधम् ॥ १६ ॥ एतदामसमुत्थानमतिसारं
 सेवेदनम् । कफात्मकं सपित्तं च सवातं हन्ति वै ध्रुवम् ॥ १७ ॥ विश्वाभया-
 घनवचातिविषासुराह्णकाथोऽथ विश्वजलदातिविषाशृतो वा । आमातिसा-
 रशमनः कथितः कषायः शुण्ठीघनाप्रतिविषामृतवल्लिजो वा ॥ १८ ॥ धान्य-
 बालकबिल्वान्बदनागरैः साधितं जलम् । आमशूलहरं प्राहि दीपनं पाचनं प-
 रम् ॥ १९ ॥ पित्ते धान्यचतुष्कं तु शुण्ठीत्यागाद्बदन्ति हि । चूर्णं किञ्चिद्-
 घृताभ्यक्तं शुण्ठ्या एरण्डजैर्दलैः । वेष्टितं पुटपाकेन निषचेन्मन्दबहिना ॥ २० ॥
 तत उद्धृत्य तच्चूर्णं प्राह्यं प्रातः सितासमम् । तेन यान्ति शमं पीडा आमाती-
 सारसंभवाः ॥ २१ ॥ कुक्षिशूलामशूलघ्नं विबन्धाध्मातिसारजित् । सेवितं स-
 गुडं बिल्वं बिल्वतुल्यपयोधरे ॥ २२ ॥ शुण्ठी जीरं सैन्धवं हिङ्गुजातीबीजं तद्वत्साह-
 कारं प्रशस्तम् । ज्ञेयं सद्भिः साखरूढं सबिल्वं मार्कण्ड्यायैर्योजितं सूक्ष्मचूर्ण-
 म् ॥ २३ ॥ दध्ना च वटिकां कुर्यात्तेनैव सह लेहयेत् । आमातीसारमान्द्यं च
 अरुचिं हन्ति च क्षणात् ॥ २४ ॥ सत्त्वाशुण्ठ्योषणं शृङ्गीसमांशं सूक्ष्मचूर्णितम् ।
 यथासात्स्यं सेवनीयं शीततोयानुपानतः ॥ २५ ॥ सशूलमामदोषं च नाश-
 मायाति सत्वरम् । दध्योदनं पथ्यमत्र उचितं रोगशान्तये ॥ २६ ॥ जयाख-
 ण्डं साखरूढं जीरकं दधिमिश्रितम् । आमातिसाररक्तं च हन्ति वेगेन कौतु-
 कम् ॥ २७ ॥ शुण्ठीसातिविषाहिङ्गुमुस्ताकुटजचित्रकैः । चूर्णमुष्णाम्बुना पी-

नसामातिसारनाशनम् ॥ २८ ॥ हरीतकी प्रतिविषा सिन्धु सौवर्चलं वचा ।
हिङ्गु चेति कृतं चूर्णं पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ २९ ॥ आमातीसारशमनं ग्राहिचा-
ग्निप्रदीपनम् । पयस्युत्काथ्य मुस्तानां विंशतिं त्रिगुणाभसि ॥ ३० ॥ क्षीरा-
वशेषं तत्पीतं हन्त्यामं शूलमेव च । धान्यनागरजः काथः पाचनो दीपनस्त-
था ॥ ३१ ॥ एरण्डमूलयुक्तश्च जयेदामानिलन्यथाम् । यवानी नागरोक्षीरध-
निकातिविषाघनैः ॥ ३२ ॥ बालबिल्वद्विपर्णीभिर्दीपनं पाचनं भवेत् । कलि-
ङ्गातिविषाहिङ्गुपथ्यासौवर्चलं वचा ॥ ३३ ॥ शूलस्तम्भविवन्धनं देयं दीपन-
पाचनम् । निरामरूपं शूलार्तं लङ्घनाद्यैश्च कर्षितम् ॥ ३४ ॥ क्षारनागरचा-
ङ्गेरीकोलदध्याम्लसंधितम् । सर्पिरच्छं पिबेद्वाऽपि शूलातीसारशान्तये ॥ ३५ ॥
इत्यामातिसारचिकित्सा ।

अथ पक्कातिसारचिकित्सा ।

सलोघ्रं धातकीबिल्वं मुस्ताम्रास्थिकलिङ्गकम् । पिबेन्माहिषतक्रेण पक्काती-
सारनाशनम् ॥ १ ॥ पद्मं समङ्गा मधुकं बिल्वजं तु शलाटु च । पिबेत्तण्डुल-
तोयेन सक्षौद्रमगदं परम् ॥ २ ॥ कुटजातिविषाचूर्णं मधुना सह लेहितम् ।
चिरोत्थितमतीसारं पक्कं पित्तास्रजं जयेत् ॥ ३ ॥ अथ लघुगंगाधरचूर्ण-
मोचरसमुस्तनागरपाठारलुधातकीकुसुमैः । चूर्णं मथितसमेत रुणद्धि गङ्गा-
प्रवाहमपि ॥ ४ ॥

अथ वृद्धगंगाधरचूर्णम्—मुस्तमोचरसलोघ्रधातकीपुष्पबिल्वगिरि-
कौटजैः फलैः । चूर्णितैः सगुडतक्रसेवितैर्निम्बगाजलरयोऽपि रुध्यन्ते ॥ १ ॥
इति वृद्धगङ्गाधरचूर्णम् । अङ्गोलमूलकलकः सक्षौद्रस्तण्डुलाम्बुना पीतः ।
सेतुरिव वारिवेगं झटिति निरुन्ध्यादतीसारम् ॥ १ ॥ अजमोदामोचरसं स-
शृङ्गबेरं सधातकीकुसुमम् । करमथितसंप्रयुक्तं गङ्गामपि वाहिनीं रुन्ध्यात् ॥
२ ॥ विश्वजीरकसिन्धूत्थं हिङ्गुजातीफलानि च । साम्रास्थिशङ्खखण्डं च द-
ध्नाऽऽम्लेन प्रपेषयेत् ॥ ३ ॥ ईषदङ्गारकैर्भृष्टा वटिका कर्षसंमिता । पक्कापक्क-
मतीसारं सशूलं ग्रहणीगदम् । चिरोत्थमचिरोत्थं च नाशयेन्नात्र संशयः ॥
४ ॥ वटप्ररोहं संपिष्टं श्लक्ष्णं तण्डुलवारिणा । तं पिबेत्तक्रसंयुक्तमतीसार-
प्रशान्तये ॥ ५ ॥ इति पक्कातिसारचिकित्सा ॥

अथ वातातीसारचिकित्सा ।

कपित्थबिल्वचाङ्गेरीतक्रदाडिमसाधिता । ग्राहिणी पाचनी पेया वाते वा
पाञ्चमूलिका ॥ १ ॥ पञ्चमूलबलाविश्राधान्यकोत्पलबिल्वजा । वातातिसारिणे
देया सक्तुनाऽन्यतमेन वा ॥ २ ॥ वचा प्रतिविषा मुस्ता बीजानि कुटजस्य च ।
श्रेष्ठो वातातिसारे च योगोऽयं वैद्यपूजितः ॥ ३ ॥ पूतिकं मागधी शुण्ठी बला

धान्यं हरीतकी । पक्काम्बुना पिबेत्सामवातातीसारशान्तये ॥ ४ ॥ इति वाता-
तिसारचिकित्सा ॥

अथ पित्तातिसारचिकित्सा ।

आमान्वयमतीसारं पैत्तिकं लैङ्गनेजयत् । लङ्घितस्य यथासात्म्यं यवागूम-
ण्डतर्पणैः ॥ १ ॥ शृतचन्दनमुस्ताभ्यां पटोलोदीच्यनागरैः । पेयाम्मलामत-
कां वा पाचनीं ग्राहिणीं पिबेत् ॥ २ ॥ धान्योदीच्यशृतं तोयं तृष्णादाहाति-
सारवान् । ताभ्यामेव सपाठाभ्यां सिद्धमाहारमाचरेत् ॥ ३ ॥ बिल्वशक्य-
वाम्भोदवालकातिविषाकृतः । कषायो हन्यतीसारं सामं पित्तसमुद्भवम् ॥ ४ ॥ रसाञ्जनं प्रतिविषं कुटजस्य फलत्वचौ । धातकी शृङ्गबेरं च पायये-
त्तण्डुलाम्बुना ॥ ५ ॥ माक्षिकेण युतं हन्यात्पित्तातीसारमुल्बणम् । मन्दं-
संदीपयेदग्निं शूलं चाऽऽशु निवर्तयेत् ॥ ६ ॥ मधुकं कटफलं लोभ्रं दाडिम-
स्य फलत्वचम् । पित्तातिसारे मध्वक्तं पाययेत्तण्डुलाम्बुना ॥ ७ ॥ समङ्गा
धातकीपुष्पं बिल्वं सौवर्चलं विडम् । सक्षौद्रं दाडिमं चैव पीतं तण्डुलवारि-
णा ॥ ८ ॥ चूर्णं पित्तातिसारघ्नं शूलं चाऽऽशु च निर्हरेत् । सक्षौद्रातिविषां पिष्ट्वा
वत्सकस्य फलं त्वचम् ॥ ९ ॥ तण्डुलोदकसंयुक्तं पेयं पित्तातिसारनुत् ।
कटफलातिविषाम्भोदवत्सकं नागरान्वितम् ॥ १० ॥ शृतं पित्तातिसारघ्नं
पातव्यं मधुसंयुतम् । पलं वत्सकसंसिद्धं चतुर्गुणजले घृतम् ॥ पित्तातिसारे
भिषजा देयं दीपनपाचनम् ॥ ११ ॥ इति घृतम् । इति पित्तातिसारचिकित्सा ॥

अथ रक्तातिसार चिकित्सा ।

जम्ब्वान्नामलकीनां च पल्वैश्च रसो जयेत् । मध्वाज्यक्षीरसंयुक्तो रक्ताती-
सारनाशनः ॥ १ ॥ गुडेन खादयेद्विल्वं रक्तातीसारनाशनम् । आमशूल-
विबन्धघ्नं कुक्षिरोगविनाशनम् ॥ २ ॥ कुटजातिविषामुस्तं वालकं लोभ्रचन्द-
नम् । धातकी दाडिमं पाठा काथं क्षौद्रयुतं पिबेत् ॥ ३ ॥ दाहे रक्ते सशूले
च आमरोगे च दुस्तरे । कुटजाष्टमिदं ख्यातं सर्वातीसारनाशनम् ॥ ४ ॥ इति
कुटजाष्टककाथः ॥ सवत्सकः सातिविषः सबिल्वः सोदीच्यमुस्तश्च कृतः कषायः ।
सामे सशूले च सशोणिते च चिरप्रवृत्तेऽपिहितोऽतिसारे ॥ ५ ॥ लघुचेत-
किजीरके समे मृदुभृष्टे च सुचूर्णितेऽर्पिते । सह तण्डुलवारिणा मतेऽतिसृ-
तिघ्ने इति सिद्धयोग एषः ॥ ६ ॥ अथि कन्दुकनिन्दकस्तनि प्रमदारूप-
मदापहारिणि । रुधिरातिसृत्तौ कषायकः समधुर्दाडिमवत्सकत्वचः ॥ ७ ॥ चन्दनं
विमलतण्डुलाम्बुना संयुतं मधुयुतं सितान्वितम् । तृड्विखण्डनमसृग्विखण्डनं
खण्डनं प्रचुरदाहमोहयोः ॥ ८ ॥ हीबेरातिविषामुस्तं बिल्वधान्यकवत्सकम् ।
समङ्गाधातकीलोभ्रं विश्वं दीपनपाचनम् ॥ ९ ॥ हन्यरोचकपिच्छामं विबन्धं
चातिवेदनम् । सशोणितमतीसारं सज्वरं वाऽथ विज्वरम् ॥ १० ॥ बिल्वं छा-

गपयःसिद्धं सितामोचरसान्वितम् । कलिङ्गचूर्णसंयुक्तं रक्तातीसारनाशनम् ॥ ११ ॥ रसाञ्जनं सातिविषं कुटजस्य फलत्वचम् । धातकीशृङ्गवेरं च पिबे-
त्तण्डुलवारिणा ॥ १२ ॥ क्षौद्रेण युक्तं तदेयं रक्तातीसारमुल्बणम् । जलमष्टगुणं
दत्त्वा पलं कण्डिततण्डुलान् । धावयित्वा ततो देयं तण्डुलोदककर्मणि ॥ १३ ॥
सहरीतकीप्रतिविषारुचकं सवचं सहिङ्गु सकलिङ्गयुतम् । इति तत्कलिङ्गयु-
तषट्कमिदं रुधिरातिसारगुदशूलहरम् ॥ १४ ॥ इति चिकित्साकलिकातः । अ-
थ पिच्छाबस्तिः—अल्पाल्पं बहुशो रक्तं सशूलमुपवेश्यते । यदा वायुर्विब-
द्धश्च पिच्छाबस्तिस्तदा हितः ॥ १ ॥ शाल्मलेरार्द्रपुष्पाणि पुटपाकीकृतानि च ।
संकुव्योलूखले सम्यग्गृहीयात्पयसि शृते ॥ २ ॥ गृहीत्वा च पलं तस्य त्रिपलं
घृततैलयोः । युक्तं मधुककलकेन माक्षिकत्रिपलेन च ॥ ३ ॥ तैलाक्तवपुषो द-
द्याद्वस्तिं प्रत्यागते रसे । भोजयेत्पयसा वाऽपि पित्तातीसारपीडितम् ॥ ४ ॥
उक्तं च वाग्भटे—पलवाञ्जर्जरीकृत्य शिंशपाकोविदारयोः । पचेद्यवांश्च
स काथो घृतक्षीरसमन्वितः ॥ १ ॥ पिच्छाबस्तिः प्रयोक्तव्यः क्षतक्षीणव-
लावहः । पिच्छासुतौ गुदभ्रंशे प्रवाहणरुजासु च ॥ २ ॥ इति पिच्छाबस्तिः ।
अथ गुदभ्रंशः—गुदो बहुभिरुत्थानैर्यस्य पित्तेन पच्यते । सिञ्चयेत्तं सुशी-
तेन पटोलमधुकाम्बुना ॥ १ ॥ रक्तातिसारिणामाजं पयः सक्षौद्रशर्करम् ।
गुदप्रक्षालने सेके प्रशस्तं पानभोजने ॥ २ ॥ स्वेदोऽथ मूषिकामांसैस्तद्वसाभ्र-
क्षणं तथा । गुदनिःसरणे शस्तं चाङ्ग्रेरीघृतमुत्तमम् ॥ ३ ॥ शम्बूकमांसं सु-
स्विन्नं सतैललवणान्वितम् । ईषद्घृतेन चाभ्यक्तं स्वेदयेत्तेन यत्नतः । गुदभ्रं-
शमशौषेण नाशयेत्क्षिप्रमेव च ॥ ४ ॥ इति रक्तातिसारचिकित्सा ॥

अथ श्लेष्मातिसारचिकित्सा ।

श्लेष्मातिसारे प्रथमं हितं लङ्घनपाचनम् । योज्यश्चाऽऽमातिसारघ्नो यथो-
क्तो दीपनो गणः ॥ १ ॥ पूतिकव्योषबिल्वाग्निपाठादाडिमहिङ्गुभिः । भोज-
येत्संस्कृतैर्यूषैः श्लेष्मातीसारपीडितम् ॥ २ ॥ गोकण्टकगुहाव्याघ्रीकषायं सु-
शृतं पिबेत् । आमश्लेष्मातिसारघ्नं दीपनं पाचनं परम् ॥ ३ ॥ पथ्या सौवर्च-
लं हिङ्गु सैन्धवातिविषा वचा । आमातिसारं सकफं पीतमुष्णाम्बुना जयेत् ॥ ४ ॥

इति श्लेष्मातिसारचिकित्सा ।

अथ संनिपातातिसारचिकित्सा ।

समङ्गाऽतिविषा मुस्ता विश्वंहीवेरधातकी । कुटजत्वग्दलैर्बिल्वैः काथः सर्वा-
तिसारनुत् ॥ १ ॥ अभया नागरं मुस्तं गुडेन सह योजितम् । चतुःसमेयं गु-
टिका त्रिदोषघ्नी प्रकीर्तिता ॥ २ ॥ आमातिसारमानाहं सविबन्धं विषूचिकाम् ।
कृमीनरोचकं हन्यादीपयत्याशु चानलम् ॥ ३ ॥ इत्यभयादिगुटिका । अवेदनं

सुसंपक्वं दीप्ताग्नेः सुचिरोत्थितम् । नानावर्णमतीसारं पुटपाकैरुपाचरेत् ॥ १ ॥
स्निग्धं घनं कुटजवल्कमजन्तुजग्धमादाय तत्क्षणमतीव च पेषयित्वा । जम्बूपला-
शपुटतण्डुलतोयसिक्तं बद्धं कुशेन च बहिर्धनपङ्कलितम् ॥ २ ॥ सुस्विन्नपि-
ष्टमुपपीड्य रसं गृहीत्वा क्षौद्रेण युक्तमतिसारवते प्रदद्यात् । कृष्णान्निपुत्रमत-
पूजित एष योगः सर्वातिसारहरणे स्वयमेव राजा ॥ ३ ॥ इति संनिपाताति-
सारचिकित्सा ।

अथ श्लेष्मपित्तातिसारचिकित्सा ।

समेङ्गा धातकीपुष्पमात्रास्थि नागकेशरम् । बिल्वं मोचरसं लोभ्रं कुटजस्य
फलत्वचम् ॥ १ ॥ पिबेत्तण्डुलतोयेन कषायं कल्कमेव वा । श्लेष्मपित्तातिसारघ्नं
रक्तं वाऽथ नियच्छति ॥ २ ॥ इति श्लेष्मपित्तातिसारचिकित्सा ।

अथ वातश्लेष्मातिसारचिकित्सा ।

रसैः स्वादुकटुप्रायैरुभौ वातकफौ नृणाम् । कुरुतस्तावतीसारं कुड्मौ वर्हिं
निहत्य च ॥ १ ॥ द्रवं सफेनं पुरीषं तन्वामं मदगन्धिकम् । सशब्दवेदना-
वन्तं तत्र संपरिपच्यते ॥ २ ॥ नित्यं गुडगुडायन्तं तन्द्रामूर्च्छाभ्रमकुमैः ।
प्रसक्तं सन्धिकटयूरुजानुपृष्ठास्थिशूलिनः ॥ ३ ॥ धान्यपञ्चकसंसिद्धो धान्य-
विश्वकृतोऽथवा । आहारो भिषजा योज्यो वातश्लेष्मातिसारिणे ॥ ४ ॥
वातातिसारे यच्चोक्तं पाचनं ग्राहि भेषजम् । तदत्रापि प्रयुज्जीत संचिन्त्य
कफमारुतौ ॥ ५ ॥ इति वातश्लेष्मातिसारचिकित्सा ॥

अथ वातपित्तातिसारचिकित्सा ।

कदफलं मधुकं लोभ्रं त्वग्दाडिमफलस्य च । वातपित्तातिसारघ्नं पिबेत्त-
ण्डुलवारिणा ॥ १ ॥ मुस्तं सातिविषा दावीं वचा शुण्ठी च तत्समम् ।
कषायं क्षौद्रसंयुक्तं पित्तवातातिसारिणे ॥ २ ॥ पीतदारु वचा लोभ्रं कलि-
ङ्गफलनागरम् । दाडिमाम्बुयुतं दद्यात्पित्तवातातिसारिणे ॥ ३ ॥ इति पित्त-
वातातिसारचिकित्सा ॥

अथ छर्द्यतीसारचिकित्सा ।

बिल्वचूतास्थिनिर्यूहः पीतः सक्षौद्रशर्करः । निहन्याच्छर्द्यतीसारं वैश्वानर
इवाऽऽहुतिम् ॥ १ ॥ पटोलयवधान्याककाथः पीतः सुशीतलः । शर्करामधुसं-
युक्तश्छर्द्यतीसारनाशनः ॥ २ ॥ प्रियङ्ग्वज्जनमुस्तारुयं पाययेत्तु तथाबलम् ।
नृणातीसारच्छर्दिघ्नं सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना ॥ ३ ॥ जम्ब्वाम्रपलवोशीरवटशृ-
ङ्गावरोहकैः । रसः काथोऽथवा चूर्णं क्षौद्रेण सह योजितम् ॥ ४ ॥ छर्दिज्व-
रमतीसारं मूर्च्छां नृणां च दुर्जयाम् । नियच्छत्यचिराद्रक्तक्षुतिं चानेकहे-
तुभिः ॥ ५ ॥ इति छर्द्यतीसारचिकित्सा ॥

अथ शोफातिसारचिकित्सा ।

सदेवदारुः सविषः सपाठः सजन्तुशत्रुः सघनः सतीक्ष्णः । सवत्सकः काथ उदाहृतोऽसौ शोफातिसाराम्बुधिकुम्भजन्मा ॥ १ ॥ किराताब्दामृताविश्वचन्दनोदीच्यवत्सकैः । शोफातिसारशमनं विशेषाज्ज्वरनाशनम् ॥ २ ॥ इति शोफातिसारचिकित्सा ।

अथ भयशोकातिसारचिकित्सा ।

भयशोकावतीसारौ भयशोकसमुद्भवौ । तयोर्वातहरी कार्या हर्षणाश्वासनक्रिया ॥ १ ॥ पृश्निपर्णीबलाबिल्वधान्यकोत्पलनागरैः । विडङ्गातिविषामुस्तादारुपाठाकलिङ्गकैः । मरीचेन समायुक्तं शोकातीसारनाशनम् ॥ २ ॥ इति भयशोकजातिसारचिकित्सा ॥

अथ प्रवाहिका ।

कल्कः स्याद्बालजिल्वानां तिलकल्कश्च तत्तमः । दध्नः सारोऽम्लक्षेहाढ्यः षट् च हन्यात्प्रवाहिकाः ॥ १ ॥ मुद्गयूषरसं तक्रं धान्यजीरकसंयुतम् । षडंगमिति संप्रोक्तं सैन्धवेन समन्वितम् ॥ २ ॥ अग्निंसदीपनं प्रोक्तं ग्रहणीदोषनाशनम् । अरोचके ज्वरे चैव श्रेष्ठमेतत्प्रवाहिके ॥ ३ ॥ बालबिल्वं गुडं तैलं पिप्पली विडम्बेषजम् । लिङ्ग्याद्वाते प्रतिहते सञ्चूले सप्रवाहिके ॥ ४ ॥ पयसा पिप्पलीकल्कः पीतो वा मरिचोद्भवः । त्र्यहान्निर्वाहिकां हन्याच्चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ ५ ॥ तैलं सर्पिर्दधि क्षौद्रं विषा विश्वं सफाणितम् । सर्वमालोढ्य पातव्यं सद्यो निर्वाहिकां हरेत् ॥ ६ ॥ त्र्यूषणं त्रिफला चैव चित्रको गजपिप्पली । बिल्वकर्कटिकाहिंसाविडङ्गं सनिदिग्धिकम् ॥ ७ ॥ घृतप्रस्थं पचेदेभिर्गवां मूत्रे चतुर्गुणे । तत्प्रयोगं पिबेत्काले हन्यात्तेन प्रवाहिकाम् ॥ ८ ॥ इति प्रवाहिका ॥

अथ पुरीषक्षयः ।

दीप्ताग्न्यतिपुरीषो यः सार्यते फेनिलं शकृत् । स पिबेत्फाणितं शुण्ठीदधितैलपयोन्वितम् ॥ १ ॥ दध्ना ससारेण समाक्षिकेण भुञ्जीत निःसारकपीडितस्तु । सुतक्रशुण्ठीकथितेन वाऽपि क्षीरेण शीतेन मधुष्ठुतेन ॥ २ ॥ बलाविश्वशृतं क्षीरं गुडतैलानुयोजितम् । दीप्ताग्निं पाययेत्प्रातः सुखदं वर्चसः क्षये ॥ ३ ॥ शशमांसं रुचिकरं सखण्डं सघृतं दधि । विपाच्य खादेत्सेवेच्च मृद्वन्नं शकृत् क्षये ॥ ४ ॥ इति पुरीषक्षयः । विबद्धवातो विदग्धूलपरीतः सप्रवाहिकः । सरक्तपिच्छश्च पयः पिबेत्तृष्णासमन्वितः ॥ १ ॥ यथामृतं तथा क्षीरमतिसारेषु पूजितम् । सरक्तोत्थेषु तत्पेयमपां भागेषु संस्कृतम् ॥ २ ॥

अथ ज्वरातिसारः ।

ज्वरातिसारयोरुक्तं भेषजं यत्पृथक् पृथक् । न तन्मिलितयोः कार्यमन्योन्यं
वर्धयेद्यतः ॥ १ ॥ अतस्तौ प्रतिकुर्वीत विशेषोक्तचिकित्सितैः ॥ २ ॥ लङ्घ-
नमुभयोरुक्तं मिलिते कार्यं विशेषतस्तदनु । उत्पलषष्टिकसिद्धं लाजकमण्डा-
दिकं पेयम् ॥ ३ ॥ पृश्निपर्णीबलाबिल्वनागरोत्पलधान्यकैः । ज्वरातिसारी पेयां
वा पिबेत्साम्नां शृतां नरः ॥ ४ ॥ धातकीकाथसंसिद्धा विश्वभेषजकल्किता ।
द्वाडिमांशुयुता पेया ज्वरातीसारशूलिनाम् ॥ ५ ॥ पाठेन्द्रयवभूनिम्बमुस्तप-
पैटकाः शृताः । जयन्त्याममतीसारं ज्वरं च समहौषधाः ॥ ६ ॥ नागराति-
विषामुस्तभूनिम्बामृतवत्सकैः । सर्वज्वरहरः काथः सर्वातीसारनाशनः ॥ ७ ॥
धान्यकातिविषामुस्तागुडूचीबिल्वनागरैः । दत्तः कषायः शमयेदतिसारं
चिरोत्थितम् ॥ ८ ॥ अरोचकामशूलास्रज्वरघ्नः पाचनः स्मृतः । कलिङ्गातिवि-
षाशुण्ठीकिराताम्बुयवासकम् ॥ ९ ॥ ज्वरातीसारसंतापं नाशयेदविकल्पतः ।
शूलच्यतिविषाधातकीबिल्वनागरोत्पलकैः ॥ १० ॥ श्वदंष्ट्रा पिप्पली धान्यं बिल्वपाठा यवानिका । द्वावप्युक्ताविमौ यो-
गौ श्लोकार्धेनावभाषितौ ॥ ११ ॥ ज्वरातीसारशमनौ विशेषाद्वाहनाशनौ । व्यो-
षं वत्सकबीजानि निम्बभूनिम्बमार्कवम् ॥ १२ ॥ चित्रकं रोहिणी पाठा दार्वी-
ह्यतिविषा समम् । श्लक्ष्णचूर्णीकृतानेतांस्तुल्यां वत्सकत्वचम् ॥ १३ ॥ सर्व-
मेकत्र संयोज्य पिबेत्तण्डुलवारिणा । सक्षौद्रं वा लिहेदेवं पाचनं ग्राहि भेष-
जम् ॥ १४ ॥ तृणारुचिप्रशमनं ज्वरातीसारनाशनम् । कामलां ग्रहणीरोगं गु-
ल्मं प्लीहानमेव च ॥ १५ ॥ प्रमेहं पाण्डुरोगं च श्वयथुं च विनाशयेत् । उ-
शीरं वालकं मुस्तं धान्यकं बिल्वमेव च ॥ १६ ॥ समङ्गा धातकी लोघ्र विश्वं
दीपनपाचनम् । हन्त्यरोचकपिच्छामं विबन्धं सातिवेदनम् ॥ १७ ॥ सशोणि-
तमतीसारं सज्वरं वाऽथ विज्वरम् । बिल्ववालकभूनिम्बगुडूचीधान्यनागरैः ।
कुटजाब्दामृताकाथो ज्वरातीसारशूलनुत् ॥ १८ ॥ पञ्चाङ्गिवृक्षयब्दबलेन्द्र-
बीजत्वक्सेव्यतिक्तामृतविश्वबिल्वैः । ज्वरातिसारान्सवमीन्सकासान्सश्वासशू-
लाब्धशमयेत्कषायः ॥ १९ ॥ अरुल्वतिविषा मुस्ता शुण्ठी बिल्वं सदाडिमम् ।
सर्वज्वरहरः काथः सर्वातीसारनाशनः ॥ २० ॥ इति ज्वरातीसारचिकित्सा ॥

अथ सर्वातीसारे

यथा शृतं भवेद्धारि तथाऽतीसारनाशनम् । अतिसारं निहन्येव शतभागशृतं
जलम् ॥ १ ॥

अथ दाडिमावलेहः ।

दाडिमादिफलप्रस्थं चतुष्प्रस्थजले पचेत् । चतुर्भागकषायेऽस्मिन्शर्कराप्र-
स्थमेव च ॥ १ ॥ नागरं पिप्पलीमूलं कणाधान्यकदीप्यकम् । जातीफलं जाति-
पत्रं मरिचं जीरकं तुगा ॥ २ ॥ विजया निम्बपत्रं च समङ्गा कूटशा-
ल्मली । अरलवतिविषा पाठा लवङ्गं च पृथक्पलम् ॥ ३ ॥ घृतस्य मधुनः प्र-
स्थं सर्वलेहं विपाचयेत् । दाडिम्बलेहकं नाम ज्वरातीसारनाशनम् ॥ ४ ॥ आ-
मरक्तं चाऽऽमशूलं मान्द्यशोफक्षयापहम् । धातुलीनं धातुगतमश्विभ्यां निर्मि-
तं पुरा ॥ ५ ॥ इति दाडिमावलेहः ।

अथ कुटजाद्यवलेहः ।

वत्सकस्यामृतायाश्च द्वे पले प्रस्थमम्भसः । श्रपयित्वा रसे तस्मिन्पादशेषा-
वतारिते ॥ १ ॥ अष्टौ पलानि शक्रस्य यवाशूर्णीकृताश्च ते । पक्त्वा पाकं विदित्वा
तु यथावह्निं च खादयेत् ॥ २ ॥ जयेत्सर्वातिसारंश्च सर्वांश्च ग्रहणीगदान् ।
नाशयेद्दीपयेच्चाग्निं कृष्णात्रेयस्य शासनात् ॥ ३ ॥ अन्यञ्च—शतं कुटज-
मूलस्य क्षुण्णं तोयार्मणे पचेत् । काथे पादावशेषेऽस्मिंल्लेहं पूतं पुनः पचेत्
॥ १ ॥ सौवर्चलयवक्षारविडसैन्धवपिप्पली ॥ धातकीन्द्रयवाजाजीचूर्णं दत्त्वा
पलद्वयम् ॥ २ ॥ लिह्याद्दरमात्रं तु तच्छीतं मधुसंयुतम् ॥ ३ ॥ पक्वापक्व-
मतीसारं नानावर्णं सवेदनम् । दुर्वारं ग्रहणीरोगं जयेच्चैतत्प्रवाहिकाम् ॥ ४ ॥
अन्यञ्च—कुटजस्य पलं ग्राह्यमष्टभागजले शृतम् । तथैव विपचेद्भूयो दाडिमो-
दकसंयुतम् ॥ १ ॥ कुटजकाथतुल्योऽत्र दाडिमस्य रसो मतः । यावच्च रसि-
काभासं शृतं तमुपकल्पयेत् ॥ २ ॥ तस्यार्धकर्पं तत्रेण पिबेद्रक्तातिसारवान् ।
अवश्यं मरणीयोऽपि न मृत्योर्योति गोचरम् ॥ ३ ॥ इति कुटजावलेहः ।

अथ कुटजाष्टकम् ।

पक्वाद्र्वां कुटजातुलां जलघटेऽष्टांशं पुनः पालिकैः पाठाशाल्मलिधातकीघ-
नविषालज्जालुबिल्वैः सह । तल्लिह्यात्कुटजाष्टकं जलगवां क्षीरेण मण्डानुपोऽ-
तीसारं ग्रहणीमसृग्दरमसृक्पित्तासृगशो जयेत् ॥ १ ॥ इति कुटजाष्टकम् ।

अथ कपित्थाष्टकम् ।

यवान्पिप्पलीमूलजातुर्जातकनागरैः । मरीचाग्निजलाजाजीधान्यसौवर्चलैः
समैः ॥ १ ॥ वृक्षाल्मधातकीकृष्णाबिल्वदाडिमदीप्यकैः । त्रिगुणैः षड्गुणसि-
नैः कपित्थाष्टगुणीकृतैः ॥ २ ॥ चूर्णोऽतीसारग्रहणीक्षयगुल्मगलामयान् । का-
सश्वासारुचिं हिक्कां कपित्थाष्टमिदं जयेत् ॥ ३ ॥ इति कपित्थाष्टकम् ॥

अथ दाडिमाष्टकम् ।

कर्षोन्मिता तुगाक्षीरी चातुर्जातं तु कार्षिकम् । यवानीधान्यकाजाजीग्र-
न्थिव्योषं पलांशकम् ॥ १ ॥ पलानि दाडिमस्याष्टौ सितायाश्चैकतः कृतम् ।
गुणैः कपित्थाष्टकवच्चूर्णोऽयं दाडिमाष्टकः ॥ २ ॥ इति दाडिमाष्टकम् ॥

अथ दाडिमपुटपाकौ ।

पुटपाकेन विपचेत्सुपकं दाडिमीफलम् । तद्रसो मधुसंयुक्तः सर्वातीसारना-
शनः ॥ १ ॥ जातीफलं सर्पफेनं टङ्कं गन्धकजीरेकं । एतानि समभागानि
बालदाडिमबीजकैः ॥ २ ॥ पेषयेत्तेन कल्केन पूरयेद्दाडिमीफलम् । अङ्गारे त-
च्च गोधूमचूर्णेनाऽऽलेपयेद्दृढम् ॥ अतीसारे स्तम्भनं स्यात्परं दीपनपाचनम्
॥ ३ ॥ इति दाडिमपुटपाकौ । भल्लातानां द्विखण्डानां द्वे पले भर्जिते क्षिपेत् ।
शुण्ठ्याः पलं तु चेतक्याः पलाध्वं सुमनाफलम् ॥ १ ॥ कर्षं मेथीवेल्लजीरसर्ष-
पान्कोलमात्रतः । ततो यवान्यर्धपलं पिप्पलीरामठोषणम् ॥ २ ॥ बिडसैन्ध-
वजीरं च किमार्णीसंज्ञकं तथा । कर्षप्रमाणं विज्ञेयं वैद्यविद्याविशारदैः ॥ ३ ॥
सर्वमेकत्र संचूर्ण्य यथासात्म्यं तु भक्षयेत् । दध्ना सह तथा खादेत्सर्वातीसा-
रनाशनम् ॥ ४ ॥ इति भल्लातादिचूर्णम् ॥

अथ रसाः ।

कम्बूभस्म चतुष्कर्षं कर्षैकमहिफेनकम् । जातीफलं टङ्कणं च पृथक्कर्षं वि-
निक्षिपेत् ॥ १ ॥ अतिसूक्ष्मं विमर्द्याथ नवनीतेन गुञ्जकम् । रसः शङ्खोदरो
नाम सर्वातीसारनाशनः ॥ २ ॥ इति शङ्खोदरः ॥ सूतं गन्धं त्रिकटुकं दी-
प्यकं जीरकद्वयम् । सौवर्चलं सैन्धवं च रामठं बिडमेव च ॥ १ ॥ शक्राह्वयस्य
चूर्णं तु चूर्णतुल्यं प्रदापयेत् । संग्रहं शूलमानाहं हन्यान्नानातिसारजित् ॥ २ ॥
इति लघुलायिचूर्णम् ॥ अथमृतसंजीवनो रसः । रसगन्धौ विषं सूता-
त्पादभागं समं च तत् । गगनं भावयेद्देभी रसैः सर्वं विचूर्णयेत् ॥ १ ॥ स-
र्पाक्षीधातकीस्वर्णविषाविश्वजयाम्बुदम् । यवानीबिल्वधान्याकजीरपाठाकणा-
शिवाः ॥ २ ॥ कुटजत्वक्कपित्थं च दाडिमं सकलिङ्गकम् । इत्येषां गोलकं कृ-
त्वा बालुकायन्नगं पचेत् ॥ ३ ॥ मृतसंजीवनो नाम रसः स्यादस्य वल्लकः । षट्-
प्रकारमतीसारं हन्ति वै चानुशीलितः ॥ ४ ॥ विश्वान्दधातकीदारुयवान्य-
म्बुकणा वचा । कुटजो धान्यकं बिल्वं पाठेन्द्रयवशाल्मली । विश्वाभया समं
चैषां चूर्णेन मधुना सह ॥ ५ ॥ इति मृतसंजीवनो रसः ॥ अथ चन्द्रप्रभा-
वटी—मृतं सूतं मृतं स्वर्णं मृतं चाभ्रं समं समम् । तुल्यं च खादिरं सारं
तथा मोचरसं क्षिपेत् ॥ १ ॥ द्रवैः शाल्मलिमूलोत्थैर्मर्दयेत्प्रहरद्वयम् । चण-
मात्रां वर्टीं कृत्वा खादेज्जीरकसंयुताम् । त्रिदोषोत्थमतीसारं सज्वरं नाशगेद्
ध्रुवम् ॥ २ ॥ इति चन्द्रप्रभावटी ॥ इति रसाः ॥

अथ अतीसारे पथ्यानि—लङ्घनं वमनं निद्रा पुराणाः शालिषट्त्रिकाः । विलेपी लाजमण्डश्च मसूरी तुवरी रसाः ॥ १ ॥ शशैणलावहरिणकपिञ्जलभवा रसाः । सर्वे क्षुद्रक्षणाः शृङ्गीडिण्डिशो मधुनालिका ॥ २ ॥ तैलं छागघृतं क्षीरं दधि तक्रं गवामपि । दधिजं वा पयोजं वा नवनीतं गवाजयोः ॥ ३ ॥ नवं रम्भापुष्पफलं क्षौद्रं जम्बूफलानि च । भव्यं महार्द्रकं विश्वं शालूकं च विकङ्कतम् ॥ ४ ॥ कपित्थं बकुलं बिल्वं तिन्दुकं दाडिमद्वयम् । शालूकं कण्डकाढ्या च चाङ्गेरी विजयाऽरुणा ॥ ५ ॥ जातीफलमफेनं च जीरकं गिरिमल्लिका । कुस्तुम्बुरु महानिम्बः कषायः सकलो रसः ॥ ६ ॥ अन्नपानानि सर्वाणि दीपनानि लघूनि च । नाभेर्बहुलतोऽधस्ताच्छ्लेणार्धेन्दुवद्देहेत् । तथा वंशास्थिमूलेऽपि पथ्यवर्गोऽतिसारिणाम् ॥ ७ ॥ अथातिसारेऽपथ्यानि—स्वेदोऽञ्जनं रुधिरमोक्षणमम्बुपानं स्नानं व्यवयमपि जागरधूमनस्यम् । अभ्यञ्जनं सकलवेगविधारणं च रूक्षाण्यसात्म्यशयनं च विरुद्धमन्नम् ॥ १ ॥ गोधूममाषयववास्तुककाकमाचीनिष्पावकं च मधुशिग्रुसालपूगम् । कूष्माण्डतुम्बिबदरं गुरु चान्नपानं ताम्बूलमिक्षुगुडमद्यमुपोदकी च ॥ २ ॥ द्राक्षात्मलवेतसफलं लशुनं च धात्री दुष्टाम्बु मस्तु गृहवारि च नारिकेलम् । सस्नेहनं मृगमदोऽखिलपत्रशाकं क्षीरं सराणि सकलानि पुनर्नवा च ॥ ३ ॥ उर्वारुकं लवणमल्लमपि प्रकोपी वर्गोऽतिसारगदपीडितमानवेषु । स्नानावगाहमभ्यङ्गगुरुस्निग्धान्नभोजनम् ॥ व्यायाममग्निस्तापमतीसारी विवर्जयेत् ॥ ४ ॥ इत्यतीसारचिकित्सा ॥

अथ ग्रहणीनिदानम् ।

अतिसारे निवृत्तेऽपि मन्दाग्नेरहिताग्निः । भूयः संदूषितो वह्निर्ग्रहणीमभिदूषयेत् ॥ १ ॥ ग्रहण्या बलमग्निर्हि स चापि ग्रहणीं श्रितः । तस्मात्संदूषिते वह्नौ ग्रहणी संप्रदुष्यति ॥ २ ॥ नाभेरुपर्यग्निबलेनोपस्तब्धोपबृंहिता । षष्ठी कला पित्तधरा या पूर्वं समुदाहता ॥ ३ ॥ पक्वामाशयमध्यस्था ग्रहणी सा प्रकीर्तिता । अपक्वं धारयत्यन्नं पक्वं सृजति पार्श्वतः ॥ ४ ॥ एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमुच्छ्रितैः । सा दुष्टा बहुशो भुक्तमाममेव विमुञ्चति ॥ ५ ॥ पक्वं वा सरुजं पूति मुहुर्बद्धं मुहुर्द्रवम् । ग्रहणीरोगमाहुस्तमायुर्वेदविदो जनाः ॥ ६ ॥ पूर्वरूपं तु तस्येदं तृष्णाऽऽलस्यं बलक्षयः । विदाहोऽन्नस्यपाकश्च चिरात्कायस्य गौरवम् ॥ ७ ॥ वातिकग्रहणी लक्षणम्—कटुतिक्तकषायातिरूक्षसंदुष्टभोजनैः । प्रमितानशनात्यर्थवेगनिग्रहमैथुनैः ॥ ८ ॥ मारुतः कुपितो वह्निं संछाद्य कुरुते गदान् । तस्यान्नं पच्यते दुःखं शुष्कपाकः खराङ्गता ॥ ९ ॥ कण्ठास्यशोषः क्षुत्तृष्णा तिमिरं कर्णयोः स्वनः । पार्श्वोत्थवङ्कणग्रीवारुगभीक्ष्णं विषूचिका ॥ १० ॥ हृत्पीडा काश्यदौर्बल्यं वैरस्यं परिकर्तिका । गृद्धिः सर्वरसानां च मनसः सदनं तथा ॥ ११ ॥ जीर्णे जीर्यति चाऽऽध्मा-

नं भुक्ते स्वास्थ्यमुपैति च । सवातगुल्महृद्गोग्नीहाशङ्की च मानवः ॥ १२ ॥
 चिरादुःखं द्रवं शुष्कं तन्वासं शब्दफेनवत् । पुनः पुनः सृजेद्वर्चः कासश्चासा-
 र्दितोऽनिलात् ॥ १३ ॥ पैत्तिकग्रहणीलक्षणम्—कट्वजीर्णविदाह्यम्लक्षाराद्यैः
 पित्तमुलबणम् । आप्लावयद्धन्त्यनलं जलं तप्तमिवानलम् ॥ १४ ॥ सोऽजीर्णं
 नीलपीताभं पित्ताभः सार्यते द्रवम् । पूत्यम्लोद्गारहृत्कण्ठदाहारुचितृडार्दितः
 ॥ १५ ॥ कफग्रहणीलक्षणम्—गुर्वतिस्निग्ध शीतादिभोजनादतिभोजनात् ।
 भुक्तमात्रस्य च स्वप्नाद्धन्त्यग्निं कुपितः कफः ॥ १६ ॥ तस्यान्नं पच्यते दुःखं
 हृत्सासच्छर्द्यैरोचकाः । आस्योपलेपमाधुर्यकासष्टीवनपीनसाः ॥ १७ ॥ हृदयं
 मन्यते स्थानमुदरं स्तिमितं गुरु । दुष्टो मधुर उद्गारः सदनं स्त्रीष्वहर्षणम्
 ॥ १८ ॥ भिन्नामश्लेष्मसंसृष्टगुरुवर्चःप्रवर्तनम् । अकृशस्यापि दौर्बल्यमा-
 लस्यं च कफात्मके ॥ १९ ॥ सांनिपातिकग्रहणीलक्षणम्—पृथग्वातादिनि-
 र्दिष्टहेतुलिङ्गसमागमे । त्रिदोषं निर्दिशेदेवं तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ २० ॥
 आमग्रहणी—अन्नकूजनमालस्यं दौर्बल्यं सदनं भवेत् । द्रवं घनं सितं स्निग्धं
 सकटीवेदनं शकृत् ॥ २१ ॥ आमं बहु सपैच्छिल्यं सशब्दं मन्दकूजनम् ।
 पक्षान्मासादशाहद्वा नित्यं वाऽपि प्रमुञ्चति ॥ २२ ॥ दिवा प्रकोपमायाति
 रात्रौ शान्तिं व्रजेच्च सा । दुर्विज्ञेया दुर्निवारा चिरकालानुबन्धिनी ॥ २३ ॥
 सा भवेदामवातेन ग्रहणाद्ग्रहणी मता । असाध्यलक्षणम्—संसृष्टा व्याधयो
 यस्य प्रतिलोमानुलोमगाः ॥ २४ ॥ आपन्नग्रहणीरोगः सोऽर्धमासं न जीवति ।
 घटीयंत्रग्रहणी—स्वपतः पार्श्वयोर्यस्य गलज्जलघटध्वनिः ॥ २५ ॥ तं वदन्ति
 घटीयन्त्रमसाध्यं ग्रहणीगदम् । अत्याहारस्य संक्षोभाद्दिग्बन्धाहारमूर्छितात्
 ॥ २६ ॥ स्थानात्प्रमुच्यते श्लेष्मा आममित्यभिधीयते । अतिसारातिदिष्टानि
 ग्रहण्यामपि लक्षयेत् ॥ २७ ॥ बालके ग्रहणी साध्या यूनि कृच्छ्रा समीरिता ।
 वृद्धे त्वसाध्या विज्ञेया मतं धन्वन्तरेरिदम् ॥ २८ ॥ इति ग्रहणीनिदानम् ॥

अथ ग्रहणीचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अथ चर्तग्रहणी—ग्रहणीमाश्रितं दोषमजीर्णवदुपाचरेत् । अतिसारोक्तवि-
 धिना तस्यामं च विपाचयेत् ॥ १ ॥ पेयादिपञ्चलवणं पञ्चकोलादिभि-
 र्युतम् । दीपनानि च तक्रं च ग्रहण्यां संप्रयोजयेत् ॥ २ ॥ ज्ञात्वा तु परि-
 पक्वं च वातजं ग्रहणीगदम् । दीपनैर्भेषजैः पक्कैः सर्पिर्भिः समुपाचरेत् ॥ ३ ॥
 धान्यविल्वबलाशुण्ठीशालिपर्णीशृतं जलम् । स्याद्वातग्रहणीदोषे सानाहे
 सपरिग्रहे ॥ ४ ॥ अथ पञ्चमूलाद्यं घृतम्—पञ्चमूल्यभयाव्योषपिप्प-
 लीमूलसैन्धवैः । रास्नाक्षारद्वयाजाजीविडङ्गशटिभिर्घृतम् ॥ १ ॥ पक्वेन मातु-
 लङ्गस्य स्वरसेनाऽऽर्द्रकस्य च । शुष्कमूलककोलाम्बुचुक्रिकादाडिमस्य च
 ॥ २ ॥ तक्रमस्तुसुरामण्डसौवीरकतुपोदकैः । काञ्जिकेन च तत्पक्त्वा पीतम-

शिकरं परम् ॥ शूलगुल्मोदरानाहकाश्यांनिलगदापहम् ॥ ३ ॥ इति पञ्च-
मूलाद्यं घृतम् । अथ शुण्ठीघृतम्—घृतं नागरकल्केन सिद्धं वातानुलो-
मनम् । ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं प्लीहकासज्वरापहम् ॥ १ ॥ इति शुण्ठीघृतम् ।
इति वातग्रहणी ।

अथ पित्तग्रहणी ।

अथ रसाञ्जनादिचूर्णम्—रसाञ्जनं प्रतिविषा वत्सकस्य फलत्वचौ ।
नागरं धातकी चैवं सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना ॥ पित्तग्रहणीदोषार्शोर्क्तपित्ताति-
सारनुत् ॥ १ ॥ इति रसाञ्जनादिचूर्णम् । श्रीफलशलाटुककल्को नागरचूर्णेन
मिश्रितः सगुडः । ग्रहणीगदमत्युग्रं तक्रभुजा शीलितो जयति ॥ १ ॥ नाग-
रातिविषामुस्तं धातकी सरसाञ्जनम् । वत्सकत्वक्फलं बिल्वं पाठा तिक्तक-
रोहिणी ॥ २ ॥ पिबेत्समांशं तच्चूर्णं सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना । पित्तजे ग्रहणी-
दोषे रक्तं यश्चोपवेश्यते ॥ ३ ॥ अशीसि हृद्गुदे शूलं जयेच्चैव प्रवाहिकाम् ।
नागराद्यमिदं चूर्णं कृष्णात्रेयेण पूजितम् ॥ ४ ॥ इति नागराद्यं चूर्णम् । भू-
निम्बकंदुकाव्योषमुस्तानिन्द्रयवान्समान् । द्वौ चित्रकान्वत्सकत्वग्भागान्षोडश
चूर्णयेत् ॥ १ ॥ गुडशीताम्बुना पीतं ग्रहणीपित्तदोषनुत् । कामलाज्वरपाण्डु-
घ्नं मेहतीव्रातिसारनुत् ॥ २ ॥ इति वृन्दात् । इति पित्तग्रहणीचिकित्सा ।

अथ श्लेष्मग्रहणीचिकित्सा ।

शटी व्योषाभयं क्षारौ ग्रन्थिकं बीजपूरकम् । लवणास्लाम्बुना पेयं श्लेष्मिके
ग्रहणीगदे ॥ १ ॥ रास्त्रा पथ्या शटी व्योषं द्वौ क्षारौ लवणानि च । ग्रन्थिकं
मातुलुङ्गस्य रसमेकत्र चूर्णयेत् ॥ पिबेदुष्णेन तोयेन श्लेष्मिके ग्रहणी-
गदे ॥ २ ॥ इति रास्त्रादिचूर्णम् । इति श्लेष्मग्रहणी ॥ अथ सर्वग्रहणी चिकि-
त्सा । शुण्ठीं समुस्तातिविषां गुडूर्चीं पिबेज्जलेन कथितां समांशाम् । मन्दान-
लत्वे सततामवाते सामानुबन्धे ग्रहणीगदे च ॥ १ ॥ इति शुण्ठ्यादिकाथः ।

अथ चित्रकादिगुटिका ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं द्वौ क्षारौ लवणानि च । व्योषं हिङ्गवज्रमोदा च चव्य-
मेकत्र चूर्णयेत् ॥ १ ॥ गुटिका मातुलुङ्गस्य दाडिमस्य रसेन वा । कृता विषा-
चयत्यामं दीपयत्याशु चानलम् ॥ २ ॥ इति चित्रकादिगुटिका । चूर्णं चव्यक-
चित्रश्रीविश्वभेषजनिर्मितम् । तत्रेण सहितं हन्ति ग्रहणीं दुःखकारिणीम्
॥ १ ॥ अथ भल्लातकक्षारः—भल्लातकं त्रिकटुकं त्रिफला लवणत्रयम् ।
अन्तर्धूमं द्विपलिकं गोपुरीषाग्निना दहेत् ॥ २ ॥ स क्षारः सर्पिषा पीतो भो-
ज्ये चाऽप्यवचूर्णितः । हृद्गोपाण्डुग्रहणीगुल्मोदावर्तशूलनुत् ॥ ३ ॥ इति-
भल्लातकक्षारः ।

सप्ताहं वा दशाहं वा मासं मासार्धमेव वा । बलकालविभागज्ञो भिषक् त-
 क्रं प्रयोजयेत् ॥ १ ॥ न तक्रदानात्प्रभवन्ति रोगा न तक्रसेवी व्यथते कदा-
 चित् । यथा सुराणाममृतं प्रधानं तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः ॥ २ ॥ तक्रं
 नोरक्षते दद्यान्नोष्णकाले न दुर्बले । न मूर्छाभ्रमदाहे च न रोगे रक्तपैत्तिके
 ॥ ३ ॥ इति वृन्दात् । ग्रहणीदोषिणां तक्रं दीपनं ग्राहि लाघवात् । पथ्यं म-
 धुरपाकित्वान्न च पित्तप्रदूषणम् । कषायोष्णविकाशित्वाद्वृक्षत्वाच्च कफे हि-
 तम् ॥ १ ॥ वाते स्वाद्वृन्दासांद्रत्वासद्यस्कामविदाहि तत् । अरुचौ मातुलुङ्गस्य केसरं
 साज्यसैन्धवम् । दद्याद्भोजनकाले तु प्रातस्तक्रं च रोगिणाम् ॥ २ ॥ दहनाजमोदसै-
 न्धवनागरमरिचं पिबाम्लतक्रेण । सप्ताहादग्निबलं ग्रहण्यतीसारशूलघ्नम् ॥ ३ ॥
 अथ तक्रहरीतकी । त्रिकंसे तक्रस्य द्विकुडवपटोः षष्टिरभयाः पचेद्भस्त्र्यः
 सार्धं घृततिलजविश्वाम्निकुडवैः । समावाप्याजाजीमरिचचपलादीप्यकपलैर्लि-
 हन्सन्नं वह्निं द्रवयति विकारांश्च जयति ॥ ४ ॥ इति तक्रहरीतकी ।

अथ कल्याणकावलेहः ।

पाठाधान्ययवान्यजाजिहपुषाचव्याग्निसिन्धुद्भवैः सश्रेयस्यजमोदकीटरिपु-
 भिः कृष्णाजटासंयुतैः । सव्योषैः सफलत्रिकैः सतृटिभिस्त्वक्पत्रकैरौषधैरित्य-
 क्षप्रमितैः सतैलकुडवैः सार्धं त्रिवृन्मुष्टिभिः ॥ १ ॥ एतैरामलकीरसस्य तुलया
 सार्धं तुलार्धं गुडात्पक्त्वं भिषजावलेहवदयं प्राग्भोजनाद्भक्षितः । ये के-
 चिद्ग्रहणीगदाः सगुदजाः कासाः सशोषामयाः सश्वासाः श्वयथुस्वरोदररुजः
 कल्याणकस्ताजयेत् ॥ २ ॥ इति कल्याणकावलेहः । भूनिम्बकौटजकटुत्रिक-
 मुस्ततिक्ताः कर्षाशकाः सशिखिमूलपिचुद्रयाश्च । त्वकौटजा पलचतुष्कमिता गु-
 डाम्भः पीतं नृणामिह हरेद्ग्रहणीविकारान् ॥ १ ॥ बिल्वाब्दशक्रयववाल्क-
 मोचसिद्धमाजं पयः पिबति यो दिवसत्रयं च । सोऽतिप्रवृद्धचिरकृद्ग्रहणी-
 विकारं मांसं सशोणितमसाध्यमपि क्षिणोति ॥ २ ॥ व्योषं दीप्याजमोदा-
 कृमिरिपुदहनं रामठं चाश्वगन्धं सिन्धूत्थं जीरके द्वे रुचकपल्युतं धान्यकं तु-
 ल्यभागम् । भृङ्गीचूर्णं लवङ्गं घृतमधुसहितं शाणमात्रं च दद्याद्दीप्तिं पुष्टिं च
 कान्तिं बलमपि कुरुते नाशयेत्संग्रहण्याम् ॥ ३ ॥

अथ वृद्धगङ्गाधरचूर्णम् ।

मुस्ताबालकलोध्रवत्सकवृकीविश्वारलुश्रीमदालज्जामोचरसाम्नकौटजविषा-
 चूर्णस्तु गङ्गाधरः । पीतस्त्रण्डुलवारिमाक्षिकयुतः कर्षोन्मितो वाहिकामुग्रां च
 ग्रहणीं निहन्ति सहसा सर्वातिसारामयान् ॥ १ ॥ इति वृद्धगङ्गाधरचूर्णम् ।

अथ तालीसाद्यं चूर्णम् ।

तालीसोम्रतुगाषडूषणनिशाबिल्वजमोदासूटीचातुर्जातलवङ्गधातकिविषा-

जातीफलं दीप्यकम् । पाठा मोचरसालपञ्चलवणाजाजीद्वयं वेल्लकं वृक्षाम्ला-
म्लवरापलाशतरुजं मांस्यम्बुदं वालुकम् ॥ १ ॥ ऐन्द्री ब्रह्मसुवर्चला दृढपदा
कुष्ठं समतैः समं बल्या सर्वसमा जयाऽखिलसमा मत्स्यण्डिका वा सिता ।
चूर्णोऽयं ग्रहणीक्षयादिकसनश्चासारुचिहृद्गुर्नामातिसृतिज्वरार्तिपवनस्थौ-
त्यप्रमेहप्रणुत् ॥ २ ॥ तीव्रापस्मृतिपाण्डुगुल्मजठरश्लेष्मोत्थपित्तोद्भवोन्माद-
ध्वंसविधायको विजयते सर्वामयध्वंसकः । बालानां च विशेषतो हितकरः
संस्पष्टवाणीप्रदः पुष्ट्यायुर्वलकान्तिधीस्मृतिमहामेधाविलासप्रदः ॥ ३ ॥ इति
तालीसाद्यं चूर्णम् ॥

अथ जातीफलाद्यं चूर्णम् ।

जातीफललवङ्गैलापत्रत्वङ्नागकेसरैः । कर्पूरचन्दनतिलैस्त्वक्क्षीरी-
तगरामलैः ॥ १ ॥ तालीसपिप्पलीपथ्यास्थूलजीरकचित्रकैः । शुण्ठीविडङ्गम-
रिचैः समभागैर्विचूर्णितैः ॥ २ ॥ यावन्त्येतानि सर्वाणि दद्याद्भृङ्गां च ताव-
तीम् । सर्वचूर्णसमा देया शर्करा सुभिषग्वरैः ॥ ३ ॥ कर्षमात्रं ततः खादेन्म-
धुना प्लावितं सुधीः । अस्य प्रभावाद्ग्रहणीकासश्चासारुचिक्षयाः । वातश्लेष्मप्रति-
श्यायाः प्रशमं यान्ति वेगतः ॥ ४ ॥ इति जातीफलाद्यं चूर्णम् ।

अथ बिल्वाद्यं घृतम् ।

बिल्वाग्निचव्याद्रकशृङ्गवेरकाथेन कल्केन च सिद्धमाज्यम् । सच्छागदुग्धं
ग्रहणीगदोत्थे शोफाग्निसादारुचिनुद्वरं तत् ॥ १ ॥ इति बिल्वाद्यं घृतम् । कृच्छ्रेण
कठिनत्वेन यः पुरीषं विमुञ्चति । सघृतं लवणं तस्य पाययेत्क्लेशशान्तये । बि-
डं यवानीं विष्टम्भे पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ २ ॥

अथ द्राक्षासवः ।

मृद्वीकायाः पलशतं जतुद्रोणेऽम्भसः पचेत् । द्रोणशेषे तु शीते च पूते त-
स्मिन्प्रदापयेत् ॥ १ ॥ द्विशते क्षौद्रखण्डाभ्यां धातक्याः प्रस्थमेव च । कङ्को-
लकलवङ्गे च जातीसस्यं तथैव च ॥ २ ॥ पलांशकानि मरिचं त्वगेलापत्रकेसरम् ।
पिप्पली चित्रकं चव्यं पिप्पलीमूलरेणुकम् ॥ ३ ॥ घृतभाण्डस्थितमिदं चन्दनागुरुधू-
पितम् । कर्पूरवासितो ह्येष ग्रहणीदीपनः परम् ॥ ४ ॥ अर्शसां नाशनः श्रेष्ठ उदाव-
र्ताखगुल्मनुत् । जठरक्रिमिकुष्ठानि त्रणांश्च विविधांस्तथा ॥ ५ ॥ अक्षिरोगशिरोरोग-
गलरोगविनाशनः । ज्वरमामं महाव्याधिं पाण्डुरोगं सकामलम् । नास्ना द्रा-
क्षासवो ह्येष बृंहणो बलवर्णकृत् ॥ ६ ॥ इति गदनिग्रहाद्राक्षासवः ।

अथ रसाः ।

चतुर्मुर्तिरसः । सूतकं गन्धकं लोहं विषं चित्रकपत्रकम् । वरारी रेणुका मु-
स्ता एला ग्रन्थिककेशरम् ॥ १ ॥ फलत्रयं त्रिकटुकं शुल्बभस्म तथैव च । एतानि

समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ २ ॥ ग्रहण्यां पाण्डुरोगे च दातव्यं मधुना सह । अतिसारे क्षये कासे प्रमेहे विषमज्वरे । नानानुपानैर्दातव्यश्चतुर्भूतीं रसोत्तमः ॥ ३ ॥ अथ सुवर्णरसपर्पटी—शुद्धसूतं पलमितं तुर्यांशस्वर्णसंयुतम् । मर्दयेन्निम्बुनीरेण यावदेकत्वमामुयात् ॥ १ ॥ प्रक्षाल्योष्णाम्बुना पश्चात्पलमात्रे तु गन्धके । द्रुते लोहमये पात्रे बादरानलयोगतः ॥ २ ॥ प्रक्षिप्य चालयेहोह्यां मन्दं लोहशलाकया । ततः पाकं विदित्वा तु रम्भापत्रे शनैः क्षिपेत् ॥ ३ ॥ गोमयस्थे तदुपरि रम्भापत्रेण यन्नयेत् । शीतं तच्चूर्णितं गुञ्जाक्रमवृद्धं निषेवयेत् ॥ ४ ॥ मापमात्रं भवेद्यावत्ततो मात्रां न वर्धयेत् । सक्षौद्रेणोषणेनैव लेहयेद्विषगुत्तमः ॥ ५ ॥ ग्रहणीं हन्ति शोषं च सुवर्णरसपर्पटी । सद्योबलकरी शुक्रवर्धनी वह्निदीपनी । क्षयकासश्वासमेहशूलातीसारपाण्डुनुत् ॥ ६ ॥ इति सुवर्णरसपर्पटी । अथ ग्रहणीकपाटः—तारमौक्तिकहेमानि सारश्चैकैकभागिकम् । द्विभागो गन्धकः सूतस्त्रिभागो मर्दयेदिमान् ॥ १ ॥ कपित्थस्वरसैर्गाढं मृगशृङ्गे ततः क्षिपेत् । पुटेन्मध्यपुटेनैव तत उद्धृत्य मर्दयेत् ॥ २ ॥ बलारसैः सप्तवेलमपामार्गरसैस्त्रिधा । लोध्रप्रतिविषामुस्तधातकीन्द्रयवामृताः ॥ ३ ॥ प्रत्येकमेतत्स्वरसैर्भावना स्याद्विधा त्रिधा । माषमात्रं रसो दैवो मधुना मरिचैस्तथा ॥ ४ ॥ हन्यात्सर्वानतीसारान्ग्रहणीं सर्वजामपि । कपाटो ग्रहणीरोगे रसोऽयं वह्निदीपनः ॥ ५ ॥ अन्यच्च—रसेन्द्रगन्धातिविषामभयांश्च क्षारत्रयं मोचरसो वचा च । जया च जम्बीररसेन पिष्टं पिण्डीकृतं स्याद्ग्रहणीकपाटः ॥ १ ॥ अन्यच्च—रसराजलक्ष्म्याः—शुद्धैः कर्कवराटकैर्गणनया भल्लातकांस्तत्समान्द्रोतान्वबुलकण्टकैर्लघुपुटैः पक्त्वाङ्गिभागं रसम् । लेलीतेन समं विचूर्ण्य जयया सप्तानुभावं शिवप्रोक्तोऽयं ग्रहणीकपाटकरसश्चैवलकस्त्वौषधैः ॥ १ ॥ इति ग्रहणीकपाटः ॥ अथ ग्रहणीगजकेसरी रसः—गन्धं पारदमभ्रकं च दरदं लोहं च जातीफलं बिल्वं मोचरसं विषं प्रतिविषां व्योषं तथा धातकीम् । भंगामप्यभयां कपित्थजलदौ दीप्यानलौ दाडिमं टङ्गाद्भस्म कलिङ्गकान्कनकजं बीजं च पक्षेक्षणम् ॥ १ ॥ एतत्तुर्यमफेनमेतदखिलं संमर्द्य संचूर्णयेद्धत्तूरच्छदजै रसैश्च मतिमान्कुर्यान्मरीचाकृतिम् । दत्ता सा ग्रहणीगदं सरुधिरं सामं सशूलं चिरातीसारं विनिहन्ति जूर्तिसहितं तीव्रां विषूचीमपि ॥ २ ॥ दुःसाध्यामपि बिम्बसीं परिहरेदुक्तानुपानैरयं नास्त्रा तु ग्रहणीमतङ्गजमदध्वंसीभकण्ठीरवः ॥ ३ ॥ इति ग्रहणीगजकेसरी रसः । अथ रसपर्पटी—शुद्धपारदगन्धाभ्यां कृता पर्पटिका नृणाम् । निहन्ति ग्रहणीं क्षौद्रयुक्ता पथ्यभुजां भृशम् ॥ १ ॥ इति रसपर्पटी । अथ पञ्चामृतपर्पटीरसः—लोहाभार्करसं समं द्विगुणितं गन्धं पचेत्कोलिकाकाष्ठाभौ मृदुले

निधाय सकलं लोहस्य पात्रे भिषक् । सर्वं गोमयमण्डले विनिहिते रम्भादले
विन्यसेत्तस्योर्ध्वं कदलीदलं द्रुततरं वैद्येश्वरो विन्यसेत् ॥ १ ॥ स्यात्पञ्चामृत-
पर्पटी ग्रहणिकायक्षमातिसारज्वरस्त्रीरूपपाण्डुगराम्लपित्तगुदजक्षुन्मान्द्यविध्वं-
सिनी ॥ २ ॥ ग्रहण्यामनुपानंहि हिङ्गुसैन्धवजीरकम् । जीरकं पाण्डुगरयोरित-
रेषु स्वयुक्तितः ॥ ३ ॥ इति पञ्चामृतपर्पटीरसः । अथ कनकसुन्दररसः—
मरीचबलिहिङ्गुलैर्गैरलपिप्पलीटङ्गणैः सुवर्णभवबीजकैः समलवैर्दिनार्धाव-
धि । जयारसविमर्दितैः कनकसुन्दरः सुन्दरि स्मृतो ग्रहणिकाज्वरातिसृतिव-
ह्निमान्द्यापहः ॥ १ ॥ इति कनकसुन्दररसः । अथ शङ्खवटी—चिञ्चाक्षार-
पलं पटुव्रजपलं निम्बूरसे कल्कितं तस्मिन्शङ्खपलं प्रतप्तमसकृन्निर्वाप्य शीर्णा-
वधि । हिङ्गुव्योषपलं रसामृतबलीन्निक्षिप्य निष्कांशकान्बद्ध्वा शङ्खवटी
क्षयग्रहणिकारूपक्तिशूलादिषु ॥ १ ॥ इति शङ्खवटी । अथाग्निसूनुरसः—
भागो दग्धकपर्देकस्य च तथा शङ्खस्य भागद्वयं भागो गन्धकसूतयोर्मिलि-
तयोः पिष्ट्वा मरीचादपि । भागस्य त्रितयं नियोज्य सकलं निम्बूरसे चूर्णितं
नाम्ना वह्निमुतो रसोऽयमचिरान्मान्द्यं जयेद्दास्य ॥ १ ॥ घृतेन खण्डात्सह
भक्षितेन क्षीणान्नरान्द्वस्तिसमान्करोति । समागधीचूर्णघृतेन लीढ्वा नरः प्र-
मुञ्चेद्ग्रहणीविकारान् ॥ २ ॥ शोषज्वरारोचकशूलगुल्मान्पाण्डूदराशौग्रहणी-
विकारान् । तक्रानुपानो जयति प्रमेहान्युक्त्वा प्रयुक्तोऽग्निसुतो रसेन्द्रः ॥ ३ ॥
इत्यग्निसूनुरसः ॥ अथाग्निसूतराजो रसः—रसबलिसमभागं तुल्यहि-
ङ्गूलयुक्तं द्विगुणकनकबीजं नागफेनेन तुल्यम् । सकलविहितचूर्णं भावयेद्भृ-
ङ्गनीरैर्ग्रहणिजलधिशोषे सूतराजो ह्यगस्तिः ॥ १ ॥ त्रिकटुकमधुयुक्तः सर्व-
वान्ति च शूलं कफपवनविकारं वह्निमान्द्यं च निद्राम् । घृतमरिचयुतोऽयं
गुञ्जमात्रः प्रवाही हरति षडतिसाराक्षीरजातीफलेन ॥ २ ॥ इत्यग्निसूत-
राजो रसः ॥ अथ क्षारताम्ररसः—शङ्खक्षारार्कभूतिं च वराटं लोहभस्म-
कम् । अयोमलं यवक्षारं टङ्गणक्षारमेव च ॥ १ ॥ त्रिकटुं सैन्धवं तुल्यं भृङ्गतो-
येन मर्दयेत् । आटरुषरसैर्मर्द्यमाद्रकस्वरसेन च ॥ २ ॥ चणमात्रां वर्टी
कृत्वा रसोऽयं क्षारताम्रकः । श्वासे कासे प्रतिश्याये पुराणज्वरपीडिते ॥ ३ ॥
मन्दाग्नौ ग्रहणीदोषे त्वनुपानं यथोचितम् । सेवयेत्ससरात्रेण नाशयेन्नात्र
संशयः ॥ ४ ॥ चिरकालानुबन्धे च सेवयेन्मण्डलावधि । तत्तद्व्याधिहरं पथ्यं
नियमेन समाचरेत् ॥ ५ ॥ इति क्षारताम्ररसः ॥ इति रसाः ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

सुदृषष्टिकशाली च आढकी माक्षिकं तथा । छाग्याः पयो दधि घृतं नव-
नीतं कपित्थकम् ॥ १ ॥ निःसारं दधि गोर्बिल्वं रम्भायाः कुसुमं फलम् ।
दाडिमं लाजकृन्मण्डः शृङ्गाटं क्षुद्रमत्स्यकः ॥ २ ॥ एणतित्तिरलावानां श-

शानां क्रव्यमेव च । ग्रहण्यामातुरे पथ्यं कथितं मुनिभिर्हितम् ॥ ३ ॥ पि-
च्छिलानि कठोराणि गुरुण्यन्नानि यानि च । आमकृन्ति न सेव्यानि ग्रहणी-
रोगिभिः क्वचित् ॥ ४ ॥ इति ग्रहणीचिकित्सा ॥

अथार्शोरोगनिदानम् ।

अरिवल्लाणिनो मांसकीलका विशसन्ति यत् । अर्शांसि तस्मादुच्यन्ते
गुदमार्गनिरोधतः ॥

पृथग्दोषैः समस्तैश्च शोणितात्सहजानि च । अर्शांसि षट्प्रकाराणि विद्या-
द्गुदवलित्रये ॥ १ ॥

अथार्शसां स्वरूपमाह—

दोषास्त्वङ्मांसमेदांसि संदूष्य विविधाकृतीन् ।

मांसाङ्कुरानपानादौ कुर्वन्त्यर्शांसि ताञ्जगुः ॥ १ ॥

अथार्शसां हेतुमाह ।

कषायकटुतिक्तानि रुक्षशीतलघूनि च । प्रमिताल्पाशनं तीक्ष्णं मद्यं मैथु-
नसेवनम् ॥ १ ॥ लङ्घनं देशकालौ च शीतौ व्यायामकर्म च । शोको वा-
तातपस्पर्शो हेतुर्वातार्शसां मतः ॥ २ ॥ कट्वम्ललवणोष्णानि व्यायामाद्व्यात-
पप्रभाः । देशकालावशिशिरौ क्रोधो मद्यमसूयनम् ॥ ३ ॥ विदाहि तीक्ष्ण-
मुष्णं च सर्वं पानान्नभेषजम् । पित्तोल्बणानां विज्ञेयः प्रकोपे हेतुरर्शसाम् ॥
४ ॥ मधुरस्निग्धशीतानि लवणाम्लगुरुणि च । अव्यायामदिवास्वप्नशय्या-
सनसुखे रतिः ॥ ५ ॥ प्राग्वातसेवा शीतौ च देशकालावचिन्तनम् । श्लैष्मि-
काणां समुद्दिष्टमेत्कारणमर्शसाम् ॥ ६ ॥ हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्गुदोल्बणानि
च । सर्वो हेतुस्त्रिदोषाणां सहजैर्लक्षणैः समम् ॥ ७ ॥

अथार्शसां पूर्वरूपमाह ।

विष्टम्भोऽङ्गस्य दौर्बल्यं कुक्षेराटोप एव च । काश्यमुद्गारबाहुल्यं सक्थिसा-
दोऽल्पविट्कता ॥ १ ॥ ग्रहणीरोगपाण्डूर्तिराशङ्का चोदरस्य च । पूर्वरूपाणि
निर्दिष्टान्यर्शसामभिवृद्धये ॥ २ ॥

अथ वातार्शसो लक्षणमाह ।

गुदाङ्कुरा बह्वनिलाः शुष्काश्चिमिचिमान्विताः । म्लानाः श्यावारुणाः स्त-
ब्धा विशदाः परुषाः खराः ॥ १ ॥ मिथोविसदृशा वक्रास्तीक्ष्णा विस्फुटिता-
ननाः । बिम्बीकर्कन्धूखर्जूरकार्पासीफलसंनिभाः ॥ २ ॥ केचित्कदम्बपुष्पाभाः
केचित्सिद्धार्थकोपमाः । शिरःपार्श्वसकटयूरुवङ्गणाम्यधिकव्यथाः ॥ ३ ॥ क्ष-
वथूद्गारविष्टम्भहृद्ग्रहरोचकप्रदाः । कासश्वासाग्निवैषम्यकर्णनादभ्रमावहाः
॥ ४ ॥ तैरातो ग्रथितं स्तोकं सशब्दं सप्रवाहिकम् । रुक्फेनपिच्छानुगतं वि-

बद्धमुपवेश्यते ॥ ५ ॥ कृष्णत्वङ्मूत्रविण्मूत्रनेत्रवक्त्रश्च जायते । गुल्मप्लीहोद-
राष्टीलासंभवस्तत एव च ॥ ६ ॥

अथ पित्ताशोर्लक्षणम् ।

पित्तोत्तरा नीलमुखा रक्तपीतासितप्रभाः । तन्वस्त्राविणो विस्त्रास्तनवो
मृदवः श्लथाः ॥ १ ॥ शुक्रजिह्वायकृत्खण्डजलौकावक्त्रसंनिभाः । दाहपाक-
ज्वरस्वेदतृणमूर्छारतिमोहदाः ॥ २ ॥ सोष्माणो द्रवनीलोष्णपीतरक्तामवर्चसः ।
यवमध्या हरिपीतहारिद्रवङ्गखादयः ॥ ३ ॥

अथ कफाशोर्लक्षणम् ।

श्लेष्मोल्बणा महामूला घना मन्दरुजः सिताः । उत्सन्नोपचिताः स्निग्धाः
स्तब्धवृत्तगुरुस्थिराः ॥ १ ॥ पिच्छिलाः स्तिमिताः श्लक्ष्णाः कण्ठाद्याः स्पर्श-
नप्रियाः । करीरपनसास्थ्याभास्तथा गोस्तनसंनिभाः ॥ २ ॥ वङ्गणानाहिनः
प्रायुबस्तिनाभ्यवकर्षिणः । सकासश्वासहृल्लासप्रसेकारुचिपीनसाः ॥ ३ ॥ मे-
हकृच्छ्रशिरोजाड्यशिशिरज्वरकारिणः । क्लेश्याग्निमार्दवच्छर्दिरामप्रायविका-
रदाः ॥ ४ ॥ वसाभाः सकफप्राज्यपुरीषाः सप्रवाहिकाः । न स्त्रवन्ति न
भिद्यन्ते पाण्डुस्निग्धत्वगादयः ॥ ५ ॥

अथ त्रिदोषजसहजार्शोर्लक्षणम् ।

सर्वैः सर्वात्मकान्याहुर्लक्षणैः सहजानि च ॥ १ ॥

अथ रक्ताशोर्लक्षणम् ।

रक्तोल्बणा गुदे कीलाः पित्ताकृतिसमन्विताः । वटप्ररोहसदृशा गुञ्जावि-
डुमसंनिभाः ॥ १ ॥ तेऽत्यर्थं दुष्टमुष्णं च गाढविट्प्रपीडिताः । स्त्रवन्ति स-
हसा रक्तं तस्य चातिप्रवृत्तितः ॥ २ ॥ भेकाभः पीड्यते दुःखैः शोणितक्षय-
संभवैः । हीनवर्णबलोत्साहो हतौजाः कलुषेन्द्रियः । विद श्यावं कठिनं रुक्ष-
मधो वायुर्न गच्छति ॥ ३ ॥

अथ रक्ताशोसि वातादीनामनुबन्धमाह ।

तनु चारुणवर्णं च फेनिलं चासृगर्शसाम् । कटयूरुगुदशूलं च दौर्बल्यं
यदि चाऽधिकम् ॥ १ ॥ तत्रानुबन्धो वातस्य हेतुर्यदि च रुक्षणम् । शिथिलं
श्वेतपीतं च विद स्निग्धं गुरु शीतलम् ॥ २ ॥ यद्यर्शसां घनं चासृक्तन्तुमत्पा-
ण्डुपिच्छिलम् । गुदं सपिच्छं स्तिमितं गुरु स्निग्धं च कारणम् । श्लेष्मानु-
बन्धो विज्ञेयस्तत्र रक्ताशोसां बुधैः ॥ ३ ॥

अथ सर्वदोषकोपित्वमाह ।

पञ्चात्मा मारुतः पित्तं कफो गुदवलित्रये । सर्वे एव प्रकृप्यन्ति गुदजानां
समुद्भवे ॥ १ ॥ तस्मादर्शोसि दुःखानि बहुव्याधिकराणि च । सर्वदेहोपता-
पीनि प्रायः कृच्छ्रतमानि च ॥ २ ॥

सुखसाध्यत्वं-बाह्यायां तु वलौ जातान्येकदोषोल्बणानि च । अर्शांसि
सुखसाध्यानि न चिरोत्पतितानि च ॥ १ ॥

अथ कृच्छ्रसाध्यान्याह ।

द्रवजानि द्वितीयायां वलौ यान्याश्रितानि च । कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहुः
परिसंवत्सराणि च ॥ १ ॥

अथासाध्यान्याह ।

सहजानि त्रिदोषाणि यानि चाभ्यन्तरां वलिम् । जायन्तेऽर्शांसि संश्रित्य
तान्यसाध्यानि निर्दिशेत् ॥ १ ॥ शेषत्वादायुषस्तानि चतुष्पादसमन्विते ।
याप्यन्ते दीप्तकायाग्नेः प्रत्याख्येयान्यतोऽन्यथा ॥ २ ॥

अथोपद्रवादसाध्यत्वमाह ।

हस्ते पादे मुखे नाभ्यां गुदे वृषणयोस्तथा । शोथो हृत्पार्श्वशूलं च यस्या-
साध्योर्शसो हि सः ॥ १ ॥ हृत्पार्श्वशूलसंमोहौ छर्दिरङ्गस्य रुग्णवरः । तृष्णा
गुदस्य पाकश्च निहन्युर्गुदजातुरम् ॥ २ ॥ तृष्णारोचकशूलार्तमतिप्रसूतशो-
णितम् । शोथातीसारसंयुक्तमर्शांसि क्षपयन्ति हि ॥ ३ ॥

अथ स्थानान्तरेऽर्शांस्याह ।

मेढ्रादिष्वपि लक्ष्यन्ते यथास्वं नाभिजान्यपि । गण्डूपदास्यरूपाणि पि-
च्छिलानि मृदूनि च ॥ १ ॥

अथ चर्मकीललक्षणमाह ।

व्यानो गृहीत्वा श्लेष्माणं करोत्यर्शस्त्वचो बहिः । कीलोपमं स्थिरखरं च-
र्मकीलं तु तं विदुः ॥ १ ॥

अथ तस्यैव वातादिभेदेन लक्षणमाह ।

वातेन तोदः पाहृष्यं पित्तादसितरक्तता । श्लेष्मणा स्निग्धता तस्य अथि-
तत्वं सवर्णता ॥ १ ॥

अथार्शश्चिकित्सां व्याख्यास्यामः ।

स्नेहस्वेदादयो वाते पित्ते स्यू रचनादयः । कफे वान्त्यादयोऽर्शःसु मिश्रे
मिश्रा प्रतिक्रिया । पित्तवद्रक्तजे कार्यः प्रतीकारोऽर्शसि ध्रुवम् ॥ १ ॥ अ-
र्शोऽतिसारग्रहणीविकाराः प्रायेण चान्योन्यनिदानभूताः । सन्नेऽनले सन्ति
न सन्ति दीप्ते रक्षेदतस्तेषु विशेषतोऽग्निम् ॥ २ ॥ दुर्नाम्नां साधनोपायश्च-
तुर्धा परिकीर्तितः । भेषजक्षारशस्त्राग्निसाध्यत्वं याप्यमुच्यते ॥ ३ ॥

अथ तिलादिमोदकः ।

तिलभल्लातकं पथ्या गुडश्चेति समांशकम् । दुर्नामन्वासकासघ्नं ह्रीहपाण्डु-
ज्वरापहम् ॥ १ ॥ इति तिलादिमोदकः ।

अथ मरिचादिमोदकः ।

मरिचमहौषधचित्रकसूरणभागा यथोत्तरं द्विगुणाः । सर्वसमो गुडभागः सेव्योऽयं मोदकः प्रसिद्धफलः ॥ १ ॥ इति मरिचादिमोदकः ।

अथ प्राणदो मोदकः ।

तालीसज्वलनोषणाः सचविकास्तुल्या द्विभागा भवेत्कृष्णा मूलसमन्विता त्रिपलिका शुण्ठी चतुर्जातकम् । स्यान्मुष्टिप्रमितं गुडत्रिगुणितैरेभिः कृता मोदकाः कासश्वासगदाम्निमान्द्यगुदजङ्घीह्रप्रमेहापहाः ॥ १ ॥ इति प्राणदो मोदकः ॥

अथ काङ्कायनगुटिका ।

पथ्यादलस्य पलपञ्चकमेकमेवमेकं पलं तु मरिचादपि जीरकस्य । कृष्णा-तदुद्भवजटाचविकाग्निशुण्ठ्यः कृष्णादिपञ्चकमिदं पलतः प्रवृद्धम् ॥ १ ॥ पलाष्टभल्लातकसंप्रयुक्तं कन्दस्त्वरूपकरफलाद्विगुणः प्रकल्प्यः । स्याद्यावशूक-कुडवार्धमतः समस्तैर्यौज्यो गुडो द्विगुणितो वटकीकृतश्च ॥ २ ॥ काङ्कायनेन मुनिना वटकः किलायमुक्तः प्रजाहिततमेन गुदामयघ्नः । क्षाराग्निशस्त्रपतनैरपि ये न सिद्धाः सिध्यन्त्यनेन वटकेन गुदामयास्ते ॥ ३ ॥ इति काङ्का-यनगुटिका ।

अथ सूरणमोदकः ।

चित्रकस्य पलं त्वेकं द्विपलं सूरणस्य च । पलाधं नागरस्यापि मरिचं को-लमात्रकम् ॥ १ ॥ भल्लातकं कणामूलं विडङ्गं त्रिफला कणा । तालीससहि-तान्सर्वानक्षमात्रान्प्रयोजयेत् ॥ २ ॥ द्वे पले वृद्धदारस्य तालमूल्याः पलं भवेत् । त्वगेला मरिचांशा च सर्वानेकत्र चूर्णयेत् ॥ ३ ॥ गुडेन मर्दयित्वा तु द्विगुणेनेह बुद्धिमान् । मोदकः सूरणो नाम त्वक्षमात्रप्रमाणतः ॥ ४ ॥ उप-युक्तो निहन्त्याशु गुदकीलान्न संशयः । अग्निवृद्धिकरः पुंसां सेव्यमानो महा-गुणः ॥ ५ ॥ अथ द्वितीयः—शुष्कात्सूरणकन्दतोऽर्धमिलितं व्योषं तथा चित्रकं श्रेष्ठाजीरकरामठं समलवं दीप्याजमोदान्वितम् । सर्वस्याङ्गिकसिन्धुजं परिभवेन्निम्बुद्वैर्वासरं सिद्धः सूरणमोदको गदहरः श्रेष्ठो भवेत्प्राणिनाम् ॥ १ ॥ शूलं संग्रहणीगदं त्वत्तिष्ठति दुष्टां प्रवाहीं जयेद्दीप्ताग्निं कुरुते बलं वितनुते गुल्मप्रणाशं तथा । अर्शस्युद्धतमारुतामयहरो बाले च वृद्धे हितो गर्भिण्यां च न शस्यते न निपुणैर्नो रक्तपित्तेऽपि च ॥ २ ॥ इति सूरणमोदकः ।

अथ सूरणपुटपाकः ।

मृत्तितं सौरणं कन्दं पक्त्वाऽग्नौ पुटपाकवत् । दद्यात्सतैललवणं दुर्नामवि-निवृत्तये ॥ १ ॥ सौरणं कन्दमादाय पुटपाकेन पाचयेत् सतैलगुडसंयुक्तो रसश्चाशौविकारनुत् ॥ २ ॥ इति सूरणपुटपाकः ।

अथ बाहुशालगुडः ।

इन्द्रवारुणिका मुस्ता शुण्ठी दन्ती हरीतकी । त्रिवृत्सटी विडङ्गानि गो-
क्षुरश्चित्रकस्तथा ॥ १ ॥ तेजोह्वा च द्विकर्षाणि पृथग्द्रव्याणि कारयेत् । सूर-
णस्य पलान्यष्टौ वृद्धदारश्चतुष्पलम् ॥ २ ॥ चतुष्पलं स्याद्भल्लातं काथयेत्सर्व-
मेकतः । जलद्रोणे चतुर्थांशं गृहीयात्काथमुत्तमम् ॥ ३ ॥ काथ्यद्रव्यान्निगु-
णितं गुडं क्षिप्त्वा पुनः पचेत् । सम्यक्पक्वं च तं ज्ञात्वा चूर्णान्येतानि दाप-
येत् ॥ ४ ॥ चित्रकस्त्रिवृता दन्ती तेजोह्वा पलिकाः पृथक् । पृथक्चित्रपलिकाः
कार्या व्योषैलामरिचत्वचः ॥ ५ ॥ निक्षिपेन्मधु शीते च तस्मिन्प्रस्थप्रमाण-
कम् । एवं सिद्धो भवेच्छ्रीमान्बाहुशालो गुडः शुभः ॥ ६ ॥ जयेदशींसि
सर्वाणि गुल्मान्वातोदरं तथा । आमवातं प्रतिश्यायं ग्रहणीक्षयपीनसान् ।
हलीमकं पाण्डुरोगं प्रमेहं च रसायनम् ॥ ७ ॥ इति बाहुशालगुडः ।

अथागस्तिमोदकः ।

हरीतकीनां त्रिपलं त्रीण्यान्नाणि कटुत्रिकम् । त्वक्पत्रकं चार्धपलं गुडस्या-
ष्टपलं मतम् ॥ १ ॥ अगस्तिमोदकानेतान्कल्पितान्परिभक्षयेत् । शोफाशौग्र-
हणीदोषकासोदावर्तनाशनान् ॥ २ ॥ इत्यगस्तिमोदकः ।

अथ लघुसूरणमोदकः ।

कणामरीचविश्वाम्निसूरणैस्तु गुडैः क्रमात् । द्विगुणैर्मोदकोऽशौघः परं पा-
चनदीपनः ॥ १ ॥ इति लघुसूरणमोदकः ।

अथ बृहद्भल्लातकलेहः ।

सुपकभल्लातफलानि सम्यग्द्विधा विधायाऽऽढकसंमितानि । विपाच्य तो-
येन चतुर्गुणेन चतुर्थशेषे व्यपनीय तानि ॥ १ ॥ पुनः पचेत्क्षीरचतुर्गुणेन
वृतांशयुक्तेन घनं यथा स्यात् । सितोपला षोडशभिः पलैश्च विमर्द्य संस्थाप्य
दिनानि सप्त ॥ २ ॥ ततः प्रयोज्याग्निबलेन मात्रां जयेद्विकारानखिलान्गुदो-
त्थान् । कचान्सुनीलान्वनकुञ्जिताग्रान्सुपर्णदृष्टिं च शशाङ्ककान्तिम् ॥ ३ ॥
जवं हयानां बलमुत्तमं च स्वरं मयूरस्य हुताशदीप्तिम् । स्त्रीवल्लभत्वं विवि-
धप्रभावं नीरोगतां द्वित्रिशतायुषं च ॥ ४ ॥ न चान्नपाने परिहार्यमस्ति न
चाऽऽतपे नाध्वनि मैथुने च । प्रयोगकाले सकलामयानां राजाधिराजश्च र-
सायनानाम् ॥ ५ ॥ इति बृहद्भल्लातकलेहः ।

अथार्शसि शर्करासवः ।

दुरालभायाः प्रस्थं च चित्रकस्य वृषस्य च । पथ्यामलकयोश्चैव पाठाया
नागरस्य च ॥ १ ॥ दद्याद्विपलिकान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् । पादशेषे रसे
पूते सुशीते शर्कराशतम् ॥ २ ॥ दत्त्वा कुम्भे दृढे स्थाप्यं मासार्धं घृतभा-

जने । प्रलिप्ते पिप्पलीचव्यप्रियङ्गुमधुसर्पिषा ॥ ३ ॥ तस्य मात्रां पिबेत्काले शार्करस्य यथाबलम् । अशींसि ग्रहणीरोगमुदावर्तमरोचकम् ॥ ४ ॥ शकृन्मूत्रानिलोद्गारविवन्धानग्निमार्दवम् । हृद्रोगं पाण्डुरोगं च सर्वरोगान्प्रणाशयेत् ॥ ५ ॥ इति शर्करासवः ॥

अथ द्राक्षासवः ।

द्राक्षापलशतं दत्त्वा चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् । द्रोणशेषे रसे तस्मिन्पूतशेषे प्रदापयेत् ॥ १ ॥ शर्करायास्तुलां दत्त्वा तत्तुल्यं मधुनस्तथा । पलानि सप्त धातक्याः स्थापयेदाज्यभाजने ॥ २ ॥ जातीलवङ्गकङ्कोलवलीफलचन्दनैः । कृष्णा त्रिगन्धसंयुक्ता भागैरर्धपलांशकैः ॥ ३ ॥ त्रिःसप्ताहान्नवेत्पेया तस्य मात्रा यथाबलम् । नाश्ना द्राक्षासवो ह्येष नाशयेद्बुदकीलकान् ॥ ४ ॥ शोषारोचकहृत्पाण्डुरक्तपित्तभगंदरान् । गुल्मोदरकृमिग्रन्थिक्षतशोषज्वरान्तकृत् । वातपित्तप्रशमनः शस्तश्च बलवर्णकृत् ॥ ५ ॥ इति द्राक्षासवः ।

अथ समशर्करचूर्णम् ।

शुण्ठीकणामरिचनागदलत्वगोलं चूर्णीकृतं क्रमविवर्धितमूर्ध्वमन्यात् । खादेदिदं समसितं गुदजाग्निमान्द्यगुल्मोदरश्चयथुपाण्डुगुदोद्भवेषु ॥ १ ॥ इति समशर्करचूर्णम् ॥

अथ व्योषाद्यं चूर्णम् ।

व्योषाश्वरूपकरविडङ्गतिलाभयानां चूर्णं गुडेन सहितं सततं प्रयोज्यम् । दुर्नामशोफगरकुष्ठशकृद्विबन्धमग्नेर्जयत्यबलतां कृमिपाण्डुतां च ॥ १ ॥ चूर्णे चूर्णसमो देयो मोदके द्विगुणो गुडः ॥ गुडव्योषवरावेष्टतिलारूपकरचित्रकैः । अशींसि हन्ति गुटिका त्वग्विकारं च शीलिता ॥ २ ॥ गुडेन शुण्ठीमथवोपकुल्यां पथ्यां तृतीयामथ दाडिमं च ॥ आमेष्वजीर्णेषु गुदामयेषु वर्चोविबन्धेषु च नित्यमद्यात् ॥ ३ ॥ शर्करया युतसूरणकन्दः कुञ्जरकेसरमेव तथाऽन्यत् । क्षौद्रयुतं नवनीतमथो वा सूदनकारणमर्शस एव ॥ ४ ॥ समूलपत्रकोकम्बं पलद्वयमितं शुभम् । भल्लातफलमज्जाया मरीचस्य पलं पलम् ॥ ५ ॥ एतच्चूर्णीकृतं सूक्ष्मं भक्षयेत्कर्षसंमितम् । अशींङ्कुरान्निहन्त्याशु सबाह्याभ्यन्तरानपि ॥ ६ ॥ दुःस्पर्शकेन बिल्वेन यवान्या नागरेण वा । एकैकेनापि संयुक्ता पाठा हन्त्यर्शसां रुजम् ॥ ७ ॥ अपामार्गस्य बीजानां कल्कं तण्डुलवारिणा । पीतं रक्तार्शसां नाशं कुरुते नात्र संशयः ॥ ८ ॥ चन्दनकिराततिक्तकथन्वयवासाः सनागराः कथिताः । रक्तार्शसां प्रशमना दार्वीत्वगुशीरनिम्बाश्च ॥ ९ ॥ विड्विबन्धे हितं तक्रं यवानीविश्वसंयुतम् । न प्ररोहन्ति गुदजाः प्रायस्तक्रसमाहताः ॥ १० ॥ यो जातो गोरसः क्षीराद्वह्निमूलावचूर्णितात् । पिबंस्तेमेव तेनैव भुञ्जानो गुदजान्जयते ॥ ११ ॥ पिबेदहरहस्तक्रं निरञ्जो वा

प्रकामतः । सप्ताहं वा दशाहं वा मासार्धं मासमेव वा ॥ १२ ॥ बलकालवि-
कारज्ञो भिषक् तक्रं प्रयोजयेत् । हरीतकीं तक्रयुतां त्रिफलां वा प्रयोजयेत्
॥ १३ ॥ चित्रकं हपुषां हिङ्गु दद्याद्वा तक्रसंयुतम् । पञ्चकोलकयुक्तं वा तक्रे-
णैव प्रदापयेत् ॥ १४ ॥ त्वचं चित्रकमूलस्य पिष्ट्वा कुम्भं प्रलेपयेत् । तक्रं वा
दधि वा तत्र जातमशौहरं पिबेत् । तत्रेणाशौंसि हन्यन्ते मुसलीकटुकाग्निना
॥ १५ ॥ अरलुत्वगग्निसमुरेन्द्रयवांश्चिरिबिल्वससैन्धवशुण्ठियुतान् । मथितेन
पिबेद्यदि सप्तदिनं गुदजा निपतन्ति समूलबलाः ॥ १६ ॥

अथ हपुषादितक्रारिष्टः ।

हपुषा कुञ्चिका धान्यमजाजी कारवी शटी । पिप्पली पिप्पलीमूलं चि-
त्रको गजपिप्पली ॥ १ ॥ यवानी चाजमोदा च तच्चूर्णं तक्रसंयुतम् । मन्दा-
म्लकटुकं विद्वान्स्थापयेद्भृतभाजने ॥ २ ॥ व्यक्ताम्लकटुकं जातं तक्रारिष्टं
कटुप्रियम् । प्रपिबेन्मात्रया काले त्वन्नस्य तृषितस्तथा ॥ ३ ॥ दीपनं रोचनं
वर्ण्यं कफवातानुलोमनम् । गुदश्चयथुकण्ड्वार्तिनाशनं बलवर्धनम् ॥ ४ ॥
इति हपुषादितक्रारिष्टः ॥

अथ घृतानि ।

अथ चव्यादिघृतम्—चव्यं त्रिकटुकं पाठा क्षारं कुस्तुम्बरूणि च । य-
वानी पिप्पलीमूलमुभे च बिडसैन्धवे ॥ १ ॥ चित्रकं बिल्वमभयां पिष्ट्वा स-
र्पिर्विपाचयेत् । शकृद्वातानुलोमार्थं जले दक्षि चतुर्गुणे ॥ २ ॥ प्रवाहिकां गुद-
अंशं मूत्रकृच्छ्रं परिस्रवम् । गुदवङ्क्षणाशूलं च घृतमेतद्व्यपोहति ॥ ३ ॥
इति चव्यादिघृतम् । अथ शुण्ठीघृतम्—त्रिंशत्फलानि शुण्ठीनां जलद्वारेण
विपाचयेत् । तेन पादावशेषेण कल्के तासां पचेद्भृतम् ॥ १ ॥ दुर्नामश्वास
कासघ्नं फीहपाण्ड्वामयापहम् । विषमज्वरशान्त्यर्थं तृष्णारोचकनाशनम् ॥ २ ॥
शुण्ठीघृतमिदं ख्यातं कृष्णात्रेयेण पूजितम् । नागरेण जले पक्वं बस्तिकुक्षिग-
दापहम् ॥ ३ ॥ इति शुण्ठीघृतम् । अथ लघुचव्यादिघृतम्—चव्यति-
क्ताकलिङ्गानि शताह्वा लवणानि च । सर्पिरशौविकारघ्नं ग्रहणीदीपनं परम्
॥ १ ॥ इति लघुचव्यादिघृतम् ॥ अथ हीबेरादिघृतम्—हीबेरमुत्पलं लोअं
समङ्गाचव्यचन्दनम् । पाठा सातिविषा बिल्वं धातकी देवदारु च ॥ १ ॥
दार्वीत्वङ्नागरं मांसी मुस्तं क्षारो यवाग्रजः । चित्रकश्चेति पेण्याणि चाङ्गेरी-
स्वरसे घृतम् ॥ २ ॥ एकत्र साधयेत्सर्वं तत्सर्पिः परमौषधम् । अशौतिसार-
ग्रहणीपाण्डुरोगे ज्वरेऽरुचौ ॥ ३ ॥ मूत्रकृच्छ्रे गुदअंशे बस्त्यानाहप्रवाहिके ।
पिच्छास्रावेऽर्शसां शूले योज्यमेतन्निदोषहत् ॥ ४ ॥ इति हीबेरघृतम् ।
इति घृतानि ॥

अथ लेपाः ।

आर्कं पयः सुधाकाण्डं कटुकालाबुपल्लवाः । करञ्जो बस्तमूत्रेण लेपनं श्रेष्ठ-
मर्शसाम् ॥ १ ॥ सिन्धूत्थं देवदाल्याश्च बीजं काञ्जिकपेषितम् । गुदाङ्कुरा-
न्त्रलेपेन पातयत्यचलानपि ॥ २ ॥ कृष्णाशिरीषबीजाकक्षीरैः सामरसैन्धवैः ।
हरिद्राक्षविड्गुञ्जागोमूत्रैः पिप्पलीयुतैः ॥ ३ ॥ एतल्लेपत्रयं योज्यं शीघ्र-
मर्शोविनाशनम् । ज्योतिष्काबीजकल्केन लेपो रक्तार्शसां हितः ॥ ४ ॥ को-
शातकीरजोधर्षान्निपतन्ति गुदोद्भवाः । निशाकोशातकीचूर्णं सुक्पयः सैन्ध-
वान्वितम् । गोमूत्रेण समायुक्तं लेपो दुर्नामनाशनः ॥ ५ ॥ इति लेपाः ॥

अथ धूपः ।

वृकेशाः सर्पनिर्मोको वृषदंशस्य चर्म च । अर्कमूलं शमीपत्रमर्शोभ्यो धू-
पनं हितम् ॥ १ ॥ रालचूर्णस्य तैलेन सार्धपेण युतस्य च । धूमदानेन यु-
क्त्याऽशोक्तस्त्रावो निवर्तते ॥ २ ॥ गोधूमपिष्टं पलमेव हिङ्गु शाणार्धमारुक्-
रमब्धिसंख्यम् । स्याद्धूपदानाद्गुदशूलनाशः स्यात्संनिपातो गुदसंभवानाम् ॥
३ ॥ इति धूपः ।

अथ रसाः ।

अथ नित्योदितः—विषरविगगनायःसूतगन्धं समांशं समहुतभुगथाऽऽ-
र्द्रं कन्दकैः सप्तवारम् । प्रबलगुदजकीलं हन्ति नित्योदितोऽसौ नलहतिमल-
बन्धे मुद्गमात्रः ससर्पिः ॥ १ ॥ इति नित्योदितो रसः । अथार्शःकुठारो
रसः—भागः शुद्धरसस्य भागयुगलं गन्धस्य लोहाभ्रयोः षड्बिल्वाम्निहर्लो-
षणाभयरजोदन्ती च भागैः पृथक् । पञ्च स्युः स्फुटटङ्कणस्य च यवक्षारस्य
सिन्धूद्भवाद्भागाः पञ्च गवां जलं सुविमलं द्वात्रिंशदेतत्पचेत् ॥ खुरदुग्धं च
गवां जल्लावधि शनैः पिण्डीकृतं तद्भवेद्भौ माषौ गुदकीलकाननजटाछेदे कु-
ठारो रसः ॥ १ ॥ इत्यर्शःकुठारो रसः । इति रसाः ।

अथ पथ्यापथ्यम् ।

कुलित्था यवगोधूमाः शालयो रक्तभा हिताः । पुनर्नवा सूरणं च तक्रं
धात्री कपित्थकम् ॥ १ ॥ नवनीतं तु वास्तूकं पटोलं मरिचं तथा । मृगमां-
समजादुग्धं वृन्ताकं काञ्जिकं तथा ॥ २ ॥ अशोरोगे तु पथ्यानि मुनिभिः
कथितानि तु । वेगावरोधः स्त्री पृष्ठयानमुत्कटकासनम् ॥ यथास्वं दोषलं चात्र-
मर्शसः परिवर्जयेत् ॥ ३ ॥ इत्यर्शश्चिकित्सा समाप्ता ॥

अथाग्निमान्द्यम् ।

तत्र संनिकृष्टनिदानपूर्वकोदराग्निविकारानाह—

मन्दस्तीक्ष्णोऽथ विषमः समश्चेति चतुर्विधः । कफपित्तानिलाधिक्यात्तत्सा-
म्याज्जाठरोऽनलः ॥ १ ॥

अथ समविषमाद्यग्निलक्षणान्याह ।

समा समाग्नेरशिता मात्रा सम्यग्विपच्यते । स्वल्पाऽपि नैव मन्दाग्नेर्विषमा-
ग्नेस्तु देहिनः ॥ कदाचित्पच्यते सम्यक्कदाचिन्नैव पच्यते ॥ १ ॥ मात्राऽतिमात्राऽ-
प्यशिता सुखं यस्य विपच्यते । तीक्ष्णाग्निरिति तं विद्यात्समाग्निः श्रेष्ठ उच्यते
॥ २ ॥ विषमो वातजान्दोगांस्तीक्ष्णः पित्तनिमित्तजान् ॥ करोत्यग्निस्तथा
मन्दो विकारान्कफसंभवान् ॥ ३ ॥

अथैषां चिकित्सामाह ।

समस्य रक्षणं कार्यं विषमे वातनिग्रहः । तीक्ष्णे पित्तप्रतीकारो मन्दे श्ले-
ष्मविशोधनम् ॥ १ ॥ सममाग्निं भिषग्वक्षेदन्नपानैर्नृणां हितैः । मन्दं संवर्ध-
येदग्निं कटुतिक्तकषायकैः ॥ २ ॥ तीक्ष्णमाग्निं दधिक्षीरपायसैः समतां नयेत् ।
स्नेहाम्ललवणाद्यैश्च विषमाग्निमुपाचरेत् ॥ ३ ॥ जरणरुचकशुण्ठीपिप्पलीती-
क्ष्णवेह्लं सुलवणमजमोदाहिङ्गुपथ्येतिकर्षम् । पृथगथ पलमात्रं स्याद्वृच्चूर्ण-
मेषां जननमुदरवहेः पाचनं रेचनं च ॥ ४ ॥ इत्यग्निमान्द्यम् ।

अथ भस्मकलक्षणमाह ।

कफे क्षीणे यदा पित्तं स्वस्थाने मारुतानुगम् । तीव्रं प्रवर्तयत्यग्निं तदा तं
भस्मकं वदेत् ॥ १ ॥ कट्वादिरूक्षान्नभुजां नराणां क्षीणे कफे मारुतपित्तवृद्धौ ।
अतिप्रवृद्धः पवनान्वितोऽग्निः क्षणाद्रसं शोषयति प्रसह्य ॥ २ ॥ भुक्तं क्षणा-
द्भस्म करोति यस्मात्तस्मादयं भस्मकसंज्ञकोऽभूत् । तृड्दाहमूर्छाभ्रमकास-
शोफविट्शोषमोहश्रमकर्मकारी ॥ ३ ॥ तृड्दाहश्वासकासादीन्कृत्वैवात्यग्नि-
संभवान् । पक्त्वाऽन्नमाशु धात्वादीन्स क्षिप्रं नाशयेद्भुवम् ॥ ४ ॥

अथ चरकपाठे भस्मकः ।

नरे क्षीणकफे पित्तं कुपितं मारुतानुगम् । सोष्मणः पाचकस्थाने बलमग्नेः
प्रयच्छति ॥ १ ॥ तदा लब्धबलो देहं रूक्षयेत्साऽनिलोऽनलः । अभिभूय
पचत्यन्नं तैक्ष्ण्यादाशु मुहुर्मुहुः ॥ २ ॥ पक्त्वाऽन्नं स ततो धातून्शोणितादी-
न्पचत्यपि । ततो दौर्बल्यमातङ्कं मृत्युं चोपनयेत्परम् ॥ ३ ॥ भुक्तेन्ने लभते
शान्तिं जीर्णमात्रे प्रताम्यति । तृड्दाहकासमोहाः स्युर्व्याधयोऽत्यग्निसं-
भवाः ॥ ४ ॥

अथ भस्मकरोगनिदानचिकित्से ।

कफे क्षीणे यदा पित्तं स्वस्थाने मारुतानुगम् । तीव्रं प्रवर्तयेद्वह्निं तदा तं
भस्मकं वदेत् ॥ १ ॥ तृड्दाहश्वासमूर्छादीन्कृत्वैवात्यग्निसंभवान् । पक्त्वाऽ-
न्नमाशु धात्वादीन्स क्षिप्रं नाशयेत्तनुम् ॥ २ ॥ तं भस्मकं गुरुस्निग्धसान्द्र-
मण्डहिमादिभिः । अन्नपानैर्नयेच्छान्तिं पित्तघ्नैश्च विरेचनैः ॥ ३ ॥ अत्युद्धता-

अग्निशान्त्यै माहिषदधिदुग्धसर्पौषि । सेवेत वा यवागूं समधूच्छिष्टां ससर्पि-
ष्काम् ॥ ४ ॥ असकृत्पित्तहरणं पायसं प्रतिभोजने । श्यामात्रिवृद्विपकं वा
पयो दद्याद्विरेचनम् ॥ ५ ॥ यत्किञ्चिन्मधुरं मेध्यं श्लेष्मलं गुरु भोजनम् ।
सर्वं तदत्यग्निहितं भुक्त्वा प्रस्वपनं दिवा ॥ ६ ॥ कफे पूर्वं जिते पित्ते मारुते
चानलः समः । समधातोः पचत्यन्नं पुष्ट्यायुर्बलवर्धनः ॥ ७ ॥ आहारं पचति
शिखी दोषानाहारवर्जितः पचति । दोषक्षये च धातून्धातुक्षेप्ये तथा प्राणान्
॥ ८ ॥ मुहुर्मुहुर्जीर्णेऽपि भोज्यान्यस्योपहारयेत् । निरिन्धनोऽन्तरं लब्ध्वा
यथैनं न विपादयेत् ॥ ९ ॥ कोलास्थिमज्जकल्कस्तु पीतो वाप्युदकेन वै । अ-
चिराद्विनिहन्त्येवं प्रयोगो भस्मकं नृणाम् ॥ १० ॥ नारीक्षीरेण संपिष्य पि-
बेदौदुम्बरत्वचम् । ताभ्यां वा पायसं सिद्धं पिबेदत्यग्निशान्तये ॥ ११ ॥ सि-
ततण्डुलसितकलमक्षीरेण पायसं सिद्धम् । भुक्त्वा घृतेन पुरुषो द्वादश
दिवसान्बुभुक्षितो न भवेत् ॥ १२ ॥ विदारीस्वरसे क्षीरे पचेदष्टगुणे घृतम् ।
माहिषं जीवनीयेन कल्केनात्यग्निनाशनम् ॥ १३ ॥ इति भस्मकरोगनिदान-
चिकित्से ।

अथाजीर्णनिदानम् ।

अविपकोऽग्निमान्द्येन यो रसः स निगद्यते । रोगाणां प्रथमो हेतुः सर्वेषा-
मामसंज्ञया ॥ १ ॥ आमं विदग्धं विष्टग्धं कफपित्तानिलैस्त्रिभिः । अजीर्णं के-
चिदिच्छन्ति चतुर्थं रसशेषतः ॥ २ ॥ अजीर्णं पञ्चमं केचिन्निर्दोषं दिनपाकि
च । वदन्ति षष्ठं चाजीर्णं प्रकृतं प्रतिवासरम् ॥ ३ ॥

अथ तेषां कारणमाह ।

अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाच्च संधारणात्स्वप्नविपर्ययाच्च । कालेऽपि सात्स्यं
लघु चापि भुक्तमन्नं न पाकं भजते नरस्य ॥ १ ॥ ईर्ष्याभयक्रोधपरिभुतेन
लुब्धेन शुग्दैन्यनिपीडितेन । प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक्पचते न-
रस्य ॥ २ ॥ मात्रया चाभ्यवहृतं पथ्यं चान्नं न जीर्यते । चिन्ताशोकभयक्रोधदुः-
खशय्याप्रजागरैः ॥ ३ ॥ अजीर्णसामान्यलक्षणं—ग्लानिगौरवविष्टम्भभ्रममारु-
तमूढताः । विद्वबन्धोऽतिप्रवृत्तिर्वा सामान्याजीर्णलक्षणम् ॥ ४ ॥ आमाद्य-
जीर्णलक्षणानि—तत्राऽऽमे गुरुतोत्केदः शोफो गण्डाक्षिकूटयोः । उद्गारश्च
यथाभुक्तमविदग्धः प्रवर्तते ॥ ५ ॥ विदग्धे भ्रमतृणमूर्छाः पित्ताच्च विविधा
रुजः । उद्गारश्च सधूमांस्त्वः स्वेदो दाहश्च जायते ॥ ६ ॥ विष्टग्धे शूलमाध्मा-
नं विविधा वातवेदनाः । मलवाताप्रवृत्तिश्च मोहः स्तम्भोऽङ्गपीडनम् ॥ ७ ॥

अथ रसशेषलक्षणमाह ।

उद्गारशुद्धावपि भक्तकाङ्क्षा न जायते हृद्गुरुता च यस्य । रसावशेषेण च-
तुर्थमेतत्कचित्त्वजीर्णं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ १ ॥ रसशेषेऽन्नविद्वेषो हृदयाशु-

हृद्यरोचकौ । अजीर्णोपद्रवानाह—मूर्छा प्रलापो वमथुः प्रसेकः सदनं भ्रमः । उपद्रवा भवन्त्येते मरणं चात्यजीर्णतः ॥ २ ॥ यावत्संतिष्ठते तस्य दुष्टोऽप्य-
न्नरसो हृदि । तावन्मर्माणि भिद्यन्ते विषं पीतवतो यथा ॥ ३ ॥ अनात्मव-
न्तः पशुवद्भुजते येऽप्रमाणतः । रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवन्ति हि^१ ॥ ४ ॥
अजीर्णमामं विष्टब्धं विदग्धं यदुदीरितम् । विषूच्यलसकौ तस्मान्नवेच्चापि
विलम्बिका ॥ ५ ॥ अथ विषूचीमाह—सूचीभिरिव गात्राणि तुदन्संति-
ष्ठतेऽनिलः । यत्राजीर्णेन सा वैद्यैर्विषूचीति निगद्यते ॥ १ ॥ न तां परिमि-
ताहारा लभन्ते विदितागमाः । मूढास्तामजितात्मानो लभन्तेऽशनलोलुपाः
॥ २ ॥ मूर्छातिसारौ वमथुः पिपासा शूलभ्रमोद्वेष्टनजृम्भदाहाः । वैवर्ण्यकम्पौ
हृदये रुजश्च भवन्ति तस्यां शिरसश्च भेदः ॥ ३ ॥ अथालसकमाह—कुक्षिरा-
नह्यतेऽत्यर्थं प्रताम्येत् परिकूजति । निरुद्धो मारुतश्चैवं कुक्ष्यावुपरि धावति ॥ १ ॥
वातवर्चोनिरोधश्च यस्यात्यर्थं भवेदपि । तस्यालसकमाचष्टे तृष्णोद्धारौ तु यस्य
हि ॥ २ ॥ अथ विलम्बिकामाह—दुष्टं तु भुक्तं कफमारुताभ्यां प्रवर्तते
नोर्ध्वमधश्च यस्य । विलम्बिकां तां भृशदुश्चिकित्सामाचक्षते शास्त्रविदः पु-
राणाः ॥ १ ॥ अथाजीर्णजन्यामस्य कार्यान्तरमाह—यत्रस्थमामं विरु-
जेत्तमेव देशं विशेषेण विकारजातैः । दोषेण येनावततं शरीरं तल्लक्षणैराम-
समुद्भवैश्च ॥ १ ॥ विषूच्या असाध्यत्वमाह—यः श्यावदन्तौष्टनखोऽल्प-
संज्ञो वम्यर्दितोऽभ्यन्तरयातनेत्रः । क्षामस्वरः सर्वविमुक्तसंधिर्यायान्नरोऽसौ
पुनरागमाय ॥ १ ॥ जिह्वानाशोऽरतिः कम्पो मूत्राघातो विसंज्ञिता । अमी
ह्युपद्रवा घोरा विषूच्याः पञ्च दारुणाः ॥ २ ॥ अथ जीर्णाहारलक्षणमाह—
उद्गारशुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचितः । लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णा-
हारस्य लक्षणम् ॥ ३ ॥ इत्यजीर्णनिदानम् ।

अथाजीर्णचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

प्रायेणाऽऽहारवैषम्यादजीर्णं जायते नृणाम् । तन्मूलो रोगसंघातस्तद्विना-
शाद्विनश्यति ॥ १ ॥ तत्राऽऽमे वमनं कार्यं विदग्धे लङ्घनं हितम् । विष्टब्धे
स्वेदनं शस्तं रसशेषे शयीत च ॥ २ ॥ वचालवणतोयेन चान्तिरामे प्रश-
स्यते । धान्यनागरसिद्धं वा तोयं दद्याद्विचक्षणः । आमाजीर्णप्रशमनं शूलघ्नं
वस्तिशोधनम् ॥ ३ ॥ अन्नं विदग्धं तु नरस्य शीघ्रं शीताम्बुना वै परिपाक-
मेति । तदाऽस्य शैत्येन निहन्ति पित्तमाक्लेदिभावाच्च नयत्यधस्तात् ॥ ४ ॥
विष्टब्धे स्वेदनं कार्यं पेयं च लवणोदकम् । रसशेषे दिवा स्वापं लङ्घनं वात-
वर्जनम् ॥ ५ ॥ एरण्डतैले प्रविपाच्य पथ्यां खादेत्तदेवानु पिबेच्च तैलम् ।

१ स्वल्पं यदा दोषविवद्धमामं लीनं न तेजःपथमावृणोति । भवत्यजीर्णोऽपि तदा बुभुक्षा
सा मन्दबुद्धिं विषवन्निहन्ति ॥

स शूलविष्टम्भकृतान्विकारान्सर्वाञ्जयेत्पित्तकफानिलोत्थान् ॥ ६ ॥ आलिप्य जठरं प्राज्ञो हिङ्गुच्युषणसैन्धवैः । दिवा स्वापं प्रकुर्वीत सर्वाजीर्णप्रणाशनम् ॥ ७ ॥ व्यायामप्रमदाध्ववाहनरतान्कान्तानतीसारिणः शूलश्वासवतस्तृषापरिगतान्हिकामरुत्पीडितान् । क्षीणान्क्षीणकफान्निशान्मदहतान्मृच्छांस्तथाऽजीर्णिनो रात्रौ जागरितान्नरात्रिरशनान्कामं दिवा स्वापयेत् ॥ ८ ॥

अथ चूर्णानि ।

पथ्यापिप्पलिसंयुक्तं चूर्णं सौवर्चलं पिबेत् । मस्तुनोष्णोदकेनाथ मत्वा दोषगतिं भिषक् ॥ १ ॥ चतुर्विधमजीर्णं च मन्दानलमथारुचिम् । आध्मानं वातगुल्मं च शूलं चाऽऽशु विनाशयेत् ॥ २ ॥ इति पथ्यादिचूर्णम् । सिन्धूत्थपथ्यमगधोद्भववह्निचूर्णमुष्णाम्बुना पिबति यः खलु नष्टवह्निः । तस्याऽऽमिषेण सघृतेन सहान्नपानं भस्मीभवत्यशितमात्रमपि क्षणेन ॥ १ ॥ इति लघुवैश्वानरचूर्णम् । अथ हिङ्गाष्टकचूर्णम्—त्रिकटुकमजमोदा सैन्धवं जीरके द्वे समधरणधृतानामष्टमो हिङ्गुभागः । प्रथमकवलभोज्यः सर्पिषा चूर्णं एष जनयति जठराग्निं वातगुल्मं निहन्ति ॥ १ ॥ अन्यच्च—कर्षं हिङ्गुद्विकर्षं बिडमथ मरिचं सैन्धवं विश्वकृष्णादीप्याजीराजमोदासितजरणविभीताभया वेदकर्षाः । अष्टौ मार्कण्डिधान्योरथ बदरकपित्थोद्भवाः षोडश स्युः सर्वं लुङ्गोदकाद्रं हरति रुचिवधाध्मानबन्धाग्निसादान् ॥ १ ॥ इति हिङ्गवादिचूर्णम् । अथ भास्करलवणचूर्णम्—पिप्पली पिप्पलीमूलं धान्यकं कृष्णजीरकम् । सैन्धवं च बिडं चैव पत्रतालीसकेसरान् ॥ १ ॥ एषां द्विपलिकान्भागान्पञ्च सौवर्चलस्य च । मरीचाज्जिजुषुण्डीनामैकैकस्य पलं पलम् ॥ २ ॥ त्वगोला चार्धभागा स्यात्सामुद्रं कुडवद्वयम् । दाडिमं कुडवं चैव द्विपलं चाम्लवेतसम् ॥ ३ ॥ एतच्चूर्णीकृतं श्लक्ष्णं गन्धाढ्यममृतोपमम् । लवणं भास्करं नाम भास्करेण विनिर्मितम् ॥ ४ ॥ श्लेष्मत्रातं वातगुल्मं शूलं मन्दाद्वयरोचकम् । अन्यानपि निहन्त्याशु रोगाँल्लवणभास्करः ॥ ५ ॥

अथाग्निमुखचूर्णम् ।

हिङ्गुभागो भवेदेको वचा च द्विगुणा भवेत् । पिप्पली त्रिगुणा ज्ञेया शृङ्गबेरं चतुर्गुणम् ॥ १ ॥ यवानिका पञ्चगुणा षड्गुणा च हरीतकी । चित्रकः सप्तगुणितः कुष्ठं चाष्टगुणं भवेत् ॥ २ ॥ एतद्वातहरं चूर्णं पीतमात्रं प्रसन्नया । पिबेद्दन्ता मस्तुना वा सुरया कोष्णवारिणा ॥ ३ ॥ सोदावर्तमजीर्णं च प्लीहानमुदरं तथा । अङ्गानि यस्य शीर्यन्ते विषं वा येन भक्षितम् ॥ ४ ॥ अशौंहरो दीपनश्च शूलघ्नो गुल्मनाशनः । कासं श्वासं निहन्त्याशु तथैव क्षयनाशनः ॥ ५ ॥ चूर्णो ह्यग्निमुखो नाम्ना न कश्चित्प्रतिहन्यते ॥ ६ ॥ अथ सामुद्रायं चूर्णम्—सामुद्रसौवर्चलसैन्धवानि क्षारो यवानीमजमोदकं च ।

हरीतकीपिप्पलिशृङ्गवेरं हिङ्गुं विडङ्गं च समानि दद्यात् ॥ १ ॥ संचूर्ण्य चै-
तानि घृतप्लुतानि भुञ्जीत चाऽऽदौ कवलानि पञ्च । अजीर्णवातं गुदगुल्म-
वातं वातप्रमेहं विषमं च वातम् । विषूचिकाकामलपाण्डुरोगान्श्वासं च
कासं च जयेदवश्यम् ॥ २ ॥ अथ व्योषाद्यं चूर्णम्—व्योषैलाहिङ्गुभार्गी-
विडलवणयवक्षारपाठायवानीचिञ्चात्वग्भस्म चव्यं दहनकरिकणात्वक्पटुग्रन्थ-
जाजी । एतच्चूर्णं घृताढ्यं त्रिदिवसमशनाद्धन्यते रोगजातं विश्वं वैश्वानरोऽसौ
दहति सरभसं किं पुनर्भुक्तमन्नम् ॥ १ ॥ इति चूर्णानि ।

अथ गुटिकाः ।

संजीवनीगुटिका—विडङ्गं नागरं कृष्णा पथ्या वह्निर्विभीतकः । वचा
गुडूची भल्लातं विषं चात्र प्रयोजयेत् ॥ १ ॥ एतानि समभागानि गोमूत्रे-
णैव पेषयेत् । गुञ्जाभा गुटिकाः कार्या दद्यादार्द्रकजै रसैः ॥ २ ॥ एकामजी-
र्णयुक्तस्य द्वे विषूच्यां प्रदापयेत् । तिस्त्रो भुजङ्गदष्टस्य चतस्रः संनिपातिनः ।
गुटिका जीवनी नाम्ना संजीवयति मानवम् ॥ ३ ॥ इति संजीवनी गुटिका ।
अथ धनंजयवटी—जीरकं चित्रकं चव्यं ससुगन्धं वचात्वचौ । एलाकर्चू-
रहपुषा कारवी नागकेसरम् ॥ १ ॥ पृथक्कर्षमिता ह्येते मिसी कर्षार्धसं-
मिता । यवानी पिप्पलीमूलं स्वर्जिका च हरीतकी ॥ २ ॥ जातीफलं लवङ्गं
च पृथक्कर्षयुगं मतम् । धान्यकं चित्रकं चापि कर्षत्रयमितं पृथक् ॥ ३ ॥
कृष्णा पलप्रमाणा स्यात्पलमानं तु रौमकम् । मरीचात्पिचवः सप्त त्रिवृन्मू-
लात्पलद्वयम् ॥ ४ ॥ पृथग्दशाक्षं सामुद्रं सैन्धवं नागरं तथा । शरावसंमितं
चुक्रं तदर्धं तिनित्नीफलम् ॥ ५ ॥ धनंजयवटी ह्येषा धनंजयविवर्धनी । अ-
जीर्णं जरयत्याशु शूलमुन्मूलयेद्भुतम् ॥ ६ ॥ हरेद्विबन्धसंबन्धमाध्मानं कर्ष-
यत्यपि । ग्रहण्या निग्रहं कुर्याद्भचयेदुचिमुत्तमाम् ॥ ७ ॥ इति धनंजयवटी ।
अथ शङ्खवटी रसार्णवतः—चिञ्चाश्चत्थसुहीक्षारादपामार्गार्कतस्तथा ।
लवणं पञ्च संगृह्य ततो लवणपञ्चकम् ॥ १ ॥ सैन्धवाद्यं समादाय सर्वमे-
तत्पलद्वयम् ॥ २ ॥ कर्षं कर्षं विषं गन्धं रसं टङ्कणमेव च । हिङ्गुपिप्पलिशु-
ण्ठीनां तथा मरिचंजीरयोः । द्वौ द्वौ कर्षौ पृथक्कायौ तथा द्वौ शङ्खचूर्णतः
॥ ३ ॥ फलत्रयाच्च कर्षैकं द्विकर्षं तु लवङ्गतः । एतत्सर्वं समासाद्य श्लक्ष्ण-
चूर्णीकृतं शुभम् ॥ ४ ॥ भावयेदम्लयोगेन सप्तधा च प्रयत्नतः । रसः शङ्ख-
वटी नाम्ना सेवितः सर्वरोगजित् ॥ ५ ॥ गुञ्जामात्रमिदं खादेद्भवेदीपनपाच-
नम् । अजीर्णं वातसंभूतं पित्तश्लेष्मभवं तथा । विषूचीं शूलमानाहं हन्या-
दत्र न संशयः ॥ ६ ॥ इति शङ्खवटी । अथ द्वितीया शङ्खवटी—चिञ्चा-
क्षारपलं पटुव्रजपलं निम्बुद्रवे कल्कितं तस्मिन्लङ्घपलं प्रतप्तमसकृन्निर्वाप्य

शीर्णावधि । हिङ्गुव्योषपलं रसामृतबलीन्निक्षिप्य निष्कांशकान्बद्ध्वा शङ्ख-
वटी ज्वरग्रहणिकारूपक्तिशूलादिषु ॥ १ ॥ इति गुटिकाः ।

अथामृतहरीतकी ।

तत्रे समुत्स्वेद्य शिवाशतानि तद्वीजमुद्धृत्य च कौशलेन । षडूषणं पञ्च
पटूनि हिङ्गुक्षारावजाजीमजमोदकं च ॥ १ ॥ षडूषणादेस्त्रिवृद्धभागा गणस्य
देयाऽम्बरगालितस्य । विभाव्य चुक्रेण रजांस्यमीषां क्षिपेच्छिवात्रीजनिरस्तगर्भे
॥ २ ॥ समूह्य घर्मे च विशोष्य तासां हरीतकीमन्यतमां निषेवेत् । अजीर्ण-
मन्दानलजाठरामयान्सगुल्मशूलग्रहणीगुदाङ्कुरान् । विबन्धमानाहरुजो जय-
त्यसौ तथाऽऽमवातांस्त्वमृता हरीतकी ॥ ३ ॥ इत्यमृतहरीतकी ।

अथावलेहः ।

विडङ्गभल्लातकचित्रकाभयाः सनागरास्तुल्यगुडेन सर्पिषा । अश्नन्ति ये म-
न्ददुताशना नरा भवन्ति ते वाडवतुल्यवह्नयः ॥ १ ॥ इति विडङ्गाद्यवलेहः ।
विदह्यते यस्य तु भुक्तमात्रं दहन्ति हृत्कोष्ठगता मलाश्च । द्राक्षां सितामाक्षि-
कसंप्रयुक्तां लीढ्वाऽभयां वा स सुखं लभेत ॥ १ ॥

अथ यवागूः ।

चित्रकचविकानागरमागधिकोग्रैर्यवागूः स्यात् । गुल्मानिलशूलहरी चित्रा-
द्या वह्निजननी च ॥ १ ॥ इति चित्रकादिः ।

अथ क्वाथः ।

लवङ्गपथ्ययोः क्वाथः सैन्धवेनावधूलितः । पीतः प्रशमयत्याशु त्वजीर्णं रे-
चयत्यपि ॥ १ ॥ धान्यनागरसिद्धं वा तोयं दद्याद्विचक्षणः । आमाजीर्णप्रश-
मनं शूलघ्नं वह्निदीपनम् ॥ २ ॥

अथ घृतानि ।

अथाग्निकरं घृतम्—पञ्चमूल्यभयाव्योषपिप्पलीमूलसैन्धवैः । रास्नाक्षारद्व-
याजाजीविडङ्गशटिभिर्घृतम् ॥ १ ॥ युक्तेन मातुलुङ्गस्य स्वरसेनाऽऽर्द्रैकस्य च ।
तक्रमस्तुसुरामण्डसौवीरकतुषोदकैः ॥ २ ॥ काजिकेन च यत्पक्वं पीतमग्नि-
करं स्मृतम् । शूलगुल्मोदरश्वासकासानिलकफापहम् ॥ ३ ॥ इत्यग्निकरं घृत-
म् । अथ दशमूलघृतम्—मरीचं पिप्पलीमूलं नागरं पिप्पली तथा । भ-
ल्लातकं यवानी च विडङ्गं गजपिप्पली ॥ १ ॥ हिङ्गु सौवर्चलं चैव त्वजाजी
विडधान्यकम् । सामुद्रं सैन्धवं क्षारं चित्रकं वचया सह ॥ २ ॥ एभिरर्धप-
लैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् । दशमूलरसे सिद्धं पयसाऽष्टगुणेन वा ॥ ३ ॥
मन्दाग्नेश्च हितं सिद्धं ग्रहणीदोषनाशनम् । विष्टम्भमामं दौर्बल्यं प्लीहानमप-
कर्षयेत् ॥ ४ ॥ कासं श्वासं क्षयं वाऽपि दुर्नाम सभगंदरम् । कफजान्हन्ति रो-

गांश्च वायुजान्कृमिसंभवान् । तान्सर्वांश्चाशयत्याशु शुष्कं दार्वनलो यथा ॥५॥
इति दशमूलघृतम् ॥ इति घृतानि ॥

अथाजीर्णकुलकण्डनगणः ।

नारीकेलफलेषु तण्डुलमथ क्षीरं रसाले हितं जम्बीरोत्थरसो घृते समुचि-
तः सर्पिस्तु मोचाफले । गोधूमेषु च कर्कटी हिततमा मांसाशने काजिकं ना-
रङ्गे गुडभक्षणं प्रकथितं पिण्डालुकं कोद्रे ॥ १ ॥ पनसे कदलं कदले च घृ-
तं घृतपाकविधावपि जम्भरसः । तदुपद्रवशान्तिकरं लवणं लवणेषु च तण्डु-
लवारि परम् ॥ २ ॥ गोधूमे कर्कटिका माषे तक्रं च मूलकं चणके । आमल-
कं किल मुद्गे दीप्यः पक्ता तु यावनाले स्यात् ॥ ३ ॥ खण्डं च खण्डयति मा-
पभवं ह्यजीर्णं तैलं कुलत्थजमिति प्रवदन्ति केचित् । द्राक्षामुकूलकनिकोच-
कसेवितं वा वातामवृन्तफलपाककरं लवङ्गम् ॥ ४ ॥ कङ्कुश्यामाकनीवार-
कोरदूषमकुष्टकाः । दध्ना जलेन जीर्यन्ति काजिकं त्वादकीं पचेत् ॥ ५ ॥ पि-
ष्टान्ने शीतलं वारि कृशरात्रे तु सैन्धवम् । माषेण्डर्या निम्बमूलं मुद्गयूषस्तु
पायसे ॥ ६ ॥ मत्स्य आम्नफलात्कूर्मो यवक्षाराद्विपच्यते । काशमूलान्नीलकण्ठ-
पारावतकपिञ्जलाः ॥ ७ ॥ पटोलवंशाङ्कुरकारवल्लीफलानि निम्बुकथितानि ज-
ग्ध्वा । क्षारोदकं ब्रह्मतरोर्निपीय भोक्तुं पुनर्वाञ्छति तावदेव ॥ ८ ॥ विपच्य-
ते सूरणको गुडेन तथाऽऽलुकं तण्डुलकोदकेन । पिण्डालुकं जीर्यति कोरदू-
षात्कसेरुपाकः खलु नागरेण ॥ ९ ॥ क्षारो जीर्यति तक्रेण तद्रव्यं कोष्णमण्ड-
तः । माहिषं माणिमन्थेन शङ्खचूर्णेन तद्दधि ॥ १० ॥ रसाला जीर्यति व्यो-
पान्खण्डं नागरभक्षणात् । गुडो नागरमुस्ताभ्यां तथेक्षुश्चाऽऽर्द्रकाशनात् ॥ ११ ॥
इत्यजीर्णकुलकण्डनगणः ॥

अथ रसाः ।

दन्तीबीजमकल्मषं सदहनं शुण्ठीलवङ्गं समं गन्धं पारदटङ्कणं च मरिचं
श्रीवृद्धदारो विषम् । खल्वे यामयुगं विमर्द्य विधिना दन्तीद्रवैर्भाविना देयाः
पञ्चदशानु निम्बुकजलैस्त्रेधा त्रिधा चित्रकैः ॥ १ ॥ त्रेधा चाऽऽर्द्रकजै रसैः
शुभधिया सप्तैव चावेदिना पश्चाच्छुष्ककलायसंमितवटी कार्या भिषकसंमता ।
क्षुद्रोधप्रकरी त्रिशूलशमनी जीर्णज्वरध्वंसिनी कासारोचकपाण्डुतोदरगदान्पा-
सामरुक्षाशिनी ॥ २ ॥ बस्त्याटोपहलीमकामयहरी मन्दाग्निसंदीपनी सिद्धेयं
तु महोदधिप्रकटिता सर्वाभयघ्नी सदा ॥ ३ ॥ इति बृहन्महोदधावजीर्णहरी
वटी । अथ रसेन्द्रचिन्तामणेरग्निकुमारः—पारदं च विषं गन्धं टङ्कणं
समभागतः । मरीचादष्टभागाः स्युर्द्वौ द्वौ शङ्खवराटयोः ॥ १ ॥ पक्वजम्बीर-
जैर्गाढं रसैः सप्त विभावयेत् । गुप्ताद्वयमितो देयो रसो ह्यग्निकुमारकः ॥ २ ॥
समीरणसमुद्भूतमजीर्णं च विषूचिकाम् । क्षणेन क्षपयत्येष कफरोगानिकृन्तनः

॥ ३ ॥ इत्यग्निकुमारः । अथ द्वितीयाग्निकुमारः—रसेन गन्धं सह टङ्कणेन समं विषं योज्यमतस्त्रिभागम् । कपर्दशङ्खावपि नेत्रभागौ मरीचकं चाष्टगुणं विमर्द्य ॥ १ ॥ सुपक्वजम्बीररसेन खल्वे सिद्धो भवत्यग्निकुमारकोऽयम् । अजीर्णवातं गुदगुल्मवातं विपूचिकाद्यं त्रिनिहन्ति सद्यः ॥ २ ॥ इति द्वितीयोऽग्नि-
कुमारः । अथ लघुकव्यादः—पारदाद्विगुणं गन्धं गन्धांशं मृतलोहकम् । पिप्पली पिप्पलीमूलमग्निशुण्ठीलवङ्गकम् ॥ १ ॥ लोहसाम्यं पृथकुर्याद्रससाम्यं सुवर्चलम् । टङ्कणं मरिचं चापि गन्धतुल्यं प्रदापयेत् ॥ २ ॥ एतद्विचूर्ण्य यत्नेन भावयेत्सप्तधाऽऽम्लकैः । एतद्रसायनं श्रेष्ठं माषमात्रं प्रदापयेत् ॥ ३ ॥ त-
त्केण केवलं वाऽपि दद्याद्भोजनपाचने । क्षिप्रं तज्जीर्यते भुक्तं दीपनं भवति ध्रुवम् । सर्वाजीर्णप्रशमनं लघुकव्यादसंज्ञितम् ॥ ४ ॥ इति लघुकव्यादः ॥
अथ बृहत्कव्यादो मन्थानभैरवात्—द्विपलं गन्धकं शुद्धं द्रावयित्वा वि-
निक्षिपेत् । पारदं पलमानं तु मृतशुल्बायसी पृथक् ॥ १ ॥ पलार्धमाने सं-
मिश्र्य पञ्चाङ्गुलदले क्षिपेत् । ततो विचूर्ण्य यत्नेन लोहपात्रे विचक्षणः ॥ २ ॥
निधापयेद्रसं तत्र जम्बीरस्य पलं शतम् । वस्त्रपूतं ततः कृत्वा लोहपात्रे विनिक्षि-
पेत् ॥ ३ ॥ मृद्वग्निना पचेत्तत्त दर्व्या संचालयेन्मुहुः ॥ ४ ॥ संचूर्ण्य पञ्चको-
लोत्थैः कषायैः साम्लवेतसैः । भावनाः किल दातव्याः पञ्चाशत्प्रमिताः पृथ-
क् ॥ ५ ॥ भृष्टटङ्कणचूर्णेन तुल्येन सह मेलयेत् । तदर्धं कृष्णलवणं मरीचं सर्वतुल्य-
कम् ॥ ६ ॥ सप्तधा भावयेत्पश्चाच्चणकक्षारवारिणा । ततः संशोष्य संपिप्य कूप्याश्च
जठरे क्षिपेत् ॥ ७ ॥ अत्यर्थं गुरुमांसानि गुरुभोज्यान्त्यनेकशः । भुक्त्वा चाऽऽ-
कण्ठपर्यन्तं चतुर्वलमितो रसः ॥ ८ ॥ कटुम्लतक्रसहितः पीतमात्रो हि पाचयेत् ।
पुनर्भोजयति क्षिप्रं का पुनर्मन्दवह्निता ॥ ९ ॥ रसः क्रव्यादनामाऽयं प्रोक्तो
मन्थानभैरवैः । सिंहलक्षोणिपालस्य भूरिमांसप्रियस्य च । पुनर्भोजनकामस्य
भैरवानन्दयोगिनः ॥ १० ॥ कुर्याद्दीपनमूर्ध्वजत्रुगदहृष्टामसंशोधनस्तुन्दस्थौ-
ल्यनिवर्हणो मदहरः शूलार्तिमूलापहः । गुल्मप्लीहविनाशको बहुरुजां विध्वं-
सनो वातहा वातग्रन्थिमहोदरापहरणः क्रव्यादनामा रसः ॥ ११ ॥ इति
बृहत्कव्यादः ॥ अथाजीर्णे योगः—द्वौ क्षारौ टङ्कणं सूतं लवङ्गं लवणत्रय-
म् । पिप्पली गन्धकं शुण्ठी मरीचं पलसंमितम् ॥ १ ॥ कर्षमेकं विषं दत्त्वा
सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् । अर्कदुग्धस्य दातव्या भावना सप्तवासरम् ॥ २ ॥
अन्तर्धूमं गजपुटे पक्त्वा शीतं समुद्धरेत् । ततो लवङ्गमरिचस्फटिकीनां पलं
पलम् ॥ ३ ॥ सर्वं संमर्द्य दृढवट्टदभाण्डे निधापयेत् । सायं गुञ्जाद्रयं खादे-
द्भुक्तं द्रावयति क्षणात् ॥ ४ ॥ पुनर्भोजनवाञ्छां च जनयेत्प्रहरोपरि । आम-
मांसं द्रावयति श्लेष्मरोगनिकृन्तनम् ॥ ५ ॥ अथाग्निमुखो रसः—सूतं
गन्धं विषं तुल्यं मर्दयेद्गार्द्रकद्रवैः । अश्वत्थचिञ्जामार्गक्षाराः क्षारौ च टङ्क-

गम् ॥ १ ॥ जातीफलं लवङ्गं च त्रिकटु त्रिफला समम् । शङ्खुक्षारं पञ्चपलं
हिङ्गुजीरं द्विभागिकम् ॥ २ ॥ मर्दयेदम्लयोगेन गुञ्जामात्रा वटी शुभा ।
पाचनी दीपनी सद्योऽजीर्णशूलविषूचिकाः ॥ ३ ॥ हिकां गुल्मं चोदरं च
नाशयेन्नात्र संशयः । रसेन्द्रसंहितायां च नाम्ना वह्निमुखो रसः ॥ ४ ॥ इत्य-
ग्निमुखो रसः । अथाजीर्णारिरसः—शुद्धं सूतं गन्धकं च पलमानं पृथ-
क्पृथक् । हरीतकी च द्विपला नागरं त्रिपलं स्मृतम् ॥ १ ॥ कृष्णा च मरि-
चं तद्वत्सिन्धुत्थं त्रिपलं पृथक् । चतुष्पला च विजया मर्दयेन्निम्बुकद्रवैः
॥ २ ॥ पुटानि सप्त देयानि धर्ममध्ये पुनः पुनः । अजीर्णारिरयं प्रोक्तः सद्यो
दीपनपाचनः । भक्षयेद्विगुणं भक्ष्यं पाचयेद्वेचयेदपि ॥ ३ ॥ इत्यजीर्णारिः ।
अथाजीर्णहरो रसः—सूतं गन्धकतालकं विषयुतं टंकं यवक्षारकं भा-
गीं वह्निपुनर्नवात्रिकटुकं लोहाभ्रकं त्रैफलं । चूर्णं भृंगरसेन मर्दितमनु
निर्गुंडिकाद्रावकैः पश्चादाद्रकबीजपूरकरसैर्देया पुनर्भावना । भुक्तं जीर्यति
भोजेज्ज्ञं गुस्तरं मांसादिकं पिष्टकं गुंजापंचकसंमितस्य वटिका श्रीभैरवाच्छि-
क्षिता । झीहं गुल्मजलोदरं कटिभवं शूलं पुनर्जाठरं शोफं चामसमुद्भवं बहुरु-
जं दुग्धोदकं भक्षणे । इत्यजीर्णहरो रसः । अथ पाशुपतो रसो धन्व-
न्तरीयमतात्—कर्षं सूतं द्विधा गन्धं त्रिभागं भस्म तीक्ष्णकम् । त्रिभिः
समं विषं योज्यं चित्रकद्रवभाषितम् ॥ १ ॥ द्विधा त्रिकटुकं योज्यं लवङ्गैले
तु तत्समे । जातीफलं जातिपत्रं चार्धभागमितं मतम् ॥ २ ॥ तथाऽर्धं पञ्चलव-
णं स्नुह्यकौ चाऽपि तित्तिणी । अपामार्गोऽश्वत्थ एषां लवणं च पलार्धकम्
॥ ३ ॥ टङ्कणं यावकक्षारं स्वर्जिका हिङ्गु जीरकम् । हरीतकी सूततुल्या मर्द-
येदम्लयोगतः ॥ ४ ॥ धूर्तबीजस्य वै भस्म खर्वैः सप्तमभागतः । रसः पाशुप-
तो नाम प्रोक्तः प्रत्ययकारकः ॥ ५ ॥ गुञ्जामात्रा वटी कार्या सर्वाजीर्णविना-
शिनी । तालमूलीतक्रयोगादुदरामयनाशिनी ॥ ६ ॥ मोचारसेनातिसारं
ग्रहणीं तक्रसैन्धवैः । शूले नागरकं शस्तं हिङ्गुसौवर्चलान्वितम् ॥ ७ ॥ अ-
र्शःसु तत्रेण हिता पिप्पली राजयक्ष्मणि । वातरोगं निहन्त्याशु शुण्ठीसौवर्च-
लान्विता ॥ ८ ॥ गुडूचीशर्करायोगात्पित्तरोगविनाशिनी । पिप्पलीक्षौद्रयोगे-
न श्लेष्मरोगान्निवृण्णति । अतः परतरा नास्ति धन्वन्तरमते वटी ॥ ९ ॥ इ-
ति पाशुपतो रसः ॥ अथ रससिन्धोरादित्यरसः—दरदं च विषं गन्धं
त्रिकटु त्रिफलासमम् । जातीफलं लवङ्गं च लवणानि च पञ्च वै ॥ १ ॥ स-
र्वमेतत्कृतं चूर्णमम्लयोगेन सप्तधा । भावयित्वा वटी कार्या गुञ्जार्धप्रमिता
बुधैः ॥ २ ॥ रसो ह्यादित्यसंज्ञोऽयमजीर्णक्षयकारकः । भुक्तमात्रं पाचयति
जठरानलदीपनः ॥ ३ ॥ इत्यादित्यरसः । अथ हुताशनः—एकं च दिग्द्वाद-
शभागमानं योज्यं विषं टङ्कणमूषणं च । हुताशनो नाम हुताशनस्य करोति

वृद्धिं कफवातहन्ता ॥ १ ॥ अन्यच्च—एकांशकाः पारदगन्धटङ्काः कपर्दशङ्खा-
मृतगेहधूमाः । त्र्यंशा इमेऽथो मरिचं त्विभांशं संमर्दितं जम्भरसेन गाढम्
॥ १ ॥ गुल्मारोचकशूलवह्निषदनाजीर्णं विषूचीं कफं जाड्यं शीर्षसमुद्भवं च
कसनं मुद्गप्रमाणा वटी । लीढाऽऽर्द्रस्य रसेन हन्ति कथितानेतान्गादान्ब्रह्मणा
पूर्वं निर्मित एष यत्तशतकैर्नाश्ना हुताशो रसः ॥ २ ॥ इति हुताशनरसः ।
अथाजीर्णकण्टको रसः—शुद्धसूतं विषं गन्धं प्रत्येकं च समं समम् ।
मरीचं सर्वतुल्यांशं कण्टकारिफलद्रवैः ॥ १ ॥ मर्दयोद्भावयेद्यत्नादेकविंशति-
वारकम् । गुञ्जात्रयमिदं खादेत्सर्वाजीर्णप्रशान्तये । सर्वोपद्रवसंयुक्तां विषूची-
मपि नाशयेत् ॥ २ ॥ इति रसाः ।

अथ विषूच्यादिचिकित्सा ।

सूचीभिरिव गात्राणि तुदन्संतिष्ठतेऽनिलः । यस्याजीर्णेन सा वैद्यैर्विषूची-
ति निगद्यते ॥ १ ॥ विषूच्यामतिवृद्धायां पाष्ण्योर्दाहः प्रशस्यते । गन्धकं
कुङ्कुमं वाऽपि दद्यान्निम्बुजलेन वा ॥ २ ॥ व्योषं करञ्जस्य फलं हरिद्रानिम्बु-
कद्रवैः । नस्याञ्जने प्रयोक्तव्ये कुर्याच्च जलसेवनम् ॥ ३ ॥ व्योषं करञ्जस्य फलं
हरिद्रा मूलं समावाप्य च मातुलुङ्गयाः । छायाविशुष्का गुटिकाः कृतास्ता
हन्युर्विषूचीं नयनाञ्जनेन ॥ ४ ॥ करञ्जनिम्बशिखरीगुडूच्यर्जुनवत्सकैः । पी-
तः कषायो वमनाद्धोरां हन्याद्विषूचिकाम् ॥ ५ ॥ निम्बूरसश्चिञ्चणिकासमेतो
विषूचिकाशोषहरः प्रदिष्टः । दुग्धेन पीतो यदि टङ्गणोऽसौ प्रशामयेद्वै वमनं
निरुन्ध्यात् ॥ ६ ॥ पिपासायां तथोत्क्लेशे लवङ्गस्याम्बु शस्यते । जातीफल-
स्य वा शीतं शृतं भद्रघनस्य वा ॥ ७ ॥ त्वक्पत्ररास्नागुरुशिशुमुकुष्ठैरम्लप्रदिष्टैः
सवचाशताह्वैः । उद्धर्तनं खल्लिविषूचिकाग्रं तैलं विपकं च तदर्थकारि ॥ ८ ॥

अथ चुक्राद्यं तैलम् ।

फलं चुक्रं कुष्ठं पिचुयुगमितं सैन्धवकणे तदर्धं प्रत्येकं करतलमितं जाति-
फलकम् । कटोत्तैलं किञ्चित्कुडवमितमग्नावधिशृतं तदेतच्चुक्राद्यं शमयति
विषूचीं च सगदाम् ॥ १ ॥ इति चुक्राद्यं तैलम् । कुष्ठसैन्धवयोः कल्कं चुक्रं
तैलसमन्वितम् । विषूच्यां मर्दनं कोष्णं खल्लीशूलनिवारणम् ॥ १ ॥ विलम्बि-
कालसकयोरुर्ध्वाधःशोधनं हितम् । नालेन फलवर्त्या च तथा शोधनभेषजैः ।
दण्डाद्येऽलसकेऽप्युच्चैरयमेव क्रियाक्रमः ॥ २ ॥ उद्गारशुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो
यथोचितः । लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम् ॥ ३ ॥ विरुद्धासा-
त्म्यपानान्नं विष्टम्भीनि गुरुणि च । अग्निमान्द्येऽप्यजीर्णे च सर्वाणि परिवर्जये-
त् ॥ ४ ॥ फलवर्ति वमिं स्वेदं लङ्घनं चापतर्पणम् । विशेषादलसे कुर्याद्वि-
षूच्यामतिसारवत् ॥ ५ ॥ इत्यजीर्णचिकित्सा ।

अथ क्रिमिनिदानम् ।

तत्र क्रिमिभेदानाह—क्रिमयस्तु द्विधा प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरभेदतः । बहिर्मलकफासृग्विड्जन्मभेदाच्चतुर्विधाः ॥ १ ॥ नामतो विंशतिविधा बाह्यास्तत्र मलोद्भवाः । तिलप्रमाणसंस्थानवर्णाः केशाम्बराश्रयाः ॥ २ ॥ बहुपादाश्च सूक्ष्माश्च यूका लिक्षाश्च नामतः । द्विधा ते कोठपिटिकाकण्डूगण्डान्प्रकुर्वते ॥ ३ ॥ क्रिमीणां निदानमाह—अजीर्णभोजी मधुराम्लसेवी द्रवप्रियः पिष्टगुडोपभोक्ता । व्यायामवर्जी च दिवाशयी च विरुद्धभोक्ता लभते कृमींश्च ॥ ४ ॥ माषपिष्टान्नलवणगुडशकैः पुरीषजाः । मांसमाषगुडक्षीरदधिशुक्तैः कफोद्भवाः । विरुद्धाजीर्णशाकाद्यैः शोणितोत्था भवन्ति हि ॥ ५ ॥ संजातकृमिलक्षणमाह—ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्गोश्लेष्मर्दनं भ्रमः । भक्तद्वेषोऽतिसारश्च संजातक्रिमिलक्षणम् ॥ ६ ॥ कफजानां स्वरूपमाह—कफादामाशये जाता वृद्धाः सर्पन्ति सर्वतः । पृथुव्रधनिभाः केचित्केचिद्रण्डूपदोपमाः ॥ ७ ॥ रूढधान्याङ्कुराकारास्तनुदीर्घास्तथाऽणवः । श्वेतास्ताम्रावभासाश्च नामतः सप्तधा तु ते ॥ ८ ॥ अन्नादाश्चोदरावेष्टा हृदयादा महागुहाः । चुरवो दर्भकुसुमाः सुगन्धास्ते च कुर्वते ॥ ९ ॥ हृद्भासमास्यस्त्रवणमविपाकमरोचकम् । मूर्छाछर्दिज्वरानाहकार्यक्ष्वथुपीनसान् ॥ १० ॥ अथ रक्तजानां स्वरूपमाह—रक्तवाहिशिरास्थाना रक्तजा जन्तवोऽणवः । अपादा वृत्तताम्राश्च सौक्ष्म्यात्केचिददर्शनाः ॥ ११ ॥ केशादा लोमविध्वंसा रोमद्वीपा उदुम्बराः । षट् ते कुष्ठैककर्माणः सहस्रैरसमातरः ॥ १२ ॥ पुरीषजानां लक्षणमाह—पक्काशये पुरीषोत्था जायन्तेऽधोविसर्पिणः । वृद्धास्ते स्युर्भवेयुश्च ते यदाऽऽमाशयोन्मुखाः ॥ १३ ॥ तदाऽऽस्योद्गारनिश्वासाविज्ञन्धानुविधायिनः । तेषां स्वरूपमाह—पृथुवृत्ततनुस्थूलाः श्यावपीतसिता । सिताः ॥ १४ ॥ ते पञ्च नाम्ना कृमयः ककेरुक्रमकेरुकाः । सौसुरादाः सल्लनाख्या लेलिहा जनयन्ति च ॥ १५ ॥ विड्मेदशूलविष्टम्भकार्यपारुष्यपाण्डुताः ॥ रोमहर्षाऽग्निसदनगुदकण्डूर्विमार्गागाः ॥ १६ ॥ इति क्रिमिनिदानम् ॥

अथातः क्रिमिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

क्वाथाः—मुस्ताखुकर्णीफलदारुशिग्रुक्वाथः सकृष्णाकृमिशत्रुकल्कः । मार्गद्वयेनापि चिरप्रवृत्तान्कृमिन्निहन्ति क्रिमिजांश्च रोगान् ॥ १ ॥ दाडिमत्वक्तः क्वाथस्तिलतैलेन संयुतः । त्रिदिनात्पातयत्येव कोष्ठतः कृमिजालकम् ॥ २ ॥ खदिरः कुटजः पिचुमन्दवचात्रिकटुत्रिफलात्रिवृतासहितम् । पशुमूत्रयुतं पिब सप्तदिनं कृमिकोटिशतान्यपि हन्यचिरात् ॥ ३ ॥ चूर्णानि—निम्बवत्सकविडङ्गसै-

न्ध्रवं रामठेन सह जन्तुनाशनम् । निम्बषट्कमजमोदकान्वितं चूर्णमेव मधु-
ना प्रशस्यते ॥ ४ ॥ आखुकर्णीदलैः पिष्टैः पिष्टकेन च पूषकान् । भुक्त्वा
सौवीरकं चानु पिबेत्कृमिहरं परम् ॥ ५ ॥ सुवर्चिकारामठपत्रिकाह्वाविडङ्गबा-
ल्हीककणाग्निविश्वाः । यवानिकाग्रन्थिकभद्रमुस्तास्तक्रेण चूर्णं कृमिकोटिहारि
॥ ६ ॥ भल्लातको वा दध्ना वा चिञ्चाम्लेन हरेत्कृमीन् । विडङ्गं पारिभद्राग्रं
ब्रह्मबीजं पृथक्पिबेत् ॥ ७ ॥ मधुना कृमिनाशाय निम्बं वा हिङ्गुना युतम् ।
निम्बाजमोदाजन्तुघ्नं ब्रह्मबीजं सचोरकम् ॥ सहिङ्गुकं समगुडं सद्यो जन्तुवि-
नाशनम् ॥ ८ ॥ हरीतकी चैव तथा हरिद्रा सौवर्चलं चैव समं विचूर्णितम् ।
इन्द्रवारुणिजलेन भावितं कीटसंघविनिवारणं परम् ॥ ९ ॥ अथ धूपः—
काकुभकुसुमविडङ्गं लाङ्गलिभल्लातकं तथोशीरम् । श्रीवैष्टकसर्जरसं चन्दनमथ
कुष्ठमष्टमं दद्यात् ॥ १० ॥ एष सुगन्धो धूपः सकृत्कृमीणां विनाशकः प्रोक्तः ।
शय्यासु मत्कुणानां शिरसि च गात्रेषु यूकानाम् ॥ ११ ॥ इति सुगन्धो
धूपः । विशालायाः फलं पक्वं तप्तलोहे परिक्षिपेत् । तद्धूमो दन्तलग्नश्चेत्कीटा-
नां पातनः परः ॥ १२ ॥ अथ विडङ्गादितैलम्—सविडङ्गं च शिलया
सिद्धं सुरभिजलेन कटुतैलम् । निखिला नयति विनाशं लिक्षासहिता दिनैर्यू-
काः ॥ १ ॥ इति विडङ्गादितैलम् । पारदं मर्दयेन्निष्कं कृष्णधत्तूरकद्रवैः ।
नागवल्लीद्रवैर्वाऽथ वस्त्रखण्डं प्रलेपयेत् ॥ १ ॥ तद्वस्त्रं मस्तके बध्वा धार्य
यामत्रयं ततः । यूकाः पतन्ति निश्चेष्टाः सलिक्षा नात्र संशयः ॥ २ ॥ चित्रकं दन्ति-
नीमूलं कोशातकीसमन्वितम् । कल्कं पिष्ट्वा पचेत्तैलं केशशत्रुविनाशनम् ॥ ३ ॥
अथ रसादिलेपः । रसेन्द्रेण समायुक्तो रसो धत्तूरपत्रजः । ताम्बूलपत्र-
जो वाऽपि लेपनाद्युक्तनाशनः ॥ १ ॥

अथ कृमिमुद्गरो रसः ।

क्रमेण वृद्धं रसगन्धकाजमोदाविडङ्गं विषमुष्टिका च । पलाशबीजं च वि-
चूर्णमस्य निष्कप्रमाणं मधुनाऽवलीढम् ॥ १ ॥ पिबेत्कषायं घनजं तदूर्ध्वं
रसोऽयमुक्तः कृमिमुद्गराख्यः । क्रिमीन्निहन्ति क्रिमिजांश्च रोगान्संदीपयत्य-
ग्निमयं त्रिरात्रात् ॥ २ ॥

अथ कृमिकुठारः ।

विश्वं रामठसैन्धवाग्निमरिचं पथ्या वचा गुग्गुलुर्बोले रात्रिविडङ्गकुष्ठलशुनं
गन्धः कुबेराक्षकः । इन्द्रोद्भूतपलाशबीजखदिराजजीकणादीप्यकं सौवर्चं म-
धुना गुटी कृमिकुठाराह्वा रुजाजन्तुनुत् ॥ १ ॥ कृमिषु वर्ज्यान्याह—क्षी-
राणि मांसानि घृतानि चैव दधीनि शाकानि च पत्रवन्ति । समासतोऽम्लं
मधुरात्रसांश्च कृमीञ्जिघांसुः परिवर्जयेत् ॥ २ ॥ शीताम्बु मधुरं क्षारं दधिक्षीर-
घृतादिकम् । सौवीरं पत्रशाकांश्च वर्जयेत्कृमिमात्ररः ॥ ३ ॥ इति कृमिचिकित्सा ।

अथ पाण्डुरोगनिदानम् ।

पाण्डुरोगाः स्मृताः पञ्च वातपित्तकफैस्त्रयः । चतुर्थः संनिपातेन पञ्चमो
भक्षणान्मृदः ॥ १ ॥ व्यवायमम्लं लवणानि मद्यं मृदं दिवा स्वप्नमतीव
तीक्ष्णम् । निषेवमाणस्य विदूष्य रक्तं दोषास्त्वचं पाण्डुरतां नयन्ति ॥ २ ॥
अथ पूर्वरूपमाह—त्वक्स्फोटनिष्ठीवनगात्रसादमृद्भक्षणप्रेक्षणकूटशोथाः ।
विष्मूत्रपीतत्वमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥ १ ॥ अथ वातिकमा-
ह—त्वङ्मूत्रनयनादीनां रुक्षकृष्णारुणाभता । वातपाण्ड्वामये कम्पतोदानाह-
न्नमादयः ॥ १ ॥ अथ पैत्तिकमाह—पीतमूत्रशकृन्नेत्रो दाहतृष्णाज्वरान्वितः ।
भिन्नविद्वकोऽतिपीताभः पित्तपाण्ड्वामयी नरः ॥ १ ॥ अथ श्लैष्मिकमाह—
कफप्रसेकश्चयुतन्द्रालस्यातिगौरवैः । पाण्डुरोगी कफाच्छुक्लैस्त्वङ्मूत्रनयनान-
नैः ॥ १ ॥ अथ त्रिदोषजमाह—सर्वान्नसेविनः सर्वे दुष्टा दोषास्त्रिदोषज-
म् । त्रिदोषलिङ्गं कुर्वन्ति पाण्डुरोगं सुदुःसहम् ॥ १ ॥ इति चरके । ज्वरा-
रोचकहृल्लासच्छर्दिमृत्पाण्ड्वामान्वितः । पाण्डुरोगी त्रिभिर्दोषैस्त्याज्यः क्षीणो
हर्तेन्द्रियः ॥ २ ॥ अथ मृत्तिकाजन्यमाह—मृत्तिकादनशीलस्य कुप्यत्यन्य-
तमो मलः । कषाया मारुतं पित्तमूषरा मधुरा कफम् ॥ १ ॥ कोपयेन्मृद्वसादींश्च
रौक्ष्याद्भुक्तं च रुक्षयेत् । पूरयत्यविपक्वैव स्रोतांसि निरुणञ्छपि ॥ २ ॥ इन्द्रि-
याणां बलं हत्वा तेजो वीर्यौजसी तथा । पाण्डुरोगं करोत्याशु बलवर्णाग्नि-
नाशनम् ॥ ३ ॥ अथ विशेषलक्षणमाह—शूनाक्षिकूटगण्डभूः शूनपन्नाभिमेह-
नः । क्रिमिकोष्ठोऽतिसार्येत मलं चासृक्कफान्वितम् ॥ १ ॥

अथासाध्यलक्षणमाह—

पाण्डुरोगश्चिरोत्पन्नः खरीभूतो न सिध्यति । कालप्रकर्षाच्छूनाङ्गो यो वा
पीतानि पश्यति ॥ १ ॥ बद्धाल्पविद्वसहरितं सकफं योऽतिसार्यते । दीनः
श्वेतोतिदिग्धाङ्गश्छर्दिमूर्छातृषान्वितः । स नास्त्यसृक्क्षयाद्यस्तु पाण्डुः श्वेतत्व-
मामुयात् ॥ २ ॥ अन्यच्च—पाण्डुदन्तनखो यस्तु पाण्डुनेत्रश्च यो भवेत् ।
पाण्डुसंघातदर्शी च पाण्डुरोगी विनश्यति ॥ १ ॥ अन्तेषु शूनं परिहीनमध्यं
म्लानं तथाऽन्तेषु च मध्यशूनम् । गुदेऽच शेषस्यथ मुष्कयोश्च शूनं प्रताम्यं-
तमसंज्ञकल्पम् । विवर्जयेत्पाण्डुकिं यशोर्थी तथाऽतिसारज्वरपीडितं च
॥ २ ॥ कामलाकारणमाह—पाण्डुरोगी च योऽत्यर्थं पित्तलानि निषेवते ।
तस्य पित्तमसृङ्मांसं दग्ध्वा रोगाय कल्पते ॥ १ ॥

कामलालक्षणमाह—

हारिद्रनेत्रः स भृशं हारिद्रत्वङ्गनखाननः । रक्तपीतशकृन्मूत्रो भेकवर्णो
हर्तेन्द्रियः ॥ १ ॥ दाहाविपाकदौर्बल्यसदनारुचिकर्शितः । कामला बहुपि-

तैषा कोष्ठशाखाश्रया मता ॥ २ ॥ कालान्तरात्खरीभूता कृच्छ्रा स्यात्कुम्भ-
कामला । कृष्णपीतशकृन्नेत्रो मृशं शूनश्च मानवः ॥ ३ ॥ सरक्ताक्षिमुखच्छ-
र्दिविण्मूत्रो यश्च ताम्यति । दाहारुचितृडानाहतन्द्रामोहसमन्वितः । नष्टाग्नि-
संज्ञः क्षिप्रं हि कामलावान्विपद्यते ॥ ४ ॥ छर्द्यरोचकहृल्लासज्वरक्लमनिपी-
डितः । नश्यति श्वासकासारौ विडम्बेदी कुम्भकामली ॥ ५ ॥

अथ पाण्डुरोगावस्थायां हलीमकमाह—

यदा तु पाण्डोर्वर्णः स्याद्दरितश्यावपीतकः । बलोत्साहक्षयस्तन्द्रा मन्दा-
ग्नित्वं मृदुज्वरः । स्त्रीष्वहर्षोऽङ्गमर्दश्च सादस्तृष्णारुचिर्भ्रमः ॥ १ ॥ हलीमकं
तदा तस्य विद्यादनिलपित्ततः । पानकीलक्षणमाह— संतापो भिन्नवर्चस्त्वं
बहिरन्तश्च पीतता । पाण्डुता नेत्रयोर्यस्य पानकीलक्षणं भवेत् ॥ २ ॥ इति
पाण्डुरोगकामलाहलीमकनिदानम् ।

अथ पाण्डुरोगचिकित्सा ।

साध्यं च पाण्ड्वाभयिनं समीक्ष्य स्निग्धं घृतेनोर्ध्वमधश्च शुद्धम् । संपादये-
त्क्षौद्रघृतप्रगाढैर्हरीतकीलोहरजःप्रयोगैः ॥ १ ॥ पिबेदृतं वा रजनीविपकं
यत्रैफलं तैल्वककलकयुक्तं । विरेचनद्रव्यकृतं पिबेद्वा योगांश्च वैरेचनिकान्घृ-
तेन ॥ २ ॥ विधिः स्निग्धोऽत्र वातोत्थे तिक्तः शीतश्च पैत्तिके । श्लैष्मिके
कटुरुक्षोष्णः कार्यो मिश्रस्तु मिश्रजे ॥ ३ ॥ द्विपञ्चमूलीकथितं सविश्वं क-
फात्मके पाण्डुगदे पिबेत्तम् । ज्वरेऽतिसारे श्वयथौ ग्रहण्यां कासेऽरुचौ
कण्ठहृदामयेषु ॥ ४ ॥ फलत्रिकाशृतावासातिक्ताभूनिम्बनिम्बजः । काथः
क्षौद्रयुतो हन्यात्पाण्डुरोगं सकामलम् ॥ ५ ॥ पुनर्नवानिम्बपटोलशुण्ठीति-
क्ताशृतादावर्त्यभयाकपायः । सर्वाङ्गशोफोदरपाण्डुरोगस्थौल्यप्रसेकोर्ध्वकफाम-
येषु ॥ ६ ॥

अथ नवायसचूर्णम् ।

त्र्यूषणत्रिकलामुस्ताविडङ्गदहनाः समाः । नवायोरजसो भागास्तच्चूर्णं मधु
सर्पिषा । भक्षयेत्पाण्डुहृद्रोगकुष्ठार्शःकामलापहम् ॥ १ ॥ इति नवायसचू-
र्णम् । लोहपात्रस्थितं क्षीरं सप्ताहं पथ्यभोजनः । पिबेत्पाण्ड्वाभयी शोपी
ग्रहणीदोषपीडितः ॥ १ ॥ दग्ध्वाऽक्षकाष्ठैर्मलमायसं तु गोमूत्रनिर्वापितस-
प्तवारम् । विचूर्ण्य लीढं मधुनाऽचिरेण तक्त्रेण वा पाण्डुगदं निहन्यात् ॥
इति वीरसिंहावलोकतः ॥ अतिशुद्धमयोभस्स घृतक्षौद्रयुतं लिहेत् । पाण्डु-
रोगस्य नाशाय कामलानां च सर्वशः ॥ १ ॥ नागरं लोहचूर्णं वा कृष्णां
पथ्यामथाश्मजम् । गुग्गुलुं वाऽथ मूत्रेण कफपाण्ड्वाभयी पिबेत् ॥ २ ॥
शिलाजनुक्षौद्रविडङ्गसर्पिलोहाभयापारदताप्यभक्षः । आपूर्यते दुर्बलदेहधा-
तुस्त्रिपञ्चरात्रेण यथा शशाङ्कः ॥ ३ ॥ वृन्दात् । अयस्तिलत्र्यूषणकोलभागेः

सर्वैः समं माक्षिकधातुचूर्णम् । तैर्मौदकः क्षौद्रयुतोऽनुतक्रः पाण्ड्वामये
दूरगतेऽपि शस्तः ॥ १ ॥

अथ मण्डूरवटकाः ।

सुराब्ददार्वाकटुपदकताप्यवेलं वरा चेति समांशचूर्णम् । मण्डूरभागद्व-
यमष्टमूत्रे पक्त्वा गवां तद्वटकाः सतक्राः ॥ १ ॥ कामलापाण्डुमेहार्शःशोथ-
कुष्ठकफामयान् । ऊरुस्तम्भमजीर्णं च ग्रीहानं नाशयन्ति च ॥ २ ॥ इति
रत्नप्रदीपात् ।

अथ मण्डूरवज्रवटकाः ।

पञ्चकोलं समरिचं देवदारु फलत्रिकम् । विडङ्गमुस्तायुक्ताश्च भागास्त्रिपल-
संमिताः ॥ १ ॥ यावन्त्येतानि चूर्णानि मण्डूरं त्रिगुणं ततः । पक्त्वाऽष्टगुणि-
ते मूत्रे तद्धनीभूतमुद्धरेत् ॥ २ ॥ ततोऽक्षमात्रान्वटकान्पिबेत्तक्रेण तक्रमु-
क् । पाण्डुरोगं जयेत्तद्वन्मन्दाम्बित्वमरोचकम् ॥ ३ ॥ मण्डूरवज्रवटको रोगा-
नीकप्रभेदनः । अर्शोसि ग्रहणीं शोफमूरुस्तम्भ हलीमकम् । कृमीन्ग्रीहानमु-
दरं गलरोगं च नाशयेत् ॥ ४ ॥ इति वृन्दात् ।

अथ मण्डूरलवणम् ।

कृत्वाऽम्बिवर्णं मलमायसं तु मूत्रेनिषिञ्चेद्दुशो गवां च । तत्रैव सिन्धु-
त्थसमं विपाच्यं निरुद्धधूमं च बिभीतकाग्नौ ॥ १ ॥ तक्रेण पीतं मधुनाऽथवा-
पि बिभीतकाख्यं लवणं प्रयुक्तम् । पाण्ड्वामयिभ्यो हितमेतदस्मात्पाण्ड्वा-
मयज्ञं नहि किञ्चिदत्यत् ॥ २ ॥ इति योगतरङ्गिण्याः ॥

अथ मधुमण्डूरः ।

गृहीत्वा भिषक्प्रस्थमण्डूरभागं शृते त्रैफले मर्दयित्वा च ग्रामम् । पुटे
पाचयेद्यामयुग्मं कृशानौ पुटानीह देयानि चन्द्राक्षिवारम् ॥ १ ॥ तथा धेनु-
मूत्रे कुमारीरसे च विधेयश्च पञ्चामृते योगराजः । भवेत्सिन्धुनागैः पुटैः सि-
द्धिदोऽयमचिन्त्यप्रभावश्च मण्डूर एषः ॥ २ ॥ मधुमण्डुर एष कणामधुना
चिरपाण्डुगदं ननु हेममितः । जनको रुधिरस्य निहन्ति परं विविधार्तिहर-
स्त्वनुपानबलैः ॥ ३ ॥

अथ मण्डूराद्योऽरिष्टः ।

मण्डूरस्य तु शुद्धस्य तुलार्धं परिकीर्तितम् । तद्वल्लोहस्य पत्राणि तिलो-
त्सेधप्रमाणतः ॥ १ ॥ पुराणगुडपञ्चाशत्कोलप्रस्थत्रयं तथा । निकुम्भचित्रका-
भ्यां च पले द्वे द्वे सुचूर्णिते ॥ २ ॥ पिप्पलीनां विडङ्गानां कुडवं कुडवं पृ-
थक् । त्रींश्चापि त्रिफलाप्रस्थाञ्जलद्रोणे समावपेत् ॥ ३ ॥ अर्धमासस्थितो
ध्रान्ये पेयोऽरिष्टः प्रमाणतः । दोषानुभयतः स्वाव्यपाण्डुरोगं नियच्छति ॥ ४ ॥

कृमीनशीसि कुष्ठं च कासश्वासकफामयान् । एषोऽरिष्टस्तु मण्डूरः सर्वपाण्डूवा-
मयापहः ॥ ५ ॥ इति गदनिग्रहान्मण्डूराद्योऽरिष्टः ।

रेचनं कामलार्तस्य स्निग्धस्याऽऽदौ प्रयोजयेत् । ततः प्रशमनी कार्या क्रिया
वैद्येन जानता ॥ १ ॥ पाण्डुरोगक्रियां सद्यो योजयेच्च हलीमके । मलानुसर-
णं दृष्ट्वा साऽपि कार्या भिषग्वरैः ॥ २ ॥ हरिद्रात्रिफलानिम्बबलामधुकसाधि-
तम् । सक्षीरं माहिषं सर्पिः कामलापहमुत्तमम् ॥ ३ ॥ त्रिफलाया गुडूच्या
वा दाव्या निम्बस्य वा रसम् । प्रातर्मधुयुतं वैद्यः कामलार्ताय योजयेत् ॥ ४ ॥
दावीं सत्रिफलाव्योषविडङ्गानयसो रजः । मधुसर्पिर्युतं लिह्यात्कामलापाण्डु-
रोगवान् ॥ ५ ॥ अयोरजो व्योषविडङ्गचूर्णं लिह्याद्वरिद्रां त्रिफलान्वितां वा ।
सशर्करां कामलिनां त्रिभण्डी हिता गवाक्षी सगुडा च शुण्ठी ॥ ६ ॥ धात्री-
लोहरजोव्योषनिशाक्षौद्रं सशर्करम् । लीढं निवारयत्याशु कामलामुद्धतामपि
॥ ७ ॥ लोहचूर्णं निशायुग्मं त्रिफलां कटुरोहिणीम् । प्रलिह्य मधुसर्पिर्भ्यां
कामलार्तः सुखी भवेत् ॥ ८ ॥ व्योषाग्निलेहत्रिफलामुस्तैस्तुल्यमयोरजः । चू-
र्णितं तक्रमध्वाज्यकोष्णतोयोपयोजितम् ॥ ९ ॥ कामलापाण्डुहृद्रोगकुष्ठार्शो-
मेहनाशनम् । तुल्यं वाऽयोरजः पथ्यां हरिद्रां क्षौद्रसर्पिषा ॥ १० ॥ चूर्णितां
कामली लिह्याद्बुडक्षौद्रेण वाऽभयाम् । एलाजीरकभूधात्रीसितागव्येन भाव-
येत् ॥ ११ ॥ प्रातः संसेवनं कुर्यात्कामलानाशनं परम् । निशाचूर्णं कर्षमि-
तं दध्नः पलमितं तथा ॥ १२ ॥ प्रातः संसेवनं कुर्यात्कामलानाशनं परम् ।
अर्कमूलं हरेन्नस्यात्कामलां तण्डुलोदकैः ॥ १३ ॥ अज्जनं कामलार्तस्य द्रोण-
पुष्पीरसस्य तु । निशागैरिकधात्रीणां चूर्णं चोपरि लेपयेत् ॥ १४ ॥ गोदुग्धे-
न विशालाया मुनिसंख्यादलानि तु । जीरकेण युतं पेप्यं रसमेकं पलं पिबेत्
॥ १५ ॥ अथवा तज्जटाद्रावं कर्षार्धं दुग्धमिश्रितम् । पाययेत्तु प्रतिदिनमेव-
मेतद्दिनत्रयम् ॥ १६ ॥ घृतदुग्धौदनं पथ्यं कुर्याद्वै लवणं विना । कामलां ना-
शयत्याशु वायुरभ्रं हरेद्यथा ॥ १७ ॥

अथ घृतानि ।

अथ गुडूचीघृतम्—गुडूचीस्वरसे सिद्धं सक्षीरं माहिषं घृतम् । चतुर्गु-
णेन पयसा पाययेत्तद्धलीमके ॥ १ ॥ इति गुडूचीघृतम् । व्योषं बिल्वं द्विर-
जनी त्रिफला द्विः पुनर्नवम् । मुस्ता अयोरजः पाठा विडङ्गं देवदारु च ॥ १ ॥
वृश्चिकाली च भाङ्गी च सक्षीरैस्तैर्घृतं शुभम् । सर्वान्प्रशमयत्याशु विकारान्मृ-
त्तिकाकृतान् ॥ २ ॥ इति व्योषादिघृतम् ।

अथाऽऽमलक्यवल्लेहः ।

रसमामलकानां तु संशुद्धं यन्नपीडितम् । द्रोणं पचेच्च मृद्वशौ तत्र चेमानि
दापयेत् ॥ १ ॥ चूर्णितं पिप्पलीप्रस्थं मधुकं द्विपलं तथा । प्रस्थं गोस्तनिका-

याश्च द्राक्षायाः किल पेपितम् ॥ २ ॥ शृङ्गबेरपले द्वे तु तुगाक्षीर्याः पलद्वयम् । तुलार्धं शर्करायाश्च घनीभूतं समुद्धरेत् ॥ ३ ॥ मधुप्रस्थसमायुक्तं लेहयेत्पलसंमितम् । हलीमकं कामलां च पाण्डुत्वं चापकर्षति ॥ ४ ॥

इत्यामलक्यवलेहः ।

अथ त्रिफलाद्यवलेहः ।

त्रिफलायास्त्रयो भागास्त्रयस्त्रिकटुकस्य च । भागश्चित्रकमूलस्य विडङ्गानां तथैव च ॥ १ ॥ पञ्चाशमजतुनो भागास्तथा रूप्यमलस्य च । माक्षिकस्य च शुद्धस्य लोहस्य रजसस्तथा ॥ २ ॥ अष्टौ भागाः सितायास्तु तत्सर्वं मधुसंयुतम् । श्लक्ष्णचूर्णं सुसंस्थाप्यमायसे भाजने शुभे ॥ ३ ॥ उदुम्बरसमां मात्रां ततः खादेद्यथाग्निना । दिने दिने प्रयोक्तव्यं जीर्णं भोज्यं यथेप्सितम् ॥ ४ ॥ वर्जयित्वा कुलत्थांस्तु काकमाचीकपोतकान् । पाण्डुरोगं विषं कासं यक्षमाणं विषमज्वरम् ॥ ५ ॥ कुष्ठान्यजरकं मेहं श्वासं शोफमरोचकम् । विशेषाद्वन्यपसारं कामलां गुदजानि च ॥ ६ ॥ इति त्रिफलाद्यवलेहो योगतरङ्गिण्याः । अथ हंसमण्डूरः—मण्डूरं चूर्णयेच्छूलक्ष्णं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् । पञ्चकोलं देवदारु मुस्ता व्योषं फलत्रयम् ॥ १ ॥ विडङ्गं स्यात्प्रतिपलं पाकान्ते चूर्णितं क्षिपेत् । भक्षयेत्कर्षमात्रं च तत्रे तर्कं च भोजने ॥ २ ॥ पाण्डुं शोफं हलीमं च ऊरुस्तम्भं च कामलाम् । अशींसि हन्ति नो चित्रं हंसमण्डूरको ह्ययम् ॥ ३ ॥

अथ मदेभसिंहसूतो रसः ।

काश्यपग्रन्थे—रसगन्धवराटतान्नशङ्खं विषवङ्गाभ्रककान्ततीक्ष्णमुण्डम् । अहिहिङ्गुलटङ्कणं समांशं सकलैः स्यान्निगुणं पुराणकिटम् ॥ १ ॥ पशुमूत्रविशोधितं सुभृष्टा त्रिफलाभृङ्गरसाऽऽर्द्रकोत्थनीरैः । सुविशोष्य वरामृताल्लिवासास्वरसैरष्टगुणैः पुनर्नवोत्थैः ॥ २ ॥ पृथगग्निकृतं घनं विपाच्य गुलिका गुञ्जमिता निजानुपानैः । ज्वरपाण्डुतृषास्त्रपैत्यगुलमक्षयकासस्वरमग्निसादमूर्छाम् ॥ ३ ॥ पवनादिषु दुस्तराष्टरोगान्सकलं पित्तहरं मदानृतं च । बहुना किमसौ यथार्थनामा सकलव्याधिहरो मदेभसिंहः ॥ ४ ॥ इति मदेभसिंहः ॥

अथ त्रैलोक्यनाथरसः ।

पलानि चत्वारि रसस्य पञ्च गन्धस्य सत्त्वस्य गुडूचिकायाः । व्योषस्य चूर्णस्य च तालमूल्याः सशालमलस्येह पलत्रयं स्यात् ॥ १ ॥ पृथक्पृथक्षड्गगनस्य चाष्टौ लोहस्य सर्वं त्रिफलाजलेन । घृष्टं चतुष्पष्टिदिनं तदर्धाः स्युर्भावना मार्कवजद्रवस्य ॥ २ ॥ शिग्रूत्थनीरेण च षोडशाष्टौ तथा नलोत्थाद्गृहकन्यकायाः । आर्द्रद्रवस्येति रसोऽयमुक्तः पाण्डुक्षयश्वासगदादिहर्ता ॥ क्षौद्रेण वा शर्करया घृतेन कर्षार्धमेतस्य भजेत्प्रयत्नात् ॥ ३ ॥

इति रसरत्नप्रदीपात् ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

यवगोधूमशाल्यन्नं रसैर्जाङ्गलजैः शुभैः । मुद्गाढकीमसूराद्यैः पाण्डौ भोज-
नमिष्यते ॥ १ ॥ वह्निमातपमायासमन्नपानं च पित्तलम् । मैथुनं क्रोधम-
ध्वानं पाण्डुरोगी सदा त्यजेत् ॥ २ ॥ इति पाण्डुकामलाहलीमकचिकित्सा
समाप्ता ।

अथ रक्तपित्तनिदानम् ।

धर्मव्यायामशोकाध्वन्यवायैरतिसेवितैः । तीक्ष्णोष्णक्षारलवणैरभ्लैः कटु-
भिरेव च ॥ १ ॥ कोद्रवोद्दालकैश्चात्रैस्तद्युक्तैरतिसेवितैः । पित्तं विदग्धं
स्वगुणैर्विदहत्याशु ज्ञोणितम् ॥ २ ॥ ततः प्रवर्तते रक्तमूर्ध्वं चाधो द्विधाऽपि
वा । आमाशयाद् व्रजेदूर्ध्वमधः पक्काशयाद् व्रजेत् ॥ ३ ॥ विदग्धयोर्द्वयोश्चापि
द्विधाभागं प्रवर्तते । ऊर्ध्वं नासाक्षिकर्णास्यैर्मैदूयोगिगुदरधः ॥ ४ ॥ कुपितं
रोमकूपैस्तु समस्तैस्तत्प्रवर्तते । केचिच्च यकृतः प्लीहः प्रवदन्त्यसृजो गतिम्
॥ ५ ॥ पूर्व्वरूपं—सदनं शीतकामित्वं कण्ठधूमायनं वमिः । लोहगन्धिश्च निः-
श्वासो भवत्यस्मिन्भविष्यति ॥ ६ ॥ श्लैष्मिकमाह—सान्द्रं सपाण्डु सस्नेहं
पिच्छलं च कफात्मकम् । वातिकमाह—श्यावारुणं सफेनं च तनु रूक्षं च
वातिकम् ॥ ७ ॥ पैत्तिकमाह—रक्तपित्तं कपायाभं कृष्णं गोमूत्रसंनिभम् ।
मेचकागारधूमाभमञ्जनाभं च पैतिकम् ॥ ८ ॥ संसर्गजसांनिपातिकमाह
—संसृष्टलिङ्गं संसर्गात्रिलिङ्गं सांनिपातिकम् । ऊर्ध्वगं कफसंसृष्टमधोगं
सारतानुगम् ॥ ९ ॥ द्विमागं कफवाताभ्यामुभाभ्यामनुवर्तते । साध्यासा-
ध्यत्वमाह—उर्ध्वं साध्यमधो याप्यमसाध्यं युगपद्गतम् ॥ १० ॥ एकमागं
बलवतो नातिवेगं नवोत्थितम् ॥ ११ ॥ रक्तपित्तं सुखे काले साधयेन्निरुपद्र-
वम् । एकदोषानुगं साध्यं द्विदोषं याप्यमुच्यते ॥ १२ ॥ त्रिदोषजमसाध्यं
स्यान्मन्दाग्नेरतिवेगवत् । व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्यानश्नतश्च यत् ॥ १३ ॥
रक्तपित्तोपद्रवानाह—दौर्बल्यश्वासकासज्वरवमथुमदाः पाण्डुतादाहमूर्छा
भुक्ते घोरो विदाहस्त्वधृतिरपि सदा हृद्यतुल्या च पीडा । तृष्णा कोष्ठस्य भेदः
शिरसि च तपनं पूतिनिष्ठीवनत्वं भक्तद्वेषाविपाकौ विकृतिरपि भवेद्रक्तपित्तो-
पसर्गाः ॥ १४ ॥ मांसप्रक्षालनाभं कथितमिव च यत्कर्दमाभोनिभं वा मेदः
पूयास्रकल्पं यकृदिव यदि वा पक्वजम्बूफलाभम् । यत्कृष्णं यच्च नीलं शृशम-
तिकुणपं यत्र चोक्ता विकारास्तद्गर्ज्यं रक्तपित्तं सुरपतिधनुषा यच्च तुल्यं वि-
भाति ॥ १५ ॥ येन चोपहतो रक्तं रक्तपित्तेन मानवः । पश्येद् दृश्यं विय-
च्चापि तस्यासाध्यमसंशयम् ॥ १६ ॥ लोहितं छर्दयेद्यस्तु सततं लोहितेक्षणः ।
लोहितोद्गारदर्शी च म्रियते रक्तपैत्तिकः ॥ १७ ॥

इति रक्तपित्तनिदानम् ।

अथातो रक्तपित्तचिकित्सां व्याख्यास्यामः ।

पित्तासं स्तम्भयेन्नाऽऽदौ प्रवृत्तं बलिनश्च्युतम् । हृत्पाण्डुग्रहणीरोगह्नीह-
गुल्मोदरादिकृत् ॥ १ ॥ क्षीणमांसबलं बालं वृद्धं शोपानुबन्धनम् । अवा-
स्यमविरेच्यं च शमनीयैरुपाचरेत् ॥ २ ॥ अतिप्रवृद्धदोषस्य पूर्वं लोहितपि-
त्तिनः । अक्षीणबलमांसाग्नेः कर्तव्यमपत्तर्पणम् ॥ ३ ॥ ऊर्ध्वगे रेचनं पूर्वमधोगे
वमनं हितम् । आरग्वधेन धान्या वा त्रिवृता पथ्ययाऽथवा ॥ ४ ॥ विरेचनं
प्रयोक्तव्यं शर्करामाक्षिकोत्तरम् । सुस्तेन्द्रियवयष्टयाह्वमदनाह्वं पयो मधु ॥ ५ ॥
शिशिरं वमनं योज्यं रक्तपित्तहरं परम् । इति वृन्दात् । द्राक्षा मधुककाशम-
र्यसितायुक्तं विरेचनम् ॥ ६ ॥ यष्टीमधुकसंयुक्तं सक्षौद्रं वमनं हितम् । शा-
लिपर्ण्यादिना सिद्धा पेया पूर्वमधोगमे । रक्तातिसारहन्ता च योज्यो विधि-
रशेषतः ॥ ७ ॥ पयांसि शीतानि रसाश्च जाङ्गलाः सतीनयूषाश्च सशालिप-
ष्टिकाः । हितानि चैतानि च रक्तपित्ते चान्यान्यपि स्युः किल पित्तहानि
॥ ८ ॥ शालिपष्टिकनीवारकोरदूषप्रसाधिकाः । श्यामाकाश्च प्रियङ्गुश्च भोजनं
रक्तपित्तिनाम् ॥ ९ ॥ मसूरमुद्गचणकाः समकुष्ठाढकीफलाः । प्रशस्ताः सूपयू-
षार्थं कल्पिता रक्तपित्तिनाम् ॥ १० ॥ दाडिमामलकं बिल्वानम्लार्थं चापि
दापयेत् । पटोलनिम्बवेत्त्राग्रलक्षवेतसपल्लवाः ॥ ११ ॥ शाकार्थं शाकसात्म्या-
नां तण्डुलीयादयो हिताः । पारावतकपोतांश्च लावान् रक्ताक्षवर्तकान् ॥ १२ ॥
शशान्कपिञ्जलानेणान्हरिणान्कालपुच्छकान् । रक्तपित्तहरान्विद्याद्रसं तेषां
प्रयोजयेत् ॥ १३ ॥ ईषदम्लाननम्लांश्च शृतशृष्टान्ससैन्धवान् । कफानुगे यू-
षशकं दद्याद्वातानुगे रसम् ॥ १४ ॥ पथ्यं सतीनयूषेण ससितैर्लाजसक्तुभिः ।
जलं खर्जूरमृद्वीकामधुकैः सपरूषकैः ॥ १५ ॥ शृतशीतं प्रयोक्तव्यं तर्पणाय
सशर्करम् । तर्पणं सघृतं क्षौद्रं लाजचूर्णैः प्रदापयेत् ॥ १६ ॥ ऊर्ध्वगं रक्त-
पित्तं तत्काले पीतं व्यपोहति । ह्रीबेरचन्दनोशीरमुस्तर्पटकैः शृतम् । केवलं
शृतशीतं वा दद्यात्तोयं पिपासवे ॥ १७ ॥ पयः सिताढ्यं शृतशीतमाजं ग-
व्यं पयो वा प्रसमीक्ष्य वह्निम् । यष्टीमधूकार्जुनभावनीयं द्राक्षाबलागोक्षुरकैः
शृतं वा ॥ १८ ॥ द्राक्षया फलिनीभिर्वा बलया नागरेण वा । श्वदंष्ट्रया शता-
वर्या रक्तजित्साधितं पयः ॥ १९ ॥ शृतेनाऽऽजेन पयसा संपिष्टं कुङ्कुमं पि-
बेत् । ऊर्ध्वरक्तविनाशाय तेनैवाऽऽजेन भोजनम् ॥ २० ॥ यष्टीमधुसमायुक्तं
क्षीरं संक्राथ्य शीतलम् । शर्करामधुसंमिश्रं रक्तपित्तापहं पिबेत् ॥ २१ ॥
क्षीरेण लाक्षां मधुमिश्रितेन प्रपीय जीर्णे पयसाऽन्नमद्यात् । सद्यो निहन्याद्बुधिरं
क्षतोत्थं कान्तार्जुनानामथवाऽपि कल्कः ॥ २२ ॥ कल्कं मधूकत्रिफलार्जुनानां
निशि स्थितं लोहमये सुपात्रे । साज्यं विलिह्यात्तु पिबेत्सुशीतं सशर्करं छाग-

पयः क्षतार्तः ॥ २३ ॥ वृषपत्राणि निष्पीड्य रसं समधुशर्करम् । अनेन प्र-
शमं याति रक्तपित्तं सुदारुणम् ॥ २४ ॥ मध्वारूपकसरसौ यदि तुल्यभागौ
कृत्वा नरः पिबति पुण्यतरः प्रभाते । तद्रक्तपित्तमतिदारुणमप्यवश्य-
माशु प्रशाम्यति जलैरिव वह्निपुञ्जः ॥ २५ ॥ इति राजमार्तण्डात् । आटरू-
पकनिर्युहः प्रियङ्गुमृत्तिकाञ्जने । विनीय लोभ्रं सक्षौद्रं रक्तपित्तहरं पिबेत्
॥ २६ ॥ पिष्टानां वृषपत्राणां पुटपाको रसो हिमः । मधुयुक्तो जयेद्रक्तपित्त-
कासज्वरक्षयान् ॥ २७ ॥ इति वासापुटपाकः । वासायां विद्यमानायामाशायां
जीवितस्य च । रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति ॥ २८ ॥ वासाकषा-
योत्पलमृत्प्रियङ्गुगुलोध्राञ्जनाम्भोरुहकेसराणि । पीत्वा सिताक्षौद्रयुतानि ज-
ह्यात्पित्तासृजो वेगमुदीर्णमाशु ॥ २९ ॥ आटरूपकमृद्वीकापथ्याक्राथः सश-
र्करः । क्षौद्राढ्यः कसनश्वासरक्तपित्तनिबर्हणः ॥ ३० ॥ मुद्गाः सलाजाः सय-
वाः सङ्कणाः सोशीरमुस्ताः सह चन्दनेन । बलाजले पर्युषितः कषायः स
रक्तपित्तं शमयत्युदीर्णम् ॥ ३१ ॥ ह्रीवेरं धान्यकं शुण्ठी चन्दनं मधुयष्टिका ।
वृषोशीरयुतः काथः शर्करामधुयोजितः ॥ ३२ ॥ रक्तपित्तं जयत्युग्रं तृष्णां दाहं
ज्वरं तथा । उशीरं चन्दनं पाठा द्राक्षा मधुकपिप्पली ॥ ३३ ॥ सक्षौद्रं पाययेत्काथं
रक्तपित्तं हरेद् ध्रुवम् । अमृतमधुकं चैव खर्जूरं गजपिप्पली ॥ ३४ ॥ काथः क्षौद्रयु-
तो ह्येव रक्तपित्तविकारनुत् । चन्दनेन्द्रयवौ पाठा कटुका सदुरालभा ॥ ३५ ॥ गुड-
ची वालुकं लोभ्रं पिप्पलीक्षौद्रसंयुतम् । कफान्वितं जयेद्रक्तं तृष्णाकासज्वरा-
पहम् ॥ ३६ ॥ शतावरी बला रास्ना काश्मर्यं सपरूपकम् । पाययेद्रक्तपि-
त्तघ्नं सद्यः शूलहरं परम् ॥ ३७ ॥ त्रिफलाकृतमालभवं कथनं सितया
मधुना मिलितं हरति । ननु शोणितपित्तरुजं विविधां घनदाहकपित्तजशू-
लदरम् ॥ ३८ ॥ अतसीकुसुमसमझावटप्ररोहास्तृणाम्भसा पीताः । सा-
ध्यति रक्तपित्तं यदि भुङ्क्ते मुद्रयूपेण ॥ ३९ ॥ पकोदुम्बरकाश्मर्यपथ्याखर्जू-
रशोस्तीनीः । मधुना घ्नन्ति संलीढा रक्तपित्तं पृथक्पृथक् ॥ ४० ॥ वासकस्व-
रसैः पथ्या सप्तधा परिभाविता । कृष्णा वा मधुना लीढा रक्तपित्तं दृढं
जयेत् ॥ ४१ ॥ द्रवेण यावता द्रव्यमेकीभूयाऽऽर्द्रतां व्रजेत् । तावत्प्रमाणं
निर्दिष्टं भिषग्भिर्भावनाविधौ ॥ ४२ ॥ अभया मधुसंयुक्ता पाचनी दीपनी
मता । श्लेष्माणं रक्तपित्तं च हन्ति शूलातिसारजित् ॥ ४३ ॥ लोहगन्ध-
निभः श्वास उद्गारे रक्तगन्धिनि । मृद्वीकोषणमात्रां तु खादेद्विगुणशर्कराम्
॥ ४४ ॥ उशीरकालीयकरोध्रपद्मकं प्रियङ्गुका कटफलशङ्खगैरिकाः । पृथ-
क्पृथक्चन्दनतुल्यभागिकाः सशर्करास्तण्डुलधावनप्लुताः ॥ ४५ ॥ रक्तं च
पित्तं तमकं पिपासां दाहं च पीताः शमयन्ति सद्यः ॥ ४६ ॥ पलाशकल्कः
काथो वा सुशीतः शर्करान्वितः । पिबेद्वा मधुसर्पिर्भ्यां गवाश्वशकृतो रसम्
॥ ४७ ॥ सक्षौद्रं ग्रथिते रक्ते लिह्यात्पारावतं शकृत् । अतिनिःसृतरक्तो वा

क्षौद्रेण रुधिरं पिबेत् ॥ ४८ ॥ खदिरस्य प्रियङ्गूणां कोविदारस्य शास्मलेः । पुष्पचूर्णानि मधुना लिह्याद्वा रक्तपित्तनुत् ॥ ४९ ॥ अश्वत्थपत्राग्ररसात्पडंशो बोलोऽथ तस्माद् द्विगुणं मधु स्यात् । रक्तप्रवाहं हृदयस्थितं वा वातो यथाऽभ्रं हरते तथैव ॥ ५० ॥ मूलानि पुष्पाणि च मातुलङ्गयाः समं पिबेत्तण्डुलधावनेन । घ्राणप्रवृत्ते जलमाशु देयं सशर्करं नासिकयोः पयो वा । द्राक्षारसं क्षीरघृतं पिबेद्वा सशर्करं त्विक्षुरसं हितं वा ॥ ५१ ॥ उदुम्बराणि पक्वानि गुडेन मधुनाऽपि वा । उपयुक्तानि निघ्नन्ति नासारक्तं नृणां ध्रुवम् ॥ ५२ ॥ नस्यं दाडिमपुष्पोत्थो रसो दूर्वाभवोऽथवा । आम्नास्थिजः पलाण्डोर्वा नासिकासुतरक्तजित् ॥ ५३ ॥ हरीतकी दाडिमपुष्पदूर्वा लाक्षारसो नस्यविधानयोगात् । निवारयत्येव चिरप्रवृत्तमप्याशु नासान्तरशोणितौघम् ॥ ५४ ॥ नासाप्रवृत्तरुधिरं घृतभृष्टं श्लक्ष्णपिष्टमामलकम् । सेतुरिव रुधिरवेगं रुणद्धि मूर्ध्नि प्रलेपेन ॥ ५५ ॥ प्रियङ्गुर्मुक्तिका लोध्रमज्जनं चेति चूर्णयेत् । तच्चूर्णं योजयेत्तत्र नस्ये क्षौद्रसमन्वितम् ॥ ५६ ॥ नासिकासुखपायुभ्यो योनिमेढ्राच्च वेगितम् । रक्तपित्तस्रवं हन्ति सिद्ध एष प्रयोगराट् ॥ ५७ ॥ यत्र शस्त्रक्षते नैव रक्तं तिष्ठति वेगितम् । तदप्यनेन चूर्णेन तिष्ठत्येवावचूर्णितम् । मेढूतोऽतिप्रवृत्तेऽस्त्रे बस्तिरुत्तर इष्यते ॥ ५८ ॥

अथ दूर्वाद्यं घृतम् ।

दूर्वामुत्पलकिञ्जल्कं मज्जिष्ठां सैलवालुकाम् । शिवांलोध्रमुशीरं च मुस्तां चन्दनपद्मके ॥ १ ॥ विपचेत्कार्षिकैः कल्कैर्घृतप्रस्थं सुखाग्निना । तण्डुलास्तु ह्यजाक्षीरं दत्त्वा चैव चतुर्गुणम् ॥ २ ॥ तत्पानाद्भमतो रक्तं नावनान्नासिकागतम् । कर्णाभ्यां यस्य गच्छेच्च तस्य कर्णौ प्रपूरयेत् ॥ ३ ॥ चक्षुःक्ष्माविणि रक्ते च पूरयेत्तेन चक्षुषी । मेढूपायुप्रवृत्तेषु बस्तिकर्म प्रकाशयेत् । रोमकूपप्रवृत्ते च तदभ्यङ्गे प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥ इति दूर्वाद्यं घृतम् ।

अथ वासादिघृतम् ।

वासां संशाखां सदलां समूलां कृत्वा कषायं कुसुमानि चास्याः । प्रदाय कल्कं विपचेद् घृतं च सक्षौद्रमाश्वेव निहन्ति रक्तम् ॥ १ ॥ इति वासादिघृतम् । घ्राणस्य कोविदारस्य वृषस्य ककुभस्य च । कल्काढ्यत्वात्पुष्पकल्कं प्रस्थे पलचतुष्टयम् ॥ २ ॥ इति वृन्दात् । सनास्यकोविदारस्य वृषस्य कुसुमस्य च । कल्काढ्यत्वात्प्रशंसन्ति पुष्पकल्कं चतुष्पलम् ॥ ३ ॥ इति योगतरङ्गिण्याः ।

अथ शतावरीघृतम् ।

शतावरी दाडिमतित्तिडीकं काकोलिकन्दं मधुकं विदारी । पिष्ट्वा च मूलं फलपूरकस्य पचेद्घृतं क्षीरचतुर्गुणं तत् । कासज्वरोन्मादविबन्धशूलं तद्रक्तपित्तं विविधं निहन्ति ॥ १ ॥ इति शतावरीघृतम् ।

अथ चन्दनादिचूर्णम् ।

चन्दनं नलदं लोध्रमुशीरं पद्मकेसरम् । नागपुष्पं च बिल्वं च भद्रमुस्तं सशर्करम् ॥ १ ॥ ह्रीबेरं चैव पाठा च कुटजोत्पलमेव च । शृङ्गबेरं सातिविषा धातकी सरसाञ्जनम् ॥ २ ॥ आम्रास्थिजम्बुसारास्थि तथा मोचरसोऽपि च । नीलोत्पलं समझा च सूक्ष्मैला दाडिमत्वचः ॥ ३ ॥ चतुर्विंशतिरेतानि समभागानि कारयेत् । तण्डुलोदकसंयुक्तं मधुना सह योजयेत् ॥ ४ ॥ योगं लोहितपित्तानामर्शसां गरिणां तथा । मूर्छामदोपसृष्टानां तृष्णार्तानां प्रदापयेत् ॥ ५ ॥ अतिसारं तथा छादं स्त्रीणां चापि रजोग्रहे । प्रच्युतानां च गर्भाणां स्थापनं परमिष्यते । अश्विनोः संमतो योगो रक्तपित्तनिवर्हणः ॥ ६ ॥ इति चन्दनादिचूर्णम् ॥

अथैलादिगुटिका ।

एला पत्रं त्वचा द्राक्षा पिप्पल्यर्धपलं तथा । शिवामधुकखजूरमृद्वीकाश्च पलोन्मिताः ॥ १ ॥ संचूर्ण्य मधुना युक्तां गुटिकां संप्रकल्पयेत् । अक्षमात्रां ततश्चैकां भक्षयेत्तां दिने दिने ॥ २ ॥ कासं श्वासं ज्वरं हिक्रां छादं मूर्छां मदं भ्रमम् । रक्तनिष्ठीवनं तृष्णां पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ ३ ॥ शोषं प्लीहोर्ध्ववातं च स्वरभेदं क्षतं क्षयम् । गुटिका तर्पणी वृष्या रक्तपित्तं विनाशयेत् ॥ ४ ॥ इत्येलादिगुटिका ॥

अथ कूष्माण्डावलेहः ।

कूष्माण्डकात्पलशतं सुखिन्नं निष्कुलीकृतम् । पचेत्तप्ते घृतप्रस्थे पात्रे तान्मये दृढे ॥ १ ॥ यदा मधुनिभः पाकस्तदा खण्डशतं न्यसेत् । पिप्पली शृङ्गबेरं च द्वे पले जीरकस्य च ॥ २ ॥ त्वगेलापत्रमरिचधान्यकानां पलार्धकम् । न्यसेच्चूर्णीकृतं तत्र दर्व्यां संघट्टयेत्ततः ॥ ३ ॥ लेहीभूते सुशीते च दद्यात्क्षौद्रं घृतार्धकम् । क्षौद्रार्धकां सितां केचिद्द्राक्षां केचित्सितार्धकाम् ॥ ४ ॥ द्राक्षार्धानि लवङ्गानि कर्षं कर्पूरकं क्षिपेत् । तद्यथाग्निबलं खादेद्रक्तपित्ती क्षतक्षयी ॥ ५ ॥ कासश्वासतमश्छर्दिर्तृष्णाज्वरनिपीडितः । वृष्यं पुनर्नवकरं बलवर्णप्रसाधनम् ॥ ६ ॥ उरस्संधानकरणं बृंहणं स्वरबोधनम् । अश्विभ्यां निर्मितं श्रेष्ठं कूष्माण्डकरसायनम् ॥ ७ ॥ इति कूष्माण्डावलेहः ॥

अथ खंडकूष्माण्डकः ।

खण्डकामलकाद्राहोरसःप्रस्थद्वयोन्मितः । खण्डकूष्माण्डके कंसः स्विन्नकूष्माण्डकद्रवात् ॥ १ ॥ अन्यत्र खण्डकूष्माण्डात्संमतः सकलो रसः ॥ पञ्चाशच्च पलं स्विन्नकूष्माण्डात्प्रस्थमाज्यतः ॥ २ ॥ पक्वं पलशतं खण्डं वासाकाथाढके पचेत् । शिवा धात्री घनं भार्गी त्रिसुगन्धैश्च कार्ष्णिकैः ॥ ३ ॥ तालीसविश्वधान्याकमरीचैश्च पलांशकैः । पिप्पलीकुडवं चैव मधुना सह दापयेत् ॥ ४ ॥ कासं श्वासं ज्वरं हिक्कां रक्तपित्तं हलीमकम् । हृद्रोगमम्लपित्तं च पीनसं च व्यपोहति ॥ ५ ॥ इति खंडकूष्माण्डः ।

अथ वासाखण्डः ।

तुलामादाय वासायाः पचेदष्टगुणे जले । तेन पादावशेषेण पाचयेदाढकं भिषक् ॥ १ ॥ चूर्णीनामभयानां च खण्डं शतपलं तथा । शीतीभूते निदध्यात्तु क्षौद्रस्याष्टौ पलानि च ॥ २ ॥ वंशोद्भवायाश्चत्वारि पिप्पली द्विपलं तथा । चातुर्जातपलं त्वेकं चूर्णितं तत्र दापयेत् ॥ ३ ॥ रक्तपित्तं निहन्याशु कासं श्वासं तथा क्षयम् । विद्वधिं जठरं गुल्मं तृष्णाहृद्रोगपीनसान् ॥ पलाधं भक्षणं चास्य यथेष्टं तत्र भोजनम् ॥ ४ ॥

अथ खण्डकाद्यवलेहः ।

शतावरी मुण्डिनिकाबलामृताफलत्वचः पुष्करमूलभार्गी । वृषो बृहत्यां खदिरस्य मूलं पृथक्पृथक्पञ्च पलानि चात्र ॥ १ ॥ पक्वं जलद्रोणमितेऽष्टमांशं यावद्भवेच्छेषमथैव पूतम् । विमूर्छितस्यापि निधाय धीमान्पलानि च द्वादश माक्षिकस्य ॥ २ ॥ पलं सुवर्णस्य च लोहजस्य विद्याद्वितं खण्डघृतं च तुल्यम् । देयं पलं षोडशकं विधिज्ञो विपाचयेल्लोहमये कटाहे ॥ ३ ॥ गुडेन तुल्यं च यदा भवेत्तदा तुगा विडङ्गं मगधा च शुण्ठी । द्वे जीरके कर्कटकं फलत्रिकं धान्यं मरीचं सकणा सकेसरम् ॥ ४ ॥ पलं प्रमाणं विदधीत तत्पृथक्सुघटितं चूर्णमिदं घृतेन । स्निग्धे कटाहे प्रणिधाय युञ्ज्यात्कर्षप्रमाणं विहितावलेहं ॥ ५ ॥ प्रभातकाले त्वनुदुग्धपानं गुरुणि चान्नानि च भोजनानि । रक्तं सपित्तं सहसा निहन्ति रक्तप्रवाहं च सरक्तशूलम् ॥ ६ ॥ रक्तातिसारं रुधिरग्रमेहं तथैव बस्तौ विहितं नराणाम् । भगंदरार्शः श्वयथुं निहन्ति तथाऽम्लपित्तं किल राजरोगम् ॥ ७ ॥ विशेषतः कुष्ठरूजश्च गुल्मान्बलप्रदं वृष्यतमं प्रदिष्टम् ॥ ८ ॥ इति खण्डकाद्यवलेहः ।

१ खंडकूष्माण्डके लेहे आमलकरसः प्रस्थद्वयं कूष्माण्डरसः कंसः (प्रस्थचतुष्टयं) एतद्रसद्वयं खंडकूष्माण्डादन्यत्र स्थाप्य अनंतरं प्रस्थमिते आज्ये खंडकूष्माण्डं पंचाशत्पलमितं भजेयित्वा च पाको विधेयः इत्यन्यः ।

अथ रसाः ।

रक्तपित्तकुलकुठारः—शुद्धपारदबलिप्रवालकं हेममाक्षिकभुजंगरङ्गकम् ।
सारितं सकलमेतदुत्तमं भावयेत्पृथक्पृथक्द्रवैस्त्रिंशः ॥ १ ॥ चन्दनस्य कमलस्य
मालतीकोरकस्य वृषपल्लवस्य च । धान्यवारणकणाशतावरीशालमलीवटजटा-
मृतस्य च ॥ २ ॥ रक्तपित्तकुलकण्डनाभिधो जायते रसवरोऽस्त्रपित्तिनाम् ।
प्राणदो मधुवृषद्रवैरयं सेवितस्तु वसुकृष्णलैर्मितः । नास्त्यनेन समसत्र
भूतले भेषजं किमपि रक्तपित्तिनाम् ॥ ३ ॥ इति रक्तपित्तकुलकुठारो रसः ।

अथ वासासूतः ।

आटरूपनवपल्लवद्रवे पालिके सरसभस्मवल्लकम् । कर्पसंमितमधुप्रयोजितं
प्राश्य नाशयति रक्तपित्तकम् ॥ १ ॥ इति वासासूतः ।

अथ बोलपर्पटीरसः

सूतगन्धकसुकज्जलिकायाः पर्पटी समयुता समभागम् । बोलचूर्णविहितं
प्रतिवाप्यं स्याद्रसोऽयमसृगामयहारी ॥ १ ॥ वल्लयुग्मयुगुलं प्रतिदेयं शर्कराम-
धुयुतः किल दत्तः । रक्तपित्तगुदजासृतियोनिस्त्रावमाशु विनिवारयतीशः ॥ २ ॥

इति बोलपर्पटीरसः

अथ सुधानिधिरसः ।

गन्धं सूतं माक्षिकं लोहचूर्णं सर्वं घृष्टं त्रैफलेनोदकेन । लौहे पात्रे गोपय-
स्थं च कृत्वा रात्रौ दद्याद्रक्तपित्तप्रशान्त्यै ॥ १ ॥ इति सुधानिधिरसः । यच्च
पित्तज्वरे प्रोक्तं बहिरन्तश्च भेषजम् । रक्तपित्ते हितं तच्च क्षतक्षीणे हितं च
यत् ॥ २ ॥ इति रक्तपित्तचिकित्सा ।

अथ राजयक्ष्मनिदानम् ।

अनेकरोगानुगतो बहुरोगपुरोगमः । राजयक्ष्मा क्षयः शोषो रोगराडिति च
स्मृतः ॥ १ ॥ नक्षत्राणां द्विजानां च राज्ञो भूयदयं पुरा । यच्च राजा च य-
क्ष्मा च राजयक्ष्मा ततो मतः ॥ २ ॥ राज्ञश्चन्द्रमसो यस्माद्भूदेष्ट किलाऽऽ-
मयः । तस्मात्तं राजयक्ष्मेति प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ३ ॥ देहौषधक्षयकृतेः
क्षयस्तत्संभवाच्च सः । रसादिशोषणाच्छोषो रोगराट् तेषु राजनात् ॥ ४ ॥

अथ तत्र कारणचतुष्टयमाह—

वेगरोधान्क्षयाच्चैव साहसाद्विषमाशनात् । त्रिदोषो जायते यक्ष्मा गदो हे-
तुचतुष्टयात् ॥ १ ॥ यावद्दोषा रसस्थानं नाऽऽमुवन्ति विशेषतः ॥ २ ॥ न
भजेच्च ज्वरस्तावद्दोषे प्राप्ते प्रवर्तते । कफप्रधानैर्दोषैस्तु रुद्धेषु रसवर्त्मसु ॥ ३ ॥
अतिव्यवायिनो वाऽपि क्षीणे रेतस्यनन्तराः । क्षीयन्ते धातवः सर्वे ततः शु-
ष्यति मानवः ॥ ४ ॥

पूर्वरूपमाह—

श्वासाङ्गसादकफसंस्ववतालुशोषवम्यग्निसादमदपीनसकासनिद्राः । शोषे भविष्यति भवन्ति स चापि जन्तुः शुक्लेक्षणो भवति मांसपरो रिरंसुः ॥ १॥ स्वप्नेषु काकशुकशलकिनीलकण्ठगृध्रास्तथैव कपयः कृकलासकाश्च । तं वाहयन्ति स नदीर्विजलाश्च पश्येच्छुष्कांस्तरुन्पवनधूमदवादितांश्च ॥ २ ॥ त्रिरूपं दर्शयन्नाह—अंसपार्श्वाभितापश्च संतापः करपादयोः । ज्वरः सर्वाङ्गगश्चेति लक्षणं राजयक्ष्मणः ॥ १ ॥ अग्निमान्द्यं ज्वरः शैत्यं वान्तिः शोणितपूययोः । सत्त्वहानिश्च दौर्बल्यं रोगराजस्य लक्षणम् ॥ २ ॥ एकादश रूपाण्याह—स्वरभेदोऽनिलाच्छूलं संकोचश्चांसपार्श्वयोः ॥ ज्वरो दाहोऽतिसारश्च पित्ताद्रक्तस्य चाऽऽगमः ॥ ३ ॥ शिरसः परिपूर्णत्वमभक्तच्छन्द एव च । कासः कण्ठस्य चोद्ध्वंसो विज्ञेयः कफकोपतः ॥ ४ ॥ तस्य षड्रूपाण्याह—भक्तद्वेषो ज्वरः कासः श्वासः शोणितदर्शनम् । स्वरभेदश्च जायन्ते षड्रूपे राजयक्ष्मणि ॥ ५ ॥ साध्यासाध्यत्वमाह—एकादशभिरेतैर्वा षड्भिर्वाऽपि समन्वितम् । कासातिसारपार्श्वातिस्वरभेदारुचिज्वरैः ॥ ६ ॥ त्रिभिर्वा पीडितं लिङ्गैर्ज्वरकासासृगामयैः । जह्याच्छोषादितं जन्तुमिच्छन्सुविपुलं यशः ॥ ७ ॥ सर्वैरधैस्त्रिभिर्वाऽपि लिङ्गैर्मांसबलक्षये । युक्तो वर्ज्यश्चित्स्यस्तु सर्वरूपोऽप्यतोऽन्यथा ॥ ८ ॥ महाशनं क्षीयमाणमतीसारनिपीडितम् । शूनमुष्कोदरं चैव यक्ष्मिणं परिवर्जयेत् ॥ ९ ॥ उपक्रमेदात्मवन्तं दीप्ताग्निमकृशं नवम् । शुक्लाक्षमन्नद्वेष्टारमूर्ध्वश्वासनिपीडितम् ॥ १० ॥ कृच्छ्रेण बहु मेहन्तं यक्ष्मा हन्तीह मानवम् । अन्यक्षयानाह—व्यवायशोकवार्धक्यव्यायामाध्वप्रशोषितान् ॥ ११ ॥ व्रणोरःक्षतसंज्ञौ च शोषिणौ लक्षणैः शृणु । व्यवायशोषी शुक्रस्य क्षयलिङ्गैरुपद्रुतः ॥ १२ ॥ पाण्डुदेहो यथापूर्वं क्षीयन्ते चास्य धातवः । प्रधानशीलः स्वस्ताङ्गः शोकशोष्यपि तादृशः ॥ १३ ॥ चिन्ताशुक्रक्षयकृतैर्विकारैरुपलक्षितः ॥ १४ ॥ जराशोषिलक्षणमाह—जराशोषी कृशो मन्दवीर्यबुद्धिबलेन्द्रियः । कम्पनोऽरुचिमान्निभन्नकांस्यपात्रहतस्त्वनः १५ ॥ घृणवति श्लेष्मणा हीनं गौरवारतिपीडितः । संप्रलुताक्षिनासास्यः शुष्करुक्षमलच्छविः ॥ १६ ॥ अध्वशोषिणमाह—अध्वप्रशोषी स्वस्ताङ्गः संभृष्टप्ररुषच्छविः । प्रसुप्तगात्रावयवः शुष्कक्लोमगलाननः ॥ १७ ॥ व्यायामशोषिलक्षणमाह—व्यायामशोषी भूयिष्ठमेभिरेव समन्वितः । लिङ्गैरुरःक्षतकृतैः संयुक्तश्च क्षताद्विना ॥ १८ ॥ व्रणशोषिणमाह—रक्तक्षयाद्वेदनाभिस्तथैवाऽऽहार-

१ शुक्रस्य क्षयलक्षणमाह—शुक्रक्षये रतेऽशक्तिर्व्यथा शेफसि मुष्कयोः ॥ चिरेण शुक्रसेकः स्यात्सेके रक्ताल्पशुक्रता । २ क्षीणशुक्रस्य पुरुषस्य लक्षणमाह—दौर्बल्यं मुखशोषश्च पाण्डुत्वं सदनं भ्रमः । क्लैब्यं शुक्रविसर्गश्च क्षीणशुक्रस्य लक्षणम् ।

यन्त्रणात् । व्रणिनश्च भवेच्छोषः स चासाध्यतमो मतः ॥ २१ ॥ परं दिनसहस्रं तु यदि जीवति मानवः । सुभिषग्भिरुपक्रान्तस्तरुणः शोषपीडितः ॥ २२ ॥ मलायत्तं बलं पुंसां शुक्रायत्तं तु जीवितम् । तस्माद्यत्नेन संरक्षेद्यक्षिणो मलरे-
तसी ॥ २३ ॥ इति राजयक्ष्मनिदानम् ।

अथातो राजयक्ष्मचिकित्सां व्याख्यास्यामः ।

किंचिल्लिङ्गयुतं दीप्तपावकं त्वक्कशं नरम् । उपाचरेदात्मवन्तं यक्षिणं साध्यलक्षणम् ॥ १ ॥ अर्धलिङ्गैः कृच्छ्रसाध्यं सर्वलिङ्गैः परित्यजेत् । यक्षि-
णं शुक्लनयनं तथा भक्तद्विषं कृशम् ॥ २ ॥ तथोर्ध्वश्वासिनं कृच्छ्रं मेहन्तं परिवर्जयेत् । अतिव्यवायिनो वापि क्षीणे रेतस्यनंतराः । क्षीयन्ते धातवः सर्वे ततः शुष्यति मानवः ॥ ३ ॥ व्यवायशोषिणं क्षीररसमांसाज्यभोजनैः । मुकुलैर्मधुरैर्गन्धैर्जीवनीयैरुपाचरेत् ॥ ४ ॥ व्रणशोषं जयेत्स्निग्धैर्दीपनैः स्वादु-
शीतलैः । दीपनैर्लघुभिश्चात्रैः शोकशोषमुपाचरेत् ॥ ५ ॥ हर्षणाश्वासनैः क्षीरैः स्निग्धैर्मधुरशीतलैः । आस्यासुखैर्दिवास्वप्नशीतैर्मधुरबृंहणैः ॥ ६ ॥ तत्र मांसरसाहारैरध्वशोषिणमाचरेत् । ईषदम्लैरनम्लैर्वा यूषमांसरसादिभिः ॥ ७ ॥ व्यायामशोषिणं स्निग्धैः क्षतक्षयहितैर्हिमैः । उपचारैर्जीवनीयैर्वि-
धिना श्लेष्मिकेण तु ॥ ८ ॥ बलिनो बहुदोषस्य वमनं रेचनं तथा । वातश्ले-
ष्महरं क्वाथं दद्याद्दोषापहं पुरा ॥ ९ ॥ यक्षिणः क्षीणदेहस्य यत्कृतं स्याद्वि-
षोपमम् । वृन्ताकं कारवेह्यं च तैलं बिल्वं च राजिकाम् ॥ १० ॥ मैथुनं च दिवा निद्रां क्षयी कोपं च वर्जयेत् । शालिपष्टिकगोधूमयवमुद्गादयः शुभाः ॥ ११ ॥ मद्यानि जाङ्गलाः पक्षिमृगाः शस्ता विशुष्यतः । मूलकानां कुल-
त्थानां यूषैर्वा सूपसंस्कृतैः ॥ १२ ॥ सपिप्पलीकं सयवं सकुलत्थं सनागरम् । दाडिमामलकोपेतं स्निग्धमाजरसं पिबेत् ॥ १३ ॥ तेन षड् विनिवर्तन्ते वि-
काराः पीनसादयः । सधान्ययवगोधूममुद्गाश्चापि सदा हिताः ॥ १४ ॥ स्त्रियश्चतुष्पदे श्रेष्ठाः पुमांसो विहगा मताः । हरिणच्छागमांसं तु श्लक्ष्णचू-
र्णीकृतं शुभम् ॥ १५ ॥ अजाक्षीरेण पातव्यं क्षयव्याधिनिवारणम् । छाग-
मांसं पयश्छागं सर्पिश्छागं सशर्करम् । छागोपसेवा सततं छागमध्ये तु य-
क्ष्मनुत् ॥ १६ ॥

अथ षडङ्गयूषः ।

द्रव्यतो द्विगुणं मांसं सर्वतोऽष्टगुणं जलम् । पादस्थं संस्कृतं चाऽऽज्ये षडङ्गो यूष उच्यते ॥ १ ॥ इति षडङ्गयूषः । धान्यकं पिप्पलीविश्वदशमूली-
जलं पिबेत् । पार्श्वशूलज्वरश्वासपीनसादिनिवृत्तये ॥ १ ॥ दशमूलबलाराज्जा-

पुष्करामरदारुनागरैः कथितम् । पेयं पार्श्वसशिरोरुक्षतकासादिशान्तये सलिलम् ॥ २ ॥ इति दशमूलादिः । ककुभत्वग्नागबलावातारिबीजानि चूर्णितं पीतम् । पक्वं मधुघृतयुक्तं ससितं यक्ष्मादिकासहरम् ॥ १ ॥ अश्वगन्धामृताभीरुदशमूली बलावृषम् । पुष्कराऽतिबला घ्नन्ति क्षयं क्षीररसाशिनः ॥ २ ॥

अथ तालीसाद्यं चूर्णम् ।

तालीसपत्रं मरिचं नागरं पिप्पली तुगा । यथोत्तरं भागवृद्ध्या त्वगेले चार्धभागिके ॥ १ ॥ पिप्पल्यष्टगुणा चात्र प्रदेया सितशर्करा । कासश्वासारुचिहरं तच्चूर्णं दीपनं परम् । पाण्डुहृद्ग्रहणीदोषप्लीहशोषज्वरापहम् ॥ २ ॥

अथ सितोपलाद्यं चूर्णम् । सितोपला षोडश स्यादष्टौ स्याद्वंशरोचना । पिप्पली स्याच्चतुष्कर्षा एला स्याच्च द्विकर्षिका ॥ १ ॥ एककर्षस्त्वचः कार्यश्चूर्णयेत्सर्वमेकतः । सितोपलादिकं चूर्णं मधुसर्पियुतं लिहेत् ॥ २ ॥ कासश्वासक्षयहरं हस्तपादाङ्गदाहजित् । मन्दाग्निं सुसजिह्वत्वं पार्श्वशूलमरोचकम् । ज्वरमूर्ध्वगतं रक्तपित्तमाशु व्यपोहति ॥ ३ ॥

अथ लवङ्गादिचूर्णम् । लवङ्गकंकोलमुशीरचन्दनं नतं सनीलोत्पलकृष्णजीरकम् । एला सकृष्णागरभृङ्गकेसरं कणा सविश्वा नलदं सहाम्बुना ॥ १ ॥ कर्पूरजातीफलवंशरोचनं सितार्धभागं समसूक्ष्मचूर्णितम् । संरोचनं तर्पणमग्निदीपनं बलप्रदं वृष्यतमं त्रिदोषनुत् ॥ २ ॥ उरोविबन्धं तमकं गलग्रहं सकासहिध्मारुचि यक्ष्मपीनसम् । ग्रहण्यतीसारमथासृजः क्षयं प्रमेहगुल्मांश्च निहन्ति सत्वरम् ॥ ३ ॥

अथ कर्पूराद्यं चूर्णम् । कर्पूरचोचकङ्कोलजातीफलदलाः समाः । लवङ्गमांसीमरिचकृष्णाशुण्ठ्यो विवर्धिताः ॥ ४ ॥ चूर्णं सितासमं ग्राह्यं सदाहक्षयकासजित् । वैस्वर्यपीनसश्वासच्छर्दिकण्ठामयापहम् । प्रयुक्तं चान्नपानैर्वा भेषजद्वेषिणां हितम् ॥ २ ॥ इति हृदयदाहे कर्पूराद्यं चूर्णम् ।

अथैलादिचूर्णम् ।

एला पत्रं नागपुष्पं लवङ्गं भागस्त्वेषां द्वौ च खर्जूरकस्य । द्राक्षायष्टीशर्करापिप्पलीनां चत्वारस्तत्क्षौद्रयुक्तं क्षये स्यात् ॥ १ ॥

अथाश्वगन्धाचूर्णम् ।

अश्वगन्धादशपलं तदर्धं नागरान्वितम् । तदर्धकणया युक्तं मरीचं च तदर्धकम् ॥ १ ॥ चातुर्जातं वरालं च भार्गीतालीसपत्रकम् । कचोराजाजिकैड्यमांसीकङ्कोलमुस्तकम् ॥ २ ॥ रास्ना कटुकरोहिण्या जीवन्ती कुष्ठकं तथा । पृथक् कर्षमितं चूर्णं चूर्णेन समशर्करा ॥ ३ ॥ प्रातःकाले

त्विदं चूर्णं जलेनोष्णेन सेवयेत् । वातक्षये पित्तशोषे त्वजागोघृतसंयुतम् ॥ ४ ॥ श्लेष्मक्षये क्षौद्रयुतं नवनीतेन मेहजित् । शिरोभ्रमे च पित्तातें गो-
क्षीरेण समायुतम् ॥ ५ ॥ क्षतक्षीणे च देहे च विशेषबलवर्धनम् । मेदोहरं
च मन्दाग्निकुक्षिशूलोदरापहम् । अनुपानविशेषेण सर्वरोगहरं परम् ॥ ६ ॥

अथ द्राक्षादिचूर्णम् ।

द्राक्षालाजसितोत्पलं समधुकं खर्जूरगोपीतुगाहीबेरामलकाब्दचन्दननतं
कङ्कोलजातीफलम् । चातुर्जातकणा सधान्यकमिदं चूर्णं समां शर्करां प्रात-
र्भक्षितमात्मकेन विधिना पित्तं सदाहं जयेत् ॥ १ ॥ मूर्छां छर्दिमरोचकं च
शमयेत्कायस्य कान्तिप्रदं पाण्डुं कामलरक्तपित्तमुदरं दाहज्वरारोचकम् ।
यक्ष्माणं रुधिरप्रमेहहरणं तद्योनिदोषापहं रक्ताशोमदवृद्धिविद्रधिहरं द्राक्षा-
दिचूर्णोत्तमम् ॥ २ ॥ यवगोधूमचूर्णं वा क्षीरसिद्धं घृतशुतम् । सक्तून्वा स-
र्पिषा क्षौद्रसिताक्तान्क्षयशान्तये ॥ ३ ॥

अथ चतुर्दशाङ्गलोहम् ।

रास्नाकपूरतालीसं भेकपर्णी शिलाजतु । त्रिकटु त्रिफला मुस्ता विडङ्गद-
हनाः समाः ॥ १ ॥ चतुर्दशायसो भागास्तच्चूर्णं सधुसर्पिषा । लीढं कासं
ज्वरं श्वासं राजयक्ष्माणमेव च । बलवर्णाग्निपुष्टीनां वर्धनं दोषनाशनम् ॥ २ ॥

अथ बृहन्नवायसम् ।

त्रिकटुत्रिफलैलाभिर्जातीफललवङ्गकैः । नवभागोन्मितैरेतैः समं तीक्ष्णं
मृतं भवेत् ॥ १ ॥ संचूर्ण्याऽऽलोडयेत्क्षौद्रे नित्यं यः सेवते नरः । कासं
श्वासं क्षयं मेहं पाण्डुरोगं भगंदरम् । ज्वरं मन्दानलं शोथं संमोहं ग्रहणीं
जयेत् ॥ २ ॥

अथ शिलाजतुयोगः ।

फलत्रिककाथविशुद्धमादौ शीघ्रं गुड्या दशमूलसिद्धम् । स्थिरादिका-
कोलियुगादिसिद्धं शिलाजतु स्यात्क्षयिषु प्रशस्तम् ॥ १ ॥ द्राक्षाखर्जूरसर्पि-
र्भिः पिप्पल्या च सह स्मृतम् । सक्षौद्रं ज्वरकासघ्नं स्वयं चैतत्प्रयोजयेत्
॥ २ ॥ मधुताप्यविडङ्गाश्मजतुलोहघृताभयम् । हन्ति यक्ष्माणमत्युग्रं सेव्य-
मानं हिताशिना ॥ ३ ॥ शिलाजतुमधुव्योषताप्यलोहरजांसि च । क्षीरयुगले-
हिनश्चाऽऽशु क्षयः क्षयमवाप्नुयात् ॥ ४ ॥ कृष्णाद्राक्षासितालेहः क्षये वा
क्षौद्रतैलवान् । मधुसर्पिर्युतो वाऽश्वगन्धाकृष्णासितोद्भवः ॥ ५ ॥ कृष्मा-
ण्डकगिरोत्थेन रसेन परिपेषितम् । लाक्षाकर्षद्वयं पीत्वा जयेद्रक्तक्षयं तथा
॥ ६ ॥ शतपुष्पा समधुकं कुष्ठं तगरचन्दनम् । आलेपनं स्यात्सघृतं शिरः-

पादवांसशूलनुत् ॥ ७ ॥ अश्वत्थवल्कलं चैव त्रिकटु लोहकिट्टकम् । गुडेन सह दातव्यं क्षयरोगविनाशनम् ॥ ८ ॥

अथ चिकित्साकलिकातश्चयवनप्राश्यावलेहः—द्विपञ्चमुलीजलसिद्धमाज्यं वासाघृतं वाऽप्यथ षट्पलं च । पेयं हि तच्छागलगव्यतोऽथ प्रयुज्यते नागबलाभिधानम् ॥ १ ॥ शृङ्गीतामलकीफलत्रिकबलाछिन्नाविदारीसटीजीवन्तीदशमूलचन्दनघनैर्नीलोत्पलैलाघृषैः । मृद्वीकाष्टकवर्गपौष्करयुतैः सार्धं पृथक्पालिकैरष्टोनानि शतानि पञ्च विपचेद्वात्रीफलानामपः ॥ २ ॥ उद्धृत्याऽऽमलकानि तैलघृतयोः षड्भिश्च षड्भिः पलैर्भृष्टान्यर्धतुलं निधाय विधिवन्मत्स्यण्डिकायाः पचेत् । शीते षण्मधुनः पलानि कुडवो वांश्याश्चतुर्जाततो-मुष्टिर्मागधिकापलद्वयमयं प्राश्यः स्मृतश्चयावनः ॥ ३ ॥ न शोषः साफल्यं व्रजति वपुषि क्षीणमनसो न मूर्च्छा नो छर्दिस्तदपि च न च श्वासकसनम् । न चालक्ष्मीर्विघ्नः कचिदपि च न व्यापदभयं प्रयोगादेतस्मान्मनसिजधियो विभ्रति मनः ॥ ४ ॥ इति चयवनप्राश्यः ।

अथ खण्डपिप्पल्यवलेहः—कृष्णाग्रस्थं पचेच्चाऽऽढकपयसि घृतस्या-ज्जलिं खण्डपात्रं दत्त्वा लेहोऽयमस्मिन्सुरकुसुमचतुर्जातविश्वोषणादीन् । ग्रन्थिश्रीखण्डयष्टीमधुमसृणजलं जातिकोशं च कर्षं प्रत्येकं चूर्णयित्वा मधुकुडवयुतः स्याच्च कृष्णावलेहः ॥ १ ॥ आदौ मन्दाग्निकाशे हरति स च शिशुस्त्रीजरन्मानुषेषु प्रायो वृष्यः क्षयाद्ये विपुलबलकरो दीपनः पाचनश्च । कासश्वासांश्च मेहक्षयरुगतिर्तृषाकामलापाण्डुकण्डूह्रीहाजीर्णज्वरां-श्चानिलकफविकृतिं रक्तपित्तं च हन्यात् ॥ २ ॥

अथ वासावलेहः—तुलामादाय वासायाः पचेदष्टगुणे जले । तेन पादावशेषेण पाचयेदाढकं भिषक् ॥ १ ॥ चूर्णानामभयानां तु खंडात्पलशतं तथा । द्वे पले पिप्पलीचूर्णात्सिद्धे शीते च माक्षिकात् ॥ २ ॥ कुडवं पलमानं तु चातुर्जातं सुचूर्णितम् । क्षिप्त्वाऽवलोडितं खादेद्रक्तपित्तक्षतक्षयी । कास-श्वासगृहीतश्च यक्ष्मणा च विशेषतः ॥ ३ ॥ इति वासावलेहः ।

शार्ङ्गधरादगस्त्यवलेहः—हरीतकीशतं भद्रं यवानामाढकं तथा । पलानां दशमूलस्य विंशतिं च नियोजयेत् ॥ १ ॥ चित्रकः पिप्पलीमूलम-पामार्गः सटी तथा । कपिकच्छुः शङ्खपुष्पी भार्गी च गजपिप्पली ॥ २ ॥ बला पुष्करमूलं च पृथग्द्विपलमात्रया । पचेत्पञ्चाढके नीरे यवैः स्विन्नैः शृतं नयेत् ॥ ३ ॥ तच्चाभयाशतं दद्यात्काये तस्मिन्विचक्षणः । सर्पिसैलाष्टपलिकं क्षिपेद्बुडतुलं तथा ॥ ४ ॥ पक्त्वा लेहत्वमानीय सिद्धशीते पृथक्पृथक् । क्षौद्रं च पिप्पलीचूर्णं दद्यात्कुडवमात्रया ॥ ५ ॥ हरीतकीद्वयं खादेत्तेन लेहेन नित्यशः । क्षयं कासं ज्वरं श्वासं हिक्काशोरुचिपीनसान् ॥ ६ ॥ ग्रहणीं

नाशयत्येष वलीपलितनाशनः । बलवर्णकरः पुंसामवलेहो रसायनम् ॥ ७ ॥
विहितोऽगस्त्यमुनिना सर्वरोगप्रणाशनः । शर्करामधुसंयुक्तं नवनीतं लिह-
न्क्षयी । क्षीराशी लभते पुष्टिमतुल्ये चाऽऽज्यमाक्षिके ॥ ८ ॥

अथ शिवगुटिका ।

त्रीन्वारान्प्रथमं शिलातु जले भाव्यं भवेन्नैफले निःकाथे दशमूलजेऽथ तद-
नु चिह्नोद्भवया रसे । वाट्यालकथने पटोलसलिले यष्टीकषाये पुनर्गोमूत्रेऽथ
पयस्यथापि च गवामेषां कषाये ततः ॥ १ ॥ द्राक्षाभीरुविदारिकाद्वयपृथक्प-
र्णीस्थिरापौष्करैः पाठाकौटजकर्कटाख्यकटुकारास्त्राम्बुदालम्बुषैः । दन्तीचित्रक-
चन्यवारणकणावीराष्टवर्गौषधैरब्द्रोणे चरणस्थिते पलमितैरेभिः पृथग्भावयेत्
॥ २ ॥ धात्रीमेषविषाणिकात्रिकटुकैरेभिः पृथक्पञ्चकैर्द्रव्यैश्च द्विपलोन्मितैरपि
पलं चूर्णं विदारीभवम् । तालीसात्कुडवं चतुष्पलमिह प्रक्षिप्यते सर्पिषस्तैल-
स्य द्विपलं पलाष्टकमथ क्षौद्राद्रिषग्योजयेत् ॥ ३ ॥ तुल्यं पलैः षोडशभिः
सितायास्त्वक्क्षीरिकापत्रककेसरैश्च । बिल्वांशकैस्त्वक्कृतिसंप्रयुक्तैरित्यक्षमात्रा
गुटिकाः प्रकल्प्याः ॥ ४ ॥ तासामेकतमां प्रयोज्य विधिवत्प्रातः पुमान्भोज-
नात्प्राग्वा मुद्गदलाम्बुजाङ्गलरसं शीतं शृतं वा जलम् । माक्षीकं मदिरामगुर्व-
शनभुक्पीत्वा पयो वा गवां प्राप्नोत्यङ्गमनङ्गवत्सुभगतां संपन्नमानन्दकृत्
॥ ५ ॥ शोफग्रन्थिविमन्थवेपथुवमीपाण्डुामयश्चीपदप्लीहाशः प्रदरप्रमेहपिटि-
कामेहाश्मरीशर्कराः । हृद्दोगार्बुदवृद्धिविद्रधियकृद्योन्यामयाः सानिला ऊरु-
स्तम्भभगंदरं ज्वररुजस्तूनी प्रतूनी तृषा ॥ ६ ॥ वातासृक्प्रबलं प्रवृद्धमुदरं
कुष्ठं किलासं कृमीन्कासश्वासमुरःक्षतक्षयमसृक्पित्तं सपानालयम् । उन्मादं
मदमप्यपस्मृतिमतिस्थौल्यं कृशत्वं तनोः सालस्यं च हलीमकं च शमयेन्मू-
त्रस्य कृच्छ्राणि च ॥ ७ ॥ भवति जरया सर्वश्वेतैरकालजराकृतैर्वृतमलिकुला-
कारैरेभिः शिरश्च शिरोरूहैः । प्रसरति बलं त्वस्तातङ्कं वपुश्च समुद्रहन्प्रभवति
शतं स्त्रीणां गन्तुं जनो जनवल्लभः ॥ ८ ॥ स्तिमितमतिरप्यज्ञानान्धः सदस्य-
पटुः पुमान्सकृदपि यया ज्ञानोपेतः श्रुतिस्मृतिमान्भवेत् । व्रजति च यया
युक्तो योगी शिवस्य समीपतां शिवगुटिकया कस्तामेतां करोति न मानुषः
॥ ९ ॥ इति शिवगुटिका ।

अथ लघुशिवगुटिका ।

कौटजत्रिफलानिम्बपटोलघननागरैः । भावितानि दशाहानि रसैर्द्वित्रिगु-
णानि च ॥ १ ॥ शिलाजतुपलान्यष्टौ तावती सितशर्करा । त्वक्क्षीरीपिप्पली-
धात्रीकर्कटाख्यान्पलोन्मितान् ॥ २ ॥ निदिग्धिफलमूलाभ्यां पलं युज्या-
त्त्रिजातकात् । मधुत्रिफलसंयुक्तान्कुर्यादक्षसमान्गुडान् ॥ ३ ॥ दाडिमात्रप-

यःक्षीररसयूषसुरासवान् । तं भक्षयित्वाऽनुपिबेन्निरन्नो हितभक्ष्यभुक् ॥ ४ ॥
पाण्डुकुष्ठज्वरप्लीहतमकार्शोभगंदरम् । नाशयेन्मूत्रकृच्छ्राणि मूत्रस्थानविब-
न्धनत् ॥ ५ ॥ यद्यत्र योजितं येन कान्तलोहं तथाऽभ्रकम् । पलं पलं
च मिलिते तदा स्यान्किमतः परम् ॥ ६ ॥ तीव्रदुःखप्रदं पाण्डुं प्रमेहं सप-
रिग्रहम् । राजरोगं च व्याधींश्च जयेदिति किमद्भुतम् ॥ ७ ॥ इति लघुशि-
वगुटिका ।

अथ सूर्यप्रभागुटिका ।

दार्वीं व्योषविडङ्गचित्रकवचापीताकरञ्जामृतादेवाह्वातिविषा त्रिवृत्सकटु-
का कुस्तुम्बरः कारवी । द्वौ क्षारौ लवणत्रयं गजकणा चव्यं तथा पुष्करं ता-
लीसं कणमूलपुष्करजटाभूनिम्बसंज्ञैर्युतम् ॥ १ ॥ भार्गी पद्मकजीरकोशकुटजो
दन्ती वचा भद्रकं सर्वं कर्पसमांशकं सुभिषजा सूक्ष्मं च संचूर्णितम् । तद्व-
पञ्चपलं वरं गिरिजतु स्यात्पञ्चमुष्टिः पुरो लोहस्य द्विपलं पलद्वयमथो तान्य-
स्य संमिश्रितम् ॥ २ ॥ क्षिप्त्वा पञ्च पलानि शुभ्रसिकता वांशीपलं योजित-
मेकैकं त्रिसुगन्धि वस्तु पलिकं क्षौद्रैर्घृतैर्लेहवत् । एकीकृत्य समांशमेव गु-
टिका कार्या सुवर्णोन्मिता सा च ब्रह्ममुखाम्बुजप्रकटिता सूर्यप्रभा नामतः
॥ ३ ॥ शोषं कालसुरक्षतं सतमकं पाण्ड्वामयं कामलां गुल्मं विद्रधिपार्श्व-
शूलमुदरं स्त्रीषु क्षयं च किमीन् । कुष्ठार्शोविषमज्वरग्रहणिकामूत्रग्रहं नाश-
येद्भुक्त्वैकां गुटिकां ग्रहष्टमनसा योज्यं यथेष्टाशनम् ॥ ४ ॥ नास्त्येतत्सममौ-
षधं त्रिजगतीचक्रे हितं प्राणिनामुद्दामप्रसदासद्विपदरादसिंही तु सूर्य-
प्रभा ॥ ५ ॥

इति सूर्यप्रभा गुटिका ।

अथ घृतानि ।

अथ बलाद्यं घृतम् । बला श्वदंष्ट्रा बृहती कलशी धावनी स्थिरा ।
निम्बः पर्पटकं मुस्तं त्रायमाणं दुरालभा ॥ १ ॥ कृत्वा कषायं पेयार्थं दद्या-
त्तामलकीं सटीम् । द्राक्षां पुष्करमूलं च मेदामामलकानि च ॥ २ ॥ घृतं
पयश्च तत्सिद्धं सर्पिर्ज्वरहरं परम् । क्षयकासप्रशमनं शिरःपार्श्वरूजापहम्
॥ ३ ॥ इति बलाद्यं घृतम् । अथ कोलाद्यं घृतम्—कोललाक्षारसे तद्व-
त्क्षीराष्टगुणसाधितम् । कलकैर्विडङ्गदार्वीविगद्राक्षाक्षोटफलान्वितैः ॥ १ ॥
घृतं खर्जूरमृद्वीकामधुकैः सपरुषकैः । सपिप्पलीकं वैस्वर्यकासश्वासज्वराप-
हम् ॥ २ ॥ इति कोलाद्यं घृतम् । अथ गोक्षुराद्यं घृतम्—श्वदंष्ट्रां सदु-
रालभां चतस्रः पर्णिनीर्बलाम् । भागान्पलोन्मितान्कृत्वा पलं पर्पटकस्य च
॥ २ ॥ पचेद्दशगुणे तोये दशभागावशेषिते । रसे घृते तु द्रव्याणामेषां क-

लकान्समावपेत् ॥ २ ॥ सटीपुष्करमूलानां पिप्पलीत्रायमाणयोः । आमल-
क्याः किरातानां तिक्तस्य कटुकस्य च ॥ ३ ॥ फलानां सारिवायाश्च सुपिष्ट्वा
कर्षसंमितान् । तैः साधयेद् घृतप्रस्थं क्षीरं द्विगुणितं भिषक् ॥ ४ ॥ ज्वरं दाहं
तमः श्वासं कासं पार्श्वशिरोरुजम् । तृष्णां छर्दिमतीसारमेतत्सर्पिर्व्यपोहति
॥ ५ ॥ इति गोक्षुराद्यं घृतम् । अथ जीवन्त्यादिघृतम्—जीवन्तीमधुकं
द्राक्षां फलानि कुटजस्य च । सटीपुष्करमूलं च व्याघ्रीं गोक्षुरकम्बलाम् ॥ २ ॥
नीलोत्पलं चाऽऽमलकीं त्रायमाणां दुरालभाम् । पिप्पलीं च समां पिष्ट्वा
घृतं वैद्यो विपाचयेत् ॥ एतद्व्याधिसमूहस्य रोगराजस्य दुर्जयम् । रूपमेका-
दशविधं सर्पिरग्र्यं व्यपोहति ॥ ३ ॥ इति जीवन्त्यादिघृतम् । इति घृतानि ।

अथ तैलानि ।

अथ चन्दनादितैलम्—चन्दनाम्बुनखं रात्रि यष्टी शैलेयपन्नकम् ।
मज्जिष्ठा सरलं दारु शब्द्वेला जातिकेसरम् ॥ १ ॥ पत्रं बिल्वमुशीरं च
कङ्गोलं चन्दनाम्बुदम् । हरिद्रे सारिवे तिक्ता लवङ्गागुरुकुङ्कुमम् ॥ २ ॥
व्यघ्रेणुनलिकाचैर्भित्तैलं मस्तु चतुर्गुणम् । लाक्षारससमं सिद्धं ग्रहघ्नं बलवर्ण-
कृत् ॥ ३ ॥ अपस्सारज्वरोन्मादकृत्यालक्ष्मीविनाशनम् । आयुःपुष्टिकरं चैव
वशीकरणमुत्तमम् । विशेषात्क्षयरोगघ्नं रक्तपित्तहरं परम् ॥ ४ ॥ इति चन्द-
नादितैलम् । अथ लाक्षादितैलम्—तैलं प्रस्थमितं चतुर्गुणजतुकाथं चतु-
र्मस्तुरग्यष्टीदारुनिशाब्दसूर्वकटुकामिश्रश्च कौन्तीहिमैः । रास्त्राद्यैः पित्तुसं-
मितैः कृतमिदं शस्तं तु जीर्णज्वरे सर्वस्मिन्विषमेऽपि यक्ष्मणि शिशौ वृद्धे
सगर्भासु च ॥ १ ॥

इति लाक्षादितैलम् ।

अथ चन्दनबलालाक्षादितैलम् ।

चन्दनं च बलामूलं लाक्षा लामज्जकं तथा । पृथक्पृथक्प्रस्थमितं जलद्रो-
णे विपाचयेत् ॥ १ ॥ चतुर्भागावशेषेऽस्मिन्तैलं प्रस्थद्वयं क्षिपेत् । चन्दनो-
शीरमधुकशताह्वा कटुरोहिणी ॥ २ ॥ देवदारु निशा कुष्ठं मज्जिष्ठागुरुवाल-
कम् । अश्वगन्धाबलादार्वीमूर्वा मुस्ता समूलिका ॥ ३ ॥ एला त्वग्नागकु-
सुमं रास्त्रा लाक्षा सुगन्धिका । चम्पकं पीतसारं च सारिवा चोरकद्वयम् ।
॥ ४ ॥ कलकैरेतैः समायुक्तं क्षीराढकसमन्वितम् । तैलमभ्यञ्जने श्रेष्ठं सप्तधा-
तुविवर्धनम् ॥ ५ ॥ कासश्वासक्षयहरं सर्वच्छर्दिनिवारणम् । असृग्दरं रक्त-
पित्तं हन्ति पित्तकफामयम् ॥ ६ ॥ कान्तिकृद्वाहशमनं कण्डूविस्फोटनाश-
नम् । शिरोरोगं नेत्रदाहमङ्गदाहं च नाशयेत् ॥ ७ ॥ वातामयहतानां च

क्षीणानां क्षीणरेतसाम् । बालमध्यमवृद्धानां शस्यते शोफकामले । पाण्डुरोगे विशेषेण सर्वज्वरविनाशनम् ॥ ८ ॥

अथाश्वगन्धादितैलम् ।

अश्वगन्धा बला लाक्षा प्रस्थं प्रस्थं पृथक्पृथक् । जलद्रोणे विपक्तव्यं चतुर्भागावशेषितम् ॥ १ ॥ तैलं त्रिमानिकं दद्याद्दधिमस्तु चतुर्गुणम् । अश्वगन्धा निशा दारु कौन्ती कुष्ठाब्दचन्दनैः ॥ २ ॥ निशा तिक्ता शताह्वा च लाक्षा मूर्वा समूलकैः । सुरदारु च मञ्जिष्ठा मधुकोशीरसारिवाः ॥ ३ ॥ समभागानि सर्वाणि कल्कीकृत्य विपाचयेत् । सर्वज्वरं हरत्याशु शोफघ्नं लघु बृंहणम् ॥ ४ ॥ कासश्वासहरं चैव सर्वधातुविवर्धनम् । एतदभ्यज्जनेनाशु क्षयरोगो विमुञ्चति ॥ ५ ॥ इत्यश्वगन्धादितैलम् ।

अथ लक्ष्मीविलासतैलम् ।

एलाश्रीखण्डरास्त्राजतुनखशशिनः कोलकं चाथ मुस्ता बालत्वग्दारुकृष्णा-
गुरुतगरजटाकुष्ठमेतत्समांशम् । त्रैगुण्यं कालरालं सुदृढडमरुकायत्रतः सि-
द्धमेतत्तैलं पुष्पैश्च भाव्यं परिमलमिलितं नामतो गन्धतैलम् ॥ १ ॥ एतल्ल-
क्ष्मीविलासं जनयति जगतीनायकैः संप्रयुक्तं युक्त्या नाना च रोगान्निखिल-
गदहरं वातसंघातहन्तृ । पीतं ताम्बूलवल्लीदलमिलितमलं जाठरं वह्निमिद्धं
कुर्यादुर्नामदद्द्रुक्ष्यमपि नितरामङ्गसमर्दनेन ॥ २ ॥ इति लक्ष्मीविलासतैलम् ।

अथ द्राक्षासवः ।

मृद्वीकायास्तुलार्धं तु द्विद्रोणेऽपां विपाचयेत् । पादशेषे कषाये च पूत-
शीते प्रदापयेत् ॥ १ ॥ गुडस्य द्वितुला मानी धातक्या घृतभाजने । विडङ्गं
फलनी कृष्णा त्वगेला पत्रकेसरम् ॥ २ ॥ मरीचं च भिषक्चूर्णं सम्यग्दत्त्वा
विचक्षणः । क्षिपेच्च पलिकैर्भागैः स्थापयेच्चैव तद्दिने ॥ ३ ॥ ततो यथाबलं
पीत्वा कासश्वासगलामयान् । हन्ति यक्ष्माणमत्युग्रमुरःसंधानकारकम्
॥ ४ ॥ चतुर्थभागां द्राक्षाया धातकीमत्र केचन । प्रयच्छन्ति ततो वीर्यमे-
तस्योच्चैः प्रजायते ॥ ५ ॥ इति द्राक्षासवो वीरसिंहावलोकतः ।

अथ पिप्पल्यरिष्टः ।

पिप्पलीलोध्रमरिचपाठाधाग्येलवालुकैः । चव्यचित्रकजन्तुघ्नक्रमुकोशीरच-
न्दनैः ॥ १ ॥ मुस्ताप्रियङ्गुलवलीहरिद्रामिसिपेलेवैः । पत्रत्वक्कुष्ठतगरैर्नागकेस-
रसंयुतैः ॥ २ ॥ भागैः स्यादर्धपलिकैर्द्राक्षां षष्टिपलां क्षिपेत् । पलानि दश
धातक्या गुडस्य च शतत्रयम् ॥ ३ ॥ तोयार्मणद्वये सिद्धं भवत्येतत्सुखाव-

हम् । ग्रहणीपाण्डुरोगार्शःकार्श्यगुल्मोदरापहः । पिप्पल्यादिररिष्टोऽयं क्षय-
क्षयकरः परम् ॥ ४ ॥ इति पिप्पल्यरिष्टः ।

अथ खर्जूरासवः ।

पञ्चप्रस्थं समादाय खर्जूरस्य त्रिचक्षणः । द्रोणाम्भसि पचेत्सम्यगुत्तार्य
गालयेत्ततः ॥ १ ॥ कुंभीं सुधूपितां कृत्वा प्रक्षिपेत्तं रसं शुभम् । हपुषां
ताम्रपुष्पीं च कषाये तत्र निक्षिपेत् ॥ २ ॥ द्वारं निरुध्य सुदृढं निक्षिपेद्ब्र-
धातले । सप्तकद्वययोगेन सिद्धोऽयं त्वासवो रसः ॥ ३ ॥ रोगराजं तथा
शोफं प्रमेहं पाण्डुकामलाम् । ग्रहणीं पञ्च गुल्मार्शो नाशयत्यतिवेगतः ॥ ४ ॥

इति गदनिग्रहात्खर्जूरासवः ।

अथ गुडूच्यादिमोदकः ।

गुडूचीं खण्डशः कृत्वा कुट्टयित्वा सुमर्दयेत् । वस्त्रेण विधृतं तोयं साव-
येत्तच्छनैः शनैः ॥ १ ॥ शुद्धशङ्खनिभं चूर्णमेतैः संमिश्रयेद्विषक् । उशीरं
वालकं पत्रं कुष्ठं धात्रीं च मौसलीम् ॥ २ ॥ एलां हरेणुकां द्राक्षां कुङ्कुमं नाग-
केसरम् । पद्मकन्दं च कर्पूरं चन्दनद्वयमिश्रितम् ॥ ३ ॥ व्योषं च मधुलौ-
जांश्च अश्वगन्धां शतावरीम् । गोक्षुरं मर्कटाख्यं च जातीकङ्गोलचोरकम् ॥
४ ॥ रसाभ्रवङ्गलोहैश्च संमिश्रं कारयेद् बुधः । एतानि समभागानि द्विगु-
णामृतशर्करा ॥ ५ ॥ मत्स्यण्ड्याज्यमधूपेतं भक्षयेत्प्रातरुत्थितः । क्षयं च रक्त-
पित्तं च पाददाहमसृग्दरम् ॥ ६ ॥ मूत्राघातं मूत्रकृच्छ्रं वातकुण्डलिकां तथा
। निहन्त्याच्च प्रमेहांश्च सोमरोगं च दारुणम् ॥ ७ ॥ रसायनमिवर्षीणाममृतं-
वाऽमृतान्धसाम् ॥ ८ ॥ इति गुडूच्यादिमोदकः ।

अथ रसाः ।

अथ चतुर्मुखरसः ।

सूतायोन्नकगन्धकं समलवं सूताङ्घ्रितुल्यं मृतं स्वर्णं सर्वमिदं निधाय
विमले खल्वे दिनं मर्दयेत् । कन्याव्योषवरापुनर्नवरसैः कच्छूलवङ्गैः पुनर्भा-
व्यं चित्रकपद्मकैर्धनतरं सेव्येष्टधान्यान्तगम् ॥ १ ॥ कुर्याद्ब्रह्मविनिर्मितं रस-
वरं यक्ष्मापहं पुष्टिदं वल्लं क्षौद्रफलत्रयेण सहितं मेहाग्निमान्द्यप्रणुत् ॥ २ ॥
इति चतुर्मुखरसः ।

अथ रत्नगर्भपोटलीरसः ।

रसं वज्रं हेम तारं नागं लोहं तथाऽन्नकम् । तुल्यांशं मारितं योज्यं मुक्ता-
माक्षिकविद्रुमम् ॥ १ ॥ राजावर्तं च वैक्रान्तं गोमेदं पुष्परागकम् । शङ्खं च
तुल्यतुल्यांशं सप्ताहं चित्रकद्रवैः ॥ २ ॥ मर्दयित्वा विचूर्ण्यार्थं तेनाऽऽपूर्य

वराटकान् । टङ्कणं रविदुग्धेन पिष्ट्वा तन्मुद्रणं चरेत् ॥ ३ ॥ मृद्भाण्डे तान्सु-
संयन्त्य सम्यग्गजपुटे पचेत् । आदाय चूर्णयेत्सम्यग्निर्गुण्ड्याः सप्त भावनाः
॥ ४ ॥ आर्द्रकस्य रसैः सप्त चित्रकस्यैकविंशतिः । द्रवैर्भाव्यं ततः शुष्कं
देयं गुञ्जाचतुष्टयम् ॥ ५ ॥ क्षयरोगं निहन्त्याशु सत्यं शिव इवान्धकम् ।
योजयेत्पिपलीक्षौद्रैः सधृतैर्मरिचैश्च वा । पोटलीरत्नगर्भेयं सर्वरोगहरा
मता ॥ ६ ॥

अथ राजमृगाङ्कः ।

रसभस्म त्रिभागं च भागैकं हेमभस्मकम् । मृततान्नस्य भागैकं शिलाग-
न्धकतालकम् ॥ १ ॥ प्रतिभागद्वयं शुद्धमेकीकृत्वा विचूर्णितम् । वराटान्पू-
रयेत्तेन अजाक्षीरेण टङ्कणम् ॥ २ ॥ पिष्ट्वा तेन मुखं रुद्ध्वा मृद्भाण्डे संनिधा-
पयेत् । शुष्कं गजपुटे पाच्यं चूर्णयेत्स्वाङ्गशीतलम् ॥ ३ ॥ रसो राजमृगा-
ङ्कोऽयं चतुर्गुणः क्षयापहः । एकोनविंशन्मरिचैर्धृतेन सह भक्षयेत् ॥ ४ ॥
दशानां पिप्पलीनां च चूर्णं दत्त्वा प्रदापयेत् । क्षये कासे ज्वरे पाण्डौ ग्रह-
ण्यामतिसारके ॥ ५ ॥ इति राजमृगाङ्कः ।

अथ रसरत्नप्रदीपान्मृगाङ्कः ।

रसेन तुल्यं कनकं तयोस्तु साम्येन युञ्ज्यान्नवमौक्तिकानि । रसप्रमाणो
बलिरङ्गप्रिभागः क्षारश्च सर्वं तुषवारिणा तु ॥ १ ॥ संमर्द्य वस्त्रं तु विधाय
गोलं दिनं पचेत्तं लवणेन पूर्णं । भाण्डे मृगाङ्कोऽयमतिप्रगल्भः क्षयाग्निमा-
न्ध ग्रहणीगदेषु ॥ २ ॥ साज्योपणाभिर्मधुपिप्पलीभिर्वल्लोऽस्य देयो न ततो-
ऽधिकस्तु । पथ्यं हितं शीतलमेव योज्यं त्याज्यं सदा पित्तकरं विदाहि ॥ ३ ॥
अन्यच्च वैद्यविलासात्—रसबलितपनीयं योजयेत्तल्यभागं तदनु युगुल-
भागं मौक्तिकानां शुभानाम् । यवजचरणयुक्तं मर्दयेत्सर्वमेतद्दिनमपि तुषवा-
रा गोलकं लघ्वमत्रे ॥ १ ॥ विधाय मुद्रां विदधीत भाण्डे चुल्लयां समुद्रे ल-
वणेन पूर्णं । दिनं पचेच्चारु मृगाङ्कनामा क्षयाग्निमान्धग्रहणीविकारे ॥ २ ॥
योज्यः सदा वह्निजसर्पिषा वा कृष्णामधुभ्यां सततं त्रिगुणः । वर्ज्यं सदा
पित्तकरं हि वस्तु लोके शवत्पथ्यविधिर्निरुक्तः ॥ ३ ॥ इति मृगाङ्कः ।

अथ नवरत्नराजमृगाङ्कः ।

सूतं गन्धकहेमताररसकं वैक्रान्तकान्तायसं वङ्गं नागपवित्रवालविमला
माणिक्यगारुत्मतम् । ताप्यं मौक्तिकपुष्परागजलजं वैदूर्यकं शुल्बकं शुक्ति-
स्तालकमभ्रहिङ्गुलशिला गोमेदनीलं समम् ॥ १ ॥ गोक्षूरैः फणिवल्लिसिंहव-
दनामुण्डीकणाचित्रकैरिक्षुच्छिन्नरुहाहरप्रियजयाद्राक्षावरीजद्रवैः । शोफघ्नी-

शतपत्रिकामधुजलैः सच्छालमलीधातकीजातीसस्यबलाचतुष्टयजलत्वरदेवपुष्प-
द्रवैः ॥ २ ॥ कक्कोलैर्मदनागकेसरजलैर्भावन्यं पृथक्ससधा भाण्डे सिन्धुभृते
मृगाङ्गवदयं पाच्यः क्रमाग्नौ दिनम् । भूयः प्राक्समुदाहृतैर्द्रवचयैस्तं भावये-
त्पूर्ववत्पश्चात्तुल्यविभागशीतलरजःकस्तूरिका भावना ॥ ३ ॥ गोप्याद् गोप्य-
तरं रसायनमिदं श्रीशंकरेणोदितं गुञ्जासिन्धुयुतं कणामधुयुतं शोफे सपाङ्गु-
मये । वातव्याधिमुपद्रवैश्च सहितं मेहांस्तथा विंशतिं संयोज्य च हरीतकीगु-
डयुतं वातास्रके दुर्जये ॥ ४ ॥ गम्भीरे च गुडूचिसत्त्वचपलाक्षौद्रैस्तु संयो-
जितस्त्वाध्मानारुचिशूलमान्द्यकसनापसारवातोदरान् । श्वासान्संग्रहणीं हली-
मकमथो सर्वज्वरान्नाशयेद्वातून्पोषयति क्षयं क्षपयति श्यामाशतं यौवनम्
॥ ५ ॥ प्रौढाटोपयुतं करोति सहसा तारुण्यगर्वोज्झितं सिद्धो राजभृगाङ्ग एष
जयति स्वस्वानुपानैर्गदान् ॥ ६ ॥ इतिनवरत्नराजमृगाङ्गः ।

अथ महाकनकसिन्दूररसः ।

रसगन्धकनागाश्च रसको माक्षिकाभ्रके । कान्तविद्रुममुक्तानां वङ्गभस्म च
तारकम् ॥ १ ॥ भस्म कृत्वा प्रयत्नेन प्रत्येकं कर्षसंमितम् । सर्वतुल्यं शुद्धहे-
मभस्म कृत्वा प्रयोजयेत् ॥ २ ॥ मर्दयेन्निदिनं सर्वं हंसपादीरसैर्भिषक् । ततो
वै गोलकान्कृत्वा काचकूप्यां विनिक्षिपेत् ॥ ३ ॥ रुद्ध्वा तत्काचकूपीं च
सप्तवस्त्रेण वेष्टिताम् । ततो वै सिकतायत्रे त्रिदिनं चोक्तवह्निना ॥ ४ ॥ प-
श्चात्तं स्वाङ्गशीतं च पूर्वोक्तसमर्दितम् । विनिक्षिप्य करण्डेऽथ संपूज्य रस-
राजकम् ॥ ५ ॥ महाकनकसिन्दूरो राजयक्ष्महरः परः । पाण्डुरोगं श्वास-
कासं कामलाग्रहणीगदान् ॥ ६ ॥ क्रिमिशोफोदरावर्तगुल्ममेहगुदाङ्कुरान् ।
मन्दाग्निं छर्दिमरुचिमामशूलहलीमकान् ॥ ७ ॥ ज्वरान्द्वंद्वादिकान्सर्वान्सनि-
पातांस्त्रयोदश । पैत्यरोगमपसारं वातरोगान्विशेषतः ॥ ८ ॥ रक्तपित्तप्रमेहां-
श्च स्त्रीणां रक्तस्रवांस्तथा । विंशतिश्लेष्मरोगांश्च मूत्ररोगान्निहन्त्यसौ ॥ ९ ॥
हेमवर्ण्यश्च बल्यश्च आयुःशुक्रविवर्धनः । महाकनकसिन्दूरः काश्यपेन विनि-
र्मितः ॥ १० ॥ इति महाकनकसिन्दूररसो योगतरङ्गिण्याः ।

अथ कनकसुन्दररसः ।

योगतत्त्वे—रसः कनकभागिकः कनकमाक्षिकस्तालकः शिलारसकगन्धका
रससमाः सतुल्या इमे । विमर्द्य पयसा रवेः सकलमेतदस्योपरि द्रवैः प्रतिदिनं
पृथक्तदिति भावयेद् बुद्धिमान् ॥ १ ॥ जैयामुनिकेलिप्रियादहनभृङ्गवासोद्वै-
र्विभाव्य च रसैस्ततः सुदृढगोलकं स्वेदयेत् । मृगाङ्गवदथाऽऽर्द्रकद्रवभरेण तं
सप्तधा विमर्द्य च कटुत्रयाम्बुभिरयं क्षयस्यान्तकृत् ॥ २ ॥ रसः कनकसुन्द-

रो भवति संनिपातेऽप्ययं सदाऽऽर्द्रकरसैस्तथा पवनगुल्मशूलप्रणुत् । स विश्व-
वृतयोजितः सकलमत्र पथ्यं हितं मृगाङ्गवदथापरं किमपि नैव योज्यं क्वचित्
॥ ३ ॥ इति कनकसुन्दरो रसः ।

अथ सुवर्णभूपतिः ।

शुद्धसूतसमं गन्धं मृतशुल्बं तयोः समम् । अभ्रलोहकयोर्भस्म कान्तभ-
स्म सुवर्णजम् ॥ १ ॥ रजतं च विषं सम्यक्पृथक्सूतसमं भवेत् । हंसपादीर-
सैर्मर्द्यं दिनमेकं वटीकृतम् ॥ २ ॥ काचकूप्यां विनिक्षिप्य मृदा संलेपयेद्ब्रहिः ।
शुष्का सा वालुकायन्त्रे शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ३ ॥ चतुर्गुञ्जमितं देयमार्द्रक-
द्रवपिप्पली । क्षयं त्रिदोषजं हन्ति संनिपातांस्त्रयोदश ॥ ४ ॥ आमवातं ध-
नुर्वातं शृङ्खलावातमेव च । आढ्यवातं पङ्गुवातं कफवाताग्निमान्धनुत् ॥ ५ ॥
कटिवातं सर्वशूलं नाशयेन्नात्र संशयः । गुल्मशूलमुदावर्तं ग्रहणीमतिदुस्तराम्
॥ ६ ॥ प्रमेहमुदरं सर्वांश्मरीं मूत्रविद्ग्रहम् । भगंदरं सर्वकुष्ठं विद्रधि म-
हतीं तथा ॥ ७ ॥ श्वासकासमजीर्णं च ज्वरमष्टविधं तथा । कामलां पाण्डुरोगं
च शिरोरोगं च नाशयेत् ॥ ८ ॥ अनुपानविशेषेण सर्वरोगान्विनाशयेत् ।
यथा सूर्योदये नश्येत्तमः सर्वगतं तथा । सर्वरोगविनाशाय सर्वेषां स्वर्णभू-
पतिः ॥ ९ ॥

इति सुवर्णभूपतिः ।

अथ लक्ष्मीविलासः ।

सुवर्णताराभ्रकताभ्रवङ्गत्रिलोहनागामृतमौक्तिकानि । एतत्समं योज्यं रसस्य
भस्म खल्वे कृतं स्यात्कृतकजलीकम् ॥ १ ॥ सुमर्दयेन्माक्षिकसंप्रयुक्तं तच्छोष-
येद्विदिनं च घर्मे । तत्कल्कमूषोदरमध्यगामि यत्नात्कृतं ताक्ष्यपुटेन पक्वम्
॥ २ ॥ यामाष्टकं पावकमर्दितं च लक्ष्मीविलासो रसरज एषः । क्षये त्रिदो-
षप्रभवे च पाण्डौ सकामलासर्वसमीरणेषु ॥ ३ ॥ शोफप्रतिश्यायविनष्टवीर्यं
मूलामयं चैव सशूलकुष्ठम् । हत्वाऽग्निमान्धं क्षयसंनिपातं श्वासं च कासं
च हरेत्प्रयुक्तम् ॥ ४ ॥ तारुण्यलक्ष्मीप्रतिबोधनाय श्रीमद्विलासो रसरज
एषः ॥ ५ ॥

अथ त्रैलोक्यचिन्तामणिः ।

रसं वज्रं हेमतारं ताम्रं तीक्ष्णाभ्रकं मृतम् । गन्धकं मौक्तिकं शङ्खं प्रवालं
तालकं शिला ॥ १ ॥ शोधितं च समं सर्वं सप्ताहं भावयेद् दृढम् । चित्रमूल-
कषायेण भानुदुग्धैर्दिनत्रयम् ॥ २ ॥ निर्गुण्डीसूरणद्रावैर्वज्रिदुग्धैर्दिनत्रयम् ।
अनेन पूरयेत्सम्यक्पीतवर्णान्वराटकान् ॥ ३ ॥ टङ्गणं रविदुग्धेन पिष्ट्वा तेषां
मुखं लिपेत् । रुद्ध्वा भाण्डे पुटेत्पश्चात्स्वाङ्गशीतं विचूर्णयेत् ॥ ४ ॥ चूर्णतुल्यं

मृतं सूतं वैक्रान्तं सूतपादकम् । शिशुमूलद्रवैः सर्वं सप्तवारं
विभावयेत् ॥ ५ ॥ चित्रमूलकषायेण भावनाश्चैकविंशतिः । आर्द्रकस्य रसेनैव
भावनाः सप्त एव च । जम्बीरैर्मातुलुङ्गैर्वा सप्तवारं विभावयेत् ॥ ६ ॥
सूक्ष्मचूर्णं ततः कृत्वा चूर्णपादांशटङ्कणम् । टङ्कणांशं वत्सनाभं तत्समं
मरिचं क्षिपेत् ॥ ७ ॥ लवङ्गं नागरं पथ्या कणा जातीफलं पृथक् । प्रत्येकं
वत्सनागस्य पादांशं चूर्णितं क्षिपेत् ॥ ८ ॥ मातुलुङ्ग्या आर्द्रकस्य रसेनैतद्वि-
लोडयेत् । चतुर्गुणमितं खादेत्कणाक्षौद्रं लिहेदनु ॥ ९ ॥ क्षौद्रैर्वा चाऽर्द्रक-
द्रवैः शुण्ठ्या वाऽथ गुडैर्युतम् । अनुपानैः समायोज्यः सर्वरोगोपशान्तये
॥ १० ॥ वाहिं दीपयते बलं च कुरुते तेजो महद्वर्धते वीर्यं वर्धयते विषं च
हरते दाढ्यं विधत्ते तनोः । अभ्यासेन निहन्ति मृत्युपलितं पुष्टिं प्रदत्ते नृणां
कासं सूदयते क्षयं क्षपयते श्वासं च निर्नाशयेत् ॥ ११ ॥ वातं विद्रधिपाण्डु-
शूलग्रहणीरक्तातिसारं जयेन्मेहहृद्दीहजलोदराश्मरितृषाशोफं हलीमोदरम् । ल-
ताकृच्छ्रभगदरं ज्वरगणं चाशींसि कुष्ठं जयेत्साध्यासाध्यरुजो निहन्ति च रस-
स्त्रैलोक्यचिन्तामणिः ॥ १२ ॥ इति त्रैलोक्यचिन्तामणिः ॥

अथ द्वितीयस्त्रैलोक्यचिन्तामणिः ।

योगतरङ्गिण्याः—सूताभ्रस्वर्णतारारुणभिदुरशिलाताप्यगन्धप्रवालायो-
मुक्ताशङ्कुतालं वरमिदमनलकाथतः सप्त भाव्यम् । निर्गुण्डीसूरणाभःपवि-
रविपयसा त्रिः पृथक्चाथ पीतानापूर्यैतैर्वराटानथ मिहिरपयष्टङ्कणालिसवक्त्रान्
॥ १ ॥ कृत्वा भाण्डे च हङ्का गजपुटजठरे युक्तितस्तु पक्त्वोद्धृत्यैतन्मर्द-
यित्वा तदखिलतुलितं सूतभस्म प्रदद्यात् । वैक्रान्तं सूततुर्यांशकमथ मिलितं
सप्तशः शिशुमूलत्वग्भाव्यं तेन तुल्यं विषमनलवरं टङ्कणं चोषणं च ॥ २ ॥ पथ्याजा-
तीफलं चामरकुसुमकणानागरं वत्सनाभात्तुर्यांशं मेलयित्वा पृथगथ दिवसं म-
र्दयेदुद्धृत्यैः । एष त्रैलोक्यचिन्तामणिरखिलगदध्वान्तविध्वंसहंसस्तत्तद्रोगा-
नुपानादुषसि कवलितः सार्धवल्लप्रमाणः ॥ ३ ॥ वातव्याध्यामवातज्वरजठर-
कृमिश्वासशूलस्रवातासृक्पित्तक्षैण्यकासक्षयकफजगदोरःक्षताजीर्णमेहे । कुष्ठा-
तीसारपाण्डुग्रहणिषु तमकेऽथ व्रणार्शःप्रकृष्टे खाङ्ग्ये खज्राढ्यवातश्रुतिभगज-
गदे सर्वथैव प्रशस्तः ॥ ४ ॥ इति त्रैलोक्यचिन्तामणिः । अथ योगसारा-
चिन्तामणिरसः—रसेन्द्रवैक्रान्तकरौप्यताम्रं सलोहमुक्ताफलगन्धहेम ।
त्रिर्भावितं चाऽऽर्द्रकमृङ्गवह्निरसैरजागोपयसा तथैव ॥ १ ॥ अर्शः क्षयं
कासमरोचकं च जीर्णज्वरं पाण्डुमपि प्रमेहान् । गुक्ताप्रमाणं मधुमागधीभ्यां
लीढं निहन्याद्विषमं च वातम् । चिन्तामणिरिति ख्यातः पार्वत्या निर्मितः
स्वयम् ॥ २ ॥ इति चिन्तामणिः ।

अथ वसन्तकुसुमाकरः ।

प्रवालरससौक्तिकाभ्रकमिदं चतुर्भागभाक्पृथक्पृथगतः स्मृते रजतहेमनी
 ब्रंशके । अयोभुजगरङ्गकं त्रिलवकं विमर्द्याखिलं शुभेऽहनि विभावयेद्विषगि-
 दं धिया सप्तशः ॥ १ ॥ द्रवैर्वृषनिशेषुजैः कमलमालतीपुष्पजैः पयःकदलिक-
 न्दजैर्मलयचन्दनादुद्भवैः । वसन्तकुसुमाकरो रसपतिर्द्विवलोऽशितः समस्तग-
 दहृद्भवेत्किल निजानुपानैरयम् ॥ २ ॥ क्षिणोत्यनुमधूषणैः क्षयगदेषु सर्वे-
 ऽत्रपि प्रमेहरुजि रात्रिभिः समधुशर्कराभिः सह । सितामलयजद्रवैर्महति र-
 क्तपित्तेऽथवा सितामधुसमन्वितैर्वृषभपल्लवानां द्रवैः ॥ ३ ॥ त्रिजातगरुचन्द-
 नैरपि च तुष्टिपुष्टिप्रदो मनोभवकरः परो वमिषु शङ्खपुष्पीरसैः । अभीरुरस-
 शर्करामधुभिरम्लपित्तामये परेषु च यथोचितं ननु गदेषु संसेवयेत् ॥ ४ ॥

इति वसन्तकुसुमाकरो योगतरङ्गिण्याः ।

अथ लोकेश्वरः ।

पलं कपर्दचूर्णस्य पलं पारदगन्धयोः । माषष्टङ्कणकस्यैको जम्बीराद्भिर्विमर्द-
 येत् ॥ १ ॥ पुटेल्लोकेश्वरो नाम्ना लोकनाथोऽयमुत्तमः । ऋते कुष्टं रक्तपित्तम-
 न्यरोगान्क्षयं नयेत् ॥ २ ॥ पुष्टिवीर्यप्रसादौजःकान्तिलावण्यदः परः । कोऽस्ति
 लोकेश्वरादन्यो नृणां शंभुमुखोद्भवात् ॥ ३ ॥ इति लोकेश्वरः ।

अथ लोकेश्वरपोटलीरसः ।

रसस्य भस्मना हेम पादांशेन प्रकल्पयेत् । द्विगुणं गन्धकं दत्त्वा मर्द-
 येच्चित्रकाम्बुना ॥ १ ॥ वराटकांश्च संपूर्य टङ्कणेन निरुध्य च । भाण्डे चूर्ण-
 प्रलिप्तेऽथ शीघ्रं रुन्ध्यात्तु मृन्मये ॥ २ ॥ शोषयित्वा पुटेद्वर्तं रत्निमात्रेऽ-
 पराह्लके । स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य चूर्णयित्वाऽथ विन्यसेत् ॥ ३ ॥ एष लोकेश्वरो
 नाम्ना वीर्यपुष्टिविवर्धनः । गुञ्जाचतुष्टयं खादेत्पिप्पलीमधुसंयुतम् ॥ ४ ॥
 भक्षयेत्परया भक्त्या लोकेशः सर्वदाशनः । अङ्गकाश्यैःऽग्निमान्द्ये च कासे
 पित्ते रसस्त्वयम् ॥ ५ ॥ मरीचैर्धृतसंयुक्तैः प्रदातव्यो दिनत्रयम् । लवणं
 वर्जयेत्तत्र साज्यं दधि च योजयेत् ॥ ६ ॥ एकविंशत्यहानीत्थं मरीचं सघृतं
 पिबेत् । पथ्यं मृगाङ्कवज्जेयं शयीतोत्तानपादतः ॥ ७ ॥ ये शुष्का विषमा-
 शनैः क्षयरुजा व्याप्ताश्च ये कुष्ठिनो ये पाण्डुत्वहताः कुवैद्यविधिना ये शो-
 षिणो दुर्भगाः । ये तप्ता विविधैर्ज्वरैर्भ्रममदोन्मादैः प्रमादं गतास्ते सर्वे
 विगतामया हि परया स्युः पोटलीसेवया ॥ ८ ॥ इति लोकेश्वरपोटलीरसः ॥

अथ प्राणदा पर्पटी ॥

सूताभ्रायोहिबद्धोषणविषमखिलांशेन गन्धेन लोह्यां कोलाशौ विद्रुतेन

क्षणमथ मिलितं ढालितं गोमयस्थे । रम्भापत्रेऽमुनाऽन्येन च दृढपिहितं
प्राणदा पर्पटी स्यात्पाण्डौ रेके ग्रहण्यां ज्वररुजि कसने यक्ष्ममेहाग्निमान्धे
॥ १ ॥ प्राणदा पर्पटी सैषा भाषिता शंभुना स्वयम् । तत्तद्गोगानुपानेन
सर्वरोगविनाशिनी ॥ २ ॥ इति प्राणदा पर्पटी ॥

अथ कुमुदेश्वरो रसः ।

रसार्णवात्—पारदं शोधितं गन्धमभ्रकं च समं समम् । तदर्धं दरदं
दद्यात्तदर्धं च मनःशिलाम् ॥ १ ॥ सर्वार्धं मृतलोहं च खल्वमध्ये विनि-
क्षिपेत् । द्विःसप्तभावना देयाः शतावरी रसेन च ॥ २ ॥ ततः सिद्धो
भवत्येष कुमुदेश्वरसंज्ञकः । सितया मरिचेनाथ गुञ्जाद्वित्रिप्रमाणतः ॥ ३ ॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय पूजयित्वेष्टदेवताम् । यक्ष्माणमुग्रं हन्येव वातपित्तकफा-
मयान् ॥ ४ ॥ ज्वरादीनखिलान्रोगान्यथा दैत्याञ्जनार्दनः । सतताभ्यासयो-
गेन वलीपलितनाशनः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चामृताख्यो रसः ।

सारसंग्रहात्—भस्मीभूतसुवर्णतारदिनकृतसूताभ्रसत्त्वैः क्रमात्संवृद्धैस्त्रि-
तयं त्रिभिः कृमिहराम्भोदैर्युतः कटफलैः । निर्गुण्डीदशमूलवह्निजनीव्यो-
पाद्रकैर्भावितो गोलीकृत्य विशोषितो निगदितः पञ्चामृताख्यो रसः ॥ १ ॥
नानेन सदृशः कोऽपि रसोऽस्ति भुवनत्रये । निहन्ति सकलान्रोगान्भवरोग-
मिवाच्युतः ॥ २ ॥ सर्वरोगहरः सूतस्तत्तद्गोगानुपानतः । अयं पञ्चामृतो
नृणां त्रिदशानामिवामृतम् ॥ ३ ॥

अथ योगसारात् हेमाभ्रकरससिन्दूरः ।

अभ्रकं रससिन्दूरमिश्रितं हेमभस्मना । समभागं प्रकुर्वीत रसेनाऽऽर्द्रक-
योजितम् ॥ १ ॥ क्षयं च क्षयपाण्डुं च क्षयकासं च कुष्ठकम् । जयेन्मण्डल-
पर्यन्तं पूर्वकर्मविपाककृत् ॥ २ ॥ इति हेमाभ्रकरससिन्दूरः ॥

अथ शिलाजत्वादिलोहम् ।

शिलाजतुयुतं लोहं वल्लं तु विधिमारितम् । पथ्याशी सेवते यस्तु स
यक्ष्माणं व्यपोहति ॥ १ ॥ इति शिलाजत्वादिलोहम् ॥

अथ सुवर्णपर्पटीरसः ।

शुद्धं सुवर्णदलमष्टगुणेन शुद्धसूतेन पिण्डितमथो वसुभागभाजि । गन्धे
द्रुते बदरवह्निषु लोहपात्रे दत्त्वाऽवलोड्य लघुलोहशलाकया तत् ॥ १ ॥
मन्दं निरस्य सुरभीमलमण्डलस्थे रम्भादले तदुपरि प्रणिधाय चान्यत् ।
रम्भादलं लघु नियन्व्य तदाददीत शीतं सुवर्णरसपर्पटिकाभिधानम् ॥ २ ॥

पित्तोल्बणे ससितया तुगयाऽथ वातश्लेष्मोल्बणे किल तुगामधुपिप्पलीभिः ।
क्षीणे विरेकिणि च शोषिणि मन्दवह्नौ पाण्डौ प्रमेहिणि चिरज्वरिणि ग्रह-
ण्याम् ॥ वृद्धे शिशौ सुखिनि रात्रि तथैव नार्थो भैषज्यमेतदुदितं हित-
मामयघ्नम् ॥ ३ ॥ इति सुवर्णपर्पटीरसः ॥

अथ सर्वरोगेषु मृत्युंजयरसः ।

त्रिकटु त्रिफला सूतगन्धकौ टङ्गणं विषम् । यष्टी निशा कुबेराक्षो दन्ती-
बीजमथापि च ॥ १ ॥ एतानि समभागानि खल्वमध्ये विनिक्षिपेत् । मृद्ग-
राजरसेनैव मर्दयेत्त्रिदिनं भिषक् ॥ २ ॥ गुटिका माषमात्रास्तु च्छायाशुष्काश्च
कारयेत् । अनुपानविशेषेण सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ मृत्युंजयो रसो नाम सर्व-
रोगविदारणः ॥ ३ ॥ इति मृत्युंजयरसः । इति रसाः ॥

अथरक्तवर्णहेमगर्भरसः—हिङ्गुलं कर्षमात्रं तु मर्दयेत्खल्वमध्यगम् ।
सुवर्णं माषमेकं च तत्समं पारदं क्षिपेत् । मर्दयित्वा क्षिपेत्तत्र गन्धकं ह्यर्ध-
माषकम् । मर्दयेदर्कजक्षीरैर्बन्धयेत्पट्टमध्यगे । भूधरे पाचयेद्यन्त्रे कुङ्कुटीपुटितेन
च । पुनर्वस्त्रेण संवेष्ट्य तस्योपरि च गन्धकं । वस्त्रमेकत्र बध्नीयात् पुनर्यन्त्रेण
पूर्ववत् । हेमगर्भरसो नाम अरुणारुणसंनिभः । सर्वरोगेषु दातव्य एकैके द्वि-
त्रिदोषजे । त्रिदोषे आर्द्रकरसैर्मधुयुक्तैः प्रयोजयेत् ॥ इति ॥ ज्वराणां शमनीयो
यः पूर्वमुक्तः क्रियाविधिः । यक्ष्मिणां ज्वरदाहेषु स सर्पिण्यु प्रशस्यते
॥ १ ॥ नित्यं स्वदेवपूजाभक्तिर्भैषज्यदेवतागुरुषु । छागलमांसपयोऽश्वजी-
वति यक्ष्मी चिरं धृतिमान् ॥ २ ॥ उपद्रवांश्च स्वरचैकृतादीञ्जयेद्य-
थास्त्रं प्रसमीक्ष्य शास्त्रम् । त्यजेत्कुवैद्यप्रतिपादितानि बुधो विरुद्धानि च
भेषजानि ॥ ३ ॥ गीतवादित्रशब्दैश्च प्रियस्तुतिभिरेव च । हर्षणाश्वासनै-
र्नित्यं गुरुणां समुपासनैः ॥ ४ ॥ ब्रह्मचर्येण दानेन तपसा देवतार्चनैः ।
सत्येनाऽऽचारयोगेन रविमण्डलसेवया ॥ वैद्यविप्रार्चनाच्चैव रोगराजो निव-
र्तते ॥ ५ ॥ इति क्षयरोगचिकित्सा ॥

अथोरःक्षतनिदानम् ।

धनुराकर्षतोऽत्यर्थं भारमुद्रहतो गुरुम् । युध्यमानस्य बलिभिः पततो
विषमोच्चतः ॥ १ ॥ वृषं हयं वा धावन्तं दम्यं चान्यं निगृह्यतः । शिला-
काष्ठाश्मनिर्घातान्क्षिपतो निघ्नतः परान् ॥ २ ॥ अधीयानस्य वाऽत्युच्चैर्दूरं वा
व्रजतो द्रुतम् । महानर्दीं वा तरतो हयैर्वा सह धावतः ॥ ३ ॥ सहस्रोत्प-
ततो दूरं तूर्णं चाप्यतिनृत्यतः । तथाऽन्यैः कर्मभिः क्रूरैर्भृशमभ्याहतस्य च
॥ ४ ॥ स्त्रीषु चातिप्रसक्तस्य रूक्षाल्पप्रमिताशिनः । विक्षते वक्षसि व्याधिर्ब-
लवान्समुदीर्यते ॥ ५ ॥ उरो विरुज्यतेऽत्यर्थं भिद्यतेऽथ विदह्यते । प्रपीड्येते

ततः पार्श्वं शुण्यत्यङ्गं प्रवेपते ॥ ६ ॥ क्रमाद्वीर्यं बलं वर्णो रुचिरग्निश्च हीयते ।
ज्वरो व्यथा मनोदैन्यं विद्भेदोऽग्निवधस्तथा ॥ ७ ॥ दुष्टः श्यावः सुदुर्गन्धिः
पीतो विग्रथितो बहुः । कासमानस्य चाभीक्ष्णं कफः सासृक् प्रवर्तते ॥ ८ ॥
स क्षती क्षीयतेऽत्यर्थं तथा शुक्रौजसोः क्षयान् । अव्यक्तं लक्षणं तस्य पूर्वरूप-
मिति स्मृतम् ॥ ९ ॥ उरोरुक्शोणितच्छर्दिः कासो वैशेषिकः क्षते । क्षीणे स-
रक्तमूत्रत्वं पार्श्वपृष्ठकटिग्रहः ॥ १० ॥ अल्पलिङ्गस्य दीप्ताग्नेः साध्यो बलवतो
नवः । परिसंवत्सरो याप्यः सर्वलिङ्गं विवर्जयेत् ॥ ११ ॥

अथ उरःक्षतचिकित्सा ।

उरोमन्थी क्षती लाजान्पयसा मधुसंयुतान् । सद्य एव पिबेज्जीर्णे पयसाऽ-
द्यात्सशर्करम् ॥ १ ॥ पार्श्वबस्तिरुजि त्वल्पपित्ताग्निस्तान्सुरायुतान् । बलाश्व-
गन्धाश्रीपर्णीबहुपत्रीपुनर्नवाः ॥ २ ॥ पयसा नित्यमभ्यस्ताः शमयन्ति ह्युरः-
क्षतम् । शर्करामधुसंयुक्तं जीवकर्षभकौ मधु ॥ ३ ॥ लिह्यात्क्षीरानुपानानि
रक्तक्षीणतरः कृशः । नीलिकातिविषाग्रन्थिपद्मकेसरचन्दनैः । शृतं पयो मधु-
युतं संधानार्थं पिबेत्क्षती ॥ ४ ॥ लाक्षाचूर्णं सुष्ठु कृतं क्षौद्राज्येनान्वितं
क्षीरम् । शमयति शोषोद्धतं वमनं रक्तस्य सिद्धमिव ॥ ५ ॥

अथैलादिगुटिका ।

एलापत्रत्वचो द्राक्षा पिप्पल्यर्धपलं तथा । सितामधुकखर्जूरमृद्वीकाश्च
पलोन्मिताः ॥ १ ॥ संचूर्ण्य मधुना युक्ता गुटिकाः संप्रकल्पयेत् । अक्षमात्रां
ततश्चैकां भक्षयेच्च दिने दिने ॥ २ ॥ कासं श्वासं ज्वरं हिक्कां छर्दिं मूर्च्छां
मदं भ्रमम् । रक्तनिष्टीवनं तृष्णां पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ ३ ॥ शोषहीहाढ्यवा-
तांश्च स्वरभेदं क्षतक्षयम् । गुटिका तर्पणी वृष्या रक्तपित्तं च नाशयेत् ॥ ४ ॥

अथ यष्ट्याद्यं घृतम् ।

यष्ट्याह्नागबलयोः काथे क्षीरसमं घृतम् । पयसा पिप्पलीवांशीकल्क-
सिद्धं क्षते हितम् ॥ १ ॥

अथ बलाद्यं घृतम् ।

घृतं बलानागबलार्जुनाम्बुसिद्धं सयष्टीमधुकल्कपादम् । हृद्रोगशूलक्षतर-
क्तपित्ताकासानिलान्संशमयत्युदीर्णान् ॥ १ ॥

अथ श्वदंष्ट्राद्यं घृतम् ।

श्वदंष्ट्रोक्षीरमज्जिष्टाबलाकाशमर्यकतृणम् । दर्भमूलं पृथक्पर्णी बला सर्ष-
पिका स्थिरा ॥ १ ॥ पालिकान्साधयेत्तेषां रसे क्षीरे चतुर्गुणे । कल्कैः स्वगु-
प्तावर्षाभूमेदाजीवन्तिजीवकैः ॥ २ ॥ शतावरीदिमृद्वीकाशर्कराश्रावणीवृषैः ।

प्रस्थः सिद्धो घृताद्वातपित्तहृद्गोगुल्मनुत् ॥ ३ ॥ मूत्रकृच्छ्रप्रमेहार्शःकास-
शोषक्षयापहः । धनुस्तम्भाद्यभाराध्वक्षीणानां बलमांसदः ॥ ४ ॥

अथ द्राक्षाद्यं घृतम् ।

द्राक्षायाः संसितं प्रस्थं मधुकस्य पलाष्टकम् । पचेत्तोयाढके सिद्धे पाद-
शेषेण तेन तु ॥ १ ॥ पलिके मधुकद्राक्षे पिष्टे कृष्णापलद्वयम् । प्रदाय
सर्पिषः प्रस्थं पचेत्क्षीरे चतुर्गुणे ॥ २ ॥ सिद्धे शीते पलान्यष्टौ शर्करायाः
प्रदापयेत् । एतद्द्राक्षाघृतं सिद्धं क्षीणक्षतहितं परम् ॥ ३ ॥ वातपित्तज्वरश्वा-
सविस्फोटकहलीमकान् । प्रदरं रक्तपित्तं च हन्यान्मांसबलप्रदम् ॥ ४ ॥

अथामृतप्राश्यावलेहः ।

क्षीरधानीविदारीक्षुक्षीरिणां च तथा रसे । पचेत्समे घृतप्रस्थे मधुकैरिक्षु-
संयुतैः ॥ १ ॥ द्राक्षाद्विचन्दनोशीरशर्करोत्पलपद्मकैः । मधूककुसुमानन्ता का-
श्मरीतृणसंज्ञकैः ॥ २ ॥ प्रस्थार्धं मधुनः शीते शर्करायास्तुलां तथा । पलार्ध-
कांश्च संचूर्ण्य त्वगोलापत्रकेसरान् ॥ ३ ॥ विनीय तस्य संलिह्यान्मात्रां नित्यं
सुयत्नितः । अमृतप्राश्यमित्येतदश्विभ्यां निर्मितं पुरा ॥ ४ ॥ क्षीरमांसाग्निनो
हन्ति रक्तपित्तक्षतक्षयम् । तृष्णारुचिश्वासकासच्छर्दिहिकाप्रमर्दनम् । मूत्रकृ-
च्छ्रज्वरघ्नं च बल्यं स्त्रीरतिवर्धनम् ॥ ५ ॥

अथ रसराजः ।

मुक्ताप्रवालरसहेमसिताभ्रकान्तवङ्गं मृतं सकलमेतदहो विभाव्यम् । छि-
न्नारसेन च वरीसलिलेन सप्तवारं ततो मधुहविर्मरिचेन साकम् । लिह्यादुरः-
क्षतहरं रसराजकार्ण्यं माषप्रमाणमतनूद्भवहेतुमेनम् ॥ १ ॥ अन्यच्च तर्पणं
शीतमविदाहि हितं लघु । अन्नपानं निषेव्यं तु क्षतक्षीणैः सुखार्थिभिः ॥ २ ॥
शोकं स्त्रियं क्रोधमसूयनं च त्यजेदुदारांस्त्रिषयान्भजेच्च । तथा द्विजातींस्त्रिद-
शान्गुरुंश्च कथाश्च पुण्याः शृणुयाद्विजेभ्यः ॥ ३ ॥ इत्युरःक्षतचिकित्सा ।

अथ कासनिदानम् ।

धूमोपघाताद्रजसस्तथैव व्यायामरूक्षान्ननिषेवणाच्च । विमार्गगत्वादपि भो-
जनस्य वेगावरोधात्क्षवथोस्तथैव ॥ १ ॥

तस्य संप्राप्तिमाह ।

प्राणोद्बुद्धानानुगतः प्रदुष्टः संभिन्नकांस्यस्वनतुल्यघोषः । निरेति वक्त्रात्स-
हसा सदोषो मनीषिभिः कास इति प्रदिष्टः ॥ १ ॥

अथ तस्य संख्यामाह ।

पञ्च कासाः स्मृता वातपित्तश्लेष्मक्षतक्षयैः । क्षयायोपेक्षिताः सर्वे बलिन-

श्चोत्तरोत्तरम् ॥ १ ॥ पूर्वरूपं भवेत्तेषां शूकपूर्णगलास्यता । कण्ठे कण्ठश्च
भोज्यानामवरोधश्च जायते ॥ २ ॥

अथ वातिकमाह ।

हृच्छङ्खमूर्धोदरपार्श्वशूली क्षामाननः क्षीणबलस्वरौजाः । प्रसक्तवेगस्तु
समीरणेन भिन्नस्वरः कासति शुष्कमेव ॥ १ ॥

अथ पैत्तिकमाह ।

उरोविदाहज्वरवक्त्रशोषैरभ्यार्दितस्तिक्तमुखस्तृषार्तः । पित्तेन पीतानि व्रमे-
त्कटूनि कासेत्सपाण्डुः परिदह्यमानः ॥ १ ॥

अथ कफजमाह—

प्रलिप्यमानेन मुखेन सीदञ्जिशोरुगार्तः कफपूर्णदेहः । अभक्तरुग्गौरवक-
ण्डुयुक्तः कासेद्भृशं सान्द्रकफः कफेन ॥ १ ॥

अथ क्षतकासमाह ।

अतिव्यवायभाराध्वयुद्धाश्वगजनिग्रहैः । रुक्षस्योरक्षतं वायुर्गृहीत्वा कास-
मावहेत् ॥ १ ॥ स पूर्वं कासते शुष्कं ततः घृष्टेत्सशोणितम् । कण्ठेन
रुजताऽत्यर्थं विभिन्नेनेव चोरसा ॥ २ ॥ सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन
शूलिना । दुःखस्पर्शेन शूलेन भेदपीडाभितापिना ॥ ३ ॥ पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णा-
वैस्वर्यपीडितः । पारावत इवाऽऽकूजेत्कासवेगात्क्षतोद्भवात् ॥ ४ ॥

अथ क्षयजमाह—

विषमासात्स्यभोज्यातिव्यवायाद्वेगनिग्रहात् । घृणिनां शोचतां नृणां व्या-
पन्नेऽग्नौ त्रयो मलाः । कुपिताः क्षयजं कासं कुर्युर्देहक्षयप्रदम् ॥ १ ॥ स-
गान्नशूलज्वरदाहमोहान्प्राणक्षयं चोपलभेत कासी । शुष्कं स निष्ठी-
वति दुर्बलस्तु प्रक्षीणमांसो रुधिरं सपूयम् । तं सर्वलिङ्गं भृशदुश्चिकित्स्यं
चिकित्सितज्ञाः क्षयजं वदन्ति ॥ २ ॥ इत्येष क्षयजः कासः क्षीणानां देहना-
शनः । साध्यो बलवतां वा स्याद्याप्यस्त्वेवं क्षतोत्थितः ॥ ३ ॥

साध्यासाध्यत्वमाह—

नवौ कदाचित्सिध्येतामपि पादगुणान्वितौ । स्थविराणां जराकासः सर्वो
याप्यः प्रकीर्तितः ॥ १ ॥

अथ चिकित्साद्वारेण साध्ययाप्यत्वमाह—

त्रीन्पूर्वान्साधयेत्साध्यान्पथ्यैर्याप्यास्तु यापयेत् । पूयाभमरुणं श्यावं हरितं
पीतनीलकम् ॥ १ ॥ निष्ठीवन् श्वासकासार्तो न जीवति हतस्वरः । कासाच्छ्वा-
सक्षयच्छर्दिस्वरसादादयो गदाः । भवन्त्युपेक्षया यस्मात्तस्मात् त्वरया जयेत्
॥ २ ॥ इति कासनिदानम् ।

अथ कासचिकित्सा ।

तत्र वातकासचिकित्सा । रुक्षस्यानिलजं कासमादौ स्नेहैरुपाचरेत् । सर्पिर्भिर्बस्तिभिः पेयाक्षीरयूषरसादिभिः ॥ १ ॥ ग्राम्यान्पूदकैः शालियवगो-धूमषट्ठिकान् । रसैर्माषात्मगुप्तानां यूषैर्वा भोजयेद्धि तान् ॥ २ ॥ दशमूली-श्रुता श्वासकासहिक्कारुजापहा । यवागूर्दीपनी वृष्या वातरोगविनाशिनी ॥ ३ ॥ रसः कर्कोटकानां च घृतभृष्टः सनागरः । वातकासप्रशमनः शृङ्गीमत्स्यस्य वा पुनः ॥ ४ ॥

अथापराजितलेहः ।

सटीशृङ्गीकणाभार्गीगुडवारिदयासकैः । सतैलैर्वातकासघ्नो लेहोऽयमपरा-जितः ॥ १ ॥

अथ भाङ्गर्यादिलेहः ।

भार्गीद्राक्षासटीशृङ्गीपिप्पलीविश्वभेषजम् । गुडतैलयुतो लेहो हितो मारु-तकासिनाम् ॥ १ ॥

अथ विश्वादिलेहः ।

विश्वाभार्गीकणासोमवलकं द्राक्षा सटी सिता । लिह्यात्तैलेन वातोत्थं कासं जयति दुस्तरम् ॥ १ ॥

अथ दशमूलादिघृतम् ।

दशमूलीकषायेण भार्गीकलकं घृतं पचेत् । दक्षतिस्त्रिनिर्यूहे तत्परं वात-कासजित् ॥ १ ॥

अथ कण्टकार्यवलेहः ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं व्योषं मुस्तं दुरालभाम् । शटी पुष्करमूलं च श्रेयसी सुरसा वचा ॥ १ ॥ भार्गी लिङ्गरुहा रास्ना कर्कटाख्या च कार्षिकान् । कल्का-न्निदिग्धिद्विगुलाकषाये पलविंशतिं ॥ २ ॥ मत्स्यण्डिकाया दत्त्वा तु सर्पिपः कुडवं पचेत् । सिद्धशीते पृथक्क्षौद्रपिप्पलीकुडवान्वितम् ॥ ३ ॥ चतुष्पलं तुगाक्षीर्याश्चूर्णं तत्र प्रदापयेत् । लेहयेत्कासहृद्गोशवासगुल्मनिवारणम् ॥ ४ ॥ चूर्णिता विश्वदुःस्पर्शाशृङ्गीद्राक्षासटीसिताः । लिह्यात्तैलेन वाताढ्यं कासं जयति दुस्तरम् ॥ ५ ॥ पञ्चमूलकृतः काथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः । रसैः सम-श्रुतो नित्यं वातकासमुदस्यति ॥ ६ ॥ इति वातकासः ।

अथ पित्तकासे बलादिकाथः ।

बलाद्विबृहतीद्राक्षावासाभिः कथितं जलम् । पित्तकासापहं पेयं शर्कराम-धुयोजितम् ॥ १ ॥

अथ शठ्यादिकाथः ।

शठीहीबेरवृहतीशर्कराविश्वभेषजम् । एतं काथं पिबेत्पूतं सघृतं पित्तकास-
नुत् ॥ १ ॥ शठीद्विपञ्चमूलस्य पिप्पलीद्राक्षयोस्तथा । कषायेण शृतं क्षीरं
पिबेत्समधुशर्करम् ॥ २ ॥

अथ खर्जूरालेहः ।

खर्जूरपिप्पलीद्राक्षासितालाजाः समांशकाः । मधुसर्पिर्युतो लेहः पित्तका-
सहरः परः ॥ १ ॥

अथ क्षीरामलकघृतम् ।

महिष्यजाविगोक्षीरधात्रीफलरसैः समैः । सर्पिंश्चस्थं पचेद्युक्त्या पित्त-
कासनिबर्हणम् ॥ १ ॥

अथ वङ्गसेनात् ।

काकोलीवृहतीमेदायुरमैः सवृषनागरैः । पित्तकासे रसक्षीरयूषांश्चाप्युपक-
ल्पयेत् ॥ १ ॥

अथ षट्प्रस्थं घृतम् ।

आपोथ्य क्षीरिणां शृङ्गान्पचेत्क्षीरचतुर्गुणे । द्राक्षाकल्के घृतं सिद्धं लिह्या-
त्तत्पित्तकासनुत् ॥ १ ॥

अथ क्षीरघृतम् ।

क्षीरवृक्षाङ्कुरकाथे पचेत्क्षीरसमं घृतम् । पाययेत्पित्तकासघ्नं मधुना वाऽव-
लेहयेत् ॥ १ ॥ इति वङ्गसेनात् ।

अथ द्राक्षामलकादिलेहः ।

द्राक्षामलकखर्जूरं पिप्पलीमरिचान्वितम् । पित्तकासहरं ह्येतल्लिह्यान्मा-
क्षिकसर्पिषा ॥ १ ॥

अथ कफकासः ।

कफजे वमनं कार्यं कासे लङ्घनमेव च । शस्तायवास्तत्प्रकृतियूषाश्च कटु-
तिक्तकाः ॥ १ ॥ मुद्गामलाभ्यां यवदाडिमाभ्यां कर्कन्धुना शुष्ककमूलकेन ।
शुण्ठीकणाभ्यां सकुलत्थकेन यूषो नवाङ्गः कफकासहन्ता ॥ २ ॥ इति नवा-
ङ्गयूषः । सठी सातिविषा मुस्ताशृङ्गी कर्कटकस्य च । अभया शृङ्गबेरं च समं
सध्यादि पेषयेत् ॥ १ ॥ हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तं तक्रोदकपरिष्ठुतम् । श्लेष्मकासी
लिहेदेतमचलेहं मुहुर्मुहुः ॥ २ ॥ इति शठ्याद्यवलेहः । व्योषाजमोदचित्रकष-
डग्रन्थचव्यकल्कितं सर्पिः । कफकासश्वासहरं वासकरससाधितं समधु ॥ १ ॥
इति व्योषाद्यं घृतम् । इति श्लेष्मकासः ।

अथ द्वंद्वकासचिकित्सा ।

कट्फलं कत्तुणं भार्गी मुस्ता धान्यं वचाऽभया । शुण्ठी पर्पटकं शृङ्गी
सुराह्णं च जले शृतम् ॥ १ ॥ मधुहिङ्गुयुतं पेयं कासे वातकफान्विते । क-
ण्ठरोगे मुखे शूले हिक्काश्वासज्वरेषु च ॥ २ ॥

अथ कट्फलादिः ।

सिंहास्यामृतसिंहीनां काथं मधुयुतं पुमान् । पिबेत्सपित्तकफजे कासे
श्वासे क्षये ज्वरे ॥ १ ॥ वासकस्वरसः पेयो मधुयुक्तो हिताशिना । पित्तश्ले-
ष्मकृते कासे तालीसाद्यं च योजयेत् ॥ २ ॥

अथ क्षतकासः ।

कासे तु क्षतजे बल्ये पाचनैर्बहूणैरपि । शमनैः पित्तकासघ्नैरन्यैश्च मधुरौ-
षधैः ॥ १ ॥ यवागूं वा पिबेत्सिद्धां क्षतोरस्कः सुशीतलाम् । इक्ष्वक्षुवा-
लिकापद्ममृणालोत्पलचन्दनैः ॥ २ ॥ मधुकं पिप्पली द्राक्षा शृङ्गी चैव श-
तावरी । द्विगुणा च तुगाक्षीरी सिता सर्वैश्चतुर्गुणा । लिह्यात्तं मधुसर्पिर्भ्यां
क्षतकासनिवृत्तये ॥ ३ ॥ इतीक्ष्वाद्यो लेहः ॥ मज्जिष्ठमूर्वानतवह्निपाठाकृ-
ष्णाहरिद्राविहितं तु चूर्णम् ॥ क्षौद्रेण कासेऽवलिहेत्क्षतोत्थे पिबेद् घृतं चेक्षु-
रसे विपक्रम् ॥ १ ॥ इक्ष्वक्षुवालिकापद्ममृणालोत्पलचन्दनैः । शृतं पयो
मधुयुतं संधानार्थं पिबेत्क्षती ॥ २ ॥ इति क्षतकासः ॥

अथ क्षयकासः ।

पिप्पलीगुडसंसिद्धं छागीक्षीरयुतं घृतम् । एतदग्निविवृद्ध्यर्थं सर्पिश्च क्षय-
कासिनाम् ॥ १ ॥ इति पिप्पल्यादिघृतम् ॥ काकुभपिष्टं कृत्वा वासारस-
भावितं बहून्वारान् । मधुघृतसितोपलाभिलेहं क्षयकासरक्तपित्तहरम् ॥ १ ॥
इति ककुभचूर्णम् ।

अथ पिप्पल्याद्यवलेहः ।

पिप्पली मधुकं पिष्टं कर्पकं ससितोपलम् । प्रस्थैकं गव्यमाज्यं च क्षीर-
मिश्रुरस्तथा ॥ १ ॥ यवगोधूममृद्वीकाचूर्णमामलकीरसम् । तैलं च प्रस्-
तांशानि तत्सर्वं मृदुवह्निना ॥ २ ॥ पचेत्लेहं घृतक्षौद्रयुक्तं स श्वासकासजित् ।
क्षयहृद्रोगकासघ्नो हितो वृद्धाल्परेतसाम् ॥ ३ ॥ इति पिप्पल्याद्यवलेहः ॥
अन्यच्च—पिप्पली मधुकं द्राक्षा सुपकं बृहतीफलम् । घृतक्षौद्रयुतो लेहः
क्षयकासनिर्बहणः ॥ १ ॥ संनिपातभवो ह्येष क्षयकासः सुदारुणः । संनिपा-
तहितं तस्मात्कार्यमत्र चिकित्सितम् ॥ २ ॥ इति क्षयकासः ॥

अथ कासश्वासः ।

अमृतानागरफजीव्याघ्रीपर्णीसुसाधितः काथः । पीतः सकणाचूर्णः कास-
श्वासौ जयत्याशु ॥ १ ॥ इत्यमृतादिक्वाथः ॥ भार्गी सनागरा सिंही कुलन्थं
मूलकं तथा । पिबेत्पिप्पलिसाधितम् । कासश्वासौ व्यपोहति ॥ १ ॥ इति भा-
र्यादिक्वाथः ॥ स्वरसं शृङ्गवेरस्य माक्षिकेण समन्वितम् । पाययेच्छ्याम्का-
सघ्नं प्रतिश्यायकफापहम् ॥ १ ॥ सेवितं मधुखण्डाभ्यां चूर्णं मरिचजं यदि ।
किमर्थं क्रियते चिन्ता कासश्वासपराजितैः ॥ २ ॥ कुलिथः कण्टकारी च
तथा ब्राह्मणयष्टिका । शुण्ठीसुरभिःसंयुक्तः कासश्वासज्वरापहः ॥ ३ ॥ पौष्करं
कटफलं भार्गी विश्वपिप्पलिसाधितम् । पिबेत्क्वाथं कफोद्रेके कासे श्वासे च
हृद्गहे ॥ ३ ॥ कुनदीसैन्धवव्योपविडङ्गामरहिङ्गुभिः । लेहः साज्यमधुः का-
सहिकाश्वासनिवारणः ॥ ४ ॥ इति कुनद्यादिलेहः । श्वासकासहरा बर्हिपादा
च क्षौद्रसर्पिषा । लिह्यान्मरिचचूर्णं वा सघृतक्षौद्रशर्करम् ॥ १ ॥ भार्गीशु-
ण्ठीकणाचूर्णं गुडेन श्वासकासनुत् । पथ्याशुण्ठीगुडयुतां गुटिकां धारयेन्मुखे
॥ २ ॥ सर्वेषु श्वासकासेषु केवलं वा बिभीतकम् । नागरेणाभया तद्वत्कास-
माशु व्यपोहति ॥ ३ ॥ इति कासश्वासः ॥

अथ सर्वकासः ।

सपिप्पलीपुष्करमूलपथ्याशुण्ठीसटीमूलकसूक्ष्मचूर्णम् । गुडेन युक्ता गु-
टिका प्रयोज्या कासेषु नासास्त्रवैस्त्रे च ॥ १ ॥ क्ष्वथौ गन्धनाशे च धूम-
पानं प्रयोजयेत् । अर्कमूलशिले तुल्ये ततोऽर्धेन कटुत्रिकम् ॥ २ ॥ चूर्णितं
वह्निनिक्षिप्तं पिबेद्भूमं तु योगवित् । भक्षयेदथ ताम्बूलं पिबेद्गुग्गुलुनाम्बु वा
॥ ३ ॥ कासाः पञ्चविधा यान्ति शान्तिमाशु न संशयः । मनःशिलालमरि-
चमांसीमुस्तेजुदैः पिबेत् ॥ ४ ॥ धूमं तस्यानु च पयः सुखोष्णं सगुडं पिबेत् ।
एष कासान्पृथग्द्वन्द्वसंनिपातसमुद्भवान् ॥ ५ ॥ शतैरपि प्रयोगाणां साधये-
दप्रसाधितान् । मनःशिलालिसदलं बदर्यातपशोषितम् ॥ ६ ॥ सक्षीरं धूम-
पानं च महाकासनिबर्हणम् । पिष्ट्वा त्रिपुटधत्तूरमूलव्योषमनःशिलाः ॥ ७ ॥
तेन प्रलिप्य वसनं धूमवर्तिं प्रकल्पयेत् । धूमं तस्याः पिबेद्यस्तु त्रिदिनात्क-
सनं हरेत् ॥ ८ ॥ अथ जात्यादिधूमः । जातीपत्रशिलारालैर्योजयेद्गुग्गुलुं
समम् । अजामूत्रेण संपिष्टो धूमः कासहरः परः ॥ १ ॥ जातीजटा-
किसलयैर्बदरीदलैश्च जाता मसूरकफलैः समनःशिलैश्च । स्याद्भूमवर्ति
रिह गुग्गुलुना समेतैः कासच्छिदे बदरिकाग्निविदह्यमानैः ॥ २ ॥ रा-
त्रिद्वयशिलाधूमपानात्कासश्रुतिः कुतः । जलपानादपि तथा क्षणेन क्षणदा-
क्षये ॥ ३ ॥ इति जात्यादिधूमः ॥ हरीतकीकणाशुण्ठीमरीचगुडसंयुतः ।
कासघ्नो मोदकः प्रोक्तः परं चानलदीपनः ॥ १ ॥ इति हरीतक्याद्यो मो-

दकः ॥ शुण्ठीकणामरिचनागदलत्वगेलं चूर्णीकृतं क्रमविवर्धितमूर्ध्वमन्यात् ।
खादेदिदं समसितं गुदजाग्रिमान्द्यगुलमारुचिश्चसनकण्ठहृदामयेषु ॥ १ ॥
इति समशर्करं चूर्णम् ॥ कर्पूरवालकङ्गोलजातीफलदलं समम् । लवङ्गनाग-
मरिचकृष्णाशुण्ठ्यो विवर्धिताः ॥ १ ॥ चूर्णं सितासमं ग्राह्यं रोचनं क्षयका-
सजित् । वैस्वर्यकासश्वासघ्नं छर्दिं चैव क्षयं जयेत् ॥ प्रयुक्तं चान्नपानेषु भै-
षज्यं द्विगुणं हितम् ॥ २ ॥ इति कर्पूराद्यं चूर्णम् ॥ कर्षः कर्षीशपलं पलद्वयं
स्यात्ततोऽर्धकर्षश्च । मरिचस्य पिप्पलीनां दाडिमगुडयावशूकानाम् ॥ १ ॥
सर्वौषधैरसाध्या ये कासाः सर्ववैद्यनिर्मुक्ताः । अपि पूयं छर्दयतां तेषामिद-
मौषधं पथ्यम् ॥ २ ॥ अत्र कर्षीशो द्विकर्षमेव । इति मरिचाद्यं चूर्णं ॥
देवदारुबलारास्त्रात्रिफलाव्योषपद्मकैः । सविडङ्गैः सितातुल्यैस्तच्चूर्णं सर्व-
कासनुत् ॥ १ ॥ बदरीपत्रकल्कं वा घृतभृष्टं ससैन्धवम् । स्वरोषघाते कासे
च लेहमेतं प्रयोजयेत् ॥ २ ॥ द्वौ क्षारौ पञ्चमूलानि पञ्चैव लवणानि च ।
सटीनागरकोदीच्यकल्कं वा वस्त्रगालितम् ॥ पाययेच्च घृतोन्मिश्रं सर्वकास-
निबर्हणम् ॥ ३ ॥

अथ त्रिजातगुटिका ।

त्रिजातमर्धकर्षं च पिप्पल्यर्धपलं सिता । द्राक्षामधुकखर्जूरं पलांशं श्ल-
क्ष्णकल्कितम् ॥ १ ॥ मधुना गुटिका भ्रन्ति ता वृष्याः पित्तशोणितम् ।
कासश्वासारुचिच्छर्दिर्मूर्च्छाहिध्मामदभ्रमान् ॥ २ ॥ क्षतक्षयस्वरभ्रंशश्लीहशो-
पाढ्यमारुतान् । रक्तनिष्टीवहृत्पार्श्वरुक्पिपासाज्वरानपि ॥ ३ ॥

अथ मरीचादिगुटिका ।

शार्ङ्गधरात्—मरीचं कर्षमात्रं च पिप्पली कर्षसंमिता । अर्धकर्षो यव-
क्षारः कर्षयुग्मं च दाडिमात् ॥ १ ॥ एतच्चूर्णीकृतं युञ्ज्यादष्टकर्षगुडेन हि ।
शाणग्रमाणां गुटिकां कृत्वा वक्त्रे च धारयेत् ॥ अस्याः प्रभावात्सर्वेऽपि
कासा यान्त्येव संक्षयम् ॥ २ ॥

अथ लवङ्गादिवटी ।

तुल्या लवङ्गमरिचाक्षफलत्वचः स्युः सर्वैः समो निगदितः खदिरस्य
सारः । बन्बूलवल्कलकषाययुजां चतुर्णां कासान्निहन्ति वटिका घटिकाष्ट-
कान्ते ॥ १ ॥ धनंजयत्रिजातकं कणाजटाकटुत्रिकम् । रसार्द्रकेण भावितं
जयेच्च कासमाततम् ॥ २ ॥ कटुत्रिकं छिन्नलताकृशानुफलत्रिकं वेल्हभवं स-
रास्त्रम् । सशर्करं चूर्णमिदं सुसेव्यं कासाटवीदाहद्वानलाल्यम् ॥ ३ ॥

अथ खदिरादिगुटिका ।

खादिरं पौष्करं शृङ्गी कदफलं द्विजयष्टिका । हरीतकी लवङ्गं च व्योषं

चातिविषं तथा ॥ १ ॥ कारवी यासममृता बृहतीद्वयमक्षकम् । पृथक्कर्षद्वयं
ग्राह्यं सूक्ष्मचूर्णं तु कारयेत् ॥ २ ॥ सर्वैः समं खादिरं च मेलयित्वा विभा-
वयेत् । दाडिमत्वक्तथा क्षुद्राखदिराम्भोभिराद्रिकैः ॥ ३ ॥ बबूलत्वग्दल-
काथैराटरुपजलैस्तथा । सप्तधा भावयेद्बद्धा गुटिका खादिरी मता । कास-
श्चासौ निहन्याशु दुस्तरौ चिरजावपि ॥ ४ ॥ इति श्वासकासे खदिरादिगुटिका ॥

अथाऽऽद्रकावलेहः ।

वैद्यजीवनात्—आर्द्रादर्धतुला गुडादपि तथा व्याघ्रं च कुस्तुम्बरी दी-
प्यायोजरणत्रिजातजलदादेतत्पचेद्युक्तितः । लेहो रत्नकले तवैव कथितः प्रा-
णप्रियाया मया कासाशोर्ज्वरपीनसश्चयथुरुगुल्मक्षयध्वंसनः ॥ १ ॥

अथ व्याघ्रीहरीतकीलेहः ।

समूलपुष्पच्छदकण्टकार्यास्तुला जलद्रोणपरिष्ठुता च । हरीतकीनां च शतं
निदध्याद्ग्राह्यं तु पक्त्वा चरणावशेषम् ॥ १ ॥ गुडस्य दत्त्वा शतमेतद्गौ
विपक्वमुत्तार्य ततः सुशीते । कटुत्रिकं च त्रिपलप्रमाणं पलानि षट् पुष्पर-
सस्य चापि ॥ २ ॥ क्षिपेच्चतुर्जातपलं यथाग्निं प्रयुज्यमानो विधिनाऽवलेहः ।
वातात्मकं पित्तकफोद्भवं च द्विदोषकासानपि संनिपातान् ॥ ३ ॥ क्षतोद्भवं
कासक्षयं च हन्यात्सपीनसश्चासमुरःक्षतं च । यक्ष्माणमेकादशरूपमुग्रं भृगू-
पदिष्टं हि रसायनं स्यात् ॥ ४ ॥

अथ कासकण्डनावलेहः ।

अजामूत्रं शतपलं मन्दाग्नौ गुडपाकवत् । पक्त्वा विभीतकं चूर्णं पलद्वय-
मितं क्षिपेत् ॥ १ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं पलमात्रं मृतायसम् । कण्टकारी-
फलरजो निक्षिपेच्च पलद्वयम् ॥ २ ॥ ततो माषद्वयं खादेद्वृद्धं कर्षमथापि वा ।
क्षौद्रेणोष्णाम्बुना वाऽपि सर्वकासात्प्रमुच्यते ॥ ३ ॥ असाध्या भिषजा ल्य-
क्ताश्चिरजाः पथ्यवर्जिताः । ये कासास्तेऽप्यनेनाऽऽशु प्रणश्यन्ति न संशयः ।
कासकण्डननामाऽयं योग आत्रेयभाषितः ॥ ४ ॥

अथागस्तिहरीतकीपाकः ।

वृन्दात्—दशमूलीं स्वयंगुप्तं शङ्खपुष्पीं शटीं बलाम् । हस्तिपिप्पल्यपा-
मार्गपिप्पलीमूलचित्रकान् ॥ १ ॥ भार्गीपुष्करमूलं च द्विपलांशं यवाढकम् ।
हरीतकीशतं चैव जले पञ्चाढके पचेत् ॥ २ ॥ यवैः स्विन्नैः कषाये च पूतं
तच्चाभंयाशतम् । पचेद्दुडतुलां दत्त्वा कुडवं च पृथग्घृतात् ॥ ३ ॥ तैलात्पि-
प्पलिचूर्णाच्च सिद्धे शीते च माक्षिकात् । लिङ्गाद्दे चाभये नित्यं ततः खादे-
द्रसायनात् ॥ ४ ॥ वर्लीं च पलितं हन्याद्गर्णीयुर्बलवर्धनम् । पञ्च कासान्क्ष-
यश्चासान्हिक्कां च विषमज्वरान् ॥ ५ ॥ हन्यात्तथा ग्रहण्यशोहद्रोगारुचिपी-
नसान् । अगस्तिविहितं धन्यमिदं श्रेष्ठं रसायनम् ॥ ६ ॥

अथ वैद्यजीवनाद्विभीतकावलेहः ।

आजस्य सूत्रस्य शतं पलानां शतं पलानां च कलिद्रुमस्य । पक्कं समध्वाशु निहन्ति कासं श्वासं च तद्वत्सबलं बलासम् ॥ १ ॥ अथ कण्टकार्यवलेहः । कण्टकारीतुलां नीरद्रोणे पक्त्वा कषायकम् । पादशेषं गृहीत्वा च तस्मिंश्चूर्णानि दापयेत् ॥ २ ॥ पृथक्पलांशान्येतानि गुडूचीचव्यचित्रकम् । मुस्ताकर्कटशृङ्गी च त्र्यूषणं धन्वयासकम् ॥ ३ ॥ भार्गी रास्त्रा शटी चैव शर्करा पलविंशतिः । प्रत्येकं च पलान्यष्टौ प्रदद्याद् घृततैलयोः ॥ ४ ॥ पक्त्वा लेह-त्वमायाते शीते मधुपलाष्टकम् । चतुष्पलं तुगाक्षीर्याः पिप्पलीनां चतुष्पलम् ॥ ५ ॥ क्षिप्वा निदध्यात्सुदृढे मृन्मये भाजने शुभे । लेहोऽयं हन्ति कासा-र्तिहिक्काश्वासानशेषतः ॥ ६ ॥ इति कण्टकार्यवलेहो वृन्दात् । व्याघ्रीस्वरस-विपकं रास्त्राकदफलसुगोक्षुरव्योषैः । सर्पिः स्वरपघातं निहन्ति कासं च पञ्चविधम् ॥ ७ ॥ इति वृन्दात् । सर्पिर्गुडूचीवृषकण्टकारीक्वाथेन कल्केन च सिद्धमेतत् । पेयं पुराणज्वरकासशूलह्नीहासिमान्धग्रहणीगदेषु ॥ ८ ॥

अथ त्र्यूषणादिघृतं वृन्दात् ।

त्र्यूषणं त्रिफलाद्राक्षाकाशमर्यश्वाटरूपकम् । द्वे पाठे देवदार्वदस्वगुप्तं चित्रकं शटी ॥ १ ॥ व्याघ्री तामलकी मेदा काकनासा शतावरी । त्रिकण्टकं विदारी च पिष्ट्वा कर्पसमानघृतात् ॥ २ ॥ प्रस्थं चतुर्गुणक्षीरसिद्धं कासहरं पिबेत् । ज्वरगुल्मारुचिह्नीहशिरोहृत्पार्श्वशूलनुत् ॥ ३ ॥ कामलाशौनिलाष्टी-लाक्षतशोषक्षयापहम् । त्र्यूषणं नाम विख्यातं घृतमेतन्महोत्तमम् ॥ ४ ॥

अथ कण्टकारीघृतम् ।

समूलफलपत्रायाः कण्टकार्या रसाढकम् । घृतप्रस्थं बलाव्योषविडङ्गशटि-द्राडिमैः ॥ १ ॥ सौवर्चलयवक्षारविश्वामलकपौष्करैः । वृश्चीववृहतीपथ्याय-वानीचित्रकादिभिः ॥ २ ॥ सृष्ट्रीकाचव्यवर्षाभूदुरालम्भास्त्वित्तैः । शृङ्गी-तामलकीभार्गीरास्त्रागोक्षुरकैः पचेत् ॥ ३ ॥ कल्कैस्तत्सर्वकासेषु श्वासहिध्मासु शस्यते । कण्टकारीघृतं सिद्धं कफव्याधिनिपूदनम् ॥ ४ ॥ इति वृन्दात् ॥ द्वितीयं कण्टकारीघृतं योगतरङ्गिण्याः—कण्टकार्यास्तुलां क्षुण्णां कृत्वा द्रोणेऽऽभसः पचेत् । तेनाऽऽढकेन क्वाथस्य घृतप्रस्थं पिचून्मितैः ॥ ५ ॥ रास्त्रादुःस्पर्शषडग्रन्थिपिप्पलीद्वयचित्रकैः । सौवर्चलयवक्षारकृष्णामूलैश्च त-जयेत् ॥ कासश्वासकफष्ठीवहिक्कारोचकपीनसान् ॥ ६ ॥ इति कण्टकारीघृतम् ॥

अथ रसाः ।

रसगन्धकणापथ्याकलिद्रुफलवासकाः । भार्गी चेति क्रमाद् वृद्धैरेतद्वर्बर-जद्रवैः ॥ १ ॥ पिष्टं विंशतिमेकांताङ्कुर्यात्क्षौद्रेण गोलकान् । कर्षप्रमाणमे-

तस्य तमेकं प्रातरुत्थितः ॥ २ ॥ दद्यान्मासत्रयं क्षुद्राकाथं दशकणायुतम् ।
पिबेत्तदनु कासाच्च श्वासाच्च परिमुच्यते ॥ ३ ॥ इति भागोत्तरवटी ॥

अथ पर्पटीरसः ।

रसरत्नप्रदीपात् ॥ भागो रसस्य गन्धस्य द्वावेको लोहभस्मतः । एतद् घृते
द्रवीभूतं मृद्वग्नौ कदलीदले ॥ १ ॥ पातयेद्गोमयगते तथैवोपरि योजयेत् । ततः
पिष्ट्वा द्रवैरेभिर्मर्दयेत्सप्तधा पृथक् ॥ २ ॥ भार्गीमुण्डीमुनिवराजयानिर्गुण्डि-
काद्रवैः । व्योषवासककन्याद्रवैः शुष्कं पुटेल्लघु ॥ ३ ॥ अगन्धं स्वर्परे
नाम्ना पर्पटीति रसो भवेत् । सर्वरोगहरः स्वैः स्वैरनुपानैर्द्विमाषतः ॥ ४ ॥
ताम्बूलपत्रसहिता कासश्वासहरा परा । सकणः सुरसाकाथोऽनुपानं वा सगो-
जलम् ॥ ५ ॥

अथ पारदादिचूर्णम् ॥

योगरत्नावलितः ॥ पारदं गन्धकं शुद्धं मृतं लोहं च टङ्कणम् । रास्त्रा-
विडङ्गत्रिफलादेवदारुकटुत्रयम् ॥ १ ॥ अमृतापङ्गकक्षौद्रं पिचुतुल्यानि चूर्ण-
येत् । त्रिगुञ्जः सर्वकासघ्नो ज्वरारोचकमेहनुत् ॥ २ ॥

अथ कासश्वासविधूननो रसः ॥

रसभागो भवेदेको गन्धकाद्वौ तथैव च । यवक्षारस्त्रिभागः स्याद्रुचकं च
चतुर्गुणम् ॥ १ ॥ मरिचं पञ्चभागं स्यात्सुरसारसमर्दितः । कासं पञ्चविधं
हन्याच्छ्वासं पञ्चविधं हरेत् ॥ २ ॥

अथ ताम्रपर्पटीरसः ॥

मृतं ताम्रं त्रिभागं च रसं गंधं च तत्समम् । भागमेकं वत्सनाभं कजली-
खल्वमध्यगम् ॥ १ ॥ गोघृतेन कृतं कल्कं लोहपात्रे विपाचयेत् । ढालयेद-
र्कपत्रस्थां पर्पटीं रससिद्धये ॥ २ ॥ गुञ्जाद्वयं त्रयं चैव पिप्पलीमधुसंयुतम् ।
त्रिसप्तसप्तयोगेन रोगराजं च नाशयेत् ॥ ३ ॥ आर्द्रकस्य रसेनैव संनिपातं
नियच्छति । त्रिफलारससंयुक्ता सर्वपाण्डुं विनाशयेत् ॥ ४ ॥ वातारितैल-
संयुक्ता सर्वशूलनिवारणी । कुमारीरसयोगेन वातपित्तोपशान्तिकृत् ॥ ५ ॥
बाकुचीरससंयुक्ता सर्वदद्रुविनाशनी । त्रिफलामधुसंयुक्ता सर्वमेहनिवारणी
॥ ६ ॥ खदिरकाथपानेन कुष्ठाष्टादशनाशिनी । मन्थानभैरवेणोक्ता लोकानां
हितकाम्यया ॥ ७ ॥ इति ताम्रपर्पटीरसः ।

अथ नागवल्लभः ।

कर्षमाना मृगमदचोर्चटङ्कणका अथ । काश्मीरजन्मदरदपिप्पल्यः स्युर्द्विक-
र्षिकाः ॥ १ ॥ आकारकरभो जातीपत्री जातीफलं विषम् । प्रत्येकं पलमा-

नानि चत्वार्यथ सुखलवके ॥ २ ॥ अहिवल्लीदलरसैर्मर्दयेच्च दिनत्रयम् । मुद्ग-
प्रमाणा वटका लीढा मध्वार्द्रकद्रवैः ॥ ३ ॥ ताम्बूलचर्विता मेहकासक्षयमरु-
द्धराः । नागवल्लभनामाऽयं रसो विश्वोपकारकः ॥ ४ ॥ इति नागवल्लभरसो
ग्रन्थान्तरात् ।

अथ हेमगर्भपोटलीरसः ।

शार्ङ्गधरात् ॥ रसस्य भागाश्चत्वारस्तावन्तः कनकस्य च । तयोश्च पिष्टि-
कां कृत्वा गन्धो द्वादशभागकः ॥ १ ॥ कुर्यात्कज्जलिकां तत्र मुक्ताभागाश्च
षोडश । चतुर्विंशति शङ्खस्य भागैकं टङ्कणस्य च ॥ २ ॥ एकत्रमर्दयेत्सर्वं पक्व-
निम्बूकजै रसैः । कृत्वा तेषां ततो गोलं मूषासंपुटके न्यसेत् ॥ ३ ॥ मुद्रां
दत्त्वा ततो हस्तमात्रे गतै च गोमयैः । पुटेद्भजपुटेनैव स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत्
॥ ४ ॥ पिष्ट्वा गुञ्जाचतुर्मानं दद्याद्भय्याज्यसंयुतम् । एकोनत्रिंशदुन्मानम-
रिचैः सह दीयते ॥ ५ ॥ राजते मृन्मये पात्रे काचजे वाऽथ लोहजे । लोक-
नाथसमं पथ्यं कुर्यात्प्रयतमानसः ॥ ६ ॥ कासे श्वासे क्षये वाते कफे ग्रहणि-
कागदे । आतीसारे प्रयोक्तव्या पोटली हेमगर्भिका ॥ ७ ॥ इति हेमगर्भपो-
टलीरसः ।

अथ द्वितीयहेमगर्भपोटलीरसः ।

शुद्धसूतं चतुर्भागं द्विभागं गन्धकस्य च । भागमेकं सुवर्णं च त्रिभागं
शुल्बभस्म च ॥ १ ॥ कुमारीरससंयुक्तं सप्ताहं मर्दयेद् दृढम् । गुटिकां कार-
येत्तां तु बक्षीयात्स्वरकर्पटे ॥ २ ॥ वस्त्रे किञ्चिद्वलिं स्थाप्य तत्र गोलं निधाय
च । बक्षीयात्पोटलीं गाढां पश्चाद्वस्त्रेण वेष्टयेत् ॥ ३ ॥ सर्वभागसमं गन्धं
दत्त्वा मृन्मयभाजने । तन्मध्ये पोटलीं न्यस्य मुखे मुद्रां च कारयेत् ॥ ४ ॥
विधाय च्छिद्रं मुद्रास्थं द्वावं दृष्ट्वा शलाकया । पाचयेत्सिकतायत्रे रसोऽयं
मृदुबहिना ॥ ५ ॥ यामार्धेन सुसंजातं स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् । कासे श्वासे
क्षये वाते कफे ग्रहणिकागदे । सर्वरोगेषु दातव्या हेमगर्भाख्यपोटली ॥ ६ ॥

अथान्यः प्रकारः ।

शुद्धसूतं त्रिभागं च तत्समं शुल्बभस्म च । भागैकं गन्धकं दद्यात्तदूर्ध्वं
स्वर्णमेव च ॥ १ ॥ कज्जलीं कारयेत्तां तु खल्वके सप्तवासरम् । अथ निर्गु-
ण्डिकाद्रावैर्मर्दयेद्दिनसप्तकम् ॥ २ ॥ अथवा कनकद्रावैर्गुटिकां कारयेत्ततः ।
किञ्चिद्वलिसमायुक्ते वस्त्रे गोलं निधाय च ॥ ३ ॥ बक्षीयात्पोटलीं गाढामेवं
च त्रिपुटं चरेत् । दृढमृन्मयपात्रे तु गन्धं दत्त्वाऽधरोत्तरम् ॥ ४ ॥ तन्मध्ये
पोटलीं न्यस्य निर्वीतभवनान्तरे । वितस्तिप्रमितं गतं तस्मिन्संस्थाप्य मुद्रयेत्
॥ ५ ॥ अङ्गुलीमृत्तिकाभिश्च ज्वालेयेदिन्धनानि च । यामेन सिद्धतां याति
हेमगर्भाख्यपोटली । अनुपानानुसारेण सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ६ ॥

अथान्यः प्रकारः ।

रसं च गन्धकं चैव समं खल्वे विमर्दयेत् । कज्जल्यां च तथा स्वर्णं संशुद्धं च विनिक्षिपेत् ॥ १ ॥ सुसूक्ष्मे सुदृढे वस्त्रे वज्रा पोदलिकां दृढाम् । गन्ध-
केनाऽऽयसे पात्रे पक्त्वा पोदलिकां चिरम् ॥ २ ॥ मन्दाग्निना पचेद्यावद् व्यो-
मवर्णं भवेत्तु तत् । हेमगर्भ इति ख्यातो रसोऽयं श्वासकासनुत् । अनुपान-
विभेदेन सर्वरोगाञ्जयत्यसौ ॥ ३ ॥

अथ महाहेमगर्भ रसः ।

शुद्धसूतं पलैकं स्यात्पादांशं शुद्धहेमकम् । शुद्धगंधस्य माषैकं प्रतिकर्षं प्रयोजयेत् ॥ १ ॥ त्रयमेकत्र कुर्वीत सूक्ष्मं खल्वे विमर्दयेत् । सुदृढे बंधयेद्वस्त्रे स्थाप्यं लोहजसं-
पुटे ॥ २ ॥ मर्दितं गंधकपलं तस्योपरि प्रदापयेत् । संपुटं मुद्रितं कृत्वा भूधराख्य-
पुटे पचेत् ॥ ३ ॥ स्वांगशीतलमुद्धृत्य दग्धं गंधं परित्यजेत् । वेष्टयित्वा पुनर्वस्त्रं सूत्रे
बध्वा च गोलकं ॥ ४ ॥ तत्तुल्यं च पुनर्गंधं संपुटे निक्षिपेद् भिषक् । मुद्रितं संपुटं
कृत्वा पुनर्यन्त्रेण पाचयेत् ॥ ५ ॥ हेमगर्भरसो नाम्ना सर्वव्याधिनिवारणः । रोग
राजादिकं हन्ति इतराणां तु का कथा ॥ ६ ॥ इति महाहेमगर्भरसः ।

अथ कफकुञ्जररसः ।

रसगन्धौ समांशौ च सुहृर्कपयसः पलम् । पलं च पञ्चलवणमेकीकृत्या-
वचूर्णयेत् ॥ १ ॥ आलोड्य चार्कदुग्धेन पूरयेच्छङ्खमध्यतः । पिप्पलीभक-
णावारिचूर्णं कृत्वा प्रलेपयेत् ॥ २ ॥ प्रज्वालयेद्याममात्रं सूक्ष्मचूर्णं तु कार-
येत् । कर्पूरनागपत्रैश्च देयो मात्रार्धगुञ्जया ॥ ३ ॥ श्वासं कासं च हृद्रोगं
कफं पञ्चविधं तथा । नाशयेत्सर्वरोगांश्च रसोऽयं कफकुञ्जरः ॥ ४ ॥

अथ कफरोगे नागरसः ।

लवङ्गजातीफलजातिपत्रिकास्तथैव नागोषणग्रन्थिकानि । कर्षप्रमाणानि
तथैकशाणं कस्तूरिकाकुङ्कुमयोः प्रयुञ्ज्यात् ॥ १ ॥ आर्द्राम्बुनाऽथ विहिता
वटिका त्रिगुञ्जा चाऽऽर्द्राम्भसाऽपि विनिहन्ति कफक्षयादीन् । किं श्वासकासं
जठरस्य शूलं नानानुपानैः सकलामयघ्नम् ॥ २ ॥

अथोन्मत्तभैरवरसः ।

पारदं दरदं शुद्धं गन्धकं कज्जलाकृति । गजकणा वत्सनागं शुण्ठी चोन्म-
त्तबीजकम् ॥ १ ॥ जातीफलं जातिपत्रं लवङ्गं मरिचं तथा । अकल्करं समा-
नं स्यान्मर्दयेच्च दिनत्रयम् ॥ २ ॥ आर्द्रकस्य रसेनैव गुटिकां वल्लसंनिभाम् ।
चपला मधुना चैव क्षयश्वासनिबर्हणः ॥ ३ ॥ कफरोगविनाशाय रस उन्म-
त्तभैरवः । अनुपानविशेषेण धातुपुष्टिकरः स्मृतः ॥ ४ ॥ इति रसाः ।

अथ पथ्यापथ्यम् ।

शालिषष्टिकगोधूममाषमुद्रकुलत्थकाः । छाग्याः पयो घृतं बिम्बी वार्ताकं बालमूलकम् ॥ १ ॥ कासमर्दकजीवन्ती वास्तुकं बीजपूरकम् । गोस्तनी लशुनं लाजा व्योषमुष्णोदकं मधु ॥ २ ॥ पथ्यमेतद्यथादोषमुक्तं कासगदातुरे । मैथुनं स्निग्धमधुरं दिवास्त्रापं पयो दधि । पिष्टान्नं पायसादीनि कासी धूमं च वर्जयेत् ॥ ३ ॥ इति पथ्यापथ्यम् । इति कासचिकित्सा ॥

अथातो हिक्कानिदानं व्याख्यास्यामः ।

विदाहिगुरुविष्टम्भिरुक्षाभिष्यन्दिभोजनैः । शीतपानाशनस्नानरजोधूमा तपानिलैः ॥ १ ॥ व्यायामकर्मभाराध्ववेगाघातापतर्पणैः । हिक्का श्वासश्च कासश्च नृणां समुपजायते ॥ २ ॥

अथ संप्राप्तिमाह—

मुहुर्मुहुर्वायुरुदेति सस्वनो यकृत्प्लीहान्त्राणि सुखादिवाऽऽक्षिपन् । स घोषवानाशु हिनस्त्यसून् यतस्ततस्तु हिक्केत्यभिधीयते बुधैः ॥ १ ॥ अथ तासां पूर्वरूपमाह—कण्ठोरसोर्गुरुत्वं च वदनस्य कषायता । हिक्कानां पूर्वरूपाणि कुक्षेराटोप एव च ॥ २ ॥

अथ तासां नामान्याह ।

अन्नजां यमलां क्षुद्रां गम्भीरां महतीं तथा । वायुः कफेनानुगतः पञ्च हिक्काः करोति हि ॥ १ ॥

अथान्नजालक्षणमाह—

पानान्नैरतिसंयुक्तैः सहसा पीडितोऽनिलः । हिक्कयत्यूर्ध्वगो भूत्वा तां विद्यादन्नजां भिषक् ॥ १ ॥

अथ यमलामाह—

चिरेण यमलैर्वैरैर्या हिक्का संप्रवर्तते । कम्पयन्ती शिरोग्रीवं यमलां तां विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥

अथ क्षुद्रामाह—

विकृष्टकालैर्या वेगैर्मन्दैः समभिवर्तते । क्षुद्रिका नाम सा ज्ञेया जत्रुमूलात्प्रधावती ॥ १ ॥

अथ गम्भीरामाह—

नाभिप्रवृत्ता या हिक्का घोरा गम्भीरनादिनी । अनेकोपद्रववती गम्भीरा नाम सा स्मृता ॥ १ ॥

अथ महतीमाह—

मर्माण्यपीडयन्तीव सततं या प्रवर्तते । महाहिकेति सा ज्ञेया सर्वगात्र-
प्रकम्पिनी ॥ १ ॥

अथासाध्यत्वलक्षणमाह—

आयम्यते हिक्कतो यस्य देहो दृष्टिश्चोर्ध्वं ताम्यते यस्य नित्यम् । क्षीणोऽ-
न्नद्विद् क्षौति यश्चातिमात्रं तौ द्वौ चान्यौ वर्जयेद्विक्रमानौ ॥ १ ॥ अतिसं-
चित्तदोषस्य भक्तद्वेषकृशस्य च । व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्यातिव्यवायिनः
॥ २ ॥ एषां या सा समुत्पन्ना हिक्का हन्त्याशु जीवितम् । यमिका च प्रलापार्तिमो-
हनृष्णासमन्विता ॥ ३ ॥ अक्षीणश्चाप्यदीनश्च स्थिरधात्विन्द्रियश्च यः । तस्य
साधयितुं शक्या यमिका हन्त्यतोऽन्यथा ॥ ४ ॥ वातेन हिक्काः प्रभवन्ति
पञ्च तासामसाध्यत्वमुदाहरन्ति । अक्षीणमांसस्य भवेच्च साध्या प्रान्ते च
हिके परिवर्जनीये ॥ ५ ॥ इति हिक्कानिदानम् ।

अथ हिक्काचिकित्सा—

नारीपयःपिष्टसुशुक्लचन्दनं कृतं सुखोष्णं च ससैन्धवं च । पिष्टं तथा
सैन्धवमम्बुना वा निहन्ति हिक्कां ननु नावनेन ॥ १ ॥ इति नारायणीयात् ।
मधुकं मधुसंयुक्तं पिप्पली शर्करान्विता । नागरं गुडसंयुक्तं हिक्काघ्नं नावनत्र-
यम् ॥ २ ॥ इति वृन्दात् ।

अथ यवागूः ।

दशमूलीशटीरास्त्रापिप्पलीविश्वपौष्करैः । शृङ्गीतामलकीभार्गीगुडचीनाग-
रादिभिः ॥ १ ॥ यवागूं मधुना सिद्धां कषायं वा पिवेन्नरः । कासहृद्ग्रहपा-
र्श्वार्तिहिक्काश्वासप्रशान्तये ॥ २ ॥ इति वृन्दात् । हिङ्गुसौवर्चलाजाजीबिडपौ-
ष्करचित्रकैः । सटी कर्कटशृङ्गी च यवागूः श्वासहिक्किनाम् ॥ ३ ॥

इति हिङ्गवादियवागूश्चिकित्सासारात् ।

अथ यूषः ।

कासमर्दकपत्राणां यूषः शोभाजनस्य च । शुष्कमूलकयूषश्च हिक्काश्वासनि-
वारणः ॥ सदधिन्योषसर्पिष्को यूषो वार्ताकजो हितः ॥ १ ॥ इति वृन्दात् ॥

अथ काथः ।

दशमूलीजलयुतं शृतं हिक्किषु योजयेत् । श्वासकासहरः सर्वो विधिरत्रापि
युज्यते ॥ १ ॥ इति रसरत्नदीपात् । पाटल्याः फलतोयेन क्षौद्रेण च समन्वि-
तम् । हेमभस्म निहन्त्येव हिक्काः पञ्चातिदुस्तराः ॥ २ ॥ दशमूलीकषायेण

मधुना च समन्वितम् । कान्तायोभस्म हिक्कानां पञ्चतां पञ्चतां नयेत् ॥ ३ ॥
कुलिथयवकोलाम्बुदशमूलबलाजलम् । पानार्थं कल्पयेत्कासहिक्काश्वासप्रशान्तये ॥ ४ ॥ इति वृन्दात् । धात्री च मागधी शुण्ठी काथश्रैषां सितायुतः ।
हिनस्ति हृदयोद्भूतां हिक्कां प्राणापनोदिनीम् ॥ ५ ॥

इति वैद्यविलासात् ॥

अथ चूर्णम् ।

शिखिपिच्छभस्म कृष्णाचूर्णं मधुमिश्रितं मुहुर्लीढम् । हिक्कां हरति प्रबलां
श्वासं चैवातिदुस्तरं छर्दिम् ॥ १ ॥ इति चिकित्सादीपात् ॥ कृष्णामलकशु-
ण्ठीनां चूर्णं मधुसितायुतम् । मुहुर्मुहुः प्रयोक्तव्यं हिक्काश्वासनिवारणम् ॥ २ ॥
हिक्काश्वासी पिबेद्भाग्नीं सविश्रामुष्णवारिणा । नागरं वा सिताभार्गीसौवर्चल-
समन्वितम् ॥ ३ ॥ इति वृन्दात् । शृङ्गीकटुत्रिकफलत्रयकण्टकारीभाग्नीसपुष्कर-
जटालवणानि चैषाम् । चूर्णं पिबेदशिशिरेण जलेन हिक्काश्वासोर्ध्ववातकस-
नारुचिपीनसेषु ॥ ४ ॥ इति शृङ्गादिचूर्णं योगशतकात् । विश्रामिसीक-
णाचूर्णः ससितः समधुः स्मृतः । गुडूचीनागरं नस्यं हिक्काधिकारकारकम् ॥ ५ ॥
इति वैद्यजीवनात् ॥

अथ सामान्यप्रतीकारः ।

हिक्कार्तस्य पयश्छागं हितं नागरसाधितम् । रसान्पचेत्फलाम्लांश्च लाजा-
चूर्णं ससैन्धवम् ॥ १ ॥ इति नारायणीयात् ॥ यष्ट्याह्वं वा माक्षिकेणावलीढं
कृष्णाचूर्णं शर्कराढ्यं च किं वा । सर्पिः कोष्णं क्षीरमुष्णं रसो वा हन्यादिक्षोः
पानतः पञ्च हिक्काः ॥ २ ॥ इति सुश्रुतात् । मधुसौवर्चलोपेतं मातुलुङ्गरसं
पिबेत् । हिक्कार्तो मधुना लिङ्गाच्छुण्ठीधात्रीकणान्वितम् ॥ ३ ॥ योगतरङ्गि-
ण्याम् । कपित्थस्तरसो वाऽपि रस आमलकस्य च । पिप्पलीक्षौद्रसंयुक्तो
हिक्काश्वासनिवारणः ॥ ४ ॥ पिप्पलीमूलमधुकगुडगोश्वशकृद्रसान् । हिध्मा-
भिष्यन्दकासघ्नालिङ्गान्मधुघृतान्वितान् ॥ ५ ॥ खर्जूरः पिप्पली द्राक्षा शर्करा
चेति तत्समम् । मधुसर्पिर्युतो लेहो हिक्काश्वासनिवारणः ॥ ६ ॥ इति चिकि-
त्सासारात् । कटुकागैरिकाभ्यां च मुक्ताभस्म तथैव च । बीजपूरस्य तोयेन
ताम्रं तद्रत्नसाक्षिकम् ॥ ७ ॥ हेममुक्तार्ककान्तानां भस्म वल्लमितं वरम् ।
बीजपूरसक्षौद्रसौवर्चलसमन्वितम् ॥ ८ ॥ हन्ति हिक्काशतं सत्यमेकमात्रा
प्रयत्नतः । का कथा पञ्चहिक्कानां हरणे सूत उच्यते ॥ ९ ॥ इति बौद्धसर्व-
स्वात् ॥

अथ शङ्खचूर्णो रसः ।

रसरत्नप्रदीपात् । रसाभ्रहेमभस्मानि वैक्रान्तं सर्वतुल्यकम् । सर्वैः पञ्च-

गुणं शङ्खचूर्णं शुष्कं विमर्दयेत् ॥ १ ॥ लेहयेन्मधुना माषचतुष्कं सानुपान-
कम् । हिक्कां पञ्चविधां हन्ति मुमूर्षोरपि तत्क्षणात् ॥ २ ॥ इति शङ्खचूर्णो रसः ।
कासप्रकरणोक्तं च भिषगत्र नियोजयेत् । क्षयोक्तं वाऽत्र कासे च हिक्काश्वासे
नियोजयेत् ॥ ३ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

स्वेदनं वसनं नस्यं धूमपानं विरेचनम् । निद्रा स्निग्धानि चान्नानि मृदूनि
लवणानि च ॥ १ ॥ जीर्णाः कुलित्था गोधूमा शालयः पष्टिका यवाः । एण-
तित्तिरलावाद्या जाङ्गला मृगपक्षिणः ॥ २ ॥ उष्णोदकं मातुलुङ्गं पटोलं बाल-
मूलकम् । पक्वं कपित्थं लथुनं क्षौद्रं चेष्टानि हिक्किनाम् ॥ ३ ॥ निष्पावमा-
पिण्याकवारिजानूपमामिषम् । अविदुग्धं दन्तकाष्ठं बस्ति मत्स्यांश्च सर्पपान्
॥ ४ ॥ आम्लं तुम्बीफलं कन्दं तैलमृष्टमुपोदिकाम् । गुरु शीतं चान्नपानं हि-
क्कारोगी विवर्जयेत् ॥ ५ ॥ इति हिक्काचिकित्सा ॥

अथ श्वासनिदानमाह—

कासवृद्ध्या भवेच्छ्वासः पूर्वैर्वा दोषकोपनैः । अमातिसारवमथुविषपाण्डु-
ज्वरैरपि ॥ १ ॥ रजोधूमानिलैर्मर्मघातादतिहिमास्त्रुना । यैरेव कारणैर्हिक्का
बहुभिः संप्रवर्तते ॥ २ ॥ तैरेव कारणैः श्वासो घोरो भवति देहिनाम् । वि-
हाय प्रकृतिं वायुः प्राणोऽथ कफसंयुतः ॥ श्वासयत्यूर्ध्वगो भूत्वा तं श्वासं
परिक्षते ॥ ३ ॥ दोषाणामप्यनेकत्वाच्छोषितस्यापि संभवात् । श्वासो नैक-
प्रकारः स्यादिति तावद्व्यवस्थितम् ॥ ४ ॥ महोर्ध्वच्छिन्नतमकक्षुद्रभेदैस्तु
पञ्चधा । भिद्यते स महाव्याधिः श्वास एको विशेषतः ॥ ५ ॥

अथ तस्य पूर्वरूपमाह—

प्राग्रूपं तस्य हृत्पीडा शूलमाध्मानमेव च । आनाहो वक्त्रवैरस्यं शङ्खनि-
स्तोद एव च ॥ १ ॥

अथ महाश्वासलक्षणमाह—

यदा स्रोतांसि संरुध्य मारुतः कफपूर्वकः । विष्वग्गजति संरुद्धस्तदा
श्वासान्करोति सः ॥ १ ॥ उद्धूयमानवातो यः शब्दवहुः खितो नरः । उच्चैः
श्वसिति संक्रुद्धो मत्तर्षभ इवानिशम् । प्रनष्टज्ञानविज्ञानस्तथा विभ्रान्तलो-
चनः ॥ २ ॥ विवृताक्षाननो बद्धमूत्रवर्चा विशीर्णवाक् । दीर्घं प्रश्वसितं चास्य
दूराद्विश्रयते भृशम् । महाश्वासोपसृष्टस्तु क्षिप्रमेव विपद्यते ॥ ३ ॥

अथोर्ध्वश्वासलक्षणमाह—

ऊर्ध्वं श्वसिति यो दीर्घं न च प्रत्याहरत्यधः । श्लेष्मावृतमुखस्रोताः कुङ्क-
गन्धवहार्दितः ॥ १ ॥ ऊर्ध्वदृष्टिर्विपश्यंस्तु विभ्रान्ताक्ष इतस्ततः । प्रमुह्येद्रे-

दनार्तश्च शुष्कास्यो ऽरतिपीडितः ॥ २ ॥ ऊर्ध्वश्वासे प्रकुपिते ह्यधःश्वासो निरुध्यते । मुह्यतस्ताम्यतश्चोर्ध्वश्वासस्तस्यैव हन्त्यसून् ॥ ३ ॥

अथ विच्छिन्नश्वासलक्षणमाह ।

यस्तु श्वसिति विच्छिन्नं सर्वप्राणेन पीडितः । न वा श्वसिति दुःखार्तो मर्मभेदरुगर्दितः ॥ १ ॥ आनाहस्वेदमूर्छार्तो दह्यमानेन बस्तिना । विधुताक्षः परिक्षीणः श्वसन्नरक्तैकलोचनः ॥ २ ॥

अस्य व्याधिप्रभावादसाध्यत्वमाह—

विचेताः परिशुष्कास्यो विवर्णः प्रलपन्नरः । छिन्नश्वासेन विच्छिन्नः स शीघ्रं विजहात्यसून् ॥ १ ॥

अथ तमकलक्षणमाह—

प्रतिलोमं यदा वायुः स्रोतांसि प्रतिपद्यते । ग्रीवां शिरश्च संगृह्य श्लेष्माणं समुदीर्य च ॥ १ ॥ करोति पीनसं तेन रुद्धो घुर्धुरकं तथा । अतीव तीव्रवेगं च श्वासं प्राणप्रपीडकम् ॥ २ ॥ प्रताम्यति स वेगेन त्रस्यते संनिरुध्यते । प्रमोहं कासमानश्च स गच्छति मुहुर्मुहुः ॥ ३ ॥ श्लेष्मणा मुच्यमानेन भृशं भवति दुःखितः । तस्यैव च विमोक्षान्ते मुहूर्तं लभते सुखम् ॥ ४ ॥ तथाऽस्योद्धंसते कण्ठः कृच्छ्राच्छक्नोति भाषितुम् । न चापि निद्रां लभते शयानः श्वासपीडितः ॥ ५ ॥ पार्श्वे तस्यावगृह्णाति शयानस्य समीरणः । आसीनो लभते सौख्यमुष्णं चैवाभिकाङ्क्षति ॥ ६ ॥ उच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमर्तिमान् । विशुष्कास्यो मुहुःश्वासी मुहुश्चैवावधम्यते ॥ ७ ॥ मेघाम्बुशीतप्राग्वातैः श्लेष्मलैश्च विवर्धते । स याप्यस्तमकः श्वासः साध्यो वा स्यान्नवोत्थितः ॥ ८ ॥

अथ तमकस्यैव पित्तानुबन्धाज्ज्वरादियोगेन

प्रतमकसंज्ञामाह—

ज्वरमूर्छापरीतस्य विद्यात्प्रतमकं तु तम् । उदावर्तरजोजीर्णक्लिन्नकायनिरोधजः ॥ १ ॥ तमसा वर्धतेऽत्यर्थं शीतैश्चाऽऽशु प्रशाम्यति । मज्जतस्तमसीवायुः विद्यात्प्रतमकं तु तम् ॥ २ ॥

अथ क्षुद्रश्वासलक्षणमाह—रूक्षायासोद्भवः कोष्ठे क्षुद्रवातमुदीरयेत् । क्षुद्रश्वासो न सोऽत्यर्थं दुःखेनाङ्गप्रबाधकः ॥ १ ॥ हिनस्ति न स गात्राणि न च दुःखो यथेतरे । न च भोजनपानानां निरुणञ्च्युचितां गतिम् ॥ २ ॥

नेन्द्रियाणां व्यथां चाऽपि कांचिदापादयेदुजम् । स साध्य उक्तो, बलिनः सर्वे चाव्यक्तलक्षणाः ॥ ३ ॥

अथ साध्यासाध्यानाह—वाताधिको भवेत्क्षुद्रस्तमकश्च कफाधिकः । कफवाताधिकः पित्तसंसर्गाच्छन्नसंज्ञकः ॥ १ ॥ श्वासो मारुतभूयिष्ठो महानूर्ध्वस्तथा मतः । क्षुद्रः साध्यतमस्तेषां तमकः कृच्छ्र उच्यते । त्रयः श्वासान सिध्यन्ति तमको दुर्बलस्य च ॥ २ ॥ कामं प्राणहरा रोगा बहवो न तु ते तथा । यथा श्वासश्च हिक्का च हरतः प्राणमाशु वै ॥ ३ ॥ इति श्वासनिदानम् ।

अथ श्वासचिकित्सा ।

ज्वहवस्तिमृते केचिदूर्ध्वं चाधश्च शोधनम् । मृदु प्रणयतां श्रेष्ठं श्वासिनामादिशन्ति हि ॥ १ ॥ सर्वेषु श्वासरोगेषु वातश्लेष्मनिबर्हणम् । विदधीत विधिं विद्वानादौ स्वेदं मृदुं तथा ॥ २ ॥

अथ कथाः ।

कुलत्थनागरव्याघ्रीवासाभिः कथितं जलम् । पीतं पौष्करसंयुक्तं श्वासकासनिवारणम् ॥ १ ॥ इति कुलत्थादिः । दशमूलीकृतः काथः पौष्करेणावचूर्णितः । श्वासकासप्रशमनः पार्श्वशूलनिवारणः ॥ २ ॥ इति दशमूलादिः । देवदारुवचाव्याघ्रीविश्वकटकफलपौष्करैः । कृतः काथो जयत्याशु श्वासकासवशेषतः ॥ ३ ॥ इति देवदार्वादिः । सिंहीनिशासिंहमुखीगुडूचीविश्वोपकुल्याभृगुजायनानाम् । कृष्णामरीचैर्मिलितः कपायः श्वासाटवीदाहपयोद एषः ॥ ४ ॥ इति वैद्यविलासात् । वासाहरिद्राधनिकागुडूचीभार्गीकणानागररिङ्गणीनाम् । काथेन सारीचरजोन्वितेन श्वासः शमं याति न कस्य पुंसः ॥ ५ ॥ अयि प्राणप्रिये जातीकललोहितलोचने । भार्गीनागरयोः काथं श्वासत्राणाय पाययेत् ॥ ६ ॥ इति वैद्यजीवनात् । द्राक्षामृतानागरमुष्णतोयं कृष्णाविपाकं बहुरोगनिघ्नम् । श्वासं च शूलं कसनं च मान्द्यं जीर्णज्वरं चैव जयेच्च तुज्याम् ॥ ७ ॥ इति शंकराख्यात् ।

अथ चूर्णानि ।

कृष्माण्डकशिकाचूर्णं पीतं कोष्णेन वारिणा । शीघ्रं शमयति श्वासं कासं चैव सुदारुणम् ॥ १ ॥ इति योगतः । शृङ्गीकटुत्रयफलत्रयकण्टकारीभार्गी-मपुष्करजटालव्रणानि पञ्च । चूर्णं पिबेदशिशिरेण जलेन हिक्कां श्वासोर्ध्ववातकसनारुचिपीनसेषु ॥ २ ॥ इति शृङ्गयादि योगशतात् । शटीभार्गीवचाव्योषपथ्यारुचककटफलम् । तेजोह्वा पौष्करं शृङ्गी सक्षौद्रं श्वासकासनुत् ॥ ३ ॥ गुडोपणनिशाराक्षाद्राक्षामागधिकाः समाः । तैलेन चूर्णिता लीढा स्तीव्रश्वासनुदः स्मृताः ॥ ४ ॥ इति वृन्दात् । शुण्ठीकणामरिचनागदलत्वेल

चूर्णीकृतं क्रमविवर्धितमूर्ध्वमन्त्यात् । खादेदिदं समसितं गुदजाग्निमान्द्यगु-
ल्मारुचिश्चसनकण्ठहृदामयेषु ॥ ५ ॥ इति योगशतात् । मर्कटीनां तु बीजानां
चूर्णं माक्षिकसर्पिषा । प्रलिह्यात्प्रातरुत्थाय श्वासातः स्वास्थ्यमाप्नुयात् ॥ ६ ॥
इति चिकित्सासारात् ।

अथावलेहाः ।

गुडं कटुकतैलेन मिश्रयित्वा समं लिहेत् । त्रिःसप्ताहप्रयोगेन श्वासो
निःशेषतां व्रजेत् ॥ १ ॥ इति गुडावलेहः । हरिद्रा मरिचं द्राक्षा गुडो रास्ना
कणा सटी । कटुतैले लिहन्हन्त्याच्छ्वासान्प्राणहरानपि ॥ २ ॥ इति हरिद्रादिः ।
भार्गीनागरयोश्चूर्णं लीढमार्द्रकवारिणा । श्वासं निहन्ति दुर्धर्षं पञ्चानन इव
द्विपम् ॥ ३ ॥ इति भार्ग्यादिः । अथ क्षुद्रावलेहः । व्याघ्रीशतं स्यादभयाशतं
च द्रोणे जलस्य प्रपचेत्कषायम् । तुलाप्रमाणेन गुडेन युक्तं पक्त्वाऽभयाभिः
सह तामिरत्र ॥ ४ ॥ शीते क्षिपेत्षण्मधुनः पलानि पलानि च त्रीणि कटुत्र-
यस्य । त्वक्पत्रकैलाकरिकेसरणां चूर्णात्पलं चेति विदेहदृष्टः ॥ ५ ॥ क्षुद्रा-
वलेहः कफजान्विकारान्सश्वासशोफानपि पञ्च कासान् । हिक्कासुरोरोगमप-
स्मृतिं च हत्वा विवृद्धिं कुरुतेऽनलस्य ॥ ६ ॥ इति क्षुद्रावलेहो योगतर-
ङ्गिण्यां ॥ अथ भार्गीहरीतक्यवलेहः । भार्गीजटापलशतं सलिलार्मणेन युक्प-
ञ्चमूलतुल्या सहितं विपाच्य । पादस्थिते तु शतमत्र हरीतकीनां पक्त्वय-
मुज्ज्वलगुडस्य शतेन साकम् ॥ ७ ॥ उत्तार्य तत्र शिशिरे मधुनः पलानि
चत्वारि च द्विगुणितानि फलत्रयं च । व्योषं जुटीत्वग्भिक्केसरपत्रकाणामेषां
पलं खलु निधेयमथोपयोज्यम् ॥ ८ ॥ श्वासं च कासमपि शोषमथातिहिक्का-
मैकाहिकं ज्वरमथोत्कफपीनसं च । हन्याद्रसायनमिदं हि पुरंदरस्य प्रोक्तं
सहस्रकरपुत्रभिषग्वराभ्याम् ॥ ९ ॥ इति वीरसिंहावलोकान्नार्गीहरीतक्यवलेहः ॥
पक्त्वा पञ्च तुला गुडामलशिखिच्छिन्नादशाङ्गद्वयम्भसा पथ्यापात्रवतीकृता
शिखिशिवाव्योषाच्चतुर्जातकात् । क्षौद्राच्च त्रिफलाञ्जलीद्विकुडवैः क्षाराच्च
शुक्त्या युतः शोफार्शःक्षयकुष्ठपीनसकृमिश्वासान्नगुल्मान्तकृत् ॥ १० ॥ इति
चित्रकहरीतक्यवलेहः बोपदेवशतात् । द्राक्षां हरीतकीं मुस्तां कर्कटाख्यां
दुरालभाम् । सर्पिर्मधुभ्यां विलिह्य श्वासान्हन्ति सुदारुणान् ॥ ११ ॥ प्रलि-
ह्यान्मधुसर्पिर्भ्यां भार्गीमधुकसंयुताम् । पथ्यां तित्काक्षणाव्योषयुक्तां वा
श्वासनाशिनीम् ॥ १२ ॥ गुडदाडिममृद्वीकापिप्पलीविश्वभेषजैः । मातुलुङ्गरसं
क्षौद्रं लीढं श्वासनिबर्हणम् ॥ १३ ॥ इति द्राक्षाहरीतक्याद्यवलेहो वृन्दात् ॥

अथ रसाः ।

रसो गन्धो विषं चैव टङ्कणं च मनःशिला । एतानि टङ्कमानाणि मरिचं
चाष्टटङ्ककम् ॥ १ ॥ एकैकं मरिचं दत्त्वा खल्वे सूक्ष्मं विमर्दयेत् । त्रिक

टङ्कमात्रं च दत्त्वा पश्चाद्विचूर्णयेत् ॥ २ ॥ सर्वमेकत्र संयोज्य काचकूप्यां विनिक्षिपेत् । कासे श्वासे च मन्दाग्नौ वातश्लेष्मामयेषु च ॥ ३ ॥ गुञ्जामात्रं प्रदातव्यं पर्णखण्डेन धीमता । संनिपाते च मूर्छायामपसारे तथा पुनः ॥ ४ ॥ अतिमोहत्वमापन्ने नस्य दत्त्वा विचक्षणः । रसः श्वासकुठारोऽयं सर्वश्वासविकारहा ॥ ५ ॥ इति श्वासकुठारः ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

विरेचनस्वेदनधूमपानप्रच्छर्दनानि स्वपनं दिवा च । पुरातनाः षष्टिकरक्तशालिकुलत्थगोधूमयवाः प्रशस्ताः ॥ १ ॥ शशाहिभुक्तित्तिरलावदक्षशुकादयो धन्वमृगा द्विजाश्च । पुरातनं सर्पिरजाप्रभूतं पयो घृतं चापि सुरामधूनि ॥ २ ॥ पटोलवार्ताकरसोनबिम्बीजम्बीरतण्डूलियवास्तुकं च । द्राक्षा नृटिः पौष्करमुष्णवारि निदिग्धिका श्वासिनि पथ्यवर्गः ॥ ३ ॥ रक्तसावः पूर्ववातान्नपानं मेघीसर्पिर्दुग्धमम्भोऽपि दुष्टम् । मत्स्याः कन्दाः सर्पपाश्र्वान्नपानं रूक्षं शीतं गुर्वपि श्वासिवर्ज्यम् ॥ ४ ॥ इति पथ्यापथ्यम् । इति श्वासरोगचिकित्सा ॥

अथ स्वरभेदनिदानं व्याख्यास्यामः ।

अथ स्वरभेदाः ।

अत्युच्चभाषणविषाध्ययनाभिघातसंदूषणैः प्रकुपिताः पवनादयश्च । स्रोतस्सु ते स्वरवहेषु गताः प्रतिष्ठां हन्युः स्वरं भवति चापि हि षड्विधः सः ॥ १ ॥

अथ वातिकमाह—वातेन कृष्णनयनाननमूत्रवर्चा भिन्नं शनैर्वदति गर्दभवत्स्वरं च ॥ १ ॥

अथ पैत्तिकमाह—पित्तेन पीतनयनाननमूत्रवर्चा ब्रूयाद्बलेन स विदाहसमन्वितेन ॥ १ ॥

अथ कफजमाह—ब्रूयात्कफेन सततं कफरुद्धकण्ठः स्वरपं शनैर्वदति चापि दिवा विशेषात् ॥ १ ॥

अथ संनिपातजमाह—सर्वात्मके भवति सर्वविकारसंपत्तं चाप्यसाध्यमृषयः स्वरभेदमाहुः ॥ १ ॥

अथ क्षयजमाह—धूस्येत वाक् क्षयकृते क्षयमामुयाच्च वागेष चापि हतवाक् परिवर्जनीयः ॥ १ ॥

अथ मेदोजमाह—अन्तर्गतस्वरमलक्ष्यपदं चिरेण मेदोऽन्वयाद्बदति दिग्भगलस्तृषार्तः ॥ १ ॥

अथासाध्यमाह—क्षीणस्य वृद्धस्य कृशस्य चापि चिरोत्थितो यश्च स होपजातः । मेदस्विनः सर्वसमुद्भवश्च स्वरामयो यो न स सिद्धिमेति ॥ १ ॥ इति स्वरभेदनिदानम् ।

अथ स्वरभेदचिकित्सा ।

वातस्वरभेदः—स्वरोपघातेऽनिलजे मुक्तोपरि घृतं पिबेत् । मरीचचूर्ण-
सहितं मरुत्स्वरहतिप्रणुत् ॥ १ ॥ कासमर्दरसं दत्त्वा भार्गीकल्कं शनैः शनैः ।
सिद्धं सर्पिर्हितं पीतं स्वरभेदे मरुद्भवे ॥ २ ॥ इति कासमर्दघृतम् । आद्ये
कोष्णजलं पेयं जग्ध्वा घृतगुडौदनम् । पीतं घृतं हन्यनिलं सिद्धं मार्कवजे
रसे ॥ १ ॥ ब्राह्मीमुंडीवचाशुंठीपिप्पली मधुसंयुता । सेविता सप्तरात्रेण जा-
यते किंकिणीध्वनिः ॥

अथ पित्तस्वरभेदः ।

पैत्तिके तु विरेकः स्यात्पयश्च मधुरैः शृतम् । लिह्यान्मधुरवस्तूनां चूर्णं म-
धुसमन्वितम् ॥ १ ॥ अश्लीयाच्च ससर्पिष्कं यष्टीमधुकषायकम् । शर्करामधु-
मिश्राणि शृतानि मधुरैः सह ॥ २ ॥ पिबेत्पयांसि यस्योच्चैर्वदतोऽभिहतः
स्वरः । शतावरीचूर्णयोगं बलाचूर्णमथापि वा । लाजाशतावरीचूर्णं लिह्या-
न्मधुसमायुतम् ॥ ३ ॥

अथ शुण्ठीघृतम् ।

शुण्ठी त्वचो दुग्धवतां दुमाणां संपिष्य दुग्धे विपचेत्तु तेन । कल्केन य-
ष्टीमधुकस्य सर्पिः सशर्करं पित्तरुजामयन्नम् ॥ १ ॥ इति पित्तस्वरभेदः ।

अथ कफस्वरभेदः ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं मरीचं विश्वभेषजम् । पिबेन्मूत्रेण मतिमान्कफजे
स्वरसंक्षये ॥ १ ॥ इति पिप्पल्यादिचूर्णम् ।

अथ संनिपातस्वरभेदः ।

अजमोदा निशा धात्री क्षारं वह्निं विचूर्णयेत् । मधुसर्पिर्युतं लीढ्वा त्रि-
द्वोपस्वरभङ्गनुत् ॥ १ ॥ फलत्रिकन्यूषणयावशूकचूर्णानि हन्युः स्वरभङ्ग-
माशु । किंवा कुलत्थं वदनान्तरस्थं स्वरामयं हन्यथ पौष्करं वा ॥ २ ॥
अथ क्षयभेदः स्वरभंगौ—क्षयजे स्वरभेदे तु तत्रोक्तविधिमाचरेत् । कटु-
तिक्तकषायाद्यैर्भेदः स्वरहतिं जयेत् ॥ १ ॥ अथ सामान्यविधिः—चव्याम्ल-
वेतसकटुत्रयतिक्तीडीकतालीसजीरकतुगादहनैः समांशैः । चूर्णं गुडप्रमृदितं
त्रिसुगन्धयुक्तं वैस्वर्यपीनसकफारुचिषु प्रशस्तम् ॥ १ ॥ इति चव्यादिचूर्णं
योगशतात् ।

अथ व्याघ्रीघृतम् ।

व्याघ्रीस्वरसविषकं रास्त्रावाव्यालगोक्षुरव्योषैः । सर्पिः स्वरोपघातं हन्या-
त्कासं च पञ्चविधम् ॥ १ ॥ इति चिकित्सासारात् । बदरीपत्रकल्कं वा घृ-
तभृष्टं ससैन्धवम् । स्वरोपघाते कासे च लेहमेनं प्रयोजयेत् ॥ १ ॥ इति

कदम्बात् । विहितमसृणचूर्णान्यारनालेन सार्धं कलितरुफलकृष्णासैन्धवानि प्रलिह्यात् । अभिलपति विजेतुं यः स्वरस्य प्रणाशं स हि पिबतु सद्गन्धं चाऽऽमलक्याः फलं वा ॥ १ ॥ इति सारसंग्रहात् । वाते सलवणं तैलं पित्ते सर्पिः समाक्षिकम् । कफे सक्षारकटुकं क्षौद्रं केवलमिष्यते ॥ १ ॥ गले तालुनि जिह्वायां दन्तमूलेषु चाऽऽश्रितः । तेन निष्क्रमते श्लेष्मा स्वरश्चाऽऽश्रु प्रसीदति ॥ २ ॥ तैलाक्तं स्वरभेदे वा खादिरं धारयेन्मुखे । पथ्यापिप्पलियुक्तं वा संयुक्तं नागरेण वा ॥ ३ ॥ इति वृन्दात् ॥

अथ रसाः ।

रसभस्मार्कलोहस्य भावितस्य त्रिसप्तधा । क्षुद्राफलरसैर्मुद्रतुल्या कार्या वटी शुभा ॥ १ ॥ मुखस्था हरते सर्वं स्वरभङ्गमसंशयम् । गोरक्षनाथैर्गदिता स्वरामयिकृपालुभिः ॥ २ ॥ इति गोरक्षवटी ॥

अथ पथ्यम् ।

द्राक्षा पथ्या मातुलुङ्गं लशुनं लवणार्द्रकम् । ताम्बूलं मरिचं सर्पिः पथ्यानि स्वरभेदिनाम् ॥ १ ॥ इति स्वरभेदचिकित्सा ॥

अथातोऽरोचकनिदानं व्याख्यास्यामः ।

पृथग्दोषैः समस्तैर्वा तथाऽप्यागन्तवो हि ये । भवन्त्यरोचकाः पञ्च तेषां लक्षणमुच्यते ॥ १ ॥

अथ वातिकमाह—वातादिभिः शोकभयातिलोभक्रोधैर्मनोघ्नाशनरूपगन्धैः । अरोचकाः स्युः परिहृष्टदन्तःकषायवक्त्रश्च मतोऽनिलेन ॥ १ ॥

अथ पित्तजमाह—कटुम्लमुष्णं विरसं च पूति पित्तेन विद्याल्लवणं च वक्त्रम् ॥ १ ॥

अथ कफजमाह—माधुर्यपैच्छिल्यगुरुत्वशैत्यस्निग्धत्वदौर्गन्ध्ययुतं कफेन

अथ आगंतुत्रिदोषजावाह—अरोचके शोकभयातिलोभक्रोधाद्यहृद्याशुचिगन्धजे स्यात् ॥ १ ॥ स्वाभाविकं चाऽऽस्यमथारुचिश्च त्रिदोषजेऽनेकरसं भवेत् ॥ १ ॥

अथ विकृतिमाह—हृच्छूलपीडनयुतं पवनेन पित्तातृडदाहचोपबहुलं सकफप्रसेकम् । श्लेष्मात्मकं बहुरुजं बहुभिश्च विद्याद्वैगुण्यमोहजडताभिरथापरं च ॥ १ ॥ प्रतिक्षिप्तं मुखे चान्नं जन्तुर्नाऽऽस्वादते मुहुः । अरोचकः स विज्ञेयो भक्तद्वेषमतः शृणु ॥ २ ॥ चिन्तयित्वा तु मनसा दृष्ट्वा श्रुत्वा तु भोजनम् । द्वेषमायाति यो जन्तुर्भक्तद्वेषः स उच्यते ॥ ३ ॥ इत्यरोचकनिदानम् ॥

अथ अरोचकचिकित्सा ।

बस्तिः समीरणे पित्ते विरेको वमनं कफे । सर्वजे सर्वकामार्थं हर्षणं स्या-

दरोचके ॥ १ ॥ अरुचौ कवलग्रहाहो धूमः सुमुखधावनः । मनोज्ञमन्नपानं
वा हर्षणाश्रासनानि च ॥ २ ॥ सात्म्यान्स्वदेशरचितान्विविधांश्च भक्ष्यान्पा-
नानि मूलफलखाण्डवरागलेहान् । सेवेद्रसांश्च विविधान्विविधैः प्रयोगैर्भु-
ज्जीत चापि लघुरुक्षमनःसुखानि ॥ ३ ॥

अथ मुखधावनम् ।

अजाजी मरिचं कुष्ठं बिडं सौवर्चलं तथा । मधुकं शर्करा तैलं वातिके
मुखधावनम् । करञ्जदन्तकाष्ठं च विधेयमरुचौ सदा ॥ १ ॥ त्रिन्धूषणानि
त्रिफला रजनीद्वयं च चूर्णीकृतानि यवशूकविमिश्रितानि । क्षौद्रान्वितानि
वितरेन्मुखधावनार्थमन्यानि तिक्तकटुकानि च भेषजानि ॥ २ ॥

अथ गण्डूषः ।

किञ्चिल्लवणसंयुक्तमारनालं विपाचयेत् । तेन गण्डूषमादध्यादौस्यवैरस्य-
शान्तये ॥ १ ॥

अथ पानकं ।

अम्लिका मुद्गतोयं च त्वगेलामरिचान्वितम् । अभक्तच्छन्दरोगेषु शस्तं
कवलधारणे ॥ १ ॥ इत्यम्लिकापानकम् । भागैकं निम्बुजं तोयं षड्भागं
शर्करोदकम् । लवङ्गमरिचोन्मिश्रं पानकं पानकोत्तमम् ॥ १ ॥ निम्बूरसभवं
पानमत्यम्लं वातनाशनम् । वह्निदीप्तिकरं रुच्यं समस्ताहारपाचकम् ॥ २ ॥ इति
निम्बुपानकम् । अथ कवलग्रहाः । कुष्ठसौवर्चलाजाजीशर्करामरिचं बिडम् ।
धान्यैलापन्नकोशीरपिप्पलीचन्दनोत्पलम् ॥ १ ॥ लोभ्रं तेजोवती पथ्या द्यू-
षणं सयवाग्रजम् । आर्द्रदाडिमनिर्यासश्चाजाजीशर्करायुतः ॥ २ ॥ सतैलमा-
क्षिकाश्चैते चत्वारः कवलग्रहाः । चतुरोऽरोचकान्हन्युर्वाताद्येकजसर्वजान् ॥ ३ ॥
इति कुष्ठाद्याश्चत्वारः कवलग्रहाः । विडङ्गचूर्णं कषैकं क्षौद्रं कर्पचतुर्मितम् ।
असाध्यमपि संहन्यादरुचिं वक्त्रधारणात् ॥ १ ॥

अथ गुटिका ।

कारव्यजाजीमरिचं द्राक्षा वृक्षाम्लदाडिमम् । सौवर्चलं गुडः क्षौद्रमेषां
कार्या वटी शुभा ॥ बदरास्थिमिता साऽऽस्ये धार्याऽरोचकनाशिनी ॥ १ ॥
इति कारव्यादिगुटिका । सितान्व्योषकपित्थानां चूर्णक्षौद्रकृतां वटीम् । सर्वा-
रोचकशान्त्यर्थं धारयेद्बदनाम्बुजे ॥ १ ॥

अथ चूर्णानि ।

यवानी तित्तिडीकं च नागरं चाम्लवेतसम् । दाडिमं बदरं साम्लं कार्ष्णि-
काण्युपकल्पयेत् ॥ १ ॥ धान्यसौवर्चलाजाजीवराङ्गं चार्धकर्षिकम् । पिप्प-

लीनां शतं चैकं द्वे शते मरिचस्य च ॥ २ ॥ शर्करायाश्च चत्वारि पलान्येकत्र चूर्णयेत् । यवानीखाण्डवाख्यं तु चूर्णमेतदरोचकम् ॥ ३ ॥ हन्येव प्रातरेतत्तु स्थापितं च मुखे मुहुः । जिह्वाविशोधनं हृद्यं दीपनं भक्तरोचकम् ॥ ४ ॥ हृत्पीडापार्श्वशूलघ्नं विबन्धानाहनाशनम् । कासश्वासहरं ग्राहि ग्रहण्यशोवि-कारनुत् ॥ ५ ॥ इति यवानीखाण्डवचूर्णम् ।

अथ खाण्डवचूर्णम् ।

तुल्यं तालीसचव्योषणलवणगजं द्विष्कणाग्रन्थ्यजाजीवृक्षास्लाघ्नित्वचं त्रि-र्वैनवदरधनैलाजमोदाम्लविधम् । सार्धः श्वेताङ्घ्रिसारोऽतिसृतिः कृमिवमौ खा-ण्डवोऽरुच्यजीर्णे गुल्माध्मालपानलास्योद्वगणगदमरुद्धदृदश्वासकासे ॥ १ ॥ इति खाण्डवचूर्णं बोपदेवशतात् ।

अथाऽऽमलक्यादिचूर्णम् ।

आमलं चित्रकं पथ्या पिप्पली सैन्धवं तथा । चूर्णितोऽयं गणो ज्ञेयः सर्वज्वरविनाशनः ॥ भेदी रुचिकरः श्लेष्मजेता दीपनपाचनः ॥ १ ॥ इति शार्ङ्गधरात् ।

अथ कर्पूराद्यं चूर्णम् ।

कर्पूरचोचैकङ्गोलजातीफलदलाः समाः । लवङ्गनागमरिचकृष्णाशुण्ठ्योवि-वर्धिताः ॥ १ ॥ चूर्णं सितासमं ग्राह्यं रोचनं क्षयकासजित् । वैस्वर्यश्वासगु-ल्माशंश्छर्दिकण्ठामयापहम् ॥ प्रयुक्तं चाक्षपानेषु भिषजा रोगिणां हितम् ॥ २ ॥ इति शार्ङ्गधरात् ।

अथ तालीसाद्यं चूर्णम् ।

तालीसं मरिचं शुण्ठी पिप्पली वंशलोचना । एकद्वित्रिचतुष्पञ्चकर्षैर्भागा-न्प्रकल्पयेत् ॥ १ ॥ एलात्वचोस्तु कर्षार्धं प्रत्येकं भागमावहेत् । द्वात्रिंशत्कर्षतुलिता प्रदेया शर्करा बुधैः ॥ २ ॥ तालीसाद्यमिदं चूर्णं रोचनं पाचनं स्मृतम् । कासश्वासज्वरहरं छर्द्यतीसारनाशनम् ॥ ३ ॥ शोषाध्मानहरं स्त्री-हग्रहणीपाण्डुरोगजित् । पक्त्वा वा शर्कराचूर्णं क्षिपेत्सा गुटिका तथा ॥ ४ ॥ इति शार्ङ्गधरात् ।

अथावलेहः—शार्ङ्गधरात् आर्द्रकमातुलुङ्गावलेहः । आर्द्रकस्वरसं ग्रस्थं तदर्धशं गुडं क्षिपेत् । कुडवं बीजपूराम्लं गालयित्वा विचक्षणः ॥ १ ॥ सर्वं मन्दाग्निना पक्त्वा तत्रेमानि विनिक्षिपेत् । त्रिजातकं त्रिकटुकं त्रिफला-यासमेव च ॥ २ ॥ चित्रकं ग्रन्थिकं धान्यं जीरकद्वयमेव च । कर्षांशं श्ल-क्ष्णचूर्णं तु मेलयित्वा तु भक्षयेत् ॥ ३ ॥ अरोचकक्षयहरमग्निदीप्तिकरं

परम् । कामलापाण्डुशोफघ्नं श्वासकासहरं परम् । आध्मानोदरगुल्मानि स्त्री-
हशूले च नाशयेत् ॥ ४ ॥

अथ खण्डार्द्रकयोगः—योगसारात् । आर्द्रकस्य सितायाश्च द्विगुणाष्ट-
पलानि च । निष्कद्वादशकं तीक्ष्णमष्टनिष्का च मागधी ॥ १ ॥ अष्टनिष्कं
च तन्मूलं पञ्चनिष्कं च नागरम् । जातीफलैलादहनवंशाद्याः पञ्चनिष्ककाः
॥ २ ॥ सर्वाण्येतानि शुष्काणि चूर्णं कृत्वा पृथक्पृथक् । आर्द्रकं खण्डशः कृत्वा
गोघृतेऽष्टपले पचेत् ॥ ३ ॥ शर्करा पूर्वचूर्णं च चाऽऽर्द्रकं सह मेलयेत् ।
मण्डलं सेवयेन्नित्यं महापित्तविनाशनम् ॥ ४ ॥ अम्लपित्तं निहन्याशु सर्व-
पित्तविकारजित् । सर्वारुचिं वातरोगं मन्दाग्निं च नियच्छति ॥ ५ ॥ इति
खण्डार्द्रकयोगः ।

अथाऽऽर्द्रकयोगः—मदनपालात् । धौतं खण्डितमार्द्रकं च सलिलैः
क्षिप्तं सुतप्ते घृते सिन्धूत्थं मरिचं सुजीरयुगुलं चूर्णीकृतं प्रक्षिपेत् । चूर्णं
भृष्टयवोद्भवं च वितुषं हिङ्गवाज्यधूमे दहेदित्थं दोषविहीनमार्द्रकवरं सुखादु-
संजायते ॥ १ ॥

अथ मातुलुङ्गादियोगः—मातुलुङ्गफलकेसरोद्धृतः सिन्धुजन्ममरिचा-
न्वितो मुखे । हन्ति वातकफरोगमास्यगं शोषमास्यजडतामरोचकम् ॥ १ ॥

अथ मातुलुङ्गकेसरगुणाः—केसरं मातुलुङ्गस्य सैन्धवं मधुनाऽपि
वा । आस्यवैरस्यशमनं भक्षयेत्कर्षसंमितम् ॥ १ ॥ शमयति केसरमरुचिं
सलवणघृतमाशु मातुलुङ्गस्य । दाडिमचर्वणमथवा चरको रुचिकारि सूचया-
मास ॥ २ ॥ इति चिकित्सासारात् ।

अथ शर्करादियोगः—शर्करा दाडिमं ज्ञाथ द्राक्षा खर्जूरमेव च ॥ १ ॥
अथाऽऽर्द्रकदाडिमयोगद्वयम् । जिह्वाकण्ठविशोधनं तदनु च स्याच्छृङ्गवेरा-
न्वितं सिन्धूत्थं हितमत्र चाथ मधुना शस्तो रसो दाडिमः । अद्र्युद्धोदकरा-
ण्यजीर्णशमनान्याहुस्तथा भेषजान्यत्रारोचकहृत्प्रयोगसमये तानिप्रदेयानि च
॥ १ ॥ इति लघुयोगतः ।

अथ सारसंग्रहाज्जीरकाद्यं घृतम्—पिष्ट्वाऽजार्जी सधान्याकां घृत-
प्रस्थं विपाचयेत् । कफपित्तारुचिहरं मन्दानलवर्मिं जयेत् ॥ १ ॥ इति जी-
रकाद्यं घृतम् ।

अथ रसाः ।

अथ सूतादिगुटिका—सूतगन्धाभ्रमगधाम्लिकामरिचसैन्धवैः । गुटि-
काऽरोचकहरी जिह्वावदनशुद्धिकृत् ॥ १ ॥ इति योगतरङ्गिण्याः । गदनि-
ग्रहालघुचुकसंधानम् । गुडक्षौद्रारनालानि समस्तानि यथोत्तरम् । शं-
सन्ति द्विगुणाभगान्सम्यक्चुकस्य सिद्धये ॥ १ ॥ यन्मस्त्वादि शुचौ भाण्डे
सक्षौद्रगुडकाञ्जिकम् । धान्यराशौ त्रिरात्रस्थं शुक्तं चुक्तं तदुच्यते ॥ २ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

गोधूमसुद्धारुणशालिषट्टिका मांसं वराहाजशैणसंभवम् । चैगोक्षपाण्डं मधुरालिकं लिशः प्रोष्ठी खलेशः कवरी च रोहितः ॥ १ ॥ कर्काखेन्नाग्रनवीनमूलकं वार्ताकसौभाग्नमोचदाडिमम् । भव्यं पटोलं रुचकं पयो घृतं बालानि मूलानि रसोनसूरणम् ॥ २ ॥ द्राक्षा रसालं नलदाम्बु काञ्जिकं कोलं रसालां दधि तक्रमार्द्रकम् । स्वाद्वम्लतित्तानि च देहमार्जनं वर्गोऽयमुक्तोऽरुचिरोणिणां हितः ॥ ३ ॥ तृष्णोद्धारक्षुधानेत्रवारिवेगविधारणम् । अहृद्यान्नमसृज्जोक्षं क्रोधं लोभं भयं शुचम् । दुर्गन्धानूपसेवां च न कुर्यादरुचौ नरः ॥ ४ ॥ इति पथ्यापथ्यम् । इत्यरोचकचिकित्सा ।

अथातश्छर्दिनिदानं व्याख्यास्यामः ।

दुष्टैर्दोषैः पृथक्सर्वैर्बीभत्सालोकनादिभिः । छर्दयः पञ्च विज्ञेयास्तासां लक्षणमुच्यते ॥ १ ॥

तासां संप्राप्तिमाह—अतिद्रवैरतिस्निग्धैरहृद्यैर्लवणैरपि । अकाले चातिमात्रैश्च तथाऽसात्म्यैश्च भोजनैः ॥ १ ॥ श्रमान्नयात्तथोद्वेगादजीर्णात्कृमिदोषतः । नार्याश्चाऽपन्नसत्त्वायास्तथाऽतिद्रुतमश्नतः ॥ २ ॥ बीभत्सैर्हेतुभिश्चान्यैर्द्रुतमुत्क्रेशितो बलात् । छादयन्नाननं वेगैरर्दयन्नङ्गभञ्जनैः ॥ निरुच्यते छर्दिरिति दोषो वक्त्रं प्रधावितः ॥ ३ ॥

अथ तस्याः पूर्वरूपमाह—हृल्लासोद्धारसंरोधौ प्रसेको लवणस्तनुः । द्वेषोऽन्नपाने च भृशं वमीनां पूर्वलक्षणम् ॥ १ ॥

अथ वातजामाह—हृत्पार्श्वपीडामुखशोषशीर्षनाभ्यर्तिकासस्वरभेदतोदैः । उद्गारशब्दप्रबलं सफेनं विच्छिन्नकृष्णं तनुकं कषायम् ॥ १ ॥ कृच्छ्रेण चाल्पं महता च वेगेनार्तोऽनिलाच्छर्दयतीह दुःखम् ॥ २ ॥

अथ पित्तजामाह—मूर्छापिपासामुखशोषमूर्धतालवक्षिसंतापतमोभ्रमार्तः । पीतं भृशोष्णं हरितं च तिक्तं धूम्रं च पित्तेन वमत्सदाहम् ॥ १ ॥

अथ कफजामाह—तन्द्रास्यमाधुर्यकफप्रसेकसंतोषनिद्रारुचिगौरवार्तः । स्निग्धं घनं स्वादु कफाद्विशुद्धं सरोमहर्षोऽल्परुजं वमेत्तु ॥ १ ॥

अथ त्रिदोषजामाह—शूलाविपाकारुचिदाहतृष्णाश्वासप्रमोहप्रबला प्रसक्तम् । छर्दिस्त्रिदोषाल्लवणाम्लनीलसान्द्रोष्णरक्तं वमतां नृणां स्यात् ॥ १ ॥

अथासाध्यामाह—विदस्वेदमूत्राम्बुवहानि वायुः स्रोतांसि संरुध्य यदोर्ध्वमेति । उत्सन्नदोषस्य समाचितं तं दोषं समुद्धूय नरस्य कोष्ठात् ॥ १ ॥ विण्मूत्रयोस्तत्समगन्धवर्णं तृदश्वासकासार्युतं प्रसक्तम् । प्रच्छर्दयेदुष्टमिहातिवेगात्तथाऽर्दितश्चाऽऽशु विनाशमेति ॥ २ ॥

अथाऽऽगन्तुजामाह—बीभत्सजा दौर्हृदजाऽऽमजा वा ह्यसात्म्यजा वा कृमिजा च या स्यात् । सा पञ्चमी तां च विभावयेच्च दोषोच्छ्रयेणैव य-
थोक्तमादौ ॥ १ ॥

कृमिजाया विशेषलक्षणं—शूलहृल्लासबहुला कृमिजा च विशेषतः ।
कृमिहृद्रोगतुल्येन लक्षणेन च लक्षिता ॥ १ ॥

अथ साध्यामसाध्यां चाह—क्षीणस्य या छर्दिरतिप्रसक्ता सोपद्रवा
शोणितपूययुक्ता । सचन्द्रकां तां प्रवदेदसाध्यां साध्यांचिकित्सेन्निरुपद्रवां च १

अथ तस्या उपद्रवानाह—कासः श्वासो ज्वरो हिक्का तृष्णा वैचित्त्यमेव
च । हृद्रोगस्तमकश्चैव ज्ञेयाश्छर्देरुपद्रवाः ॥ १ ॥ इति छर्दिनिदानम् ।

अथ छर्दिचिकित्सां व्याख्यास्यामः ।

आमाशयोत्क्षेशभवा हि सर्वाः स्युश्छर्दयो लङ्घनमेव तस्मात् । प्राक्कारये-
न्मारुतजां विना तु संशोधनं वा कफपित्तहारि ॥ १ ॥

अथ वातछर्दिः योगतरङ्गिण्याः ।

धान्यकादियोगः—धान्याकविश्वदशमूलकषायसिद्धान्यूपानरसान्पवन-
वम्यरुचिप्रशान्त्यै । पीत्वा सुखानि लभते मधुमिश्रितं वा शङ्खाह्वयास्वरस-
मूषणचूर्णयुक्तम् ॥ १ ॥

अथ लवणादियोगः—लवणत्रयसंयुक्तं संयुक्तं लवणेन वा । हन्यात्क्षी-
रोदकं पीतं छर्दिं पवनसंभवाम् ॥ १ ॥

अथ सैन्धवादियोगः—ससैन्धवं पिबेत्सर्पिर्वातच्छर्दिनिवारणम् ।

अथ पित्तच्छर्दिः—चन्दनपानकम्—चन्दनेनाक्षमात्रेण संयोज्याऽऽम-
लकीरसम् । पिबेन्माक्षिकसंयुक्तं पित्तच्छर्दिनिवृत्तये ॥ १ ॥

अथ लाजादियूषः—लाजामसूरयवमुद्रकृता यवागूश्छर्द्यां हिता मधु-
युता बहुपित्तजायाम् । यूषः सुगन्धिमधुतित्तरसप्रयुक्तो मृद्भृष्टलोष्टभव-
मम्बु हितं तृषायाम् ॥ १ ॥ इति सारसंग्रहात् ।

अथ चन्दनावलेहः—चन्दनं च मृणालं च वालकं नागरं वृषम् । स-
तण्डुलोदकक्षौद्रः पीतः कल्को वमीर्जयेत् ॥ १ ॥ इति शार्ङ्गधरात् ।

अथोदीच्यादिः—सोदीच्यं गैरिकं देयं सेव्यं वा तण्डुलाम्बुना । धा-
त्रीरसेन वा पीता सिता लाजाश्च हन्ति ताम् ॥ १ ॥ इति चिकित्सासारात् ।

अथ मुद्गकषायः—कषायो भृष्टमुद्गानां सलाजमधुशर्करः । छर्द्यतीसा-
रदाह्नो ज्वरघ्नः संप्रकाशितः ॥ १ ॥

अथ योगतरङ्गिण्यां पर्पटकाथः । काथः पर्पटजः पीतः सक्षौद्रः शिशि-
रीकृतः । पित्तच्छर्दिं शिरस्तापं चक्षुर्दाहं व्यपोहति ॥ १ ॥

अथ मक्षिकाविडवलेहः—सिताचन्दनमध्वाढ्यं विलिहेन्मक्षिकाश-
कृत् । सोपद्रवा पित्तभवा छर्दिरेतेन शाम्यति ॥ १ ॥

अथ लाजसक्त्ववलेहिका—सर्पिःक्षौद्रसितोपेताँलाजसकूँलिहेत्ततः ।
पित्तच्छर्दिरेनेनाऽऽशु प्रशाम्यति सुदुस्तरा ॥ १ ॥

अथ गुडूच्यादिकाथः—गुडूचीत्रिफलारिष्टपटोलैः कथितं जलम् ।
क्षौद्रयुक्तं निहन्त्याशु च्छर्दिं पित्तसमुद्भवाम् ॥ १ ॥ इति योगसारात् ।

अथ कफच्छर्दिः—छर्द्यां कफोद्भवायां तु वमनं कारयेद्विषक् । तोयैः
सर्षपसिन्धूत्थराठनिम्बकणायुतैः ॥ १ ॥ शस्यन्ते शालिगोधूमयवमुद्भमकु-
ष्ठकाः । षष्टिकास्तत्र यूषाश्च पटोल्याद्याश्च भोजने ॥ २ ॥

अथ विडङ्गादिचूर्णम्—विडङ्गत्रिफलान्योषचूर्णं मधुयुतं लिहेत् । शा-
म्यत्यनेन कफजा छर्दिः सोपद्रवा नृणाम् ॥ १ ॥ इति योगतरङ्गिण्याः ।

अथ रक्तशाल्यादियोगः—अथ रक्तशालिभक्तं गोदधिशर्कराविमिश्रं
च । कुर्याद्भोजनमेतत्कफच्छर्दिच्छिदं जन्तोः ॥ १ ॥ इति चिकित्सासारात् ।

अथ जाम्बवादियोगः—योगसागरात् । सजाम्बवं बादरचूर्णमम्लं मु-
स्तायुतःकर्कटकः सशङ्गी । दुरालभां वा मधुना च युक्तां लिह्यात्कफच्छर्दिवि-
निग्रहार्थम् ॥ १ ॥

अथ त्रिदोषच्छर्दिः—अथ धात्रीफलादिपानकम् । पिष्ट्वा धात्रीफलं
द्राक्षां शर्करां च पलोन्मिताम् । दत्त्वा मधुपलं चैव कुडवं सलिलस्य च ।
वाससा गालितं पीतं हन्ति च्छर्दिं त्रिदोषजाम् ॥ १ ॥ अथ मसूरसक्तुः—
मसूरसक्तवः क्षौद्रमर्दिता दाडिमाम्भसा । पीता निवारयन्त्याशु च्छर्दिं दो-
षत्रयोद्भवाम् ॥ १ ॥

अथैलादिचूर्णम्—एलालवङ्गगजकेशरकोलमज्जालाजप्रियङ्गुघनचन्दन-
पिप्पलीनाम् । चूर्णं सितामधुयुतं मनुजो विलिह्य च्छर्दिं निहन्ति कफमारु-
तपित्तजाताम् ॥ १ ॥ इति योगरत्नावलितः ।

अथ शार्ङ्गधराद्विल्वादिः—बिल्वत्वचो गुडूच्या वा काथः क्षौद्रेण
संयुतः । जयेत्त्रिदोषजां छर्दिं पर्पटः पित्तजां तथा ॥ १ ॥

अथ सामान्यच्छर्दिः—कोलामलकमज्जनौ मक्षिकाविद् सिता मधु ।
सकृष्णातण्डुलो लेहश्छर्दिमाशु व्यपोहति ॥ १ ॥ इति कोलाद्यवलेहः ।

अथ मनःशिलादियोगः—योगशतात् । मनःशिलायागधिकोषणानां
चूर्णं कपित्थाम्लरसेन युक्तम् । लाजैः समांशैर्मधुनाऽवलीढं च्छर्दिं प्रसक्ताम-
सकृन्निहन्ति ॥ १ ॥

अथ योगसारादश्वत्थवल्कलादिः—अश्वत्थवल्कलं शुष्कं दग्धं नि-
र्वापितं जले । तज्जलं पानमात्रेण च्छर्दिं जयति दुर्जयाम् ॥ १ ॥ अथ यो-

गतरङ्गिण्यां लाजादियोगत्रयम्—लाजाकपित्थमधुमागधिकोषणानां क्षौ-
द्राभयात्रिकटुधान्यकजीरकाणाम् । पथ्यामृतामरिचमाक्षिकपिप्पलीनां लेहा-
स्त्रयः सकलवम्यरुचिप्रशान्त्यै ॥ १ ॥ अथ योगतरङ्गिण्या आम्रास्थि-
काथः—आम्रास्थिबिल्वनिर्यूहः पीतः समधुशर्करः । निहन्ति च्छर्द्यतीसारं
वैश्वानर इवाऽऽहुतिम् ॥ १ ॥

अथ योगतरङ्गिण्यां जम्बूपल्लवादिः—जम्बवाअपल्लवशृतं क्षौद्रं दत्त्वा
सुशीतलं तोयम् । लाजैरवचूर्ण्य पिबेच्छर्द्यतिसारे परं सिद्धम् ॥ १ ॥

अथ योगतः पद्मकाद्यं घृतम्—पद्मकामृतनिम्बानां धान्यचन्दनयोः
पचेत् । कल्के काथे च हविषः प्रस्थं छर्दिनिवारणम् ॥ १ ॥

अथ मयूरपक्षभस्मावलेहः—योगतरङ्गिण्याः । मयूरपक्षं निर्दह्य तद्रसम्
मधुमिश्रितम् । लीढ्वा निवारयत्याशु च्छर्दिं सोपद्रवामपि ॥ १ ॥

अथ सारसंग्रहाद्रोप्याद्यम्—पुराणगोणिभस्माभ्यो मधुयुक्तं निपीय
तु । छर्दिं छिनत्ति मनुजस्तृणानीव हुताशनः ॥ १ ॥ अथ चिकित्सासारा-
ज्जातीपत्रादिः—जातीपत्ररसं कृष्णा मरिचं शर्करान्वितम् । एतानि मधु-
युक्तानि घ्नन्ति च्छर्दिं चिरोद्भवाम् ॥ १ ॥

अथ कोलमज्जादिः—चिकित्सासारात् । कोलमज्जा कणा बर्हिपक्षभस्म
सशर्करम् । मधुना लेहयेच्छर्दिहिकाकोपस्य शान्तये ॥ १ ॥

अथ शार्ङ्गधराद्वीजपूरादिः—बीजपूराअजम्बूनां पल्लवानि जटाः घृ-
थक् । विपचेत्पुटपाकेन क्षौद्रयुक्तश्च तद्रसः । छर्दिं निवारयेद्भोरां सर्वदोष-
समुद्भवाम् ॥ १ ॥

अथ चिकित्सासाराज्जम्बवाअपल्लवादिः—जम्बवाअपल्लवोशीरवट-
शृङ्गावरोहजः । काथः क्षौद्रयुतः पीतः शीतो वा विनियच्छति । छर्दिं ज्वर-
मतीसारं मूर्छां तृष्णां च दुर्जयाम् ॥ १ ॥

अथ पटोलाद्यं घृतम्—पटोलशुण्ठयोः कल्काभ्यां केवलं कुलकेन वा ।
घृतप्रस्थं विपक्तव्यं कफपित्तवमीर्हरेत् ॥ १ ॥

अथ हिङ्गवादिः—हिङ्गुना सारिवामूलं सर्ववान्तिहरं परम् । रम्भाक-
न्दरसो वाऽपि मधुना छर्दिनाशकृत् ॥ १ ॥

अथ दध्युत्थरसादिः—दध्युत्थरससंयुक्तं पिप्पलीमाक्षिकान्वितम् ।
मुहुर्मुहुर्नरो लिङ्गाच्छर्दिभ्यः प्रतिमुच्यते ॥ १ ॥ इति सुश्रुतात् ।

अथ करञ्जादिः—कोमलकरञ्जपत्रं सलवणमम्लेन संयुक्तम् । यः खा-
दति दीनवदनश्छर्दिकफौ तस्य कुत्रेह ॥ १ ॥ इति सारसंग्रहात् ।

अथ करञ्जबीजादिः—ईषद्भृष्टं करञ्जस्य बीजं खण्डीकृतं पुनः । मुहु-
र्मुहुर्नरो भुक्त्वा छर्दिं जयति दुस्तराम् ॥ १ ॥

अथ शङ्खपुष्पीरसादिः—शङ्खपुष्पीरसं दृक्द्रव्यं समरिचं मुहुः । सक्षौ-
द्रं मनुजः पीत्वा छर्दिभ्यः किल मुच्यते ॥ १ ॥ इति लघुयोगतः ।

अथ हरीतक्यवलेहः—हरीतकीनां चूर्णं तु लिह्यान्माक्षिकसंयुतम् ।
अधोभागे कृते दोषे छर्दिस्तेनैव शाम्यति ॥ १ ॥

अथ योगसाराजीरकाद्यो धूपः—जीरान्वितं पट्टवस्त्रं वार्तं कृत्वाऽथ
धूपयेत् । आघ्राणाद्विलयं याति सर्वा छर्दिश्चिरोद्भवा ॥ १ ॥ इति सामान्य-
विधिः ।

अथ बीभत्सादिपञ्चवमिषु—बीभत्सजामबीभत्सैर्हेतुभिः संहरेद्वमि-
म् । दौर्हृदस्थां वमिं हृद्यैः काङ्क्षितैर्वस्तुभिर्जयेत् ॥ १ ॥ लङ्घनैर्वमनैर्वाऽ-
पि सात्म्यैर्वाऽसात्म्यसंभवाम् । कृमिहृद्रोगवच्चापि साधयेत्कृमिजां वमिम्
॥ २ ॥ यथादोषं च वितरेच्छस्तं विधिमनन्तरम् । पवनघ्नी चिरोत्थासु प्रयो-
ज्या छर्दिषु क्रिया ॥ ३ ॥

अथ रसाः ।

अथ पारदादिचूर्णम्—रसरत्नप्रदीपात् । रसबलिघनसारकोलमज्जाम-
रकुसुमाम्बुधरप्रियङ्गुलाजाः । मलयजमगधात्वगेलपत्रं दलितमिदं परिभा-
व्य चन्दनाद्भिः ॥ मधुमरिचयुतं रजोऽस्य माषं जयति वमिं प्रबलां विलिह्य
मर्त्यः ॥ १ ॥

अथ योगरत्नावल्याः—जीरकादिरसः । अजाजीधान्यपथ्याभिः
सक्षौद्रैः सकटुत्रिकैः । एतैः सार्धं सूतभस्म सद्यो वान्ति विनाशयेत् ॥ १ ॥

योगसाराद्रमनामृतयोगः—गन्धकः कमलाक्षश्च यष्टीमधु शिलाजतु ।
रुद्राक्षष्टक्लणश्चैव सारङ्गस्य च शृङ्गकम् ॥ १ ॥ चन्दनं च तवक्षीरी गोरचन-
मिदं समम् । बिल्वमूलकषायेण मर्दयेद्याममात्रकम् ॥ २ ॥ मात्रां चैव प्रकु-
र्वीत वल्लस्यैव प्रमाणतः । नानाविधानुपानेन च्छर्दिं हन्ति त्रिदोषजाम् । वम-
नामृतयोगोऽयं कमलाकरभाषितः ॥ ३ ॥

अथ वान्तिहृद्रसः—अयः शङ्खो वलिः सूतः खल्वे तुल्यं विमर्दयेत् ।
कन्याकनकचाङ्गेरीरसैर्गोलं विधाय च ॥ १ ॥ सप्तमृत्कर्पटौर्लिप्त्वा पुटितो
वान्तिहृद्रसः । द्विवलः कृमिरोगेऽपि साजमोदः सवल्लकः ॥ २ ॥ वान्ति-
हारेण मुनिना प्रोक्तोऽयं मधुना युतः । पिप्पलक्षारपानीयं पाययेद्वान्ति-
हन्निषक् ॥ ३ ॥

अथ छर्द्यन्तकरसः—रसभस्म पलाशं स्यात्तत्पादः स्वर्णभस्म च ।
ताम्रं भुजंगवङ्गं च मौक्तिकं तत्समांशकम् ॥ १ ॥ तेषां सममयश्चूर्णमभ्रकं
तत्समं भवेत् । तत्समं गन्धकं दत्त्वा बीजपूराद्र्दकाम्बुना ॥ २ ॥ सर्वं खल्वे
विनिक्षिप्य मर्दयेत्त्रिदिनावधि । तत्कलकं भावयेत्सप्त दिनान्यामलकद्रवैः

॥ ३ ॥ पश्चात्तन्मूलमूषायां रुद्ध्वा भाण्डे विनिक्षिपेत् । पांसुभिः परिपूर्याथ क्रमवृद्धेन वह्निना ॥ ४ ॥ पचेद्यामत्रयं चुह्यां स्वाङ्गशीतलमुद्धरेत् । ततः सर्वं समाकृष्य चूर्णयेत्पट्टगालितम् ॥ ५ ॥ अजाजी दीप्यकं व्योषं त्रिफला कृष्णजीरकम् । कृमिशत्रु वराङ्गं च प्रत्येकं निष्कमानकम् ॥ ६ ॥ ततः सर्वं चूर्णयित्वा योजयेत्पूर्वभस्मना । इत्थं पञ्चरसेऽनेन ? प्रोक्तश्छर्द्यन्तको रसः ॥ ७ ॥ तत्तद्द्रोगहरैर्द्रव्यैर्दद्याद्बलप्रमाणतः । अम्लपित्तमसृक्पित्तं छर्दिं गुल्म-मरोचकम् ॥ ८ ॥ आमवातं च दुःसाध्यं प्रसेकच्छर्दिहृदुजम् । सर्वलक्षण-संपूर्णं विनिहन्ति क्षयामयम् ॥ स्वस्थोचितो हितकरः सर्वेषाममृतोपमः ॥ ९ ॥ इति रसाः ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

कलाययवगोधूममुद्गपष्टिकशालयः । शशतित्तिरलावाद्या मृगजाङ्गलसंज्ञि-ताः ॥ १ ॥ रागखाण्डववेत्राग्रकोलद्राक्षाफलानि च । वसिरोगेषु पथ्यानि मुनिभिः कथितानि तु ॥ २ ॥ लम्बां बिम्बीकोशवल्यौ मधूकं चित्रामेलां सर्षपं देवदालीम् । व्यायामं वाऽसात्म्यद्रुष्टान्नपानं छर्द्यां सद्यो वर्जयेदप्र-मत्तः ॥ ३ ॥

इति पथ्यापथ्यविधिः । इति छर्दिचिकित्सा ॥

अथ तृष्णानिदानं व्याख्यास्यामः ।

भयश्रमाभ्यां बलसंक्षयाद्वा ऊर्ध्वं चित्तं पित्तविवर्धनैश्च । पित्तं सवातं कुपितं नराणां तालुप्रपन्नं जनयेत्पिपासाम् ॥ १ ॥ सततं यः पिबेत्तोयं न तृप्तिमधिगच्छति । पुनः काङ्क्षति तोयं च तं तृष्णार्दितमादिशेत् ॥ २ ॥

अथ तृष्णानां संप्राप्तिमाह—स्रोतःस्वपांवाहिषु दूषितेषु दोषैश्च तृट् संभवतीह जन्तोः । तिस्रः स्मृतास्ताः क्षतजा चतुर्थी क्षयात्तथाऽन्याऽऽमस-मुद्भवा च ॥ १ ॥ भुक्तोद्भवा सप्तमिकेति तासां निबोध लिङ्गान्यनुपूर्वशश्च । पूर्वरूपं ताल्वोष्ठकण्ठस्य वितोददाहसंतापमोहभ्रमविप्रलापाः । पूर्वाणि रू-पाणि भवन्ति तासामुत्पत्तिकालेषु विशेषतो हि ॥ २ ॥

अथ वातजां तृष्णामाह—शुष्कास्यता मारुतसंभवायां तोदस्तथा शङ्ख-शिरःसु चापि । स्रोतोनिरोधो विरसं च वक्त्रं शीताभिरद्भिश्च विवृद्धिमेति ॥ १ ॥

अथ पित्तजामाह—मूर्छान्नविद्वेषविलापदाहा रक्तेक्षणत्वं प्रततश्च शोषः । शीताभिनन्दो मुखतिक्तता च पित्तात्मिकायां परिधूपनं च ॥ १ ॥

अथ श्रेष्ठमजामाह—बाष्पावरोधात्कफसंवृतेऽग्नौ तृष्णा बलासेन भवे-न्नरस्य । निद्रा गुरुत्वं मधुरास्यता च तृष्णार्दितः शुष्यति चातिमात्रम् । कण्ठोपलेपो मुखपिच्छिलत्वं शीतज्वरछर्दिरोचकश्च ॥ १ ॥ कफात्मिकायां

गुरुगात्रता च शाखासु शोषस्त्वविपाक एव । एतानि रूपाणि भवन्ति तस्यां
तयाऽर्दितः काङ्क्षति नाति चाम्भः ॥

अथ क्षतजामाह—क्षतस्य रुक्शोणितनिर्गमाभ्यां तृष्णा चतुर्थी क्षतजा
भवेत्सा ॥ १ ॥

अथ क्षयजामाह—रसक्षयाद्या क्षयसंभवा सा तयाऽभिभूतस्तु निशा-
दिनेषु । पेपीयतेऽम्भः स सुखं न याति तां संनिपातादिति केचिदाहुः ॥ १ ॥
रसक्षयोक्तानि च लक्षणानि तस्यामशेषेण भिषगव्यवस्येत् । अथाऽऽम-
जामाह—त्रिदोषलिङ्गामसमुद्भवा च हृच्छूलनिष्टीवनसादकर्त्री ॥ १ ॥

अथ भुक्तोद्भवामाह—स्निग्धं तथाऽऽमलं लवणं च भुक्तं गुर्वन्नमेवाऽऽशु
तृषं करोति ॥ १ ॥ अथोपसर्गजामाह—दीनस्वरः प्रताम्यन्दीनाननशु-
क्लहृदयगलतालुः । भवति खलु सोपसर्गा तृष्णा सा शोषणी मता कष्टा ॥ २ ॥
ज्वरमोहक्षयकासश्वासाद्युपसृष्टदेहानाम् । सर्वास्त्वतिप्रसक्ता रोगकृशानां
वमिप्रसक्तानाम् ॥ १ ॥ भवति खलु सोपसर्गा तृष्णा मरणाय विज्ञेया ।

अथासाध्यामाह—तालवोष्टकण्ठस्य तु तोददाहाः संतापमोहभ्रमविप्र-
लापाः । सर्वाणि रूपाणि भवन्ति तासां मृत्युर्हि काले तु विशेषतो हि ॥ १ ॥
क्षीणं विभिन्नं बधिरं तृषातं विवर्जयेन्निर्गतजिह्वमाशु ॥ २ ॥ उपद्रवाः-
ज्वरो मोहः क्षयः कासः श्वासो बाधिर्यमेव च । बहिर्निर्गतजिह्वत्वं सप्तैते
तृडुपद्रवाः ॥ ३ ॥

इति तृष्णानिदानम् ।

अथ तृष्णाचिकित्सां व्याख्यास्यामः ।

अथ वाततृष्णा—वातघ्नमन्नपानं मिष्टं शीतं च वाततृष्णायाः । स्याज्जी-
वनीयसिद्धं क्षीरघृतं वातजे तर्पे ॥ १ ॥ इति वृन्दात् ॥

अथ पित्ततृष्णा—पित्तजायां सितायुक्तः पक्वोदुम्बरजो रसः । प्रपिबे-
त्ससितं मन्थं पयःकोलजसक्तुभिः ॥ १ ॥

अथ काश्मर्यादि—काश्मर्यशर्करायुक्तं चन्दनोशीरपञ्चकम् । द्राक्षाम-
धुकसंयुक्तं पित्ततर्पे जलं पिबेत् ॥ १ ॥ इति चिकित्सासारात् ॥

अथ कफतृष्णा—यथोक्तं कफतृष्णायां छर्द्यां तथैव कार्यं स्यात् । स्त-
म्भारुच्यविपाकालस्यच्छर्दिषु कफानुगां तृष्णाम् ॥ १ ॥ ज्ञात्वा मधुदधितर्प-
णलवणेन जलैर्वसनमभीक्ष्णम् । दाडिममम्लफलं वाऽप्यन्यत्सकषायमवले-
ह्यम् ॥ २ ॥ पयसाऽथ वा प्रदद्याद्रजनीमधुशर्करायुक्तम् ॥ ३ ॥ इति वृन्दात् ॥

अथ सामान्यविधिः ।

तृष्णातिवृद्धाबुदरे च पूर्णे संछर्दयेन्मागधिकोदकेन । विलोमसंचारहितं

विवेयं स्याद्वाडिमात्रातकमातुलुङ्गैः ॥ १ ॥ सुवर्णरौप्यादिभिरग्नितसैर्लोष्टैः
 कृतं वा सिकतोपलैर्वा । जलं सुखोष्णं शमयेच्च तृष्णां सशर्करं क्षौद्रयुतं
 हिमं वा ॥ २ ॥ कसेरुशृङ्गाटकपद्मबीजबिसेक्षुसिद्धं ससितं च वारि । तृष्णां
 क्षतोत्थामपि पित्तजातां निहन्ति पित्तं शिशिरीकृतं च ॥ ३ ॥ इति सार-
 नंग्रहात् । तुलसीमञ्जरीशुण्ठीकणाद्राक्षालवङ्गकैः । नागवल्लीपर्णवृन्तत्वक्ख-
 जुरैश्च कार्ष्णिकैः ॥ १ ॥ कर्षार्धलोभ्रसंयुक्तैर्विहितोऽयं कषायकः । तृष्णादाह-
 ण्यानिहरस्त्रिदोषशमनः परः ॥ २ मधुयुक्तं जलं शीतं पिबेदाकण्ठमातुरः ।
 पश्चाद्भेदशेषं तत्तृष्णा तेन प्रशाम्यति ॥ ३ ॥ इति योगतरङ्गिण्याः । मधुरैः
 सुजीवनीयैः शीतैश्च सतिक्तकं शृतं क्षीरम् । पानाभ्यञ्जनसेके त्विष्टं मधु-
 शर्करायुक्तम् ॥ १ ॥ तज्जं वा घृतमिष्टं पानाभ्यङ्गेषु नस्यमपि किञ्चित् ।
 जम्ब्वाम्रातकवदर्थम्लवेतसवलकलपञ्चाम्लैः ॥ हन्मुखशिरः प्रदेहा सघृता
 मूर्च्छातिभ्रमनृपाघ्राः ॥ २ ॥ इति वृन्दात् । सजीरकाण्यार्द्रकशृङ्गबेरसौवर्च-
 लान्यर्धपरिप्लुतानि । मद्यानि हृद्यानि च गन्धवन्ति पीतानि सद्यः शमयन्ति
 तृष्णाम् ॥ १ ॥ आम्रजम्बूकपायं वा पिबेन्माक्षिकसंयुतम् । सर्वां छर्दिं
 प्रणुदति तृष्णां चैवापकर्षति ॥ २ ॥ गोस्तनीक्षुरसक्षीरयष्टीमधुमधूत्पलैः ।
 नियतं वास्यतो पीतैस्तृष्णा शाम्यति तत्क्षणात् ॥ ३ ॥ जीरकुस्तुम्बरीद्रा-
 क्षाचन्दनोत्पलशीतलम् । शीतलेन समं दद्यात्तृष्णां हन्यतिशीलितम् ॥ ४ ॥
 निर्वापितं तप्तलोष्टकपालसिकतादिभिः । तृष्णायां वमनोत्थायां सगुडं दधि
 शस्यते ॥ ५ ॥ इति चिकित्सासारात् ।

अथ लघुमधूकादिफाण्टः ।

शार्ङ्गधरात्—सधूकपुष्पगम्भारीचन्दनोशीरधान्यकैः । द्राक्षया च कृतः
 फाण्टः शीतः शर्करया युतः । तृष्णापित्तहरः प्रोक्तो दाहमूर्च्छाभ्रमाञ्जयेत् ॥ १ ॥

अथ गण्डूषः ।

सक्षौद्रमात्रजम्बूत्थं पिबेत्काथं सुपाचितम् । सतृष्णो मधुना कुर्याद्गण्डू-
 पाञ्जिशिरस्थितः ॥ १ ॥ इति रसरत्नप्रदीपात् । क्षीरक्षुरसमृद्धीकाक्षौद्र-
 सिन्धुगुडोदकैः । सहवृक्षाम्लगण्डूषस्तालुशोषतृडन्तकृत् ॥ १ ॥ इति यो-
 गतरङ्गिण्याः ।

अथ लेपाः ।

वाडिमकपित्थलोष्टैः सविदारीबीजपूरकैः शिरसः । लेपो गौरामलकैः
 शृतारनालयुतैः सहितैः ॥ १ ॥ इति वृन्दात् । अरुणचन्दनचन्दनवालकै-
 र्नलदपद्मकतुल्यकृतांशकैः । शिरसि लेपनमाचरतां नृणां तृड्ढुपयात्युपशान्ति-

मसंशयम् ॥ १ ॥ इति कदम्बात् । दाडिमं बदरं लोभ्रं कपित्थं बीजपूरकम् ।
पिष्ट्वा लेपः शिरस्येषां पिपासादाहनाशनः ॥ १ ॥ इति योगतरङ्गिण्याः ॥
इति लेपाः ॥

अथ गुटिका ।

नीलाम्बुजाब्दमधुलाजवटावरोहैः श्लक्ष्णीकृतैर्विरचिता गुटिका मुखस्था ।
तृष्णां निवारयति तत्क्षणमेव तीव्रां मृत्योः स्पृहामिव यतेः परमार्थचिन्ता
॥ १ ॥ इति राजमार्तण्डात् । वटप्ररोहं मधुकुष्ठमुत्पलं सलाजचूर्णं गुटिका
प्रकल्प्या । सुसंहिता सा वदने च धारिता तृष्णां सुवृद्धामपि हन्ति सज्व-
राम् ॥ १ ॥ इति योगशतात् । रुग्लाजाब्दवटप्ररोहमधुकैर्मध्वन्वितैः कल्पि-
ताऽप्युग्रामाशु तृषं भृशं प्रशमयेदास्यान्तरस्था गुटी । एलाजलवङ्गनाग-
चपलास्त्रीकोलमज्जाम्बुदश्रीखण्डं मधुयुक् प्रिये प्रशमयेद्वातिं त्रिदोषोद्भवाम्
॥ १ ॥ इति वैद्यजीवनात् । रोगोपसर्गजातायां धान्याम्बु ससितामधु ।
वटप्ररोहयष्ट्याह्वकणामधुकृता वटी ॥ मुखस्था चिरकालोत्थां तृष्णां हन्या-
त्सुदुस्तराम् ॥ १ ॥ इति चिकित्सासारात् । इति सामान्यविधिः । क्षतो-
द्भवां रुग्निनिवारणेन जयेद्रसानामसृजश्च पानैः । क्षयोत्थितां क्षीरजलं
निहन्यान्मांसोदकं वा मधुकोदकं वा ॥ १ ॥ आमोद्भवां बिल्ववचायुतानां
जयेत्कषायैरपि दीपनानाम् । उल्लेखनैर्गुर्वशनप्रजातां जयेत्क्षयोत्थां तु विना
पिपासाम् ॥ २ ॥ त्रिगुधेऽन्ने भुक्ते या तृष्णा स्यात्तां गुडाम्बुना शमयेत् ।
अतिरूक्षदुर्बलानां तृष्णां शमयेन्नृणामिहाऽऽशु पयः ॥ ३ ॥ छागमांसरसं
साज्यं शीतं समधुशर्करम् । पीत्वा जयति दुर्दाहमूर्छार्दमदात्ययान् ॥ ४ ॥
सात्म्यान्नपानमैषज्यैस्तृष्णार्तस्य जयेत्तृषाम् । तस्यां जितायामन्योऽपि व्याधिः
शक्यश्चिकित्सितुम् ॥ ५ ॥ तृषितो मोहमायाति मोहात्प्राणान्विमुञ्चति ।
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु न कचिद्धारि वार्यते ॥ ६ ॥ अन्नेनापि विना जन्तुः
प्राणान्संभारयेच्चिरम् । तोयाभावे पिपासार्तः क्षणात्प्राणान्विमुञ्चति ॥ ७ ॥

अथ रसाः ।

अथ रसादिगुटिका—रसरजतगुटीं पटीयसीं यो वदनसरोरुहमध्यगां
दधाति । स जयति तृषितस्तृषां मनुष्यो भृशमघपुञ्जमिव त्रिमार्गगाम्भः ॥ १ ॥

अथ रसादिचूर्णम् ।

रसगन्धकर्कषुरैः शैलोशीरमरीचकैः । ससितैः क्रमवृद्धैश्च सूक्ष्मं कृत्वा त्व-
हर्मुखे ॥ १ ॥ त्रिगुञ्जाप्रमितं खादेत्पिबेत्पर्युषिताम्बु च । भृशं तृषां निह-
न्येवमश्विभ्यां च प्रकाशितम् ॥ २ ॥ इति सारसंग्रहात् ॥ इति रसाः ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

षष्टिकाः शालयः पेया विलेपी लाजसक्तवः । अन्नमण्डो धान्यरसः शर्करा-
रारागखाण्डवौ ॥ १ ॥ भृष्टैर्मुद्गैर्मसूरैर्वा चणकैर्वा कृतो रसः । रम्भापुष्पं
तक्रकूर्चं कूष्माण्डकमुपोदिका ॥ २ ॥ खर्जूरं दाडिमं धात्री बीजपूरं गवां
पयः । जम्बीरं करमर्दं च पथ्यमेतत्तृषातुरे ॥ ३ ॥ गुर्वन्नमम्लं लवणं कषायं
कटुत्रयं दुष्टजलानि तीक्ष्णम् । एतानि सर्वाणि हिताभिलाषी तृषातुरो नैव
भजेत्कदाचित् ॥ ४ ॥ इति तृष्णाचिकित्सा ॥

अथ मूर्छानिदानम् ।

क्षीणस्य बहुदोषस्य विरुद्धाहारसेविनः । वेगाघातादभीघाताद्धीनसत्त्वस्य
वा पुनः ॥ १ ॥ करणायतनेपूग्रा बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च । निवसन्ति यदा
दोषास्तदा मूर्छन्ति मानवाः ॥ २ ॥ संज्ञावहासु नाडीषु पिहितास्वनिलादिभिः ।
तमोऽभ्युपैति सहसा सुखदुःखव्यपोहकृत् ॥ ३ ॥ सुखदुःखव्यपोहाच्च नरः
पतति काष्ठवत् । मोहो मूर्छेति तामाहुः पङ्क्तिविधा सा प्रकीर्तिता ॥ ४ ॥
वातादिभिः शोणितेन मद्येन च विषेण च । पदस्त्रप्येतासु पित्तं च प्रभुत्वे-
नावतिष्ठति ॥ ५ ॥

अथ तस्याः पूर्वरूपमाह—हृत्पीडा जृम्भणं ग्लानिः संज्ञादौर्बल्यमेव
च । सर्वासां पूर्वरूपाणि यथास्वं च विभावयेत् ॥ १ ॥

अथ वातजामाह—नीलं वा यदि वा कृष्णमाकाशमथवाऽरुणम् । प-
श्यंस्तमः प्रविशति शीघ्रं च प्रतिबुध्यते ॥ १ ॥ वेपथुश्चाङ्गमर्दश्च प्रपीडा
हृदयस्य च । काश्यं श्यावारुणच्छाया मूर्छाये वातसंभवे ॥ २ ॥

अथ पित्तजामाह—रक्तं हरितवर्णं वा वियत्पीतमथापि वा । पश्यं-
स्तमः प्रविशति सखेदः प्रतिबुध्यते ॥ १ ॥ सपिपासः ससंतापो रक्तपित्ताकु-
लेक्षणः । जातमात्रे च पतति शीघ्रं च प्रतिबुध्यते ॥ संभिन्नवर्चाः पीताभो
मूर्छाये पित्तसंभवे ॥ २ ॥

अथ श्लेष्मजामाह—मेघसंकाशमाकाशमावृतं वा तमोघनैः । पश्यं-
स्तमः प्रविशति चिराच्च प्रतिबुध्यते ॥ १ ॥ गुरुभिः प्रावृत्तैरङ्गैर्यथा वाऽऽर्द्रेण
चर्मणा । सप्रसेकः सहल्लासो मूर्छाये कफसंभवे ॥ २ ॥

अथ संनिपातजामाह—सर्वाकृतिः संनिपातादपसार इवाऽपरः । स
जन्तुं पातयत्याशु विना बीभत्सचेष्टितैः ॥ १ ॥

अथ रक्तगन्धजमूर्छामाह—पृथिव्यापस्तमोरूपं रक्तगन्धस्तदन्वयः ।
तस्माद्रक्तस्य गन्धेन मूर्छन्ति भुवि मानवाः ॥ द्रव्यस्वभाव इत्येके दृष्ट्वा य-
दभिमुह्यति ॥ १ ॥

अथ विषमद्यजे आह—गुणास्तीव्रतरत्वेन स्थिताश्च विषमद्ययोः । त एव तस्मात्ताभ्यां तु मोहौ स्यातां यथेरितौ ॥ स्तब्धाङ्गदृष्टिस्त्वसृजा गूढोच्छ्वासश्च मूर्छितः ॥ १ ॥ मद्येन विलपञ्शेते नष्टविभ्रान्तमानसः । गात्राणि विक्षिपन्भूमौ जरां यावन्न याति तत् ॥ १ ॥ वेपथुस्वप्नतृष्णाः स्युस्तमश्च विषमूर्छिते । वेदितव्यं तीव्रतरं यथास्वं विषलक्षणैः ॥ १ ॥

अथ मूर्छाभ्रमतंद्रानिद्राभेदानाह ।

मूर्छा पित्ततमः प्राया रजःपित्तानिलाद्भ्रमः । तमोवातकफात्तन्द्रा निद्रा श्लेष्मतमोभवा ॥ १ ॥ इन्द्रियार्थेष्वसंप्राप्तिगौरवं जृम्भणं क्लमः । निद्रार्तस्येव यस्यैते तस्य तन्द्रां विनिर्दिशेत् ॥ २ ॥

अथ संन्यासस्य मूर्छादिभ्यो भेदमाह ।

दोषेषु मदमूर्छाया गतवेगेषु देहिनाम् । स्वयमेवोपशाम्यन्ति संन्यासो नौषधैर्विना ॥ १ ॥ वाग्देहमनसां चेष्टामाक्षिप्यातिबला मलाः । संन्यस्यन्त्यबलं जन्तुं प्राणायतनमाश्रिताः ॥ २ ॥ स ना संन्याससंन्यस्तः काष्ठीभूतो मृतोपमः । प्राणैर्विमुच्यते शीघ्रं मुक्त्वा सद्यःफलां क्रियाम् ॥ ३ ॥ वादित्रगीतानुनयैरपूर्वैर्विस्मापनैर्गुप्तफलावधर्षैः । आभिः क्रियाभिश्च न लब्धसंशो सानाहलालश्च नरश्च वर्ज्यः ॥ ४ ॥ इति मूर्छानिदानम् ।

अथ मूर्छाचिकित्सा ।

मूर्छा मोहो द्विधा स प्रभवति सहजागन्तुभेदेन भिन्नस्तत्राऽऽगन्तुस्त्रिधा स्याद्बुधिरविषसुराजन्यभेदाद्विभिन्नः । प्रत्येकं दोषभेदाद्भवति च सहजः स त्रिधा षट्सु पित्तं प्राधान्येनेह तिष्ठेदभिदधति च तां द्वंद्वजां संनिपाते ॥ १ ॥ सेकावगाहा मणयः सहाराः शीताः प्रदेहा व्यजनानिलाश्च । शीतानि पानानि च गन्धवन्ति सर्वासु मूर्छास्वनिवारितानि ॥ २ ॥ कोलमज्जोषणोशीरकेसरं शीतवारिणा । पीतं मूर्छां जयेल्लीढा कृष्णा वा मधुसंयुता ॥ ३ ॥ इति वृन्दात् । सहौषधामृताद्राक्षापुष्करग्रन्थिकोद्भवम् । पिबेत्कणायुतं काथं मूर्छायां च मदेषु च ॥ १ ॥ इति वृन्दात् । नारीकेलाम्बुना पीता सक्तवः समशर्कराः । पित्तहृत्कफतृष्णमूर्छाभ्रमादीन्घ्नन्ति दारुणान् ॥ १ ॥ इति चिकित्सासारात् । शतावरीबलामूलद्राक्षासिद्धं पयः पिबेत् । ससितं भ्रमनाशाय बीजं वाट्यालकस्य च । इति चक्रदत्तात् । दुरालभाकषायस्य घृतयुक्तस्य सेवनात् । भ्रमः शाम्यति गोविन्दस्मरणादिव पातकम् ॥ १ ॥ इति वैद्यजीवनात् । मधुना हन्युपयुक्ता त्रिफला रात्रौ गुडार्द्रकं प्रातः । सप्ताहात्पथ्यभुजो मदमूर्छाकामलोन्मादान् ॥ १ ॥ इति चिकित्सासारात् । स्विन्नमामलकं पिप्पला द्राक्षया सह संसृजेत् । विश्वभेषजसंयुक्तं मधुना सह लेह-

येत् ॥ तेनास्य शाम्यते मूर्छा कासः श्वासस्तथैव च ॥ १ ॥ इति वृन्दात् ।

अथ योगतरङ्गिण्यां घृतम्—पथ्याक्वाथेन संसिद्धं घृतं धात्रीरसेन वा । सर्पिः कल्याणकं वाऽपि मदमूर्छापहं पिबेत् ॥ १ ॥ रक्तजायां तु मूर्छायां हितः शीतक्रियाविधिः । मद्यजायां पिबेन्मद्यं निद्रां सेवेद्यथासुखम् ॥ २ ॥ विपजायां विषघ्नानि भेषजानि प्रदापयेत् । अञ्जनान्यवपीडांश्च धूमान्प्रधमनानि च ॥ ३ ॥ सूचिभिस्तोदनं शस्तं दाहपीडा नखान्तरे । लुञ्चनं नखलोम्नां च दन्तैर्दशनमेव च ॥ ४ ॥ आत्मगुप्तावधर्षश्च हितस्तस्यावबोधने । अण्डयोर्धर्षणं चापि हितमेतैर्विबोधनम् ॥ ५ ॥ नासावदनरोधेन नस्यैर्मरिचिनिमितैः । नरं जागरयेद्भूमौ मूर्छितं मदमारुतैः ॥ ६ ॥

अथ रसः ।

कणामधुयुतं सूतं मूर्छायामनुशीलयेत् । शीतसेकावगाहादि सर्वं वा पीडनं हितम् ॥ १ ॥ इति रसरत्नप्रदीपात् ॥

अथ पथ्यम् ।

जीर्णा यवा लोहितशालयश्च कौम्भं हविर्मुद्गसतीनयूषः । धन्वोद्भवा मांस-रसाश्च रागाः सखाण्डवा गव्यपयः सिता च ॥ १ ॥ पुराणकूष्माण्डपटोलमोचहरीतकीदाडिमनारिकेलम् । मधूकपुष्पाणि च तण्डूलीयमुपोदिकाऽन्नानि लघूनि चापि ॥ २ ॥ अत्युच्चशब्दोऽद्भुतदर्शनं च गीतानि वाद्यान्यपि चोत्कटानि । श्रमः श्रुतिश्चिन्तनमात्मबोधो धैर्यं च मूर्छास्विति पथ्यवर्गः ॥ ३ ॥ नासामुखद्वारमरुन्निरोधो विरेचनं छर्दनलङ्घनानि । छाया नभोऽम्भः शतधौतसर्पिर्मधूनि तीक्ष्णानि च लाजमण्डः ॥ ४ ॥

अथापथ्यम् ।

ताम्बूलं पत्रशाकानि दन्तधर्षणमातपम् । विरुद्धान्यन्नपानानि व्यवायं स्वेदनं कटुम् ॥ विण्मूत्रवेगरोधं च तक्रं मूर्छामयी त्यजेत् ॥ १ ॥

इति मूर्छाचिकित्सा ॥

अथ पानात्ययपरमदपानाजीर्णपानविभ्रमनि- दानम् ।

ये विपस्य गुणाः प्रोक्तास्ते च मध्ये प्रतिष्ठिताः । तेन मिथ्योपयुक्तेन भवत्युग्रो मदात्ययः ॥ १ ॥ किंतु मद्यं स्वभावेन यथैवान्नं तथा स्मृतम् । अयुक्तियुक्तं रोगाय युक्तियुक्तं यथाऽस्मृतम् ॥ २ ॥ शुद्धकायः पिबेत्प्रातः सोपदंशं

पलद्वयम् । मध्याह्ने द्विगुणं तच्च स्निग्धाहारेण पाययेत् ॥ ३ ॥ प्रदोषेऽष्टपलं तद्वन्मात्रा मद्यरसायने । आरोग्यं धातुसाम्यं च वह्निकान्तिबलप्रदम् ॥ ४ ॥ अनेन विधिना सेव्यं मद्यं नित्यमतन्द्रितैः । बुद्ध्यादयो गुणा यावदुल्लसन्ति निरत्ययाः । मात्रा सा विहिता मद्यपाने रोगाय चापरा ॥ ५ ॥ लघुतीक्ष्णोष्णसूक्ष्माम्लव्यवाय्याशुगमेव च । रूक्षं विकाशि विशदं मद्यं दशगुणं स्मृतम् ॥ ६ ॥ मद्यस्याम्लस्वभावस्य चत्वारस्तु रसाः स्मृताः । मधुरश्च कषायश्च कटुकस्तु एव च ॥ ७ ॥ विषं प्राणहरं तच्च युक्तियुक्तं रसायनम् । प्राणाः प्राणभृतामन्नं तदयुक्त्या निहन्त्यसून् ॥ ८ ॥ मद्यमुष्णं तथा तीक्ष्णं सूक्ष्मं विशदमेव च । रूक्षमाशुकरं चैव व्यवायि च विकाशि च ॥ ९ ॥ औष्ण्याच्छीतोपचारं च तैक्ष्ण्याद्धन्ति मनोगतिम् । विशत्यवयवान्सौक्ष्म्याद्वैशद्यात्कफशुक्रनुत् ॥ १० ॥ मारुतं कोपयेद्रौक्ष्यादाशुत्वादाशुकारि च । हर्षदं च व्यवायित्वाद्विकाशित्वाद्विसर्पति ॥ ११ ॥ तदम्लं रसतः प्रोक्तं लघुदीपनपाचनम् । केचिल्लवणवर्ज्यास्तु रसांस्तत्राऽऽदिशन्ति हि ॥ १२ ॥

अथ विधिनोपयुक्तस्य फलमाह—विधिना मात्रया काले हितैरन्वैर्यथाबलम् । प्रहृष्टो यः पिबेन्मद्यं तस्य स्यादमृतं यथा ॥ १ ॥ स्निग्धैः सदक्षैर्मसैश्च भक्ष्यैश्च सह सेवितम् । भवेदायुःप्रकर्षाय बलायोपचयाय च ॥ २ ॥ काम्यता मनसस्तुष्टिस्तेजो विक्रम एव च । विधिवत्सेव्यमाने तु मद्ये संनिहिता गुणाः ॥ ३ ॥

मद्यस्य प्रथममदमाह—बुद्धिस्मृतिप्रीतिकरः सुखश्च पानाच्चनिद्रारतिवर्धनश्च । संपाठगीतस्वरवर्धनश्च प्रोक्तोऽतिरम्यः प्रथमो मदो हि ॥ १ ॥

अथ मध्यममदमाह—अव्यक्तबुद्धिस्मृतिवाग्विचेष्टः सोऽन्मत्तलीलाकृतिरप्रशान्तः । आलस्यनिद्राभिहतो मुहुश्च मध्येन मत्तः पुरुषो मदेन ॥ १ ॥

अथ तृतीयमदमाह—गच्छेदगम्यां न गुहं च मन्येत्खादेदभक्ष्याणि च नष्टसंज्ञः । व्याच्च गुह्यानि हृदि स्थितानि मदे तृतीये पुरुषोऽस्वतन्त्रः ॥ १ ॥

अथ सुश्रुतोक्तं चतुर्थमदमाह—चतुर्थे तु मदे मूढो भग्नदार्ढ्यं निष्क्रियः । कार्यकार्यविभागाज्ञो मृतादप्यपरो मृतः ॥ १ ॥ को मदं तादृशं गच्छेदुन्मादमिव चापरम् । बहुदोषमिवामूढः कान्तारं स्ववशः कृती ॥ २ ॥ श्लैष्मिकानिलप्रकृतेः स्निग्धमात्रोपसेविनः । पानं न बाधतेऽत्यर्थं विपरीतं तु बाधते ॥ ३ ॥

अथाविधिमद्यपानस्य विकारकारणत्वमाह ।

निर्भुक्तमेकान्तत एव मद्यं निषेव्यमाणं मनुजेन नित्यम् । आपादयेत्कष्टतमान्विकारानापादयेच्चापि शरीरभेदम् ॥ १ ॥

कुद्धेन भीतेन पिपासितेन शोकाभितसेन बुभुक्षितेन । व्यायामभाराध्व-
परिक्षतेन वेगावरोधाभिहतेन वाऽपि ॥ १ ॥ अत्यन्नभक्षावततोदरेण साजी-
र्णमुक्तेन तथाऽबलेन । उष्णाभितसेन च सेव्यमानं करोति मद्यं विविधान्वि-
कारान् ॥ २ ॥

अथ तानेव विकारान्विवृणोति—पानात्ययं परमदं पानाजीर्णमथापि
वा । पानविभ्रममुग्रं च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ १ ॥

तत्र वातिकमदात्ययमाह—हिक्काश्वासशिरःकम्पपार्श्वशूलप्रजागरैः ।
विद्याद्बहुप्रलापस्य वातप्रायं मदात्ययम् ॥ १ ॥

अथ पैत्तिकमाह—तृष्णादाहज्वरस्वेदमोहातीसारविभ्रमैः । विद्याद्धरि-
तवर्णस्य पित्तप्रायं मदात्ययम् ॥ १ ॥ ज्ञेयानि तत्र भिषजा सुविनिश्चितानि
पित्तप्रकोपजनितानि च लक्षणानि ॥ २ ॥

अथ श्लैष्मिकमाह—छर्द्यरोचकहृत्लासतन्द्रास्तैमित्यगौरवैः । विद्याच्छी-
तपरीतस्य कफप्रायं मदात्ययम् ॥ १ ॥

अथ त्रिदोषद्विदोषजमाह—ज्ञेयस्त्रिदोषजश्चापि सर्वलिङ्गैर्मदात्ययः ।
द्विदोषसंभवैर्लिङ्गैर्विज्ञेयस्तु द्विदोषजः ॥ १ ॥

अथ परमदमाह—श्लेष्मोच्छ्रयोऽङ्गगुरुता मधुरास्यता च विण्मूत्रस-
क्तिरथ तन्द्रिरोचकश्च । लिङ्गं परस्य तु मदस्य वदन्ति तज्ज्ञास्तृष्णा रुजा
शिरसि संधिषु चापि भेदः ॥ १ ॥

अथ पानाजीर्णपानविभ्रमावाह—आध्मानमुग्रमथ चोद्विरणं विदाहः पाने
त्वजीर्णमुपगच्छति लक्षणानि । हृद्वात्रभेदकफसंस्त्रवकण्ठधूममूर्छावमिज्वरशि-
रोरुजनप्रदेहाः । द्वेषः सुरान्नविकृतेष्वपि तेषु तेषु तं पानविभ्रममुशन्यस्त्रि-
लेन धीराः ॥ १ ॥

अथासाध्यलक्षणमाह—हीनोत्तरोष्ठमतिशीतममन्ददाहं तैलप्रभास्य-
मतिपानहतं त्यजेत् । जिह्वाष्टदन्तमसितं त्वथवाऽपि नीलं पीते च यस्य न-
यने रुधिरप्रभे च ॥ १ ॥

उपद्रवानाह—हिक्का ज्वरो वमथुवेपथुपार्श्वशूलाः कासभ्रमावपि च
पानहतं त्यजेत् ॥ १ ॥

अथ पानात्ययादीनां चिकित्सा—मद्यं सौवर्चलव्योषयुक्तं किञ्चिज्ज-
लान्वितम् । जीर्णमद्याय दातव्यं वातपानात्ययापहम् ॥ १ ॥ शुक्तं सौवर्चलं
शृङ्गीच्यूषणाद्र्कदीपकैः । मद्यं पीत्वा जयत्युग्रं पवनोत्थं मदात्ययम् ॥ २ ॥

अथ पित्तपानात्ययचिकित्सा—पित्तपानात्यये पेयं वटशृङ्गं हिमा-
म्बुना । सशर्करं पुनर्मद्यं पिबेत्किञ्चिज्जलान्वितम् ॥ १ ॥ क्षुद्रामलकखर्जूरप-
रूपकहिंसं पिबेत् । सिताविमिश्रितं पीतं पानात्ययविकारनुत् ॥ २ ॥

अथ कफपानालयचिकित्सा—पानालये कफोत्थे तु तत्पीत्वोद्धेखनं चरेत् । यथाबलं लङ्घनं च दीपनीयौषधानि च ॥ १ ॥ अथाष्टाङ्गलवणम्—सौवर्चलमजाजी च वृक्षाम्लं साम्लवेतसम् । त्वगेलामरिचार्धांशं शर्कराभागयोजितम् ॥ १ ॥ एतल्लवणमष्टाङ्गमग्निसंदीपनं परम् । मदात्यये कफोत्थे तु दद्यात्स्रोतोविशोधनम् ॥ २ ॥ इति कफपानालयचिकित्सा । सर्वजे सर्वमेवेदं प्रयोक्तव्यं चिकित्सितम् । आभिः क्रियाभिः सिद्धाभिः शान्तिं याति मदात्ययः ॥ १ ॥

अथ सामान्यप्रतीकारः—मधुना हन्त्युपयुक्ता त्रिफलारात्रौ गुडार्द्रकं प्रातः । सप्ताहापथ्यभुजो मदमूर्छाकामलोन्मादान् ॥ १ ॥ दुःस्पर्शेन समुस्तेन मुस्तर्पटकेन वा । जलं मुस्तैः शृतं वाऽपि दद्याद्दोषविपाचनम् ॥ २ ॥ एतदेव च पानीयं सर्वत्रापि मदात्यये । निरत्ययं पीयमानं पिपासाज्वरनाशनम् ॥ ३ ॥ इति वृन्दात् । चव्यं सौवर्चलं हिङ्गु पूरकं विश्वभेषजम् । चूर्णं मद्येन पातव्यं पानालयरुजापहम् ॥ १ ॥ इति चिकित्सासारात् । मन्थः खर्जूरमृद्रीकावृक्षाम्लाम्लिकदाडिमैः । सपरुषैः सामलकैर्युक्तो मद्यविकारनुत् ॥ १ ॥ इति वृन्दात् । मथितं गोदधिसहितं तैलं कर्पूरसंमिश्रम् । आस्वाद्य पीतमाशु क्षपयति पानालयं रोगम् ॥ १ ॥ इति लघुयोगताः । शतावरीरसक्षीरयष्टीकलैः शृतं घृतम् । पुनर्नवाकाथयुतं पानालयमपोहति ॥ १ ॥ इति शतावरीपुनर्नवासर्पिः । कट्फलमुस्तगुडूचीमाषैः क्रमविवर्धितैश्च तत्सर्वम् । घृतमुदितं माषघृतं हन्याद्गन्धं सुराभवं सपदि ॥ १ ॥ इति माषघृतम् । मद्यं पीत्वा यदि वा तत्क्षणमवलिह्य शर्करां सघृताम् । मदयति न जातु मद्यं मनागपि प्रथितवीर्यमपि ॥ १ ॥ इति सामान्यप्रतीकारः । अहानि सप्त चाष्टौ वा नृणां पानालयः स्मृतः । पानं हि मज्जतेऽजीर्णमत ऊर्ध्वं विमार्गगम् । पानाजीर्णविनाशाय कुर्यात्कफहरं विधिम् ॥ १ ॥

अथ पूगमदप्रतीकारः ।

पूगान्मदं प्रशमयत्यचिरेण जन्तोराघ्राय शङ्खरजसः प्रबलस्य गन्धम् । पानेन वा शिशिरपुष्करिणीजलस्य संसेवितैरतिहितैर्व्यजनानिलैश्च ॥ १ ॥ इति वृन्दात् ।

अथ कोद्रवधत्तूरप्रतीकारः ।

कूष्माण्डरसः सगुडः शमयति मदमाशु कोद्रवजम् । धत्तूरजं च दुग्धं सशर्करं पानयोगेन ॥ १ ॥

अथ कज्जलीरसः ।

धात्रीस्वरसनिपीता रसगन्धककज्जली सितासहिता । हरति मदात्ययरो-
गान्गरुत्मानिवोरगान्सहसा ॥ १ ॥

अथ पथ्यम् ।

गोधूमयवमुद्राश्च माषपष्टिकशालयः । तण्डुलीयं पटोलं च दक्षबर्हि-
शामिषम् । शीताम्बु चन्दनं स्नानं सेव्यमेतन्मदात्यये ॥ १ ॥ इति पानात्य-
यचिकित्सा ।

अथ दाहनिदानम् ।

तीक्ष्णमुष्णं पिबन्मद्यं दाहं प्राप्नोति मानवः । दाहः सप्तविधः प्रोक्तो वै-
द्यशास्त्रप्रकल्पितः ॥ १ ॥ अथ मद्यजमाह—त्वचं प्रासः स पानोष्मा पित्त-
रक्ताभिमूर्छितः । दाहं प्रकुस्ते घोरं पित्तवत्तत्र भेषजम् ॥ १ ॥ अथ रक्त-
जमाह—कृत्स्नदेहानुगं रक्तमुद्रिक्तं दहति ध्रुवम् । समुष्यते चोष्यते वा
तान्नाभस्ताम्रलोचनः ॥ लोहगन्धाङ्गवदनो वह्निनेवावकीर्यते ॥ १ ॥ अथ
पित्तजमाह—पित्तज्वरसमः पित्तात्स चाप्यस्य विधिः स्मृतः ॥ १ ॥ अथ
तृष्णानिरोधजमाह—तृष्णानिरोधादब्धातौ क्षीणे तेजः समुद्धतम् । सबा-
ह्याभ्यन्तरं देहं प्रदहेन्मन्दचेतसः । संशुष्कगलताल्वोष्ठौ जिह्वां निष्कृष्य
वेपते ॥ १ ॥ असृजा पूर्णकोष्ठस्य दाहोन्यः स्यात्सुदुःसहः ॥ १ ॥ अथ धा-
तुक्षयजमाह—धातुक्षयोत्थो यो दाहस्तेन मूर्च्छातृषान्वितः । क्षामस्वरः
क्रियाहीनः स सीदेद् भृशपीडितः ॥ १ ॥ अथ क्षतजमाह—क्षतजोनश्वत-
श्चाङ्गं शोचतो वाऽप्यनेकधा । तेनाङ्गं दह्यतेऽत्यर्थं तृष्णामूर्च्छाप्रलापवान्
॥ १ ॥ अथ मर्माभिघातजमाह—मर्माभिघातजोऽप्यस्ति सोऽसाध्यः
सप्तमो मतः । सर्व एव विवर्ज्याः स्युः शीतगात्रेषु देहिषु ॥ १ ॥ इति दा-
हनिदानम् ।

अथ दाहचिकित्सा ।

दाहेऽतिशिशिरं तोयं क्रिया कार्या सुशीतला । सर्वाङ्गे चन्दनालेपश्चन्द्र-
कस्तूरिकायुतः ॥ १ ॥ शीतनीरजलेपो वा धारागारनिजेशनम् । सहजस्नेह-
सोत्साहमुग्धमञ्जुललापिनाम् ॥ २ ॥ बालकानां समाश्लेषस्तापं निर्वापयेज्ज-
वात् । उशीरागारशयनं तालवृन्तानुवर्तनम् ॥ ३ ॥ साहित्यसरसा वाणी
कवीनां तापहृत्रयम् । उत्तुङ्गकुचसंसर्गिवीणानां हरिणीदृशाम् ॥ ४ ॥ गायनं
सुकुमारीणां दाहमुत्सादयेद्द्रुतम् । रसौषधसमुद्भूते तापेऽपि सकले हितम्
॥ ५ ॥ पानीयामलकं द्राक्षानालिकेरेक्षुशर्कराः । सेवनाय हितास्तापे कोमलं

सूत्रलं फलम् ॥ ६ ॥ तण्डुलीयकमूलानि धान्यजीरकजं पयः । तुलसीस्वरसं
टङ्कं तापेऽपि रसजे हितम् ॥ ७ ॥ फलिनीलोभ्रसेव्याम्बु हेमपत्रं कुटनटम् ।
कालीयकरसोपेतं दाहे शस्तं प्रलेपनम् ॥ ८ ॥ ह्रीवैरपञ्चकोशीरचन्दनक्षोद-
वारिणा । संपूर्णामवगाहेत द्रोणीं दाहार्दितो नरः ॥ ९ ॥ प्रातः पर्युषितं
धान्यसलिलं सितया युतम् । अन्तर्दाहं हरेत्पीतं दुःखं दुर्गार्चनं यथा ॥ १० ॥
सशर्करं सेन्दुशैलं शीतमम्भः पिबेन्नरः । नृष्णानिरोधजं दाहं हन्ति तोयमि-
वानलम् ॥ ११ ॥

अथ शार्ङ्गधराद्वान्यकादिहिमः—धान्याकधात्रीवासानां द्राक्षापर्पट-
योर्हिमः । रक्तपित्तं ज्वरं दाहं तृष्णां शोषं च नाशयेत् ॥ १ ॥ पीत्वा वेणु-
त्वचः काथं सक्षौद्रं शिशिरं नरः । रक्तसंपूर्णकोष्ठोत्थं दाहं जयति दुस्तरम् २

अथ शार्ङ्गधरात्सक्तुमन्थः—पाचितैः शीतनीरेण सधृतैर्यवसक्तुभिः ।
नातिसान्द्रद्रवैर्मन्थस्त्वृष्णादाहार्तिपित्तहा ॥ १ ॥

अथ दशसारचूर्णम्—यष्टी धात्रीफलं द्राक्षा एलाचन्दनवालकम् ।
मधुकपुष्पं खर्जूरं दाडिमं पेषयेत्समम् ॥ १ ॥ सर्वतुल्या सिता योज्या पलाशं
भक्षयेत्सदा । दशसारमिदं ख्यातं सर्वपित्तविकारनुत् ॥ २ ॥

अथ मृतसंजीवनी वटिका—यष्टीमधु लवङ्गं च शिलावल्कं तृटि-
स्तथा । सहस्रभावनाः कार्या नवतण्डुलवारिणा ॥ १ ॥ याममात्रं दृढं मर्द्यं
वटिका कोलसंमिता । कृष्णकार्पासनीरेण तृष्णादाहज्वराञ्जयेत् ॥ २ ॥ सू-
क्ष्माभ्रमोग्ररोगं च वान्ति पित्तं च नाशयेत् । मृतसंजीवनी नाम्ना पूज्यपादै-
रुदीरिता ॥ ३ ॥

अथ चन्दनादिचूर्णम्—चन्दनोशीरकुष्ठाब्दधात्रीचोरकमुत्पलम् । म-
धुकं मधुपुष्पं च द्राक्षा खर्जूरकं तथा ॥ १ ॥ चूर्णं कृतं समसितं प्रातः शी-
ताम्बुना पिबेत् । रक्तपित्तं तथा श्वासं पैत्थं गुल्मं समुद्धरेत् ॥ २ ॥ अङ्ग-
दाहं शिरोदाहं शिरोविभ्रममेव च । कामलां च प्रमेहांश्च पित्तज्वरविनाश-
नम् ॥ चन्दनाद्यमिदं चूर्णं पूज्यपादेन भाषितम् ॥ ३ ॥

अथ खर्जूरादिचूर्णम्—खर्जूरामलबीजानि पिप्पली च शिलाजतु ।
पुलामधुकपाषाणचन्दनोर्वास्बीजकम् ॥ १ ॥ धान्याकं शर्करायुक्तं पातव्यं
ज्येष्ठवारिणा । अङ्गदाहं लिङ्गदाहं गुदवङ्क्षणशुकजम् ॥ २ ॥ शर्कराश्मरि-
शूलघ्नं वृष्यं बलकरं परम् । नाशयेन्मूत्ररोगांश्च तथा शुकभवानपि ॥ शर्क-
रासहितं यष्टीकषायं प्रपिबेत्सदा ॥ ३ ॥ अथ वैद्यजीवनात्—अग्नि नित-
म्बिनि खेलनलालसे मधुरवाणि निकाममदालसे । वपुषि दाहवतां विहितं
हितं हिमहिमांशुजलैरनुलेपनम् ॥ १ ॥ सहस्रधौतेन घृतेन दिग्धदेहस्य

दाहः कृशतां विभर्ति । अन्याङ्गनासंगमसादरस्य स्वीयेषु दारेषु यथाऽभिलाषः ॥ २ ॥ तृड्दाहमोहाः प्रशमं प्रयान्ति निम्बप्रवालोत्थितफेनलेपात् । यथा नराणां धनिनां धनानि समागमाद्वारविलासिनीनाम् ॥ ३ ॥

अथ कुशाद्यतैलघृते—कुशादिशालिपर्णीयजीवकर्पभसाधितम् । तैलं घृतं वा दाहघ्नं वातपित्तविनाशनम् ॥ १ ॥ शाखाश्रयां यथान्यायं रोहिणीं व्यधयेच्छिराम् । रक्तजातस्ततो दाहः प्रशाम्यति न संशयः ॥ २ ॥ धातुक्षयोत्थदाहं तु जयेदिष्टार्थसाधनैः । क्षीरमांसरसाहारैर्विधिनोक्तेन तत्र च ॥ ३ ॥ पित्तज्वरहरः सर्वः पित्तदाहे विधिर्मतः । औदुम्बरस्य निर्यासः सितया दाहनाशनः । छिन्नासारः सितायुक्तः पित्तज्वरनिपूदनः ॥ ४ ॥

अथ रसाः ।

रसरत्नप्रदीपाद्रसादिगुटिका—रसबलिधनसारचन्दनानां सनलदसेव्यपयोदजीवनानाम् । अपहरति गुटी मुखस्थितेयं सकलसमुत्थितदाहमश्रमेण ॥ १ ॥ अथ रसमञ्जर्याश्चन्द्रकलारसः—गगनदरदयुक्तं शुद्धसूतं च गन्धं प्रहरमथसुपिष्टं वल्लयुग्मं नरोऽद्यात् । ज्वरहरगजसिंहः शृङ्गबेरोदकेन प्रथमजनितदाहे तक्रभक्तं च भोज्यम् ॥ १ ॥ मुस्तादाडिमदूर्वोत्थैः केतकीस्तनजद्रवैः । सहदेव्याः कुमार्याश्च पर्पटस्यापि वारिणा ॥ २ ॥ रामशीतलिकातोयैः शतावर्या रसेन च । भावयित्वा प्रयत्नेन दिवसे दिवसे पृथक् ॥ ३ ॥ तिक्तागुडचिकासत्त्वं पर्पटोशीरमाधवी । श्रीगन्धं सारिवा चैषां समानं सूक्ष्मचूर्णितम् ॥ ४ ॥ द्राक्षाफलकषायेण सप्तधा परिभावयेत् । ततो धान्याश्रयं कृत्वा वट्यः कार्याश्चणोपमाः ॥ ५ ॥ अयं चन्द्रकलानाम्ना रसेन्द्रः परिकीर्तितः । सर्वपित्तगदध्वंसी वातपित्तगदापहः ॥ ६ ॥ अन्तर्बाह्यमहादाहविध्वंसनमहाघनः । ग्रीष्मकाले शरत्काले विशेषेण प्रशस्यते ॥ ७ ॥ कुरुते नाग्निमान्द्यं च महातापज्वरं हरेत् । अममूर्छाहरश्चाऽऽशु स्त्रीणां रक्तमहास्रवम् ॥ ८ ॥ ऊर्ध्वाधो रक्तपित्तं च रक्तवान्तिं विशेषतः । मूत्रकृद्वाणि सर्वाणि नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ९ ॥ इति रसाः ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

शालयः षष्टिका मुद्रा मसूराश्चणका यवाः । धन्वमांसरसा लाजा मण्डो वै सक्तवः सिता ॥ १ ॥ शतधौतघृतं दुग्धं नवनीतं पयोभवम् । कूष्माण्डं कर्कटी मोचं पनसं स्वादुदाडिमम् ॥ २ ॥ पटोलं खर्जुरं तुम्बी बिम्बी द्राक्षा कसेरुकम् । इति दाहवतां नृणां पथ्यवर्ग उदाहृतः ॥ ३ ॥ व्यायाममातपं तक्रं ताम्बूलं मधु रामठम् । व्यवायं कटुतिक्तोष्णं दाहवान्परिवर्जयेत् ॥ ४ ॥

इति दाहचिकित्सा ।

अथोन्मादनिदानं ।

मदयन्त्युद्धता दोषा यस्मादुन्मार्गमाश्रिताः । मानसोऽयमतो व्याधिरु-
न्माद इति कीर्तितः ॥ १ ॥ एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्छितैः । मानसेन
च दुःखेन स पञ्चविध उच्यते ॥ २ ॥ विषाद्भवति षष्ठश्च यथास्वं तत्र भेष-
जम् । स चाप्रवृद्धस्तरुणो मंदसंज्ञां बिभर्ति च ॥ ३ ॥ भयोद्वेगौ तमः शोषो
गात्राणामपकर्षणम् । मृत्यूत्माहोऽरुचिश्चान्ने स्वप्नेष्वम्बुषु मज्जनम् ॥ ४ ॥
वायुनोन्मादनं चैव भ्रमक्लमगतस्य च । यस्य स्यादचिरेणैवमुन्मादं सोऽपि
गच्छति ॥ ५ ॥ कारणसंप्राप्ती—विरुद्धदुष्टाशुचिभोजनानि, प्रधर्षणं देवगुरु-
द्विजानाम् । उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वो मनोभिघातो विषमाश्च चेष्टाः ॥ ६ ॥ तैर-
ल्पसत्त्वस्य मलाः प्रदुष्टा बुद्धेर्निवासं हृदयं प्रदूष्य । स्रोतांस्यधिष्ठाय मनोव-
हानि प्रमोहयन्त्याशु नरस्य चेतः ॥ ७ ॥

अथ साधारणोन्मादलक्षणम् ।

धीविभ्रमः सत्त्वपरिप्लवश्च पर्याकुला दृष्टिरधीरता च । अवद्ववाक्यं हृदयं
च शून्यं सामान्यमुन्मादगदस्य लिङ्गम् ॥ १ ॥

अथ वातोन्मादलक्षणम्—रूक्षाल्पशीतान्नविरेकधातुक्षयोपवासैरनिलः
प्रवृद्धः । चिन्तादिदुष्टं हृदयं प्रदूष्य बुद्धिं स्मृतिं चाप्युपहन्ति शीघ्रम् ॥ १ ॥
अस्थानहाससितनृत्यगीतवाद्याङ्गविक्षेपणरोदनानि । पारुष्यकाश्यारुणवर्ण-
ता च जीर्णं बलं चानिलजस्य रूपम् ॥ २ ॥

अथ पित्तोन्मादलक्षणम्—अजीर्णकटुम्लविदाह्यशीतैर्भोज्यैश्चित्तं पित्त-
मुदीर्णवेगम् । उन्मादमत्युग्रमनात्मकस्य हृदि स्थितं पूर्ववदाशु कुर्यात् ॥ १ ॥
अमर्षं संस्मभविनम्रभावाः संतर्जनाभिद्रवणौष्ण्यरोपाः । प्रच्छाय शीतान्नजला-
भिलाषाः पीता च भा पित्तकृतस्य लिङ्गम् ॥ २ ॥

अथ कफोन्मादलक्षणम्—संपूरणैर्मन्दविचेष्टितस्य सोष्मा कफो म-
र्मणि संप्रवृद्धः । बुद्धिं स्मृतिं चाप्युपहन्ति चित्तं प्रमोहयन्संजनयेद्विकारम्
॥ १ ॥ वाक्चेष्टितं मन्दमरोचकश्च नारीविविक्तप्रियता च निद्रा । छर्दिश्च
लाला च बलं च भुक्ते नखादिशौक्ल्यं च कफात्मके स्यात् ॥ २ ॥

अथ सांनिपातिकमाह—यः संनिपातप्रभवोऽतिघोरः सर्वैः समसैरपि
हेतुभिः स्यात् । सर्वाणि रूपाणि बिभर्ति तादृग्विरुद्धभैषज्यविधिर्विवर्ज्यः ॥ १ ॥

अथ मनोदुःखजमाह—चैरैर्नरेन्द्रपुरुषैररिभिस्तथाऽन्यैर्विन्नासितस्य ध-
नबान्धवसंक्षयाद्वा । गाढं क्षते मनसि च प्रियया रिरंसोर्जायेत चोत्कटतरो
मनसो विकारः ॥ चित्रं ब्रवीति च मनोनुगतं विसंज्ञो गायत्यथो हसति
रोदिति चातिमूढः ॥ १ ॥

अथ विषजमाह—रक्तेक्षणो हतबलेन्द्रियभाः सुदीनः श्यावाननो विषकृतेन भवेद्विसंज्ञः ॥ १ ॥

अथासाध्यलक्षणमाह—अवाङ्मुखश्चोन्मुखो वा क्षीणमांसबलो नरः । जागरूको ह्यसंदेहमुन्मादेन विनश्यति ॥ १ ॥ इत्युन्मादनिदानम् ॥

अथोन्मादचिकित्सा ।

आश्वासयेत्सुहृद्वाक्यैर्व्यादिष्टविनाशनम् । दर्शयेदद्भुतं कर्म ताडयेच्च कशादिभिः ॥ १ ॥ सुबद्धं विजने गेहे त्रासयेदहिभिर्धिया । बद्धं सर्पपतैलाक्तं न्यसेदुत्तानमातपे ॥ २ ॥ कपिकच्छ्राऽथ वा तप्तलोहतैलजलैः स्पृशेत् । वस्त्राभिधाने कूपे वा सततं च निवेशयेत् ॥ ३ ॥ सततं धूपयेच्चैनं गोमांसैश्च सपूतिभिः । कामशोकभयक्रोधहर्षेर्ष्यालोभसंभवान् ॥ ४ ॥ परस्परप्रतिद्वन्द्वैरेभिरेव शमं नयेत् । जलाग्निदुग्धशैलेभ्यो विपमेभ्यश्च तं सदा ॥ ५ ॥ रक्षेदुन्मादिनं चैव सद्यः प्राणहरं हि तत् । यच्चोपदेक्ष्यते किञ्चिदप्सारे चिकित्सितम् ॥ ६ ॥ उन्मादे तच्च कर्तव्यं सामान्यादोपदूष्ययोः । स्नेहादिना क्रमेणाऽऽदाबुन्मादिनमुपाचरेत् ॥ ७ ॥ बस्तिभिः स्नेहकल्कैश्च निरुहैः स्वेदनाञ्जनैः । वातिके स्नेहपानं प्राग्निरेकः पित्तसंभवे ॥ कफजे वमनं कार्यं परो बस्त्यादिकः क्रमः ॥ ८ ॥

अथ शार्ङ्गधराद्वाह्यादिस्वरसः—ब्राह्मीकूष्माण्डषडग्रन्थाशङ्खिनीस्वरसाः पृथक् । मधुकुष्ठयुताः पीताः सर्वोन्मादापहारिणः ॥ १ ॥

अथ ब्राह्म्यादिकल्को वीरसिंहावलोकतः—ब्राह्मीरसः स्यात्सवचः सकुष्ठः सशङ्खपुष्पः ससुवर्णचूर्णः । उन्मादिनामुन्मदमानसानामपस्मृतेर्भूतहतात्मनां हि ॥ नस्येऽञ्जने पानविधौ च शस्तो ब्राह्मीरसोऽयं सवचादिचूर्णः ॥ १ ॥

अथ त्र्यूषणादिवर्तिः—त्र्यूषणं हिङ्गु लवणं वचा कटुकरोहिणी । शिरीषनक्तमालानां बीजं श्वेताश्च सर्षपाः ॥ १ ॥ गोमूत्रपिष्टैरेतैस्तु वर्तिर्नेत्राञ्जने हिता । चातुर्थिकमपसारमुन्मादं च नियच्छति ॥ २ ॥

अथ शिरीषादिः—शिरीषं लघुनं हिङ्गु नागरं मधुकं वचा । कुष्ठं च बस्तमूत्रेण पिष्टं स्यान्नावनाञ्जनम् ॥ १ ॥ तद्वद्योषं हरिद्रे द्वे मज्जिष्ठा गौरसर्षपाः । शिरीषबीजमुन्मादग्रहापसारनाशनम् ॥ २ ॥ इति वृन्दात् ॥

अथ चिकित्सासारात्सिद्धार्थकादियोगः—सिद्धार्थकवचाहिङ्गु करञ्जो देवदारु च । मज्जिष्ठा त्रिफला श्वेता कटभीत्वक्कुटुत्रयम् ॥ १ ॥ समांशानि प्रियङ्गुश्च शिरीषो रजनीद्वयम् । बस्तमूत्रेण पिष्टोऽयमगदः पानमञ्जनम् ॥ २ ॥ नस्यमालेपनं चैव स्नानमुद्वर्तनं तथा । अपसारविषोन्मादकृत्या-

लक्ष्मीज्वरापहः ॥ ३ ॥ भूतेभ्यश्च भयं हन्ति राजद्वारे च शस्यते । सर्पिरेतेन सिद्धं वा सगोमूत्रं तदर्थकृत् ॥ ४ ॥

अथ योगतरङ्गिण्याः सितकुसुमबलादियोगः—सितकुसुमबलायाः सार्धकर्षत्रयं यः शिखरिचरणकेन क्षीरपाकेण पक्वम् । पिबति तदनु नित्यं प्रातरुत्थाय शीतं जयति झटिति घोरं व्याधिमुन्मादसंज्ञम् ॥ १ ॥

अज योगतरङ्गिण्या दशमूलादियोगः—दशमूलाम्बु सघृतं युक्तं मांसरसेन वा । ससिद्धार्थकचूर्णं वा केवलं वा नवं घृतम् ॥ १ ॥ उन्मादशान्तये पेयो रसो वा कालशाकजः । प्रयोज्यं सार्षपं तैलं नस्याभ्यञ्जनयोः सदा ॥ २ ॥

अथ घृतानि ।

हिङ्गवादिघृतं वृन्दात्—हिङ्गुसौवर्चलव्योषैर्द्विपलांशैर्घृताढकम् । चतुर्गुणे गवां मूत्रे सिद्धमुन्मादनाशनम् ॥ १ ॥ अथ कल्याणघृतम्—योगतरङ्गिण्याः—विशाला त्रिफला कौन्ती देवदर्वेलवालुकम् । स्थिराऽनन्ता हरिद्रे द्वे सारिवे द्वे प्रियङ्गुका ॥ १ ॥ नीलोत्पलैलामञ्जिष्ठादन्तीदाडिमकेसरम् । विडङ्गं पृश्निपर्णी च कुष्ठं चन्दनपद्मके ॥ २ ॥ तालीसपत्रं बृहती मालत्याः कुसुमं नवम् । एतैः कर्षसमैः कल्कैर्विशत्यष्टाभिरेव च ॥ ३ ॥ चतुर्गुणं जलं दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् । अपस्मारे ज्वरे शोषे कासे मन्दानले क्षये ॥ ४ ॥ वातरक्ते प्रतिश्याये तृतीयकचतुर्थके । वाताशौमूत्रकृच्छ्रेषु विसर्पोपहतेषु च ॥ ५ ॥ कण्डूपाण्ड्वामयोन्मादविषमेहगदेषु च । भूतोपहतचित्तानां दंतादानामचेतसाम् ॥ ६ ॥ शस्तं स्त्रीणां च वन्ध्यानां धन्यमायुर्बलप्रदम् । अलक्ष्मीपापरक्षोभं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ कल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं पुंस्त्वग्रदं नृणाम् ॥ ७ ॥ चैतसघृतं—पञ्चमूली च काश्मर्यो रास्त्रैरण्डस्त्रिवृद्धला । मूर्वा शतावरी चेति काथैर्द्विपलिकैः शुभैः ॥ ८ ॥ कल्याणकस्य चाङ्गेन चैतसं नाम तद्घृतम् । सर्वचेतोविकाराणां शमनं परमं मतम् ॥ ९ ॥ कार्यः कषायो द्विगुणः काथान्मस्तु कलागुणम् । कल्याणकोक्तकल्केन पादांशेन घृतं पचेत् ॥ १० ॥ इति योगतरङ्गिण्यां चैतसघृतम् ॥

अथ रसरत्नप्रदीपादुन्मादगजकेसरी रसः—सूतं गन्धं शिलातुल्यं स्वर्णबीजं विचूर्ण्य च । भावयेदुग्रगन्धायाः काथे मुनिदिनैः पृथक् ॥ १ ॥ रास्त्राकाथेन ससैव भावयित्वा विचूर्णयेत् । रसः संजायते नूनमुन्मादगजकेसरी ॥ २ ॥ अस्य माषः ससर्पिष्को लीढो हन्ति हठाद्गदम् । उन्मादाख्यमपस्मारं भूतोन्मादमपि ज्वरम् ॥ ३ ॥ इत्युन्मादगजकेसरी रसः । प्रसादश्चेन्द्रियार्थानां बुद्ध्यात्ममनसामपि । धातूनां प्रकृतिस्थत्वं विगतोन्मादलक्षणम् ॥ १ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

गोधूममुद्रारुणशालयश्च धारोष्णदुग्धं शतधौतसर्पिः । घृतं नवीनं च पुरा-
तनं च कूर्मामिषं धन्वरसा रसाला ॥ १ ॥ पुराणकूष्माण्डफलं पटोलं ब्रा-
ह्मीदलं वास्तुकतण्डुलीयम् । द्राक्षा कपित्थं पनसं च वैद्यैर्विधेयमुन्मादग-
देषु पथ्यम् ॥ २ ॥ मद्यं विरुद्धाशनमुष्णभोजनं निद्राक्षुधातृद्रुकृतवेगधार-
णम् । तिक्तानि तीक्ष्णानि भिषक्समादिशेदुन्मादरोगापहतेषु गर्हितम् ॥ ३ ॥
इत्युन्मादचिकित्सा ।

अथ भूतोन्मादनिदानमाह—

अमर्त्यवाग्विक्रमवीर्यचेष्टो ज्ञानादिविज्ञानबलादिभिर्यः । उन्मादकालो
नियतश्च यस्य भूतोत्थमुन्मादमुदाहरन्ति ॥ १ ॥

अथ देवजुष्टमाह—संतुष्टः शुचिरतिदिव्यमाल्यगन्धो निस्तन्द्रोत्ववि-
तथसंस्कृतप्रभाषी । तेजस्वी स्थिरनयनो वरप्रदाता ब्रह्मण्यो भवति नरः स
देवजुष्टः ॥ १ ॥

अथासुरजुष्टमाह—संस्वेदी द्विजगुरुदेवदोषवक्ता जिह्वाक्षो विगतभयो
विमार्गदृष्टिः । संतुष्टो न भवति चान्नपानजातैर्दुष्टात्मा भवति स देवश-
त्रुजुष्टः ॥ १ ॥

अथ गन्धर्वजुष्टमाह—हृष्टात्मा पुलिनवनान्तरोपसेवी स्वाचारः प्रिय-
परिगीतगन्धमालयः । नृत्यन्वै प्रहसति चारु चाल्पशब्दं गन्धर्वग्रहपरिपी-
डितो मनुष्यः ॥ १ ॥

अथ यक्षग्रहजुष्टमाह—ताम्राक्षः प्रियतनुरक्तवस्त्रधारी गम्भीरो द्रुत-
गतिरल्पवाक् सहिष्णुः । तेजस्वी वदति च किं ददामि कस्यै यो यक्षग्रहप-
रिपीडितो मनुष्यः ॥ १ ॥

अथ पितृग्रहजुष्टमाह—प्रेतानां स दिशति संस्तरेषु पिण्डान्शान्तात्मा
जलमपि चापसव्यवस्त्रः । मांसेप्सुस्त्रिलगुडपायसाभिकामस्तङ्गक्तो भवति
पितृग्रहाभिजुष्टः ॥ १ ॥

अथ सर्पग्रहजुष्टमाह—यस्तूर्व्यां प्रसरति सर्पवत्कदाचित्पृक्किण्यौ वि-
लिहति जिह्वया तथैव । क्रोधाळुर्गुडमधुदुग्धपायसेप्सुर्विज्ञेयो भवति भुजं-
गमेन जुष्टः ॥ १ ॥

अथ राक्षसजुष्टमाह—मांसासृग्विविधसुराविकारलिप्सुर्निर्लज्जो भृश-
मतिनिष्ठुरोऽतिशूरः । क्रोधान्धो विपुलबलो निशाविहारी शौचद्विद स भवति
राक्षसाभिजुष्टः ॥ १ ॥

अथ पिशाचजुष्टमाह—उद्ध्वस्तः कृशपरुषश्चिरप्रलापी दुर्गन्धो भृशम-

शुचिस्तथाऽतिलोलः । बह्वाशी विजनवनान्तरोपसेवी व्याचेष्टन्भ्रमति रुद-
न्पिशाचजुष्टः ॥ १ ॥

अथ तस्यासाध्यलक्षणमाह—स्थूलाक्षो द्रुतमदनः स फेनलेही नि-
द्रालुः पतति च कम्पते च योऽति । यश्चाद्रिद्विरदनगादिविच्युतः स्यात्सोऽ-
साध्यो भवति तथा त्रयोदशेऽब्दे ॥ १ ॥

अथ ग्रहाणां ग्रहणकालमाह—देवग्रहाः पौर्णमास्यामसुराः संध्य-
योरपि । गन्धर्वाः प्रायशोऽष्टम्यां यक्षाश्च प्रतिपद्यथ ॥ १ ॥ पितरः कृष्णपक्षे
स्युः पञ्चम्यामपि चोरगाः । रक्षांसि रात्रौ पैशाचाश्चतुर्दश्यां विशन्ति हि
॥ २ ॥ दर्पणादौ यथा छाया शीतोष्णं प्राणिनो यथा । स्वमणिं भास्करार्चिश्च
यथा देहं च देहधृक् ॥ ३ ॥ प्रविशन्ति न दृश्यन्ते ग्रहास्तद्वच्छरीरिणाम् ।
प्रविश्याऽऽशु शरीरे हि पीडां कुर्वन्ति दुःसहाम् ॥ ४ ॥ तपांसि तीव्राणि
तथैव दानं व्रतानि धर्मा नियमाश्च सत्यम् । गुणास्तथाऽष्टावपि तेषु नित्यं
व्यस्ताः समस्ताश्च तथाप्रभावः ॥ ५ ॥ अष्टौ ग्रहान्तत्परिचारकाश्च ते तुल्य-
सत्त्वेषु वसन्ति दुष्टाः । त्रयोदशाब्दे च भवन्त्यसाध्या यथास्वभावं परिवर्त-
यन्ति ॥ ६ ॥ इति भूतोन्मादनिदानम् ॥

अथ तच्चिकित्सा ।

बुद्ध्वा दोषं वयः सात्स्यं देशं कालं बलाबलम् । चिकित्सितमिदं कुर्या-
दुन्मादे दोषभूतजे ॥ १ ॥ देवर्षिपितृगन्धर्वैरुन्मत्तेषु च बुद्धिमान् । त्यजे-
न्नस्याज्जनादीनि तीक्ष्णानि क्रूरकर्म च । सर्पिष्पानादिगायत्रीहोममन्त्रादिरि-
ष्यते ॥ २ ॥ पूजाबल्युपहारशान्तिविषयो होमेष्टिमन्त्रक्रिया दानं स्वस्त्ययनं
व्रतादिनियमः सत्यं जपो मङ्गलम् । प्रायश्चित्तविधानमज्जलिरथो रत्नौषधी-
धारणं भूतानामधिपस्य विष्टपपतेगौरीपतेरर्चनम् । ये च स्युर्भुवि गुह्यकाश्च
‘प्रमथाम्तेषां समाराधनं देवब्राह्मणपूजनं च शमयेदुन्मादमागन्तुकम् ॥ ३ ॥
शिरीषनक्तमालानां बीजानि मधुसर्पिणा । भक्ष्याश्च सर्वे सर्वेषां सामान्यो
विधिरुच्यते ॥ ४ ॥ ऋक्षजम्बूकरोमाणि शल्लकी लशुनं तथा । हिङ्गु मूत्रं च
बस्तस्य धूपस्य प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥ धूपेन शाम्यति क्षिप्रं बलवानपि यो
ग्रहः । शिरीषपुष्पं लशुनं जुण्ठी सिद्धार्थकं वचा ॥ ६ ॥ मज्जिष्ठा रजनी कृष्णा
बस्तमूत्रेण पेषयेत् । वटी छायाविशुष्का स्यात्सा हिता नावनाज्जने ॥ ७ ॥
इति वृन्दात् । अथ माहेश्वरधूपो योगशतात्—कार्पासास्थिमयूरपिच्छ-
बृहतीनिर्माल्यपिण्डीतकत्वज्जांसीवृषदंशविण्णखवचाकेशाहिनिर्मोचनैः । ना-
गेन्द्रद्विजशृङ्गहिङ्गुमरिचैस्तुल्यैस्तु धूपः कृतः स्कन्दोन्मादपिशाचराक्षससुरा-
वेशज्वरघ्नः स्मृतः ॥ १ ॥

अथ महापैशाचघृतं योगतरङ्गिण्याः—जटिला पूतना केशी मर्कटी चारटी वचा । त्रायमाणा जया वीरा चोरकं कटुरोहिणी ॥ १ ॥ कायस्था शूकरी छत्रा सातिच्छत्रा पलंकपा । महापुरुषदन्ता च वयस्था नाकुलीद्वयम् ॥ २ ॥ कटंभरा वृश्चिकाली स्थिरा चैतैर्घृतं पचेत् । तत्तु चातुर्थिकोन्मादग्र-
हापस्सारनाशनम् ॥ ३ ॥ महापैशाचकं नाम घृतमेतद्यथाऽमृतम् । बुद्धिमे-
धास्मृतिकरं बालानां चाङ्गवर्धनम् ॥ ४ ॥ इति महापैशाचघृतम् । कल्या-
णकं प्रयुञ्जीत महद्वा चैतसं घृतम् । तैलं नारायणं वाऽपि महानारायणं
तथा ॥ १ ॥ अथ रसरत्नप्रदीपाद्भूतभैरवरसः—रसः सतालः सशिलः
सलोहः स्रोतोञ्जनं सार्कमिदं हि गन्धम् । पिष्टं नृमूत्रेण समं समन्ताद्देयो द्विभा-
गोऽथ बलिः पचेच्च ॥ १ ॥ लौहे क्षणं हन्ति घृतेन माषोऽपस्सारमप्युन्मद-
मानसत्वम् । पिबेदनुच्यूषणहिङ्गुयुक्तं सर्पिर्नृमूत्रं रुचकेन सार्धम् ॥ २ ॥
भूतोन्मादेषु सर्वेषु रसोऽयं भूतभैरवः । स्वर्णजैः पञ्चभिर्बीजैर्देयः सर्पिर्वि-
मिश्रितः ॥ ३ ॥ इति भूतभैरवः ।

इति भूतोन्मादचिकित्सा ।

अथापस्सारनिदानमाह—

चिन्ताशोकादिभिर्दोषाः कुद्धा हृत्स्रोतसि स्थिताः । कृत्वा स्मृतेरपध्वंस-
मपस्सारं प्रकुर्वते ॥ १ ॥

अथ सामान्येन तल्लक्षणमाह—तमःप्रवेशः संरम्भो दोषोद्रेकहत-
स्मृतिः । अपस्सार इति ज्ञेयो गदो घोरश्चतुर्विधः ॥ वातपित्तकफैः सर्वैर्दोषैः
स स्याच्चतुर्विधः ॥ १ ॥

अथ तस्य पूर्वरूपमाह—हृत्कम्पः शून्यता स्वेदो ध्यानं मूर्छा प्रमू-
ढता । निद्रानाशश्च तस्मिंस्तु भविष्यति भवन्त्यथ ॥ १ ॥

अथ वातिकमाह—कम्पते प्रदशेदन्तान्फेनोद्गामी श्वसित्यपि । परुषारुण-
कृष्णानि पश्येद्रूपाणि चानिलात् ॥ १ ॥

अथ पैत्तिकमाह—पीतफेनाङ्गवक्राक्षः पीतासृग्पददर्शनः । स तृष्णोष्णा-
निलव्यासलोकदर्शी च पैत्तिकः ॥ १ ॥

अथ श्लैष्मिकमाह—शुक्लफेनाङ्गवक्राक्षः शीतो हृष्टाङ्गजो गुरुः । पश्ये-
द्रूपाणि शुक्लानि श्लैष्मिको मुच्यते चिरात् ॥ १ ॥

अथ सांनिपातिकमाह—सर्वैरेभिः समस्तैश्च लिङ्गैर्ज्ञेयस्त्रिदोषजः । अ-
पस्सारः स चासाध्यो यः क्षीणस्यानवश्च यः ॥ १ ॥

अथासाध्यमाह—प्रस्फुरन्तं च बहुशः क्षीणं प्रचलितश्रुवम् । नेत्राभ्यां
च विकुर्वाणमपसारो विनाशयेत् ॥ १ ॥

अथ कालनियममाह—पक्षाद्वाऽपि दशाहाद्वा मासाद्वा कुपिता मलाः ।
अपस्माराय कुर्वन्ति वेगं किञ्चिदथांतरम् ॥ १ ॥ देवे वर्षत्यपि यथा भूमौ
बीजानि कानिचित् । शरदि प्रतिरोहन्ति तथा व्याधिसमुच्छ्रयः ॥ २ ॥

इत्यपस्मारनिदानम् ।

अथापस्मारचिकित्सा ।

पूर्वं युद्ध्यादपस्मारे छर्दनादीनि बुद्धिमान् । वातिकं बस्तिभिः प्रायैः पैत्ति-
कं च विरेचनैः ॥ कफजं वमनप्रायैरपस्मारमुपाचरेत् ॥ १ ॥

अथ करज्जादियोगः—करज्जादरुसिद्धार्थकटभीरामठं वचा । समङ्गा त्रि-
फला व्योषं प्रियङ्गुश्च समांशकः ॥ १ ॥ बस्तमूत्रेण संपिप्य नस्यपानाञ्जना-
दिषु । योज्यो योगोऽयमुन्मादेऽपस्मारे भूतरोगिषु ॥ २ ॥

अथ योगतरंगिण्या निर्गुण्ड्यादिनावनम्—निर्गुण्डीभववन्दाकना-
वनस्योपयोगतः । उपैति सहसा नाशमपस्मारो न संशयः ॥ १ ॥

अथ यष्ट्याह्वादिनावनाञ्जने चिकित्सासारात्—यष्टीहिङ्गुवचावज्रीशि-
रीषलशुनामयैः । साजमूत्रैरपस्मारे सोन्मादे नावनाञ्जने ॥ १ ॥

अथ चिकित्सासारादञ्जनधूपने—पुण्योद्धृतं शुनः पित्तमपस्मारघ्न-
मञ्जनम् । तदेव सर्पिषा युक्तं धूपनं परमं हितम् ॥ १ ॥ अथ मनोह्वाद्य-
ञ्जनम्—मनोह्वा ताक्ष्यकं चैव शकृत्पारावतस्य च । अञ्जनं हन्त्यपस्मारमु-
न्मादं च विशेषतः ॥ १ ॥ अथ श्वशृगालादि वृन्दात्—श्वशृगालवि-
डालानां कपिलानां गवामपि । पित्तानि नस्यतो हन्युरपस्मारं पृथक्पृथक्
॥ १ ॥ अथ त्रपुसीनस्यम्—अरण्यत्रपुसीचूर्णं नस्येनापस्मृतिं जयेत् ।

अथ मधुवचायोगः—यः खादेत्क्षीरभक्ताशी माक्षिकेण वचारजः ।
अपस्मारं महाघोरं सुचिरोत्थं जयेद्धुवम् ॥ १ ॥

अथ मुस्तकमूलयोगः—उत्तरदिगतमुस्तकमूलं बुद्ध्या समुद्धृतं
पुष्ये । पीतं पयसा हन्यादपस्मृतिं गोः सवर्णवत्सायाः ॥ १ ॥

अथ कूष्माण्डादिः—कूष्माण्डकगिरोत्थेन रसेन परिपेषितम् । अप-
स्मारविनाशाय यष्ट्याह्वं स पिबेत्पयहम् ॥ १ ॥

अथ घृतानि ।

अथ चिकित्सासाराद्रसायनभैरवः—वचामृतव्योषमधूकसाररुद्रा-
क्षसिन्धूज्ववबार्हतानि । फलं समुद्रस्य रसोनकलकं ध्मातं हि नासापुटमध्य-
देशे ॥ १ ॥ अपस्मृतिश्लेष्ममरुच्छिरोरुक्प्रलापतन्द्राभ्रमजाड्यमोहान् । स-
संनिपातं श्रुतिकाक्षिभङ्गान्सपीनसं हन्ति हलीमकं च ॥ २ ॥ रसायनं भैर-
वनामधेयं ज्ञातं विचारात्कविविठलेन ॥ ३ ॥ अथ ब्राह्मीघृतम्—ब्राह्मी-

रसे वचाकुष्ठशङ्खपुष्पीभिरेव च । पक्वं पुरातनं सर्पिरपस्मारहरं ध्रुवम् ॥ १ ॥
 अथ सैन्धवाद्यं घृतम्—घृतं सैन्धवहिङ्गुभ्यां कणाभिस्तच्चतुर्गुणैः ।
 मूत्रैः सिद्धमपस्मारहृद्ग्रहग्रामनाशनम् ॥ १ ॥ अथ स्वल्पपञ्चगव्य-
 घृतम्—गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैः समं घृतम् । सिद्धं चातुर्थिकोन्मा-
 दग्रहापत्पारनाशनम् ॥ १ ॥ अथ वृन्दात्कूष्माण्डादिघृतम्—कूष्मा-
 ण्डकरसे सर्पिरष्टादशगुणे पचेत् । यष्ट्याह्वकल्के तत्सिद्धमपस्मारहरं प-
 रम् ॥ १ ॥

अथ तैलचूर्णानि ।

अथ योगतरङ्गिण्यां कटभ्यादितैलम्—कटभीनिम्बकटुङ्गमधुशिमु-
 त्वचारसे । सिद्धं मूत्रयुतं तैलं लेपाद्वन्यादपस्मृतिम् ॥ १ ॥ अथ वृन्दा-
 त्सार्पणं तैलम्—अभ्यङ्गे सार्पणं तैलं बस्तमूत्रे चतुर्गुणे । सिद्धं स्याद्गोश-
 कृन्मूत्रे स्नानोद्वर्तनमेव च ॥ १ ॥ अथ धूपनम्—नकुलोलूकम-
 जारगृध्रकीटाहिकाकजैः । तुण्डैः पक्षैः पुरीषैश्च धूपनं कारयेद्विषक् ॥ १ ॥
 दुश्चिकित्सो ह्यपस्मारश्चिरकारी महागदः । तस्माद्रसायनैरेनं प्रायशः समु-
 पाचरेत् ॥ २ ॥ हृत्कम्पोऽक्षिरुजा यस्य स्वेदो हस्तादिशीतता । दशमूली-
 जलं तस्य कल्याणाख्यं च योजयेत् ॥ ३ ॥ अथ कल्याणकं चूर्णम्—
 पञ्चकोलं समरिचं त्रिफला विडसैन्धवम् । कृष्णाविडङ्गपूतीकयवानीधान्य-
 जीरकम् ॥ १ ॥ पीतमुष्णाम्बुना चूर्णं वातश्लेष्मामयापहम् । अपस्मारे तथो-
 न्मादे दुर्नामग्रहणीगदे । एतत्कल्याणकं चूर्णं नष्टस्याग्नेश्च दीपनम् ॥ २ ॥
 इति कल्याणकं चूर्णम् ।

अथ जलमृतलक्षणम्—विष्टब्धपायुमूर्धाक्षं शीतपादकरोदरम् । वि-
 द्याजलमृतं जन्तुं शूनपन्नाभिमेहनम् ॥ १ ॥

अथ रसरत्नप्रदीपात्स्मृतिसागररसः—रसगन्धकतालानां सशिला-
 ताम्रभस्मनाम् । शुद्धानां मूर्छितानां च चूर्णं भाव्यं वचाशृतैः ॥ १ ॥ एक-
 विंशतिधा पश्चाद्वाह्नीवारा तथैव च । कटभीबीजतैलेन भावयेदेकवारकम्
 ॥ २ ॥ स्मृतिसागरनामाऽयं रसोऽपस्मारनाशनः । सर्पिषा माघमात्रोऽयं
 भुक्तो हन्यादपस्मृतिम् ॥ ३ ॥ इति स्मृतिसागररसः । उन्मादोक्तो विधिः
 सर्वो ह्यपस्मारे प्रयुज्यते ॥ ४ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

लोहिताः शालयो मुद्रा गोधूमाः प्रततं हविः । कूर्मामिषं धन्वरसा दु-
 ग्धं ब्राह्मीदलं वचा ॥ १ ॥ पटोलं वृद्धकूष्माण्डं वास्तुकं स्वादुदाडिमम् ।
 साभाञ्जनं पयः पेटी द्राक्षा धात्री परुषकम् । अपस्मारगदे चूर्णां पथ्यमेत-

तुदीरितम् ॥ २ ॥ मद्यं मत्स्यं विरुद्धान्नं तीक्ष्णोष्णं गुरुभोजनम् । अतिव्य-
वायमायासं पूज्यपूजाव्यतिक्रमम् ॥ ३ ॥ पत्रशाकानि सर्वाणि बिम्बीमापा-
दकीफलम् । तृषानिद्राक्षुधावेगानपस्मारी नरस्यजेत् ॥ ४ ॥ इत्यपस्मार-
चिकित्सा ।

अथ वातव्याधिनिदानं व्याख्यास्यामः ।

पित्तं पङ्गु कफः पङ्गुः पङ्गवो मलधातवः । वायुना यत्र नीयन्ते तत्र
गच्छन्ति मेघवत् ॥ १ ॥

अथ संप्राप्तिपूर्वकनिदानमाह—शक्यानुप्रासशक्याऽथ ज्वरादौ प्रति-
पाद्यते । सर्वव्याधिनिदानं वा वातव्याधिनिरूपणम् ॥ १ ॥ रूक्षशीतालप-
लध्वन्नव्यवायातिप्रजागरैः । विषमादुपचाराच्च दोषासृक्सावणादपि ॥ २ ॥
लङ्घनप्लवनात्यध्वव्यायामातिविचेष्टितैः । धातूनां संक्षयाच्चिन्ताशोकरोगाति-
कर्षणात् ॥ ३ ॥ वेगसंधारणादामादभिघातादभोजनात् । मर्मघाताद्गजो-
द्गाश्चशीघ्रयानापसर्पणात् ॥ ४ ॥ देहे स्रोतांसि रिक्तानि पूरयित्वाऽनिलो बली ।
करोति विविधान्व्याधीन्सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रयान् । पूर्वलक्षणलक्षणे—अव्यक्तं
लक्षणं तेषां पूर्वरूपमिति स्मृतम् ॥ १ ॥ आत्मरूपं तु तद्व्यक्तमपाये लघुता
युनः । संकोचः पर्वणां स्तम्भो भङ्गोऽस्त्रां पर्वणामपि । लोमहर्षः प्रलापश्च
पाणिपृष्ठशिरोग्रहः ॥ २ ॥ खाड्यं पाङ्गुत्यकुब्जत्वे शोषोऽङ्गानामनिद्रता ।
गर्भशुक्ररजोनाशः स्पन्दनं गात्रसुसता ॥ ३ ॥ शिरोनासाक्षिजत्रूणां ग्रीवाया-
श्चापि हुण्डनम् । भेदस्तोदार्तिराक्षेपो मोहश्चाऽऽयास एव च ॥ ४ ॥ एवंवि-
धानि रूपाणि करोति कुपितोऽनिलः । हेतुस्थानविशेषाच्च भवेद्रोगविशेष
कृत् ॥ १ ॥

अथ स्थानविशेषलक्षणमाह—वायुरामाशये क्रुद्धश्छर्द्यादीन्कुरुते सदा ।
तत्र कोष्ठाश्रिते दुष्टे निग्रहो मूत्रवर्चसोः । वर्ध्महृद्गोगुल्मार्शः पार्श्वशूलं च
मारुते ॥ १ ॥

अथ सर्वाङ्गवातलक्षणमाह—सर्वाङ्गकुपिते वाते गात्रस्फुरणभञ्जनम् ।
वेदनाभिः परितस्त्य स्फुटन्तीवास्य संधयः ॥ १ ॥

अथ पक्वाशयवातलक्षणमाह—ग्रहो विण्मूत्रवातानां शूलाध्मा-
नाशमशर्कराः । जङ्घोरुत्रिकहृत्पृष्ठरूक् शोफश्च गुदस्थिते ॥ १ ॥

अथाऽऽमाशयवातमाह—रूक् पार्श्वोदरहृन्नाभौ तृष्णोद्गारविपूचिकाः ।
कासः कण्ठास्यशोषश्च हृदिश्चाऽऽमाशये स्थिते ॥ १ ॥

अथ पक्वाशयवातलक्षणमाह—पक्वाशयस्थोऽन्नकूजं शूलाटोपौ करो-
ति च । कृच्छ्रमूत्रपुरीषत्वमानाहं त्रिकवेदनाम् ॥ १ ॥

अथ श्रोत्रादिवातलक्षणमाह—श्रोत्रादिष्विन्द्रियवधं कुर्यात्क्रुद्धः स-

मीरणः ॥ १ ॥ रसकुपितलक्षणमाह—त्वग्रूक्षा स्फुटिता सुप्ता कृशा कृष्णा च तुद्यते । आतन्यते सरागा च पर्वरूक् त्वग्गतेऽनिले ॥ १ ॥ अश्रद्धा गौरवालस्यं ज्वरो रसगतेऽनिले । रक्तगतलक्षणं—रजस्तीव्राः संसंतापा वैवर्ण्यं कृशताऽरुचिः । गात्रे चारुंषि भुक्तस्य स्तम्भश्चासृग्गतेऽनिले ॥ २ ॥ अथ मांसमेदोगतमाह—सर्वाङ्गं तुद्यते स्तब्धं दण्डमुष्टिहतं यथा । सरूक्-स्तिमितमत्यर्थं मांसमेदोगतेऽनिले ॥ १ ॥ अथ मज्जास्थिगतमाह—भेदोऽस्थिपर्वणां संधिशूलं मांसबलक्षयः । अस्त्रमः सतता रुक्च मज्जास्थिकुपितेऽनिले ॥ १ ॥ अथ शुक्रगतमाह—क्षिप्रं मुञ्चति बध्नाति शुक्रस्थः कुपितोऽनिलः ॥ १ ॥ अथ शिरागतमाह—कुर्याच्छिरागतः शूलं शिराकुञ्चनपूरणम् । सबाह्याभ्यन्तरायामं खलीं कुञ्जत्वमेव च ॥ १ ॥ अथ स्नायुसंधिगतमाह—सर्वाङ्गैकाङ्गारोगांश्च कुर्यात्स्नायुगतोऽनिलः ॥ १ ॥ हन्ति संधिगतः संधीञ्छूलशोफौ करोति च । अथ आवृतवातलक्षणानि—प्राणोदानौ समानश्च व्यानश्चापान एव च ॥ १ ॥ स्थानस्था मारुताः पञ्च व्यापयन्ति शरीरिणम् । हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले ॥ २ ॥ उदानः कण्ठदेशे स्याद्व्यानः सर्वशरीरगः । प्राणे पित्तावृते छर्दिदाहश्चैवोपजायते ॥ ३ ॥ दौर्बल्यं सदनं तन्द्रा वैरस्यं च कफावृते । उदाने पित्तयुक्ते तु दाहो मूर्छा भ्रमः क्लमः ॥ ४ ॥ अस्वेदहर्षौ मन्दाग्निः शीतता च कफावृते । स्वेददाहौष्ण्यमूर्छाः स्युः समाने पित्तसंयुते ॥ ५ ॥ कफेन सङ्गो विण्मूत्रे गात्रहर्षश्च जायते । अपाने पित्तसंयुक्ते दाहौष्ण्यं रक्तमूत्रता ॥ ६ ॥ अधःकाये गुरुत्वं च शीतता च कफावृते । व्याने पित्तावृते दाहो गात्रविक्षेपणं क्लमः ॥ ७ ॥ स्तम्भनो दण्डकश्चापि शोफशूलौ कफावृते । गुरुणि सर्वगात्राणि स्तम्भनं चास्थिपर्वणाम् । लिङ्गं कफावृते व्याने चेष्टास्तम्भस्तथैव च ॥ ८ ॥

अथाऽऽक्षेपकादिरोगलक्षणान्याह ।

यदा तु धमनीः सर्वाः कुपितोऽभ्येति मारुतः । तदा क्षिपत्याशु मुहुर्मुहुर्देहं मुहुश्चरः । मुहुर्मुहुस्तदाक्षेपादाक्षेपक इति स्मृतः ॥ १ ॥ क्रुद्धः स्वैः कोपनैर्वायुः स्थानादूर्ध्वं प्रपद्यते । पीडयन् हृदयं गत्वा शिरःशङ्खौ च पीडयेत् ॥ २ ॥ धनुर्वज्रामयेद्गात्राण्याक्षिपेन्मोहयेत्ततः । अथास्यैवावस्थाविशेषावपतन्नकापतानकावाह—स कृच्छ्रादुच्छ्वसित्युच्चैः स्तब्धाक्षोऽथ निमीलकः । कपोत इव कूजेच्च विसंज्ञः सोऽपतन्नकः ॥ १ ॥ दृष्टिं संस्तभ्य संज्ञां च हत्वा कण्ठेन कूजति । हृदि मुक्ते नरः स्वास्थ्यं याति मोहं वृते पुनः ॥ २ ॥ मर्माश्रितं व्रणं प्राप्य वायुवत्सर्वदेहगः । तेन गौरो भवेद्देहः प्राणघ्नमपि तं त्यजेत् । वायुना दारुणं प्राहुरेके तमपतानकम् ॥ ३ ॥ अथ तेषां लक्षणमाह—तत्र दण्डापतानकमाह—कफान्वितो भृशं वायुस्तास्त्रेव यदि तिष्ठति ।

दण्डवत्स्तम्भयेद्देहं स तु दण्डापतानकः ॥ १ ॥ धनुस्तुल्यं नमेद्यस्तु स ध-
नुस्तम्भसंज्ञकः । विवर्णबद्धवदनः सस्ताङ्गो नष्टचेतनः । प्रस्विद्यंश्च धनुस्तम्भी
दशरात्रं न जीवति ॥ २ ॥ अथाभ्यन्तरायामस्य साधारणं रूपमाह—
अङ्गुलीगुल्फजठरहृद्वक्षोगलसंश्रितः । स्नायुप्रतानमनिलो यदा क्षिपति वेग-
वान् ॥ १ ॥ विष्टब्धाक्षः स्तब्धहनुर्भग्नपार्श्वः कफं वमन् । अभ्यन्तरं धनु-
रिव यदा नमति मानवः । तदा सोऽभ्यन्तरायामं कुरुते मारुतो बली ॥ २ ॥
अथ बहिरायामलक्षणम्—बाह्यस्नायुप्रतानस्थो बाह्यायामं करोति च ।
तमसाध्यं बुधाः प्रादुर्वक्षःकव्यूरुभजनम् ॥ १ ॥ अन्तर्निमित्तभेदेन च-
तुर्थाक्षेपकमाह—कफपित्तान्वितो वायुर्वायुरेव च केवलः । कुर्यादाक्षेपकं
त्वन्यं चतुर्थमभिधातजम् ॥ १ ॥ अथासाध्यमाह—गर्भपातनिमित्तश्च
शोणितातिस्त्रवाच्च यः । अभिधातनिमित्तश्च न सिध्यत्यपतानकः ॥ १ ॥
अथ पक्षवधमाह—गृहीत्वाऽर्धं तनोर्वायुः शिराः स्नायुर्विशोष्य च । पक्ष-
मन्यतरं हन्ति संधिवन्धान्विमोक्षयन् ॥ १ ॥ कृत्स्नोऽर्धकायस्तस्य स्यादक-
र्मण्यो विचेतनः । एकाङ्गरोगं तं केचिदन्ये पक्षवधं विदुः ॥ २ ॥ अथ त-
स्यैव सर्वाङ्गवधमाह—सर्वाङ्गरोगं तद्वच्च सर्वकायाश्रितेऽनिले । दाहसं-
तापमूर्च्छाः स्युर्वायौ पित्तसमन्विते ॥ १ ॥ शैत्यशोफगुरुत्वानि तस्मिन्नेव क-
फावृते । शुद्धवातहतं पक्षं कृच्छ्रसाध्यतमं विदुः ॥ २ ॥ साध्यमन्येन संस्-
ष्टमसाध्यं क्षयहेतुकम् । गुर्विणीसूतिकाबालवृद्धक्षीणेष्वसृक्क्षयात् । पक्षा-
वातं परिहरेद्वेदनारहितं यदि ॥ ३ ॥ अथार्दितलक्षणमाह—उच्चैर्व्याहर-
तोऽत्यर्थं खादतः कठिनानि च । हसतो जृम्भतो भाराद्विषमाच्छयनासनात्
॥ १ ॥ शिरोनासौष्ठुबुकललाटेक्षणसंधिषु । अर्दयत्यनिलो वक्त्रमर्दितं ज-
नयेत्ततः ॥ २ ॥ अभिधाताद्वास्त्रापाजिह्वानिलैर्लेखनात्पुनः । व्रणपाकात्कर-
द्यश्च शिराव्यधनतस्तथा ॥ ३ ॥ मर्मसंछेदनाच्चेत्रकर्णनासाविधर्षणात् । ती-
क्ष्णमद्यासवापानाद्धारणाद्वेगनिग्रहात् ॥ ४ ॥ वर्तमानोऽनिलस्तेषु वक्त्रमर्द-
यति ध्रुवम् । वक्रीभवति वक्त्रार्धं ग्रीवा चाग्न्यपवर्तते ॥ ५ ॥ शिरश्चलति
वाक्सङ्गो नेत्रादीनां च वैकृतम् । ग्रीवाचुबुकदन्तानां तस्मिन्पार्श्वे च वेदना
॥ ६ ॥ तस्याग्रजो रोमहर्षो वेपथुर्नेत्रमाविलम् । वायुरूध्वं त्वचि स्वप्नं तोदं
मन्याहनुग्रहौ ॥ ७ ॥ तमर्दितमिति प्रादुर्व्याधिं व्याधिविशारदाः । वाता-
त्पित्तात्कफाच्चैव त्रिधा स स्यात्समासतः ॥ ८ ॥ लालातिप्रसवः कम्पः स्फुर-
णं हनुसंग्रहः । ओष्ठयोः श्वयथुः शूलमर्दिते वातजे भवेत् ॥ ९ ॥ पीतमास्यं
ज्वरस्तृष्णा पित्ते मूर्च्छा च धूपनम् । गण्डे शिरसि मन्यायां शोफः स्तम्भः
कफोद्धवे ॥ १० ॥ अथ तस्यासाध्यलक्षणमाह—क्षीणस्यानिमिषाक्षस्य
प्रसक्ताव्यक्तभाषिणः । न सिध्यत्यर्दितं गाढं त्रिवर्षं वेपनस्य च । गते वेगे
भवेत्स्वास्थ्यं सर्वेष्वक्षेपकादिषु ॥ १ ॥ अथ हनुस्तम्भमाह—जिह्वानिलै-

खनाच्छुष्कभक्षणादभिघाततः । कुपितो हनुमूलस्थः संसयित्वाऽनिलो हनुम् ॥ १ ॥ करोति विवृतास्यत्वमथवा संवृतास्यताम् । हनुग्रहः स तेन स्यात्कृ-
च्छ्राञ्चर्वणभाषणम् । हनुग्रहे पूर्वरूपं हनुस्तम्भश्च वेपथुः ॥ २ ॥ अथ म-
न्यास्तम्भमाह—दिवास्वप्नासनस्थानविकृतोर्ध्वनिरीक्षणैः । मन्यास्तम्भं प्र-
कुरुते स एव श्लेष्मणा वृतः ॥ १ ॥ अथ जिह्वास्तम्भमाह—वाग्वाहिनी-
शिरासंस्थो जिह्वां स्तम्भयतेऽनिलः । जिह्वास्तम्भः स तेनान्नपानवाक्येष्वनी-
शता ॥ १ ॥ हृदयं यदि वा पृष्ठमुन्नतं क्रमशः सरुक् । कुद्धो वायुर्यदा कुर्या-
त्तदा तं कुब्जमादिष्टेत् ॥ २ ॥ अथ शिरोग्रहमाह—रक्तमाश्रित्य पवनः
कुर्यान्मूर्ध्वधराः शिराः । रुक्षाः सवेदनाः कृष्णाः सोऽसाध्यः स्याच्छिराग्रहः
॥ १ ॥ अथ गृध्रसीमाह—स्निग्धपूर्वं कटिपृष्ठोरुजानुजङ्घापदं क्रमात् ।
गृध्रसी स्तम्भरुक्तोदैर्गृह्णाति स्पन्दते मुहुः ॥ १ ॥ वाताद्वातकफाभ्यां वा वि-
ज्ञेया सा द्विधा पुनः । वातजायां भवेत्तोदो देहस्यापि प्रवक्रता ॥ २ ॥ जानु-
कव्यरूखंधीनां स्फुरणं सुसता भृशम् । वातश्लेष्मोद्गवायां तु सैमित्यं वह्नि-
मार्दवम् ॥ ३ ॥ तन्द्रा मुखप्रसेकश्च भक्तद्वेषस्तथैव च । वाताद्वातकफात्तन्द्रा
गौरवारोचकान्विता ॥ ४ ॥ अथ विश्वाचीमाह—तलं प्रत्यङ्गुलीनां या
कण्डरा बाहुपृष्ठतः । बाह्वोः कर्मक्षयकरी विश्वाचीति हि सोच्यते ॥ १ ॥
अथ क्रोष्टुशीर्षमाह—वातशोणितजः शोथो जानुमध्ये महारुजः । ज्ञेयः
क्रोष्टुकशीर्षस्तु स्थूलः क्रोष्टुकशीर्षवत् ॥ १ ॥ अथ खञ्जपङ्गवोर्लक्षण-
माह—वायुः सक्थ्याश्रितः सक्थः कण्डरामाक्षिपेधदा । खञ्जस्तदा भवे-
ज्जन्तुः पङ्गुः सक्थोर्द्वयोर्वधात् ॥ १ ॥ अथ कलायखञ्जमाह—प्रक्रामन्वे-
पते यस्तु खञ्जन्निव च गच्छति । कलायखञ्जं तं विद्यान्मुक्तसंधिप्रबन्धनम्
॥ १ ॥ अथ वातकण्टकमाह—रूपपादे विषमे न्यस्ते श्रमाद्वा जायते यदा ।
वातेन गुल्फमाश्रित्य तमाहुर्वातकण्टकम् ॥ १ ॥ न्यस्ते तु विषमे पादे रुजः
कुर्यात्समीरणः । पादकण्टक इत्येव विज्ञेयस्तलकाश्रितः ॥ २ ॥ अथ पाद-
दाहमाह—पादयोः कुरुते दाहं पित्तासृक्सहितोऽनिलः । विशेषतश्चङ्क्रमते
पाददाहं तमादिशेत् ॥ १ ॥ अथ पादहर्षमाह—हृष्यतश्चरणौ यस्य भव-
तस्तु प्रसुप्तवत् । पादहर्षः स विज्ञेयः कफवातप्रकोपजः ॥ १ ॥ अथांसशो-
षमाह—अंसदेशे स्थितो वायुः शोषयित्वांऽसबन्धनम् । अथावबाहुक-
माह—शिराश्चाऽऽकुञ्च्य तत्रस्थो जनयत्यवबाहुकम् ॥ १ ॥ अथ मूकमि-
भ्मिनगद्गदानाह—आवृत्य सकफो वायुर्धमनीः शब्दवाहिनीः । नरान्करो-
त्यक्रियकान्मूकमिभ्मिनगद्गदान् ॥ १ ॥ अथोर्ध्ववातमाह—अधः प्रतिहतो
वायुः श्लेष्मणा मायुनाऽथ वा । करोति भृशमुद्गारमूर्ध्ववातः स उच्यते ॥ १ ॥
अथ तूनीलक्षणमाह—अधो या वेदना याति वर्चोमूत्राशयोत्थिता । भि-

नत्तीव गुदोपस्थं सा तूनी नाम नामतः ॥ १ ॥ अथ प्रतूनीमाह—गुदोप-
स्थिता सैव प्रतिलोमं प्रधावति । वेगैः पक्काशयं याति प्रतूनीति हि सो-
च्यते ॥ १ ॥ अथ बाधिर्यमाह—यदा शब्दवहं स्रोतो वायुरावृत्य तिष्ठति ।
शुद्धः श्लेष्मान्वितो वाऽपि बाधिर्यं तेन जायते ॥ १ ॥ अथाऽऽध्मानलक्षण-
माह—साटोपमत्युग्ररुजमाध्मातमुदरं भृशम् । आध्मानमिति जानीयाद्
घोरं वातनिरोधजम् ॥ १ ॥ अथाऽऽमाशयसंभवात्प्रत्याध्मानमाह—
त्रिमुक्तपार्श्वहृदयं तदेवाऽऽमाशयोत्थितम् । प्रत्याध्मानं विजानीयात्कफव्या-
कुलितानिलम् ॥ २ ॥ अथाष्टीलामाह—नाभेरधस्तात्संजातः संचारी यदि
वाऽचलः । अष्टीलावद् घनो ग्रन्थिरूर्ध्वमायत उन्नतः ॥ १ ॥ अथ वाताष्टी-
लामाह—विण्मूत्रानिलसङ्गश्च तत्राऽऽध्मानं च जायते । वाताष्टीलां विजा-
नीयाद्बहिर्माणनिरोधिनीम् ॥ १ ॥ अथ प्रत्यष्टीलामाह—एतामेव रुजोपे-
तां वातविण्मूत्रोधिनीम् । प्रत्यष्टीलामिति वदेजठरे तिर्यगुत्थिताम् ॥ १ ॥
अथ वातविकृतिं मूत्रोधिनीमाह—मारुतेऽनुगुणे बस्तौ मूत्रं सम्यक्प्र-
वर्तते । विकारा विविधाश्चापि प्रतिलोमे भवन्ति हि ॥ १ ॥ अथ सर्वाङ्ग-
कम्पवातमाह—सर्वाङ्गकम्पः शिरसो वायुर्वेपथुसंज्ञकः ॥ १ ॥ अथ ख-
ल्लीमाह—खल्ली तु पादजङ्घोस्करमूलावमोदिनी ॥ १ ॥

अथानुक्तवातरोगसंग्रहार्थमाह—

स्थानानामनुरूपैश्च लिङ्गैः श्लेषान्विनिर्दिशेत् । सर्वेषु तेषु संसर्गं पित्ताद्यै-
रुपलक्षयेत् ॥ १ ॥ हिमन्तीव च गात्राणि रोमाञ्चाद्धुरितानि च । शिरो-
क्षिवेदनालस्य शीतवातस्य लक्षणम् ॥ २ ॥ अङ्गेषु तोदनं प्रायो दाहः स्पर्शं
न विन्दति । मण्डलानि च दृश्यन्ते स्पर्शवातस्य लक्षणम् ॥ ३ ॥ पादयोश्च
भवेद्दाहस्त्वक्स्फोटः श्वयथुः क्लमः । रक्तस्त्रावः स्पन्दनं च रक्तवातस्य लक्ष-
णम् ॥ ४ ॥ हनुशङ्खशिरोग्रीवं यो भिनत्ति तु चानिलः । कर्णयोः कुरुते
शूलं कर्णशूलः स उच्यते ॥ ५ ॥

अथ साध्यासाध्यमाह—

हनुस्तम्भादिताक्षेपपक्षाघातापतानकाः । कालेन महता वाता यत्नात्सि-
ध्यन्ति वा न वा ॥ १ ॥ नवान्बलवतश्चैतान्साधयेन्निरुपद्रवान् । विसर्पदा-
हूर्क्सङ्गमूर्छारुच्यग्निमार्दवैः । क्षीणमांसबलं वाता घ्नन्ति पक्षवधादयः ॥ २ ॥
शूलं सुसत्त्वचं भुङ्गं कम्पाध्माननिपीडितम् । रुजार्तिमन्तं च नरं वा-
तव्याधिर्विनाशयेत् ॥ ३ ॥ अव्याहतगतिर्यस्य स्थानस्थः प्रकृतौ स्थितः । वायुः
स्यात्सोऽधिकं जीवेद्वीतरोगः समाः शतम् ॥ ४ ॥ इति वातव्याधिनिदानम् ।

अथ वातव्याधिचिकित्सा ।

अभ्यङ्गं स्वेदनं बस्तिर्नस्यं स्नेहविरेचनम् । स्निग्धाम्ललवणं स्वादु वृष्यं

वातामयापहम् ॥ १ ॥ स्वाद्वम्ललवणैः स्निग्धैराहारैर्वातरोगिणः । अभ्यङ्गस्ने-
हबस्त्राद्यैः सर्वानेवोपपादयेत् ॥ २ ॥ पित्तस्याऽऽवरणे वातरोगे शीतोष्णभे-
षजम् । कफस्याऽऽवरणे वायौ रूक्षोष्णं भक्ष्यभेषजम् ॥ ३ ॥ केवले पवन-
व्याधौ स्निग्धोष्णं भक्ष्यभेषजम् । स्निग्धोष्णशीतरूक्षाद्यैर्वातजो यो न शा-
म्यति । विकारस्तत्र विज्ञेयो दुष्टशोणितसंभवः ॥ ४ ॥ अथ बस्तिगते
वाते—कार्यो बस्तिगते वाते विधिर्वस्तिविशोधनः । विशेषतस्तु कोष्ठस्थे
वाते क्षीरं पिबेन्नरः ॥ १ ॥ व्योपसौवर्चलाजाजीपथ्यालवणपञ्चकम् । सारि-
वावृहतीपाठाकलिङ्गाग्निवाग्रजम् ॥ २ ॥ चूर्णीकृतं दधिसुरातन्मण्डोष्णा-
म्बुकाञ्जिकैः । पिबेदग्निविवृद्ध्यर्थं कोष्ठवातहरं परम् ॥ ३ ॥ अथ गुदा-
श्रिते—दशमूलीकषायेण मातुलङ्गरसेन वा । पिबेदैरण्डतैलं च बस्तिकुक्षि-
गुदाश्रिते ॥ १ ॥ अथाऽऽमाशयगते—आमाशयगते वाते छर्दिस्वापौ
यथाक्रमम् । देयः षट्चरणो योगः सप्तरात्रं सुखाऽम्बुना ॥ १ ॥ चित्रके-
न्द्रयवापाठाकटुकातिविषाभयाः । महाव्याधिप्रशमनो योगः षट्चरणः
स्मृतः ॥ २ ॥ अन्यच्च—पूतीकपथ्याशटिपुष्कराणि बिल्वं गुडूची सुरदारु
शुण्ठी । विडङ्गपाठातिविषा कणा च काथास्त्रयः सामसमीरणघ्नाः ॥ १ ॥
कार्पासास्थिकुलत्थिकातिलयवैरेरण्डमाषातसीवर्षाभूषणबीजकाञ्जिकयुतैरेकी-
कृतैर्वा पृथक् । स्वेदः स्यादिति कूर्परोदरहनुस्फिकषाणिपादाङ्गुलीगुल्फस्त-
म्भकटीरुजो विजयते सामाः समीरोद्भवाः ॥ २ ॥ अथ पक्वाशये—पक्वा-
शयगते वाते हितं स्नेहैर्विरेचनम् । बस्तयः शोधनीयाश्च प्राशाश्च लवणोत्तराः
॥ १ ॥ अथ श्रोत्रादिषु—श्रोत्रादिषु प्रकुपिते कार्यो वातहरः क्रमः । स्नेहा-
भ्यङ्गोपनाहार्श्वमर्दनालेपनानि च ॥ १ ॥ अथ त्वद्वाग्नासासृक्शिरागते—
त्वद्वाग्नासासृक्शिराप्राप्ते कुर्याद्रक्तविमोक्षणम् । स्नेहोपनाहाग्निकर्मबन्धनोन्मर्द-
नानि च ॥ १ ॥ अथ मांसमेदोमज्जास्थिकुपिते—विरेको मांसमेदःस्थे
निरूहः शमनानि च । बाह्याभ्यन्तरगस्नेहैरस्थिमज्जागतं जयेत् ॥ १ ॥ अथ
स्नायुसंध्यस्थिगते—स्नायुसंध्यस्थिसंप्राप्ते कुर्याद्वाते विचक्षणः । स्वेदोप-
नाहसंमर्दस्नेहनादिकमादरात् ॥ १ ॥ अथ शुक्रस्थे कुपिते—शुक्रप्राप्तेऽ-
निले कार्यं शुक्रदोषचिकित्सितम् ॥ १ ॥ अथ वक्षःआदिमन्यागते—व-
क्षस्त्रिकस्कन्धगते वाते मन्यागते तथा । वमनं मर्दनं नस्यं कुशलेन प्र-
योजयेत् ॥ १ ॥

अथाशीतिवातजरोगाणां संक्षेपेण चिकित्सा ।

अथ पक्षाघातस्य—मापात्मगुप्तकैरण्डवाय्यालकशृतं जलम् । हिङ्गु-
सैन्धवसंयुक्तं पक्षाघातनिवारणम् ॥ १ ॥ इवि माषादिकाथः । अथ वृन्दा-
न्माषादिसप्तकम्—मापबलाशुकशिम्बीकत्तृणरास्त्राश्वगन्धार्कशुक्राणाम् ।

क्वाथो नस्यनिपीतो रामठलवणान्वितः कोष्णः ॥ १ ॥ अपनयति पक्षघातं
मन्यास्तम्भं सकर्णनादरुजम् । दुर्जयमर्दितवातं सप्ताहाज्जयति चावश्यम्
॥ २ ॥ अथ माषतैलं सारसंग्रहात्—ग्रन्थिकाश्रिकणारास्त्राकुष्ठनागरसै-
न्धवम् । माषक्वाथेन तत्तैलं पक्षघातविनाशनम् ॥ १ ॥ अथार्दितस्य चि-
कित्सा—नवनीतेन संयुक्तां खादेन्माषेण्डरीं नरः । दुर्वारमर्दितं हन्ति स-
सरात्रान्न संशयः ॥ १ ॥ अथ लशुनविधिः—पलमर्धपलं वाऽपि रसो-
नस्य सुकुट्टितम् । हिङ्गुजीरकसिन्धूत्थसौवर्चलकटुत्रिकैः ॥ १ ॥ चूर्णितैर्मा-
पकोन्मानैरवचूर्ण्यावलोडितम् । यथाग्निं भक्षितं प्रातर्ऋतुक्वाथानुपानतः ॥ २ ॥
दिने दिने प्रयोक्तव्यं मासमेकं निरन्तरम् । वातामयं निहन्त्येवमर्दितं चाप-
तन्नकम् ॥ ३ ॥ एकाङ्गरोणिणां रोगं तथा सर्वाङ्गरोणिणाम् । ऊरुस्तम्भं गृ-
ध्रसीं च शूलं द्वंद्वकृमीनपि ॥ ४ ॥ कटिपृष्ठामयं हन्याज्जाठरं च समीरणम् ।
अथावबाहुके—मापतैलरसोनाभ्यां बाह्वोश्च परिवर्तनात् । दशाङ्गिमाष-
क्वाथेन जयेद्वैद्योऽवबाहुकम् ॥ १ ॥ इति वृन्दात् । अथ माषाद्यं तैलम्—
माषातसीयवकुरण्टककण्टकारीगोकण्टदण्डुकजटाकपिकच्छुतोयैः । कार्पासका-
स्थिशणबीजकुलत्थकोलक्वाथेन वस्तपिशितस्य रसेन चाऽपि ॥ १ ॥ शुण्ड्या च
मागधिकया शतपुष्पया च सैरण्डमूलसपुनर्नवया सरेणवा । रास्त्राबलामृत-
लताकटुकैर्विपक्वं माषाख्यमेतदवबाहुकहारि तैलम् ॥ २ ॥ अर्धाङ्गशोषमप-
तानकमाढ्यवातमाक्षेपकं समुजकम्पशिरःप्रकम्पम् । नस्येन वस्तिविधिना
परिषेचनेन हन्यात्कटीजघनजानुशिरःसमीरान् ॥ ३ ॥ इति माषाद्यं तैलम् ।
अथ प्रत्यष्टीलाष्टीलिकयोः—प्रत्यष्टीलाष्टीलिकयोर्गुल्मेऽभ्यन्तरविद्रधौ ।
क्रिया हिङ्गवादिचूर्णं च शस्यतेऽत्र विशेषतः ॥ १ ॥

अथ हिङ्गवादिचूर्णम्—हिङ्गवाम्लत्रिपट्प्रपदकदुशटीवृक्षाम्लदीप्या-
लकापाठाजाज्यजगन्धमूलहपुषाद्विक्षारसाराभया । हिङ्माध्मानविबन्धवर्ध्म-
कसनश्वासाग्निसादारुचिप्लीहाशौखिलशूलगुल्मगलहृद्रोगाश्मपाण्डुग्रणुत् ॥ १ ॥
इति बोपदेवशतात् । अथ योगशताद्विङ्गवादिचूर्णम्—हिङ्गूग्रन्धा-
विडशुण्ड्यजाजीहरीतकीचित्रकमूलकुष्ठम् । भागोत्तरं चूर्णितमेतदिष्टं गुल्मो-
दराष्टीलविषूचिकासु ॥ १ ॥ अथ नादेयादि—नादेयीकुटजार्कशिशुबृहती-
सुगिबल्वभल्लातकव्याघ्रीकिंशुकपारिभद्रकरजोऽपामार्गनीपात्रिकान् । वासामु-
स्तकपाटलान्सलवणान्दग्ध्वा रसं पाचितं हिङ्गवादि प्रतिवापमेतदुचितं गु-
ल्मोदराष्टीलषु ॥ १ ॥ अथ गदनिग्रहाद्विडङ्गासवः—विडङ्गं पिप्पली-
मूलं पाठा धान्येलवालुकम् । कुटजत्वक्फलं रास्त्रा भार्गी पञ्चपलोन्मितान्
॥ १ ॥ अष्टद्रोणेऽम्भसः पक्त्वा द्रोणशेषं तु कारयेत् । पूते शीते क्षिपेत्तस्मि-
न्माक्षिकस्य शतत्रयम् ॥ २ ॥ धातक्या विंशतिपलं चूर्णं कृत्वा तु दापयेत् ।
व्योषस्य तु पलान्यष्टौ त्रिजातं द्विपलं तथा ॥ ३ ॥ फलिनीहेमतोयानां

सरोध्राणां पलं पलम् । घृतभाण्डे समाधाय मासमेकं विधारयेत् ॥ ४ ॥
 एष योगो हरत्येव प्रत्यष्टीलाभगंदरान् । ऊरुस्तम्भाश्मरीमेहगण्डमालां सविद्र-
 धिम् ॥ आढ्यवातं हनुस्तम्भं विडङ्गाख्यो महासवः ॥ ५ ॥ इति विडङ्गा-
 सवः । अथ विश्वाच्याम्—दशमूलीबलामाषकाथं तैलाज्यमिश्रितम् ।
 सायं भुक्त्वा चरेन्नस्यं विश्वाच्यां चावबाहुके ॥ १ ॥ इति दशमूलादिकाथः ।
 अथ मिस्मिणे—दशमूलस्य निर्यूहो हिङ्गुपुष्करचूर्णितः । शमयेत्परिपी-
 तस्तु वातं मिस्मिणसंज्ञितम् ॥ १ ॥ अथ कुब्जे—हृदयं यदि वा पृष्ठमु-
 न्नतं क्रमशः सुरुक् । कुब्जो वायुर्यदा कुर्यात्तदा तं कुब्जमादिशेत् ॥ १ ॥ वात-
 ग्रैर्दशमूल्या च नवं कुब्जमुपाचरेत् । स्नेहैर्मांसरसैश्चापि प्रवृद्धं तं विवर्जयेत्
 ॥ २ ॥ अथ तूनीप्रतितून्योः—पिप्पल्यादिरजस्तूनीप्रतितून्योः सुखाम्बुना ।
 पिबेद्वा स्नेहलवणं सघृतं क्षारहिङ्गु वा ॥ १ ॥ अथाऽऽऽध्माने—आध्माने
 लेपनं पाणितापश्च फलवर्तयः । दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिङ्गुसैन्धवैः ॥ १ ॥
 अम्लपिष्टैः सुखोष्णैश्च प्रदिह्यादुदरे भिषक् । दीपनं पाचनं चैवाऽऽध्मानव-
 स्तिविशोधनम् ॥ २ ॥ इति दारुषट्कम् ॥

अथ प्रत्याध्मानोरुस्तम्भयोः कल्कादि ।

प्रत्याध्माने तु वमनं लङ्घनं दीपनौषधम् । ऊरुस्तम्भं जयेद्रूक्षस्वेदमर्द-
 नकौशिकैः ॥ १ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं भल्लातकफलानि च । एतत्कल्कश्च
 सक्षौद्र ऊरुस्तम्भनिवारणः ॥ २ ॥ इति पिप्पलीकल्कः । पञ्चमूलीकपायं तु
 सुखोष्णं त्रिवृतायुतम् । गृध्रसीं गुल्मशूलं च सद्यः पीतं नियच्छति ॥ १ ॥
 इति पञ्चमूलीकपायः । वाजिगन्धाबलाबिल्वदशमूल्यम्बुसाधितम् । गृध्रस्यां
 तैलमैरण्डं बस्तौ पाने च शस्यते ॥ १ ॥ इति वाजिगन्धाद्यं तैलम् ॥ द्वे
 पले सैन्धवात्पञ्च शुण्ठ्या ग्रन्थिकचित्रकात् । द्वे पले भल्लाकास्थीनि विंशती
 द्वे तथाऽऽढके ॥ १ ॥ आरनाले पचेत्प्रस्थं तैलस्यैतैरपत्यदम् । गृध्रस्यूरुग्र-
 हाशौर्तिसर्ववातविकारनुत् ॥ २ ॥ इति सैन्धवाद्यं तैलम् ॥ विध्येच्छिरां
 मेढबस्तेरधस्ताच्चतुरङ्गुले । यदि नोपशमं गच्छेद्दहेत्पादकनिष्ठिकाम् ॥ ३ ॥
 इति वृन्दात् ॥ महानिम्बजटाकल्को गृध्रसीनाशनः स्मृतः ॥ ४ ॥

इति शार्ङ्गधरात् ॥

अथ जिह्वास्तम्भे ।

जिह्वास्तम्भे क्रिया श्रेष्ठा सामान्योक्ता तु याऽर्दिते । अथ कल्याणका-
 वलेहः—सहरिद्रावचाकुष्ठं पिप्पलीविश्वभेषजम् । अजाजी चाजमोदा च
 यष्टीमधुयुतं घृतम् ॥ १ ॥ एकविंशतिरात्रेण भवेच्छ्रुतिधरो नरः । मेघ-
 दुन्दुभिनिर्घोषो मत्तकोकिलनिस्वनः ॥ जडगद्गदमूकत्वं लेहः कल्याणको
 जयेत् ॥ २ ॥

इति योगतः ॥

अथ गृध्रसीकलायखञ्जपङ्गुषु ।

विशोध्यैरण्डबीजानि पिष्ट्वा क्षीरे विपाचयेत् । पायसं तत्कटीशूले गृध्र-
स्यां चौषधं परम् ॥ १ ॥ रास्नायास्तु पलं चैकं कर्षान्पञ्च च गुग्गुलोः । सर्पिपा
वटकान्कृत्वा खादेद्गृध्रसिनाशान् ॥ २ ॥ इति रास्नाद्यो गुग्गुलुः ॥ तैल-
मेरण्डजं वाऽपि गोमूत्रेण पिबेन्नरः । मासमेकं प्रयोगोऽयं गृध्रस्थूरुग्रहापहः ॥
जयेत्कलायखञ्जं तु हेतुत्यागरसोनतः ॥ १ ॥

अथ कटिशूले ।

दशमूलीकपायेण पिबेद्वा नागराम्भसा । कटिशूलेषु सर्वेषु तैलमेरण्डसं-
भवम् ॥ १ ॥ हलावं खाखसं खाद्यं खर्जूरं मेथिकातिलाः । मिशिद्वयं च भल्ला-
स्थि वातामं बब्रुलं तथा ॥ २ ॥ सारं चैकपलं ग्राह्यं गुडोऽब्धिकुडवस्तथा ।
घृतं द्विकुडवं चैव लङ्कुडकान्कारयेन्निषक् ॥ ३ ॥ द्विकर्षं भक्षयेत्प्रातः कटि-
वातविनाशनः । धातुस्तम्भं धातुवृद्धिं कुरुते नात्र संशयः ॥ ४ ॥ तैलं घृतं
चाऽऽर्द्रकमातुलङ्गयो रसं सचुक्रं सगुडं पिबेद्वा । कट्यूरुष्टृत्रिकगुल्मशूलगृ-
ध्रस्युदावर्तहनुग्रहेषु ॥ ५ ॥

अथ क्रोष्टुशीर्षैः—गुडूचीत्रिफलाकाथैर्गुग्गुलुः पिण्डितो वरः । क्रोष्टुशी-
र्षं निहन्त्युच्चैः सेवितो मासमात्रतः ॥ १ ॥

अथावशिष्टानां प्रतीकारः ।

हनुग्रहे हनुस्तम्भे मन्यास्तम्भेऽर्दिते पिबेत् । दशमूत्यम्भसा कृष्णा अश्वत्थस्व-
रसेन वा ॥ १ ॥ बाह्यायामान्तरायामपार्श्वशूलकटिग्रहान् । खल्लीदण्डापतानौ च
स्नेहस्वेदपुरैर्जयेत् ॥ २ ॥ वामनत्वाङ्गसंकोचभङ्गभेदग्रहव्यथाः । मर्दनैर्बस्तिभिः
काथैः स्वेदनैश्च भिषग्जयेत् ॥ ३ ॥ अपतानव्रणायामौ स्नेहैर्व्रणचित्सितैः ।
अङ्गारौक्ष्यस्तम्भकम्पकाश्यं कपिशतोदने ॥ ४ ॥ दौर्बल्ये स्फुरणे अंशे स्नेहैर्मर्दन-
मिष्यते । शुक्रकाश्यं शुक्रनाशे शुक्रस्यातिप्रवर्तने ॥ ५ ॥ विड्ग्रहे बद्धविदके
च स्नेहपानं हितं मतम् । प्रलापे भीरुतापे च प्रसुप्तौ चित्तवैकृते ॥ ६ ॥
स्वेदनाशे बलक्षेप्ये कौशिकः सघृतो हितः । शब्दाज्ञतामये चापि लेहः क-
ल्याणको हितः ॥ ७ ॥ शीततां रोमहर्षं च शिरापूरणमेव च । कटुतिक्तैर्ज-
येद्वैद्यः स्नेहस्वेदनमर्दनैः ॥ ८ ॥ वाताप्रवृत्तिमुद्गारमन्नकूजनमेव च । निरूह-
बस्तिनाऽथाङ्गकाठिन्यं स्नेहगाहनात् ॥ ९ ॥ शिरोग्रहे तु कर्तव्या शिरोगत-
मरुत्क्रिया । रक्तावसेचनं कुर्यादभीक्ष्णं वातकण्टके । पिबेदैरण्डतैलं वा दहे-
त्सूचीभिरेव च ॥ १० ॥

इत्यशीतिवातजरोगाणां संक्षेपेण पृथक्पृथक्चिकित्सा ।

अथ सर्ववातरोगाणां सामान्यप्रतीकारानाह—

अथ काथाः—सहचरामरदारु सनागरं कथितमम्भसि तैलविमिश्रितम् ।

पवनपीडितदेहगतिः पिबन्दुतविलम्बितगो भवतीच्छया ॥ १ ॥ इति योग-
 तरङ्गिण्याः सहचरादिः । अथ योगसारान्महारास्त्रादिः—रास्त्रैरण्डामृतो-
 ग्रासहचरचविकारामसेनाब्दभार्गीदीप्यानन्तायवानीवृक्सुरकृमिजिच्छृङ्गिभु-
 ण्ठीबलाभिः । भूर्वातिकासमङ्गाद्विविपशटिवरापिप्पलीयावशूकै रक्तश्रीखण्ड-
 कारग्वधकटुकफलैर्वत्सवृश्चीवयुक्तैः ॥ १ ॥ सर्वैरेतैर्दशाङ्घ्रिप्रयुतसमलवैः
 साधितोऽष्टावशेषः काथो रास्त्रादिरादौ महदुपपदवान्कौशिकाक्तो निहन्ति ।
 सर्वाङ्गैकाङ्गवाताञ्चसनकसनहृत्स्वेदशैत्यादितन्द्राशूलं तूनीप्रतूनीगलगदनि-
 खिलाङ्गव्यथाकम्पखल्लीः ॥ २ ॥ विश्वाचीश्लीपदामानिलनिखिलमहासूतिका-
 रोगसुप्ति जिह्वास्तम्भापतानं स्फुटनविमथनक्लीबताक्षेपकौष्ठम् । शोफाटोपा-
 पतत्रादितकुडहानुरुगृध्रसीपादशूलं वायुश्लेष्मोत्थरोगानपि गिरितनयावल्ल-
 भेनोपदिष्टः ॥ ३ ॥ इति महारास्त्रादिः । अथ शार्ङ्गधरान्महारास्त्रादिः—
 रास्त्रा द्विगुणभागा स्यादेकभागास्तथाऽपरे । धन्वयासबलैरण्डदेवदारुशटी-
 वचाः ॥ १ ॥ वासको नागरं पथ्या चव्या मुस्ता पुनर्नवा । गुडूची वृद्धदारुश्च
 शतपुष्पा च गोक्षुरः ॥ २ ॥ अश्वगन्धा प्रतिविषा कृतमालः शतावरी ।
 कृष्णा सहचरश्चैव धान्यकं बृहतीद्वयम् ॥ ३ ॥ एभिः कृतं पिबेत्काथं शुण्ठी-
 चूर्णेन संयुतम् । कृष्णाचूर्णेन वा योगराजगुग्गुलुनाऽथवा ॥ ४ ॥ आजमो-
 दादिना वाऽपि तैलेनैरण्डजेन वा । सर्वाङ्गकम्पे कुब्जत्वे पक्षाघातेऽवबाहुके
 ॥ ५ ॥ गृध्रस्यामामवाते च श्लीपदे चापतानके । अन्नवृद्धौ तथाऽऽध्माने ज-
 ङ्घाजानुगदेऽर्दिते ॥ ६ ॥ शुक्रामये मेढूवाते वन्ध्यायोन्यामयेषु च । महारा-
 स्त्रादिराख्यातो ब्रह्मणा गर्भधारणे ॥ ७ ॥ अथ महाबलाकाथः—महाब-
 लामूलमहौषधाभ्यां काथं पिबेन्मिश्रितपिप्पलीकम् । शीतं सकम्पं परिदाह-
 युक्तं विनाशयेद्विद्विदनिप्रयुक्तः ॥ १ ॥ इति योगसारात् । अथ योगरत्ना-
 वलितः पञ्चमूलादिः—पञ्चमूलीकृतः काथो दशमूलीकृतोऽथवा । रुक्षः
 स्वेदस्तथा नस्यं नन्यास्तम्भे प्रशस्यते ॥ १ ॥ अथैरण्डादिः—एरण्डबिल्वं
 बृहतीद्वयं च सौवर्चलं व्योपसुरामठं च । समातुलङ्गीलवणोत्तमं च काथो
 धनुर्वातहरः प्रशस्तः ॥ १ ॥ अथ वाजिगन्धादिः—वाजिगन्धा बलास्त्रिस्तो
 दशमूली महौषधम् । गृध्रनख्यौ च रास्त्रा च गणो मारुतनाशनः ॥ १ ॥
 अथ समीरदावानलः—भलातकानां शकलानि कृत्वा त्रिकोलमानं परि-
 गृह्य वैद्यः । चतुष्पलं तोयसमन्वितोऽयं काथश्चतुर्थीशक एष सम्यक् ॥ १ ॥
 सिताघृतं गोपयमिश्रितेन कोलं पलार्धं पलमेकयुक्तम् । क्रमेण पीतः खलु
 हन्ति वातान्समीरदावानलनामधेयः ॥ २ ॥ इति काथाः ॥

अथ चूर्णानि ।

रास्त्राकुष्ठनतद्रुपदकटुशटीपाठावचासारिवाभूनिम्बत्रिफलाबलादशजटानि-

गुण्डिकैरण्डकम् । हिङ्गवम्लार्द्रकबस्तगन्धकवरीक्षारौ पटूनां त्रयं चूर्णं पुष्कर-
तैलयुक्तमखिलान्वातानशीतिं जयेत् ॥ १ ॥ अथाऽऽभादिचूर्णं वृन्दात्-
आभा रास्त्रा गुडूची च शतावरी महौषधम् । शतपुष्पाऽश्वगन्धा च हपुषा
वृद्धदारकः ॥ १ ॥ यवानी चाजमोदा च समभागानि कारयेत् । सूक्ष्मचूर्ण-
मिदं कृत्वा बिडालपदकं पिबेत् ॥ २ ॥ मद्यैर्मांसरसैर्यूपैस्तैरुष्णोदकेन वा ।
सर्पिषा वाऽपि लेह्यं तु दधिमण्डेन वा पुनः ॥ ३ ॥ अस्थिसंधिगतं वायुं
स्नायुमज्जाश्रितं च यम् । कटिग्रहं गृध्रसीं च मन्यास्तम्भं हनुग्रहम् ॥ ४ ॥
ये च कोष्ठगता रोगास्तांश्च सर्वान्प्रणाशयेत् । आभाद्यो नाम चूर्णोऽयं सर्व-
व्याधिनिबर्हणः ॥ ५ ॥ इत्याभाद्यं चूर्णम् । इति चूर्णानि ॥

अथ गुग्गुलवः ।

अथ त्रयोदशाङ्गुग्गुलुः—आभाऽश्वगन्धा हपुषा गुडूची शतावरी
गोधुरकं च रास्त्रा । श्यामा शटी घोषवती यवानी सनागरा चेति समं विचू-
र्ण्य ॥ १ ॥ सर्वैः समं गुग्गुलुमत्र दत्त्वा कुर्यात्ततोऽर्धं प्रणिधाय सर्पिः । अ-
र्धाक्षमात्रा गुटिकास्ततोऽस्य कार्याः पुरस्याथ दिनाननेऽद्यात् ॥ २ ॥ एकां
ससर्पिर्मधुना यथा न स्पर्शो भवेदन्तततेः कथंचित् । ततः कवोष्णं सलिलं
सुरां वा गव्यं पयो वाऽप्यथ सुद्रयूषम् ॥ ३ ॥ किं वा रसैर्मांसभवैर्निपीय
लवङ्गमेकं वदने निदध्यात् । कटिग्रहे गृध्रसिबाहुपृष्ठे हनुग्रहे जानुपदग्रहे च
॥ ४ ॥ संधिस्थिते चास्थिगते समीरे मज्जाश्रिते स्नायुगतेऽस्ति दुष्टे । शूलद्रव्ये
पार्श्वशिरोरुजायां मन्याग्रहे कण्ठहृदिग्रहे च ॥ ५ ॥ त्रयोदशाङ्गोऽयमतिप्र-
शस्तो जयेद्गद्वान्वातकफप्रभूतान् ॥ ६ ॥ इति योगतरङ्गिणीतस्त्रयोदशाङ्गु-
गुलुः ॥ अथ वीरसिंहावलोकतो द्वात्रिंशको गुग्गुलुः—त्रिकटु त्रिफला
मुस्तं विडङ्गं चव्यचित्रकौ । वचैला पिप्पलीमूलं हपुषा सुरदारु च ॥ १ ॥
तुम्बरं पौष्करं कुष्ठं विषा च रजनीद्वयम् । बाष्पिका जीरकं शुण्ठी सपत्रा च
दुरालभा ॥ २ ॥ सौवर्चलं विडङ्गं च क्षारौ द्विरदपिप्पली । सैन्धवं च समा-
नानि तुल्यं दत्त्वा च गुग्गुलुम् ॥ ३ ॥ साधयित्वा विधानेन कोलमात्रां
वटीं चरेत् । घृतेन मधुना वाऽपि भक्षयेत्तामहर्मुखे ॥ ४ ॥ आमं हन्यादुदावर्त-
मन्नवृद्धिं गुदकिमीन् । महाज्वरोपसृष्टानां भूतोपहतचेतसाम् ॥ ५ ॥ आना-
होन्मादकुष्ठानि पार्श्वशूलहृदामयान् । गृध्रसीं च हनुस्तम्भपक्षघातापतान-
कान् ॥ ६ ॥ शोफं स्त्रीहानमत्युग्रं कामलामपचीं तथा । नास्त्रा द्वात्रिंशको
ह्येष गुग्गुलुः कथितो महान् ॥ धन्वन्तरिकृतो योगः सर्वरोगनिकृन्तनः ॥ ७ ॥
अथ सारसंग्रहाद्योगराजगुग्गुलुः—चित्रकं पिप्पलीमूलं यवानी कारवी
तथा । विडङ्गान्यजमोदा च जीरकं सुरदारु च ॥ १ ॥ चव्यैला सैन्धवं कुष्ठं

रास्त्रा गोक्षुरधान्यकम् । त्रिफला मुस्तकं व्योषं त्वगुशीरं यवाग्रजम् ॥ २ ॥
 तालीसपत्रं गोक्षूरं लवङ्गं सर्जिका सटी । दन्ती गुडूची हपुषा वा-
 जिगन्धा शतावरी ॥ ३ ॥ प्रत्येकं कर्पमात्रं स्याच्चतुष्कर्पमयो मृतम् ।
 एतानि सुभिषक्पट्टे सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ४ ॥ यावन्त्येतानि
 चूर्णानि तावन्मात्रो हि गुग्गुलुः । संमर्द्य सर्पिषा गाढं स्निग्धभाण्डे
 निधाय च ॥ ५ ॥ ततो मात्रां प्रयुज्जीत यथेष्टाहारवानपि । योगराज इति
 ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ॥ ६ ॥ आमवातादिवातादीन्कृमीन्दुष्टव्रणा-
 नपि । ह्रीहगुल्मोदरानाहदुर्नामानि विनाशयेत् ॥ ७ ॥ अग्निं च कुरुते दीप्तं
 रेतोवृद्धिं बलं तथा । वातरोगाञ्जयत्याशु संधिमज्जगतानपि ॥ ८ ॥ पादग्रहं
 क्रोष्टुशीर्षं मन्यास्तम्भं हनुग्रहम् । कर्णग्रहं कर्णशूलं शिरःशूलं मरुकृतम् ॥
 रास्त्राक्राथेन हन्त्येष केवलो वा प्रशस्यते ॥ ९ ॥ इति योगराजगुग्गुलुः ॥
 अथ षडशीतिगुग्गुलुः—^१सैर्ययासविषादारुव्याघ्रीयुक्कविकावृषम् । कृ-
 ष्णाब्दोद्ग्राधनाभीरुवाढ्यालं मिशिवेल्लरी ॥ १ ॥ पथ्या शुण्ठी छिन्नरुहा श-
 ध्यारग्वधगोक्षुरम् । विशाखा मोदकी तिक्ता ग्रन्थिभार्गी विदारिका ॥ २ ॥
 अलम्बुषा हस्तिकर्णी बस्तगन्धा विषाणिका । शिवाक्षं मुशलीकौन्तीकाकोली-
 दीप्ययुग्मकम् ॥ ३ ॥ त्रिवृद्धन्ती शिखी शृङ्गी कोकिलाक्षो दुरालभा । पञ्च-
 मूलं महद्वीरतरुः कुष्ठं च जोङ्गकम् ॥ ४ ॥ जातीपत्रीफलैलं च केशरं त्वक्कि-
 रातकम् । कुङ्कुमं देवकुसुमं विशाला निशिसैन्धवम् ॥ ५ ॥ मन्दारमूलं
 कृमिजिद्धेमदुग्धा रविप्रिया । गजपिप्पलयपामार्गो वानरी नक्तमालकः ॥ ६ ॥
 एतैः रास्त्रा समा चाऽभौ द्विगुणा तैः पुरःसमः । सूतं गन्धं गुहिङ्गुलं च टङ्गणं
 लोहमभ्रकम् ॥ ७ ॥ शुल्बं वङ्गं सूतभस्म नागं ताप्यमयोरजः । मिलितं
 पुरपादं च सर्वमेकत्र कारयेत् ॥ ८ ॥ पचेच्चतुर्गुणे काथे पुरं षट्कदुजे पुरा ।
 तुर्यांशशेषिते काथे पूते चात्र विनिक्षिपेत् ॥ ९ ॥ चूर्णानि पुरमुख्यानि पा-
 चयेन्मृदुवह्निना । यावद्धनतरं तावद्दुटिकाः कारयेत्ततः ॥ १० ॥ स्वर्णप्रमा-
 णाः सेव्यास्ता मधुसर्पिःसमन्विताः । सप्तधातुगतान्वाताज्जिरास्त्रायस्थि-
 संधिगान् ॥ ११ ॥ सामान्निरामान्संसृष्टाञ्छ्लेष्मजान्घ्नन्ति केवलान् । यक्षमा-
 णमग्निमान्धं च ज्वरं धातुगतं तथा ॥ १२ ॥ गुल्फजानूरुक्कट्युरुद्रहत्कु-
 क्षिकक्षगान् । अंसमन्याहनुश्रोत्रभ्रूललाटाक्षिशङ्खगान् ॥ १३ ॥ प्रमेहं मूत्र-
 कृच्छ्रं च शूलमाध्मानमश्मरीम् । किं पुनर्मैदकान्वातान्प्रत्यङ्गस्थाञ्जयत्य-
 लम् ॥ १४ ॥ गुग्गुलुः षडशीतिर्वै नाम्ना भोजेन कीर्तितः । क्षीयमाणेन
 शिष्येण प्रार्थितेन पुनः पुनः ॥ १५ ॥ स एष राजयोगोऽयं न देयो यस्य
 कस्यचित् । वत्सरेणास्य योगेन षण्ढोऽपि प्रमदाप्रियः ॥ १६ ॥ वाजीकरण-

मन्यच्च परं नास्माद्विशेषतः । गुणोऽस्य सेवनान्नित्यं यः स्यात्स स्याद्भवीमि-
किम् ॥ १७ ॥ एष नो परिहार्यस्तु पानभोजनमैश्वर्यैः । इति षडशीतिगुग्गु-
लुः । अथ रास्नाद्यो गुग्गुलुः—रास्नामृतैरण्डसुराह्वविश्वं तुल्येन गाढं
च पुरेण मर्द्यम् । खादेत्समीरी सशिरोगदी च नाडीव्रणी चापि भगंदरी च
॥ १ ॥ इति गुग्गुलवः ॥

अथ तैलानि ।

अथ लघुविषगर्भतैलम्—तैलाढके समतुपाम्बुहयारिहेमनिर्गुण्डिभा-
स्करशिफाश्वतया तु सिद्धम् । धतूरकुष्ठफलनीविपहेमदुग्धारास्नाहयारिक-
टभीमरिचोपचित्राः ॥ १ ॥ मांसीवचादहनसर्षपदेवदारुदार्वीनिशारुबुजतु-
त्रिफलासमङ्गाः । पिष्ट्वा क्षिपेत्पलमिता विषगर्भमेततैलं समस्तपवनामयना-
शनं स्यात् ॥ ३ ॥ अथ द्वितीयं लघुविषगर्भतैलम्—धतूरस्य रसस्य
पञ्चकुडवं तैलं तथा काञ्जिकं ग्रस्थानां च चतुष्टयं गदवचा त्रिंशत्परं शाण-
काः । हृद्धात्रीमरिचात्पृथङ् नवविषात्षट् स्वर्णबीजात्पटोः स्युः सप्ताधिकविं-
शतिः परिमितं तीव्रानिलध्वंसनम् ॥ १ ॥ पक्षाघातं हनुस्तम्भं मन्यास्तम्भं
कटिग्रहम् । पृष्ठत्रिकशिरःकम्पं सर्वाङ्गग्रहणं तथा ॥ २ ॥ इति द्वितीयम् ।
अथ महाविषगर्भतैलम्—कनकस्य च निर्गुण्डी तुम्बिनी च पुनर्नवा । वाता-
रिश्वाश्वगन्धा च प्रपुन्नाटं सचित्रकम् ॥ १ ॥ सौभाज्जन काकमाची कलिकारी
च निम्बकम् । महानिम्बेश्वरी चैव दशमूलं शतावरी ॥ २ ॥ कारवल्ली सा-
रिवा च श्रावणी च विदारिका । वज्राकौ मेषशृङ्गी च करवीरद्वयं वचा ॥ ३ ॥
काकजङ्घा त्वपामार्गो बला चातिबलाद्वयम् । व्याघ्री महाबला वासा सोम-
वल्ली प्रसारिणी ॥ ४ ॥ पलोन्मितानि चैतानि द्रोणेऽम्भसि विनिक्षिपेत् ।
पचेत्पादावशेषेऽस्मिन्कल्कस्य कुडवं क्षिपेत् ॥ ५ ॥ त्रिकटुं विषतिन्दुं च रास्ना
कुष्ठं विषं घनम् । देवदारुर्वत्सनाभो द्वौ क्षारौ लवणानि च ॥ ६ ॥ तुल्यकं
कट्फलं पाठा भार्गी च नवसागरम् । त्रायन्ती धन्वयासं च जीरकं चेन्द्र-
वारुणी ॥ ७ ॥ तैलप्रस्थं समादाय पाचयेन्मृदुवह्निना । विषगर्भमिदं नास्ना
सर्वान्वातान्यपोहति ॥ ८ ॥ वक्षोरुकटिजङ्घानां संधानं श्रेष्ठमेव च । गृ-
ध्रसीं च महावातान्सर्वाङ्गग्रहणं तथा ॥ ९ ॥ दण्डापतानकं चैव कर्णनादं च
शून्यताम् । वनमध्ये यथा सिंहात्पलायन्ते यथा मृगाः ॥ १० ॥ तथाऽश्वगज-
भग्नानां नराणां च चतुष्पदाम् । नाशयेन्नात्र संदेहो विषगर्भस्य लेपनात्
॥ ११ ॥ इति महाविषगर्भतैलम् । अथ प्रसारिणीतैलम्—समूलपत्राशु-
त्पाद्य जातसारां प्रसारिणीम् । कुट्टयित्वा पलशतं कटाहे समधि-
श्रयेत् ॥ १ ॥ दध्नस्तत्राऽऽढकं दद्याद्विगुणं चाम्लकाञ्जिकम् । भेषजानि तु
पेप्याणि तत्रेमानि समावपेत् ॥ २ ॥ शुण्ठीपलानि पञ्चैव रास्नायाश्च पल-

द्वयम् । प्रसारिणी पले द्वे च द्वे पले मधुकस्य च ॥ ३ ॥ एतत्सर्वं समा-
लोड्य शनैर्मृद्वग्निना पचेत् । एतत्प्रभञ्जने श्रेष्ठं नस्यकर्मणि शंस्यते ॥ ४ ॥
एकाङ्गग्रहणं वाऽपि सर्वाङ्गग्रहणं तथा । अपस्मारं तथोन्मादं विद्रधिं मन्दव-
ह्निताम् ॥ ५ ॥ त्वग्गताश्चापि ये वाताः शिरासंधिगताश्च ये । अस्थिसंधि-
गता ये च ये च शुक्रान्तरे स्थिताः ॥ ६ ॥ सर्वान्वातामयाञ्चूनं नाशयत्येव
सर्वथा । हयं नरं गजं वाऽपि वातजर्जरितं भृशम् ॥ ७ ॥ सद्यः प्रशमयेत्तै-
लमेतन्नात्र विचारणा । इन्द्रियस्य प्रजननं बन्ध्यानां च प्रजाकरम् ॥ ८ ॥
वृद्धानां बालकानां च स्त्रीणां राज्ञां हितं परम् । पङ्गुर्वा पीठसर्पी वा पीत्वै-
तत्संप्रधावति ॥ ९ ॥ इति प्रसारणीतैलम् । अथ नारायणतैलम्—बि-
ल्वाग्निमन्थस्योनाकपाटलापारिभद्रकाः । प्रसारिण्यश्वगन्धा च बृहती कण्ट-
कारिका ॥ १ ॥ बला चातिबला चैव श्वदंष्ट्रा सपुनर्नवा । एषां दशपलान्भा-
गांश्चतुर्द्वौणाम्भसा पचेत् ॥ २ ॥ पादशेषं परिस्त्राव्य तैलपात्रं प्रदापयेत् ।
शतपुष्पा देवदारु मांसी शैलेयकं वचा ॥ ३ ॥ चन्दनं तगरं कुष्ठमेलापर्णी-
चतुष्टयम् । रास्ना तुरगगन्धा च सैन्धवं सपुनर्नवम् ॥ ४ ॥ एषां द्विपलि-
कान्भागान्पेषयित्वा विनिक्षिपेत् । शतावरीरसं चैव तैलतुल्यं प्रदापयेत्
॥ ५ ॥ आजं वा यदि वा गव्यं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् । पाने बस्तौ तथाऽ-
भ्यङ्गे भोज्ये नस्ये प्रयोजयेत् ॥ ६ ॥ अश्वो वा वातभग्नो वा गजो वा यदि
वा नरः । पङ्गुर्वा भग्नहस्तो वा भग्नपादोऽथवा नरः ॥ ७ ॥ अधोभागे च
ये वाताः शिरामध्यगताश्च ये । दन्तशूले हनुस्तम्भे मन्यास्तम्भे-
ऽपतन्नके ॥ ८ ॥ एकाङ्गग्रहणे वापि सर्वाङ्गग्रहणे तथा । क्षीणेन्द्रिया
नष्टशुक्रा ज्वरक्षीणाश्च ये नराः ॥ ९ ॥ लालाजिह्वाश्च बधिरा विस्वरा
मन्दमेधसः । मन्दप्रज्ञा च या नारी या च गर्भं न विन्दति ॥ १० ॥ वा-
तातौ वृषणौ येषामन्नवृद्धिश्च दारुणा । एतत्तैलं वरं तेषां नाम्ना नारायणं
स्मृतम् ॥ ११ ॥ इति नारायणतैलम् । अथ लघुनारायणं तैलम्—ए-
लांबलानतकुचन्दनदारुसौम्याशैलेयकुष्ठकुटिलावरुणशृतेन । तैलं सदुग्ध-
मिति सिद्धमभीरुकन्दतोयेन तेन तुलितेन समीरणम् ॥ १॥ अथ शतावरी-
नारायणतैलम्—शतावरी चांशुमती पृश्निपर्णी शटी बला । एरण्डस्य च
मूलानि बृहत्यौ पूतिकस्य च ॥ १ ॥ गवेधुकस्य मूलानि तथा सहचरस्य च ।
एषां दशपलान्भागाञ्जलद्रोणे पचेद्बुधः ॥ २ ॥ पादावशेषे पूते च गर्भे चै-
तान्समावपेत् । पुनर्नवा वचा दारु शताह्वा चन्दनोऽगरुः ॥ ३ ॥ शैलेयं
तगरं कुष्ठं तृटी मांसी स्थिरा बला । अश्वाह्वा सैन्धवं रास्ना मक्षिष्ट घनचो-
रकम् ॥ ३ ॥ कौन्तीप्रियङ्गुस्थौणेयं पलार्धं कल्पयेत्पृथक् । गव्याजपयसोः
प्रस्थौ द्वौ वा तत्र प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥ शतावरीरसप्रस्थं तैलप्रस्थं भिषक्प-
चेत् । लवङ्गनखकङ्गोलवेष्टकं जातिकोशकम् ॥ ६ ॥ त्वक्कटुकं च कर्पूरं

तुरुष्कं श्रीनिवासकम् । स्पृक्काकुङ्कुमकस्तूरीर्दद्यादत्रावतारिते ॥ ७ ॥ अस्य तैलस्य सिद्धस्य शृणु वीर्यमतः परम् । अश्वानां वातरुग्णानां कुञ्जराणां तथा नृणाम् ॥ ८ ॥ तैलमेतत्प्रयोक्तव्यं सर्ववातविकारनुत् । आयुष्मांश्च नरः पीत्वा निश्चयेन दृढो भवेत् ॥ ९ ॥ गर्भमश्वतरी विन्ध्यात्किं पुनर्मानुषी तथा । तृच्छूलं पार्श्वशूलं च तथैवाध्वावभेदकम् ॥ १० ॥ अपर्चीं गण्डमालां च वातरक्तं हनुग्रहम् । कामलामश्वरीं पाण्डुमुष्मादं विनियच्छति ॥ ११ ॥ नारायणेन गदितं तैलमेतत्कृपालुना । नारायणमिति ख्यातं नाम्ना तस्मादिदं भुवि ॥ १२ ॥ इति शतावरीनारायणतैलम् । अथ शतावरीतैलम्—रुद्रारुद्रविडिप्रियङ्गुतगरं त्वक्पत्रकौन्तीनखैर्मासीसर्जरसाम्बुचन्दनवचाशैलेयलामज्जकैः । मञ्जिष्टासरलागुरुद्विपबलारास्त्राश्वगन्धावरीवर्षाभूमिसिसिन्धुभिश्च सकलैरेभिः पचेत्कल्कितैः ॥ १ ॥ तुल्यं गोपयसा वरीरससमं तैलं विपक्वं मृदु स्याद्वातघ्नमिदं नृणामिति वरीतैलं भिषक्पूजितम् ॥ २ ॥ अथ दशमूलादि-तैलम्—दशमूलकपायविपक्वमथो पयसा च समेन बलाढदनलैः । नृटिचन्दनदारुलतानलदैरुणाजतुकुष्ठवचाकुटिलैः ॥ १ ॥ इति पक्वमिदं तिलजं जयति प्रसभं पवनामयमाशु नृणाम् । बलशुक्रविभारुचिवह्निकरं नृपवृद्धशिशुप्रमदासु हितम् ॥ २ ॥ अथ सुगन्धितैलम्—तगरागुरुकुङ्कुमकुन्दुरुभिः सलवङ्गवराङ्गकुरङ्गमदैः । सरलामरदारुदलद्रविडीनखकेसररुङ्गनलिनीनलदैः ॥ १ ॥ सतुरुष्कहरेणुबलाकथनैरिति तैलमिदं पयसा विपचेत् । नृपतिप्रमदाशिशुभिः स्थविरैरुपयोज्यमिदं पवनामयजित् ॥ २ ॥ अथैलादि—एलामुरासरलशैलजदारुकौन्तीचण्डाशटीनलदचम्पकहेमपुष्पम् । स्थौणेयगन्धरसपूतिदलामृणालश्रीवासकुन्दुरुनखाम्बुलवङ्गकुष्ठम् ॥ १ ॥ कालीयकं जलदकर्कटचन्दनश्रीर्जात्याः फलं सविद्रसं सह कुङ्कुमेन । स्पृक्कातुरुष्कलघुलम्भतया विनीय तैलं बलाकथनदुग्धदधिप्रपक्वम् ॥ २ ॥ मन्दानलेन हितमेतदुदाहरन्ति वातामयेषु बलवर्णहुताशकारि ॥ ३ ॥ अथ महालक्ष्मीनारायणतैलम् । सुश्रुतात्—दशशताङ्गप्रिशिवेतरमल्लिका दहननागबलारुबुवाष्पिका । कितवलालङ्गकीवनमल्लिका कुटजहेतुवृकीखरशृङ्गिका ॥ १ ॥ मधुकबीजकचम्पकमालतीसुहिबलाकुमिहाप्रपुनाटकाः । शतदलाश्ववराहकवासनीरुबुकधन्वनपिप्परिरक्तिका

टीका—दशशताङ्गिती—दशशताङ्गिः शतावरी । शिवेतरा बाबरी । मल्लिका मोगरा । दहन चित्रका । नागबला चिकणाभेद । रुबुः परंढमूलं । बाष्पिका बाकली । कितवः धतूरः । लांगलकी कळलावी । वनमल्लिका कुडा । कुटजः तत्फलं । हेतु प्रसिद्धः । वृकी पहाडमूल । खरशृङ्गी प्र. ॥ १ ॥ मधुकैति—मधुकः ज्येष्ठमधः । बीजकः विबळा । चंपकः प्र० । मालती जाती । स्नुही निवडुंग । बला चिकणा । कुमिहा वावडिङ्ग । प्रपुनाटकः तरवड । शतदला शतपुष्पा । अश्वः अश्वगन्धा । वराहकः वाराहीकंद । वासनी वासनवेला । रुबुक परंढ । धन्वन धामण । पिप्परि नादरुखी । रक्तिका पतंग ॥ २ ॥ अतिबलेति—अतिबला चिकणाभेद । द्विविधा कृष्णशुक्लभेदेन । शुक्रवृक्षः । दाडिमी दाडिबसार । शिखरी अपामार्गः । शास्त्रमल्लिका

॥ २ ॥ अतिबलाद्विविषाशुकदाडिमीशिखरिशालमलिसिन्धुकतुण्डिका । सु-
 विरपङ्गुलकाशसुमर्कटीवरककुम्भनिकुम्भजयन्तिका ॥ ३ ॥ कुसरिपिच्छलि-
 काकरमर्दिकाकसनमर्दनकेवणिरूपिका । अतसिवत्सकगृध्रमहीरुहो विदुलकु-
 ज्जरिकाद्वितयोच्चटाः ॥ ४ ॥ दधिफलसुववृक्षमृगादनीमधुरसामगधाजलप-
 त्रिका । रुदतिका पृथगेभ्यजटाः सुधीः समनुगृह्य तथैव दशाङ्गिकम्
 ॥ ५ ॥ दशाङ्गिकं दशमूलं तच्च ॥ बिल्वाम्बिमन्थस्योनाककाशमरीपाटलायुतैः । शा-
 लिपर्णीपृश्निपर्णीबृहतीद्वयगोक्षुरैः इति ॥ ६ ॥ मुनितरुमलयतपनापामार्ग-
 बीजनक्तमालशृङ्गाटी । प्रपुञ्जाटो हेमदुग्धा फलेरुहाणां च बीजानि ॥ ७ ॥
 धात्रीशिग्रुकरज्जबबुलमधुष्टीलेङ्गुदीनेपतीनीपारग्वधरक्तसारबदरीविस्फूर्ज-
 नः काञ्चनः । चिञ्चोदुम्बरतापसीद्रुमयुगांकोलद्वयं सल्लकी गायत्रीकलिवृक्ष-
 भण्डिकदराश्वत्थाभयापादपाः ॥ ८ ॥ भल्लीकिंशुकमेषशृङ्गिकिणिहीभूताङ्कुशः
 शल्यकः कोशाम्राजुनपारिभद्रकमहावृक्षाः कुमार्यासनैः । कुम्भी रक्तधनं-
 जयो नियमनो वातारिमोखाह्वया एतेषां परिगृह्य वल्कलमथो रम्भा विदारी
 वरी ॥ आलूकक्षिरकन्दवाजिसुवहा कर्कोटिका गृष्टिका खर्जूरी सुरसूरणप्र-

काटैसांवरी । सिंधुक निर्गुंडी । तुंडिका कटुतुंडिका । सुविरः देवनलः । पंगुल फांगली ।
 काशः कसाड । मर्कटी खाजकुहरी । वरकः मांगी । कुंभः त्रिवृत् । निकुंभ दन्ती । जयन्ती
 टाकळी । कुसरी प्र० । पिच्छलिका गोधणी । करमर्दिका करवंद । कसनमर्दनः कासविदा ।
 केवणी प्र० । रूपिका पाच । अतसि जवस । वत्सक काळाकुडा । गृध्रमहीरुह गीधासाव ।
 विदुलः वेतस । कुंजरिकाद्वितयं सार इति पृथुसाल इति च । उच्चटा श्वेतगुंजा । दधिफलः
 कपित्थः । सुववृक्षः विकंकतः । मृगादनी इन्द्रवारुणी । मधुरसा मूर्वा । मगधा पिंपळी । जल-
 पत्रिका पञ्चिनी । रुदतिका रुदती । दशाङ्गिकं दशमूलं ॥ ५ ॥ पंचसप्ततिरिमानि औषधानां
 मूलानि ग्राह्याणि ॥ ६ ॥ मुनितरुरिति—मुनितरु अगस्त्यः । मलयः चंदनः । तपनः भल्लातकः ।
 अपामार्गबीजं प्रसिद्धं । नक्तमालः करंजः । शृङ्गाटी शृङ्गाटकः । प्रपुञ्जाटः तरवड । हेमदुग्धा
 कालहेरी । फलेरुहः सागरगोटे । एतेषां बीजानि ग्राह्याणि ॥ ७ ॥ धात्रीति—धात्री
 आमलकी । शिग्रुः शैवगा । मधुष्टीला मधुवृक्षः । इंगुदी हिंगणबैठ । नेपती प्र० । नीपः
 कदंबः । आरग्वधः बाहवा । रक्तसारः सिसवा । बदरी प्रसिद्धा । विस्फूर्जनः देभुरणी ।
 कांचनः कांचनवृक्षः । चिंचा प्र० । उदुंबर प्र० । तापसीद्रुमयुगं अगस्त्यवृक्षद्वयं । अंकोलद्वयं
 आंकोल पोय्या आंकोल । सल्लकी सलई । गायत्री खदिर । कलिवृक्ष वेहडा । भंडी मंजिष्ठा ।
 कदर श्वेतखदिर । अश्वत्थ प्र० । अभया हरीतकीवृक्षः । एते वृक्षाः सप्तत्रा ग्राह्याः ॥ ८ ॥
 भल्लीति—भल्ली तपनः । किंशुकः पलाशः । मेषशृङ्गी मेढाशिगी । किणिही, किन्हयी ।
 भूताङ्कुशः कात्रीनिर्गुंडी । शल्यकः मदनः । कोशाम्रा कोकंबीति लोके । अर्जुनः ककुभः ।
 पारिभद्रः निंबतरुः । महावृक्षः वज्री । कुमारी कौरफड । असनः । प्र० । कुम्भी द्रोण-
 पुष्पी । रक्तधनंजयः रक्तार्जुन । नियमनः वायवर्णी । वातारिः वावळा । मोखा
 खुलखुला । एतेषां वृक्षाणां वल्कलं ग्राह्यं । अथो अनंतरं कंदग्राह्यत्वमाह—रम्भा कदली ।
 विदारी भुयर्कोहळा । वरी शतावरी । आलूक अळवाचा कंद । क्षीरकंद प्र० । वाजी
 अश्वगंधा । सुवहा मुंगसवेलीकंद । कर्कोटिका वंध्याकटौटीकंद । गृष्टिका डुकरकंद ।

भृतिकान्कन्दंश्च साधूनपि ॥ ९ ॥ छिन्नाटरूपकशिवप्रियमापपर्णीज्योति-
ष्मती युगुलपर्वटमेपवल्ली । भूपर्णीकासजटिकाभृगुराजमुण्डीयुक्तैरीकुलकयु-
ग्मफलार्कभक्ता ॥ १० ॥ भूनिम्बवह्निदमनो गिरिकर्णिकायुक् चिल्लारकाख-
दिरकाविजयाकुमार्यः । गङ्गावती युगकवैष्णविका सुगन्धा लम्बा सुपर्णल-
तिका सहदेविका च ॥ ११ ॥ गोपीयुगं मृगखुरी सरणी च कङ्कुमोर्यश्च ना-
गदमनी मधुपुष्पिका च । एतानि गृह्य निखिलानि तथाऽब्दयुग्मं चूतास्थि-
तोतरुहो वटसंप्रोहान् ॥ १२ ॥ भूशर्करामदकराकुसुमं च पीलुबर्हि-
शिखां कनककेतकिसंप्रोहान् । व्याघ्राटिकाङ्घ्रिकरकं तिमिरोत्थसारं कण्डूक-
पित्थभवलोहजटां गृहीत्वा ॥ १३ ॥ मुष्टिप्रमाणं विधिनोद्धृतानि द्रौणैर्ज-
लानां तिसृभिर्विपाच्य । पादावशेषं परिगृह्य पूतं प्रस्थत्रयं तत्र तिलो-
त्थतैलम् ॥ १४ ॥ हिंसा रक्ता वरिष्ठा सुररजनियुगं सैहलं गन्धसारं शृङ्गारं
नागपुष्पं पलितकटुफलं रक्तकाष्ठं नतं च । षड्रन्थाजोङ्गकाश्चारुचकररुहं
रोचनारक्तसारं कोरञ्जीपालकाह्वं कृमिरिपुमधुकं सिन्धुजं स्निग्धदारु ॥ १५ ॥
तालीसं जातिसस्यं मलयजममृतं पञ्चकं जातिपत्रीसेव्यं पञ्चं यवानी कतक-

खर्जूरी मुशलीकंद । सुरः अमरकंद । सूरणः प्र० । एते कंदाः सम्यक् ग्राह्याः ॥ ९ ॥
छिन्नेति—छिन्ना गुडूची । अटरूपक वासा । शिवप्रियः विल्वः । माषपर्णी माषवेल ।
ज्योतिष्मतीयुगुलं कांगोणीद्वयं । पर्वटः पित्तपापडा । मेघवल्ली मेढवेल । भूपर्णिका वासन
बेल । सजटिका गुंजा । भृगुराजः माका । मुंडी प्र० । युक्कतैरी निर्गुंडीद्वयं । कुलकयुग्मं
पटोलीद्वयं । फला उत्तर्णी । अर्कभक्ता आदित्या । इमानि समूलपत्राणि ॥ १० ॥ भूनि-
बेति—भूनिबः चिराईत । वह्निः चित्रकः । दमनः दवणा । गिरिकर्णिकायुग्ं विष्णुक्रांताद्वयं ।
चिल्लारका लाजाङ्गं । खदिरका प्र० । विजया भृंगी । कुमारी कोरफड । गंगावतीद्वयं प्रसिद्धं
वैष्णविका वृद्धदारकः । सुगन्धा राखा । लंबा कटुतुंबी । सुपर्णलतिका कांडवेल । सह-
देविका महाबला ॥ ११ ॥ गोपीयुगमिति—गोपीयुगं सारिवाद्वयं । मृगखुरी हरणखुरी ।
सरणी हरिणवल्ली । कंगुः कांग । मोर्यः मूर्वा । नागदमनी प्रसिद्धा । मधुपुष्पिका
मधुपुष्पा । एतानि समूलपत्राणि ॥ अब्दयुग्मं मुस्ताद्वयं । चूतास्थि आम्रास्थि । तरुह
बादगुड (बांधे) । वटसंप्रोहाः प्र० ॥ १२ ॥ भूशर्करेति—भूशर्करा कडुमाकडकंद ।
मदकराकुसुमं धातकीकुसुमं । पीलु प्र० । बर्हिशिखा मयूरशिखा । कनक केतकिसंप्रोहाः प्र० ।
व्याघ्राटिका वाषांटी । अङ्घ्रिकरकं करवंदी । सारं दाडिमं । कंडू कुहिलीमूलं । कपित्थमूलं
प्र० । लोहजटा लोखंडी ॥ १३ ॥ मुष्टीति—मुष्टिप्रमाणानि औषधानि गृहीत्वा तिसृभिः
द्रोणजलैः पक्त्वा पादशेषं ग्राह्यं तत्रपूतं क्राथे तिलोत्थतैलं प्रस्थत्रयं प्रदेयमिति सूत्रार्थः ॥ १४ ॥
अथ कलकद्रव्याण्युच्यन्ते—हिस्तेत्यादि-द्विज्ञा जटामांसी । रक्ता मंजिष्ठा । वरिष्ठा कृष्णवा-
सकः । सुरः देवदारु । रजनियुगं द्वेहरिद्रे । सैहलं त्वक् । गंधसारं चंदनं । शृगारं लवंगं ।
नागपुष्पं नागकेशरं । पलितं गुग्गुलुः । कटुफलं प्रसिद्धं । रक्तकाष्ठं पतंगं । नतं तगरं ।
षड्रन्था वचा । जोगकः कृष्णागर । अश्वः अश्वगंधा । रुचकं संचलं । कररुहं नख ।
रोचना गोरोचनं । रक्तसारं रक्तचंदनं । कोरञ्जी सौराष्ट्री । पालकाव्हं कोष्ठ । कृमिरिपु
वावडिंग । मधुकं यष्टीमधु । सिन्धुजं सैधवं । स्निग्धदारु तेल्या देवदारु । तालीसं प्र०
जातिसस्यं जातिफलं । मलयजं मलयागर । अमृतं वत्सनाग । पञ्चकं कमलाक्ष । तिजा-

तुखती केसरं पद्मकस्य । पाठीनो राजपुत्रीजलधरचविका सोमवल्को मधूकं
पाक्यः स्वर्जी शताह्वा वनजमगधजा मत्स्यपीता शटी च ॥ १६ ॥ कारुञ्ची-
पुत्रजीवास्तपनकनकजं बीजभृङ्गाररेची वृक्षाम्लं देवधूपो जरणरसरसाकल्क-
राकुट्टिमं च ॥ मृद्वीकासाकुरण्डं नियमनधनिका धन्वयासं च ब्राह्मी विश्वं
कैरातकेशुक्षुरककरिकणामोदकं बस्तमोदा ॥ १७ ॥ शक्राह्वा तिल्वलाख्यो-
च्छुरपुरसुपवी मेथिका शृङ्गिका च प्रत्येकं वै गृहीत्वा पिचुदलतुलिता
मुञ्च सकृत्प्रविष्टा । तान्निक्षिप्याऽऽशु पात्रे शुचिजनविहृतं निर्मलं वैद्यवर्यो
गव्यं वा दुग्धमाजं युगपरिगणितं पूर्वमुक्ताच्च तैलात् ॥ १८ ॥ नारायण्याः
स्वरसकमथो रङ्गमाता रसं च तैलोन्मानं विपच रविजे भोजयेत्प्रत्यहं वा ।
तस्मिन्पाकं गतवति यथाविध्यनुप्रक्षिपेच्च सौगन्ध्याप्त्यै शिशिरकिरणं कुङ्कुमं
वेधमुख्यम् ॥ १९ ॥ गोधूमाख्यं सुसुरभियुतं गन्धकचूर्करं च जातीपुष्पं
शतदलसमं मल्लिकं चम्पकं च । लोवानेन त्वतिसुरभिते काचभाण्डे नि-
धाय तैलं चैतन्नृपतिसदने धारयेद्वैद्यवर्यः ॥ २० ॥ पाने बस्तौ विहितमशने
नावनेऽभ्यङ्गने च मातङ्गे वा मनुजहययोर्वातरोगाभिभूते । वाताष्टीलाग-
लहनुशिरोगृध्रसीपादशूलं पक्षाघातश्रवणनयनभूललाटे तु शूलम् ॥ २१ ॥
ऊरुस्तम्भादितबधिरतैकाङ्गरोगापतानं मन्यास्तम्भं त्रिकहृदयरुद्धमूकताक्षेप-
खाङ्ग्यम् । जिह्वास्तम्भं गतिविकलताकुष्ठतादन्तशूलं तून्यौ गुल्मं गुदक-
टिचरणभ्रंशगुल्फौ च सुप्तिम् ॥ २२ ॥ विश्वार्ची वा वृषणपवनं धातुवाता-
पतानं मूकं कम्पं जयति सकलान्वातरोगाननुक्तान् । रेतोवृद्धिं जनयति नवं
यौवनं पुंस्त्ववृद्धिं बुद्धिं प्राणं वितरति तथा पुष्टिमायुष्यकारि ॥ वन्ध्यायाः
पुत्रदं स्याज्ज्वरविहिततनौ शोषदौर्भाग्यहन्तृ तैलं भूपोपयोग्यं विनिगदित-
मिदं नाम नारायणं च ॥ २३ ॥ इति महालक्ष्मीनारायणतैलम् ॥ अथ
माषतैलम्—माषकाथे बलाकाथे रास्नाया दशमूलजे । यवकोलकुलत्थानां

पत्री प्र० । सेव्यं बालकः । पद्मं कमलं । यवानी अजमोदा । कतक निवलीच्या बिया ।
पद्मकेशर । पाठीन चित्रक । राजपुत्री राजरेणुका । जलधरः भद्रमुस्ता । चविका चवकः ।
सोमवल्क शुक्लखदिर मधूकं मोहा । पाक्यः यवक्षारः । स्वर्जी सज्जीक्षारः । शताह्वा शत-
पुष्पा । वनजं तुंबरः । मगधजा पिप्पली । मत्स्यपित्ता कटुकी । शटी कचोरा ॥ १६ ॥
कारुञ्चीति—कारुञ्ची बाफळी । पुत्रजीवा पुत्रजीवफलं । तपनं बिंबा । कनकजं कनक-
बीजं । भृङ्गारः माका । रेची तेड । वृक्षाम्लं तित्तिडीकं । देवधूपः गुग्गुलुः । धूपः । जरणं
जिरें । रसः राळ । रसा रास्ना । अकलकरा प्र० । कुट्टिमं दाडिमत्वक् । मृद्वीका द्राक्षा ।
साकुरण्डं अक्रोड । नियमनं निंब । धनिका प्र० । धन्वयासः धमासा । ब्राह्मी प्र० । विश्वं
शुंठी । कैरातं प्र० । क्षुरकः कोळिस्त्याचें बीज । करिकणा गजपिप्पली । अमोदकं ओवा ।
बस्तमोदा अजमोदा । शक्राह्वा इंद्रवारुणी । तिल्वलाख्यं लोभ्रः । छुरः कपिकच्छुमूलं ।
पुरः गुग्गुलुः । सुपवी कारवेल्लं । मेथिका प्र० । शृङ्गी कर्कटशृङ्गी । गव्यं दुग्धं वा अजा-
दुग्धं । नारायणीस्वरसस्तैलसमं ॥ १८ ॥

छागमांसरसे पृथक् ॥ १ ॥ प्रस्थं तैलस्य च प्रस्थं क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम् । रा-
स्नात्मगुससिन्धूत्थशताह्वैरण्डमुस्तकैः ॥ २ ॥ जीवनीयबलाव्योषैः पचेदक्ष-
मितैः पृथक् । हस्तकम्पे शिरःकम्पे बाहुकम्पेऽवबाहुके ॥ ३ ॥ बस्त्यभ्यञ्ज-
नपानेषु नावने च प्रयोजयेत् । मापतैलमिदं श्रेष्ठमूर्ध्वजत्रुगदापहम् ॥ ४ ॥
इति माषतैलम् ॥ अथ महाबलातैलम्—बलामूलकषायस्य दशमूलीकृ-
तस्य च । यवकोलकुलत्थानां काथस्य पयसस्तथा ॥ १ ॥ अष्टावष्टौ शुभा-
न्भागांस्तैलादन्ये तदेकतः । पचेदावाप्य मधुरं गणं सैन्धवसंयुतम् ॥ २ ॥
तथाऽगुरुं सर्जरसं सरलं देवदारु च । मज्जिष्ठाचन्दनं कुष्ठमेला कोलाञ्जनं
वरा ॥ ३ ॥ मांसी शैलेयकं पत्रं तगरं सारिवा त्वचा । शतावरी चाश्वगन्धा
शतपुष्पा पुनर्नवा ॥ ४ ॥ तत्संसिद्धं च सौवर्णे राजते मृन्मयेऽथ वा । प्र-
क्षिप्य सकलं सम्यक्सुगुप्तं स्थापयेद् बुधः ॥ ५ ॥ बलातैलमिदं ख्यातं सर्व-
वातविकारनुत् । यथाबलं भिषज्जात्रां सूतिकायै प्रदापयेत् ॥ ६ ॥ या च
गर्भार्थिनी नारी क्षीणशुक्रश्च यः पुमान् । क्षीणो वातैर्मर्महते मथिते पीडिते
तथा ॥ ७ ॥ भग्ने च च्छिन्नभिन्ने च सर्वथैव प्रयोजयेत् । सर्वानाक्षेपकादींश्च
वातव्याधीन्व्यपोहति ॥ ८ ॥ प्रत्यग्रधातुः पुरुषो भवेच्च स्थिरयौवनः । राज्ञा
त्वेतद्धि कर्तव्यं राजमान्यैस्तथा नरैः ॥ ९ ॥ इति महाबलातैलम् ॥ अथ
विजयभैरवतैलम्—रसं गन्धं शिलातालं सर्वं कुर्यात्समांशकम् । चूर्ण-
यित्वा ततः श्लक्ष्णमारनालेन पेषयेत् ॥ १ ॥ तेन कल्केन संलेप्य क्षौमं वस्त्रं
ततः परम् । घृताक्तां कारयेद्वर्तिमूर्ध्वभागे प्रदीपयेत् ॥ २ ॥ तस्याधःस्था-
पिते पात्रे तैलं पतति शोभनम् । लेपयेत्तेन गात्राणि भक्षयेदातुरः सदा
॥ ३ ॥ नाशयेत्क्षुततैलं तद्वातरोगानशेषतः । बाहुकम्पं शिरः कम्पं जङ्घा-
कम्पं ततः परम् ॥ ४ ॥ एकाङ्गं च तथा वातं हन्ति लेपान्न संशयः । रोग-
शान्त्यै सदा भक्ष्यं तैलं विजयभैरवम् ॥ ५ ॥ इति विजयभैरवतैलम् ॥ अथ
रास्नापूतिकतैलम्—दशमूलबलादारु अश्वगन्धा शतावरी । वरुणैरण्डनि-
गुण्डीतर्कारीशिग्रुमोरटम् ॥ १ ॥ सहाचरं चित्रमूलं करञ्जाङ्गोलमूलकम् ।
पुनर्नवां च भूपीलु अर्कपुष्पी दुरालभा ॥ २ ॥ जीवन्ती विषतिन्दुश्च वाता-
रिहिंस्त्राशिग्रुकम् । अलर्कयवलोलं च कुलित्थानां कषायकम् ॥ ३ ॥ एतेषां
च समां रास्नां पूतिकं च तयोः समम् । अष्टभागावशेषं तु कषायमवतार-
येत् ॥ ४ ॥ तत्पादं तिलतैलं च त्वजाक्षीरं च तत्समम् । गुग्गुलुं तगरं
मांसीं त्रिकटु त्रिफलानि च ॥ ५ ॥ चातुर्जातं कचोरं च विडङ्गामरदारु च ।
हिङ्गुरास्नावचातिक्तापाठायष्टिकचित्रकम् ॥ ६ ॥ प्रियङ्गुपिप्पलीमूलं च-
न्दनं चव्यदीप्यकम् । वरालं चम्पकं कुष्ठं मज्जिष्ठाभिसिर्षपम् ॥ ७ ॥
जातीफलं सुगन्धं च पाठोशीरं समांशकम् । एतत्तैलस्य षष्टांशं कल्कद्रव्या-

णि दापयेत् ॥८॥ सुमुहूर्ते सुनक्षत्रे नववस्त्रेण पीडयेत् । पानलेपननस्याद्यशि-
रोवस्तिषु पूजितम् ॥ ९ ॥ धनुर्वातान्तरायामं गृध्रसीमवबाहुकम् । आक्षेपके
व्रणायामे विश्वाच्यामपतन्नके ॥१०॥ आढ्यवाते हनुस्तम्भे शिरोवातापतानके ।
भ्रूशङ्खकर्णनासाक्षिजिह्वास्तम्भेऽवबाहुके ॥ ११ ॥ कलायखञ्जतापङ्कुसर्वाङ्गे
काङ्गमारुते । अर्दिते पादहर्षे च पक्षघाते प्रशस्यते ॥ १२ ॥ ऊरुस्तम्भं सुप्त-
वातं नाशयेन्नात्र संशयः । रास्त्रापूतीकनामैतत्तैलमात्रेयनिर्मितम् ॥ १३ ॥

इति तैलानि ।

अथ पञ्चतिक्तघृतम् ।

निम्बामृतावृषपटोलनिदिग्धिकानां भागान्पृथग्दशपलान् विपचेद्भटेऽपाम् ॥
अष्टावशेषितरसेन पुनश्च तेन प्रस्थं घृतस्य विपचेत्पिचुभागकल्कैः ॥ १ ॥
रास्त्राविडङ्गसुरदारुगजोपकुल्याद्विक्षारनागरनिशामिशिचव्यकुष्ठैः । तेजोवती-
मरिचवत्सकदीप्यकाग्निरोगिण्यपुष्करवचाकणमूलयुक्तैः ॥ २ ॥ मञ्जिष्टया-
ऽतिविषया त्रिवृता यवान्या संशुद्धगुग्गुलुपलैरपि पञ्चसंख्यैः । तत्सेवितं
घृतमतिप्रबलं समीरं संध्यस्थिमज्जगतमप्यपहंति कुष्ठं ॥ ३ ॥ नाडीव्रणार्बु-
दभगंदरगण्डमालाजत्रूर्ध्ववातगदगुल्मगुदोत्थमेहान् । यक्ष्मारुजं श्वसनपी-
नसकासशोफहृत्पाण्डुरोगमथ विद्रधिवातरक्तम् ॥ ४ ॥ इति पञ्चतिक्तघृ-
तम् ॥

अथाजमोदादिवटी ।

अजमोदा कणा वेलं शतपुष्पाऽग्निनागरम् । मरीचं सैन्धवं दारु भागैकं च
पृथक्पृथक् ॥ १ ॥ पञ्चभागा हरीतक्याः शुण्ठी च दशभागिका । वृद्धदारो-
र्दशांशाः स्युः पट्त्रिंशद्गुडभागकाः ॥ २ ॥ गुडपाकैर्वटीः कृत्वा मात्रा कर्ष-
प्रमाणिका । संधिवाते प्रदेयं तत्त्वामवाते सुदारुणे ॥ उष्णोदकानुपानेन सर्व-
वातं नियच्छति ॥ ३ ॥

अथ वाते कथिका ।

निर्गुण्डीदीप्यकं वह्निहरिद्राविश्वभेषजम् । तक्रं काञ्जिकसंपक्रं वातघ्नं
वह्निवर्धनम् ॥ १ ॥

अथ स्वेदलेपविधिः ।

एरण्डार्ककरञ्जमोरटवलातर्कारिसोमस्नुहीनिर्गुण्डीतलपोटशिशुवरणास्फो-
ताश्वगन्धादिजैः । पत्रैः काञ्जिकमूत्रचुक्रसहितैः स्विन्नैर्घटस्थैः कृतः स्वेदः
कुद्धसमीरणार्तवपुषां सद्यः सुखोत्पादकः ॥ १ ॥ निर्गुण्ड्या चोपनाहं च सक
रञ्जैः सपित्तलैः । भेषजैः सेकलेपादि त्वभिषेकादिकं चरेत् ॥ २ ॥ शतपुष्प-

सुरद्वुदिनेशपयो गदरामठसिन्धुभवं हरति । अपि लेपनतोऽस्थिगतं सरुतं
कटिसंधिभवं त्रिदिनात्सततम् ॥ ३ ॥

अथ महाशाल्वणयोगः शार्ङ्गधरात्—कुलत्थमापगोधूमैरतसीतिलस-
र्पपैः । शतपुष्पादेवदारुशोफालीस्थूलजीरकैः ॥ १ ॥ एरण्डबिल्वमूलैश्च रा-
स्नामूलैश्च शिग्रुभिः । मिशिकृष्णाकुठेरैश्च लवणैरम्लसंयुतैः ॥ २ ॥ प्रसारण्य-
श्वगन्धाभ्यां बलाभिर्दशमूलकैः । गुडूच्या वानरीबीजैर्यथालाभं समाहृतैः
॥ ३ ॥ क्षुण्णैः स्त्रिन्नैश्च वस्त्रेण धृतैः संस्वेदयेन्नरम् । महाशाल्वणसंज्ञोऽयं योगः
सर्वानिलार्तिजित् ॥

गुंजाफललेपः—तक्षयित्वा क्षुरेणाङ्गं केवलानिलपीडितम् । तत्र प्रदेहं
दद्याच्च पिप्प्रा गुंजाफलैः कृतम् ॥ १ ॥ तेनावबाहुजा पीडा विश्वाची गृध्रसी
तथा । अन्याऽपि वातजा पीडा प्रशमं याति वेगतः ॥ २ ॥

इति स्वेदलेपविधिः ।

अथ वातहा पोटली ।

पुन्नागैरण्डनिम्बैर्बकुलधनददङ्गनारिकेलैः करञ्जैः कार्पासैः शिग्रुडोलाफलसुनि-
षणकैः सर्पपाङ्गोलाबीजैः । रास्नाकुष्ठैः कुलत्थैस्तिललशुनवचाहिङ्गुसिद्धार्थवि-
श्वैः सर्वैः स्नेहैः कृतं तत्सकलपटुयुतं पोटलं वातभञ्जि ॥ १ ॥

इति योगसारात् ।

शार्ङ्गधरालशुनकल्कः ।

पक्ककन्दरसोनस्य गुलिका निस्तुपीकृताः । पाटयित्वा च मध्यस्थं दूरी
कुर्यात्तदङ्कुरम् ॥ १ ॥ तदुग्रगन्धनाशाय रात्रौ तत्रे विनिक्षिपेत् । अपनीय
च तन्मध्याच्छिलायां पेषयेत्ततः ॥ २ ॥ तन्मध्ये पञ्चमांशेन चूर्णमेषां विनि-
क्षिपेत् । सौवर्चलं यवानी च भर्जितं हिङ्गु सैन्धवम् ॥ ३ ॥ कटुत्रिकं जीरकं
च समभागानि चूर्णयेत् । एकीकृत्य ततः सर्वं कल्कं कर्षप्रमाणतः ॥ ४ ॥
खादेदग्निबलापेक्षी ऋतुदोषाद्यपेक्षया । अनुपानं ततः कुर्यादेरण्डशृतमन्व-
हम् ॥ ५ ॥ सर्वाङ्गैकाङ्गजं वातमर्दितं चापतन्नकम् । अपस्सारं तथोन्माद-
मूरुस्तम्भं च गृध्रसीम् ॥ ६ ॥ उरःपृष्ठकटीपार्श्वकुक्षिपीडाकृमीञ्जयेत् । अ-
जीर्णमातपं रोपं तप्तनीरं पयो गुडम् ॥ ७ ॥ रसोनमश्वत्थपुरुषस्त्यजेदेतन्निर-
न्तरम् । मद्यं मांसं तथाऽम्लं च रसं सेवेत नित्यशः ॥ ८ ॥ अन्यश्च—शुद्धः
कल्को रसोनस्य तिलतैलेन मिश्रितः । वातरोगाञ्जयेत्तीव्रान्विषमज्वरना-
शनः ॥ ९ ॥

इति लशुनकल्कः ।

अथैरण्डपाकः ।

वातारिबीजप्रस्थं तु सुपक्वं निस्तुपीकृतम् । क्षीरद्रोणार्धसंयुक्तं भिषङ्ग-
न्दाग्निना पचेत् ॥ १ ॥ घृतप्रस्थार्धयुक्पक्वं खण्डप्रस्थद्वयं क्षिपेत् । त्र्यूषणं
सचतुर्जातं ग्रन्थिकं वह्निचव्यकम् ॥ २ ॥ छत्रा मिशिः शटी बिल्वदीप्यौ
जीरे निशायुगम् । अश्वगन्धा बला पाठा हपुषा वेल्लपुष्करम् ॥ ३ ॥ श्वदं-
द्रारुग्वरादारुवेलेर्यावालुकावरी । एतानि पित्तुमात्राणि चूर्णितानि विनिक्षि-
पेत् ॥ ४ ॥ वातव्यार्धीश्च शूलं च शोफं वृद्धिं तथोदरम् । आनाहं बस्तिरु-
गुल्ममामवातं कटिग्रहम् ॥ ऊरुग्रहं हनुस्तम्भं नाशयेदपि योगतः ॥ ५ ॥

इत्यैरण्डपाकः ।

अथ रसाः ।

शार्ङ्गधरात्स्वच्छन्दभैरवरसः—शुद्धसूतं मृतं लोहं ताप्यं गन्धं च
तालकम् । पथ्याग्निमन्थनिर्गुण्डीत्र्यूषणं टङ्कणं विषम् ॥ १ ॥ तुल्यांशं मर्दये-
त्स्वल्वे दिनं निर्गुण्डिकाद्रवैः । मुण्डीद्रवैर्दिनैकं तु द्विगुञ्जं वटकीकृतम् ॥ २ ॥
भक्षयेद्वातरोगार्तो नाम्ना स्वच्छन्दभैरवम् । रास्त्रामृतादेवदारुशुण्ठी
वातारिजं शृतम् । सगुग्गुलं पिवेत्कोष्णमनुपानं सुखावहम् ॥ ३ ॥
इतिस्वच्छन्दभैरवः । अथ समीरपन्नगः—अभ्रगन्धविषव्योषरसट-
ङ्कान्समांशकान् । भावयेत्सप्तधा भृङ्गरसेन स्यात्समीरहा ॥ १ ॥
आर्द्रद्रवेण वल्लो वा खण्डव्योषेण योजितः । महावाताञ्जयत्याशु नासाध्मा-
तः सुसंज्ञकृत् ॥ २ ॥ अथ वातविध्वंसनो रसः—रसं गंधकं नागवज्रं च
लोहं तथा ताम्रजं व्योम निश्चन्द्रिकं च । कणा टङ्कणं त्र्यूषणं नागरं वै पृथ-
ग्भागमेकं विमर्चयाम् ॥ १ ॥ ततो वत्सनाभं चतुःसार्धभागं दृढं मर्दये-
द्भावना व्योषजात्रिः । वराचित्रकैर्माकैर्वैः कुष्ठजाङ्गिस्त्रिभिर्भावयेन्निर्गुडीभानुदु-
ग्धैः ॥ २ ॥ महीघात्रिकाचन्द्रिकानिम्बुनीरैः समं भावयेद्वातविध्वंसनोऽयम् ।
समीरेच शूले महाश्लेष्मरोगे ग्रहण्यां तथा संनिपाते च सर्वे । स्त्रियाः सूति-
कावातरोगेषु दद्यान्निषेवेत गुञ्जाद्वयं सूतमेनम् ॥ ३ ॥ इति वातविध्वंसनो
रसः ॥ अथ वातराक्षसरसः—मृतं सूतं तथा गन्धं कान्तं चाभ्रकमेव च ।
ताम्रभस्मकृतं सम्यङ्गार्दयित्वा समांशकम् ॥ १ ॥ पुनर्नवागुह्यग्निसुरसात्र्यू-
षणं तथा । एतेषां स्वरसेनैव भावयेन्निदिनं पृथक् ॥ २ ॥ दत्त्वा लघुपुटं
सम्यक्स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् । वातराक्षसनामाऽयं वातरोगे प्रयोजयेत् ॥ ३ ॥
तत्तद्रोगानुपानेन द्विगुञ्जामात्रसेवनात् । ऊरुस्तम्भे वातरक्ते गात्रभङ्गे तथैव
च ॥ ४ ॥ आमवातं धनुर्वातं वेदनावातमेव च । पक्षाघातं कम्पवातं सर्व-
संधिगतं तथा ॥ ५ ॥ सुप्तिवातं च शूलं च उन्मादं च विनाशयेत् । तत्तद्रो

गानुपानेन वाताशीतिविनाशनः ॥ ६ ॥ इति रससारसंग्रहे वातराक्षसरसः ।
 अथ धनुर्वाते सूतिकाभरणरसः—सुवर्णं रजतं ताम्रं प्रवालं पारदं सम-
 म् । गन्धकं चाभ्रकं तालं शिला त्रिकटु रोहिणी ॥ १ ॥ एतानि समभागानि
 रविक्षीरेण मर्दयेत् । चित्रमूलकपायेण पुनर्नवारसेन च ॥ २ ॥ दिनं गज-
 पुटे पाच्यं मूषायां धारयेत् पृथक् । अनुपानविशेषेण देयं गुञ्जार्धकं च तत् ॥
 ३ ॥ सूतिकारोगमतुलं धनुर्वातं विशेषतः । त्रिदोषोत्थान्हरेद्व्याधीनिच्छा-
 पथ्यं प्रदापयेत् । सूतिकाभरणं नाम सर्वरोगहरं च तत् ॥ ४ ॥ अथ वात-
 रोगे प्रतापाशिकुमारो रसः—पारदं शुल्बजं भस्म विषं मरिचनागरम् ।
 त्रिक्षारं पञ्चलवणमेभिर्मर्द्वाद्रकद्रवैः ॥ १ ॥ काचकूप्यन्तरे क्षिप्त्वा मृदा
 संलेपयेद्बहिः । शनैर्मृद्वग्निना पाच्यं वालुकायन्त्रके दिनम् ॥ २ ॥ स्वाङ्गशीत-
 लमुद्धृत्य दशांशं च विषं क्षिपेत् । सूक्ष्मचूर्णं कृतं खल्वे गुञ्जामात्रं प्रदाप-
 येत् ॥ ३ ॥ संनिपातान्निहन्त्याशु आर्द्रकद्रवसंयुतः । प्रतापाशिकुमारोऽयं
 सर्ववातहरः परम् ॥ ४ ॥ अथ प्रसूतवाते लक्ष्मीनारायणरसः—शुद्ध-
 गन्धकमेतच्च टङ्कणं विषहिङ्गुलम् । रोहिण्यतिविषाकृष्णावत्सकाभ्रकसैन्ध-
 वम् ॥ १ ॥ एतानि समभागानि खल्वमध्ये विनिक्षिपेत् । दन्तिद्रावैः फल-
 द्रावैर्मर्दयेच्च दिनत्रयम् ॥ २ ॥ वल्लद्वयां वटीं कृत्वा आर्द्रकस्य जलैर्ददेत् ।
 दोषज्वरे संनिपाते विषूच्यां विषमज्वरे ॥ ३ ॥ अतिसारे ग्रहण्यां च रक्ता-
 भे मेहशूलजित् । सूतिकावातदोषघ्नो लङ्केशमिव राववः ॥ ४ ॥ इष्टान्नं
 भोजयेत्पथ्यमभ्यङ्गं स्नानमाचरेत् । कर्पूरमिश्रताम्बूलं प्रसूनं हरिचन्दनम्
 ॥ ५ ॥ नारिकेलोदकं पीत्वा नारीणां सङ्गमेव च । लक्ष्मीनारायणो नाम रसा-
 नामुत्तमो रसः ॥ ६ ॥ इति रसाः ।

अथ पथ्यापथ्यम् ।

कुलत्थमाषगोधूमा रक्ताभाः शालयो हिताः । पटोलं शिग्रुवार्ताकं दाडिमं
 च परुषकम् ॥ १ ॥ मत्स्यण्डिका घृतं दुग्धं किलाटं दधिकूर्चिका । बदरं
 लशुनं द्राक्षा तांबूलं लवणं तथा ॥ २ ॥ चटकः कुक्कुटो बर्ही तित्तिरश्चेति
 जाङ्गलाः । शिलीन्द्रः पर्वतो नक्रो गर्गरः खुडिशो झषः ॥ ३ ॥ यथाश्रयं
 यथावस्थं यथाचरणमेव च । वातव्याधौ समुत्पन्ने पथ्यमेतन्नृणां भवेत् ॥ ४ ॥
 चिन्ताप्रजागरणवेगविधारणानि छर्दिः श्रमोऽनशनता चणकाः कलायाः ।
 श्यामाकचूर्णकुरुबिन्दुनिवारकङ्कुमुद्रास्तडागतटिनीसलिलं करीरम् ॥ ५ ॥ क्षौद्रं
 कपायकटुतिक्तरसा व्यवायो हस्त्यश्वयानमपि चङ्क्रमणं च खट्वा । आ-
 ध्मानिनोऽर्दितवतोऽपि पुनर्विशेषात्स्नानं प्रदुष्टसलिलैर्द्विजघर्पणं च ॥ ६ ॥
 निःशेषतन्त्रपरिकीर्तित एष वर्गो नृणां सभिरणगदेषु मुदं न दत्ते ॥ ७ ॥

इति पथ्यापथ्यविधिः ॥ वातरोगस्त्वसाध्योऽयं दैवयोगात्सुसिध्यति । अनु-
मानेन कुर्वन्ति वैद्यकं न प्रतिज्ञया ॥८॥ इति वातरोगचिकित्सा समाप्ता ॥

अथ वातरक्तनिदानम् ।

कृतं तावत्समासेन वातव्याधिनिरूपणम् । वातव्याधिप्रसङ्गेन वातरक्तं
निरूप्यते ॥ १ ॥ लवणाम्लकटुक्षारस्निग्धोष्णाजीर्णभोजनैः । क्लिन्नशुष्का-
म्बुजानूपमांसपिण्याकमूलकैः ॥ २ ॥ कुलत्थमापनिष्पावशाकादिपललेक्षुभिः ।
दध्यारनालसौवीरशुक्ततक्रसुरासवैः ॥ ३ ॥ विरुद्धाध्यशनक्रोधदिवास्वप्न-
प्रजागरैः । प्रायशः सुकुमाराणां मिथ्याहारविहारिणाम् । स्थूलानां सुखिनां
चापि प्रकुप्येद्वातशोणितम् ॥ ४ ॥ तस्य संप्राप्तिमाह—हस्त्यश्वोद्वैर्गच्छतोऽ-
न्यैश्च वायुः कोपं प्रासः कारणैः सेवितैः स्वैः । तीक्ष्णोष्णाम्लैः क्षारशाका-
दिभोज्यैः संतापाद्यैर्भूयसा सेवितैश्च ॥ १ ॥ शीघ्रं रक्तं दुष्टिमायाति तच्च
वायोर्मार्गं संरुणद्ध्याशु जातः । क्रुद्धोऽत्यर्थं मार्गरोधात्स वायुरत्युद्रिक्तं
दूषयेद्रक्तमाशु ॥ २ ॥ कृत्स्नं रक्तं निर्दहत्याशु दुष्टं खस्तं शीघ्रं पादयोश्ची-
यते तु । तत्संपृक्तं वायुना दूषितेन तत्प्राबल्यादुच्यते वातरक्तम् । तद्वत्पित्तं
दूषितेनासृजाऽक्तं श्लेष्मा दुष्टो दूषितेनासृजाऽक्तः ॥ ३ ॥ क्रुद्धो रुद्धगतिर्म-
रुत्प्रकुपितेनास्त्रेण संदूष्यते प्राक्पादौ तदनु प्रधावति वपुःकण्डूर्तिमुत्था-
दयः । जायन्ते करपादसंधिषु सुहुर्वातास्त्रमेतत्कफे क्रुद्धो दोषवदादिशेत्तु
विषवत्कृत्स्नं वपुर्धावति ॥ ४ ॥ स्पर्शोद्विग्नौ तोदभेदप्रशोषस्वापोपेतौ वात-
रक्तेन पादौ । पित्तासृग्भ्यामुग्रदाहौ भवेतामत्यर्थोष्णौ रक्तशोथौ मृदू च
॥ ५ ॥ कण्डूर्मन्तौ श्वेतशीतौ सशोफौ पीनस्तब्धौ श्लेष्मदुष्टे च रक्ते । सर्वै-
र्दुष्टे शोणिते चापि दोषाः स्वं स्वं रूपं पादयोर्दर्शयन्ति ॥ ६ ॥ अथ तस्य
पूर्वरूपमाह—स्वेदोऽत्यर्थं न वा काष्ण्यं स्पर्शाज्ञत्वं क्षतेऽतिरुक् । संधिशै-
थिल्यमालस्यं सदनं पिटिकोद्भूतः ॥ १ ॥ जानुजङ्घोरुकट्यंसहस्तपादाङ्गसं-
धिषु । निस्तोदः स्फुरणं भेदो गुरुत्वं सुप्तिरेव च ॥ २ ॥ कण्डूः संधिषु रु-
ग्दाहो भूत्वा नश्यति चासकृत् । वैवर्ण्यं मण्डलोत्पत्तिर्वातासृक्पूर्वलक्षणम्
॥ ३ ॥ दोषान्तरसंसर्गेण कारणमाह—तत्र वाताधिकलक्षणम् । वाताधि-
केऽधिकं तत्र शूलस्फुरणतोदनम् । शोथस्य रौक्ष्यकृष्णत्वश्यावतावृद्धिहानयः
॥ १ ॥ धमन्यङ्गुलिसंधीनां संकोचोऽङ्गग्रहोऽतिरुक् । शीतद्वेषानुपशयौ स्त-
म्भवैर्पथुसुप्तताः ॥ २ ॥ अथ रक्ताधिकलक्षणमाह—रक्ते शोथोऽतिरुक्तो-
दस्ताम्रश्चमिचिमायते । स्निग्धरुक्षैः शमं नैति कण्डूक्लेदसमन्वितः ॥ १ ॥
अथ पित्ताधिकमाह—पित्ते विदाहः संमोहः स्वेदो मूर्च्छा मदस्तृपा । स्पर्शा-
सहत्वं रुग्दाहः शोथपाको भृशोष्णता ॥ १ ॥ अथ कफाधिकमाह—कफे
सौमिल्यगुरुतासुप्तिस्निग्धत्वशीतताः । अथ द्रव्यत्रिदोषलक्षणम्—कण्डूर्मन्दा

च रुग्द्वे सर्वलिङ्गं च संकरे ॥ १ ॥ पादयोर्मूलमास्थाय कदाचिद्धस्तयोरपि ।
आखोर्विषमिव कुद्धं तद्देहमनुसर्पति ॥ २ ॥ अथैतस्यैवासाध्ययाप्यत्वमाह—
आजानुस्फुटितं यच्च प्रभिन्नं प्रसृतं च यत् । उपद्रवैश्च यज्जुष्टं प्राणमांसक्ष-
यादिभिः । वातरक्तमसाध्यं स्याद्याप्यं संवत्सरोत्थितम् ॥ ३ ॥ अथ तस्यो-
पद्रवानाह—अस्वप्नारोचकश्वासमांसकोथशिरोग्रहाः । संमूर्च्छा मदरुक्त्वणा
ज्वरमोहप्रलेपकाः ॥ १ ॥ हिक्कापाङ्गुल्यवैसर्पपाकतोदभ्रमकुमाः । अङ्ग-
गुलीवक्रता स्फोटदाहमर्मग्रहार्बुदाः ॥ २ ॥ एतैरुपद्रवैर्युक्तं मोहेनैकेन वाऽपि
यत् । वातरक्तमसाध्यं स्याद्यच्चातिक्रान्तवत्सरम् ॥ ३ ॥ अकृत्स्नोपद्रवं याप्यं
साध्यं स्यान्निरुपद्रवम् । एकदोषानुगं साध्यं नवं याप्यं द्विदोषजम् । त्रि-
दोषजमसाध्यं स्यान्नस्य च स्युरुपद्रवाः ॥ ४ ॥ इति वातरक्तनिदानम् ।

अथ वातरक्तचिकित्सा ।

वातरक्तं द्विधा ज्ञेयं गम्भीरोत्तानभेदतः । त्वङ्मांसाश्रयमुत्तानं गम्भीरं
त्वन्तराश्रयम् ॥ १ ॥ कालातिक्रान्तमेतत्तु कष्टं भवति दुर्जरम् । विरेका-
स्थापनस्नेहैर्गम्भीरं तदुपाचरेत् ॥ २ ॥ उत्तानं लेपनाभ्यङ्गपरिषेकावगाहनैः ।
वाताधिकं वातरक्तं स्नेहाद्यैः समुपाचरेत् ॥ ३ ॥ रक्ताढ्यं रक्तमोक्षाद्यैः पि-
त्ताढ्यं रेचनादिभिः । कफाढ्यं वमनाद्यैश्च प्रोक्तैरत्रौषधैर्भिषक् ॥ ४ ॥ संसर्गे
संनिपाते च क्रियां मिश्रां समाचरेत् । वातरक्ते द्वित्रिलिङ्गे द्वित्रिहेतुसमु-
त्थिते ॥ ५ ॥ वातशोणितिनो रक्तं स्निग्धस्य बहुशो हरेत् । अल्पाल्पं रक्षता वायुं
यथादोषं यथाबलम् ॥ ६ ॥ सर्वत्रासृक्स्तुतिः सूचीजलकाशृङ्ग्यलानुभिः ।
शतधौतघृताभ्यङ्गो मेषीदुग्धावसेचनम् ॥ ७ ॥ रूक्षैर्वा मृदुभिः शस्तमस-
कृद्वस्तिर्कर्म च । न हि बस्तिरसं किञ्चिद्वातरक्ते चिकित्सितम् ॥ ८ ॥

अथ क्वाथाः ।

अथ वासादिक्वाथः—वासागुडूचीचतुरङ्गुलानामेरण्डतैलेन पिबेत्कषा-
यम् । क्रमेण सर्वाङ्गजमप्यशेषं जयेदसृग्वातभवं विकारम् ॥ १ ॥ इति यो-
गशतात् । अथ नवकार्षिकक्वाथः—दार्वागुडूचीकटुकोग्रगन्धामज्जिघनिम्ब-
त्रिफलाकषायः । वातासृमुच्चैर्नवकार्षिकाख्यो जयेच्च कुष्ठानखिलान्नराणाम् ।
पञ्चतित्तकषायेण योजयेन्नवकार्षिकम् ॥ १ ॥ इति सारसंग्रहान्नवकार्षि-
कक्वाथः । अथ गुडूच्यादिः—वत्सादन्युद्भवः क्वाथः पीतो गुग्गुलुमिश्रितः ।
समीरेण समायुक्तं शोणितं संग्रणाशयेत् ॥ १ ॥ इति गुडूच्यादिः कदम्बात् ।
अथ काश्मर्यादिः—पित्तोत्तरे तु काश्मर्यद्राक्षारवधचन्दनैः । मधुकक्षी-
रकाकोलीयुक्तैः क्वाथं सुशीतलम् । शर्करामधुसंयुक्तं वातरक्ते पिबेन्नरः ॥ १ ॥
इति योगतः । अथ पटोलादिः—पटोलत्रिफलाभीरुकटुकामृतसाधितम् ।
क्वाथं पीत्वा जयत्याशु सदाहं वातशोणितम् ॥ १ ॥ इति वृन्दात् । अथ

कोकिलादिः—कोकिलाक्षामृताकाथं पिबेत्कोष्णं यथाबलम् । पथ्यभोजी
त्रिसप्ताहान्मुच्यते वातशोणितात् ॥ १ ॥ इति वृन्दात् । अथ लघुमञ्जि-
ष्ठादिः—मञ्जिष्ठा त्रिफला तित्ता वचा दारुनिशाऽमृता । निम्बश्चैषां कृतः
काथो वातरक्तविनाशनः । पामाकपालिकाकुष्ठरक्तमण्डलजिन्मतः ॥ १ ॥
इति शार्ङ्गधरात् । अथ बृहन्मञ्जिष्ठादिः—मञ्जिष्ठामुस्तकुटजगुडूचीकुष्ठ-
नागरैः । भार्गीक्षुद्रावचानिम्बनिशाद्वयफलत्रिकैः ॥ १ ॥ पटोलकटुकामूर्वा-
विडङ्गासनचित्रकैः । शतावरीत्रायमाणाकृष्णेन्द्रयववासकैः ॥ २ ॥ भृङ्गरा
जमहादारुपाठाखदिरचन्दनैः । त्रिवृद्वरुणकैरातबाकुचीकृतमालकैः ॥ ३ ॥
शाखोटकमहानिम्बकरञ्जातिविषाजलैः । इन्द्रवारुणिकानन्तासारिवापर्पटैः
समैः ॥ ४ ॥ एभिः कृतं पिबेत्काथं कणागुग्गुलुसंयुतम् । अष्टादशसु कुष्ठेषु
वातरक्तादिते तथा ॥ ५ ॥ उपदेशे श्लीपदे च प्रसुप्तौ पक्षघातके । मेदोदोषे
नेत्ररोगे मञ्जिष्ठादिः प्रशस्यते ॥ ६ ॥ इति बृहन्मञ्जिष्ठादिः शार्ङ्गधरात् ।
इति काथाः ॥

अथ गुग्गुलू ।

तत्र प्रथमतः कैशोरगुग्गुलुः—त्रिफलायास्त्रयः प्रस्थाः प्रस्थैकममृता
भवेत् । संक्षुद्र लोहपात्रे तु सार्धद्रोणाम्बुना पचेत् ॥ १ ॥ जलमर्धं शृतं ज्ञात्वा
गृह्णीयाद्रघ्नगालितम् । ततः काथे क्षिपेच्छुद्धं गुग्गुलुं प्रस्थसंमितम् ॥ २ ॥
पुनः पचेदयस्पात्रे दर्व्या संघट्टयेन्मुहुः । सान्द्रीभूतं च तं ज्ञात्वा गुडपाक-
समाकृतिम् ॥ ३ ॥ चूर्णीकृत्य ततस्तत्र दव्याणीमानि निक्षिपेत् । त्रिफला
द्विपला ज्ञेया गुडूची पलिका मता ॥ ४ ॥ पडक्षं त्र्यूपणं प्रोक्तं विडङ्गं च
पलार्धकम् । दन्ती कर्षमिता कार्या त्रिवृत्कर्षमिता स्मृता ॥ ५ ॥ ततः पि-
ण्डीकृतं सर्वं घृतभाण्डे विनिक्षिपेत् । गुटिकाः शाणिकाः कृत्वा युक्त्याहो-
पाद्यपेक्षया ॥ ६ ॥ अनुपानं भिषग्दद्यात्कोष्णं नीरं पयोऽथवा । मञ्जिष्ठा-
दिशृतं वाऽपि युक्तियुक्तमतः परम् ॥ ७ ॥ जयेत्सर्वाणि कुष्ठानि वातरक्तं त्रिदो-
षजम् । सर्वव्रणांश्च गुल्मांश्च प्रमेहपिटकास्तथा ॥ ८ ॥ प्रमेहोदरमन्दाग्नि-
कासश्चयथुपाण्डुताः । हन्ति सर्वाभयान्नित्यमुपयुक्तो रसायनः ॥ ९ ॥ कै-
शोरकाभिधानोऽयं गुग्गुलुः कान्तिकारकः । वासादिना नेत्रगदान्गुल्मादी-
न्वरुणादिना ॥ १० ॥ काथेन खदिरस्यापि व्रणान्कुष्ठान्विनाशयेत् । अम्लं
तीक्ष्णमजीर्णं च व्यवयं श्रममातपम् । मद्यं रोपं सज्जेत्सम्यग्गुणार्थी पुरसे-
वकः ॥ ११ ॥ इति शार्ङ्गधरात्कैशोरगुग्गुलुः । अथामृता गुग्गुलुः—वृ-
न्दात् । प्रस्थमेकं गुडूच्याश्च सार्धप्रस्थं तु गुग्गुलोः । प्रत्येकं त्रिफलायाश्च त-
त्प्रमाणं विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥ सर्वमेकत्र संक्षिप्य काथयेन्नलवणेऽम्भसि । पाद-
शेषं परिस्त्राव्य कपायं ग्राहयेद्भिषक् ॥ २ ॥ पुनः पचेत्कपायं तु यावत्सान्द्र-

त्यमामुयात् । दन्तीव्योषविडङ्गानि गुडूचीत्रिफलात्वचः ॥ ३ ॥ ततश्चार्धपलं
पूतं गृहीयाद्वा प्रति प्रति । कर्षं तु त्रिवृतायाश्च सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ ४ ॥
तस्मिन्सुसिद्धं विशाय कोष्णं पात्रे विनिक्षिपेत् । ततश्चाग्निबलं दृष्ट्वा तस्य
मात्रां प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥ वातरक्तं तथा कुष्ठं गुदजानमिसादनम् । दुष्टव्रणं
ग्रमेहं च आमवातभगंदरान् ॥ ६ ॥ खाज्याढ्यवाताब्धयथूनसर्वान्वातान्य-
पोहति । अश्विभ्यां निर्मितः पूर्वममृताद्यश्च गुग्गुलुः ॥ ७ ॥ इति गुग्गुलुः ॥

अथ तैलानि ।

अथ लघुमरिचाद्यं तैलम्—मरिचालशिलार्कपयःकलिनीविषमुष्टिवि-
षामरनिम्बघनैः । कुटजं सचतुर्गुणगोम्बुशृतं किल तैलमसृक्पवनापहरम् ॥ १ ॥
अथ बृहन्मरिचाद्यं तैलम्—मरिचं त्रिवृता दन्ती क्षीरमार्कं शकृद्रसः ।
देवदारु हरिद्रे द्वे मांसी कुष्ठं सचन्दनम् ॥ १ ॥ विशाला करवीरं च हरि-
तालं मनःशिला । चित्रकं लाङ्गली चापि विडङ्गं चक्रमर्दकम् ॥ २ ॥ शिरीषं
कुटजो निम्बः सप्तपर्णाऽमृता स्नुही । शम्याको नक्तमालश्च खदिरः पिप्पली
वचा ॥ ३ ॥ ज्योतिष्मती च पलिका विषस्य द्विपलं मतम् । आढकं कटुतै-
लस्य गोमूत्रं च चतुर्गुणम् ॥ ४ ॥ मृत्पात्रे लोहपात्रे वा शनैर्मृद्वग्निना पचे-
त् । एतत्तैलं विशेषेण नाशयेत्कुष्ठजान्त्रणान् ॥ वातरक्तभवान्व्याधीन्पामा-
विस्फोटचर्चिकाम् ॥ ५ ॥ इति सारसंग्रहात् ॥ अथ पिण्डतैलं शार्ङ्गध-
रात्—मञ्जिष्ठासारिवासर्जयष्टीसिक्थपयोनिवृतैः । पिण्डाख्यं साधयेत्तैलम-
भ्यङ्गाद्वातरक्तनुत् ॥ १ ॥ अथ वृन्दात्सारिवादितैलम्—सारिवासर्जय-
ष्ट्याह्वमधूच्छिष्टपयोनिवृतैः । सिद्धमेरण्डजं तैलमभ्यङ्गाद्वातरक्तनुत् ॥ १ ॥
अथ पद्मकाष्ठादितैलम्—पद्मकोशीरयष्ट्याह्व रजनीकाथसाधितम् । स्या-
त्पिष्टैः सर्जमञ्जिष्ठावीराकाकोलिचन्दनैः ॥ पद्मकाद्यमिदं तैलं वातासृग्दाह-
नाशनम् ॥ १ ॥ इति पद्मकाष्ठादिवृन्दात् ॥ अथ गुडूच्यादि—गुडूचीका-
थकल्काभ्यां तैलं लाक्षारसेन वा । सिद्धं मधूककाश्मर्यरसे वा वातरक्तनुत्
॥ १ ॥ इति वृन्दात् ॥ अथ वृन्दाच्छताह्वादि—शताह्वया च कुष्ठेन
मधुकेन नवेन वा । एकैकं साधितं तैलं वातरक्तरुजापहम् ॥ १ ॥ इति
तैलानि ॥

अथ घृतानि ।

अथ शार्ङ्गधरादमृताद्यं घृतम्—अमृताकाथकल्काभ्यां सक्षीरं विपचे-
दृतम् । वातरक्तं जयत्याशु कुष्ठं जयति दुस्तरम् ॥ १ ॥ अथ सारसंग्रहा-
न्महातिकं घृतम्—भूनिम्बाम्बुदनिम्बवत्सककणात्रायनन्यनन्तामृतातिक्ता-
भीरुफलत्रिकप्रतिविषामूर्वाविशालाजलैः । पाठापर्पटसारिवाह्वयनिशायुग्यष्टि-
कापद्मकैः सोशीरैः सपटोलचन्दनवचाशम्याकसप्तच्छदैः ॥ १ ॥ इत्येभिर्गदि-

तैर्जलाष्टगुणितैः प्रस्थं पचेत्सर्पिषो गव्यस्याऽऽमलकीरसद्विगुणितं नाम्ना हि तित्कं घृतम् । हन्येतद्रलगण्डमण्डलरुजं कण्डूं सपाण्ड्वामयां शोफश्लेपद-
वातरक्तविकृतीः कुष्ठानि चाष्टादश ॥ १ ॥ इति घृतानि ॥

शिलाजतुयोगः—छिन्नोद्भवाकपायेण सेव्यं शुद्धं शिलाजतु । पञ्चकर्म-
विशुद्धेन वातरक्तप्रशान्तये ॥ १ ॥ **अथामृताद्यवलेहिका**—अमृता कटु-
का शुण्ठी यष्टीकल्कं समाक्षिकम् । गोमूत्रपीतं जयति सकफं वातशोणितम्
॥ १ ॥ **अथगुडूचीयोगः**—गुडूच्याः स्वरसं कल्कं चूर्णं वा काथमेव च ।
प्रभूतकालमासेव्य मुच्यते वातशोणितात् ॥ १ ॥

अथ लेपनम्—ग्रन्थान्तरात् । प्रपौण्डरीकमज्जिष्ठादार्वाभिधुकचन्दनैः ।
सितोपलैलासक्तुश्च मसूरोशीरपद्मकैः ॥ १ ॥ लेपो रुग्दाहवीसर्परागशोफनि-
वारणः । लेप्याः पिष्टास्तिलास्तद्वृष्टाः पयसि निर्वृताः ॥ २ ॥ क्षीरपिष्टामु-
मालेपमेरण्डस्य फलानि च । कुर्याच्छूलनिवृत्त्यर्थं शताह्वां वाधिकेऽनिले ॥ ३ ॥
मूत्रक्षीरसुरासिद्धं घृतमभ्यञ्जने हितम् । सिद्धं समधुसूक्तं तु सेकाभ्यङ्गे क-
फोत्तरे ॥ ४ ॥ गृहधूमवचाकुष्ठशताह्वारजनीद्रव्यम् । प्रलेपः शूलनुद्वातरक्ते
वातकफोत्तरे । उभे शताह्वे मधुकं विशालां बलां प्रियालं च कसेरुयुग्मम् ।
घृतं विदारीं च सितोपलां च कुर्यात्प्रदेहं पवने सरक्ते ॥ १ ॥ सहस्रशतधौ-
तेन घृतेन रुधिरोत्तरे । लेपनं चोष्मशीतेन घृतसर्जरसेन वा ॥ २ ॥ आरना-
लाढके तैलं पादसर्जरसं शृतम् । प्रस्थस्थे निर्जिते तोये ज्वरदाहार्तिनुत्परम्
॥ ३ ॥ समधूच्छिष्टमज्जिष्ठा ससर्जरससारिवा । पिण्डतैलं तथाऽभ्यङ्गाद्वात-
रक्तरुजापहम् ॥ ४ ॥ इति वातरक्ते ॥

अथ पञ्चामृतरसः ।

रसरत्नप्रदीपात्—पारदं च क्रियाशुद्धं तत्तुल्यं शुद्धगन्धकम् । अभ्रकं तु
द्वयोस्तुल्यं त्रिभिस्तुल्यस्तु गुग्गुलुः ॥ १ ॥ सर्वांशममृतासत्त्वं भावयेदौषधैः
पृथक् । निर्गुण्डीगोक्षुरच्छिन्नाकोकिलाक्षाङ्घ्रिजै रसैः ॥ २ ॥ सप्तवारं ततो
युज्याद्वातरक्ते त्रिवलकम् । कोकिलाक्षस्य मूलानां पानीयमनुपाययेत् ॥ ३ ॥
इति पञ्चामृतरसः ।

अथ पथ्यापथ्यम् ।

यवषष्टिकनीवारकलमारुणशालयः । गोधूमाश्रणका मुद्रास्तुवर्योऽपि म-
कुष्टकाः ॥ १ ॥ अव्यजामहिषीणां च गवामपि पयांसि च । उपोदिका का-
कमाची वेत्राग्रं सुनिषण्णकम् ॥ २ ॥ वास्तुकं कारवेल्लं च तण्डुलीयं पटोल-
कम् । धात्रीफलं शृङ्गवेरं सूरणं श्वेतशर्करा ॥ ३ ॥ मृद्वीका वृद्धकूष्माण्डन-
वनीतं नवं घृतम् । लावतित्तिरवतीकताम्रचूडविविक्किराः ॥ ४ ॥ प्रतुदाः
शुकदात्यूहकपोतचटकादयः । शशिनागरुदेवाहसरलस्नेहमर्दनम् ॥ ५ ॥

तिक्तं च पथ्यमुद्दिष्टं वातरक्तगदे नृणाम् । दिवास्वप्नाग्निसंतापव्यायामातप-
मैथुनम् ॥ ६ ॥ माषाः कुलत्था निष्पावाः कलायाः क्षारसेवनम् । अण्डजा-
नूपमांसानि विरुद्धानि दधीनि च ॥ ७ ॥ इक्षवो मूलकं मद्यं ताम्बूलं का-
ञ्जिकं तिलान् । कटूष्णं गुर्वभिष्यन्दि लवणानि च सक्तवः ॥ एतानि वात-
रक्तेषु नैव युज्याद्विषग्वरः ॥ ८ ॥ इति वातरक्तचिकित्सा ।

अथोरुस्तम्भनिदानमाह—

शीतोष्णद्रवसंशुष्कगुरुस्निग्धैर्निषेवितैः । जीर्णाजीर्णैस्तथाऽऽयाससंश्लोभ-
स्वप्नजारैः ॥ १ ॥ सश्लेष्ममेदःपवनमाममत्यर्थसंचितम् । अभिभूयेतरं दो-
षमूरु चेत्प्रतिपद्यते ॥ २ ॥ सक्थ्यस्थीनि प्रपूर्णान्तःश्लेष्मणा स्तिमितेन च ।
तदा स्तम्भातितेनोरु स्तब्धौ शीतावचेतनौ ॥ ३ ॥ परकीयाविव गुरु स्याता-
मतिभृशव्यथौ । ध्यानाङ्गमर्दस्त्रैमित्यतन्द्राच्छर्द्यरुचिज्वरैः ॥ ४ ॥ संयुतौ पा-
दसदनकृच्छ्रोद्धरणसुप्तिभिः । तमूरुस्तम्भमित्यादुराढ्यवातमथापरे ॥ ५ ॥
प्राग्रूपं तस्य निद्राऽतिध्यानं स्तिमितता ज्वरः । रोमहर्षोऽरुचिश्छर्दिर्जङ्घोर्वोः
सदनं तथा ॥ ६ ॥ वातशङ्किभिरज्ञानात्तस्य स्यात्स्नेहनात्पुनः । पादयोः स-
दनं सुप्तिः कृच्छ्रादुद्धरणं तथा ॥ ७ ॥ जङ्घोरुग्लानिरत्यर्थं शश्चञ्चादाहवे-
दनाः । पदं च व्यथते न्यस्तं शीतस्पर्शं न वेत्ति च ॥ ८ ॥ संस्थाने पीडने
गत्यां चलने चाप्यनीश्वरः । अन्यस्येव हि संभ्रमावूरु पादौ च मन्यते ॥ ९ ॥
ज्वोर्व्यथा च पारुष्यं तन्द्रा स्त्रैमित्यमङ्गरुक् । पादस्योद्धरणं कृच्छ्रात्तमूरुस्त-
म्भमादिशेत् ॥ १० ॥ यदा दाहार्तितोदातो वेपनः पुरुषो भवेत् । ऊरुस्त-
म्भस्तदा हन्यात्साधयेदन्यथा नवम् ॥ ११ ॥ इत्यूरुस्तम्भनिदानम् ॥

अथ ऊरुस्तम्भचिकित्सा ।

स्नेहासृक्स्नाववमनबस्तिकर्म च रेचनम् । वर्जयेदाढ्यवातेषु तैश्च तस्य वि-
रोधतः ॥ १ ॥ तस्मादत्र सदा कार्यं स्वेदलङ्घनरुक्षणम् । आममेव कफा-
धिक्यान्मारुतं परिरक्षता ॥ २ ॥ यत्स्यात्कफप्रशमनं न च मारुतकोपनम् ।
तत्सर्वं सर्वदा कार्यमूरुस्तम्भस्य भेषजम् ॥ ३ ॥ सर्वौषधक्रमः कार्यस्तत्राऽऽदौ
कफनाशनः । पश्चाद्वातविनाशाय कृत्वा कार्या क्रिया यथा ॥ ४ ॥ रुक्षणा-
द्वातकोपश्चेन्निद्रानाशार्तिसूचकः । स्नेहस्वेदक्रमस्तत्र कार्यो वातामयापहः
॥ ५ ॥ प्रतारयेत्प्रतिस्त्रोतो नदीं शीतजलाशयाम् । सरश्चैवामलं शीतं स्थि-
रतोयं पुनः पुनः ॥ ६ ॥ तथा विशुष्केऽस्य कफे शान्तिमूरुग्रहो व्रजेत् । श-
रीरं बलमग्निं च कार्यैषा रक्षताऽऽमयम् ॥ ७ ॥

अथ क्वाथचूर्णकल्कादि ।

अथ पुनर्नवादिक्वाथः—पुनर्नवानागरदारुपथ्याभलातकच्छिन्नरुहाक-

पायः । दशाङ्गिमिश्रः परिपेय ऊरुस्तम्भेऽथवा मूत्रपुरप्रयोगः ॥ १ ॥ अथ ग्रन्थिकादिः—ग्रन्थिकारूष्कृष्णानां काथं क्षौद्रान्वितं पिबेत् । चव्याभयाग्निदारूणां कल्कं वा मधुसंयुतम् ॥ १ ॥ अथ पिप्पल्यादिः—पिप्पलीं वर्धमानां वा माक्षिकेण गुडेन वा । ऊरुस्तम्भे प्रशंसन्ति गण्डीरारिष्टमेव च ॥ १ ॥ अथ त्रिफलादिचूर्णम्—त्रिफलाचव्यकटुकाग्रन्थिकं मधुना लिहेत् । ऊरुस्तम्भविनाशाय पुरं मूत्रेण वा पिबेत् ॥ १ ॥

अथ शिलाजत्वादियोगः—शिलाजतुं गुग्गुलुं वा पिप्पलीमथ नागरम् । ऊरुस्तम्भे पिबेन्मूत्रैर्दशमूलीरसेन वा ॥ १ ॥ अथ पिप्पल्यादिकल्कः—पिप्पली पिप्पलीमूलं भल्लातकफलानि च । कल्कं मधुयुतं पीत्वा ऊरुस्तम्भात्प्रमुच्यते ॥ १ ॥ अथ त्रिफलादियोगः—लिह्याद्वा त्रिफलाचूर्णं क्षौद्रेण कटुकायुतम् । सुखाम्बुना पिबेद्वाऽपि चूर्णं पदचरणं नरः ॥ १ ॥ अथ कुष्ठादितैलम्—कुष्ठं श्रीवेष्टकोदीच्यं सरलं दारु केशरम् । अजगन्धाऽश्वगन्धा च तैलं तैः सार्षपं पचेत् ॥ सक्षौद्रं मात्रया तस्मादूरुस्तम्भार्दितः पिबेत् ॥ १ ॥ अथ कट्वरतैलम्—बलाभ्यां पिप्पलीमूलनागरादष्टकट्वरः । तैलप्रस्थः समो दध्ना गृध्रस्यूग्रहापहः ॥ १ ॥ अष्टकट्वरतैले च तैलं सार्षपमुच्यते । पिप्पलीमूलनागरयोः प्रत्येकं द्विपलं स्मृतम् ॥ २ ॥ इति वृन्दात् ।

अथ स्वेदनलेपनसेचनानि ।

सक्षारमूत्रस्वेदांश्च रुक्षानस्नेहनानि च । कुर्याद्दिहेच्च सूत्राद्यैः करञ्जफलसर्पपैः ॥ १ ॥ मूलैर्वाऽप्यश्वगन्धाया मूलैरर्कस्य वा भिषक् । पिचुमन्दस्य वा मूलैरथ वा देवदारुणा ॥ २ ॥ क्षौद्रसर्षपवल्मीकमृत्तिकासंयुतैर्भिषक् । गाढसुत्सादनं कुर्यादूरुस्तम्भे प्रलेपनम् ॥ ३ ॥ दन्तीद्रवन्तीसुरसासर्षपैश्चातिबुद्धिमान् । तंकारीसुरसाशिग्रुबिल्ववत्सकनिम्बजैः । पत्रमूलफलैस्तोयैः शृतमुष्णाम्बुसेचनम् ॥ ४ ॥

अथ गुञ्जागर्भो रसः ।

निष्कत्रयं शुद्धसूतं निष्कद्वादशगन्धकम् । गुञ्जाबीजं विपं निष्कं निम्बबीजं जया तथा ॥ १ ॥ प्रत्येकं निष्कमात्रं तु माषं जेपालबीजकम् । जातीजम्बीरधत्तूरकाकमाचीद्रवैर्दिनम् ॥ २ ॥ मर्द्यं सर्वं वटीं कुर्याद् घृतैर्गुञ्जाद्वयं लिहेत् । गुञ्जागर्भो रसो नाम हिङ्गुसैन्धवसंयुतः । समण्डं दापयेत्पथ्यमूरुस्तम्भप्रशान्तये ॥ ३ ॥ इति रससमुच्चयात् ।

अथ पथ्यापथ्यम् ।

रुक्षः सर्वविधिः स्वेदः कोद्रवा रक्तशालयः । यवाः कुलत्थाः श्यामाका उद्दालाश्च पुरातनाः ॥ १ ॥ सौभाग्नं कारवेल्लं पटोलं वास्तुकं तथा । सुनि-

पण्णं काकमाची वेत्राग्रं तप्तवारि च ॥ २ ॥ जाङ्गलैरघृतैर्मांसैः शकैश्चाल-
वणैर्हितैः । एतत्पथ्यं समुद्दिष्टमूरुस्तम्भविकारिणाम् ॥ ३ ॥ गुरुशीतद्रवस्निग्ध-
विरुद्धासात्म्यभोजनम् । विरेचनं च वमनं स्नेहनं रक्तमोक्षणम् । वस्ति च न
हितं प्रादुरुरुस्तम्भविकारिणाम् ॥ ४ ॥ इत्यूरुस्तम्भचिकित्सा ।

अथाऽऽमवातनिदानप्रारम्भः ।

अथ तस्य निदानपूर्वकसंप्राप्तिमाह—विरुद्धाहारचेष्टस्य मन्दाग्नेर्निश्चलस्य
च । स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नं व्यायामं चापि कुर्वतः ॥ १ ॥ वायुना प्रेरितो
ह्यामः श्लेष्मस्थानं प्रधावति । तेनात्यर्थं विदग्धोऽसौ धमनीः प्रतिपद्यते ॥ २ ॥
वातपित्तकफैर्भूयो दूषितः सोऽन्नजो रसः । स्रोतांस्यभिष्यन्दयति नानावर्णोऽ-
तिपिच्छिलः ॥ ३ ॥ जनयत्यग्निदौर्बल्यं हृदयस्य च गौरवम् । व्याधीनामा-
श्रयो ह्येष आमसंज्ञोऽतिदारुणः ॥ ४ ॥ अजीर्णाच्चरसो जातः क्रमशः संचित-
श्च यः । आमसंज्ञां स लभते शिरोगात्ररुजाकरः ॥ ५ ॥ अथ तस्य रूप-
माहः—युगपत्कुपितावेतौ त्रिकसंधिप्रवेशकौ । स्तब्धं च कुरुतो गात्रमाम-
वातः स उच्यते ॥ १ ॥ अथ तस्य लक्षणमाह—अङ्गमर्दोऽरुचिस्तृष्णा
ह्यालस्यं गौरवं ज्वरः । अपाकः शून्यताऽङ्गानामामवातस्य लक्षणम् ॥ १ ॥
मन्यापृष्ठकटीजानुत्रिकसंधीन्विभ्रकुञ्चयन् । सशब्दस्वस्तगात्रश्च आमवातः स
उच्यते ॥ २ ॥ जठरानलदौर्बल्यादविपक्वस्तु यो रसः । स आमसंज्ञको देहे
सर्वदोषप्रकोपनः ॥ ३ ॥ अथ तस्यैवोपद्रवानाह—स कष्टः सर्वरोगाणां
यदा प्रकुपितो भवेत् । हस्तपादशिरोगुल्फत्रिकजानूरुसंधिषु ॥ १ ॥ करोति
सरुजं शोफं यत्र दोषः प्रपद्यते । स देशो रुजतेऽत्यर्थं व्याविद्ध इव वृश्चिकैः
॥ २ ॥ जनयेत्सोऽग्निदौर्बल्यं प्रसेकारुचिगौरवम् । उत्साहहानिं वैरस्यं दाहं
च बहुमूत्रताम् ॥ ३ ॥ करोति ग्रहणीदोषं विशेषादामसंज्ञकम् । अपक्वं सृ-
जते चान्नं केवलं चाऽऽममेव च ॥ ४ ॥ कुक्षौ कठिन्ता शूलं तथा निद्रा-
विपर्ययम् । तृदच्छर्दिभ्रममूर्च्छाश्च हृद्दाहं विड्बिबन्धनम् । जाड्यान्नकूजमाना-
हं कष्टांश्चान्यानुपद्रवान् ॥ ५ ॥ अथ पित्तादियुक्तस्य विशेषलक्षण-
माह—पित्तात्सदाहरागं च सशूलं पवनानुगम् । स्तैमित्यं गुरुकण्डूकं कफ-
जुष्टं तमादिशेत् ॥ १ ॥ अथ साध्यासाध्यत्वमाहः—एकदोषानुगः सा-
ध्यो द्विदोषो याप्य उच्यते । सर्वदेहचरः शोथः सकृच्छ्रः सानिपातिकः ।
॥ १ ॥ इत्यामवातनिदानम् ।

अथ आमवातचिकित्सा ।

लङ्घनं स्वेदनं तिक्तदीपनानि कटूनि च । विरेचनं स्नेहपानं वस्तयश्चाऽऽ-
ममारुते ॥ १ ॥ रुक्षः स्वेदो विधातव्यो वालुकापोटलैस्तथा । उपनाहाश्च
कर्तव्यास्तेऽपि स्नेहविवर्जिताः ॥ २ ॥

अथ काथाः ।

वृन्दाद्रास्त्रापञ्चकम्—रास्त्रागुडूचिकैरण्डं देवदारु महौषधम् । पिबे-
त्सर्वाङ्गगे वाते सामे संध्यस्थिमजगे ॥ १ ॥ अथ रास्त्रासप्तकम्—रास्त्रा-
मृतारग्वधदेवदारुत्रिकण्टकैरण्डपुनर्नवानाम् । काथं पिबेन्नागरचूर्णमिश्रं जङ्घ-
घोरुष्ट्रिकपार्श्वशूली ॥ १ ॥ अथ रास्त्राद्वादशकम्—रास्त्रा शतावरी
वासा गुडूच्यतिविषाऽभया । शुण्ठीदुरालभैरण्डदेवदारुवचाघनैः ॥ १ ॥
काथः पीतो जयत्याशु आमवातं सुदारुणम् । कञ्चूरुत्रिकजङ्घाङ्घ्रिगुल्फजा-
नुसमाश्रितम् ॥ २ ॥ अथ शुण्ठ्यादिः—शुण्ठीगोक्षुरककाथः प्रातः प्रात-
र्निषेवितः । आमवाते कटीशूले पाचनो रुक्प्रणाशनः ॥ १ ॥ इति वृन्दात् ।
अथ शठ्यादिः—शटी शुण्ठ्यभया चोग्रा देवाह्वाऽतिविषाऽमृता । कषा-
य आमवातस्य पाचनं रूक्षभोजिनाम् ॥ १ ॥ अथ पिप्पल्यादिः—पिप्प-
ली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम् । कथितं वारयत्येतदामवातं सुदारुणम् ॥
अथ दशमूलादियोगः—दशमूलकषायमिश्रितं वा ललने विश्वकषायमि-
श्रितं वा । प्रपिबेत्कटिकुक्षिवस्तिशूले ध्रुवमेरण्डजमेकमेव तैलम् ॥ इति वैद्य-
जीवनात् ॥ अथ रास्त्रादिपञ्चदशकम्—रास्त्रामृतानागरदेवदारुपञ्चाङ्घ्रि-
युग्मेन्द्रयवैः कषायः । एरण्डतैलेन समन्वितोऽयं भेत्ता भवेदामसमीरणस्य
॥ १ ॥ इति वैद्यजीवनात् । अथ महौषधादि वैद्यविलासात्—महौष-
धामृताभवः कषायकश्च सेवितः । हिनस्ति चाऽऽममारुतं चिराय संधिसं-
श्रितम् ॥ १ ॥

इति काथाः ।

अथ चूर्णानि ।

अथ भलातकादि—भलाततिलपथ्यानां चूर्णं गुडसमन्वितम् । आम-
वातं कटीशूलं हन्याद्वा गुडनागरम् ॥ १ ॥ अथाजमोदाद्यं चूर्णम्, शा-
ङ्गधरात्—अजमोदा विडङ्गानि सैन्धवं देवदारु च । चित्रकः पिप्पलीमूलं
शतपुष्पा च पिप्पली ॥ १ ॥ मरिचं चेति कर्पाशं प्रत्येकं कारयेद्बुधः । कर्पास्तु
पञ्च पथ्याया दश स्युर्वृद्धदारकात् ॥ २ ॥ नागराच्च दशैव स्युः सर्वाण्ये-
कत्र चूर्णयेत् । पिबेत्कोष्णजलेनैतच्चूर्णं श्वश्रुनाशनम् ॥ ३ ॥ आमवातरुजं
हन्ति संधिपीडां च गृध्रसीम् । कटिपृष्ठगुदस्थां च जङ्घयोश्च रुजं जयेत्
॥ ४ ॥ तूनीप्रतूनीविश्वाचीकफवातामयाञ्जयेत् । समेन वा गुडेनास्य वटका-
न्कारयेद्बुधः ॥ ५ ॥ अथ शार्ङ्गधरात्पञ्चसमचूर्णम्—शुण्ठी हरीतकी
कृष्णा त्रिवृत्सौवर्चलं तथा । समभागानि सर्वाणि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्
॥ १ ॥ ज्ञेयं पञ्चसमं चूर्णमेतच्छूलहरं परम् । आध्मानजठराशौघ्नमामवात-

हरं स्मृतम् ॥ २ ॥ अथ फलत्रिकादि—त्रिफला नागरं चैव सूक्ष्मचूर्णा-
नि कारयेत् । मस्त्वारनालतकेण पयोमांसरसेन वा । आमवातं निहन्त्याशु
श्वयथुं संधिसंस्थितम् ॥ १ ॥ अथ हिङ्गवादि—हिङ्गु चण्यं बिडं शुण्ठी
कृष्णाऽजाजी सपुष्करम् । भागोत्तरमिदं चूर्णं पीतं वातामजिद्वेत् ॥ १ ॥
अथ नागरादि—कणं नागरचूर्णस्य काञ्जिकेन पिबेत्सदा । आमवातप्रशमनं
कफवातविनाशनम् ॥ १ ॥ अथ पञ्चकोलादि—पञ्चकोलकचूर्णं च पिबे-
दुष्णेन वारिणा । मन्दाग्निशूलगुल्मामकफारोचकनाशनम् ॥ १ ॥ अथ वै-
श्वानरचूर्णम्—माणिमन्थस्य भागौ द्वौ यवक्षारश्च तत्समः । त्रयोऽजमो-
दाभागाश्च नागराद्भागपञ्चकम् ॥ १ ॥ दश द्वौ च हरीतक्याः सूक्ष्मचूर्णं
कृतं शुभम् । मस्त्वारनालमूत्रैश्च सुरयोष्णोदकेन वा ॥ २ ॥ पीतं जयेच्चा-
ऽऽमवातं गुल्महृद्वस्तिजान्गदान् । स्नीहानमथ शूलादीनानाहं चार्शसां हि-
तम् ॥ वातानुलोमनमिदं चूर्णं वैश्वानरं स्मृतम् ॥ ३ ॥ इति वृन्दात् ॥
अथ चित्रकादि, वृन्दात्—चित्रकं कटुका पाठा कलिङ्गातिविषामृताः ।
देवदारु वचा सुस्ता नागरातिविषाभयाः ॥ पिबेदुष्णाम्बुना नित्यं चूर्णमाम-
मरुप्रणुत् ॥ १ ॥ अथालम्बुषादि—अलम्बुपागोक्षुरकौ त्रिफला नागराऽ-
मृता । यथोत्तरं भागवृद्ध्या श्यामाचूर्णं च तत्समम् ॥ १ ॥ पिबेत्सुरामस्तु-
तककाञ्जिकोष्णोदकेन वा । आमवातं जयत्याशु सशोफं वातशोणितम् ॥ २ ॥
इति वृन्दात् । इति चूर्णानि ॥

अथ सिंहनादगुग्गुलुः ।

पलत्रयं कपायस्य त्रिफलायाः सुचूर्णितम् । सौगन्धिकं पलं चैकं कौ-
शिकस्य पलं तथा ॥ १ ॥ कुडवं चोरुवृकस्य तैलमादाय यत्नतः । पाचये-
त्पाकविद्वैद्यः पात्रे लोहमये दडे ॥ २ ॥ हन्ति वातं तथा पित्तं श्लेष्माणं ख-
जपङ्गुताम् । श्वासं सुदुर्जयं हन्ति कासं पञ्चविधं तथा ॥ ३ ॥ कुष्ठानि वा-
तरक्तं च गुल्मशूलोदराणि च । आमवातं जयेदेतदपि वैद्यविवर्जितम् ॥ ४ ॥
एतदभ्यासयोगेन जरापलितवर्जितम् । सर्पिस्तैलरसोपेतमश्नीयाच्छालिषाष्टि-
कम् ॥ ५ ॥ सिंहनाद इति ख्यातो रोगवारणदर्पहा । वह्नेर्वृद्धिकरः पुंसां
भाषितो दण्डपाणिना ॥ ६ ॥ इति सिंहनादगुग्गुलुः । अथान्यश्च औषदे-
वकृतशतकात्—प्रत्येकं प्रत्यमेकं पुरत्रिफलमपां पाचयेत्सार्धराशौ तुर्यांशे
तत्र पूते पुनरमरवराव्योपसुस्ताग्निवेह्यैः । छिन्नोग्रामानकाशोरिपुश्वरित्रिवृ-
त्सूतगन्धैः पलायैः साहस्रैर्दन्तिबीजैः कुटजवसुपलैः सिंहनादोऽनिलाभे ॥ १ ॥

अथ योगरत्नावल्या महारसोनपिण्डः ।

तुला क्षुण्णरसोनस्य तदर्धं लुब्धितास्तिलाः । पात्रे तु गव्यतक्रस्य पिष्ट-

द्रव्यैः समं क्षिपेत् ॥ १ ॥ ज्यूषणं धान्यकं चव्यं चित्रकं गजपिप्पली । अ-
जमोदा त्वगेला च ग्रन्थिकं च पलांशकम् ॥ २ ॥ शर्करायाः पलान्यष्टौ प-
ञ्चाजाज्याः पलानि च । कृष्णाजाज्याश्च चत्वारि राजिकायास्तथैव च ॥ ३ ॥
पलप्रमाणं दातव्यं हिङ्गोर्लवणपञ्चकम् । आर्द्रकस्य च चत्वारि सर्पिपोऽष्टौ
पलानि च ॥ ४ ॥ तिलतैलस्य तावन्ति शुक्तस्यापि च विंशतिः । सिद्धार्थ-
कस्य चत्वारि द्विगुणं मधुकस्य च ॥ ५ ॥ एकीकृत्य दृढे भाण्डे धान्यराशौ
निधापयेत् । द्वादशाहात्समुद्धृत्य प्रातः खादेद्यथाबलम् ॥ ६ ॥ सुरां सौ-
वीरकं चाथ मधु वाऽपि पिबेन्नरः । जीर्णे यथेप्सितं भोज्यं दधिपिष्टकवर्जि-
तम् ॥ ७ ॥ एकमासोपयोगेन सर्वव्याधिहरो भवेत् । अशीतिर्वातजा रोगा-
श्चत्वारिंशच्च पित्तजाः ॥ ८ ॥ विंशतिः श्लेष्मजास्तद्वन्नश्यन्ते तस्य सेवनात् ।
योनिशूलं प्रमेहांश्च कुष्ठोदरभगंदरान् । अशौगुल्मक्षयांश्चापि जयेद्बुचिबल-
प्रदः ॥ ९ ॥ इति महारसोनपिण्डः ।

अथ घृतकल्कावलेहादि ।

अथैरण्डजयोगः—विशोध्यैरण्डबीजानि पिष्ट्वा तत्पायसं पिबेत् । आ-
मवाते कटीशूले गृध्रस्यां चौषधं परम् ॥ १ ॥ एरण्डबीजमज्जा समविश्व-
शर्करासहितः । गुटीकृतः प्रभाते भुक्तः सामानिलं जयति ॥ २ ॥ आमवात-
गजेन्द्रस्य शरीरचनचारिणः । एक एवाग्रणीर्हन्ता एरण्डस्नेहकेसरी ॥ ३ ॥
कटीतटनिकुञ्जेषु संचरन्वातकुञ्जरः । एरण्डतैलसिंहस्य गन्धमाघ्राय गच्छति
॥ ४ ॥ इत्यैरण्डजयोगः । अथ शार्ङ्गधराच्छुण्ठीकल्कः—शुण्ठीकल्कं विनि-
ष्पिष्य रसैरेरण्डमूलजैः । विपचेत्पुटपाकेन तद्रसःक्षौद्रसंयुतः । आमवातसमु-
द्भूतां पीडां जयति दुस्तराम् ॥ १ ॥ अथ शुण्ठीघृतम्—पुष्ट्यर्थं पयसा
साध्यं दध्ना विण्मूत्रसंग्रहे । दीपनार्थं मतिमता मस्तुना च प्रकीर्तितम् ॥ १ ॥
सर्पिर्नागरकल्केन सौवीरं च चतुर्गुणम् । सिद्धमशिकरं श्रेष्ठमामवातहरं परम्
॥ २ ॥ इति शुण्ठीघृतम् । अथ खण्डशुण्ठ्यवलेहः—नागरस्य तुलामेकां
घृतस्य पलविंशतिः । क्षीरद्रोणार्धके पक्त्वा खण्डस्यार्धं शतं क्षिपेत् ॥ १ ॥
व्योषं त्रिजातकं चैव केशरं पिप्पलीजटा । जोङ्गकं जातिपत्रीकं जातीफलक-
चोरकम् ॥ २ ॥ अश्वमेदस्ताम्रभस्म वङ्गभस्म तथैव च । स्वर्णमाक्षिकमश्रं च
तथा लोहत्रयं क्षिपेत् ॥ ३ ॥ एतान्पृथक्पलान्भागान्प्रत्येकं चूर्णितं क्षिपेत् ।
मन्दानलविपकं तु लेहवत्साधु साधयेत् ॥ ४ ॥ बल्यं वर्ण्यं तथाऽयुष्यं
वलीपलितनाशनम् । आमवातप्रशमनं सौभाग्यकरमुत्तमम् ॥ १ ॥ अथ
लेपौ—शतपुष्पा वचा विश्वा श्वदंष्ट्रा वरुणत्वचः । पुनर्नवासदेवाह्वासटिमु-
ण्डनिकाः समाः ॥ २ ॥ प्रसारिणी च तर्कारी फलं च मदनस्य च । शुक्तका-

अिकपिष्टास्तु सुखोष्णा लेपने हिताः ॥ २ ॥ इति शतपुष्पादिः । अथा-
हिंसादिः—अहिंसाकेम्बुकामूलं शिशुवल्मीकमृच्चयैः । मूत्रपिष्टैश्च कर्तव्य
उपनाहोऽनिलामजित् ॥ १ ॥ अथ पानीयम्—आमवाताभिभूताय पीडि-
ताय पिपासया । पञ्चकोलेन संसिद्धं पानीयं हितमुच्यते ॥ १ ॥ अथाऽऽ-
मवातविध्वंसनरसः—प्रक्षिप्य गन्धं रसपादभागं कलाप्रमाणं च विषं
समस्तात् । कृशानुतोयेन च भावयित्वा वल्लं ददीतास्य मरुत्प्रशान्त्यै ॥ १ ॥
अपस्मारे तथोन्मादे सर्वाङ्गव्यथनेऽपि च । एकाङ्गवाते सामे वा दंष्ट्राबन्धे
हिमे तथा । देयोऽयं वल्लमात्रं तु सर्ववातनिवृत्तये ॥ २ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

यवाः कुलत्थाः श्यामाकाः कोद्रवा रक्तशालयः । वास्तुकं शिशु वर्षाभूः
कारवेल्लं पटोलकम् ॥ १ ॥ आर्द्रकं तप्तनीरं च लशुनं तक्रसंस्कृतम् । जाङ्ग-
लानां तथा मांसं सामवातगदे हितम् ॥ २ ॥ दधिमत्स्यगुडक्षीरोपोदिकामा-
पपिष्टकम् । दुष्टनीरं पूर्ववातं विरुद्धान्यशनानि च ॥ ३ ॥ असात्म्यं वेगरोधं
च जागरं विषमाशनम् । वर्जयेदामवातार्तो गुर्वभिष्यन्दकानि च ॥ ४ ॥

इति पथ्यापथ्यम् । इत्यामवातचिकित्सा ।

अथ शूलनिदानं व्याख्यास्यामः ।

यदुक्तं हारीते—अनङ्गनाशाय हरस्त्रिशूलं मुमोच कोपान्मकरध्वजश्च ।
तमापतन्तं सहसा निरीक्ष्य भयार्दितो विष्णुतनुं प्रविष्टः ॥ १ ॥ सविष्णुहुं-
कारविमोहितात्मा पपात भूमौ प्रथितः स शूलः । स पञ्चभूतानुगतं शरीरं
प्रचूपयत्यस्य हि पूर्वसृष्टिः ॥ २ ॥ शूलरोपणवत्पीडा यस्याकस्मात्प्रजायते ।
त्रिशूलसंभवं चैनं शूलमाहुः पुराविदः ॥ ३ ॥ शङ्खस्फोटनवत्तस्य यस्मात्तीव्रा
च वेदना । शूलासक्तस्य भवति तस्माच्छूलमिहोच्यते ॥ ४ ॥ अथ तस्य सं-
ख्यामाह—पृथग्दोषैः समस्तामद्वैद्वैः शूलोऽष्टधा भवेत् । सर्वेष्वेतेषु शूलेषु
प्रायेण पवनः प्रभुः ॥ १ ॥ वातिकशूलस्य कारणं लक्षणं चाह—व्याया-
मयानादतिमैथुनाच्च प्रजागराच्छीतजलातिपानात् । कलायमुद्गाढकिोरदूषा-
दत्यर्थरूक्षाध्यशनाभिघातात् । कपायतिक्तातिविरुदजात्रविरुद्धवल्लूरकशुष्क-
शाकात् ॥ १ ॥ विट्शुक्रमूत्रानिलवेगरोधाच्छोकोपवासादतिहास्यभाष्यात् ।
वायुः प्रवृद्धो जनयेद्धि शूलं हृत्पार्श्वपृष्ठत्रिकबस्तिदेशे ॥ १ ॥ जीर्णे प्रदोषे च
वनागमे च शीते च कोपं समुपैति गाढम् । मुहुर्मुहुश्चोपशमप्रकोपौ विद्व-
वातसंस्तम्भनतोदभेदैः ॥ १ ॥ संस्वेदनाभ्यञ्जनमर्दनाद्यैः स्निग्धोष्णभोज्यैश्च
शमं प्रयाति ॥ १ ॥ अथ पैत्तिकस्य कारणं लक्षणं चाह—क्षारातितीक्ष्णो-
ष्णविदाहितैलनिष्पावपिण्याककुलत्थयूषैः । कटुम्लसोवीरसुराविकारैः क्रोधा-

नलायासरविप्रतापैः ॥ १ ॥ ग्राम्यातियोगादशनेर्विदग्धैः पित्तं प्रकुप्याऽऽशु
करोति शूलम् । तृष्णोहदाहार्तिकरं हि नाभ्यां संस्वेदमूर्च्छाभ्रमशोऽयुक्तम्
॥ १ ॥ मध्यंदिने कुप्यति चार्धरात्रे निदाघकाले जलदात्यये च ॥ शीते च
शीतैः समुपैति शान्तिं सुखादुशीतैरपि भोजनैश्च ॥ १ ॥ अथ श्लेष्मिक-
स्यकारणं लक्षणं चाह—आनूपवारिजकिलाटपयोविकारैर्मांसेक्षुपिष्टकृशरा-
तिलशङ्कुलीभिः । अन्यैर्बलासजनकैरपि हेतुभिश्च श्लेष्मा प्रकोपमुपगम्य
करोति शूलम् ॥ १ ॥ हृत्सासकसदनारुचिसंप्रसेकैरामाशये स्तिमितकोष्ठ-
शिरोगुरुत्वैः ॥ २ ॥ भुक्ते सदैव हि रुजं कुरुतेऽतिमात्रं सूर्योदयेऽथ शिशिरे
कुसुमागमे च ॥ १ ॥ अथ सांनिपातिकमाह—सर्वेषु दोषेषु च सर्वलिङ्गं वि-
द्याद्विषक् सर्वभवं हि शूलम् । सुकष्टमेनं विषवज्रतुल्यं विवर्जनीयं प्रवदन्ति
तज्ज्ञाः ॥ १ ॥ अथाऽऽमजमाह—आटोपहृत्सासवमीगुरुत्वसैमित्यकाना-
हकफप्रसेकैः । कफस्य लिङ्गेन समानलिङ्गमामोद्ववं शूलमुदाहरन्ति ॥ १ ॥
अथ द्विदोषजमाह—द्विदोषलक्षणैरेतैर्विद्याच्छूलं द्विदोषजम् । बस्तौ ह-
त्कण्ठपार्श्वेषु स शूलः कफवातिकः ॥ १ ॥ कुक्षौ हृत्त्राभिमध्ये यः स शूलः
कफपैतिकः । दाहज्वरकरो घोरो विज्ञेयो वातपैतिकः ॥ २ ॥ अथ तन्त्रा-
न्तरे—वातात्मकं बस्तिगतं वदन्ति पित्तात्मकं चापि वदन्ति नाभ्याम् ।
हृत्पार्श्वकुक्षौ कफसंनिविष्टं सर्वेषु देशेषु च संनिपातात् ॥ १ ॥ अथ सा-
ध्यासाध्यत्वमाह—एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः । स-
र्वदोषोत्थितो घोरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ॥ १ ॥ अथ उपद्रवानाह—वेदना-
तितृषा मूर्च्छा ह्यानाहो गौरवारुची । भ्रमो ज्वरः कृशत्वं च बलहानिस्तथैव
च ॥ कासः श्वासश्च हिक्का च शूलस्योपद्रवाः स्मृताः ॥ १ ॥ इति शूलनि-
दानम् ॥

अथ सामान्यतः शूलचिकित्सा ।

वमनं लङ्घनं स्वेदः पाचनं फलवर्तयः । क्षारशूर्णश्च गुटिकाः शस्यन्ते शूल-
लशान्तये ॥ १ ॥

अथ वातशूलचिकित्सामाह—

ज्ञात्वा तु वातजं शूलं स्नेहस्वेदैरुपाचरेत् । पायसैः कृशरापिण्डैः स्निग्धैर्वा
पिशितोत्कटैः ॥ १ ॥ आशुकारी हि पवनस्तस्मात्तं त्वरया जयेत् । तस्य शूल-
लाभिपन्नस्य स्वेद एव सुखावहः ॥ २ ॥ अथ तिलकलकस्वेदः—तुपवा-
रिविनिष्पिष्टतिलकलकोष्णपोटली । आमिता जठरस्योर्ध्वं मुहुः शूलं विनाश-
येत् ॥ १ ॥ अथ लेपसेकौ—नाभिलेपाजयेच्छूलं मदनं काञ्जिकान्वितम् ।
बिल्वैरण्डतिलैर्वाऽपि पिष्टैरन्वलेन पोटली ॥ १ ॥ अथ कुलत्थादियूपः—

वातात्मकं हन्त्यचिरेण शूलं स्नेहेन युक्तस्तु कुलत्थयूषः । ससैन्धवो व्योष-
युतः सलावः सहिङ्गुसौवर्चलदाडिमाढ्यः ॥ १ ॥ अथ बलादिकाथः—
बलापुनर्नैरैरण्डवृहतीद्वयगोक्षुरैः । काथः सहिङ्गुलवणः पीतो वातरुजं जयेत्
॥ १ ॥ अथ शार्ङ्गधरात्रागरादिः—नागरैरैरण्डयोः काथः काथ इन्द्रय-
वस्य वा । हिङ्गुसौवर्चलोपेतो वातशूलनिवारणः ॥ १ ॥ अथ करञ्जाद्यं
चूर्णम्—करञ्जसौवर्चलनागराणां सरामठानां समभागिकानाम् । चूर्णं क-
दुष्णेन जलेन पीतं समीरशूलं विनिहन्ति सद्यः ॥ १ ॥ अथ राजिकादि-
लेपः—राजिकाशिमुक्लक च गोतक्रेण च पेधितम् । तेन लेपेन हन्त्याशु
शूलं वातसमुद्भवम् ॥ १ ॥ अथ हिङ्गुवादिरेपः—हिङ्गुतैलं सलवणं
गोमूत्रेण विपाचितम् । नाभिस्थाने प्रदातव्यं यस्य शूलं सवेदनम्
॥ १ ॥ अथ शूले साटोपे—तैलमेरण्डजं वाऽपि दशमूलस्य वारिणा । पीतं
निहन्ति साटोपं हिङ्गुसौवर्चलान्वितम् ॥ १ ॥ इति वातशूलचिकित्सा ।

अथ पित्तशूलचिकित्सामाह—

वामयेत्पित्तशूलार्तं पटोलेक्षुरसादिभिः । पश्चाद्विरेचयेत्सम्यक्पित्तगुल्मवि-
रेचनैः ॥ १ ॥ अथ शतवरीादिकाथः—शतावरी सयष्ट्याह्वा वाढ्याल-
कुशगोक्षुरैः । शृतशीतं पिबेत्तोयं सगुडक्षौद्रशर्करम् । पित्तशूलान्नदाहं
हिक्काज्वरवमिच्छिदम् ॥ १ ॥ अथ वृहत्यादिकाथः—वृहतीगोक्षुरैरैरण्डकु-
शकाशेषुवालकाः । पीताः पित्तभवं शूलं सद्यो हन्युः सुदारुणम् ॥ १ ॥
अथ त्रिफलारग्वधादिः—त्रिफलारग्वधकाथः शर्कराक्षौद्रसंयुतः । रक्त-
पित्तहरो दाहपित्तशूलनिवारणः ॥ १ ॥ अथ त्रिफलादिः—त्रिफलारिष्ट-
यष्ट्याह्नकदुकारग्वधैः शृतम् । पाययेन्मधुसंमिश्रं दाहशूलोपशान्तये ॥ १ ॥
अथ शतावरीस्वरसः वृन्दात्—शतावरीरसं क्षौद्रयुक्तं प्रातः पिबेन्नरः ।
दाहशूलोपशान्त्यर्थं सर्वपित्तामयापहम् ॥ १ ॥ अथ धात्र्यादियोगः—
धात्र्या रसं विदार्या वा त्रायन्तीगोस्तनाम्बुना । पिबेत्सशर्करं सद्यः पित्तशू-
लनिवारणम् ॥ १ ॥ अथ धात्रीचूर्णादि—प्रलिह्यात्पित्तशूलं धात्रीचूर्णं
समाक्षिकम् । सगुडं घृतसंमिश्रां भक्षयेद्वा हरीतकीम् ॥ १ ॥ अथ गुडा-
दियोगाः—गुडशालियवक्षीरं सर्पिर्दुग्धं विरेचनम् । जाङ्गलानि च मांसानि
भेषजं पित्तशूलिनः ॥ १ ॥ इति पित्तशूलचिकित्सा ।

अथ कफशूलचिकित्सामाह—

शाल्यन्नं जाङ्गलं मांसमरिष्टं कटुकं रसम् । मद्यानि जीर्णगोधूमं कफशूले
प्रयोजयेत् ॥ १ ॥ अथ त्रिलवणादिचूर्णम्—लवणत्रयसंयुक्तं पञ्चकोलं
सरामठम् । सुखोष्णेनाम्भसा पीतं कफशूलहरं परम् ॥ १ ॥ इति श्लेष्मशू-
लचिकित्सा ।

अथ त्रिदोषशूलचिकित्सामाह—

अथ शङ्खचूर्णयोगः—शङ्खचूर्णं सलवणं सहिङ्गु व्योषसंयुतम् । उष्णोदकेन तत्पीतं हन्ति शूलं त्रिदोषजम् ॥ १ ॥ अथ मण्डूरावलेहः—गोमूत्रसिद्धमण्डूरं त्रिफलाचूर्णसंयुतम् । विलिहन्मधुसर्पिर्भ्यां शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ २ ॥ इति त्रिदोषशूलः ।

अथाऽऽमशूलचिकित्सामाह—

आमशूले क्रिया कार्या कफशूलविनाशिनी । शेषमामहरं सर्वं यद्यदग्निविवर्धनम् ॥ १ ॥ अथ चित्रकादिकाथः—चित्रकग्रन्थिकैरण्डशुण्ठीधान्यजलैः शृतम् । सहिङ्गुसैन्धवविडमामशूलहरं परम् ॥ १ ॥ अथैरण्डादिकाथः—एरण्डविल्ववृहतीद्वयमातुलुङ्गपाषाणभिन्निकटुमूलकृतः कषायः । सक्षारहिङ्गुलवणोरुबुतैलमिश्रः श्रोण्यंसपृष्ठहृदयस्तनुरुक्षु पेयः ॥ १ ॥ अथैरण्डतैलादियोगः—एरण्डतैलं पद्मभागं लशुनस्य तथाऽष्टकम् । एकं हिङ्गु त्रिसिन्धूत्थं सर्वमेकत्र मर्दयेत् । त्रिनिष्कं भक्षयेच्चानु ह्यामशूलप्रशान्तये हिङ्गुत्रिगुणसैन्धवं तस्माच्च शुद्धतैलमैरण्डम् । तन्निगुणरसोनरसं गुल्मोदावर्तशूलघ्नम् ॥ २ ॥ इत्यामशूलचिकित्सा ।

अथ द्वंद्वजशूलचिकित्सा ।

कण्टकार्यादिकाथः—निदिग्धिकावृहत्तौ च कुशकाशेषुवालकाः । श्वदंष्ट्रैरण्डमूलं च वारिणा सह पाचयेत् । पिबेत्सर्शकरक्षौद्रं शूले पित्तानिलात्मके ॥ १ ॥ अथ पटोलादिः—पटोलत्रिफलारिष्टासृतं क्षौद्रयुतं पिबेत् । पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहशूलोपशान्तये ॥ १ ॥ अथ द्राक्षादिकाथः—द्राक्षाटरूपयोः काथः श्लेष्मपित्तरुजं जयेत् । पित्तश्लेष्मोद्भवं शूलं विरेकवमनैर्जयेत् ॥ १ ॥ अथ क्षाराम्बुयोगः—क्षारोदकं पिबेदुष्णं पिप्पलीलवणान्वितम् । वातश्लेष्मोद्भवं शूलं कुक्षिशूलं च नाशयेत् ॥ १ ॥ इति द्वंद्वजशूलचिकित्सा ।

अथ शूले साधारणविधिः ।

अथ त्रिफलादिविरेचनम्—त्रिफलाकाथगोमूत्रक्षौद्रक्षीररसैः पृथक् । एरण्डतैलद्विगुणैर्हितं शूले विरेचनम् ॥ १ ॥ अथ बीजपूरादिस्वरसः—बीजपूररसः पानान्मधुक्षारयुतो जयेत् । पार्श्वहृद्वस्तिशूलानि कोष्ठवायुं च दारुणम् ॥ १ ॥ अथ पथ्यादिकाथः—पथ्यासशक्रयवपुष्करमूलयुक्तां निष्काथ्य हिङ्गुजटिलातिविषासमेताम् । पीत्वा सुखोष्णमथ वातकृतं सशूलमामोद्भवं कफकृतं च निहन्ति तूर्णम् ॥ १ ॥ अथ मातुलुङ्गादिः—मातुलुङ्गरसो वाऽपि शिशुकाथस्तथा परः । सक्षारो मधुना पीतः पार्श्वहृद्व-

स्तिशूलहा ॥ १ ॥ अन्यच्च—मातुलङ्गरसे सर्पिः सहिङ्गु लवणान्वितम् । सुखोष्णं पाययेत्तद्वि विड्विबन्धानुलोमनम् ॥ कुक्षिहृत्पार्श्वशूलेषु वेदना चोपशाम्यति ॥ १ ॥ अथ बिल्वमूलादिः—बिल्वमूलमथैरण्डं चित्रकं विश्वभेषजम् । हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तं सद्यः शूलनिवारणम् ॥ १ ॥ अथ हरीतकीयोगः—मूत्रान्तः पाचित्तां शुष्कां लोहचूर्णसमन्विताम् । सगुडामभयां दद्यात्सर्वशूलोपशान्तये ॥ १ ॥ अथ लोहत्रिफलायोगः—तीक्ष्णायश्चूर्णसंयुक्तं त्रिफलाचूर्णमुत्तमम् । प्रयोज्यं मधुसर्पिर्भ्यां सर्वशूलनिवारणम् ॥ १ ॥

अथ चूर्णानि—

तत्राऽऽदौ तुम्बुर्वाद्यं चूर्णम्—चूर्णं तुम्बुरामठत्रिलवणक्षाराजमोदाभयावेल्लत्र्यूपणपुष्कराह्वयकृतं कुम्भत्रिभागान्वितम् । मन्दोष्णेन जलेन पीतमखिलं शूलं सगुल्मोदराधमानाजीर्णविबन्धमामपवनानाहौ च शीघ्रं जयेत् ॥ १ ॥ अथ द्विक्षाराद्यम्—विश्वोरुबूकदशमूलयवाम्भसा तु द्विक्षारहिङ्गुलवणत्रयपुष्कराणाम् । चूर्णं पिबेद् हृदयपृष्ठकटिग्रहामपकाशयार्तिभृशरुग्ज्वरगुल्मशूली ॥ १ ॥ अथ हिङ्गुवादि—हिङ्गुवल्त्रिपटूप्रषट्कदुशटीवृक्षाम्लदीप्यालकं पाठाजाज्यजगन्धमूलहृषाद्विक्षारसाराभयम् । हिध्माध्मानविबन्धवर्ध्मकसनश्वासाग्निसादारुचिप्लीहाशौखिलशूलगुल्मगलहृद्रोगाश्मपाण्डुप्रणुत् ॥ १ ॥ अथ नाराचचूर्णम्—कर्षमात्रा भवेत्कृष्णा त्रिवृतं स्यात्पलोन्मितम् । खण्डात्पलं च विज्ञेयं चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥ १ ॥ कर्षोन्मितं लिहेदेतत्क्षौद्रेणाऽऽध्माननाशनम् । गाढविट्कोदरकफपित्तशूलानि नाशयेत् ॥ २ ॥ इति चूर्णानि ।

अथ शङ्खवटी—चिञ्चाक्षारं पञ्चपलं लवणानि पलं पलम् । संचूर्ण्य निक्षिपेत्प्रस्थद्वयैर्जम्बीरवारिभिः ॥ १ ॥ शङ्खं दशपलं तस्मात् निक्षिपेत्सप्तवारतः । तत्समस्तं विशोष्याथ हिङ्गुव्योषं चतुष्पलम् ॥ २ ॥ बलिसूतविषाङ्गागान्पलार्धं च पृथक्पृथक् । एतत्समस्तं संमर्द्य जम्बीराम्लैर्दिनत्रयम् ॥ ३ ॥ बदरास्थिप्रमाणेन वटिकां कारयेद् बुधः । एकैकां भक्षयेत्प्रातः कोष्णतोयं पिबेदनु ॥ ४ ॥ सर्वशूलं हरेद्गुल्ममजीर्णं परिणामजम् । अतिसारगदं हन्याद्ग्रहणीं च विशेषतः ॥ ५ ॥ अथ सूर्यप्रभा वटी—व्योषग्रन्थिवचाग्निहिङ्गुजरणद्वंद्वं विषं निम्बुकद्रावैरार्द्रकजैरसैर्विमृदितं तुल्यं मरीचोपमा । कर्तव्या वटिकाऽथ सा दिनमुखे भुक्ता कवोष्णाम्बुना शूलं त्वष्टविधं निहन्ति सहसा सूर्यप्रभा नामतः ॥ १ ॥ अथ खण्डपिप्पली—कणाचूर्णं तु कुडवं पट्पलं हविषस्तथा । पलपोडशकं खण्डं शतावरीयाः पलाष्टकम् ॥ १ ॥ क्षीरप्रस्थद्वये सार्धं लेहीभूते तदुद्धरेत् । त्रिजातमुस्तधान्याकं शुण्ठीमांसीद्विजीरकम् ॥ २ ॥ अभयाऽऽमलकं चैव चूर्णं द्वादशकार्षिकम् । तदर्धं मरिचं

भागं सारं खादिरमेव च ॥ ३ ॥ मधुत्रिपलसंयुक्तं खादेत्सिद्धं यथाबलम् ।
शूलारोचकहृत्लासच्छर्दिपित्ताम्लरोगनुत् । अग्निसंदीपनी हृद्या खण्डपिप्प-
लिका मता ॥ ४ ॥

अथ घृतम्—घृताच्चतुर्गुणो देयो मातुलङ्गरसो दधि । शुष्कमूलकको-
लाम्लकषायो दाडिमाम्भसा ॥ १ ॥ विडङ्गलवणक्षारं पञ्चकोलयवानिभिः ।
पाठामूलककल्केन सिद्धं शूले घृतं मतम् ॥ २ ॥ हृत्पार्श्वशूलं वै श्वासं कासं
हिक्कां तथैव च । वर्ध्मगुल्मप्रमेहार्शोवातव्याधींश्च नाशयेत् ॥ ३ ॥

अथ रसौ ।

अथ शूलगजकेसरी रसः—रसविषगन्धकपर्दक्षारेण सिन्धुपिप्पली-
विधैः । अहिवह्न्यम्बुविष्टुष्टः शूलेभहरिर्द्विगुञ्जोऽयम् ॥ १ ॥ अन्यश्च—क्षारं
कपर्दाद्विपसैन्धवौ च व्योषं च संमर्द्य भुजंगवल्याः । रसेन गुञ्जाप्रमितः प्र-
दिष्टः समीरशूलेभहरिः प्रचण्डः ॥ १ ॥ इति रसौ ।

अथ पथ्यापथ्यम् ।

पटोलं कारवेल्लं च वास्तुकं शिशुजं तथा । सामुद्रं लशुनं वाऽथ शालिः
संवत्सरोषितः ॥ १ ॥ एरण्डतैलं सुरभीजलं च तप्ताम्बु जम्बीररसोऽपि कु-
ष्ठम् । लघूनि च क्षाररजांसि चेति वर्गो हितः शूलगदार्दितेभ्यः ॥ २ ॥
विरुद्धान्यन्नपानानि जागरं विपमाशनम् । रूक्षतिक्तकषायाणि शीतलानि
गुरुणि च ॥ ३ ॥ व्यायामं मैथुनं मद्यं वैदलं कटुकानि च । वेगरोधं शुचं
क्रोधं वर्जयेच्छूलवाह्नरः ॥ ४ ॥ इति शूलरोगचिकित्सा ।

अथ परिणामशूलनिदानप्रारम्भः ।

स्वैर्निदानैः प्रकुपितो वायुः सनिहितस्तदा । कफपित्ते समावृत्य शूलकारी
भवेद्बली ॥ १ ॥ अथ तन्त्रान्तरे—बलासः प्रच्युतः स्थानात्पित्तेन सह मू-
र्छितः । वायुमादाय कुरुते शूलं जीर्यति भोजने ॥ १ ॥ कुक्षौ जठरपार्श्वेषु
नाभ्यां बस्तौ स्तनान्तरे । पृष्ठमूलप्रदेशेषु सर्वेष्वेतेषु वा पुनः ॥ २ ॥ भुक्त-
मात्रेऽथ वा वान्ते जीर्णे चात्रे प्रशाम्यति । पष्टिक्रीहिशालीनामोदनेन च
वर्धते । तत्परीणामजं शूलं दुर्विज्ञेयं महागदम् । आहाररसवाहानां स्रोतसां
दुष्टिहेतुकम् ॥ ४ ॥ केचिदन्नद्रवं प्राहुरन्ये तत्पक्तिदोषजम् । पक्तिशूलं व-
दन्येके केचिदन्नविदाहजम् ॥ ५ ॥ अथ तस्य सामान्यलक्षणमाह—
भुक्ते जीर्यति यच्छूलं तदेव परिणामजम् । तस्य लक्षणमेतद्धि समासेन प्र-
कीर्यते ॥ १ ॥ अथ वातिकमाह—आध्मानाटोपविष्मूत्रविबन्धारतिवे-
पनैः । स्निग्धोष्णोपशमं प्रायो वातिकं तद्भेदोऽपि ॥ १ ॥ अथ पैत्तिक-
माह—नृणादाहारुचिस्वेदकट्वम्ललवणोत्तरम् । शूलं शीतशमं प्रायः पै-

त्तिकं तद्वदेन्निषक् ॥ १ ॥ अथ श्रैष्मिकमाह—छर्दिहृल्लाससंमोहस्वल्परु-
ग्दीर्घसंतति । कटुतिक्तोपशान्तं हि तच्च ज्ञेयं कफात्मकम् ॥ १ ॥ अथ द्वि-
दोषजमाह—संसृष्टलक्षणं बुद्ध्वा द्विदोषं परिकल्पयेत् । अथ सांनिपातिक-
माह—त्रिदोषजमसाध्यं स्यात्क्षीणमांसबलानलम् ॥ १ ॥ अथान्नद्रवा-
ख्यम्—जीर्णं जीर्यत्यजीर्णं च यच्छूलमुपजायते । तदप्यसाध्यं नित्यत्वादुक्तं
वैद्यविशारदैः ॥ १ ॥ पथ्यापथ्यप्रयोगेण भोजनाभोजनेन वा । न शमं याति
नियमात्सोऽन्नद्रव उदाहृतः ॥ अथायं प्रायेण त्रिदोषविकृतित्वादसाध्यः ।
आनाहो गौरवं छर्दिभ्रंसस्तृष्णा ज्वरोऽरुचिः । कृशत्वं बलहानिश्च वेदनाऽ-
तिप्रवर्तते ॥ १ ॥ उपद्रवा दशैवैते शूले च परिणामजे । सोपद्रवोऽप्यसाध्यः
स्यात्कृच्छ्रेण निरुपद्रवः ॥ २ ॥

इति परिणामशूलनिदानम् ।

अथ तच्चिकित्सा ।

लङ्घनं प्रथमं कुर्याद्वसनं च विरेचनम् । बस्तिकर्म परं चात्र पक्तिशूलोप-
शान्तये ॥ १ ॥ वातजं स्नेहयोगेन पित्तजं रेचनादिना । कफजं वमनाद्यैश्च
पक्तिशूलमुपाचरेत् । द्रवजं स्नेहयोगेन तन्त्रियोगेण सर्वजम् ॥ २ ॥ अथ
कल्काः—विष्णुक्रान्ताजटाकल्कः सिताक्षौद्रघृतैर्युतः । परिणामभवं शूलं
नाशयेत्सप्तभिर्दिनैः ॥ १ ॥ शुण्ठीतिलगुडैः कल्कं दुग्धेन सह योजयेत् । प-
रिणामभवं शूलमामवातश्च नश्यति ॥ २ ॥ नागरतिलगुडकल्कं पयसा सं-
साध्य यः पुमानद्यात् । उग्रं परिणतिशूलं सप्ताहाज्जयति चावश्यम् ॥ ३ ॥
अथ शम्बूकभस्मयोगः—शम्बूकजं भस्म पीतं जलेनोष्णेन तत्क्षणात् ।
पक्तिजं विनिहन्त्याशु शूलं विष्णुरिवासुरान् ॥ १ ॥ अथ शम्बूकादिव-
टिका—शम्बूकमूषणं चैव पञ्चैव लवणानि च । समांशां गुटिकां कृत्वा क-
लम्बुकरसेन च ॥ १ ॥ प्रातर्भोजनकाले वा भक्षयेच्च यथाबलम् । शूलाद्वि-
मुच्यते जन्तुः सहसा परिणामजात् ॥ २ ॥ अथ क्षीरमण्डूरः—लोह-
किट्टं पलान्यष्टौ गोमूत्रार्धाढके पचेत् । परिणामभवं शूलं सद्यो हन्ति न
संशयः ॥ १ ॥ अथ तारमण्डूरः—विडङ्गं चित्रकं चव्यं त्रिफला त्र्युष-
णानि च । नवभागानि चैतानि लोहकिट्टसमानि च ॥ १ ॥ गोमूत्रं द्विगुणं
दत्त्वा मूत्राद्विगुणको गुडः । शनैर्मृद्वग्निना पक्त्वा सुसिद्धं पिण्डतां गतम्
॥ २ ॥ स्निग्धभाण्डे विनिक्षिप्य भक्षयेत्कोलमात्रया । प्राङ्मध्यान्तक्रमेणैव
भोजनस्य प्रयोजितः ॥ ३ ॥ योगोऽयं शमयत्याशु पक्तिशूलं सुदारुणम् ।
कामलां पाण्डुरोगं च शोथमेदोनिशार्शसाम् ॥ शूलार्तानां कृपाहेतोस्तारया
प्रकटीकृतः ॥ ४ ॥ अथ भीममण्डूरः—यवक्षारकणाशुण्ठीकोलग्रन्थिक-
चित्रकात् । प्रत्येकं पलमादाय प्रस्थं लोहस्य किट्टतः ॥ १ ॥ शनैः पचेदय-

स्पात्रे यावद्दर्वीप्रलेपनम् । दत्त्वाऽष्टगुणगोमूत्रं किट्टाच्छुद्धाद्विचक्षणः ॥ २ ॥
 ततोऽक्षमात्रान्वटकान्योजयेत्ससरात्रतः । आदिमध्यावसानेषु भोजनस्योचि-
 तस्य वै ॥ स भीमवटको ह्येष परिणामरुगन्तकः ॥ ३ ॥ अथ शतावरी-
 मण्डूरः—संशोध्य चूर्णितं कृत्वा मण्डूरस्य पलायकम् । शतावरीरसस्याष्टौ
 दध्नश्च पयसस्तथा ॥ १ ॥ पलान्यादाय चत्वारि तथा गव्यस्य सर्पिपः ।
 विपचेत्सर्वमेकस्थं यावत्पिण्डत्वमाप्नुयात् ॥ २ ॥ सिद्धं तु भक्षयेन्मध्ये प्रान्ते
 मुक्तस्य चाग्रतः । वातात्मकं पित्तभवं शूलं च परिणामजम् ॥ ३ ॥ निह-
 न्येव हि योगोऽयं मण्डूरस्य न संशयः । दुग्धे निर्वापणं कार्यं यद्वा बहुसु-
 तारसे ॥ ४ ॥ अथवा चोभयोरेव लोहकिट्टस्य सप्तधा । रसो गन्धः शुभः
 पाके वर्तिः स्याद्यदि मर्दनात् ॥ तदा पाकं विजानीयान्मण्डूरस्य भिषग्वरः
 ॥ ५ ॥ इति शतावरीमण्डूरः । अथ लोहगुग्गुलुः—त्रिफला मुस्तकं व्योषं
 विडङ्गं पौष्करं वचा । चित्रकं मधुकं चैव पलांशं श्लक्ष्णचूर्णितम् ॥ १ ॥
 अयोभस्म पलान्यष्टौ गुग्गुलुस्तावदेव तु । सर्पिपा मेलयित्वाऽथ कर्पमात्रवटी-
 कृतम् ॥ २ ॥ अद्यादनु पिबेत्कोष्णं वारि शूलाद्विमुच्यते । जीर्णान्नसंभवा-
 त्पाण्डोः कामलाया हलीमकात् ॥ ३ ॥ अथ विडङ्गाद्यो मोदकः—विड-
 ङ्गतण्डुलं व्योषं त्रिवृदन्ती सचित्रकम् । सर्वाण्येतानि संहृत्य सूक्ष्मचूर्णानि
 कारयेत् ॥ १ ॥ गुडेन मोदकान्कृत्वा भक्षयेत्प्रातरुत्थितः । उष्णोदकानुपा-
 नेन दद्यादग्निविवर्धनम् ॥ जयेन्निदोषजं शूलं परिणामसमुद्भवम् ॥ २ ॥
 अथैरण्डादिभस्मयोगः—एरण्डवह्निशम्बूकवर्षाभूगोक्षुरं समम् । अन्तर्द-
 ग्ध्वा पिबेदङ्गिरुणाभिः शूलशान्तये ॥ १ ॥ अथ पथ्याद्यं लोहम्—
 पथ्यालोहरजः शुण्ठी तच्चूर्णं मधुसर्पिपा । परिणामभवं हन्ति वातपित्तकफा-
 त्मकम् ॥ १ ॥ अथ कृष्णाद्यं लोहम्—कृष्णाभयालोहचूर्णं त्रिलिहन्मधु-
 सर्पिषा । परिणामभवं शूलं सद्यो हन्ति सुदारुणम् ॥ १ ॥ अथ चतुःसमं
 लोहम्—गन्धं तान्नं रसं लोहं प्रत्येकं मारितं पलम् । सर्वमेतत्समाहृत्य
 विपचेत्कुशलो भिषक् ॥ १ ॥ आज्ये पलद्वादशके दुग्धे शतपले वरे । पक्त्वा
 तत्र क्षिपेच्चूर्णं सुपूतं वनतां नयेत् ॥ २ ॥ विडङ्गत्रिफलावह्नित्रिकटूनां तथैव
 च । क्षिप्त्वा पलोन्मितानैतान्यथा संमिश्रतां नयेत् ॥ ३ ॥ ततः पिष्ट्वा शुभे
 भाण्डे स्थापयेच्च विचक्षणः । आत्मनः शोभने घस्त्रे पूजयित्वा रविं गुरुम्
 ॥ ४ ॥ घृतेन मधुना मर्धं भक्षयेन्माषसंमितम् । अष्ट माषाः क्रमाद्यावन्मा-
 त्रां संस्तम्भयेत्ततः ॥ ५ ॥ अन्नपानं च दुग्धेन नारिकेलोदकेन वा । जीर्णशा-
 ल्यन्नमुद्गाश्च सितामांसरसादयः ॥ ६ ॥ रसानामविरुद्धानि पानान्नान्यपि
 भक्षयेत् । हृच्छूलं पार्श्वशूलं च सामवातं कटिग्रहम् ॥ ७ ॥ गुल्मशूलं च सर्वं
 च यकृत्प्लीहाविशेषतः । अग्निमान्द्यं क्षयः कुष्ठं श्वासकासविचर्चिकाः ॥ अश्म-
 री मूत्रकृच्छ्रं च योगेनानेन शाम्यति ॥ ८ ॥ इति चतुःसमं लोहम् । अथ

सामुद्राद्यं चूर्णम्—सामुद्रं सैन्धवं क्षारौ रुचकं रौमकं बिडम् । दन्ती लोहरजः किट्टं त्रिवृत्सूरणकं समम् ॥ १ ॥ दधिगोमूत्रपयसा मन्दपावकपाचितम् । तद्यथाग्निबलं चूर्णं पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ २ ॥ जीर्णेऽजीर्णे च भुञ्जीत मांसादि धृतसाधितम् । नाभिशूलं च हृच्छूलं गुल्मघ्नीहकृतं च यत् ॥ ३ ॥ विद्रध्यष्टीलजं हन्ति कफवातोद्भवं तथा । अन्नद्रवं जरयितुमजीर्णं ग्रहणीमपि ॥ ४ ॥ शूलानामपि सर्वेषामौषधं नास्त्यतः परम् । परिणामसमुत्थस्य विशेषेणान्तकं मतम् ॥ ५ ॥ इति सामुद्राद्यं चूर्णम् । अथ पिप्पल्यादियोगः । समागधीगुडं सर्पिः प्रस्थं क्षीरं चतुर्गुणम् । पक्वं पीत्वा जयत्याशु पक्तिशूलं समुद्धतम् । अथ त्रिपुरभैरवो रसः—भागौ रसस्य भागश्च हेन्नः पिष्टं विधाय च । तथा द्वादशभागानि ताम्रपत्राणि लेपयेत् ॥ १ ॥ ऊर्ध्वाधो गन्धकं दत्त्वा पलमात्रं समन्ततः । क्षारस्य मृगशृङ्गस्य चूर्णं योज्यं समन्ततः ॥ २ ॥ सिञ्चेन्मत्स्याक्षिनीरेण रुद्ध्वा यामचतुष्टयम् । पचेच्छूलहरः सूतो भवेत्त्रिपुरभैरवः ॥ ३ ॥ माषो मध्वाज्यसंयुक्तो देयोऽस्य परिणामजे । अन्येष्वेरण्डतैलेन कटुत्रययुतो हितः ॥ ४ ॥ अथ शूलदावानलः—सारसंग्रहात्—शुद्धसूतं विषं गन्धं पलांशं मर्दयेद्दृढम् । मरीचं पिप्पली शुण्ठी हिङ्गु सौवर्चलं द्वयम् ॥ १ ॥ पलाष्टकं पटूनां च चिञ्चाक्षारं पलाष्टकम् । सप्तवारं शङ्खभस्म जम्बीराम्ले निषेचयेत् ॥ २ ॥ पलाष्टकं च संयोज्यं तत्सर्वं निम्बुकद्रवैः । दिनं मर्द्यं कोलमात्रं भक्षयेत्सर्वशूलनुत् ॥ ३ ॥ अजीर्णोदरमन्दाग्निमसाध्यमपि साधयेत् । शूलदावानलाख्योऽयं रसोऽजीर्णादिरोगहा ॥ ४ ॥ इति शूलदावानलः ।

अथ पथ्यापथ्यम् ।

माषादिशिम्बिधान्यानि मद्यानि वनिता हिमम् । आतपं जागरं क्रोधं शुचं संधानमम्लकम् ॥ वर्जयेत्पक्तिशूलार्तस्तथाऽजीर्णं तिलानपि ॥ १ ॥

इति परिणामशूलचिकित्सा ।

अथोदावर्तनिदानम् ।

वातविण्मूत्रजृम्भाश्रुक्षवोद्गारवमीन्द्रियैः । क्षुत्तृष्णोच्छ्वासनिद्राणां धृत्योदावर्तसंभवः ॥ १ ॥ अथ तेषां क्रमेण लक्षणान्याह—अथापानवातावरोधजमाह—वातमूत्रपुरीषाणां सङ्गोऽध्मानं क्लमो ज्वरः । जठरे वातजाश्चान्ये रोगाः स्युर्वातनिग्रहात् ॥ २ ॥ अथ पुरीषावरोधजमाह—आटोपशूलौ परिकर्तिका च सङ्गः पुरीषस्य तथोर्ध्ववातः । पुरीषमास्यादथवा निरेति पुरीषवेगोऽभिहते नरस्य ॥ ३ ॥ अथ मूत्रनिग्रहजमाह—बस्तिमेहनयोः शूलं मूत्रकृच्छ्रं शिरोरुजा । विनामो वङ्गणानाहः स्याल्लिङ्गं मूत्र-

निग्रहे ॥ ४ ॥ अथ जृम्भाविघातजमाह—मन्यागलस्तम्भशिरोविकारा
जृम्भोपघातात्पवनात्मकाः स्युः । तथाऽक्षिनासावदनामयाश्च भवन्ति तीव्राः
सह कर्णरोगैः ॥ १ ॥ अथाश्रुविघातजमाह—आनन्दजं वाऽप्यथ शोकजं
वा नेत्रोदकं प्रासममुञ्चतो हि । शिरोगुरुत्वं नयनामयाश्च भवन्ति तीव्राः
सह पीनसेन ॥ ६ ॥ अथ हिक्कानिरोधजमाह—मन्यास्तम्भः शिरःशूल-
मर्दितार्धावभेदकौ । इन्द्रियाणां च दौर्बल्यं क्षवथोः स्याद्विधारणात् ॥ ७ ॥
अथोद्गारविधारणजमाह—कण्ठास्यपूर्णत्वमतीव तोदः कूजश्च वायोरथ
वा प्रवृत्तिः । उद्गारवेगेऽभिहते भवन्ति घोरा विकाराः पवनप्रसूताः ॥ ८ ॥
अथ छर्दिनिग्रजमाह—कण्डूकोष्ठारुचिव्यङ्गशोथपाण्डुमयज्वराः । कुष्ठ-
हृल्लासवीसर्पाश्छर्दिनिग्रहजा गदाः ॥ ९ ॥ अथ शुक्रविधारणजमाह—
मूत्राशये वै गुदमुष्कयोश्च शोफो रुजा मूत्रविनिग्रहश्च । शुक्राश्मरी तत्स-
वणं भवेच्च ते ते विकाराभिहते च शुके ॥ १० ॥ अथ शुध्वावरोधज-
माह—तन्द्राङ्गमर्दारुचिः श्रमश्च क्षुधोऽभिघातात्कृशता च दृष्टेः ॥ ११ ॥
अथ तृष्णानिरोधजमाह—कण्ठास्यशोपः श्रवणावरोधस्तृष्णाभिघाताद्
हृदयव्यथा च ॥ १२ ॥ अथ श्वासावरोधजमाह—श्रान्तस्य निश्वास-
विनिग्रहेण हृद्रोगमोहावथ वाऽपि गुल्मः ॥ १३ ॥ अथ निद्रानिग्रहज-
माह—जृम्भाङ्गमर्दोऽक्षिशिरोतिजाड्यं निद्राविघातादथ वाऽपि तन्द्रा
॥ १४ ॥ इति त्रयोदश ॥ अथ रूक्षभोजनजनितविकारमाह—वायुः कोष्ठा-
नुगो रूक्षकषायकटुतिक्तकैः । भोजनैः कुपितः सद्य उदावर्तं करोति च ॥ १५ ॥
अथ तस्य संप्राप्तिमाह—वातमूत्रपुरीषाश्रुकफमेदोवहानि वै । स्रोतांस्यु-
दावर्तयति पुरीषं चातिवर्तयेत् ॥ १६ ॥ ततो हृद्रस्तिशूलार्तो हृल्लासारति-
पीडितः । वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण लभते नरः ॥ १७ ॥ श्वासकासप्रति-
श्यायदाहमोहतृषाज्वरान् । वमिहिक्काशिरोरोगमनःश्रवणविभ्रमान् ॥ बहून-
न्यांश्च लभते विकारान्वातकोपजान् ॥ १८ ॥
अथासाध्यलक्षणमाह—तृष्णार्दितं परिक्लिष्टं क्षीणं शूलैरुपद्रुतम् । शकृ-
द्वमन्तं मतिमानुदावर्तिनमुत्सृजेत् ॥ १० ॥ इत्युदावर्तनिदानम् ॥

अथ उदावर्तचिकित्सा ।

सर्वेष्वेतेषु भिषजा चोदावर्तेषु कृत्स्नशः । वायोः क्रिया विघातव्याः स्वमा-
र्गप्रतिपत्तये ॥ १ ॥ आस्थापनं मारुतजे स्निग्धस्विन्ने विशेषतः । पुरीषजे तु
कर्तव्यो विधिरानाहकोदितः ॥ २ ॥

अथ सौवर्चलादि—सौवर्चलाढ्यां मदिरां मूत्रे त्वभिहते पिबेत् । एलां
वाऽप्यथ मस्त्वन्नं क्षीरं वाऽथ वराम्बु वा ॥ १ ॥ अथोर्वाखबीजादियोगः
—उर्वाखबीजं तोयेन पिबेद्वा लवणान्वितम् । पञ्चमूलीशृतं क्षीरं द्राक्षारस-

मथापि वा ॥ १ ॥ अथ यवक्षारादियोगः—यवक्षारं सितायुक्तं पिबेद्वा मृद्विकारसैः । वरीकूष्माण्डयोस्तोयं सितायुक्तं पिबेदथ ॥ १ ॥ अथ मूषकादियोगः—मूषकस्य विशा लेपं बस्तेरुपरि वा चरेत् । किंशुकानां प्रलेपो वा कवोष्णो मूत्ररोधहा ॥ १ ॥ पिष्ट्वा श्वदंष्ट्राफलमूषिकाविडैरुर्वारुबीजानि सकाञ्जिकानि । आलिप्यमानानि समानि बस्तौ मूत्रस्य निष्यन्दकराणि सद्यः । अत्र सर्वं प्रयुञ्जीत मूत्रकृच्छ्रादमरीविधिम् ॥ २ ॥ इति मूत्रावरोधे-योगः ।

अथावशेषाणां चिकित्सा ।

स्नेहस्वेदैरुदावर्तं जृम्भाजं समुपाचरेत् । अशुमोक्षोऽशुजे कार्यः स्निग्ध-स्विन्नस्य देहिनः ॥ १ ॥ मरीचाद्यञ्जनैर्धूमैरादित्याद्यवलोकनैः । क्षवजे क्षवयन्त्रेण घ्राणस्थेनाऽऽनयेत्क्षवम् ॥ २ ॥ उद्गारजे क्रमोपेतं स्नेहिकं धूममाचरेत् । भक्ष-येदुचकं साद्रं खण्डं वा मथितान्वितम् ॥ ३ ॥ वम्या वान्तं यथादोषं नस्य स्नेहादिभिर्जयेत् । बस्तिशुद्धिकरैः सिद्धं चतुर्गुणजलं पयः ॥ ४ ॥ आवारि-नाशात्कथितं पीतवतं प्रकामतः । रमयेयुः प्रिया नार्यः शुक्रोदावर्तिनं नरम् ॥ ५ ॥ तस्याभ्यङ्गोऽवगाहश्च मदिराश्ररणायुधाः । शालिः पयो निरूहाश्च हितं मैथु-नमेव च ॥ ६ ॥ क्षुद्रिघाते हितं स्निग्धं रुच्यमल्पं च भोजनम् । तृषाघाते पिबेन्मद्यं यवागूं स्वादुशीतलाम् ॥ ७ ॥ रसेनाद्यातु विश्रान्तः श्रमश्चासा-र्दितो नरः । निद्राघाते पिबेद् दुग्धं माहिषं रजनीमुखे ॥ ८ ॥ तिलतैलेन संमृज्य भूतले शयनं चरेत् । उदावर्तिनमभ्यक्तं स्निग्धगात्रमुपाचरेत् । वर्तिकास्थापनस्वेदबस्तिरेचनकर्मणा ॥ ९ ॥

अथ सामान्यविधिः ।

अथ श्यामादिकषायो वृन्दात्—श्यामा दन्ती द्रवन्ती स्नुद्धाहाश्यामा-ऽमृता त्रिवृत् । सप्तला शङ्खिनी श्वेता राजवृक्षः सविल्वकः ॥ १ ॥ कंपिल्लकं करञ्जश्च हेमक्षीरीत्ययं गणः । सर्पिस्तैलरजःकाथकल्केष्वन्यतमेषु च ॥ उदा-वर्तोंदरानाहविषगुल्मविनाशनः ॥ २ ॥ अथ वृन्दाद्वाट्यादियूषः—वा-ट्यायूपेण पिप्पल्या मूलकानां रसेन वा । भुक्त्वा स्निग्धमुदावर्तवातगुल्मा-द्विमुच्यते ॥ १ ॥ अथ वाट्यादिः—वाट्यक्षीररसैः सेव्यं यच्च वातानुलो-मनम् । वातघ्नैर्लवणाद्यैश्च रसाद्यैश्चान्नमाचरेत् ॥ १ ॥

अथ चूर्णानि ।

अथ हरीतक्यादिचूर्णम्—हरीतकी यवक्षारः पीलुनी त्रिवृता तथा । घृतैश्चूर्णं त्विदं पेयमुदावर्तप्रशान्तये ॥ १ ॥ अथ द्विरुत्तरं चूर्णम्—हि-ङ्गुकुष्ठवचास्वर्जिबिडं चेति द्विरुत्तरम् । पीतं मद्येन तच्चूर्णमुदावर्तहरं परम्

॥ १ ॥ अथ नाराचचूर्णम्—खण्डं पलं त्रिवृतासममुपकुल्याकर्पचूर्णितं सूक्ष्मम् । प्राग्भोजनस्य समधु विडालपदकं लिहेत्प्रातः ॥ १ ॥ एतद्वाढपु-
रीषे पित्ते कफे च विनियोज्यम् । स्वादुर्नृपयोग्योऽयं चूर्णो नाराचको नाम ॥ २ ॥ हिङ्गु त्रिगुणसैन्धवं तस्माच्च शुद्धतैलमैरण्डम् । तन्निगुणरसोनरसं गु-
ल्मोदावर्तशूलघ्नम् ॥ ३ ॥ अथ प्रलेपः—वल्मीकमृत्करञ्जस्य त्वञ्जूलफल-
पल्लवम् । सिद्धार्थं चेति पिष्टानां मूत्रेणाऽऽलेपनं हितम् ॥ उदावर्तेषु सर्वेषु
सम्यग्वातानुलेपनम् ॥ १ ॥

अथ फलवर्तयः

तत्र मदनान्दिः—मदनं पिप्पलीकुष्ठं वचा गौराश्च सर्पपाः । गुडक्षीरस-
मायुक्ता फलवर्तिः प्रशस्यते ॥ १ ॥ अथागारधूमादिः—अगारधूमः पि-
प्पल्यो मदनं राजसर्पपाः । गोमूत्रपिष्टाः सगुडा फलवर्तिः प्रशस्यते ॥ १ ॥
अथ हिङ्गुवादिः—हिङ्गुमाक्षिकसिन्धूतैः पक्त्वा वर्तितं सुवर्तितम् । घृ-
ताभ्युक्तां गुदे दद्यादुदावर्तविनाशिनीम् ॥ १ ॥ इति फलवर्तयः ।

अथोदयमार्तण्डो रसः—हिङ्गूलं जयपालटङ्कणविपाण्यन्त्यार्धभागो-
त्तरं सर्वं खल्वतले विमर्द्य मतिमान्गुञ्जाद्वयं वै ददेत् । मार्तण्डोदयको ज्व-
रादिसहिते यः सोदराध्मानके पाण्डुजीर्णगदेऽनुपानवशतः पथ्यं च तक्रौद-
नम् ॥ १ ॥ व्योषेणाऽऽर्द्ररसेन तत्र सितया युक्तो ज्वरे दारुणे मान्द्ये गुल्म-
कफानले च पचने शूले च शोफोदरे । वाताग्ने स्वरवर्णकुष्ठगुदजात्रोगानशो-
षाञ्जयेत् ॥ २ ॥ अथ नाराचरसः—जेपालेन समैः सूतव्योपटङ्कणग-
न्धकैः । नाराचः स्याद्रसो ह्येष माषः सर्पिसितायुतः । हन्त्युदावर्तमानाहमु-
दराणि च गुल्मकम् ॥ १ ॥

इत्युदावर्तचिकित्सा ।

अथाऽऽनाहनिदानम् ।

आमं शकृद्वा निचितं क्रमेण भूयो विबद्धं विगुणानिलेन । प्रवर्तमानं न
यथास्वप्नेनं विकारमानाहमुदाहरन्ति ॥ १ ॥ अथाऽऽमजमानाहमाह—
तस्मिन्भवत्यामसमुद्भवे तु तृष्णाप्रतिश्यायशिरोविदाहाः । आमाशये शूल-
मथो गुरुत्वं हृत्स्तम्भनोद्गारविवातनं च ॥ २ ॥ अथ शकृत्संचयजमाह—
स्तम्भः कटीपृष्ठपुरीषमूत्रे शूलोऽथ मूर्छा शकृतो वमिश्र । श्वासश्च पक्काशयजे
भवन्ति तथाऽलसोक्तानि च लक्षणानि ॥ ३ ॥ उदावर्तिनमप्येनमानाहिन-
मथापि वा । तृष्णोपद्रवसंयुक्तं तं त्यजेद्विपजां वरः ॥ ४ ॥

अथाऽऽनाहचिकित्सा ।

आनाहेऽपि प्रयुञ्जीत उदावर्तहरीं क्रियाम् । तत्राप्यत्र विशेषमाह—त्रि-
वृद्धरीतकीश्यामाः स्नुहीक्षीरेण भावयेत् । वटिका मूत्रपीतास्ताः श्रेष्ठास्त्वाना-
हभेदिकाः ॥ १ ॥ हिङ्गुग्रगन्धाविडशुण्ठ्यजाजीहरीतकीपुष्करमूलकुष्ठम् ।

भागोत्तरं चूर्णितमेतदिष्टं गुल्मोदरानाहविपूचिकासु ॥ १ ॥ वचाभयाचित्र-
कयावशूकान्सपिप्पलीकातिविषान् सकुष्ठान् । उष्णाम्बुनाऽऽनाहविमूढवाता-
न्पीत्वा जयेदाशु रसौदनाशी ॥ २ ॥ अथ राढधूमादिवर्तिः—राढधूम-
त्रिडव्योपगुडमूत्रविपाचिता । गुदेऽङ्गुष्ठसमा वर्तिर्विधेयाऽऽनाहशूलनुत् ॥ १ ॥
विपाच्य मूत्राम्लरसेन दन्तीपिण्डीतकृष्णाबिडकृष्णधूमैः । वार्तिं कराङ्गुष्ठ-
निभां घृताक्तां गुदे रुजानाहहरीं विदध्यात् ॥ २ ॥ इत्यानाहचिकित्सा ॥

अथ पथ्यापथ्यम्—विष्टम्भीनि विरुद्धानि कषायाणि गुरुणि च । उ-
दावर्ते प्रयत्नेन वर्जयेत्सततं नरः ॥ १ ॥ उदावर्ते हितं सर्वं पाचनं लङ्घनं
तथा । आनाहे तु यथायोग्यं सेवयेन्मतिमान्नरः ॥ २ ॥ इति पथ्यापथ्यम् ।

अथातो गुल्मनिदानं व्याख्यास्यामः ।

अथ तस्य संप्राप्तिमाह—दुष्टा वातादयोऽत्यर्थं मिथ्याहारविहारतः ।
कुर्वन्ति पञ्चधा गुल्मं कोष्ठान्तर्ग्रन्थिरूपिणम् ॥ १ ॥ तेषां स्थानान्याह—
तस्य पञ्चविधं स्थानं पार्श्वहृन्नाभिवस्त्रयः । तस्य लक्षणमाह—हृन्नाभ्योरन्तरे
ग्रन्थिः संचारी यदि वाऽचलः । वृत्तश्चयापचयवान्स गुल्म इति कीर्तितः
॥ २ ॥ विशेषलक्षणं चरके—तृष्णाज्वरपरीतश्च दाहस्वेदाग्निमार्दवैः ।
गुल्मिनामरुचौ चापि रक्तमेवावसेचयेत् ॥ ३ ॥ भट्टारकहरिश्चन्द्रः—
स्त्रीणामावर्तजो गुल्मो न पुंसां पुजायते । अन्यस्त्वसृग्भवो गुल्मः स्त्रीणां
पुंसां च जायते ॥ ४ ॥ निरूढमूलप्रभवो हि कोष्ठे स्थितः स्वतन्त्रः परसं-
श्रयो वा । स्पर्शोपलब्धः परिपिण्डितत्वादुल्मो यथादोषमुपैति नाम ॥ ५ ॥
स व्यस्तैर्जायते दोषैः समस्तैरपि चोच्छ्रितैः । पुरुषाणां तथा स्त्रीणां ज्ञेयो
रक्तेन चापरः ॥ ६ ॥ तस्य पूर्वरूपमाह—उद्गारबाहुल्यपुरीषबन्धतृप्त्यक्ष-
मत्वान्नविकूजनानि । आटोपमाध्मानमपक्तिशक्तिरासन्नगुल्मस्य वदन्ति चि-
ह्नम् ॥ ७ ॥ सर्वगुल्मानां सामान्यलक्षणमाह—अरुचिः कृच्छ्रविण्मूत्रं
वातान्नप्रतिकूजनम् । आनाहं चोर्ध्ववातत्वं सर्वगुल्मेषु लक्षयेत् ॥ ८ ॥ अथ
वातजमाह—रूक्षान्नपानं विषमातिमात्रं विचेष्टनं वेगविनिग्रहश्च । शोको-
ऽभिघातोऽतिमलक्षयश्च निरन्नता चानिलगुल्महेतुः ॥ ९ ॥ यः स्थानसंस्था-
नरूजाविकल्पं विद्धवातसङ्गं गलवक्त्रशोपम् । श्यावारुणत्वं शिशिरज्वरं च
हृत्कुक्षिपार्श्वसशिरोरुजं च ॥ १० ॥ करोति जीर्णेऽभ्यधिकं प्रकोपं भुक्ते मृ-
दुत्वं समुपैति यश्च । वातात्स गुल्मो न च तत्र रूक्षं कषायतिक्तं कटु चो-
पशेते ॥ ११ ॥ पैत्तिकमाह—कदवम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्रोधातिम-
द्यार्कहुताशसेवा । आमाभिघातो रुधिरं च दुष्टं पित्तस्य गुल्मस्य निमित्तमु-
क्तम् ॥ १२ ॥ ज्वरः पिपासा वदनाङ्गरागः शूलं महज्जीर्यति भोजने च ।
स्वेदो विदाहो व्रणवच्च गुल्मः स्पर्शासहः पैत्तिकगुल्मरूपम् ॥ १३ ॥ अथ

श्लैष्मिकमाह—शीतं गुरु स्निग्धमचेष्टनं च संपूरणं प्रस्वपनं दिवा च ।
 गुल्मस्य हेतुः कफसंभवस्य सर्वश्च दुष्टो निचयात्मकस्य ॥ १४ ॥ श्लैमित्यशी-
 तज्वरगात्रसादहृल्लासकारुचिगौरवाणि । शैत्यं रुगल्पा कठिनोन्नतत्वं गु-
 ल्मस्य रूपाणि कफात्मकस्य ॥ १५ ॥ द्वंद्वत्रिदोषजेषु हेतुलक्षणनिर्देशार्थ-
 माह—निमित्तलिङ्गान्युपलभ्य गुल्मे द्विदोषजे दोषबलावलं च । व्यामि-
 श्रलिङ्गानपरांस्तु गुल्मांस्त्रीनादिशेदौषधकल्पनार्थम् ॥ १६ ॥ अथ त्रिदो-
 षजस्यासाध्यत्वमाह—महारुजं दाहपरीतमश्मवद्वनोन्नतं शीघ्रविदाहि
 दारुणम् । मनःशरीराग्निबलापहारिणं त्रिदोषजं गुल्ममसाध्यमादिशेत् ॥ १७ ॥
 अथ स्त्रीणां रक्तगुल्मस्य संप्राप्तिमाह—नवप्रसूताऽहितभोजना या या
 चाऽऽमगर्भं विसृजेदतौ वा । वायुर्हि तस्याः परिगृह्य रक्तं करोति गुल्मं स-
 रुजं सदाहम् ॥ १८ ॥ उक्तं चरके—ऋतावनाहारभयातपेन विरुक्षणैर्वेग-
 विधारणैश्च । संस्तम्भनोल्लेखनयोनिदोषैर्गुल्मः स्त्रिया रक्तभवोऽभ्युपैति ॥ १९ ॥
 तस्य लिङ्गमाह—पित्तस्य गुल्मेन समानलिङ्गं विशेषणं चाध्यपरं निबोध ।
 यः स्पन्दते पिण्डित एव नाङ्गैश्चिरात्सशूलः सगगर्भलिङ्गः ॥ स रौधिरः
 स्त्रीभव एव गुल्मो मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः ॥ २० ॥ असाध्यलक्ष-
 णमाह—संचितः क्रमशो गुल्मो महावास्तुपरिग्रहः । कृतशूलः शिरानद्धो
 यदा कूर्म इवोन्नतः ॥ २१ ॥ दौर्बल्यारुचिहृल्लासकासवम्यरतिज्वरैः । तृष्णा-
 तन्द्राप्रतिश्यायैर्युज्यते स न सिध्यति ॥ २२ ॥ पुनरसाध्यलक्षणमाह—
 गृहीत्वा सज्वरं श्वासच्छर्द्यतीसारपीडितम् । हृन्नाभिहस्तपादेषु शोथः कर्पति
 गुल्मिनम् ॥ २३ ॥ श्वासः शूलं पिपासाऽन्नविद्वेषो ग्रन्थिमूढता । जायते
 दुर्बलत्वं च गुल्मिनो मरणाय वै ॥ २४ ॥ इति गुल्मनिदानम् ॥

अथ गुल्मचिकित्सा ।

लङ्घनं दीपनं स्निग्धमुष्णं वातानुलोमनम् । बृंहणं च भवेदन्नं तद्धितं
 सर्वगुल्मिनाम् ॥ १ ॥ गुल्मिनामनिलशान्तिरूपायैः सर्वशो विधिवदाचरित-
 व्या । मारुते तु विजितेऽप्यमुदीर्णं दोषमल्पमपि कर्म निहन्त्यात् ॥ २ ॥ सु-
 खोष्णा जाङ्गलरसाः सुस्निग्धा व्यक्तसैन्धवाः । कटुत्रिकसमायुक्ता हिताः पाने-
 षु गुल्मिनाम् ॥ ३ ॥ कृमिपिण्डेष्टकास्वेदान्कारयेत्कुशलो भिषक् । उपना-
 हाश्च कर्तव्याः सुखोष्णाः शाल्वणादयः ॥ ४ ॥ गुल्मस्थाने रक्तमोक्षो बाहुम-
 ध्ये शिराव्यधः । स्वेदानुलोमनं चैव प्रशस्तं सर्वगुल्मिनाम् ॥ ५ ॥ अथ
 वातगुल्मचिकित्सा—प्रागेव वातजे गुल्मे सुस्निग्धं स्वेदितं नरम् । रेचि-
 तं स्नेहरेकैश्च निरुहैः सानुयासनैः ॥ उपावरेद्भिषक्प्राज्ञो मात्राकालविशेषतः
 ॥ १ ॥ अथ मातुलङ्गादियोगः—मातुलङ्गरसे हिङ्गु दाडिमं विडसैन्ध-
 वम् । सुरामण्डेन पातव्यं वातगुल्मरुजापहम् ॥ १ ॥ अथ वृन्दान्नागरादि-

नागरार्धपलं पिष्टं द्वे पले लुब्धितस्य च । तिलस्यैकं गुडपलं क्षीरेणोष्णेन पाय-
येत् ॥ वातगुल्ममुदावर्तं योनिशूलं च नाशयेत् ॥ १ ॥ अथ हिङ्गुपञ्च-
कम्—हिङ्गुसैन्धववृक्षाम्लराजिकानागरैः समैः । चूर्णं गुल्मप्रशमनं स्यादेत-
द्धिङ्गुपञ्चकम् ॥ १ ॥ अथ केतकीक्षारयोगः—स्वर्जिकाकुष्ठसहितः क्षारः
केतकिसंभवः । पीतस्तैलेन शमयेद्वातगुल्मं सुदारुणम् ॥ १ ॥ अथैरण्डतै-
लादियोगः—पिबेदेरण्डतैलं वा वारुणीमण्डमिश्रितम् । तदेव तैलं पयसा
वातगुल्मी पिबेन्नरः ॥ १ ॥ अथ वृन्दाङ्गपुपाद्यं घृतम्—हृपुपाजजिपृ-
थ्वीकापिप्पलीमूलचित्रकैः । क्षीरमूलककोलानां रसैश्च विपचेद् घृतम् ॥ १ ॥
वातगुल्मारुचिश्चासशूलानाहज्वरार्शसाम् । ग्रहणीयोनिदोषाणां घृतमेतन्नि-
वारणम् ॥ २ ॥ अथ चित्रकाद्यं घृतम्—चित्रकव्योषसिन्धूत्थपृथ्वीका-
चव्यदाडिमैः । दीप्यकग्रन्थिकाजाजीहृपुपाधान्यकैः समैः ॥ १ ॥ दध्यारना-
लबदरमूलकस्वरसैर्घृतम् । पक्त्वा पिबेद्वातगुल्मदौर्बल्यादोषशूलानुत् ॥ २ ॥

अथ पथ्यम्—तित्तिरांश्च मयूरांश्च कुक्कुटान्क्रौञ्चवर्तिकान् । सर्पिः शालि
प्रपन्नांश्च वातगुल्मे च योजयेत् ॥ १ ॥ वातगुल्मप्रतीकारे प्रकुप्यति यदा
कफः । शस्तमुलेखनं तत्र चूर्णाद्याश्च कफापहाः ॥ २ ॥ यदि कुप्यति वा पित्तं
विरेकस्तत्र भेषजम् । दोषत्रैरप्यशान्ते च गुल्मे शोणितमोक्षणम् ॥ ३ ॥ इति
वातगुल्मचिकित्सा ॥

अथ पित्तगुल्मचिकित्सा ।

अथ त्रिवृच्चूर्णम्—पित्तगुल्मे त्रिवृच्चूर्णं पातव्यं त्रिफलाम्बुना । विरेच-
नाय ससितं कम्पिलं च समाक्षिकम् ॥ १ ॥ अथ द्राक्षादियोगः—द्राक्षा-
भयारसं गुल्मे पैत्तिके सगुडं पिबेत् । सशर्करं वा विलिहेत्त्रिफलाचूर्णमुत्तमम् ॥ १ ॥
अथ पथ्याद्यं घृतम्—रसेनाऽऽमलकेक्षूणां घृतपादं विपाचयेत् । पथ्याया-
श्च पिबेत्सर्पिस्तत्सिद्धं पित्तगुल्मनुत् ॥ १ ॥ अथ द्राक्षाद्यं घृतम्—द्राक्षा-
मधुकर्जूरं विदारीं सशतावरीम् । परूपकाणि त्रिफलां साधयेत्पलसंमिताम्
॥ १ ॥ जलाढके पादशेषे रसमामलकस्य च । घृतमिक्षुरसं क्षीरमभयाकल्क-
पादिकम् ॥ २ ॥ साधयेत्तद् घृतं सिद्धं शर्कराक्षौद्रपादिकम् । प्रयोगः पित्त-
गुल्मघ्नः सर्वगुल्मविकारनुत् ॥ ३ ॥

अथ पथ्यम्—शालिगोछागदुग्धं च पटोलं घृतमिश्रितम् । द्राक्षां परू-
पकं धात्रीं खर्जूरं दाडिमं सिताम् ॥ पथ्यार्थं पैत्तिके गुल्मे बलातोयं च योज-
येत् ॥ १ ॥ इति पित्तगुल्मचिकित्सा ॥

अथ श्लेष्मगुल्मचिकित्सा ।

स्नेहोपनाहनस्वेदैस्तीक्ष्णसंसनवस्तिभिः । योगैश्च वातगुल्मोक्तैः श्लेष्मगुल्म-

मुपाचरेत् ॥ १ ॥ अथ तिलादिस्वेदः—तिलैरण्डातसीबीजसर्पपैः परिलिप्य च । श्लेष्मगुल्ममयस्पात्रैः सुखोष्णैः स्वेदयेद्दिपक् ॥ १ ॥ अथ यवान्यादि—यवानीं चूर्णितां तत्रे बिडेन लवणीकृताम् । श्लेष्मगुल्मे पिबेद्वातमूत्रवर्चोनुलोमनीम् ॥ १ ॥ अथ क्षीरपट्टपलं घृतम्—पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः । पलिकैः सयवक्षारैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १ ॥ क्षीरप्रस्थेन तत्सर्पिर्हन्ति गुल्मं कफात्मकम् । ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं ह्रीहकासज्वरापहम् ॥ २ ॥ अथ मिश्रकस्नेहः—त्रिवृता त्रिफला दन्ती दशमूलं पलोन्मितम् । जले चतुर्गुणे पक्त्वा चतुर्भागावशेषिते ॥ १ ॥ सर्पिरेरण्डतैलं च क्षीरं चैकत्र साधयेत् । संसिद्धो मिश्रकस्नेहः सक्षौद्रः कफगुल्मनुत् ॥ २ ॥ इति मिश्रकस्नेहः ॥ अथ पथ्यम्—कुलत्थाङ्गीर्णशालींश्च पष्टिकान्यवजाङ्गलान् । मद्यं तैलं घृतं तर्कं कफगुल्मे प्रयोजयेत् ॥ १ ॥ इति कफगुल्मचिकित्सा ।

अथ त्रिदोषगुल्मचिकित्सा ।

वरुणादिकपायस्तु गुल्मं दोषत्रयोत्थितम् । हन्ति हृत्पार्श्वशूलाल्घ्यं सोपद्रवमसंशयम् ॥ १ ॥ अथ शार्ङ्गधराद्वरुणादिकाथः—वरुणो बकपुष्पश्च बिल्वापामार्गचित्रकाः । अग्निमन्थद्वयं शिशुद्वयं च बृहतीद्वयम् ॥ १ ॥ सैरेयकत्रयं मूर्वा मेषशृङ्गी किरातकः । अजशृङ्गी च बिम्बी च करञ्जश्च शतावरी ॥ २ ॥ वरुणादिगणकाथः कफमेदोहरः स्मृतः । हन्ति गुल्मं शिरःशूलं तथाऽभ्यन्तरविद्रधीन् ॥ ३ ॥ इति त्रिदोषगुल्मचिकित्सा ॥

अथ रक्तगुल्मप्रतीकारः ।

पित्तवद्रक्तगुल्मिन्या नार्या कार्थो यथाविधि । प्रस्निग्धस्त्रिजकोष्ठाया योज्यं स्नेहविरेचनम् ॥ १ ॥ अथ शताह्वादिक्लकः—शताह्वाचिरबिल्वत्वग्दारुभार्गीकणोद्भवः । क्लकः पीतो जयेद् गुल्मं तिलकाथेन रक्तजम् ॥ १ ॥ अथ तिलकाथः—तिलकाथो गुडघृतव्योपभार्गिरजोन्वितः । पानं रक्तभवे गुल्मे नष्टे पुष्पे च योषितः ॥ १ ॥ अथ सुश्रुतात्तिलमूलादिचूर्णम्—तिलमूलं च शिशुं च ब्रह्मदण्डीयमूलकम् । मधुयष्टीत्रिकदुकैर्युतं चूर्णमुपासयेत् ॥ पुष्परोधे वातगुल्मे स्त्रीणां सद्यः सुखावहम् ॥ १ ॥ अथ भार्ग्यादिचूर्णम् भार्गीकृष्णाकरञ्जत्वग्ग्रन्थिकामरदारुजम् । चूर्णं तिलानां काथेन रक्तगुल्मरुजापहम् ॥ १ ॥ अथ दन्त्यादिगुटिका—दन्तीहिङ्गुयवक्षारालाबुबीजकागुडाः । स्नुहीक्षीरेण गुटिका सर्वेषां कर्षमात्रिका ॥ भक्षिता रक्तगुल्मघ्नी रुधिरस्त्रावकारिणी ॥ १ ॥ अथार्कपुष्पयोगः—पक्वं तैलेऽर्कजं पुष्पं रुधिरस्त्रावकारि च ॥ १ ॥ अथ पलाशक्षारघृतम्—पलाशक्षारतोयेन सर्पिः सिद्धं पिबेद्बद्धः । यस्मिन्नवसरे क्षारतोयसाध्यघृतादिषु ॥ १ ॥ फेनोद्गमस्य

निर्वृत्तिर्नष्टदुग्धसमाकृतिः । स एव तस्य पाकस्य कालो नेतरलक्षणः ॥ २ ॥
इति पलाशक्षारघृतम् ॥ अथ वृन्दान्मुण्ड्यादि—मुण्डीरोचनिकाचूर्णं शर्क-
रासाक्षिकान्वितम् । विदधीतास्रगुल्मिन्यां मलसंरेचनाय च ॥ १ ॥ उष्णैर्वा
भेदयेद्भिन्ने विधिर्वाऽसृग्दरो हितः । अतिप्रवृत्तमस्रं तु भिन्ने गुल्मे
निवारयेत् ॥ २ ॥

इति रक्तगुल्मप्रतीकारः ।

अथ सामान्यविधिः ।

अथ चित्रकादिकाथः—चित्रकग्रन्थिकैरण्डशुण्ठीकाथः परं हितः ।
शूलानाहविबन्धेषु सहिङ्गुबिडसैन्धवः ॥ १ ॥ अथ हिङ्गवादिचूर्णम्—
हिङ्गुग्रन्थिकधान्यजीरकवचाचव्याग्निपाठासटीवृक्षाम्लं लवणत्रयं त्रिकटुकं
क्षारद्वयं दाडिमम् । पथ्यापुष्करवेतसाम्लहपुपाजाज्यस्तदेभिः कृतं चूर्णं भा-
वितमेतदार्द्रकरसैः स्याद्वीजपूरस्य च ॥ १ ॥ आध्मानग्रहणीविकारगुदजा-
न्गुल्मानुदावर्तकान्प्रत्याध्मानगदं तथाऽश्मरियुतं तृनीद्वयारोचकान् । ऊरुस्त-
म्भमतिभ्रमं च मनसो बाधिर्यमष्टीलिकां प्रत्यष्टीलिकिकामथापहरते प्राक्पी-
तमुष्णाम्बुना ॥ २ ॥ हस्तकुक्षिवङ्क्षणकटीजठरान्तरेषु वस्तिस्तनांसफलकेषु च
पार्श्वयोश्च । शूलानि नाशयति वातबलासजानि हिङ्गवादि मान्द्यमिदमाश्विनसं-
हितायाम् ॥ ३ ॥ अथ वृन्दाद्धिङ्गुनवकम्—हिङ्गु पुष्करमूलानि तुम्बरूणि
हरीतकी । श्यामा बिडं सैन्धवं च यवक्षारं महौषधम् ॥ १ ॥ यवकाथोद-
केनैतद् घृतभृष्टं तु पाययेत् । तेनास्य भिद्यते गुल्मः सशूलः सपरिग्रहः ॥ २ ॥
अथ भास्करलवणाद्यं चूर्णम्—सामुद्रलवणं ग्राह्यमष्टकर्ममितं बुधैः ।
एवं सौवर्चलं ग्राह्यं बिडसैन्धवधान्यकम् ॥ १ ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलं कर्पं
जीरकपत्रकम् । नागकेसरतालीसमम्लवेतसकं तथा ॥ २ ॥ द्विकर्षमात्राण्ये-
तानि प्रत्येकं कारयेद् बुधः । मरीचं जीरकं विश्वमेकैकं कर्षमात्रकम् ॥ ३ ॥
दाडिमस्य चतुष्कर्षं त्वगेला चार्धकर्षिका । एतच्चूर्णीकृतं सर्वं लवणं भास्कराभि-
धम् ॥ ४ ॥ शाणप्रमाणं देयं तु मस्तुतकसुरासवैः । वातश्लेष्मभवं गुल्मं
झीहानमुदरं क्षतम् ॥ ५ ॥ अशीसि ग्रहणीं कुष्ठं विबन्धं च भगंदरम् । शोथं
शूलं श्वासकासमामदोषं च हृद्रुजम् ॥ ६ ॥ मन्दाग्निं नाशयत्येतद्दीपनं पा-
चनं परम् । सर्वलोकहितार्थाय भास्करेणोदितं पुरा ॥ ७ ॥ इति शार्ङ्गध-
रात् । अथ क्षारद्वयादि—क्षारद्वयानलव्योपनीलीलवणपञ्चकम् । चूर्णितं
सर्पिपा पेयं सर्वगुल्मोदरापहम् ॥ १ ॥ अथाग्निमुखरसः—हिङ्गुभागो
भवेदेको वचा च द्विगुणा भवेत् । पिप्पली त्रिगुणा ज्ञेया शृङ्गवेरं चतुर्गु-
णम् ॥ १ ॥ यवानिका पञ्चगुणा षड्गुणा च हरीतकी । चित्रकं सप्तगुणितं
कुष्ठं चाष्टगुणं भवेत् ॥ २ ॥ एतद्वातहरं चूर्णं पीतमात्रं प्रसन्नया । पिबेद्भक्ता

मस्तुना वा सुरया कोष्णवारिणा ॥ ३ ॥ उदावर्तमजीर्णं च ग्रीहानमुदरं
 तथा । अङ्गानि यस्य शीर्यन्ते विपं वा येन भक्षितम् । अशोहरो दीपनश्च शू-
 लघ्नो गुल्मनाशनः ॥ ४ ॥ कासं श्वासं निहन्त्याशु तथैव क्षयनाशनः ।
 चूर्णो ह्यग्निमुखो नाम्ना न क्वचित्प्रतिहन्यते ॥ ५ ॥ अथ काङ्कायनगुटिका
 —यवानी जीरकं धान्यं मरिचं गिरिकर्णिका । अजमोदोपकुञ्जी च चतुः-
 शाणाः पृथक् पृथक् ॥ १ ॥ हिङ्गुपदशाणकं कार्यं शाणो लवणपञ्चकात् ।
 त्रिवृच्चाष्टमितैः शाणैः प्रत्येकं कल्पयेत्सुधीः ॥ २ ॥ दन्ती शठी पौष्करं च
 विडङ्गं दाडिमं शिवा । चित्रोऽम्लवेतसः शुण्ठी शाणैः षोडशभिः पृथक् ॥ ३ ॥
 बीजपूररसेनैषां गुटिकां कारयेद् बुधः । घृतेन पयसा चाम्लै रसैरुष्णोदकेन
 वा ॥ ४ ॥ पिबेत्काङ्कायनप्रोक्ता गुटिका गुल्मनाशिनी । मद्येन वातिकं
 गुल्मं गोक्षीरेण च पैत्तिकम् ॥ ५ ॥ सूत्रेण कफगुल्मं च दशमूलैस्त्रिदोषजम् ।
 उष्ट्रीदुग्धेन नारीणां रक्तगुल्मं निवारयेत् ॥ ६ ॥ हृद्रोगं ग्रहणीशूलं कृमीन-
 शोसि नाशयेत् ॥ ७ ॥ इति शार्ङ्गधरात् । अथ चिञ्चाक्षारादिशङ्खवटी
 —चिञ्चाक्षारं स्नुहीक्षारमर्कक्षारं पलं पलम् । द्विपलं शङ्खजं भस्म रामठं च
 पलार्धकम् ॥ १ ॥ लवणानि च सर्वाणि पलमात्राणि योजयेत् । क्षारद्वयं
 पलार्धं च सर्वमेकत्र योजयेत् ॥ २ ॥ जम्बीरकरसैर्मर्द्यमनलस्य दिनत्रयम् ।
 भृङ्गराजस्य निर्गुण्ड्या मुण्ड्याश्चैव पृथक् द्रवैः ॥ ३ ॥ आर्द्रकस्य रसेनैव प्रत्येकं
 दिनमर्दितम् । बदरीबीजमात्रांस्तु वटकान्कारयेद्भिषक् ॥ ४ ॥ एकैकं भक्ष-
 येत्प्रातः पञ्च गुल्मान्वयपोहति । सर्वं शूलं निहन्त्याशु अजीर्णं च विपूचि-
 काम् ॥ ५ ॥ मन्दाग्निं नाशयेच्छीघ्रं पथ्यं तैलाम्लवर्जितम् । चिञ्चाशङ्ख-
 वटी नाम ग्रहणीरोगहृत्परा ॥ ६ ॥ अथ वज्रक्षारः—सामुद्रं सैन्धवं काचं
 यवक्षारं सुवर्चलम् । टङ्कणं स्वर्जिकाक्षारं तुल्यं चूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ १ ॥ अर्क-
 क्षीरैः स्नुहीक्षीरैः शोषयेदातपे त्र्यहम् । अर्कपत्रं लिपेत्तेन रुद्ध्वा भाण्डपुटे
 पचेत् ॥ २ ॥ तं क्षारं चूर्णयित्वाऽथ त्र्यूषणं त्रिफलारजः । जीरकं रजनी व-
 ह्निर्नवकस्य समं ततः । क्षारार्धं योजयेत्सम्यगेकीकृत्य विचूर्णयेत् ॥ ३ ॥ व-
 ज्रक्षारमिमं शुद्धं स्वयं प्रोक्तं पिनाकिना ॥ ४ ॥ सर्वोदरेषु गुल्मेषु शूले शोफे
 च योजयेत् । अग्निमान्द्ये त्वजीर्णे च भक्षेन्नृष्कद्वयं तथा ॥ ५ ॥ वाताधिके
 जलैः कोष्णैर्घृतैः पित्ताधिके हितः । कफे गोमूत्रसंयुक्त आरनालैस्त्रिदोषनुत्
 ॥ ६ ॥ अथ योगसागराच्छङ्खद्रावः—प्रस्थं जम्बीरनीरं बदरपरिमितं काकतु-
 ण्डस्य मूलं कर्पाधं स्वर्जिकायास्त्रिपटुपलयुतं नव्यसारं पलार्धम् । तत्सर्वं सूर्यतापे
 मुनिदिनयुगुलं काचकुण्यां निधाय हन्याद्गुल्मं सुतीघ्रं जठरमलरुजं शङ्खक-
 द्रावसंज्ञः ॥ १ ॥ इति शङ्खद्रावः ॥ अथान्यः शङ्खद्रावः—फटकीपल-
 मेकं च सैन्धवं पलमेव च । द्विपलं च यवक्षारं द्विपलं नवसागरम् ॥ १ ॥

चतुष्पलं सुराक्षारं पलार्धं कासिसं तथा । डमरूयत्रयोगेन चुल्यां वै बद-
रीन्धनैः ॥ २ ॥ साधयेद्वाधवात्तूर्णं शङ्खद्रावरसं परम् । गुल्मादिसर्वरोगेषु
देयः सर्वसुखप्रदः ॥ ३ ॥ अन्यश्च—सैन्धवं च यवक्षारं नव्यसारं तथैव
च । प्रत्येकं द्विपलं ग्राह्यं सुराक्षारं चतुष्पलम् ॥ १ ॥ फटकीपलमेकं च प-
लार्धं कासिसं तथा । सर्वमेकत्र संयोज्य डमरूयत्रमध्यगे ॥ २ ॥ चुह्यां
प्ररोहयेत्तत्तु ज्वालेत्खदिरैन्धनैः । द्रावितं तत्समादाय तेजोरूपं जलग्रभम्
॥ ३ ॥ द्रावयेदखिलान्धातून्वराटांश्च न संशयः । शङ्खद्रावरसो नाम गुल्मो-
दरहरः परः ॥ ४ ॥ इति शङ्खद्रावः ॥ अथ क्रव्यादरसः—द्विपलं गन्धकं
शुद्धं द्रावयित्वा विनिक्षिपेत् । पारदं पलमानेन मृतशुल्बायसी पुनः ॥ १ ॥
कर्पमानेन संमिश्र्य पञ्चाङ्गुलदले क्षिपेत् । ततो विचूर्ण्य यत्नेन निक्षिप्याऽऽ-
यसपात्रके ॥ २ ॥ चुह्यां निवेश्य यत्नेन चालयेन्मृदुवह्निना । पात्रं पात्रं
हि जम्बीररसं तत्र प्रचारयेत् ॥ ३ ॥ पञ्चकोलसमुद्भूतैः कषायैः साम्लवे-
तसैः । भावनाः खलु दातव्याः पञ्चाशत्प्रमितास्तथा ॥ ४ ॥ भृष्टटङ्कणचूर्णेन
तुल्येन सह मेलयेत् । तदर्धपञ्चलवणैः सर्वसाम्यमरीचकैः ॥ ५ ॥ सप्तधा
भावयेत्पश्चाच्चणकक्षारवारिणा । ततः संशोष्य संपेष्य कूपिकाभ्यन्तरे क्षिपेत्
॥ ६ ॥ अत्यन्तगुरुभोज्यानि गुरुमांसान्यनेकशः । भक्षेच्चाऽऽकण्ठपर्यन्तं ततो
देयो रसोत्तमः ॥ ७ ॥ चतुर्वल्लमितो देयस्तकैः सलवणैरपि । भुक्तं जीर्यति
तत्क्षिप्रं जायते दीपनं परम् ॥ ८ ॥ रसः क्रव्यादनामाऽयं प्रोक्तो मन्थानभैरवैः ।
सिंहलक्षोणिपालाय भूरिमांसभुजे तथा ॥ ततः क्रव्यादयं प्रोक्तो दृढं प्रत्य-
यकारकः ॥ ९ ॥ कुर्याद्दीपनमुद्धतं पवनजे देहे परं शोषणं तुन्दस्थौल्यनिव-
हणो गदहरो दुष्टघ्नातिप्रणुत् । कासश्वासविनाशनो ग्रहणिकाविध्वंसनः
स्वंसनो गुल्मघ्नीहजलोदरोपशमनः क्रव्यादनामा रसः ॥ १० ॥ विश्वहिङ्गु-
बिडैः सार्धं क्रव्यादो भक्षितो रसः । गुल्मानशेषान्घ्नीहानं विद्रधीनपि ना-
शयेत् ॥ ११ ॥ इति क्रव्यादः ॥ अथ गदनिग्रहाञ्चविकासवः—चवि-
कायास्तुलार्धं तु तदर्धं चित्रकस्य च । बाष्पिका पुष्करं मूलं पद्मग्रन्था हपुषा
शटी ॥ १ ॥ पटोलमूलत्रिफलायवानीकुटजत्वचः । विशाला धान्यकं रास्ना
दन्ती दशपलोन्मिता ॥ २ ॥ कृमिघ्नमुस्तमज्जिष्ठादेवदारुकटुरिकम् । भागा-
न्पञ्चपलानेतानष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ ३ ॥ द्रोणशेषे रसे पूते देयं गुडशत-
त्रयम् । धातव्या विंशतिपलं चातुर्जातं पलाष्टकम् ॥ ४ ॥ लवङ्गव्योषक-
ङ्कोलं पलिकानि प्रकल्पयेत् । निदघ्नान्मासमेकं तु घृतभाण्डे सुसंस्कृते ॥ ५ ॥
चतुष्पलां पिबेन्मात्रां प्रातः पीतं नियच्छति । सर्वगुल्मविकारांश्च प्रमेहांश्चैव
विंशतिम् ॥ ६ ॥ प्रतिश्यायं क्षयं कासमघ्नीलां वातशोणितम् । उदराण्यत्र-
वृद्धिं च चविकाख्यो महासवः ॥ ७ ॥ इति चविकासवः ॥ अथ कुमार्या-

सवः—कुमार्याश्च रसद्रोणे गुडं पलशतं तथा । तुलाङ्घ्रिसंख्यां विजयां क्वा-
थ्येत्तज्जलार्मणे ॥ १ ॥ चतुर्थांशावशेषे तु पूते तस्मिन्निधापयेत् । मधुनश्चा-
ऽऽढकं दत्त्वा धातक्या द्विपलाष्टकम् ॥ २ ॥ स्निग्धभाण्डे विनिक्षिप्य कल्कं
चैव प्रदापयेत् । जातीफलं लवङ्गं च कक्कोलं च कवावकम् ॥ ३ ॥ जटिला-
चव्यचित्रं च जातीपत्री सकर्कटम् । अक्षं पुष्करमूलं च प्रत्येकं च पलं पलम्
॥ ४ ॥ मृतं शुल्बं तथा लोहं शुक्तिमात्रं प्रदापयेत् । भूम्यां वा धान्यराशौ
वा स्थापयेद्दिनविंशतिम् ॥ ५ ॥ तमुद्धृत्य पिबेन्मात्रां यथा चाग्निबलाव-
लम् । पञ्चकासं तथा श्वासं क्षयरोगं च दारुणम् ॥ ६ ॥ उदराणि तथाऽष्टौ
च षडशींसि च नाशयेत् । वातव्याधिमपस्मारमन्यान्रोगान्सुदारुणान् ॥ ७ ॥
जाठरं कुरुते दीप्तं कोष्ठशूलं च नाशयेत् । गुल्माष्टकं नष्टपुष्पं नाशयेदेकप-
क्षतः ॥ कुमारिकासवो ह्येष बृहस्पतिविनिर्मितः ॥ ८ ॥ इति कुमार्यांसवः ॥
अथ हिङ्गवादिघृतम्—हिङ्गुपुष्करमूलानि तुम्बरूणि हरीतकी । श्यामा
बिडं सैन्धवं च यवक्षारं महौषधम् ॥ १ ॥ यवकाथोदकेनैतद् घृतप्रस्थं वि-
पाचयेत् । तेनास्य भिद्यते गुल्मः सशूलः सपरिग्रहः ॥ २ ॥ अथ दाधिकघृ-
तम्—बिडदाडिमसिन्धूत्थहुतभुग्व्योपजीरकैः । हिङ्गुसौवर्चलक्षारचक्रवृक्षा-
म्लवेतसैः ॥ १ ॥ बीजपूररसोपेतैः सर्पिर्दधि चतुर्गुणम् । साधितं दाधिकं
नाम्ना गुल्महृत्प्लीहनुत्परम् ॥ २ ॥ अथ वृन्दात्रायमाणादि—जले दश-
गुणे साध्यं त्रायमाणं चतुष्पलम् । पञ्चभागान्वितं पूतं कल्कैः संयोज्य का-
र्षिकैः ॥ १ ॥ रोहिणी कटुका मुस्ता त्रायमाणा दुरालभा । द्राक्षा तामलकी
वीरा जीवन्ती चन्दनोत्पलम् ॥ २ ॥ रसस्याऽऽमलकानां च क्षीरस्य च घृ-
तस्य च । पलानि पृथगष्टौ सम्यग्दत्त्वा विपाचयेत् ॥ ३ ॥ पित्तगुल्मं र-
क्तगुल्मं विसर्पं पित्तजं ज्वरम् । हृद्रोगं कामलां कुष्ठं हन्यादेतद् घृतोत्तमम्
॥ ४ ॥ अथ सामुद्रादिवर्तिः—वातवर्चोनिरोधेषु सामुद्रार्द्रकसर्षपैः ।
कृत्वा पायौ विधातव्या वर्तयो मरिचान्वितैः ॥ १ ॥

अथ रसाः ।

तत्राऽदौ नाराचो रसः—शुद्धसूतं समं गन्धं जेपालं त्रिफला समम् ।
त्रिकटुं पेषयेत्क्षौद्रमिश्रं गुल्मं लिहन्हरेत् । उष्णोदकं पिबेच्चानु नाराचोऽयं
रसोत्तमः ॥ १ ॥ इति नाराचो रसः । अथ वडवानलरसः—शुद्धसूतं
समं गन्धं मृतं ताम्राभ्रटङ्कणम् । सामुद्रं च यवक्षारं स्वर्जिसैन्धवनागरम्
॥ १ ॥ अपामार्गस्य च क्षारं पालाशं वत्सनाभकम् । प्रत्येकं सूततुल्यं स्याच्च-
णकाम्लेन मर्दयेत् ॥ २ ॥ हस्तिकन्याद्रवैश्चाहो आर्द्रयुक्तं पुटेल्लघु । माषैकं
भक्षयेन्नित्यं रसोऽयं वडवानलः ॥ सर्वगुल्मं निहन्त्याशु ग्रहणीं च विशेषतः ॥ ३ ॥
इति वडवानलरसः । अथ गुल्मकुठारो रसः—नागवङ्गाश्रकं कान्तं समं

ताम्रं समांशकम् । जम्बीरस्वरसैर्घृष्टा वटी गुञ्जाप्रमाणिका ॥ १ ॥ मधुनाऽऽ
र्द्रकनीरेण क्षारयुग्मेन सेविता । अजीर्णमामं गुल्मं च हृत्पाश्वोर्दरशूलके ।
नाम्ना गुल्मकुठारोऽयं सर्वगुल्मान्वपोहति ॥ १ ॥ अथ काश्यपान्मदेभ-
सिंहसूतो रसः—रसगन्धवराटताम्रशङ्खं विषवङ्गाभ्रककान्ततीक्ष्णमुण्डम् ।
अहिहिङ्गुलटङ्गणं समांशं सकलं तन्निगुणं पुराणकिट्टम् ॥ १ ॥ पशुमूत्रविशो-
धितं सुमृष्टा त्रिफलाभृङ्गरजार्द्रकोत्थनीरैः । सुविशोष्य वरामृतालिविासा-
स्वरसैरष्टगुणैः पुनर्नवोत्थैः ॥ २ ॥ पृथगग्निकृतं घनं विपाच्य गुटिका गुञ्ज-
युता निजानुपानैः । ज्वरपाण्डुतृषास्त्रपैत्यगुल्मक्षयकासस्वरमग्निसादमूर्च्छाः
॥ ३ ॥ पवनादिषु दुस्तराष्ट्रोगान्सकलं पित्तहरं मदावृतं च । बहुना किमसौ
यथार्थनामा सकलव्याधिहरो मदेभसिंहः ॥ ४ ॥ अथ प्रवालपञ्चामृत-
रसः—प्रवालमुक्ताफलशङ्खशुक्तिकपर्दिकानां च समांशभागम् । प्रवालमात्रं
द्विगुणं प्रयोज्यं सर्वैः समांशं रविदुग्धमेव ॥ १ ॥ एकीकृतं तत्त्वलु भाण्ड-
मध्ये क्षिप्त्वा मुखे बन्धनमत्र योज्यम् । पुटं विदध्यादतिशीतले च उद्धृत्य
तद्गुणं क्षिपेत्करण्डे ॥ २ ॥ नित्यं द्विवारं प्रतिपाकयुक्तं बलप्रमाणं हि नरेण
सेव्यम् । आनाहगुल्मोदरप्लीहकासश्वासाग्निमान्द्यान्कफमारुतोत्थान् ॥ ३ ॥
अजीर्णमुद्गारहृदामयघ्नं ग्रहण्यतीसारविकारनाशनम् ॥ ४ ॥ मेहामयं मूत्र-
रोगं मूत्रकृच्छ्रं तथाऽश्मरीम् । नाशयेन्नात्र संदेहः सत्यं गुरुवचो यथा ॥ ५ ॥
पथ्याश्रितं भोजनमादरेण समाचरेन्निर्मलचित्तवृत्त्या । प्रवालपञ्चामृतनाम-
धेयो योगोत्तमः सर्वगदापहारी ॥ ६ ॥ इति रसाः ।

अथ पथ्यापथ्यम् ।

संवत्सरसमुत्पन्नाः कलमा रक्तशालयः । खण्डं कुलत्थयूषश्च धन्वमांसर-
सः सुराः ॥ १ ॥ गवामजायाश्च पयो मृद्वीका च परुषकम् । तक्रमेरण्डतैलं
च लक्ष्मुनं बालमूलकम् ॥ २ ॥ पत्तूरो वास्तुकं शिग्रु मातुलुङ्गं हरीतकी ।
वातानुलोमनं चैव पथ्यं गुल्मे नृणां भवेत् ॥ ३ ॥ माषादयः शिम्बिधान्ये
शूकधान्ये यवादयः । बलूरं मूलकं मत्स्यं मधुराणि फलानि च ॥ ४ ॥ अधो-
वायुशकृन्मूत्रश्रमश्वासाश्रुधारणम् । वमनं जलपानं च गुल्मरोगी परि-
त्यजेत् ॥ ५ ॥

इति पथ्यापथ्यम् । इति गुल्मरोगचिकित्सा ।

अथातो हृद्रोगनिदानम् ।

अत्युष्णगुर्वम्लकषायतिकैः श्रमाभिघाताध्यशनप्रसङ्गैः । संचिन्तनैर्वेगवि-
धारणैश्च हृदामयः पञ्चविधः प्रदिष्टः ॥ १ ॥ अथ तस्य संप्राप्तिमाह—
दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः । हृदि बाधां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं

प्रचक्षते ॥ २ ॥ अथ वातिकमाह—आयम्यते मारुतजे हृदयं तुद्यते तथा । निर्मथ्यते दीर्यते च स्फोट्यते पाठ्यतेऽपि च ॥ ३ ॥ अथ पैत्तिकमाह—तृष्णोष्ण-
दाहचोषाः स्युः पैत्तिके हृद्गदे क्लमः । धूमायनं च मूर्च्छा च स्वेदः शोषो मुख-
स्य च ॥ ४ ॥ अथ श्लैष्मिकमाह—गौरवं कफसंज्ञावोऽरुचिः स्तम्भोऽग्नि-
मार्दवम् । माधुर्यमपि चाऽऽस्यस्य बलासावतते हृदि ॥ ५ ॥ अथ त्रिदोषकृ-
मिजयोर्लक्षणमाह—विद्यात्रिदोषमप्येवं सर्वलिङ्गहृदामयम् । त्रिदोषजे तु
हृद्गोगे यो दुरात्मा निषेवते ॥ ६ ॥ तिलक्षीरगुडादींश्च ग्रन्थिस्तस्योपजायते ।
ममैकदेशे संक्लेदं रसश्चाप्युपगच्छति ॥ ७ ॥ तत्क्लेदात्कृमयश्चास्य भवन्त्युप-
हतात्मनः । तीव्रार्तितोदं कृमिजं तद्दोषत्रयसंभवम् ॥ ८ ॥ उत्क्लेदः धीवनं तोदः
शूलं हृल्लासकस्तमः । अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोषश्च कृमिजे भवेत् ॥ ९ ॥
उपद्रवाः—क्लोन्नः सादो भ्रमः शोषो ज्ञेयास्तेषामुपद्रवाः । क्रिमिजे
कृमिजातीनां श्लैष्मिकाणां च ते मताः ॥ १० ॥ इति हृद्गोगनिदानम् ।

अथ हृद्गोगचिकित्सा ।

अथ वातहृद्गोगः—वातोपसृष्टे हृदये वामयेस्त्रिगन्धमातुरम् । द्विपञ्च-
मूलीकाथेन सस्नेहलवणेन वा ॥ १ ॥ अथ पिप्पल्यादिचूर्णम् । पिप्पल्ये-
ला वचा हिङ्गु यवक्षारोऽथ सैन्धवम् । सौवर्चलमथो शुण्ठी दीप्यश्चेति
विचूर्णितम् ॥ १ ॥ फलधान्याम्लकौलत्थदधिमद्यासवादिभिः । पाययेच्छुद्ध-
देहस्य वातहृद्गोगशान्तये ॥ २ ॥ अथ पुष्करमूलाद्यं चूर्णम्—सपुष्करा-
ख्यं फलपूरमूलं महौषधं शक्यभया च कल्कः । क्षीराम्लसर्पिलवणैर्विमिश्रः
स्याद्वातहृद्गोगहरो नराणाम् ॥ १ ॥ इति वातहृद्गोगः ।

अथ पित्तहृद्गोगः ॥ श्रीपर्णी मधुकं क्षौद्रं सितागुडजलैर्वमेत् । पित्तोपसृष्टे
हृदये सिञ्चेत मधुरैः शृतैः ॥ १ ॥ शीताः प्रदेहाः परिपेचनं च तथा विरेको
हृदि पित्तदुष्टे । द्राक्षासिताक्षौद्रपरूपकैः स्याच्छुद्धे च पित्तापहमन्नपानम्
॥ १ ॥ अथ द्राक्षादिचूर्णम्—हारहूराहरीतक्योस्तुल्यं शर्करया रजः । पीतं
हिमाम्बुना हन्ति पित्तहृद्गोगमज्जसा ॥ १ ॥ अथार्जुनादिचूर्णम्—अर्जु-
नस्य त्वचा सिद्धं क्षीरं पित्तहृदार्तिजित् । सितया पञ्चमूल्या वा बलया म-
धुकेन वा ॥ १ ॥ अथ वृन्दात्कसेरुकादिसर्पिः—कसेरुकाशैवलशृङ्गबे-
रप्रपौण्डरीकं मधुकं विसं च । ग्रन्थिश्च सर्पिः पयसा पचेत्तैः क्षौद्रान्वितं
पित्तहृदामयघ्नम् ॥ १ ॥ इति पित्तहृद्गोगः ।

अथ कफहृद्गोगः—हृद्गोगे कफजे स्विन्नं सुवान्तं लङ्घितं नरम् । कफ-
घ्नैर्भेषजैर्युज्याज्ज्ञात्वा दोषबलाबलम् ॥ १ ॥ अथ त्रिवृताद्यौ चूर्णकाथौ-
त्रिवृत्सटीबलारास्त्राशुण्ठीपथ्याः सपौष्कराः । चूर्णिता वा शृता मूत्रे पा-

तन्याः कफहृद्दे ॥ २ ॥ अथैलादि—सूक्ष्मैला मागधीमूलं पटोलं सर्पिषा सह । नाशयेदाशु हृद्रोगं कफजं सपरिग्रहम् ॥ १ ॥ इति कफहृद्रोगः ।

अथ त्रिदोषहृद्रोगः—त्रिदोषजे लङ्घनमादितः स्यादन्नं तु सर्वेषु हितं विधेयम् । चूर्णाणि सर्पाणि च वक्ष्यमाणान्यत्र प्रयोज्यानि भिषग्भिराशु ॥ १ ॥ इति त्रिदोषहृद्रोगः ।

अथ कृमिजहृद्रोगः—हृद्रोगे कृमिजे कार्यं लङ्घनं चापतर्पणम् । पश्चात्कृमिहरं कर्म कृमिरोगोक्तमाचरेत् ॥ १ ॥ कृमिजे च पिबेन्मूत्रं विडङ्गामयसंयुतम् । हृदि स्थिताः पतन्त्येव ह्यसाध्याः कृमयो नृणाम् ॥ २ ॥ इति कृमिजहृद्रोगः ।

अथ सामान्यहृदामयप्रतीकारः ।

पवनारिजटा द्विपलाष्टगुणे सलिले पचिता यवजेन युतम् । कथनं हृदयोद्भवपार्श्वतटीकटिशूलविदारणसिंहनखम् ॥ १ ॥ अथ दशमूलादिकाथः—दशमूलकषायस्तु लवणक्षारसंयुतः । पीतो निहन्ति सहसा हृदामयमसंशयम् ॥ १ ॥ अथ पुष्करादिकाथः—काथः कृतः पुष्करमातुलज्जपलाशपूतीकशटीसुराह्वैः । सनागराजाजिवचायवाह्वसक्षार उष्णो लवणेन पेयः ॥ १ ॥ अथ हिङ्गवादिचूर्णम्—हिङ्गूग्रगन्धाविडविश्वकृष्णाकुष्ठाभयाचित्रकयावशूकम् । पिबेत्ससौवर्चलपुष्कराढ्यं यवाम्भसा शूलहृदामयघ्नम् ॥ १ ॥ अथ पुष्कराद्यं चूर्णम्—चूर्णं पुष्करमूलस्य मधुना सह लेहयेत् । हृत्तासश्वासकासघ्नं हृदामयहरं परम् ॥ १ ॥ अथ ककुभाद्यं चूर्णम्—घृतेन दुग्धेन गुडाम्भसा वा पिबेत्सचूर्णं ककुभत्वचोत्थम् । हृद्रोगजीर्णज्वररक्तपित्तं जित्वा भवेयुश्चिरजीविनस्ते ॥ १ ॥ अथैणशृङ्गभस्मयोगः—शरावसंपुटे दग्ध्वा शृंगं हरिणजं पिबेत् । गव्येन सर्पिषा पिष्टं हृत्तूलं नश्यति ध्रुवम् ॥ १ ॥ अथ वृन्दात्कटुकादि—पिप्प्रा वा कटुका पेया स-यष्टीका सुखाम्बुना । जीर्णज्वरं रक्तपित्तं हृद्रोगं च व्यपोहति ॥ १ ॥

अथ घृतानि ।

अथाऽऽदौ वल्लभघृतम्—शतार्धमभयानां तु सौवर्चलपलद्वयम् । पचेत्कल्कैर्घृतप्रस्थं दत्त्वा क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ घृतं वल्लभकं नाम्ना श्रेष्ठं हृद्रोगनाशनम् ॥ १ ॥ अथ यष्ट्यादिघृतम्—यष्टीनागबलोदीच्यार्जुनैः सर्पिः सुसाधितम् । हृद्रोगक्षयपित्तास्रश्वासकासज्वरार्तिजित् ॥ १ ॥ इति घृतानि । अथ वृन्दात्पुनर्नवादितैलम्—पुनर्नवादारुसपञ्चमूलरास्त्रायवाङ्गोलकपित्थबिल्वम् । पक्त्वा जले तेन पचेच्च तैलमभ्यङ्गपानेऽनिलहृद्दघ्नम् ॥ १ ॥

अथ रसाः ।

तत्राऽऽदौ त्रिनेत्रो रसः—रसगन्धाभ्रभस्मानि पार्थवृक्षत्वगम्बुना ।

एकविंशतिधा घर्मे भावितानि विधानतः ॥ १ ॥ मापमात्रमिदं चूर्णं मधुना सह लेहयेत् । वातजं पित्तजं श्लेष्मसंभूतं वा त्रिदोषजम् । कृमिजं चापि हृद्रोगं निहन्येव न संशयः ॥ २ ॥ अथ हृदयार्णवरसः—सूतार्कगन्धं काथेन वराया मर्दयेद्दिनम् । काकमाच्या वटीं कृत्वा चणमात्रां तु भक्षयेत् । हृदयार्णवनामाऽयं हृद्रोगदलनो रसः ॥ १ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

शालिमुद्गा यवा मांसं जाङ्गलं मरिचान्वितम् । पटोलं कारवेल्लं च पथ्यं प्रोक्तं हृदामये ॥ १ ॥ तैलाम्लतक्रगुर्वन्नकपायश्रममातपम् । रोपं स्त्रीनर्म चिन्तां वा भाष्यं हृद्रोगवांस्यजेत् ॥ २ ॥

इति हृद्रोगचिकित्सा ।

अथोरोग्रहनिदानम् ।

अत्यभिष्यन्दिगुर्वन्नशुष्कपूत्यामिपाशनात् । सास्रं मांसं यकृत्प्लीहोः सद्यो वृद्धिं यदा गतम् ॥ १ ॥ उरोग्रहं तदा कुक्षौ कुरुतः कफमारुतौ । सस्तम्भं सज्वरं घोरं रुक्षं स्पर्शासहं गुरुम् ॥ २ ॥ आध्मानं कुक्षिहृत्कण्ठे वातविष्मूत्ररोधताः । तन्द्रारोचकशूलानि तस्य लिङ्गानि निर्दिशेत् ॥ ३ ॥

इत्युरोग्रहनिदानम् ।

अथ उरोग्रहचिकित्सा ।

अत्राऽऽशु स्वेदनं युक्त्या वमनं रक्तमोक्षणम् । तीक्ष्णैर्निरुहणं चैकं क्रमाल्लङ्घनमाचरेत् ॥ १ ॥ पुत्रजीवकशिग्रुत्वक्सूर्यावर्तबलोद्भवाः । रसा एकैकशः कोष्णा द्विशो वा रामठाश्रिताः ॥ २ ॥ सपञ्चलवणाः पेयास्त्रिवृद्गुडसुकल्किताः । तन्निवृत्तौ यथालाभं मूत्रतैलसुरासवैः ॥ ३ ॥ चव्याम्लवेतसक्षारसरामठसचित्रकान् । पिबेत्तैलारनालाभ्यामुरोग्रहनिवृत्तये ॥ ४ ॥ यो वा नरस्यात्र कृतस्य कर्मणो विधिर्विरुद्धो न भवेन्मनागपि । यथाबलं वीक्ष्य च शुद्धविग्रहं तथाविधं पथ्यमपि प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥

इत्युरोग्रहचिकित्सा श्रीहरिश्चन्द्रस्य ।

अथातोमूत्रकृच्छ्रनिदानम् ।

न्यायामतीक्ष्णौषधरुक्षमद्यप्रसङ्गनृत्यद्रुतपृष्ठयानात् । आनूपमत्स्याध्यशनादजीर्णात्स्युर्मूत्रकृच्छ्राणि नृणामिहाष्टौ ॥ १ ॥ अथ तस्य संप्राप्तिमाह—पृथङ्जालाः स्त्रैः कुपिता निदानैः सर्वेऽथवा कोपमुपेत्य वस्तौ । मूत्रस्य मार्गं परिपीडयन्ति यदा तदा मूत्रयतीह कृच्छ्रात् ॥ २ ॥ अथ वातजमाह—तीव्रा हि रूग्णवृक्षेणवस्तिमेव स्वल्पं मुहुर्मूत्रयतीह वातात् ॥ ३ ॥ अथ

पित्तजमाह—पीतं सरक्तं सरुजं सदाहं कृच्छ्रं मुहुर्मूत्रयतीह पित्तात् ॥ ४ ॥
 अथ श्लैष्मिकमाह—वस्तेः सलिङ्गस्य गुरुत्वशोफौ मूत्रं सपिच्छं कफमूत्र-
 कृच्छ्रे ॥ ५ ॥ अथ त्रिदोषजमाह—सर्वाणि रूपाणि च संनिपाताद्भवन्ति
 तत्कृच्छ्रतमं हि कृच्छ्रम् ॥ ६ ॥ अथ शल्यजमाह—मूत्रवाहिषु शल्येन
 क्षतेष्वभिहतेषु च । मूत्रकृच्छ्रं तदाघाताज्जायते भृशवेदनम् । वातकृच्छ्रेण
 तुल्यानि तस्य लिङ्गानि निर्दिशेत् ॥ ७ ॥ अथ पुरीषजमाह—शकृतस्तु
 प्रतीघाताद्वायुर्विगुणतां गतः । आध्मानं वातशूलं च मूत्रसङ्गं करोति च
 ॥ ८ ॥ अथाश्मरीजमाह—अश्मरीषु तु तत्पूर्वं मूत्रकृच्छ्रमुदाहृतम् ॥ ९ ॥
 अथ शुक्रजमाह—शुक्रदोषैरुपहते मूत्रमार्गे विधारिते । सशुक्रं मूत्रयेत्कृ-
 च्छाद्वस्तिमेहनशूलवान् ॥ १० ॥ अथावान्तरभेदमाह—अश्मरी शर्करा
 चैव तुल्यसंभवलक्षणे । शर्कराया विशेषं तु शृणु कीर्तयतो मम ॥ ११ ॥
 पच्यमानाऽश्मरी पित्ताच्छोष्यमाणा च वायुना । विमुक्तकफसंधाना क्षरन्ती
 शर्करा मता ॥ १२ ॥ हृत्पीडा वेपथुः शूलं कुक्षौ वह्निश्च दुर्बलः । तथा भव-
 ति मूर्छा च मूत्रकृच्छ्रं च दारुणम् ॥ १३ ॥ इति मूत्रकृच्छ्रनिदानम् ।

अथ मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

तत्राऽदौ वातमूत्रकृच्छ्रम्—अभ्यञ्जनस्नेहनिरुहबस्तिस्वेदोपनाहोत्तर-
 बस्तिसेकान् । स्थिरादिभिर्वातहरैश्च सिद्धान्दद्याद्रसांश्चानिलमूत्रकृच्छ्रे ॥ १ ॥
 अमृता नागरं धात्री वाजिगन्धा त्रिकण्टकम् । निष्काथ्य प्रपिबेत्काथं मूत्रकृ-
 च्छ्रे समीरजे ॥ २ ॥ इति वातकृच्छ्रम् ।

अथ पित्तकृच्छ्रम् ।

सेकावगाहाः शिशिरप्रदेहाः श्रेष्ठो विधिर्वस्तिपयोविरेकाः । द्राक्षाविदारी-
 क्षुरसैर्धृतं च कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु कार्याः ॥ १ ॥ अथ तृणपञ्चमूलकाथ-
 पयसी—कुशः काशः शरो दर्भ इक्षुश्चेति तृणोद्भवम् । पित्तकृच्छ्रहरं पञ्च-
 मूलं बस्तिविशोधनम् । एतत्सिद्धं पयः पीतं मेढ्रं हन्ति शोणितम् ॥ १ ॥ अथ
 शतावर्यादिकाथः—शतावरीकाशकुशश्चदंष्ट्राविदारिशालीक्षुकसेरुकाणाम् ।
 काथं सुशीतं मधुशर्कराभ्यां युक्तं पिबेत्पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रे ॥ १ ॥ अथ हरीत-
 क्यादिकाथः—हरीतकीगोक्षुरराजवृक्षपाषाणभिद्धन्वयवासकानाम् । काथं
 पिबेन्माक्षिकसंप्रयुक्तं कृच्छ्रे सदाहे सरुजे विबन्धे ॥ १ ॥ अथोर्वारुक्वी-
 जयोगः—उर्वारुक्वीजं मधुकं सदाविं पित्ते पिबेत्तण्डुलधावनेन । दावीं तथै-
 वाऽऽमलकीरसेन समाक्षिकां पित्तकृतेऽथ कृच्छ्रे ॥ १ ॥ अथ वृन्दान्मन्था-
 दियोगः—मन्थं पिबेद्वा ससितं ससर्पिः शृतं पयो वाऽर्धसिताप्रयुक्तम् ।
 धात्रीरसं चेशुरसं पिबेद्वा कृच्छ्रे सरक्ते मधुना विमिश्रम् ॥ १ ॥ अथ

द्राक्षादि—द्राक्षासितोपलाकल्कं कृच्छ्रं मस्तुना युतम् । पिबेद्वा कामतः क्षीरमुष्णं गुडसमन्वितम् ॥ १ ॥ अथ वृन्दाचारिकेलादि—नारिकेल-जलं योज्यं गुडधान्यसमन्वितम् । सदाहं मूत्रकृच्छ्रं च रक्तपित्तं निहन्ति च ॥ १ ॥ अन्यच्च—रक्तस्य नारिकेलस्य जलं कतकसंयुतम् । शर्करैलासमा-युक्तं मूत्रकृच्छ्रहरं विदुः ॥ १ ॥ अथ शतावर्यादिसर्पिः—शतावरीकाश-कुशश्चर्दंष्ट्राविदारिकेक्ष्वामलकल्कसिद्धम् । सर्पिः पयो वा सितया विमिश्रं कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु योज्यम् ॥ १ ॥ इति पित्तकृच्छ्रम् ।

अथ श्लेष्मकृच्छ्रम् ।

क्षारोष्णतीक्ष्णौषधमन्नपानं स्वेदो यवान्नं वमनं निरुहः । तक्रं च तिक्तो-षणसिद्धतैलं बस्तिश्च शस्तः कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ १ ॥ अथ मूत्रादियोगः—मूत्रेण सुरया वाऽपि कदलीस्वरसेन वा । कफकृच्छ्रविनाशाय सूक्ष्मां पिष्ट्वा तृटिं पिबेत् ॥ १ ॥ अथ तक्रादियोगो वृन्दात्—तत्रेण युक्तं सितवारु-कस्य बीजं पिबेत्कृच्छ्रविघातहेतोः । पिबेत्तथा तण्डुलधावनेन प्रवालचूर्णं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ १ ॥ इति श्लेष्मकृच्छ्रम् ।

अथ त्रिदोषकृच्छ्रम् ।

सर्वं त्रिदोषप्रभवे तु कृच्छ्रे यथाबलं कर्म समीक्ष्य कार्यम् । तत्राधिके प्राग्वमनं कफे स्यात्पित्ते विरेकः पवने तु बस्तिः ॥ १ ॥ अथ बृहत्यादि-क्वाथः—बृहतीधावनीपाठायष्टीमधुकलिङ्गकान् । पक्त्वा क्वाथं पिबेन्मर्त्यः कृच्छ्रे दोषत्रयोद्भवे ॥ १ ॥ अथ शतावर्यादिक्वाथः—शतावर्यास्तु मू-लानां निष्काथः ससितामधुः । मूत्रदोषं निहन्त्याशु वातपित्तकफोद्भवम् ॥ १ ॥ अथ गुडदुग्धयोगः—गुडेन मिश्रितं दुग्धं कदुष्णं कामतः पि-बेत् । मूत्रकृच्छ्रेषु सर्वेषु शर्करावातरोगनुत् ॥ १ ॥ इति त्रिदोषजमूत्रकृच्छ्रम् ।

अथाभिघातमूत्रकृच्छ्रम् ।

मूत्रकृच्छ्रेऽभिघातोत्थे वातकृच्छ्रक्रिया हिता । पञ्चवल्कलमूलेपः कवो-ष्णोऽत्र प्रशस्यते ॥ १ ॥ अथ मन्थादियोगः—मन्थं पिबेद्वा ससितं स-सर्पिः शृतं पयो वाऽर्धसिताप्रयुक्तम् । धात्रीरसं चक्षुरसं पिबेद्वाऽभिघातकृच्छ्रे मधुना विमिश्रम् ॥ १ ॥ इत्यभिघातकृच्छ्रम् ।

अथ शुक्रविबन्धजकृच्छ्रम् ।

कृच्छ्रे शुक्रविबन्धोत्थे शिलाजतु समाक्षिकम् । सक्षीरं ससितं सर्पिर्म-द्वापि प्रपिबेन्नरः ॥ १ ॥ शुक्रदोषविशुद्ध्यर्थं समदां प्रमदां श्रयेत् । तृणप-ञ्चकमूलेन सिद्धं सर्पिः पिबेदपि ॥ १ ॥ लेहः शुक्रविबन्धोत्थे शिलाजतुस-माक्षिकः । बलाहिङ्गयुतं क्षीरं सर्पिर्मिश्रं पिबेन्नरः । मूत्रदोषविशुद्ध्यर्थं शुक्र-दोषहरं परम् । इति वृन्दात् ।

अथ शकृद्विघातजं कृच्छ्रम् ।

स्वेदचूर्णक्रियाभ्यङ्गवस्तयः स्युः पुरीषजे । कृच्छ्रे तत्र विधिः कार्यः सर्वः
शुक्रविबन्धजित् ॥ १ ॥ अथ गोक्षुरादिकाथः—काथो गोक्षुरबीजानां
यवक्षारयुतः सदा । मूत्रकृच्छ्रं शकृज्जातं पीतः शीघ्रं निवारयेत् ॥ १ ॥ इति
शकृद्विघातजं कृच्छ्रम् ।

अथाश्मरीजं कृच्छ्रम् ।

अश्मरीजे मूत्रकृच्छ्रे स्वेदाद्या वातजिक्रिया । पाषाणभेदकाथस्तु कृच्छ्र-
मश्मरिजं जयेत् ॥ १ ॥ अथैलादि—एलोपकुल्यामधुकाश्मभेदकौन्तीश्वदं-
द्रावृषकोरुबूकैः । शृतं पिबेदश्मजतुप्रगाढं सशर्करं साश्मरिमूत्रकृच्छ्रे ॥ १ ॥
इत्यश्मरीजं कृच्छ्रम् ।

अथ सामान्यविधिः ।

अथ त्रिकण्टकादिकाथो—गदनिग्रहात् । त्रिकण्टकारग्वधदर्भकाश-
दुरालभापर्पटभेदपथ्याः । निघ्नन्ति पीता मधुनाऽश्मरीकां संप्राप्तमृत्योरपि
मूत्रकृच्छ्रम् ॥ १ ॥ अथ पाषाणभेदादिः—पाषाणभेदस्त्रिवृता च पथ्या
दुरालभा पुष्करगोक्षुरं च । पलाशशृङ्गाटककर्कटीजबीजं कपायः सुनिरुद्ध-
मूत्रे ॥ १ ॥ अथ समूलगोक्षुरादिः—समूलगोक्षुरकाथः सितामाक्षिक-
संयुतः । नाशयेन्मूत्रकृच्छ्राणि तथा चोष्णसमीरणम् ॥ १ ॥ अथ यवादि-
वृन्दात्—यवोरुबूकस्तृणपञ्चमूलीपाषाणभेदः सशतावरीभिः । कृच्छ्रेषु गु-
ल्मेष्वभयाविमिश्रैः कृतः कपायो गुडसंप्रयुक्तः ॥ १ ॥ अथैलादियोगः—
एलाश्मभेदकशिलाजतुपिप्पलीनां चूर्णानि तण्डुलजलैर्लुलितानि पीत्वा ।
यद्वा गुडेन सहितान्यवलेह्य धीमानासन्नमृत्युरपि जीवति मूत्रकृच्छ्री ॥ १ ॥
अथ क्षाराणां प्रयोगः—अङ्गोलतिलकाष्टानां क्षारः क्षौद्रेण संयुतः ।
दधिवार्यनुपानेन मूत्ररोधं नियच्छति ॥ १ ॥ सितातुल्यो यवक्षारः सर्वकृ-
च्छ्रनिवारणः । निदिग्धिकारसो वाऽपि सक्षौद्रः कृच्छ्रनाशनः ॥ २ ॥ यव-
क्षारसमायुक्तं पिबेत्तत्र च कामतः । मूत्रकृच्छ्रविनाशाय तथैवाश्मरिनाश-
नम् ॥ ३ ॥ माषमेकं यवक्षारं कृष्माण्डस्वरसं पलम् । शर्कराकर्पसंयुक्तं मू-
त्रकृच्छ्रनिवारणम् ॥ ४ ॥ अथ वृन्दाद्वाडिमादियोगः—दाडिमाम्लयुतां
हृद्यां शुण्ठीजीरकसंयुताम् । पीत्वा सुरां सलवणां मूत्रकृच्छ्रात्प्रमुच्यते ॥ १ ॥
अथोर्वारुबीजकल्कं वृन्दात्—उर्वारुबीजकल्कं च श्लक्ष्णं पिष्ट्वाऽक्षसंमि-
तम् । धान्याम्ललवणैः पेयं मूत्रकृच्छ्रविनाशनम् ॥ १ ॥ अथ त्रिकलादि-
कल्कः—त्रिकलायाः सुपिष्टायाः कल्कं कोलसमन्वितम् । वारिणा लवणी-
कृत्य पिबेन्मूत्ररूपापहम् ॥ १ ॥ अथैलादिः—पिबेन्मद्येन सूक्ष्मैलां धात्री-

फलरसेन वा । शितिवारकबीजं वा तत्रे श्लक्ष्णं च चूर्णितम् ॥ १ ॥ अथ हरिद्रादिः—हरिद्रागुडकपैकं चाऽऽरनालेन वा पिबेत् । वन्ध्याकर्कोटिका-
कन्दं भक्षेत्क्षौद्रसितायुतम् । अश्मरीं हन्ति नो चित्रं रहस्यं हि शिवोदितम् ॥ १ ॥ अथ योगसारादेलादि—एलागोक्षुरयोश्चूर्णं शिशोर्देयं मधुशुतम् ।
मूत्रकृच्छ्रापहः काथः पेयस्तन्मूलवारिणा ॥ १ ॥ गोक्षुरजस्तथा काथो यव-
क्षारयुतः शुभः । सर्वकृच्छ्रविनाशाय शिलाजतुयुतोऽथ वा ॥ २ ॥ अथ खर्जुरादिचूर्णम्—खर्जूरामलबीजानि पिप्पली च शिलाजतु । एलामधु-
कपापाणं चन्दनोर्वास्वीजकम् ॥ १ ॥ धान्यकं शर्करायुक्तं पातव्यं ज्येष्ठवा-
रिणा । अङ्गदाहं लिङ्गदाहं गुदवङ्गणशुक्रजम् ॥ शर्कराश्मरिशूलघ्नं बल्यं वृ-
ष्यकरं परम् ॥ २ ॥ अथेश्वरसादियोगः—अष्टेश्वरसं ग्राह्यमाखुविड-
विहितं पिबेत् । नाशयेन्मूत्रकृच्छ्राणि सद्य एव न संशयः ॥ १ ॥ अथ कु-
टजयोगः—पिष्ट्वा गोपयसा श्लक्ष्णं कुटजस्य त्वचं पिबेत् । तेनोपशाम्यते क्षिप्रं
मूत्रकृच्छ्रं सुदारुणम् ॥ १ ॥ अथ त्रिकण्टकाद्यं घृतम्—त्रिकण्टकैरण्ड-
कुशाद्यभीरुर्कार्कश्लेष्मस्वरसेन सिद्धम् । सर्पिर्गुडार्धाशयुतं प्रपेयं कृच्छ्राश्म-
रीमूत्रविघातहारि ॥ १ ॥ अथ शतावरीघृतम्—घृतप्रस्थं शतावर्या रस-
स्यार्धाढकं पचेत् । अजाक्षीरेण संयुक्तं चतुष्प्रस्थान्वितेन तु ॥ १ ॥ द्विगोक्षु-
रामृतानन्ताकाशकण्टकिनीरसान् । कुडवार्धं पृथग्दत्त्वा पिष्टैर्यष्टिकदुत्रयम् ॥ २ ॥
श्वदंष्ट्राफलनीतुग्धाशिलाजत्वश्मभेदकैः । त्रिसुगन्धान्वितैरर्धपलांशैः
सघृतं पुनः ॥ ३ ॥ शर्कराद्विपलोपेतं क्षौद्रपादसमन्वितम् । हन्ति कृच्छ्राणि
सर्वाणि मूत्रदोषाश्मशर्कराः ॥ सर्वकृच्छ्राणि हन्त्याशु एतच्छतावरीघृतम् ॥ ४ ॥
अथ त्रिकण्टकादिगुग्गुलुः—त्रिकण्टकानां क्रथितेष्टनिम्बे पुरं
पचेत्पाकविधानयुक्त्या । फलत्रिकव्योषपयोधराणां चूर्णं पुरेण प्रमितं प्रद-
द्यात् ॥ १ ॥ वटी प्रमेहं प्रदरं च मूत्राघातं च कृच्छ्रं च तथाऽश्मरीं च ।
शुक्रस्य दोषान्सकलांश्च वातान्निहन्ति मेघानिव वायुवेगः ॥ २ ॥ अथ सेक-
लेपौ—पिष्ट्वा श्वदंष्ट्राफलमूलिकाबिडैर्वास्वीजानि सकाञ्जिकानि । आलि-
प्यमानानि समानि बस्तौ मूत्रस्य निप्यन्दकराणि सद्यः ॥ १ ॥ बस्तावेरण्ड-
तैलेन स्निग्धत्वे किंशुकोद्भवैः । स्विन्नपुष्पैः स्वेदसेकं मूत्रकृच्छ्रोपशान्तये ॥ २ ॥
कोष्णाखुविट्कलकलेपो बस्तेरुपरि कृच्छ्रिणः । त्रपुसीबीजलेपो वा धारा वा
किंशुकाम्भसः ॥ ३ ॥ ध्वजच्छिद्रे चेन्दुदानं दानं वा चटकाविशः । मेघना-
दशिफालेपः स्वेदो वा कर्कटाम्भसा ॥ ४ ॥ पातो वा कोष्णतैलस्य धारा वा
कोष्णवारिणः । नवैते पादिका योगा मूत्रकृच्छ्रहरा मताः ॥ ५ ॥ अथ च-
न्द्रकलारसः संग्रहात्—प्रत्येकं कर्पमात्रं स्यात्सूतं ताम्रं तथाऽश्रकम् ।
द्विगुणं गन्धकं चैव कृत्वा कज्जलिकां शुभाम् ॥ १ ॥ मुस्तादाडिमदूर्वोत्थैः
केतकीस्तनजद्रवैः । सहदेव्याः कुमार्याश्च पर्पटस्य च वारिणा ॥ २ ॥ रामशी-

तलिकातोयैः शतावर्या रसेन च । भावयित्वा प्रयत्नेन दिवसे दिवसे पृथक् ॥ ३ ॥ तिक्तागुडचिकासत्त्वं पर्पटोशीरमाधवी । श्रीगन्धं सारिवा चैषां स-
मानं सूक्ष्मचूर्णितम् ॥ ४ ॥ द्राक्षाफलकषायेण सप्तधा परिभावयेत् । ततः
पोताश्रयं कृत्वा वट्यः कार्याश्रणोपमाः ॥ ५ ॥ अयं चन्द्रकलानाम्ना रसेन्द्रः
परिकीर्तितः । सर्वपित्तगदध्वंसी वातपित्तगदापहः ॥ ६ ॥ अन्तर्बाह्यमहा-
दाहविध्वंसनमहाघनः । ग्रीष्मकाले शरत्काले विशेषेण प्रशस्यते ॥ ७ ॥ कु-
रुते नाग्निमान्द्यं च महातापं ज्वरं हरेत् । अममूर्छाहरश्चाऽऽशु स्त्रीणां रक्तं
महास्रवम् ॥ ८ ॥ ऊर्ध्वाधो रक्तपित्तं च रक्तवान्ति विशेषतः । मूत्रकृच्छ्राणि
सर्वाणि नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ९ ॥ इति चन्द्रकलारसः । अथ रसरत्नप्र-
दीपालुघुलोकेश्वरो रसः—रसभस्म च भागैकं चत्वारः शुद्धगन्धकम् ।
पिष्ट्वा वराटकान्पूर्याद्रसपादं च टङ्कणम् ॥ १ ॥ क्षीरेण पिष्ट्वा रुद्ध्वाऽऽस्यं
भाण्डे रुद्ध्वा पुटे पचेत् । स्वाङ्गशीतं विचूर्ण्याथ लघुलोकेश्वरो रसः ॥ २ ॥
चतुर्गुणो घृतैर्दोयो मरीचैकोनविंशतिः । जातिमूलपलं चैकमजाक्षीरेण पाच-
येत् ॥ शर्कराभावितं चानु पीतं कृच्छ्रहरं परम् ॥ ३ ॥ इति लघुलोकेश्वरः ।
अथ वैक्रान्तगर्भनामा रसः—सूतं स्वर्णं च वैक्रान्तं मृतं तुल्यं च मर्दयेत् ।
चाण्डालीराक्षसीद्रवैर्द्वियामान्ते च गोलकम् ॥ १ ॥ शुष्कं रुद्ध्वा पुटे पा-
च्यं करीपाग्नौ महापुटे । मापैकं मधुना लेह्यं मूत्रकृच्छ्रप्रशान्तये ॥ २ ॥ वै-
क्रान्तगर्भनामाऽयं सर्वकृच्छ्रामयाञ्जयेत् । अपामार्गीस्य मूलं तु तत्रे पिष्ट्वाऽनु-
पाययेत् ॥ ३ ॥ इति वैक्रान्तगर्भरसः । अथ लोहभस्मयोगः—अयोभस्म
श्लक्ष्णपिष्टं मधुना सह योजितम् । मूत्रकृच्छ्रं निहन्त्याशु त्रिभिर्लेहैर्न संशयः
॥ १ ॥ अथ रसादियोगः—रसवलं यवक्षारं सितातकयुतं पिबेत् । मूत्र-
कृच्छ्राण्यशेषाणि हन्यन्ते पानतो जवात् ॥ १ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

पुरातना लोहितशालयश्च धन्वामिपं मुद्गरसः सिता च । तत्रं पयो गोश्च
दधि प्रभूतं पुराणकूष्माण्डफलं पटोलम् ॥ १ ॥ उर्वारुखर्जूरकनारिकेलं तण्डु-
लियं चाऽऽमलकं च सर्पिः । प्रतीरनीरं हिमवालुका च मित्रं नृणां स्यात्सति
मूत्रकृच्छ्रे ॥ २ ॥ मद्यं श्रमं निधुनयं गजवाजियानं सर्वं विरुद्धमशनं विष-
माशनं च । ताम्बूलमत्स्यलवणार्द्रकतैलभृष्टं पिण्याकहिङ्गुतिलसर्षपमूत्रवेगान् ।
माषान्करीरमतितीक्ष्णविदाहि रुक्षमम्लं प्रमुञ्चतु जनः सति मूत्रकृच्छ्रे ॥ ३ ॥

इति मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

अथ मूत्राघातनिदानं व्याख्यास्यामः ।

जायन्ते कुपितैर्दोषैर्मूत्राघातास्त्रयोदश । प्रायो मूत्रविधाताद्यैर्वातकुण्डलि-

कादयः ॥ १ ॥ तत्रादौ तेषां मध्ये क्रमेण वातकुण्डलिकामाह—रौक्ष्याद्वेग-
विधाताद्वा वायुर्बस्तौ सवेदनः । मूत्रमाविश्य चरति विगुणः कुण्डलीकृतः
॥ २ ॥ मूत्रमल्पाल्पमथवा सरुजं संप्रवर्तते । वातकुण्डलिकां तां तु व्याधिं
विद्यात्सुदारुणम् ॥ ३ ॥ अथाष्टीलामाह—आध्मापयन्बस्तिगुदं रुद्ध्वा
वायुश्चलोन्नताम् । कुर्यात्तीव्रार्तिमष्टीलां मूत्रमार्गनिरोधिनीम् ॥ ४ ॥ अथ
वातबस्तिमाह—वेगं विधारयेद्यस्तु मूत्रस्याकुशलो नरः । निरुणद्धि मुखं
तस्य बस्तेर्बस्तिगतोऽनिलः ॥ ५ ॥ मूत्रसङ्गो भवेत्तेन बस्तिकुक्षिरुजाकरः ।
वातबस्तिः स विज्ञेयो व्याधिः कृच्छ्रप्रसाधनः ॥ ६ ॥ अथ मूत्रातीतमाह-
चिरं धारयतो मूत्रं त्वरया न प्रवर्तते । मेहमानस्य मन्दं वा मूत्रातीतः स
उच्यते ॥ ७ ॥ अथ मूत्रजठरमाह—मूत्रस्य वेगोऽभिहते तदुदावर्तहेतुकः ।
अपानः कुपितो वायुरुदरं पूरयेद्भृशम् ॥ ८ ॥ नाभेरधस्तादाध्मानं जनयेत्ती-
व्रवेदनम् । तन्मूत्रजठरं विद्याद्गुदबस्तिनिरोधनम् ॥ ९ ॥ अथ मूत्रोत्सङ्ग-
माह—बस्तौ वाऽप्यथ वा नाले मणौ वा यस्य देहिनः । मूत्रं प्रवृत्तं सज्जेत
सरक्तं वा प्रवाहतः ॥ १० ॥ स्रवेच्छनैः शनैरल्पं सरुजं वाऽथ नीरुजम् ।
विगुणानिलजो व्याधिः स मूत्रोत्सङ्गसंज्ञितः ॥ ११ ॥ अथ मूत्रक्षयमाह—
रूक्षस्य क्लान्तदेहस्य बस्तिस्थौ पित्तमारुतौ । मूत्रक्षयं सरुग्दाहं जनयेतां तदाह्वयम्
॥ १२ ॥ अथ मूत्रग्रन्थिमाह—अन्तर्बस्तिमुखे वृत्तः स्थिरोऽल्पः सहसा
भवेत् । अश्मरीतुल्यरुग्ग्रन्थिः मूत्रग्रन्थिः स उच्यते ॥ १३ ॥ तन्त्रान्तरे उक्तं—
मूत्रं वातकफाहुष्टं बस्तिद्वारेषु दारुणम् । ग्रन्थिं कुर्यात्स कृच्छ्रेण सृजेन्मूत्रं
तदावृतम् ॥ १४ ॥ अथ मूत्रशुक्रमाह—मूत्रितस्य स्त्रियं यातो वायुना
शुक्रमुद्धतम् । स्थानाच्युतं मूत्रयतः प्राक्पश्चाद्वा प्रवर्तते । भस्मोदकप्रतीका-
शं मूत्रशुक्रं तदुच्यते ॥ १५ ॥ अथोष्णवातमाह—व्यायामाध्वातपैः
पित्तं बस्तिं प्राप्यानिलावृतम् । बस्तिं मेढू गुदं चैव प्रदहेत्स्त्रावयेदधः ॥ १६ ॥
मूत्रं हारिद्रमथवा सरक्तं रक्तमेव वा । कृच्छ्रात्पुनः पुनर्जन्तोरुष्णवातं वदन्ति
तम् ॥ १७ ॥ अथ मूत्रसादमाह—पित्तं कफो द्वावपि वा संहन्येतेऽनि-
लेन चेत् । कृच्छ्रान्मूत्रं तदा रक्तं पीतं श्वेतं घनं सृजेत् ॥ १८ ॥ सदाहं
रोचनाशङ्खचूर्णवर्णं भवेच्च तत् । शुष्कं समस्तवर्णं वा मूत्रसादं वदन्ति तम्
॥ १९ ॥ अथ विड्विधातमाह—रूक्षदुर्बलयोर्वातादुदावृत्तं शकृद्यदि ।
मूत्रस्रोतोऽनुपद्येत विड्विसृष्टं तदा नरः । विड्वगन्धं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्विड्विधा-
तं तमादिशेत् ॥ २० ॥ अथ बस्तिकुण्डलमाह—द्रुताध्वलङ्घनायासैर-
भिधातालपीडनात् । स्वस्थानाद्बस्तिरुद्वृत्तः स्थूलस्तिष्ठति गर्भवत् ॥ २१ ॥
शूलस्पन्दनदाहार्तो बिन्दुं बिन्दुं स्रवत्यपि । पीडितस्तु सृजेद्द्वारां संस्तम्भो-
द्वेष्टनार्तिमान् ॥ २२ ॥ बस्तिकुण्डलमाहुस्तं घोरं शङ्खविपोपमम् । पवनप्र-
बलं प्रायो दुर्निवारमबुद्धिभिः ॥ २३ ॥ तस्मिन्पित्तावृते दाहः शूलं मूत्रवि-

वर्णता । श्लेष्मणा गौरवं शोफः स्निग्धं मूत्रं घनं सितम् ॥ २४ ॥ श्लेष्मरुद्ध-
बिलो बस्तिः पित्तोदीर्णो न सिध्यति । अविभ्रान्तबिलः साध्यो न च यः
कुण्डलीकृतः । स्याद्वस्तौ कुण्डलीभूते तृणमोहः श्वास एव च ॥ २५ ॥ इति
मूत्राघातनिदानम् ।

अथ मूत्राघातचिकित्सा ।

स्नेहस्वेदोपपन्नस्य हितं स्नेहविरेचनम् । दद्यादुत्तरबस्तिं च मूत्राघाते सवे-
दने ॥ १ ॥ अथ नलादिकाथः—नलकुशकाशेक्षुशिफाकथितं प्रातः सु-
शीतलं ससितम् । पिबतः प्रयाति नियतं मूत्राघातः सवेदनः पुंसः ॥ १ ॥
अथ गोधावन्यादि—गोधावन्यामूलकथितं घृततैलगोरसोन्मिश्रम् ।
पीतं विरुद्धमचिराद्भिनत्ति मूत्रस्य संघातम् ॥ १ ॥ अथ शार्ङ्गधरात्—
वीरतरुवृक्षवृन्दा वासा सहचरद्वयम् । कुशद्वयं नलो गुन्द्रा वकपुष्पोऽग्निम-
न्थकः ॥ १ ॥ मूर्वा पापाणभेदश्च स्योनाको गोक्षुरस्तथा । अपामार्गश्च क-
मलं ब्राह्मी चेति गणो वरः ॥ २ ॥ वीरतर्वादिरित्येव शर्कराश्मरिक्कच्छहा ।
मूत्राघातं वातरोगान्नाशयेदखिलानपि ॥ ३ ॥ पिवेच्छिलाजतु काथे गणे वी-
रतरादिके । रसं दुरालभाया वा कषायं वासकस्य च ॥ ४ ॥ अथ दशमू-
लादिकाथः—दशमूलीशृतं पीत्वा सशिलाजतुशर्करम् । वातकुण्डलिका-
ष्टीलावातबस्तौ प्रमुच्यते ॥ १ ॥ अथ गोक्षुरादिकाथः—पीतो गोकण्ट-
ककाथः सशिलाजतुकौशिकः । मूत्रकृच्छ्रान्मूत्रशुक्रान्मूत्रोत्सङ्गाद्विमुच्यते
॥ १ ॥ अथ शिलाजतुयोगः—सशर्करं च ससितं लीढं सिद्धं शिला-
जतु । निहन्ति मूत्रजठरं मूत्रातीतं च देहिनः ॥ १ ॥ अथ त्रिकण्टकादि-
योगः—त्रिकण्टकैरण्डशतावरीभिः सिद्धं पयो वातमये च शूले । गुडग्रगाढं
सघृतं पयो वा रोमेपु कृच्छ्रादिषु शस्तमेतत् ॥ १ ॥ अथ निदिग्धिकादि-
योगः—निदिग्धिकायाः स्वरसं पिबेद्वा तक्रसंयुतम् । जले कुङ्कुमकल्कं वा
सक्षौद्रमुषितं निशि ॥ १ ॥ शृतशीतपयोन्नाशी चन्दनं तण्डुलाम्बुना ।
पिबेत्सशर्करां श्रेष्ठासुष्णवाते सशोणिते ॥ २ ॥ अथ शतावर्यादियोगः—
वरीगोक्षुरभूधान्त्रीमूलानां स्वरसं पलम् । मापमेकं यवक्षारं सौरं मापद्वयं
तथा ॥ १ ॥ द्विगुञ्जं टङ्कणं क्षारं सर्वमेकत्र मेलयेत् । पिबेत्तत्तु विनाशाय
मूत्राघाते सुदारुणे ॥ २ ॥ इति सारसंग्रहात् । स्त्रीणामतिप्रसङ्गेन शो-
णितं यस्य सिध्यते । मैथुनोपरमश्वास्य बृंहणीयो विधिर्मतः ॥ ताम्रचूडावसा
तैलं हितं चोत्तरबस्तिषु ॥ १ ॥ अथ स्वगुप्ताद्यं चूर्णम्—स्वगुप्ताफलमृद्धी-
काकृष्णेश्वुरसितारजः । समानमर्धभागानि क्षीरक्षौद्रघृतानि च ॥ १ ॥ सर्वं
सम्यग्विमर्द्याक्षमात्रां लीढ्वा पयः पिबेत् । हन्ति शुक्रक्षयोत्थांश्च दोषान्व-
न्ध्यासुतप्रदम् ॥ २ ॥ अथ क्षौद्रार्धभागघृतम्—क्षौद्रार्धभागः कर्तव्यो

भागः स्यात्क्षीरसर्पिपोः । शर्करायाश्च चूर्णं च द्राक्षाचूर्णं च तत्समम् ॥ १ ॥
 स्वयंगुसाफलं चैव तथैवेश्वरकस्य च । पिप्पलीनां तथा चूर्णं समभागं प्रदा-
 पयेत् ॥ २ ॥ तदेकस्थं मेलयित्वा खल्वेनोन्मथ्य च क्षणम् । तस्य पाणितलं
 चूर्णं लिहेत्क्षीरं ततः पिबेत् ॥ ३ ॥ एतत्सर्पिः प्रयुञ्जानः शुद्धदेहो नरः
 सदा । शुक्रदोषाञ्जयेत्सर्वानेवापि भृशदुर्जयान् ॥ जयेच्छोणितदोषांश्च वन्ध्या
 स्त्री गर्भमामुयात् ॥ ४ ॥ अथ धान्यगोक्षुराद्यं घृतम्—धान्यगोक्षुरक-
 काथकल्कसिद्धं घृतं हितम् । मूत्राघातेषु कृच्छ्रेषु शुक्रदोषे च दारुणे ॥ १ ॥
 अथ चित्रकाद्यं घृतम्—चित्रकं सारिवा चैव बला काला च सारिवा ।
 द्राक्षाविशालापिप्पल्यस्तथा च त्रिफला भवेत् ॥ १ ॥ तथैव मधुकं दद्याद्-
 द्यादामलकानि च । घृताढकं पचेदेतैः कल्कैरक्षसमन्वितैः ॥ २ ॥ क्षीरद्रोणे
 जलद्रोणे तत्सिद्धमवतारयेत् । शीतं परिशृतं चैव शर्कराप्रस्थसंयुतम् ॥ ३ ॥
 तुगाक्षीर्यां च तत्सर्वं मतिमान्परिमिश्रयेत् । ततो मितं पिबेत्काले यथादोषं
 यथाबलम् ॥ ४ ॥ मूत्रग्रन्थि मूत्रसादमुष्णवातमसृग्दरम् । विड्विधातं नि-
 हन्त्येतद्रस्त्रिकुण्डलिमप्यलम् ॥ ५ ॥ सर्पिरेतत्प्रयुञ्जाना स्त्री गर्भं लभतेऽ-
 चिरात् । अस्रदोषे योनिदोषे मूत्रदोषे तथैव च ॥ प्रयोक्तव्यमिदं सर्पिश्चि-
 त्रकाद्यं सदा बुधैः ॥ ६ ॥ अथ सदाभद्राद्यं चूर्णम्—सदाभद्राश्मभि-
 न्मूलं शतावर्याश्च चित्रकम् । रोहिणीकोकिलाक्षौ च क्रौञ्चस्थूलं त्रिकण्ट-
 कम् ॥ श्लक्ष्णपिष्टाः सुरापीता मूत्रघातप्रबन्धनाः ॥ १ ॥ अथोशीरादिचू-
 र्णम्—उशीरं वालकं पत्रं कुष्ठं धात्री च मौसली । एला हरेणुकं द्राक्षा कु-
 ङ्कुमं नागकेसरम् ॥ १ ॥ पद्मकेसरकन्दं च कर्पूरं चन्दनद्वयम् । व्योषं मधु-
 कलाजाश्च अश्वगन्धा शतावरी ॥ २ ॥ गोक्षुरं कर्कटाख्यं च जाती कङ्कोल-
 चोरकम् । एतानि समभागानि द्विगुणाऽमृतशर्करा ॥ ३ ॥ मत्स्यण्डिकाम-
 धुभ्यां च प्रातरेव बुभुक्षितः । क्षयं च रक्तपित्तं च पाददाहमसृग्दरम् ॥ ४ ॥
 मूत्राघातं मूत्रकृच्छ्रं रक्तस्रावं च नाशयेत् । अशीतिं वातजात्रोगान्विशेषा-
 न्मेहनुत्परम् ॥ ५ ॥ इत्युशीरादि । अश्मरीमूत्रकृच्छ्रेषु भेषजं यत्क्रिया च
 या । मूत्राघातेषु सर्वेषु कुर्यात्तत्सर्वमादरात् ॥ १ ॥ रसश्चन्द्रकलाख्यश्च कृ-
 च्छ्मो यः पुरेरितः । मूत्राघातेषु सर्वेषु स प्रयोज्यो विजानता ॥ २ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

पुरातना लोहितशालयश्च मांसानि धन्वप्रभवाणि मद्यम् । तक्रं पयो द-
 ध्यपि माषयूषः पुराणकूष्माण्डफलं पटोलम् ॥ १ ॥ उर्वारुखर्जूरकनारिकेल-
 तालद्रुमाणामपि मस्तकानि । यथामलं सर्वमिदं च मूत्राघातातुराणां हित-
 मादिशन्ति ॥ २ ॥ विरुद्धाशनसर्वाणि व्यायामं मार्गशीलनम् । रुक्षं वि-

दाहि विष्टम्भि व्यवायं वेगधारणम् । करीरं वमनं चापि मूत्रावाती विवर्जयेत् ॥ ३ ॥

इति मूत्रावातचिकित्सा ।

अथाश्मरीनिदानं व्याख्यास्यामः ।

वातपित्तकफैस्त्रिष्वतुर्थीं शुक्रजाऽपरा । प्रायः श्लेष्माश्रयाः सर्वा ह्यश्मर्यः स्युर्यमोपमाः ॥ १ ॥ अथ तत्संप्राप्तिमाह—विशोपयेद्वस्तिगतं सशुक्रं मूत्रं सपित्तं पवनः कफं वा । यदा तदाऽश्मर्युपजायते तु क्रमेण पित्तेष्विव रोचना गोः ॥ २ ॥ अथ तस्यामनेकदोषाश्रयत्वमाह—नैकदोषाश्रयाः सर्वास्त्वथाऽऽसां पूर्वलक्षणम् । बस्त्याध्मानं तथाऽऽसन्नदेशेषु परितोऽतिरुक् ॥ ३ ॥ मूत्रे च बस्तगन्धत्वं मूत्रकृच्छ्रं ज्वरोऽरुचिः ॥ अथ तासां सामान्यलक्षणमाह—सामान्यलिङ्गं रुद्धनाभिसीवनीबस्तिमूर्धसु । विशीर्णधारं मूत्रं स्यात्तया मार्गे निरोधिते ॥ ४ ॥ तद्व्यापायात्सुखं मेहेदच्छं गोमेदकोपमम् । तत्संक्षोभात्क्षते सास्त्रमायासाच्चातिरुग्भवेत् ॥ ५ ॥ अथ वातजामाह—तत्र वातामृशं चाऽऽतौ दन्तान्खादति वेपते । मृद्राति मेहनं नाभिं पीडयत्यनिशं क्रणन् ॥ ६ ॥ सानिलं मुञ्चति शकृन्मुहुर्महति बिन्दुशः । श्यावारुणाश्मरी चास्य स्याच्चिता कण्टकैरिव ॥ ७ ॥ अथ पित्तजामाह—पित्तेन दह्यते बस्तिः पच्यमान इवोष्मवान् । भङ्गातकास्थिसंस्थाना रक्तपीता तथाऽश्मरी ॥ ८ ॥ अथ श्लेष्मजामाह—बस्तिनिस्तुद्यत इव श्लेष्मणा शीतलो गुरुः । अश्मरी महती श्लक्ष्णा मधुवर्णाऽथ वा सिता ॥ ९ ॥ एता भवन्ति बालानां तेषामेव च भूयसा । आश्रयोपचयात्पद्माद्गुहणाहरणे सुखाः ॥ १० ॥ अथ शुक्राश्मरीमाह—शुक्राश्मरी तु महतां जायते शुक्रधारणात् । स्थानाच्युतममुक्तं हि मुष्कयोरन्तरेऽनिलः । शोषयत्युपसंगृह्य शुक्रं तच्छुक्रजाश्मरी ॥ ११ ॥ अथ तल्लक्षणमाह—बस्तिरुद्धात्रकृच्छ्रत्वमुष्कश्चयथुकारिणी । तस्यामुत्पन्नमात्रायां शुक्रमेति विलीयते ॥ १२ ॥ अथ शर्करालक्षणमाह—पीडिते त्वक्काशोऽस्मिन्नश्मर्येव च शर्करा । अणुशो वायुना भिन्ना सा तस्मिन्ननुलोमगे ॥ १३ ॥ निरेति सह मूत्रेण प्रतिलोमे विबध्यते । मूत्रस्रोतःश्रिता सा तु सक्ता कुर्यादुपद्रवान् ॥ १४ ॥ अथ तानेवोपद्रवानाह—दौर्बल्यं सदनं काश्यं कुक्षिशूलमथारुचिः । पाण्डुत्वमुष्णवातं च तृष्णा हृत्पीडनं वमिः ॥ १५ ॥ अथ तस्या असाध्यत्वमाह—प्रज्ञानाभिवृषणं बद्धमूत्रं रुजावहम् । अश्मरी क्षपयत्याशु सिकता शर्करान्विता ॥ १६ ॥ अप्सु स्वच्छास्वपि तथा निषिक्तासु घटेऽथ वा । कालान्तरेण पङ्कः स्यादश्मरीह भवेत्तथा ॥ १७ ॥ इत्यश्मरीनिदानम् ।

अथ अश्मरीचिकित्सा ।

आदौ शूलः कुक्षिदेशे कटौ स्यात्पश्चाद्गोघो जायते मूत्रमुष्णम् । एतैल्लिङ्गै-
रश्मरीरोगचिह्नं ज्ञात्वा कुर्यान्नेपजाद्यैश्चिकित्साम् ॥ १ ॥ अथ वाताश्मरी-
वाताश्मरीपूर्वरूपे स्नेहपानं प्रशस्यते ॥ १ ॥ अथ शुण्ठ्यादिः काथः—
शुण्ठयुग्मिमन्थपापाणभिच्छिद्रुवरुणक्षुरैः । अभयारग्वधफलैः काथं कृत्वा विच-
क्षणः ॥ १ ॥ रामठक्षारलवणचूर्णं दत्त्वा पिबेन्नरः । वाताश्मरीं हन्ति कृच्छ्रं
मान्द्यमग्रेष्व तद्रुजः । कटयूरुगुदमेढस्थं वङ्गक्षणस्थं च मारुतम् ॥ २ ॥ अथ
वरुणकाथः—वरुणस्य त्वचं श्रेष्ठां शुण्ठीगोक्षुरसंयुताम् । काथयित्वा शृतं
तस्य यवक्षारगुडान्वितम् । पीत्वा वाताश्मरीं हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम्
॥ १ ॥ अथ वीरतर्वादिः—वीरतर्वादिकः काथः पूर्वोक्तो वातजाश्मरीम् ।
सद्यो हन्ति यवक्षारगुडयुक्तो न संशयः ॥ १ ॥ क्षारान्यवागूं पेयांश्च कपायाणि
पयांसि च । भोजनार्थं प्रयोज्यानि वाताश्मरीजुषां नृणाम् ॥ २ ॥ अथ
पित्ताश्मरी—पीत्वा पापाणभित्काथं सशिलाजतुशर्करम् । पित्ताश्मरीं नि-
हन्त्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ १ ॥ अथ कफाश्मरी—काथो निपीतः
सक्षारः शिशुत्वग्वरुणत्वचोः । कफजाश्मरीं हन्ति शक्राशनिरिव द्रुमम्
॥ १ ॥ अथ शुक्राश्मरी—शुक्राश्मर्यां तु सामान्यो विधिरश्मरिनाशनः
॥ १ ॥ अथ कृष्णामण्डरसः—यवक्षारगुडोन्मिश्रं पिबेत्पुष्पफलोद्भवम् ।
रसं मूत्रविबन्धघ्नं शुक्राश्मरिविनाशनम् ॥ १ ॥ अथ शतावर्यादिः—
शतावरीमूलरसो गव्येन पयसा समः । पीतो निपातयत्याशु ह्यश्मरीं चिरजा-
मपि ॥ १ ॥ अथ कुटजादियोगः—पिबतः कुटजं दध्ना पथ्यमन्नं च खा-
दतः । निपतत्यचिरादस्य निश्चितं मेढूशर्करा ॥ १ ॥ अथ कुटजकल्कः—
अपि च कुटजमूलं धेनुदध्यम्बुपिष्टं पितुमितमवलीढं पातयत्यश्मरीकाम् ॥ १ ॥
अथैरण्डादिकल्कः । गन्धर्वहस्तबृहतीग्याघ्रीगोक्षुरकेक्षुरात् । मूलकल्कं
पिबेद्दध्ना मधुरेणाश्मभेदनः ॥ १ ॥ अथ पाषाणभेदादिकाथः—पाषाण-
भिद्रुणगोक्षुरकोरुवृकक्षुद्राद्वयक्षुरकमूलकृतः कपायः । दध्ना युतो जयति
मूत्रविबन्धशुक्रमुग्राश्मरीमपि च शर्करया समेताम् ॥ १ ॥ अथैला-
दि—एलोपकुल्यामधुकाश्मभेदकौन्तीश्वदंष्ट्रावृषकोरुवृकैः । शृतं पिबेदश्म-
जतुप्रगाढं सशर्करं साश्मरिमूत्रकृच्छ्रे ॥ १ ॥ अथ शिशुमूलादिः—काथश्च
शिशुमूलोत्थः कटुष्णोऽश्मरिपातनः । क्षीरान्नभुग्बर्हिशिखामूलं वा तण्डुला-
म्बुना ॥ १ ॥ अथ शिलाजत्वादि—अश्मर्यां चाश्मरीकृच्छ्रे शिलाजतु
समाक्षिकम् । यवक्षारं गोक्षुरं च खादेद्वा चाश्मरीहरम् ॥ १ ॥ अथ त्रपु-
सीबीजादि—त्रपुसीबीजं पयसा पीत्वा वा नारिकेरजं कुसुमम् । दृढमूत्र-
शर्करावान्भवति सुखी कतिपयैर्दिवसैः ॥ १ ॥ अथ राजमार्तण्डाद्रोपाल-

कर्कट्यादि—गोपालककटीमूलं पिष्टं पर्युषिताम्भसा । पीयमानं त्रिरात्रेण पातयत्यश्मरीं हठात् ॥ १ ॥ अथ वृन्दात् शृङ्गबेरादियोगः—शृङ्गबेरय-वक्षारपथ्याकालीयकान्वितम् । आजं दधि भिनत्त्युग्रामश्मरीमाशु पातयेत् ॥ १ ॥ अथार्कपुष्पीकल्कः गव्येन पिष्टा पयसाऽर्कपुष्पी निपीयमानाऽनु-दिनं प्रभाते । विदार्य वीर्येण निजेन तीव्रामप्यश्मरीं या कुरुते सदाहाम् ॥ १ ॥ अथ त्रिकण्टकादिचूर्णम्—त्रिकण्टकस्य बीजानां चूर्णं माक्षिक-संयुतम् । अविक्षीरेण सप्ताहं पिबेदश्मरिभेदनम् ॥ १ ॥ अथ हरिद्रादि-योगः—यः पिबेद्रजनीं सम्यक्सगुडां तुपवारिणा । तस्याऽऽशु चिररूढाऽपि यात्यस्तं मेदृशर्करा ॥ १ ॥ अथ तिलादिक्षारयोगः—तिलापामार्गकदली-पलाशयवसंभवः । क्षारः पेयोऽविमूत्रेण शर्करास्वश्मरीषु च ॥ १ ॥ अथ तिलक्षारः—क्षारो निपीतस्तिलनालजातः समाक्षिकः क्षीरयुतस्त्रिरात्रम् । हन्यत्यश्मरीं सिन्धुविमिश्रितं वा निपीयमानं रुचकं प्रयत्नात् ॥ १ ॥ अथ वरुणादिघृतम्—वरुणस्य तुलां क्षुण्णां जलद्रोणे विपाचयेत् । पादशेषं परिस्त्राव्य घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १ ॥ वारुणी कदली बिल्वं तृणजं पञ्चमूलकम् । अमृता त्वश्मजं देयं बीजं च त्रपुसस्य च ॥ २ ॥ शत-पर्वा तिलक्षारः पलाशक्षार एव च । यूथिकायाश्च मूलानि कार्पिकाणि समा-वपेत् ॥ ३ ॥ अस्य मात्रां पिबेजन्तुर्देशकालाद्यपेक्षया । जीर्णे चानुपिबेत्पूर्व-मजीर्णेन तु मस्तुना । अश्मरीं शर्करां चैव मूत्रकृच्छ्रं च नाशयेत् ॥ ४ ॥ इति वरुणघृतम् । अथ पाषाणभेदपाकः—अश्मभेदात्प्रस्थमेकं चूर्णितं वस्त्रगालितम् । गव्ये दुग्धाढके क्षिप्त्वा पाचयेन्मृदुवह्निना ॥ १ ॥ दर्व्यां संमर्दयेत्तावद्यावद्धनतरं भवेत् । एला लवङ्गमगधा यष्टी मध्वमृताऽभया ॥ २ ॥ कौन्ती श्वदंष्ट्रा वृषकं शरपुङ्खा पुनर्नवा । यावश्शूको निलम्बी च मांसी सप्ता-ङ्गुलात्पलम् ॥ ३ ॥ वङ्गं लोहं तथाऽभ्रं च कर्पूरं पर्पटं सटी । पत्रेभकेसरं त्वक्च संशुद्धं च शिलाजतु ॥ ४ ॥ पृथगर्धपलं चूर्णं चूर्णिता सितशर्करा । सार्धप्रस्थमिता ग्राह्या दुग्धे चै लेह्यतां नयेत् ॥ ५ ॥ सर्वं तन्निक्षिपेत्तत्र स्वाङ्गशीतलतां नयेत् मधुनः प्रस्थकं दद्यात्स्निग्धभाण्डे विनिक्षिपेत् ॥ ६ ॥ कर्षार्धं भक्षयेत्प्रातस्ती-क्ष्णं तैलादिकं त्यजेत् । पञ्चाश्मरीभेदनः स्यान्मूत्रकृच्छ्रं खुडं तथा ॥ ७ ॥ मूत्राघातान्प्रमेहांश्च नाशयेन्मधुमेहताम् । अधोगं रक्तपित्तं च बस्तिकुक्षिगदं तथा ॥ ८ ॥ तीव्राश्मरीपरीतानां विशेषेण हितं हि तत् । प्रथमात्रिणा विर-चितं च्यवनाय निवेदितम् ॥ ९ ॥

अथ रसाः—

तत्राऽऽदौ पाषाणवज्रकरसः—शुद्धसूतं त्रिधा गन्धं द्रावैः श्वेतपुन-नवैः । मर्दयित्वा दिनं खल्वे रुद्ध्वा तद्गूधरे पचेत् ॥ १ ॥ पाषाणभेदचूर्णं तु

समयुक्तं द्विमापकम् । भक्षयेदश्मरीं हन्ति रसः पापाणवज्रकः ॥ २ ॥ गो-
पालकर्कटीमूलकाथं तदनु पाययेत् ॥ ३ ॥ अथ त्रिविक्रमरसः—ताम्र-
भस्म त्वजाक्षीरे पाच्यं तुल्ये घृते पचेत् । तत्ताम्रं शुद्धसूतं च गन्धकं च
समं समम् ॥ १ ॥ निर्गुण्डयुत्थद्रवैर्मर्द्यं दिनं तद्गोलमाहरेत् । यामैकं वा-
लुकायत्रे पाच्यं योज्यं द्विगुञ्जकम् ॥ २ ॥ बीजपूरस्य मूलं तु सज्जलं चानु-
पाययेत् । रसस्त्रिविक्रमो नाम्ना सिकतां चाश्मरीं जयेत् ॥ ३ ॥

अथ पथ्यम्—

कुलित्था मुद्गगोधूमा जीर्णशालियवा हिताः । धन्वामिषं तण्डुलीयं जी-
र्णकूष्माण्डकं फलम् । आर्द्रकं यावशूकश्च पथ्यमश्मरिरोगिणाम् ॥ १ ॥

इत्यश्मरीचिकित्सा ।

अथातो मेहनिदानम् ।

आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि ग्राम्योदकानूपरसाः पयांसि । नवान्नपानं
गुडवैकृतं च प्रमेहहेतुः कफकृच्च सर्वम् ॥ १ ॥ तन्त्रान्तरे—मूत्राघाताः
प्रमेहाश्च शुक्रदोषास्तथैव च । मूत्रदोषाश्च ये वाऽपि बस्तौ चैव भवन्ति हि
॥ २ ॥ अथ संप्राप्तिमाह—मेदश्च मांसं च शरीरजं च क्लेदं कफो बस्ति-
गतः प्रदूष्य । करोति मेहान्समुदीर्णमुष्णैस्तान्येव पित्तं परिदूष्य चापि ॥ ३ ॥
क्षीणेषु दोषेष्ववकृष्य बस्तौ धातून्प्रमेहान्कुरुतेऽनिलश्च ॥ ४ ॥ अथ क्रमेण
साध्यासाध्यत्वमाह—साध्याः कफोत्था दश पित्तजाः पड्याप्या न सा-
ध्याः पवनाच्चतुष्काः । समक्रियत्वाद्विषमक्रियत्वान्महात्ययत्वाच्च यथाक्रमं ते
॥ ५ ॥ तन्त्रान्तरे—ज्वरे तुल्यर्तुदोषत्वं प्रमेहे तुल्यदूष्यता । रक्तगुल्मे
पुराणत्वं सुखसाध्यत्वहेतवः ॥ ६ ॥ तन्त्रान्तरे वातचतुष्टयस्य साध्यत्वमु-
क्तम्—या वातमेहान्प्रति पूर्वमुक्ता वातोल्बणानां विहिता क्रिया सा । वा-
युर्हि मेहेष्वतिकर्षितेषु करोति मेहान्प्रति नास्ति चिन्ता ॥ ७ ॥ अथ प्र-
मेहे दोषदूष्यवर्गमाह—कफः सपित्तः पवनश्च दोषो मेदोऽस्त्रशुक्राम्बुव-
सालसीकाः । मज्जा रसौजः पिशितं च दूष्यं प्रमेहिणां विंशतिरेव मेहाः
॥ ८ ॥ अथ तन्त्रान्तरे दूष्यसंग्रह उक्तः—वसा मांसं शरीरस्य क्लेदः
शुक्रं च शोणितम् । मेदो मज्जालसीकौजः प्रमेहे दूष्यसंग्रहः ॥ ९ ॥ अथ
पूर्वरूपमाह—दन्तादीनां मलाढ्यत्वं प्राग्रूपं पाणिपादयोः । दाहश्चिक्कणता
देहे तृद स्वाद्वायं च जायते ॥ १० ॥ अथ सामान्यलक्षणमाह—सा-
मान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताबिलमूत्रता । अथ कारणभेदात्कार्यभेदमाह—
दोषदूष्याविशेषेऽपि तत्संयोगविशेषतः ॥ ११ ॥ मूत्रवर्णादिभेदेन भेदो मे-
हेषु कल्प्यते ॥ सम्यग्भेदं परीक्ष्याऽऽदौ क्रिया कार्या भिषग्वरैः ॥ १२ ॥

दकमेहस्तथा चक्षुः सान्द्रमेहः सुराभिधः । पिष्टप्रमेहः शुक्राख्यः सिकता
शीतकः शनैः ॥ १३ ॥ लालामेहस्तथा क्षारो नीलमेहोऽथ कालकः । हारि-
द्रमेहमाजिष्ठौ रक्तमेहस्तथाऽपरः ॥ १४ ॥ षोडशोऽथ वसामेहो मज्जामेहश्च
कीर्तितः । क्षौद्रमेहस्तथा हस्ती मेहानां विंशतिः क्रमात् ॥ १५ ॥ उदकमे-
हादयो दश कफजाः—तत्रोदकमेहमाह—अच्छं बहु सितं शीतं निर्गन्ध-
सुदकोपमम् । मेहत्युदकमेहेन किञ्चिदाविलपिच्छिलम् ॥ १६ ॥ अथेशुमे-
हमाह—इक्षो रसमिवात्यर्थं मधुरं चेशुमेहतः ॥ अथ सान्द्रमेहमाह—
सान्द्री भवेत्पर्युषितं सान्द्रमेहेन मेहति ॥ १७ ॥ अथ सुरामेहमाह—
सुरामेही सुरातुल्यमुपर्यच्छमधो घनम् ॥ अथ पिष्टमेहमाह—संहृष्टोमा
पिष्टेन पिष्टवद्बहुलं सितम् ॥ १८ ॥ अथ शुक्रमेहमाह—शुक्राभं शुक्र-
मिश्रं वा शुक्रमेही प्रमेहति ॥ अथ सिकतामेहमाह—मूत्राणून्सिकता-
मेही सिकतारूपिणो मलान् ॥ १९ ॥ अथ शीतमेहमाह—शीतमेही सु-
बहुशो मधुरं बहुशीतलम् ॥ अथ शनैर्मेहमाह—शनैः शनैः शनैर्मेही
मन्दं मन्दं प्रमेहति ॥ २० ॥ अथ लालाप्रमेहमाह—लालातन्तुयुतं मूत्रं
लालामेहेन पिच्छिलम् ॥ १ ॥ एवं दश श्लेष्मजाः ॥ अथ षट् पैत्तिका-
नाह—तत्र क्षारमेहमाह—गन्धवर्णरसस्पर्शैः क्षारेण क्षारतोयवत् ॥ २१ ॥
अथ नीलकालमेहावाह—नीलमेहेन नीलाभं कालमेही मपीनिभम् ॥
अथ हारिद्रमेहमाह—हारिद्रमेही कटुकं हरिद्रासंनिभं दहत् ॥ २२ ॥
अथ माजिष्ठमेहमाह—विषं माजिष्ठमेहेन मजिष्ठासलिलोपमम् ॥ अथ
रक्तमेहमाह—विषमुष्णं सलवणं रक्ताभं रक्तमेहतः ॥ २३ ॥ एवं षट् पै-
त्तिकाः । अथ चतुरो वातजानाह । तत्राऽऽदौ वसामेहमाह—वसा-
मेही वसामिश्रं वसाभं मूत्रयेन्मुहुः ॥ अथ मज्जामेहमाह—मज्जाभं मज्ज-
मिश्रं वा मज्जमेही मुहुर्मुहुः ॥ २४ ॥ अथ क्षौद्रमेहमाह—कपायं मधुरं
रूक्षं क्षौद्रमेहेन मेहति ॥ अथ हस्तिमेहमाह—हस्ती मत्त इवाजस्रं मूत्रं
वेगविवर्जितम् । सलसीकं विबद्धं च हस्तिमेही प्रमेहति ॥ २५ ॥ उपद्र-
वानाह—अविपाकोऽरुचिश्छर्दिर्निद्रा कासः सपीनसः । उपद्रवाः प्रजायन्ते
मेहानां कफजन्मनाम् ॥ २६ ॥ पित्तदोषोपद्रवानाह—बस्तिमेहनयो-
स्तोदो मुष्कावदरणं ज्वरः । दाहस्तृष्णा कृमो मूर्छा विद्भेदः पित्तजन्मनाम्
॥ २७ ॥ अथ वातजानाह—वातजानामुदावर्तः कण्ठहृद्ब्रह्मलोलताः । शू-
लमुन्निद्रता शोषः कासः श्वासश्च जायते ॥ २८ ॥ अथासाध्यतामाह—
यथोक्तोपद्रवाविष्टमतिप्रसृतमेव च । पिटिकापीडितं गाढं प्रमेहो हन्ति मा-
नवम् ॥ २९ ॥ मूर्छाछर्दिज्वरश्चासकासवीसर्पणैरवैः । उपद्रवैरुपेतो यः प्र-
मेही दुष्प्रतिक्रियः ॥ ३० ॥ नराणां दृश्यते मेहः स्त्रीणां किं तु न दृश्यते ।
अन्नपानविशेषेण दोषदूष्यक्रमेण च ॥ ३१ ॥ रजः प्रवर्तते यस्मान्मासि

मासि विशोधयेत् । सर्वान्धातृश्च दोषांश्च न प्रमेहन्यतः स्त्रियः ॥ ३२ ॥
जातः प्रमेही मधुमेहिना वा साध्यो न रोगः सहि बीजदोषात् । ये चापि
केचित्कुलजा विकारा भवन्ति तांश्च प्रवदन्यसाध्यान् ॥ ३३ ॥ मधुमेहिनं
प्रदर्शयन्नाह—सर्व एव प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकारिणः । मधुमेहत्वमा-
यान्ति तदाऽसाध्या भवन्ति हि ॥ ३४ ॥ अथ तन्त्रान्तरे—गुल्मी च म-
धुमेही च राजयक्ष्मी च यो नरः । अचिकित्स्या भवन्त्येते बलमांसपरिक्ष-
यात् ॥ ३५ ॥ अथ धातुक्षयावरणाभ्यां कुपितवातेन मधुसंभवमाह—
मधुमेहो मधुसमं जायते स किल द्विधा । कुद्धे धातुक्षयाद्वायौ दोषावृतप-
थेऽथवा ॥ ३६ ॥ आवृतो दोषलिङ्गानि सोऽनिमित्तं प्रदर्शयन् । क्षीणः क्ष-
णात्क्षणात्पूर्णो भजते कृच्छ्रसाध्यताम् ॥ ३७ ॥ अथ मधुमेहशब्दप्रवृत्तौ
निमित्तमाह—मधुरं यच्च मेहेषु प्रायो मध्विव मेहति । सर्वेऽपि मधुमे-
हाख्या माधुर्याच्च तनोरतः ॥ ३८ ॥ प्रमेहिणो यदा मूत्रमनाविलमपिच्छि-
लम् । विशदं तिक्तकटुकं तदाऽऽरोग्यं प्रचक्षते ॥ ३९ ॥ इति प्रमेहनिदा-
नम् । अथ प्रमेहपिटिकाः—प्रमेहिणां प्रजायन्ते पिटिकाः सर्वसंधिषु ।
शराविका कच्छपिका जालिनी विनतालजी । मसूरिका सर्षपिका पुत्रिणी च
विदारिका ॥ १ ॥ विद्रधिश्चेति पिटिकाः प्रमेहोपेक्षया दश । संधिमर्मसु
जायन्ते मांसलेषु च धामसु ॥ २ ॥ अथ शराविकामाह—अन्तोन्नता च
तद्रूपा निम्नमध्या शराविका ॥ अथ सर्षपिकामाह—गौरसर्षपसंस्थाना
तत्प्रमाणा च सर्षपी ॥ ३ ॥ अथ कच्छपिकामाह—सदाहा कूर्मसंस्थाना
ज्ञेया कच्छपिका बुधैः ॥ अथ जालिनीमाह—जालिनी तीव्रदाहा तु मां-
सजालसमावृता । अवगाढरूजोत्केदा पृष्ठे वाऽप्युदरेऽपि वा ॥ ४ ॥ अथ
विनतामाह—महती पिटिका नीला सा बुधैर्विनता स्मृता । महत्यल्पचिता
ज्ञेया पिटिका साऽपि पुत्रिणी ॥ ५ ॥ अथ मसूरिकामाह—मसूरदलसं-
स्थाना विज्ञेया तु मसूरिका ॥ अथालजीमाह—रक्तासिता स्फोटवती
विज्ञेया त्वलजी बुधैः ॥ ६ ॥ अथ विदारीमाह—विदारी कन्दवद्भृता क-
ठिना च विदारिका ॥ अथ विद्रधिकामाह—विद्रधेर्लक्षणैर्युक्ता ज्ञेया वि-
द्रधिका तु सा ॥ ७ ॥ अथ पिटिकानामारम्भकारणमाह—ये यन्मया
स्मृता मेहास्तेषामेतास्तु तन्मयाः । विना प्रमेहमप्येता जायन्ते दुष्टमेदसः
॥ ८ ॥ तावच्चैता न लक्ष्यन्ते यावद्वस्तुपरिग्रहः । गुदे हृदि शिरस्यंसे पृष्ठे
मर्मसु चोत्थिताः । सोपद्रवा दुर्बलाग्नेः पिटिकाः परिवर्जयेत् ॥ ९ ॥ चर-
केण पिटिकानामुपद्रवा उक्ताः—तृट्कासमांससंकोचमोहहिक्कामद्वजराः ।
विसर्पो मर्मसंरोधः पिटिकानामुपद्रवाः ॥ १ ॥ प्रमेहनिवृत्तिलक्षणं सु-
श्रुतेऽपि पठितम्—प्रमेहिणां यदा मूत्रमनाविलमपिच्छिलम् । विशदं कटु-
तिक्तं च तदाऽऽरोग्यं प्रचक्षते ॥ १ ॥ हारिद्रवर्णं रुधिरं च मूत्रं विना प्रमे-

हस्य तु पूर्वरूपैः । यो मेहयेत्तं न वदेत्प्रमेहं रक्तस्य पित्तस्य स हि प्रकोपः
॥ २ ॥ इति प्रमेहनिदानम् ।

अथ प्रमेहचिकित्सा ।

दश षट् चापि चत्वारः कफपित्तसमीरजाः । साध्या याप्या असाध्यास्ते
प्रमेहाः क्रमशो नृणाम् ॥ १ ॥ अथ कफमेहचिकित्सा—हरीतकीकदफ-
लमुस्तलोघ्राः पाठाविडङ्गार्जुनधन्वयासाः । उभे हरिद्रे तगरं विडङ्गं कदम्ब-
शालार्जुनदीप्यकाश्च ॥ १ ॥ दार्वा विडङ्गं खदिरो धवश्च सुराह्णकुष्ठार्जुनच-
न्दनानि । दाव्यंमिमन्थौ त्रिफला सपाठा पाठा च मूर्वा च तथाश्वदंष्ट्रा ॥ २ ॥
यवान्युशीराण्यभया गुडूचीजम्बूशिवाचित्रकसप्तपर्णाः । पादैः कपायाः कफ-
मेहिनां ते दशोपदिष्टा मधुसंप्रयुक्ताः ॥ ३ ॥ जलप्रमेहेक्षुरसप्रमेहे सान्द्र-
प्रमेहे च सुराप्रमेहे । पिष्टप्रमेहेऽपि च शुक्रमेहे क्रमादमी स्युः सिकताप्र-
मेहे । शीतप्रमेहे च शनैःप्रमेहे लालाप्रमेहेऽपि सुखाय तेषाम् ॥ ४ ॥ इति
कदम्बात् । अथ सुश्रुतात्—तत्रोदकमेहिनां पारिजातकषायं पाययेत् ।
इक्षुमेहिनां निम्बकषायम् । सान्द्रमेहिनां सप्तपर्णकषायम् । सुरामेहिनां
शाल्मलीकषायम् । पिष्टमेहिनां हरिद्राद्विकषायम् । शुक्रमेहिनां दूर्वाशैवल-
प्लवकारञ्जकसेरुकषायम्, ककुभचन्दनकषायं वा । सिकतामेहिनां निम्ब-
कषायम् । शीतमेहिनां पाठागोक्षुरकषायम् । शनैर्मेहिनां त्रिफलागुडूचीक-
षायम् । लालामेहिनां त्रिफलारग्वधकषायं पाययेत् ॥ १ ॥ इति कफमेह-
चिकित्सा । अथ पित्तमेहचिकित्सा—उशीरलोघ्रासुरचन्दनानामुशीरमु-
स्तामलकाभयानाम् । पटोलनिम्बामलकामृतानां मुस्ताभयाम्भकवृक्षका-
णाम् ॥ १ ॥ लोघ्राम्बुकालीयकधातकीनां विश्वार्जुनानां मिशिसोत्पलानाम् । म-
ञ्जिष्ठहारिद्रकनीलक्षारमुष्णाख्यरक्ते क्रमशः कपायाः ॥ २ ॥ अथ सुश्रु-
तात्—मञ्जिष्ठमेहिनां मञ्जिष्ठाचन्दनकषायं पाययेत् । हारिद्रमेहिनां राज-
वृक्षकषायम् । नीलमेहिनां सालसारादिकषायमश्वत्थकषायं वा । क्षारमेहिनां
त्रिफलाकषायम् । कालमेहिनां न्यग्रोधादिकषायम् । शोणितमेहिनां गुडू-
चितिन्दुकास्थिकाश्मर्यखर्जूरकषायं मधुमिश्रं पाययेत् । इति पित्तमेहचि-
कित्सा । अथ वातमेहचिकित्सा—अग्निमन्थकषायं तु वसामेहे प्रयोज-
येत् । पाठाशिरीषदुःस्पर्शमूर्वाकिंशुकतिन्दुकैः ॥ १ ॥ कपित्थेन भिषक्कुर्या-
त्काथं हस्तिप्रमेहके । पूगारिमेदयोः काथः सक्षौद्रः क्षौद्रमेहिनाम् ॥ २ ॥
लिङ्गावह्निकषायेण पाठाकुटजरा मठम् । तिक्ताकुष्ठं च संचूर्ण्य सर्पिर्मेहे पि-
बेन्नरः ॥ ३ ॥ अथ सुश्रुतात्—अत ऊर्ध्वमसाध्येष्वपि योगान्यापनार्थं
वक्ष्यामः । तद्यथा—वसामेहिनामग्निमन्थकषायं शिंशपाकषायं वा । सर्पि-
र्मेहिनां कुष्ठकुटजपाठाहिङ्गुकटुरोहिणीकल्कं गुडूचीचित्रककषायेण पाययेत् ।

क्षौद्रमेहिनां खदिरकदरकमुककपायम् । हस्तिमेहिनां तिन्दुककपित्थशिरीष-
पलाशपाठामूर्वादुःस्पर्शकपायं मधुमिश्रम् । हस्त्यश्वशूकरखरोष्ट्रास्थिक्षारं
चेति । इति वातप्रमेहचिकित्सा ॥

अथ द्वंद्वजप्रमेहचिकित्सा ।

कम्पिलसप्तच्छदशालजानि बिभीतरोहीतककौटजानि । पुष्पाणि दध्मश्च
विचूर्णितानि क्षौद्रेण लिह्यात्कफपित्तमेहे ॥ १ ॥ हरीतकीकदफलमुस्तलोध्र-
कुचन्दनोशीरकृतः कपायः । क्षौद्रेण युक्तः कफवातमेहं निहन्ति पीतारजसा
च पीतः ॥ २ ॥ विडङ्गरजनीद्वंद्वखदिरोशीरपूराजः । काथः पीतः प्रगे हन्ति
मेहं पित्तानिलोद्भवम् ॥ ३ ॥ काथः खर्जूरकाशमर्यतिन्दुकास्थ्यमृताकृतः ।
सुहिमः पीतमात्रस्तु सक्षौद्रो रक्तमेहहा ॥ ४ ॥

अथ सामान्यप्रमेहचिकित्सा ।

अथ फलत्रिकादिः काथः—फलत्रिकं दारुनिशाविशालामुस्तं च नि-
ष्काथ्य निशांशकल्कम् । पिवेत्कपायं मधुसंप्रयुक्तं सर्वप्रमेहेषु चिरोत्थितेषु
॥ १ ॥ अथ विडङ्गादिकाथः—विडङ्गरजनीयष्टीनागरागोक्षुरैः कृतः ।
कषायो मधुना हन्ति प्रमेहान्दुस्तरानपि ॥ १ ॥ अथ पलाशपुष्पाणां
काथः—पलाशतरुपुष्पाणां काथः शर्करया युतः । निपेवितः प्रमेहाणि
हन्ति नानाविधान्यपि ॥ १ ॥ अथ वृन्दात्रिफलादिकाथः—त्रिफलादा-
रुदार्व्येन्दुकाथः क्षौद्रेण मेहहा । कुटजासनदार्व्येन्दुफलत्रयभवोऽथवा ॥ १ ॥
अथ वृन्दाहुडूच्यादिः—गुडूच्याः स्वरसः पेयो मधुना सर्वमेहजित् । नि-
शाकल्कयुतो धात्रीरसो वा माक्षिकान्वितः ॥ १ ॥ अथ भूधात्र्यादिः—
भूधात्री च त्रिगद्याणं मरीचानां च विंशतिः । असाध्यान्साधयेन्मेहान्सस-
रात्रान्न संशयः ॥ १ ॥ अथ कतकबीजयोगः—कर्पप्रमाणं कतकस्य बीजं
तक्रेण पिष्ट्वा सह माक्षिकेण । प्रमेहजालं विनिहन्ति सद्यो रामो यथा राव-
णमाहवे तु ॥ १ ॥ अथाऽऽकुल्यादियोगः—आकुलीमुकुलं धात्रीहरि-
द्रामधुना लिहेत् । विंशतिं च प्रमेहाणां हन्ति सत्यं न संशयः ॥ १ ॥ अथ
निशात्रिफलायोगः—द्विनिशात्रिफलायुक्तं रात्रौ पर्युपितं जलम् । प्रभाते
मधुना पीतं मेहमूलं निकृन्तति ॥ १ ॥ अथ त्रिफलाकल्कः—सजलं
त्रिफलाकल्कमातपे धारयेद्भयम् । तद्भाण्डे दोलिकायत्रे चणकान्मुष्टिमात्र-
कान् ॥ १ ॥ अहोरात्रोपितान्वादेद्वर्धमानं दिने दिने । असाध्यं साधयेन्मेहं
सिद्धयोग उदाहृतः ॥ १ ॥ अथ सालमुस्तयोगः—सालमुस्तककम्पिल-
कल्कमक्षसमं पिवेत् । धात्रीरसेन सक्षौद्रं सर्वमेहहरं परम् ॥ १ ॥ अथ
त्रिफलादिचूर्णम्—मधुना त्रिफलाचूर्णमथ वाऽश्मजतूद्भवम् । लोहजं

वाऽभयोत्थं वा लिह्यान्मेहनितृत्तये ॥ १ ॥ अथ न्यग्रोधादिचूर्णम्—न्य-
ग्रोधोदुम्बराश्वत्थस्योनाकारगवधासनम् । आम्रं कपित्थं जम्बुश्च प्रियालं क-
कुभं धवम् ॥ १ ॥ मधूकं मधुकं लोध्रं वरुणं पारिभद्रकम् । पटोलं मेप-
शृङ्गी च दन्ती चित्रकपाटली ॥ २ ॥ करञ्जं त्रिफला शक्रभल्लातकफलानि
च । एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ३ ॥ न्यग्रोधाद्यमिदं चूर्णं
मधुना सह लेहयेत् । फलत्रयरसं चानु पिबेन्मूत्रं विशुध्यति ॥ ४ ॥ एतेन
विंशतिर्मेहा सूत्रकृच्छ्राणि यानि च । वेगेन प्रशमं यान्ति पिटिका न च
जायते ॥ ५ ॥ अथ कर्कटीबीजादि—कर्कटीबीजसिन्धूत्थत्रिफलासमभा-
गिकम् । पीतमुष्णाम्भसा चूर्णं मूत्ररोधं निवारयेत् ॥ १ ॥ अथ गोक्षुरा-
दिगुटी—त्रिकटुत्रिफलतुल्यं गुग्गुलुं च समांशकम् । गोक्षुरकाथसंयुक्तां
गुटिकां कारयेद्बुधः ॥ १ ॥ देशकालबलापेक्षी भक्षयेच्चानुलोमिकाम् । न
चात्र परिहारोऽस्ति कर्म कुर्याद्यथेप्सितम् ॥ २ ॥ प्रमेहान्वातरोगांश्च वात-
शोणितमेव च । सूत्रावातं मूत्रदोषं प्रदरं चानु नाशयेत् ॥ ३ ॥ इति गो-
क्षुरगुग्गुलुगुटी । अथ चन्द्रप्रभागुटी योगरत्नावल्याः—वेल्व्योपफलत्रिकं
त्रिलवणं द्विक्षारचव्यानलश्यामापिप्पलिमूलमुस्तकसटीमाक्षीकधातुत्वचः ।
षड्ग्रन्थामरदारुवारणकणाभूनिम्बदन्तीनिशापत्रैलातिविपापिचुप्रतिमिता
लोहस्य कर्षाष्टकम् ॥ १ ॥ त्वक्क्षीरी पलिका पुरादृश पलान्यष्टौ शिलाज-
न्मनो मानात्कर्पसमा कृतेति गुटिका संयोज्य सर्वं भिषक् । तत्रैव प्रतिवा-
सरं सह घृतक्षौद्रेण लिह्यादिमां तक्रं मस्तु च गोघृतं मधुरसं पश्चात्पिबेन्मा-
त्रया ॥ २ ॥ अर्शोसि प्रदरं ज्वरं च विषमं नाडीव्रणानशमरीकृच्छ्रं विद्रधि-
मग्निमान्द्यमुदरं पाण्ड्यामयं कामलाम् । यक्ष्माणं सभगंदरं सपिटिकां गुल्म-
प्रमेहारुचरीरेतोदोषमुरक्षतं कफमरुत्पित्तातिमुग्रां जयेत् ॥ ३ ॥ वृद्धं संजन-
येद्युवानमसमोजस्कं बलं वर्धयेदेतस्यां न निपिद्धमन्नमसकृन्नाध्वागमो मैथु-
नम् । विख्याता गुटिकेयमञ्चिततरा चन्द्रप्रभा नामतः सान्द्रानन्दकरी त-
नोति च रुचिं चन्द्रेण तुल्यां तनौ ॥ ४ ॥ इति चन्द्रप्रभा गुटी । अथ यो-
गरत्नावल्याः पूगपाकः—हेमाम्भोधरचन्दनं त्रिकटुकं धात्री प्रियालाः
कटुर्लज्जालुत्रिसुगन्धजीरकयुगं शृङ्गाटकं वंशजम् । जातीकोशलवङ्गधान्यब-
हुलाः प्रलेकमक्षोन्मिताः पूगस्याष्टपलं विचूर्ण्य च पयःप्रस्थत्रये संपचेत्
॥ १ ॥ गोसर्पिः कुडवं सितार्धकतुलाधात्रीवरीद्व्यञ्जली मन्दाग्नौ विपचेद्भि-
षक्शुभदिने सुस्त्रिगधभाण्डे क्षिपेत् । तं खादेत्तु यथाग्नि वासरमुखे मेहांश्च
जीर्णज्वरं पित्तं साम्लमसृक्कुतिं च गुदजान्वक्त्राक्षिनासासु च ॥ २ ॥ म-
न्दाग्निं च विजित्य पुष्टिमतुलां कुर्याच्च शुक्रप्रदो योगो गर्भकरः परं गदहरः
स्त्रीणामसृग्दोषजित् ॥ ३ ॥ अथाश्वगन्धापाकः—पलान्यष्टावश्वगन्धां
विपाच्य गोदुग्धे षडशेरके मन्दवह्नौ । दर्वीलेपो यावदास्ते सुपक्वश्चातुर्जातं

क्षिप्य कर्पप्रमाणम् ॥ १ ॥ जातीजातं केशरं वंशसत्त्वं मोचं मांसी चन्दनं
 कृष्णसारम् । पत्रीकृष्णापिप्पलीमूलदेवपुष्पं कङ्कोलालिकाक्षोटसारम् ॥ २ ॥
 भल्लीबीजं शृङ्गटं गोक्षुराख्यं सिन्दूराभ्रं नागवज्रं च लोहम् । कर्पाधार्धं स-
 र्वचूर्णं प्रकल्प्य संशोप्याथो शर्करापक्काके ॥ ३ ॥ पक्त्वा शीतं कारयेदश्व-
 गन्धापाकोऽयं वै हन्ति मेहानशेषान् । ज्वरं जीर्णं शोषगुदमान्विकारान्पैत्ता-
 न्वातान्शुक्रवृद्धिं करोति ॥ ४ ॥ पुष्टिं दद्यादग्निसंदीपनोऽयं कान्तिं कुर्या-
 त्सौमनस्यं नराणाम् ॥ ५ ॥ अथ सालमपाकः—क्षीरे द्रोणयुते ससाल-
 कुडवं मन्दाग्निना पाचितं यावत्पाकमुपाव्रजेत्परहितं प्रस्थं गुडं निक्षिपेत् ।
 चातुर्जातिलवङ्गजातिफलकैर्मुस्तातुगाधान्यकैः शुण्ठीमागधिकोपणाश्वमभया-
 लौहैश्च मिश्रीकृतम् ॥ १ ॥ हृद्रोगक्षयशोपमारुतगदान्द्विक्वास्वसृक्शोषणे
 विंशन्मेहशिरोविकारशमनो रोगानशेषाञ्जयेत् ॥ २ ॥ अथ द्राक्षापाकः—
 द्राक्षादुग्धसिता पृथक्परिमिता प्रस्थेन संपाचिता युक्त्या वैद्यवरेण चूर्णम-
 धुना देयं पलायं पृथक् । चातुर्जातकटुत्रयं मृगमदं लोहाभ्रकं केशरं पत्री
 जातिफलं मृगाङ्गरजतं कुस्तुम्बरी चन्दनम् ॥ १ ॥ सम्यग्जातरसं प्रभातस-
 मये सेव्यं द्विकर्षोन्मितं स्निग्धं शुक्रकरं प्रमेहशमनं पित्तामयध्वंसनम् । मू-
 त्राघातविबन्धकृच्छ्रशमनं रक्तातिनेत्रार्तिहृत्पादे पाणितले विदाहशमनं सौ-
 ख्यप्रदं प्राणिनाम् ॥ २ ॥ इति पाकाः ।

अथाऽऽसवघृततैलादि ।

अथ लोधासवः—लोध्रं शटीपुष्करमूलमेलां मूर्वाविडङ्गं त्रिफलांयवा-
 नीम् । चव्यं प्रियङ्गुमुकं विशालां किराततित्तं कटुरोहिणीं च ॥ १ ॥ भा-
 गीनतं चित्रकपिप्पलीनां मूलं सकुष्ठातिविपां सपाठाम् । कलिङ्गकान्केसरमि-
 न्द्रसाह्नं नखं सपत्रं मरिचं प्लवं च ॥ २ ॥ द्रोणेऽम्भसः कर्पसमानि पक्त्वा
 पूते चतुर्भागजलावशेषे । रसेऽर्धभागं मधुनः प्रदाय पक्षं विधेयो घृतभाज-
 नस्थः ॥ ३ ॥ लोधासवोऽयं कफपित्तमेहान्निक्षिप्रं निहन्त्याद्विपलप्रयोगात् ।
 पाण्ड्यामयाशीत्यरुचिं ग्रहण्या दोषं किलासं विविधं च कुष्ठम् ॥ ४ ॥ इति
 लोधासवः । अथ सिंहामृतघृतम्—कण्टकार्या गुडूच्याश्च संहरेच्च शतं
 शतम् । संकुट्योल्लखले विद्वांश्चतुर्द्वौणेऽम्भसः पचेत् ॥ १ ॥ तेन पादावशे-
 पेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् । त्रिकटुत्रिफलारास्त्राविडङ्गान्यथ चित्रकम् ॥ २ ॥
 काश्मर्याणां च मूलानि पूतिकस्य त्वचस्य च । कुट्टयेदिति सर्वाणि श्लक्ष्णपि-
 ष्टानि कारयेत् ॥ ३ ॥ अस्य मात्रां पिबेत्प्रातः शालिभिः पयसा हितैः । प्र-
 मेहं मधुमेहं च मूत्रकृच्छ्रं भगंदरम् ॥ ४ ॥ आलस्यं चात्रवृद्धिं च कुष्ठरोगं
 विशेषतः । क्षयं चापि निहन्त्येतन्नाम सिंहामृतं घृतम् ॥ ५ ॥ अथ हरि-
 द्रादितैलम्—निशारसं चतुष्प्रस्थं द्विप्रस्थक्षीरसंयुतम् । कुष्ठाश्वगन्धालशु-

ननिशापिप्पलिकलिकतम् । विपक्वं तिलजप्रस्थं मेहानां विंशतिं जयेत् ॥ १ ॥
इति हरिद्रादितैलम् । अथ लेपनम्—क्षीरमौदुम्बरं यत्नाद्वाकुचीं च प्रयो-
जयेत् । पिटिकासु समस्तासु लेपनं संप्रशान्तये ॥ १ ॥

अथ रसाः ।

तत्राऽऽदौ हरिशंकररसः—सूताभ्रमामलजलैः सप्तवारं विभावयेत् ।
हरिशंकरसंज्ञः स्याद्रसः सर्वप्रमेहनुत् ॥ १ ॥ अथ मेघनादरसः—सूतं
कान्तं गन्धतीक्ष्णं ताप्यं व्योषं फलत्रिकम् । शिलाजतुशिलाङ्गोलबीजं रात्रि-
कपित्थकम् ॥ १ ॥ त्रिःसप्त कृत्वा भृङ्गाद्भिर्भावयेन्नृष्कसंज्ञकः । मधुना मे-
घनादोऽयं सर्वमेहान्विनाशयेत् ॥ २ ॥ महानिम्बस्य बीजानि पेषयेत्तण्डुला-
म्बुना । सधृतान्यचिराद्भन्युः पानान्मेहांश्चिरोत्थितान् ॥ ३ ॥ अथ मेहकु-
ञ्जरकेसरी रसः—रसगन्धायसाभ्राणि नागवज्रौ सुवर्णकम् । वज्रकं मौ-
क्तिकं सर्वमेकीकृत्य विचूर्णयेत् ॥ १ ॥ शतावरीरसेनैव गोलकं शुष्कमातपे ।
बुद्ध्वा शुष्कं तमुद्धृत्य शरावे सुदृढे क्षिपेत् ॥ २ ॥ संधिलेपं मृदा कुर्याद्व-
र्तायां गोमयाभिना । पुटेद्यामचतुःसंख्यमुद्धृत्य स्वाङ्गशीतलम् ॥ ३ ॥ श्लक्ष्ण-
खल्वे विनिक्षिप्य गोलं तं मर्दयेद् दृढम् । देवब्राह्मणपूजां च कृत्वा धृत्वाऽथ
कूपिके ॥ ४ ॥ खादेद्वलद्वयं प्रातः शीतं चानु पिबेज्जलम् । अष्टादश प्रमे-
हांश्च जयेन्मासोपयोगतः ॥ ५ ॥ तुष्टिं तेजोबलं वर्णशुक्रवृद्धिं च दारुणम् ।
अग्नेर्बलं वितनुते मेहकुञ्जरकेसरी ॥ दिव्यं रसायनं श्रेष्ठं नात्र कार्या विचा-
रणा ॥ ६ ॥ अथ मेहान्तको रसः—मृताभ्रकान्तलोहानां नागवज्रौ वि-
शोधितौ । यथोत्तरं भागवृद्ध्या खल्वमध्ये विनिक्षिपेत् ॥ १ ॥ तलपोटेन
वाराह्या शतावर्या हिमाम्बुना । भावनाऽत्र प्रकर्तव्या यामं यामं पृथक्पृथक्
॥ २ ॥ चणमात्रां वर्टीं कृत्वा नवनीतेन सेवयेत् । प्रातरुत्थाय विधिना स-
र्वमेहकुलान्तकः ॥ ३ ॥ शाल्यन्नं सपटोलं च तण्डुलीयकवास्तुकम् । म-
त्स्याक्षीमुद्रयूषं च अपक्कदलीफलम् ॥ ४ ॥ अशीसि ग्रहणीदोषं मूत्रकृ-
च्छ्राश्मरीप्रणुत् । कामलापाण्डुशोफांश्च अपस्मारक्षतक्षयान् । रक्तकासवि-
नाशे स्यात्पञ्चलोहरसायनम् ॥ ५ ॥ अथ मेहारिरसः—वज्रभस्म मृतं
सूतं तुल्यं क्षौद्रे विमर्दयेत् । द्विगुञ्जो लेहयेन्नित्यं हन्ति मेहांश्चिरंतनान् ॥ ६ ॥
अथ चन्द्रकलावटी—पूला सकर्पूरसिता सधात्री जातीफलं केसरशाल्मली
च । सूतेन्द्रवज्जायसभस्म सर्वमेतत्समानं परिभावयेच्च ॥ १ ॥ गुडूचिकाशा-
ल्मलिकाकपायैर्निष्कार्धमानं मधुना ततश्च । बद्ध्वा वर्टीं चन्द्रकलेतिसंज्ञं
सर्वप्रमेहेषु नियोजयेत्ताम् ॥ २ ॥ अथ वज्रेश्वरः—रसमेकं त्रयो वज्रं व-
ज्रसाम्यं तु गन्धकम् । मर्दयेद्दिनमेकं तु कुमार्याः स्वरसे बुधः ॥ १ ॥ सं-
स्थाप्य गोलकं भाण्डे रोधयेत्सुदृढं मुखम् । पाचयेद्वालुकायत्रे दिनमेकं द-
ढाभिना ॥ २ ॥ स्वाङ्गशीतलमादाय संपूज्य द्विजदेवताः । पिप्पलीमधुना

युक्तं सर्वमेहेषु योजयेत् ॥ ३ ॥ क्षीरान्नं योजयेत्पथ्यमम्ललवणवर्जितम् ।
 रसो वङ्गेश्वरो नाम सर्वमेहनिकृन्तनः ॥ ४ ॥ अथ महावङ्गेश्वरः—वङ्गं
 कान्तं च गगनं हेमपुष्पं समं समम् । कुमारीरसतो भाव्यं सप्तवारं भिष-
 ग्वरैः ॥ १ ॥ एष वङ्गेश्वरो नाम प्रमेहान्विशतिं जयेत् । मूत्रकृच्छ्रं सोमरोगं
 पाण्डुरोगं महाश्मरीम् ॥ रसायनमिदं श्रेष्ठं नागार्जुनविनिर्मितम् ॥ २ ॥
 इति महावङ्गेश्वरो रसः । अथ वङ्गभस्मप्रयोगगुणाश्च—वङ्गं शिलाजतु-
 युतं तु मतं प्रमेहे धातुक्षये दुर्बलनष्टशुक्रयोः । अग्रेण युक्तं तु सुतप्तप्रदं स्या-
 ज्जातीफलार्ककरहाटलवङ्गयुक्तम् ॥ १ ॥ शाल्मलीत्वग्रसोपेतं सक्षौद्ररजनी-
 रजः । वङ्गभस्म हरेन्मेहान्पञ्चानन इव द्विपान् ॥ २ ॥ गुडूचीसारमधुना
 वङ्गभस्म प्रमेहनुत् । नागभस्म तथैवापि सर्वमेहविनाशनम् ॥ ३ ॥ पयो गवां
 सखण्डकं त्रिकण्टवङ्गवलकं प्रमेहभलकं परं बुधा वदन्ति सादरम् ॥ ४ ॥ अथ
 वङ्गगुणाः—तिक्तकं सलवणं च भेदकं पाण्डुजन्तुशमनं सुशीतलम् । मेह-
 दाहशमनं च कान्तिदं वङ्गमाहुरिति मारुतापहम् ॥ १ ॥ अथाभ्रकयोगः—
 निश्चन्द्रमभ्रकं भस्म सवरारजनीरजः । मधुना लीढमचिरात्प्रमेहान्विनिवर्त-
 येत् ॥ १ ॥ अथ नागभस्मयोगः—शुद्धस्य च मृतस्याहे रजो वल्लमितं
 लिहेत् । सनिशामलकं क्षौद्रं सर्वमेहप्रशान्तये ॥ १ ॥ अथ गन्धकयोगः—
 गन्धकं गुडसंयुक्तं कर्षं भुक्त्वा पयः पिबेत् । विंशतिस्तेन नश्यन्ति प्रमेहाः
 पिटिका अपि ॥ १ ॥ अथ शिलाजतुयोगः—शिलाजतुरसं पीत्वा प्रातः
 क्षीरसितायुतम् । मुच्यते सर्वमेहेभ्यस्त्रिसप्तदिवसैर्नरैः ॥ १ ॥ अथ स्वर्ण-
 माक्षिकभस्मयोगः—माक्षिकं मधुना लीढं मेहं हरति सर्वथा । गुडूचीस-
 त्वसंयुक्तं पित्तमेहे व्यपोहति ॥ १ ॥ अथ वसन्तकुसुमाकरः—पृथग्द्वौ
 हाटकं चन्द्रं त्रयो वङ्गाहिकान्तजम् । चत्वारः सूतमभ्रं च प्रवालं मौक्तिकं
 तथा ॥ १ ॥ भावना गव्यदुग्धेक्षुवासाश्रीद्विजलैर्निशा । मोचकन्दरसैः सप्त
 क्रमाद्भाव्यं पृथक्पृथक् ॥ २ ॥ शतपत्ररसेनैव मालत्याः कुसुमैस्तथा । पश्चा-
 न्मृगमदैर्भाव्यः सुसिद्धो रसराम्भवेत् ॥ ३ ॥ कुसुमाकरविख्यातो वसन्त-
 पदपूर्वकः । वल्लद्वयमितः सेव्यः सिताज्यमधुसंयुतः ॥ ४ ॥ वलीपलितह-
 न्मेध्यः कामदः सुखदः सदा । मेहघ्नः पुष्टिदः श्रेष्ठः परं वृण्यो रसायनम्
 ॥ ५ ॥ आयुर्वृद्धिकरं पुंसां प्रजाजननमुत्तमम् । क्षयकासतृषोन्मादश्चासरक्त-
 विषार्तिजित् ॥ ६ ॥ सिताचन्दनसंयुक्तमम्लपित्तादिरोगजित् । शुक्लपाण्ड्वा-
 मयान्शूलान्मूत्राघाताश्मरीं हरेत् ॥ ७ ॥ योगवाहि त्विदं सेव्यं कान्तिश्री-
 बलवर्धनम् । सुसात्म्यमिष्टभोजी च रमयेत्प्रमदाशतम् ॥ ८ ॥ मदं मद-
 येन्मदमुज्ज्वलयन्प्रमदानिवहानतिविह्वलयन् । सुरतैः सुखदैर्गतिविच्यवनैर्भ-
 वसारजुषामयमेव सुहृत् ॥ ९ ॥ अथ जलजामृतरसः—तवक्षीरं शिला
 धातुर्वङ्गं कुण्डलिसत्त्वकम् । मेहारिवीजसंयुक्तं विदारीजीवनीरसैः ॥ १ ॥

भावयेत्तन्निवारं तु सितोपलसमन्वितम् । जलजामृतविख्यातो रसोऽयं मे-
हकृच्छ्रनुत् ॥ २ ॥ प्रमेहपिटिकानां तु प्राकार्यं रक्तमोक्षणम् । पाटनं तु वि-
पक्वानां तासां पाने प्रशस्यते ॥ ३ ॥ काथो व्रणघ्नोऽत्र बस्तिमूत्रैस्तीक्ष्णैर्विरेच-
नम् । व्रणप्रतिक्रिया सर्वा कार्याऽत्रापि भिषग्वरैः ॥ ४ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

श्यामाककोद्रवोद्दालगोधूमचणकाढकी । शालिमुद्गकुलित्थाश्च मेहिनां दे-
हिनां हिताः ॥ १ ॥ मेदोघ्ना बद्धमूत्राश्च समाः सर्वेषु धातुषु । यवास्तस्मा-
त्प्रशस्यन्ते मेहेषु च विशेषतः ॥ २ ॥ तिक्तशाकं पटोलानि जाङ्गलामिपजा
रसाः । सैन्धवं मरिचं चैव मेहिनामाहरेद्भिषक् ॥ ३ ॥ सदाऽऽसनं दिवा
निद्रा नवान्नानि दधीनि च । मूत्रवेगं धूमपानं स्वेदं शोणितमोक्षणम् ॥ ४ ॥
सौवीरकं सुरा सूक्तं तैलं क्षारं घृतं गुडम् । अम्लेश्वरसपिष्टान्नानूपमांसानि
वर्जयेत् ॥ ५ ॥ इति पथ्यापथ्यम् । इति प्रमेहचिकित्सा ।

अथ ग्रन्थान्तरे बहुमूत्रमेहनिदानम् ।

काश्यं स्वेदोऽङ्गगन्धः करपदरसनानेत्रकर्णोपदेहः कासः शैथिल्यमङ्गेऽरु-
चिरपि पिटिकाः कण्ठताल्वोष्ठशोषः । दाहः शीतप्रियत्वं धवलमतनुता
श्रान्तता पीतमूत्रं मूत्रस्था मक्षिकाद्याश्चिरमपि बहुमूत्राख्यरोगे प्रवृद्धे ॥ १ ॥
अथ वाग्भटः—स्वेदोऽङ्गगन्धः शिथिलत्वमङ्गे शय्यासनस्वप्नसुखाभिलाषः ।
हृन्नेत्रजिह्वाश्रवणोपदेहो घनाङ्गता केशनखातिवृद्धिः ॥ १ ॥ शीतप्रियत्वं
गलतालुशोषो माधुर्यमास्ये करपाददाहः । भविष्यतो मेहगणस्य लिङ्गं मू-
त्रेऽभिधावन्ति पिपीलिकाश्च ॥ २ ॥ दृष्ट्वा प्रमेहं मधुरं सपिच्छं मधूपमं
स्याद्विविधो विचारः । संतर्पणाद्वा कफसंभवः स्यात्क्षीणेपु दोषेष्वनिलात्मको
वा ॥ ३ ॥ संपूर्वरूपाः कफपित्तमेहाः क्रमेण ये वातकृताश्च मेहाः । साध्या
न ते पित्तकृतास्तु याप्याः साध्यास्तु मेदो यदि नातिदुष्टं ॥ ४ ॥

अथ बहुमूत्रचिकित्सा ।

त्रिफलावेणुपत्राब्दपाठामधुयुतैः कृतः । कुम्भयोनिरिवाम्भोधिं बहुमूत्रं तु
शोषयेत् ॥ १ ॥ अथ तारकेश्वररसः—मृतं सूतं मृतं वज्रं मृतं लोहाभ्रकं
समम् । मर्दयेन्मधुना सार्धं रसोऽयं तारकेश्वरः । मापैकं लेहयेत्क्षौद्रैर्बहुमू-
त्रापनुत्तये ॥ १ ॥ इति तारकेश्वरः । अथाऽऽनन्दभैरववटी । विपोषण-
कणाटङ्कहिङ्गुलैः समचूर्णकः । आनन्दभैरवस्यास्य गुञ्जास्तीसारमेहनुत् ॥ १ ॥
इति बहुमूत्रमेहचिकित्सा ।

अथ मेदोरोगनिदानम् ।

अव्यायामदिवास्वप्नश्लेष्मलाहारसेविनः । मधुरोऽन्नरसः प्रायः स्नेहान्मेदो

विवर्धते ॥ १ ॥ मेदसाऽऽवृतमार्गत्वात्पुण्यन्त्यन्ये न धातवः । मेदस्तु ची-
यते तस्मादशक्तः सर्वकर्मसु ॥ २ ॥ मेदस्विलक्षणं—क्षुद्रश्वासवृषामो-
हस्वप्नक्रथनसादनैः । युक्तः क्षुत्स्वेददौर्गन्ध्यैरल्पप्राणोऽल्पमैथुनः ॥ २ ॥ मे-
दस्तु सर्वभूतानामुदरेष्वेव तिष्ठति । अत एवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्विनो
भवेत् ॥ ३ ॥ मेदसाऽऽवृतमार्गत्वात्कोष्ठे वायुर्विशेषतः । चरन्संधुक्षयत्यग्निमा-
हारं शोषयत्यपि ॥ ४ ॥ तस्मात्स शीघ्रं जरयत्याहारं काङ्क्षयत्यपि । विकारांश्चा-
श्रुते घोरान्कांश्चित्कालव्यतिक्रमात् ॥ ५ ॥ एतावुपद्रवकरौ विशेषादग्निमा-
रुतौ । एतौ हि दहतः स्थूलं वनं दावानलो यथा ॥ ६ ॥ मेदस्यतीव संवृद्धे
सहसैवानिलादयः । विकारान्दारुणान्कृत्वा नाशयन्त्याशु जीवितम् ॥ ७ ॥
स्थूललक्षणं—मेदोमांसातिवृद्धत्वाच्चलस्फिगुदरस्तनः । अयथोपचयोत्साहो
नरोऽतिस्थूल उच्यते ॥ ८ ॥ स्थूले स्युर्दुस्तरा रोगा विसर्पाः सभगंदराः ।
ज्वरातिसारमेहार्शः श्लीपदापचिकामलाः ॥ ९ ॥ कृशलक्षणं—शुष्कस्फिगु-
दरग्रीवोभमनीजालसंततः । त्वगस्थिशोषोऽतिकृशः स्थूलपर्वा नरः स्मृतः
॥ १० ॥ इति मेदोरोगनिदानम् ।

अथ मेदोरोगचिकित्सा ।

क्षौद्रेण त्रिफलाकाथः पीतो मेदोहरः स्मृतः । शीतीभूतं तथोष्णाम्बु मे-
दोहृत्क्षौद्रसंयुतम् ॥ १ ॥ उष्णं भक्तस्य मण्डं वा पिबेत्कृशतनुर्भवेत् । सच-
व्यजीरकव्योषहिङ्गुसौवर्चलानलाः ॥ २ ॥ मधुना सक्तवः पीता मेदोघ्ना व-
ह्निदीपनाः । क्षारं वा तालपत्रस्य हिङ्गुयुक्तं पिबेन्नरः । मेदोवृद्धिविनाशाय
भक्तमण्डसमन्वितम् ॥ ३ ॥ हरीतकीलोध्रमरिष्टपत्रपूतत्वचो दाडिमवल्कलं
च । एषोऽङ्गरागः कथितोऽङ्गनानां जम्बवाः कपायश्च नराधिपानाम् ॥ ४ ॥
फलत्रिकं त्रिकटुकं सतैललवणान्वितम् । पण्मासादुपयोगेन कफमेदोनिलाप-
हम् ॥ ५ ॥ गुडूचीभद्रमुस्तानां प्रयोगश्चैफलस्तथा । तक्रारिष्टप्रयोगश्च प्र-
योगो माक्षिकस्य च ॥ ६ ॥ अथ त्र्यूषणाद्यं लोहम्—त्र्यूषणं त्रिफला
चव्यं चित्रकं बिडमौद्गिदम् । बाकुचीसैन्धवं चैव सौवर्चलमयोरजः ॥ १ ॥
माषमात्रमश्वत्थं लिहेदाज्यमधुलुतम् । अतिस्थौल्यमिदं चूर्णं निहन्त्यग्निवि-
वर्धनम् ॥ २ ॥ मेदोघ्नं मेहकुष्ठं श्लेष्मव्याधिनिबर्हणम् । नाऽऽहारे नियम-
श्चात्र विहारे वा विधीयते । त्र्यूषणाद्यमिदं चूर्णं रसायनमनुत्तमम् ॥ ३ ॥
अथ नवकगुग्गुलुः—व्योषाग्निमुस्तात्रिफलाविडङ्गैर्गुग्गुलुं समम् । खाद-
न्सर्वाञ्जयेद्द्व्याधीन्मेदःश्लेष्मामवातजान् ॥ १ ॥ अथ लेपोद्वर्तने—हितो
मोचरसो युक्तश्चूर्णैरुदधिकेनजैः । प्रलेपेन निहन्त्याशु देहदौर्गन्ध्यमुत्कटम्
॥ १ ॥ वासादलरसालेपाच्छङ्खचूर्णावचूर्णितात् । बिल्वपत्ररसो वाऽपि गात्र-
दौर्गन्ध्यनाशनः ॥ २ ॥ हरीतकीं तु संपिप्य गात्रमुद्वर्तयेन्नरः । पश्चात्स्नानं
प्रकुर्वीत देहस्वेदप्रशान्तये ॥ ३ ॥ चन्द्रांशुशीतलं लोघ्नं शिरीषोशीरकेसरैः ।

उद्वर्तनं भवेद्भीष्मे स्वेदोद्गमनिवारणम् ॥ ४ ॥ बब्बूलस्य दलैः सम्यग्वारिणा
परिपेषितैः । गात्रमुद्वर्तयेत्पश्चाद्वरीतक्या सुपिष्टया ॥ ५ ॥ भूय उद्वर्तनं
कृत्वा पश्चात्स्नानं समाचरेत् । प्रस्वेदान्मुच्यते क्षिप्रं ततस्त्वेवं समाचरेत् ॥ ६ ॥
जम्बूदलार्जुनतरुप्रसवैः सकुष्ठैरुद्वर्तनं प्रकुरुते प्रतिवासरं यः । प्रस्वेदबिन्दुक-
णिकानिकरानुपङ्गादुर्गन्धिता वपुषि तस्य पदं न धत्ते ॥ ७ ॥ शिरीषलाम-
जकहेमलोध्रैस्त्वग्दोषसंस्वेदहरः प्रघर्षः । प्रियङ्गुलोध्राभयचन्दनानि शरीर-
दौर्गन्ध्यहरः प्रदिष्टः ॥ ८ ॥ अथ वृन्दात्रिफलाद्यं तैलम्—त्रिफलाति-
विषामूर्शात्रिवृच्चित्रकवासकैः । निम्बार्गवधषडग्रन्थासप्तपर्णनिशाद्वयैः ॥ १ ॥
गुडूचीन्द्रयवाकृष्णाकुष्ठसर्षपनागरैः । तैलमेभिः समं पक्वं सुरसादिरसप्लुतम्
॥ २ ॥ पानाभ्यञ्जनगण्डूपनस्यवस्तिषु योजितम् । स्थूलतालस्यकण्डूदि ज-
येत्कफकृतान्गदान् ॥ ३ ॥ अथ महासुगन्धितैलम्—चन्दनं कुङ्कुमोशीरं
प्रियङ्गुशटिरोचनम् । तुरुष्कागुरुकस्तूरीकर्पूरो जातिपत्रिका ॥ १ ॥ जातीक-
ङ्गोलपूगानां लवङ्गस्य फलानि च । नलिकानलदं कुष्ठं हरेणुतगरं प्लवम् ॥ २ ॥
नखं व्याघ्रनखं स्पृक्वा बालो दमनकं तथा । प्रपौण्डरीकं कर्चूरं समांशैः शा-
णमात्रकैः ॥ ३ ॥ महासुगन्ध इत्येतत्तैलप्रस्थेन साधयेत् । प्रस्वेदमलदौर्ग-
न्ध्यकण्डूकुष्ठहरं परम् ॥ ४ ॥ अनेनाभ्यक्तगात्रस्तु वृद्धः सप्ततिकोऽपि वा ।
युवा भवति शुक्राढ्यः स्त्रीणामत्यन्तवल्लभः ॥ ५ ॥ सुभगो दर्शनीयश्च ग-
च्छेद्वै प्रमदाशतम् । वन्ध्याऽपि लभते गर्भं षण्ढोऽपि पुरुषायते ॥ अपुत्रः
पुत्रमाप्नोति जीवेच्च शरदां शतम् ॥ ६ ॥ अथ रसाः—तत्राऽऽदौ रस-
भस्मयोगः—रसभस्म वल्लमात्रं लीढ्वा मधुना पिबेदनु क्षौद्रम् । कोष्णा-
म्बुना समेतं स्थौल्यं मेदःकृतं जयति ॥ १ ॥ अथ त्रिमूर्तिरसः—सूतग-
न्धमयोभस्म समं संमेत्य भावयेत् । निर्गुण्डीपत्रतोयेन मुसलीकन्दवारिणा
॥ १ ॥ ततः सिद्धमसुं मापमात्रं रसमनुत्तमम् । लोध्रक्षौद्रेण चाक्षीयाचूर्ण-
मेपां पिचून्मितम् ॥ २ ॥ पद्मकटु त्रिफला पञ्चलवणावल्गुजस्य तत् । मे-
दःशोथान्निमान्ध्यामवातश्लेष्मगदप्रणुत् ॥ ३ ॥ अथ वडवाग्निरसः—शु-
द्धसूतं मृतं ताम्रं तालं बोलं समं समम् । अर्कक्षीरौर्दिनं मर्द्यं क्षौद्रैर्लेह्यं
द्विगुञ्जकम् ॥ १ ॥ वडवाग्निरसो नाम स्थौल्यं तुन्दं नियच्छति । पलं क्षौद्रं
पलं तोयमनुपानं पिबेत्सदा ॥ २ ॥ इति वडवाग्निरसः । अथ पथ्याप-
थ्यम्—पुराणशालयो मुद्गकुलत्थोद्दालकोद्रवाः । लेखना बस्तयश्चैव सेव्या
मेदस्विना सदा ॥ १ ॥ श्रमचिन्ताव्यवायाध्वक्षौद्रजागरणप्रियः । हन्त्यव-
श्यमतिस्थौल्यं यवश्यामाकभोजनः ॥ २ ॥ अस्त्रमं च व्यवायं च व्यायामं
चिन्तनानि च । स्थौल्यमिच्छन्परित्यक्तुं क्रमेणैवं प्रवर्धयेत् ॥ ३ ॥ इति प-
थ्यापथ्यम् ।

इति मेदोरोगचिकित्सा ।

अथोदरनिदानप्रारम्भः ।

रोगाः सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ सुतरामुदराणि तु । अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्ते मलसंचयात् ॥ १ ॥ तन्त्रान्तरे—अतिसंचितदोषाणां पापकर्म च कुर्वताम् । उदराण्युपजायन्ते मन्दाग्नीनां विशेषतः ॥ २ ॥ संप्राप्तिमाह—रुद्धा स्वेदाम्बुवाहीनि दोषाः स्रोतांसि संचिताः । प्राणाद्यपानान्संदूष्य जनयन्त्युदरं नृणाम् ॥ ३ ॥ सुश्रुते—तत्पूर्वरूपं बलवर्णकाङ्क्षावलीविनाशो जठरेऽपि राज्यः । जीर्णापरिज्ञानविदाहवत्त्वां बस्तौ रुजः पादगतश्च शोफः ॥ ४ ॥ अथ उदरस्य सामान्यलक्षणमाह—आध्मानं गमनेऽशक्तिर्दौर्बल्यं दुर्बलाग्निता । शोफः सदनमङ्गानां सङ्गो वातपुरीषयोः ॥ ५ ॥ दाहस्तन्द्रा च सर्वेषु जठरेषु भवन्ति हि । निर्जलोदरलक्षणं—सर्वत्वतोयमरुणमशोफं नातिमारिकं । गवाक्षितं शिराजालैः सदा गुडगुडायते ॥ ६ ॥ उदराणां संख्या—पृथग्दोषैः समस्तैश्च ग्रीहबद्धक्षतोदकैः । संभवन्त्युदराण्यष्टौ तेषां लिङ्गं पृथक्शृणु ॥ ७ ॥ अथ वातोदरलक्षणमाह—तत्र वातोदरे शोफः पाणिपन्नाभिकुक्षिषु । कुक्षिपार्श्वोदरकटीपृष्ठरूपवर्धभेदनम् ॥ ८ ॥ शुष्ककासोऽङ्गमर्दोऽधो गुरुता मलसंग्रहः । श्यावारुणत्वगादित्वमकस्माद्वृद्धिहासवत् ॥ ९ ॥ सतोदभेदमुदरं तनुकृष्णशिराततम् । आध्मातद्वतिवच्छब्दमाहतं प्रकरोति च । वायुश्चात्र सरुक्शब्दो विचरेत्सर्वतोगतिः ॥ १० ॥ अथ पैत्तिकमाह—पित्तोदरे ज्वरो मूर्च्छा दाहस्तृद कटुकास्यता । अमोऽतिसारः पीतत्वं त्वगाद्रावुदरं हरित् ॥ ११ ॥ पीतताम्रशिरानद्धं सस्वेदं सोष्म दह्यते । धूमायते मृदुस्पर्शं क्षिप्रपाकं प्रदूयते ॥ १२ ॥ अथ श्लेष्मिकमाह—श्लेष्मोदरेऽङ्गसदनं स्वापः श्वयथुगौरवम् । निद्रोत्क्लेशोऽरुचिः श्वासः कासः शुक्लत्वगादिता ॥ १३ ॥ उदरं स्तिमितं स्निग्धं शुक्लराजीततं महत् । चिराभिवृद्धि कठिनं शीतस्पर्शं गुरु स्थिरम् ॥ १४ ॥ अथ सांनिपातिकमाह—स्त्रियोऽन्नपानं नखरोममूत्रविडार्तवैर्युक्तमसाधुवृत्ताः । यस्यै प्रयच्छन्त्यरयो गरांश्च दुष्टाम्बुदूषीविषसेवनाद्वा ॥ १५ ॥ तेनाऽऽशु रक्तं कुपिताश्च दोषाः कुर्युः सुषोरं जठरं त्रिदोषम् । तच्छीतवातातपहुर्दिनेषु विशेषतः कुप्यति दह्यते च । स चाऽऽतुरो मूर्च्छति संप्रसक्तं पाण्डुः कृशः शुप्यति तृष्णया च ॥ १६ ॥ दूष्णोदरं कीर्तितमेतदेव ग्रीहोदरं कीर्तयतो निबोध । ग्रीहोदरयकृदुदरलक्षणं—विदाह्यभिप्यन्दिरतस्य जन्तोः प्रदुष्टमत्यर्थमसृक्फश्च ॥ १७ ॥ ग्रीहाभिवृद्धिं कुरुतः प्रवृद्धौ ग्रीहोत्थमेतज्जठरं वदन्ति । तद्वामपार्श्वे परिवृद्धिमेति विशेषतः सीदति चाऽऽतुरोऽत्र ॥ १८ ॥ मन्दज्वराग्निः कफपित्तलिङ्गैरुपद्रुतः क्षीणबलोऽतिपाण्डुः । सव्यान्यपार्श्वे यकृति प्रदुष्टे ज्ञेयं यकृद्वाल्युदरं तदेव ॥ १९ ॥ ग्रीहा निर्वेदनः श्वेतकठिनः स्थूल एव च । महाप-

रिग्रहः शीतश्लेष्मसंभव इष्यते ॥ २० ॥ सज्वरः सपिपासश्च स्वेदनस्तीव्रवे-
दनः । पीतगात्रो विशेषेण ग्रीहा पैत्तिक उच्यते ॥ २१ ॥ नित्यमानद्धकोष्ठश्च
नित्योदावर्तपीडितः । वेदनाभिः परीतश्च ग्रीहा वातिक उच्यते ॥ २२ ॥
क्लमोऽतिदाहः संमोहो वैवर्ण्यं गात्रगौरवम् । रक्तोदरं भ्रमो मूर्छा ज्ञेयं रक्त-
जलक्षणम् । त्रयाणामपि रूपाणि ग्रीह्यसाध्ये भवन्ति हि ॥ २३ ॥ अथ
तत्र दोषसंवन्धमाह—उदावर्तरुजानाहैर्मोहतृड्दहनज्वरैः । गौरवारुचि-
काटिन्यैर्विद्यात्तत्र मलान्कमात् ॥ २४ ॥ अथ बद्धगुदमाह—यस्यान्नम-
नैरुपलेपिभिर्वा बालाश्मभिर्वा पिहितं यथावत् । संचायते तस्य मलः स-
दोषः शनैः शनैः संकरवच्च नाड्याम् ॥ २५ ॥ निरुध्यते तस्य गुदे पुरीषं
निरेति कृच्छ्रादपि चाल्पमल्पम् । हृन्नाभिमध्ये परिवृद्धिमेति तस्योदरं बद्ध-
गुदं वदन्ति ॥ २६ ॥ एतद्बद्धोदरं तेन स्युर्दाहज्वरतृड्भ्रमाः । कासश्चासो-
रुसदनं रुग्हृन्नाभिशिरस्तु च ॥ २७ ॥ मलसङ्गोऽरुचिश्छर्दिरुदरं मूढमारु-
तम् । स्थिरनीलारुणशिरारोमराजिविराजितम् । नाभेरुपरि च प्रायो गोपु-
च्छाकृति जायते ॥ २८ ॥ अथ क्षतोदरमाह—शल्यं तथाऽन्नोपहितं य-
दन्नं भुक्तं भिनत्त्यागतमन्यथा वा । तस्मात्क्षुतोऽन्नात्सलिलप्रकाशः स्नावः
स्वेद्वै गुदतस्तु भूयः ॥ २९ ॥ नाभेरधश्चोदरमेति वृद्धिं निस्तुद्यतेऽतीव
विदाल्यते च । एतत्परिस्त्राव्युदरं प्रदिष्टं दकोदरं कीर्तयतो निबोध ॥ ३० ॥
अथ दकोदरमाह—यः स्नेहपीतोऽप्यनुवासितो वा वान्तो विरिक्तोऽप्य-
थवा निरुद्धः । पिबेज्जलं शीतलमाशु तस्य स्रोतांसि दुष्यन्ति हि तद्वहानि
॥ ३१ ॥ स्नेहोपल्लेध्वथ वाऽपि तेषु दकोदरं पूर्ववदभ्युपैति । स्निग्धं मह-
त्तत्परिवृत्तनाभि समाततं पूर्णमिवाम्बुना च ॥ ३२ ॥ यथा दृतिः क्षुभ्यति
कम्पते च शब्दायते चापि दकोदरं तत् ॥ ३३ ॥ अथ साध्यासाध्यत्व-
माह—जन्मनैवोदरं सर्वं प्रायः कृच्छ्रतमं मतम् । बलिनस्तदजाताम्बु य-
त्नात्साध्यं नवोत्थितम् ॥ ३४ ॥ अशोषमरुणाभासं सशब्दं नातिभारिकम् ।
सदा गुडगुडायुक्तं शिराजालगवाक्षितम् ॥ ३५ ॥ नाभिं विष्टभ्य वायुस्तु
वेगं कृत्वा प्रणश्यति । हृद्बद्ध्वाणकटीनाभिगुदं प्रत्येकशूलिनः ॥ ३६ ॥ कर्कशं
सृजते वातं नातिमन्दे च पावके । लोलस्यापि रमे वाऽल्पे मूत्रेऽल्पे संहते
विशि ॥ ३७ ॥ अजातोदकमित्येतैर्युक्तं विज्ञाय लक्षणैः । कुक्षेर्बृद्धिश्चाति-
मात्रं शिरान्तर्धानमेव च । दकपूर्णदृतिक्षोभस्पृशं जातोदकं भवेत् ॥ ३८ ॥
अथ विशेषेणासाध्यत्वमाह—पक्षाद्बद्धगुदं तूर्ध्वं सर्वं जातोदकं तथा ।
प्रायो भवत्यभावाय च्छिद्रान्नमुदरं नृणाम् ॥ ३९ ॥ अथ पुनरप्यसाध्य-
त्वमाह—शूनाक्षं कुटिलोपस्थमुपक्लिन्नतनुत्वचम् । बलशोणितमांसाक्षिप-
रिक्षीणं च वर्जयेत् ॥ ४० ॥ पार्श्वभङ्गान्नविद्वेषशोफातीसारपीडितम् । वि-
रिक्तं चाप्युदरिणं पूर्यमाणं विवर्जयेत् ॥ ४१ ॥ इत्युदरनिदानम् ।

अथ उदरचिकित्सा ।

अथ तत्राष्टावुदराणि—पृथग्दोषैः समस्तैश्च ग्रीहबद्धक्षतोदकैः ॥ १ ॥
तत्र पृथग्दोषैर्वातपित्तकफैः, संनिपातेनैकम् । ग्रीहोदरं बद्धोदरं क्षतोदरं ज-
लोदरमिति संज्ञा भवन्ति । तेष्वसाध्यं बद्धगुदं परिस्त्रावि च । षड्वशि-
ष्टानि कृच्छ्रसाध्यानि । सर्वाण्येव च प्रत्याख्यायोपक्रमेत् । तेष्वष्टश्रुतवर्गो
भेषजसाध्यः । उत्तरः शस्त्रसाध्यः । कालप्रकर्षात्सर्वाण्येव शस्त्रसाध्यानि भ-
वन्ति वर्जयितव्यानि, इति सुश्रुतात् । अथ वातोदरचिकित्सामाह—
उपक्रमेद्विषग्दोषबलकालविशेषवित् । स्थिरादिसर्पिषः पानं स्नेहं स्वेदं विरे-
चनम् ॥ १ ॥ वेष्टनं वाससा ग्लानौ शाल्वणेनोपनाहनम् । पेया यूषरसान्नं
च योज्यं वातोदरे क्रमात् ॥ २ ॥ अथैरण्डतैलादियोगः—एरण्डतैलं द-
शमूलमिश्रं गोमूत्रयुक्तं त्रिफलारजो वा । निहन्ति वातोदरं शोथशूलं क्वाथः
समूत्रो दशमूलजश्च ॥ १ ॥ अथ दशमूलादियोगः—दशमूलकपायेण
क्षीरवृत्तिः शिलाजतु । सद्यो वातोदरी क्षीरमौघ्रमाजं च केवलम् ॥ १ ॥
अथ कुष्ठादिचूर्णम्—कुष्ठं दन्ती यवक्षारं व्योषं त्रिलवणं वचाम् । अ-
जार्जी दीप्यकं हिङ्गुं स्वर्जिकां चव्यचित्रके । शुण्ठीं चोष्णाम्भसा पीत्वा वा-
तोदररुजापहाम् ॥ १ ॥ अथ वृन्दात्सामुद्राद्यं चूर्णम्—सामुद्रसौवर्च-
लसैन्धवानि क्षारो यवानामजमोदभागः । सपिप्पलीचित्रकशृङ्गबेरं हिङ्गुं
विडङ्गं च समानि कुर्यात् ॥ १ ॥ एतानि चूर्णानि घृतक्षुतानि भुञ्जीत पूर्वं
क्वलान्प्रशस्तान् । वातोदरं गुल्ममजीर्णभुक्तं वातप्रकोपं ग्रहणीं च दुष्टाम्
॥ २ ॥ अर्शसि दुष्टानि च पाण्डुरोगं भगदरं चापि निहन्ति सद्यः ॥ ३ ॥
अथ दशमूलाद्यं घृतम्—दशमूलीकपायेण रास्त्रानागरदारुभिः । पुनर्न-
वाभ्यां च घृतं सिद्धं वातोदरापहम् ॥ १ ॥ इति वातोदरम् ।

अथ पित्तोदरम्—पित्तोदरे च बलिनं पूर्वमेव विरेचयेत् । पयसा त्रि-
वृता कल्केनोरूबकशृतेन वा ॥ १ ॥ सातलात्रायमाणाभ्यां शृतेनाऽऽरग्वधेन
च । घृतं पित्तोदरे पेयं मधुरौषधसाधितम् ॥ २ ॥ स्यान्निवृत्तिफलासिद्धं स-
र्पिष्पानं विशुद्धये । पृश्निपर्णीबलाव्याग्रीलाक्षानागरसाधितम् । क्षीरं पित्तो-
दरं हन्ति जठरं कतिभिर्दिनैः ॥ ३ ॥ इति पित्तोदरम् ।

अथ श्लेष्मोदरम्—श्लेष्मोदरिणं तु पिप्पल्यादिसिद्धेन सर्पिषा स्नेहं
पीत्वा स्नुहीक्षीरानुलोम्यत्रिकटुकमूत्रतैलमुस्तादिकाधेनाऽऽस्थापयेदनुवासये-
च्चयवकिट्सर्पपामलकबीजैश्चोपनाहयेदुदरम् । भोजयेच्चैनं त्रिकटुकप्रगाढेन
कुलित्थयूषेण पयसा वा स्वेदयेच्चाभीक्ष्णम् । व्योपयुक्तं कुलित्थाम्बु पयो वा
भोजने हितम् । गोमूत्रारिष्टपानैश्च चूर्णायस्कृतिभिस्तथा । सक्षीरतैलपानैश्च
शमयेत्तु कफोदरम् ॥ १ ॥ इति श्लेष्मोदरम् ।

अथ दूष्योदरं त्रिलिङ्गमुदरं च—संनिपातोदरे कार्यं एष एव क्रिया-

विधिः । हरीतक्यभयाकल्कभावितं मूत्रमम्बुना ॥ १ ॥ पीतं सर्वोदरप्लीह-
मेहार्शःकृमिगुल्मनुत् । ससलाशङ्खिनीसिद्धं घृतं चात्र विशोधनम् ॥ २ ॥
दन्तीद्रवन्तीफलजं तैलं दूष्योदरी पिबेत् । नागरत्रिफलाप्रस्थं घृतं तैलं तथा-
ऽऽढकम् ॥ ३ ॥ मस्तुना साधयित्वा तु पिबेत्सर्वोदरापहम् । कफमारुतसं-
भूतं गुल्मं चैव प्रशाम्यति ॥ ४ ॥ इति दूष्योदरं त्रिलिङ्गमुदरं च ।

अथ प्लीहोदरयकृदुदरयोश्चिकित्सा ।

स्नेहस्वेदविकारादि विधेयं प्लीहारोगिणाम् । वामबाहौ च मोक्तव्या कूर्प-
राभ्यन्तरे शिरा ॥ १ ॥ विध्येत्प्लीहविनाशाय यकृन्नाशाय दक्षिणे । मणि-
बन्धे समुत्पन्नवामाङ्गुष्ठसमीरिताम् । दहेच्छिरां शरेणाऽऽशु वैद्यः प्लीहप्रशा-
न्तये ॥ २ ॥ अथ शालमलीपुष्पकाथः—सुस्विन्नं शालमलीपुष्पं निशापर्यु-
षितं नरः । राजिकाचूर्णसंयुक्तं दद्यात्प्लीहोपशान्तये ॥ १ ॥ अथ शरपुङ्खा-
मूलकल्कः—शरपुङ्खामूलकल्कः पीतस्तक्रेण नाशयत्यचिरात् । बहुतरका-
लसमुत्थं प्लीहानं रूढमवगाढम् ॥ १ ॥ अथ लवणादितक्रम्—लवणं र-
जनी राजी प्रत्येकं पलपञ्चकम् । चूर्णितं निक्षिपेद्भाण्डे शततक्रपलान्विते
॥ १ ॥ त्रिदिनं मुद्रितं रक्षेत्पश्चात्पञ्चपलं तदा । प्लीहानं नाशयेत्पीत्वा त्रिः-
सप्ताहं न संशयः ॥ २ ॥ अथ शङ्खनाभिचूर्णम्—सुपक्वजम्बीररसेन श-
ङ्खनाभीरजः पीतमवश्यमेव । कर्षप्रमाणं शमयेदवश्यं प्लीहामयं कूर्मसमान-
माशु ॥ १ ॥ अथ यवान्यादिचूर्णम्—यवानिकाचित्रकयावशूकषड्ग्रन्थ-
दन्तीमगधोद्भवानाम् । प्लीहानमेतद्विनिहन्ति चूर्णमुष्णाम्बुना मस्तुसुरास-
वैर्वा ॥ १ ॥ अथ कुष्ठादिचूर्णम्—कुष्ठं वचा शृङ्गवेरं चित्रकं कौटजं फ-
लम् । पाठा चैवाजमोदा च पिप्पल्यः समचूर्णिताः ॥ १ ॥ ततो विडालप-
दकं पिबेदुष्णेन वारिणा । प्लीहोदरमुदावर्तं सर्वमेतेन शाम्यति ॥ २ ॥ अथ
लघुहिङ्गवादिचूर्णम्—हिङ्गु त्रिकटुकं कुष्ठं यवक्षारोऽथ सैन्धवम् । मातु-
लुङ्गरसेनैव प्लीहशूलहरं परम् ॥ १ ॥ वायुः प्लीहानमुद्धृत्य कुपितो यस्य ति-
ष्ठति । शूलैः परितुदन्पार्श्वे प्लीहा तस्य प्रवर्धते ॥ २ ॥ अथ सिन्ध्वादिचू-
र्णम्—सिन्धुमगधाम्निचूर्णं शिशुशिफाजाजिकासमं पीतम् । प्रबलमपि यो-
गराजः प्लीहानं नाशयत्याशु ॥ १ ॥ अथ विडङ्गादिचूर्णम्—विडङ्गानि
यवानी च चित्रकं चेति तत्समम् । द्विगुणं देवदारुं च नागरं सपुनर्नवम्
॥ १ ॥ त्रिवृद्धागाश्च चत्वारस्तत्सर्वं कल्कपेषितम् । क्षीरेणोष्णेन पातव्यं श्रेष्ठं
प्लीहविनाशनम् ॥ २ ॥ अथ वैतानि चूर्णानि गवां मूत्रेण पाययेत् । उदरी-
भूतमप्येवं प्लीहानं संप्रणाशयेत् ॥ ३ ॥

अथ वज्रक्षारः—सौवर्चलं यवक्षारं सामुद्रं काचसैन्धवम् । टङ्गणं स्व-
जिकाक्षारं तुल्यमेकत्र चूर्णयेत् ॥ १ ॥ अर्कदुग्धैः स्नुहीदुग्धैर्भावयेदातपे

व्यहम् । ऊर्ध्वाधस्थैः क्रमात्तस्य तत्तुल्यैरर्कपल्लवैः ॥ २ ॥ भाण्डे संस्थाप्य
मृलिसे रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् । स्वाङ्गशीतं तु संचूर्ण्य चूर्णमेपां तु मेलयेत् ॥ ३ ॥
व्यूषणं च विडङ्गं च राजिकां त्रिफलामपि । चव्यं च हिङ्गुसंभृष्टं तर्केणाद्या-
द्यथाबलम् ॥ ४ ॥ वज्रक्षाराभिधं चूर्णमुदराणि विनाशयेत् । शोथं गुल्मं
तथाऽष्टीलां मन्दाग्निमरुचिं तथा । स्त्रीहानं यकृद्वाल्याख्यमुदरं च विशेषतः ५

अथ वृन्दाच्छुक्तिकाक्षारादियोगः—पातव्यो युक्तितः क्षारः क्षीरेणो
दधिशुक्तिजः । पयसा वा प्रयोक्तव्याः पिप्पल्यः स्त्रीहशान्तये ॥ १ ॥
अथ क्षारादियोगः—क्षारं वा विडकृष्णाभ्यां पृतिकस्याम्बुनि शृतम् ।
यकृत्स्त्रीहप्रशान्त्यर्थं पिबेत्प्रातर्यथाबलम् ॥ १ ॥ अथ सौभाञ्जनादियो-
गः—सौभाञ्जनकनिर्यूहं सैन्धवाग्निकणान्वितम् । पलाशक्षारयुक्तं वा यव-
क्षारं प्रयोजयेत् ॥ १ ॥ अथ लशुनादियोगः—लशुनं पिप्पलीमूलम-
भ्यां चैव भक्षयेत् । पिबेद्भूमूत्रगण्डूषं स्त्रीहरोगविमुक्तये ॥ १ ॥ अथ
रोहीतकादिकल्कम्—रोहीतकाभयाकल्कं भावितं सूत्रमम्बुना । पीतं
सर्वोदरस्त्रीहमेहार्शः कृमिगुल्मनुत् ॥ १ ॥ अथ द्रवन्तीनागवटी—
तिलैरण्डद्रवन्तीनां क्षारो भल्लातकं कणा । एपां भागं समं कृत्वा तत्तुल्यं
तु गुडं मतम् ॥ १ ॥ खादेदग्निबलं ज्ञात्वा पावकस्य विवृद्धये । जये-
त्स्त्रीहानमत्युग्रं यकृद्गुल्मं तथैव च ॥ २ ॥ अथ शिशुकाथः—शोफं स्त्रीहो-
दरं हन्ति पिप्पलीमरिचान्वितः । अम्लवेतससंयुक्तः शिशुकाथः ससैन्धवः
॥ १ ॥ अथ क्षारभावितपिप्पली—पलाशक्षारतोयेन पिप्पली परिभा-
विता । गुल्मस्त्रीहातिशमनी वह्निदीप्तिकरी मता ॥ १ ॥ अथाग्निमुखं लव-
णम्—चित्रकत्रिवृता दन्तीत्रिफलारुचकैः समैः । यावन्त्येतानि चूर्णानि
तावन्मात्रं तु सैन्धवम् ॥ १ ॥ भावयित्वा स्नुहीक्षीरैः सुक्काण्डे प्रक्षिपेत्ततः ।
मृत्पङ्केनानुलिप्याथ प्रक्षिपेज्जातवेदसि ॥ २ ॥ सुदग्धं च ततो ज्ञात्वा शनै-
र्वैद्यः समुद्धरेत् । तर्केण पीतं तच्चूर्णं यकृत्स्त्रीहोदरापहम् । एतदग्निमुखं नास्त्रा
लवणं वह्निवर्धनम् ॥ ३ ॥

अथ चित्रकाद्यं घृतम्—चित्रकस्य तुलाकाथे घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
आरनालं तु द्विगुणं दधिमण्डं चतुर्गुणम् ॥ १ ॥ पञ्चकोलकतालीसं क्षारौ च
पटुपञ्चकम् । यवान्यौ द्वे च जरणे मरीचं चाक्षसंमितम् ॥ २ ॥ एतैर्युक्त्या
घृतं सिद्धं मात्रया च पिबेत्प्रागे । स्त्रीहशोफोदराशोभं विशेषादग्निदीपनम्
॥ ३ ॥ अथ महारोहीतकं घृतम्—रोहीतकात्पलशतं संक्षुब्ध बदराढकम् ।
साधयित्वा जलद्रोणे चतुर्भागावशेषिते ॥ १ ॥ घृतप्रस्थं समावाप्य च्छाग-
क्षीरं चतुर्गुणम् । तस्मिन्द्रव्याणि सर्वाणि प्रदद्यात्कार्पिकाणि च ॥ २ ॥
व्योषं फलत्रिकं हिङ्गु यवानीं तुम्बरं बिडम् । विडङ्गं चित्रकं चैव हपुषा
श्वविकं वचा ॥ ३ ॥ अजाजी कृष्णलवणं दाडिमं देवदारु च । पुनर्नवा

विशाला च यवक्षारं सपौष्करम् ॥ ४ ॥ एतैर्घृतं विपकं तु विदध्यादृ-
ढभाजने । पाययेच्च पलं मात्रां रसयूषपयोम्बुभिः ॥ ५ ॥ यकृतप्लीहो-
दरं शूलमग्निमांघं च नाशयेत् । कुक्षिशूलं पार्श्वशूलं कटिशूलमरोच-
कम् ॥ ६ ॥ विबन्धशूलं शमयेत्पाण्डुरोगं सकामलम् । छर्द्यतीसारशमनं
तन्द्राज्वरनिवारणम् ॥ महारोहीतकं नाम्ना प्लीहघ्नं तु विशेषतः ॥ ७ ॥ इति
महारोहीतकं घृतम् ॥ इति प्लीहचिकित्सा ।

अथ यकृदुदरचिकित्सा—प्लीहोद्दिष्टाः क्रियाः सर्वा यकृतः संप्रकल्प-
येत् । कार्यं च दक्षिणे बाहौ तत्र शोणितमोक्षणम् ॥ १ ॥ पिप्पलीकल्कसं-
युक्तं घृतं क्षीरं चतुर्गुणम् । पक्त्वा पिबेद्यथावह्नि यकृद्वाल्युदरापहम् ॥ २ ॥
इति यकृदुदरचिकित्सा ।

अथ बद्धगुदप्रतीकारः—

स्विन्ने बद्धोदरे योज्यो बस्तिस्तीक्ष्णैस्तु भेषजैः । सतैललवणैश्चापि निरूह-
श्वानुवासनम् ॥ १ ॥ उदावर्तहरं सर्वं प्रकर्तव्यं चिकित्सितम् । वर्तयो वि-
विधाश्चात्र पायौ शस्ताः प्रकीर्तिताः ॥ २ ॥ तीक्ष्णैर्विरेचनं चात्र शस्यते तु
विशेषतः । वातहन्ता विधिः सर्वो विधातव्यो विज्ञानता ॥ ३ ॥ इति बद्ध-
गुदोदरम् ।

अथ क्षतोदरमुदकोदरं च—छिद्रान्नबद्धसंज्ञेषु जठरेषु प्रयोगवित् ।
लब्धानुज्ञो भिषक्कुर्यात्पाटनं व्यधनक्रियाम् ॥ १ ॥ तथा जातोदकं सर्वमुदरं
व्यधयेद्विपक् । जार्तीश्च सुहृदो दारान्ब्राह्मणान्नृपतिं गुरुम् ॥ २ ॥ अनुज्ञाप्य
भिषग्वर्यो विदध्यात्संशयं ध्रुवम् । सुवेष्टितं त्वधो नाभेर्वाभतश्चतुरङ्गुलात्
॥ ३ ॥ अङ्गुल्युदरमात्रं तु व्रीहिवक्त्रेण भेदयेत् । नाडीमुभयतोद्वारां संयो-
ज्यापहरेज्जलम् ॥ ४ ॥ न चैकस्मिन्दिने सर्वं दोषं त्वपहरेत्तथा । कासश्वासौ
ज्वरस्तृष्णा गात्रभङ्गश्च वेपथुः ॥ ५ ॥ अतिसारश्च सुतरां पूर्यते जठरं ततः ।
तृतीयपञ्चमाद्येषु दिवसेष्वल्पशः पुनः ॥ ६ ॥ स्त्रावयेदुदकं तैललवणाभ्यां
दहेद्द्वयम् । बद्धीयाद्विषतो दोषे रक्तं प्राक्प्रातिपूय च ॥ ७ ॥ संवेष्टयेद्वाढ-
तरं कौशेयादिकचर्मणा । जलोदरेऽम्बु विस्त्राव्यं जातं जातं विरेचनैः ॥ ८ ॥
विरिक्तजठराध्मानं स्नेहाद्यैर्बस्तिभिर्जयेत् । निश्रुतां लङ्घितां पेयामस्नेहलवणां
पिबेत् ॥ ९ ॥ अतः परं तु षण्मासान्क्षीरवर्ती भवेन्नरः । त्रीन्मासान्पयसा
पेयं पिबेन्नृश्चापि योजयेत् ॥ १० ॥ सकोरदूषश्यामाकपयसा लवणं लघु ।
नरः संवत्सरेणैव जयेदाशु जलोदरम् ॥ ११ ॥ इति क्षतोदरोदकोदरप्रती-
कारः ।

अथ सर्वोदरेषु सामान्यविधिः ।

उदराणां मलाव्यत्वाद्बहुशः शोधनं हितम् । क्षीरेणैरण्डजं तैलं पिबेन्मू-

त्रेण वा सकृत् । ज्योतिष्मत्याः पिबेत्तैलं पयसा वा दिने दिने ॥ १ ॥ इति शोधनं वृन्दात् । सूत्राण्यष्टाबुदरिणां सेके पाने च योजयेत् ॥ १ ॥ अथ देवदार्वदिलेपः—देवदारूपलाशार्कहस्तिपिप्पलिशिग्रुकैः । साश्वगन्धैः सगोमूत्रैः प्रदिह्यादुदरं शनैः ॥ १ ॥ अथ रोहीतकादियोगः—रोहीतकाभयाशुण्ठीः पिबेन्मूत्रेण शक्तितः । सर्वोदरहरं ह्रीहमेहार्शः कृमिगुल्मनुत् ॥ १ ॥ अथ विशालादिः—विशालाशङ्खिनीदन्तीत्रिवृत्रिफलकात्रयम् । निशाविडङ्गं कम्पिल्लं मूत्रेणोदरवाग्निपेत् ॥ १ ॥ अथ पयआदि—पयो वा चव्यदन्त्यश्लिविडङ्गव्योपकल्कितम् । पेयं वा शृङ्गवेराम्बु कषायो दारुबह्विजः । चव्यविश्वसमुत्थो वा पेयो जठरशान्तये ॥ १ ॥ अथ सुश्रुतात्—हरीतकीसहस्रं वा गोमूत्रेण पयोऽनुपः । सहस्रं पिप्पलीनां वा सुक्क्षीरेण सुभावि-
तम् ॥ १ ॥ पिप्पलीवर्धमानं वा क्षीराशी वा शिलाजतु । तद्वद्वा गुग्गुलं क्षीरं तुल्याद्रकरसं तथा । चित्रकामरदारुभ्यां कल्कं क्षीरेण वा पिबेत् ॥ २ ॥

अथ पिप्पलीवर्धमानम्—त्रिभिरथ परिवृद्धं पञ्चभिः सप्तभिर्वा दश-
भिरथ विवृद्धं पिप्पलीवर्धमानम् । इति पिबति युवा यस्तस्य न श्वासकास-
ज्वरजठरगुदाशोवातरक्तक्षयाः स्युः ॥ १ ॥ अथ देवदुमादि—देवदुमं शि-
शुमसूरकं च गोमूत्रपिष्टामथवाऽश्वगन्धाम् । पीत्वाऽऽशु हन्यादुदरं प्रवृद्धं
कृमीन्सशोफानुदरं च दूयम् ॥ १ ॥ अथ पटोलाद्यं चूर्णम्—पटोलमिन्द्र-
रजनीविडङ्गत्रिफलात्वचः । कम्पिल्लकं नीलिनीं च त्रिवृतां चेति चूर्णयेत् ॥ १ ॥
षडाद्यान्कार्षिकानन्त्यांस्त्रींश्च द्वित्रिचतुर्गुणान् । कृत्वा चूर्णं ततो मुष्टिं गवां
मूत्रेण वा पिबेत् ॥ २ ॥ विरिक्तो मृदु भुञ्जीत भोजनं जाङ्गलै रसैः । मण्डं
पेयां च पीत्वा वा सव्योपं षडहं पयः ॥ ३ ॥ शृतं पिबेत्तत्तश्चूर्णं पिबेदेवं
पुनः पुनः । हन्ति सर्वोदराण्येतच्चूर्णं जातोदकान्यपि ॥ कामला पाण्डुरोगं
च श्वयथुं चापकर्षति ॥ ४ ॥

अथ नारायणचूर्णम्—यवानि हपुषा धान्यं त्रिफला सोपकुञ्चिका ।
कारवी पिप्पलीमूलमजगन्धा शटी चचा ॥ १ ॥ शताह्वा जीरकं व्योपं स्व-
र्णक्षीरी सचित्रकम् । द्वौ क्षारौ पुष्करं मूलं कुष्ठं लवणपञ्चकम् ॥ २ ॥ वि-
डङ्गं च समांशानि दन्तीभागत्रयं तथा । त्रिवृद्विशाले द्विगुणे सातला स्या-
च्चतुर्गुणा ॥ ३ ॥ एष नारायणो नाम चूर्णो रोगगणापहः । तत्रेणोदरिभिः
पेयो गुल्मिभिर्बदरास्त्रुता ॥ ४ ॥ आनद्धवाते सुरया वातरोगे प्रसन्नया ।
दधिमण्डेन विट्सङ्गे दाडिमाम्बुभिरर्शसि ॥ ५ ॥ परिकर्तं च वृक्षाम्लैरुष्णा-
म्बुभिरजीर्णके । भगदरे पाण्डुरोगे कासे श्वासे गलग्रहे ॥ ६ ॥ हृद्दोगे ग्र-
हणीरोगे कुष्ठे मन्दानले ज्वरे । दंष्ट्राविषे मूलविषे गरले कृत्रिमे विषे । य-
थार्हं स्निग्धकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम् ॥ ७ ॥ इति नारायणचूर्णम् । अथ

क्षारद्वयचूर्णम्—क्षारद्वयानलव्योपनीलीलवणपञ्चकम् । चूर्णितं सर्पिषा पेयं सर्वगुल्मोदरापहम् ॥ १ ॥ अथ वृन्दाच्छुक्तिकाक्षारादियोगः—सामुद्रशुक्तिकाक्षारो यवक्षारः ससैन्धवः । गोदक्षा संप्रयुज्येत सर्वोदरविनाशनः ॥ १ ॥ अथोष्ठीक्षीरपानम्—उष्ठीक्षीरं पिबेज्जीर्णं निरन्नो जेठरामयी । पक्षं मासमृतं वाऽपि न च पानीयमाचरेत् ॥ १ ॥

अथ घृतानि

तत्राऽऽदौ बिन्दुघृतम्—अर्कक्षीरं पले द्वे तु स्नुहीक्षीरं पलानि षट् । पथ्या कम्पिलकं श्यामा शम्याकं गिरिकर्णिका ॥ १ ॥ नीलिनी त्रिवृता दन्ती शङ्खिनी चित्रकं तथा । एतेषां पलिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २ ॥ अथास्य मलिने कोष्ठे बिन्दुमात्रं प्रदापयेत् । यावदस्य पिबेद्विन्दून् तावद्वेगान्विरिच्यते ॥ ३ ॥ कुष्ठं गुल्ममुदावर्तं श्वयथुं सभगंदरम् । शमयत्युदराण्यष्टौ वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा । एतद्विन्दुघृतं नाम येनाभ्यक्तो विरिच्यते ॥ ४ ॥ इति वृन्दाद्विन्दुघृतम् ।

अथ योगतरङ्गिण्या नाराचघृतम्—त्रिफला चित्रको दन्ती बृहती कण्टकारिका । स्नुही चार्कविडङ्गानि घृतस्य कुडवं पचेत् ॥ १ ॥ तस्य मृद्वसि-सिद्धस्य कर्पाथं पाययेन्नरम् । शोथगुल्मोदरानाहल्लीहोदरजलोदरान् । नाशयत्युल्वणनेतान्सर्पिर्नाराचसंज्ञितम् ॥ २ ॥ अथ त्रिवृताद्यं घृतम्—पयस्यष्टगुणे सर्पिःप्रस्थं स्रुक्पयसः पलम् । त्रिवृता पलकल्केन सिद्धं जठरगुल्मनुत् ॥ १ ॥ अथ पञ्चमूलाद्यं घृतम्—द्वे पञ्चमूल्यौ त्रिवृता निकुम्भः ससप्तलं चित्रकशिग्रुमूलम् । करञ्जबीजं त्रिफलागुडूचीमेरुण्डमूलं मदयन्तिका च ॥ १ ॥ पाठां सभागौ सुपर्वी सतिकां सरोहिपां यासकुचेलिकां च । पृथक्समाहृत्य पलं जलस्य द्रोणे पचेत्तच्चतुरंशशेषे । घृतं विपक्वं सकपाययुक्तं निहन्ति पीतं सकलोदराणि ॥ २ ॥ इति पञ्चमूलाद्यं घृतम् । अथ हिङ्गु-ग्वादिघृतम्—हिङ्गुवा रसोनाद्र्कशिग्रुपथ्यापङ्गप्रन्थिदन्तीदशमूलतोयैः । द्विक्षारपञ्चोपणकल्कपादैः सिद्धं घृतं तज्जठरे प्रशस्तम् ॥ १ ॥ इति घृतानि ।

अथ तक्रपानम्—वातोदरी पिबेत्तक्रं पिप्पलीलवणान्वितम् । शर्करामरिचोपेतं स्वादु पित्तोदरी पिबेत् ॥ १ ॥ यवानीसैन्धवाजाजीव्योपयुक्तं कफोदरी । संनिपातोदरी तक्रं त्रिकटुक्षारसैन्धवैः ॥ २ ॥ बद्धोदरी तु हपुषा दीप्यकाजाजिसैन्धवैः । पिबेच्छिद्रोदरी तक्रं पिप्पलीक्षौद्रसंयुतम् । त्र्यूषणक्षारलवणैर्युक्तं तु सलिलोदरी ॥ ३ ॥ इति तक्रम् ।

अथ शोफोदरचिकित्सा—हरीतकीनागरदेवदारुपुनर्नवाछिन्नरहाकपायः । सगुग्गुलुर्मृत्रयुतश्च पेयः शोफोदराणां प्रवरः प्रयोगः ॥ १ ॥ पुनर्नवानिम्बपटोलशुण्ठीतिक्ताभयादार्व्यमृताकपायः । सर्वाङ्गशोफोदरकासशूल-

श्वासान्वितं पाण्डुगदं निहन्ति ॥ २ ॥ पुनर्नवादाव्यभयागुडूचीः पिबेत्समूत्रा
महिषाक्षयुक्ताः । त्वग्दोषशोफोदरपाण्डुरोगस्थौल्यप्रसेकोर्ध्वकफामयेषु ॥ ३ ॥
गोमूत्रयुक्तं महिषीपयो वा क्षीरं गवां वा त्रिफलाविमिश्रम् । क्षीरान्नमुक्ते-
वलमेव गव्यं मूत्रं पिबेद्वा श्वयथूदरेषु ॥ ४ ॥ सप्ताहं माहिपं मूत्रं पयसा
चाम्बुवर्जितम् । पिबेदौघं पयो मासं श्वयथूदरनाशनम् ॥ ५ ॥ बिल्वाग्निच-
व्यार्द्रकशुङ्गवेरकाथेन कल्केन च सिद्धमाज्यम् । सच्छागदुग्धं ग्रहणीगुदो-
त्थशोफाग्निसादारुचिहृद्वरिष्ठम् ॥ ६ ॥ इति श्वयथूदरचिकित्सा ।

अथ रसाः ।

तत्राऽऽदौ नाराचो रसः । भृष्टटङ्कणतुल्यं तु मरिचं च रसं समम् ।
गन्धकं पिप्पली शुण्ठी द्वौ द्वौ भागौ विचूर्णयेत् ॥ १ ॥ सर्वतुल्यं क्षिपेद्वन्ती-
बीजं सर्वमकल्मषम् । द्विगुञ्जं रेचनं चैतदुदराणि व्यपोहति ॥ २ ॥ अथे-
च्छाभेदी रसः—शुण्ठीमरीचसंयुक्ता रसगन्धकटङ्कणाः । जेपालस्त्रिगुणः
प्रोक्तः सर्वमेकत्र मर्दितम् ॥ १ ॥ इच्छाभेदी रसो ह्यस्य द्विगुञ्जं ससितां
पिबेत् । यावच्च चूलकाः पीतास्तावद्देगैर्विरिच्यते । तक्रोदनं च दातव्यं प-
थ्यमत्र विजानता ॥ २ ॥ अथ जलोदरारिः—पिप्पलीमरिचं तान्नं का-
ञ्चनीचूर्णसंयुतम् । सुहीक्षीरैर्दिनं मर्द्यं तुल्यं जेपालबीजकम् । निष्कं भुक्तं
विरेकेण सत्यं हन्ति जलोदरम् ॥ १ ॥ अत्र क्रव्यादरसो हितः ।

अथ पथ्यापथ्यम्—

दोषैः कुक्षौ हि संपूर्णे वह्निर्मन्दत्वमृच्छति । तस्मान्नोज्यानि योज्यानि
दीपनानि लघूनि च ॥ १ ॥ शालिपष्टिकगोधूमयवनीवारभोजनम् । विरेका-
स्थापनं श्रेष्ठं सर्वेषु जठरेषु च ॥ २ ॥ इति वृन्दात् । अथ पथ्यापथ्यं सं-
हितायाम्—विरेचनं लङ्घनमब्दसंभवाः कुलत्थमुद्रारुणशालयो यवाः ।
मृगा द्विजा जाङ्गलसंज्ञयाऽन्विताः पेया सुरा माक्षिकसीधुसैन्धवाः ॥ १ ॥
तक्रं रसनोस्त्रुतैलमार्द्रकं शालिं च शाकं कुलकं कटिलकम् । पुनर्नवाशिग्रु-
फलं हरीतकी ताम्बूलमेला यवशूकमायसम् ॥ २ ॥ अजागवोघ्नीमहिषीपयो
जलं लघूनि तीव्राणि च दीपनान्यपि । यथामलं पथ्यगणोऽयमाश्रितः सखा
नृणां स्यादुदरामये सति ॥ ३ ॥ अम्बुपानं दिवास्वापं गुर्वभिष्यन्दि भोज-
नम् । व्यायामं चाध्वयानं च जठरी परिवर्जयेत् ॥ ४ ॥ इति पथ्यापथ्यम् ।
इत्युदरचिकित्सा ॥

अथातः शोथनिदानं व्याख्यास्यामः ।

अथ शोथस्य संप्राप्तिपूर्वकं रूपमाह—रक्तपित्तकफान्वायुर्दुष्टो दुष्टा-
न्वहिःशिराः । नीत्वा रुद्धगतिस्तैर्हि कुर्यान्मांसत्वगाश्रयम् । उत्सेधं संहतं

शोफं तमाहुर्निचयादतः ॥ १ ॥ सर्वं हेतुविशेषैस्तु रूपभेदान्नवात्मकम् ।
दोषैः पृथग्द्वयैः सर्वैरभिघाताद्विपादपि ॥ २ ॥ अथ तस्य पूर्वरूपमाह—त-
त्पूर्वरूपं द्रव्युः शिरायामोऽङ्गगौरवम् ॥ ३ ॥ अथ कारणमाह—शुद्धा-
मयाभक्तकृशाबलानां क्षाराम्लतीक्ष्णोष्णगुरुरूपसेवा । दध्याममृच्छाकविरोधि-
दुष्टगरोपसृष्टान्ननिषेवणं च ॥ ४ ॥ अर्शांस्यचेष्टा न च देहशुद्धिर्मर्माभिघातो
विषमा प्रसूतिः । मिथ्योपचारः प्रतिकर्मणां च निजस्य हेतुः श्रयथोः प्रदिष्टः
॥ ५ ॥ अथ तस्य सामान्यलक्षणमाह—सगौरवं स्यादनवस्थितत्वं सो-
त्सेधमूष्माऽथ शिरातनुत्वम् । सलोमहर्षं च विवर्णता च सामान्यलिङ्गं
श्रयथोः प्रदिष्टम् ॥ ६ ॥ अथ वातशोथमाह—चलस्तनुत्वक्परुषोऽरुणोऽ-
सितः प्रसुप्तिहर्षार्तियुतोऽनिमित्ततः । प्रशाम्यति प्रोन्नमति प्रपीडितो दिवा
बली च श्रयथुः समीरणात् ॥ ७ ॥ अथ पैत्तिकमाह—मृदुः सगन्धोऽसितपी-
तरागवाञ्ज्वरभ्रमस्वेदतृषामदान्वितः । य उष्यते स्पर्शरुगक्षिरागकृत्सपित्तशोफो
भृशदाहपाकवान् ॥ ८ ॥ अथ कफजमाह—गुरुः स्थिरः पाण्डुरोचका-
न्वितः प्रसेकनिद्रावमिवह्निमान्द्यकृत् । सकृच्छृजन्मप्रशमो निपीडितो न चो-
न्नमेद्रात्रिबली कफात्मकः ॥ ९ ॥ शूयन्ते यस्य गात्राणि स्पन्दन्निव रुज-
न्निव । पीडितोऽत्युन्नमति च वातशोफं तमादिशेत् ॥ १० ॥ यश्चाप्यरुणव-
र्णाभः शोफो नक्तं प्रणश्यति । स्नेहोष्णमर्दनाभ्यां च प्रणश्येत्स च वातिकः
॥ ११ ॥ यः पीतः सज्वरार्तिः स्यादूयते च विदह्यते । स्विद्यते क्लिद्यते गन्धिः
स पैत्तः श्रयथुः स्मृतः ॥ १२ ॥ यः पीतमुखवर्णत्वक्पूर्वमध्यात्प्रसूयते । त-
नुत्वचातिसारौ च स पैत्तः श्रयथुः स्मृतः ॥ १३ ॥ अथ द्विदोषजन्य-
माह—निदानाकृतिसंसर्गाच्छ्रयथुः स्याद्विदोषजः । अथ संनिपातजमाह—
सर्वाकृतिः संनिपाताच्छोफो व्यामिश्रहेतुजः ॥ १४ ॥ अथाभिघातजमाह—
अभिघातेन शस्त्रादिच्छेदभेदक्षतादिभिः । हिमानिलोदध्यनिलैर्मल्लतकपिक-
च्छुकैः ॥ १५ ॥ रसैः शूकैश्च संस्पर्शाच्छ्रयथुः स्याद्विसर्पवान् । भृशोष्मा
लोहिताभासः प्रायशः पित्तलक्षणः ॥ १६ ॥ अथ विषजलक्षणमाह—वि-
षजः सविषप्राणिपरिसर्पणमूत्रणात् । दंष्ट्रादन्तनखाघातादविषप्राणिनामपि
॥ १७ ॥ विषमूत्रशुक्रोपहतमलवद्वस्त्रसंकरात् । विषवृक्षानिलस्पर्शाद्भ्रयो-
गावचूर्णनात् ॥ मृदुश्चलोऽवलम्बी च शीघ्रो दाहरुजाकरः ॥ १८ ॥ अथ य-
स्मिन्देहो दोषाः शोथं कुर्वन्ति तमाह—दोषाः श्रयथुमूर्ध्वं हि कुर्वन्त्यामा-
शयस्थिताः ॥ १९ ॥ पक्वाशयस्था मध्ये तु वर्चस्थानगतास्त्वधः । कृत्स्नदे-
हमनुप्राप्ताः कुर्युः सर्वसरं तथा ॥ २० ॥ यो मध्यदेशे श्रयथुः सकष्टः सर्व-
गश्च यः । अधोङ्गेऽरिष्टभूतः स्याद्यश्चोर्ध्वं परिसर्पति ॥ २१ ॥ अथोपद्रवा-
रिष्टस्यासाध्यत्वमाह—श्वासः पिपासा छर्दिश्च दौर्बल्यं ज्वर एव च । यस्य
चान्नेऽरुचिर्नास्ति शोथिनं परिवर्जयेत् ॥ २२ ॥ ऊर्ध्वगामी नरं पद्भ्यामधो-

गामी स्त्रियं मुखात् । उभयोर्बस्ति संजातः शोफो हन्ति न संशयः ॥ २३ ॥
 अथ स्थानभेदेनासाध्यत्वमाह—अनन्योपद्रवकृतः शोथः पादसमुद्भवः ।
 पुरुषं हन्ति नारीं तु मुखजो गुह्यजो द्वयम् ॥ २४ ॥ उपद्रवानाह—श्वासः
 पिपासा दौर्बल्यं ज्वरच्छर्दिरोचकाः । हिक्कातीसारकासाश्च शोथिनं क्षपयन्ति
 हि ॥ २५ ॥ अथ तन्त्रान्तरे—पादप्रवृत्तः श्वयथुर्नृणां यः प्राप्नुयान्मुखम् ।
 वक्त्रादधस्ताद्यो याति बस्ति तस्य न सिध्यति ॥ १ ॥ अथ क्षीरपाणिनाऽ-
 प्युक्तम्—ऊर्ध्वगामी नरं पञ्चामधोगामी मुखात्स्त्रियं । उभयोर्बस्ति संजातः
 शोथो हन्ति न संशयः ॥ २ ॥

इति शोथनिदानम् ।

अथ शोथचिकित्सा ।

निदानदोषार्तिविपर्ययक्रमैरुपाचरेत्तं बलकालदोषवित् । अथाऽऽमजं लङ्घ-
 घनपाचनक्रमैर्विशोधनैरुत्त्वणदोषमादितः ॥ १ ॥ शिरोगतं शीर्षविरेचनै-
 रधोविरेचनैरूर्ध्वमतस्तथोर्ध्वम् । उपाचरेत्स्नेहभवं विरुक्षणैः स्नेहस्तु रुक्षेण
 विरुक्ष्यते ध्रुवम् ॥ २ ॥ विबद्धविट्कानिलजे निरुहणं घृतं तु पित्तानिलजे
 सतिक्तकम् । शोथेन मूर्च्छावति दाहकपिते विशोधनीयं तु समुन्नमिष्यते
 ॥ ३ ॥ कफोत्थितं क्षारकट्पूषसंयुतैः समूत्रतक्रैस्तु च युक्तिभिर्हरेत् ॥ ४ ॥
 मुखतो जायते शोथः स्त्रीणां पुंसां च पादतः । असाध्यौ द्वावपि प्रोक्तौ तयोः
 पुण्यान्निवर्तनम् ॥ ५ ॥ अथ श्वयथोर्वातादिभेदविशेषचिकित्सा—शोथे
 वातोत्थितं पूर्वं मासार्धं त्रिवृतं पिबेत् ॥ १ ॥ तैलमेरण्डजं वाऽपि मलबन्धेऽपि
 तन्मतम् । शाल्यन्नं पयसा युक्तं रसैर्वाऽपि प्रयोजयेत् । स्वेदाभ्यङ्गांश्च वातघ्ना-
 न्सेकलेपांश्च कल्पितान् ॥ २ ॥ अथ शुण्ठ्यादिकाथः—शुण्ठीपुनर्न-
 वैरण्डपञ्चमूलशृतं जलम् । वातिके श्वयथौ पेयं मुक्तपाकेऽपि तन्मतम्
 ॥ १ ॥ अथ बीजपूरादिलेपः—बीजपूरजटाहिंसादेवदारुमहौषधम् । रा-
 स्नाग्निमन्थलेपोऽयं वातशोथविनाशनः ॥ १ ॥ इति वातशोथचिकित्सा ।
 अथ पित्तशोथे—क्षीराग्निः पित्तकृतेऽतिशोफे त्रिवृद्गुडूचीत्रिफलाक-
 पायम् । पिबेद्भवां मूत्रविमिश्रितं वा फलत्रिकाचूर्णमथाक्षमात्रम् ॥ १ ॥ अथ-
 पटोलादिकाथः—पटोलत्रिफलारिष्टदार्वाकाथः सगुग्गुलुः । हन्ति पित्त-
 भवं शोथं तृष्णाज्वरसमन्वितम् ॥ १ ॥ इति पित्तशोथचिकित्सा । अथ-
 कफशोथे—पुनर्नवाविशत्रिवृद्गुडूचीशम्याकपथ्यासुरदारुकलकम् । शोफे
 कफोत्थेऽक्षसमं समूत्रं काथं पिबेद्वाऽप्यथ चैव तेपाम् ॥ १ ॥ अथ पुनर्न-
 वाचलेहः—पुनर्नवामृतादारुदशमूलरसाढके । आर्द्रकस्य रसप्रस्थे गुडस्य
 च तुलां पचेत् ॥ १ ॥ तत्सिद्धं व्योषपत्रैलात्वक्पत्रैः कार्पिकैः पृथक् । चूर्णा-
 कृतैर्लिहेच्छीते मधुनः कुडवं क्षिपेत् ॥ २ ॥ लेहः पुनर्नवो नाम श्लेष्मशोफ-
 निपूदनः । श्वासकासारुचिहरो बलपुष्टयश्विबर्धनः ॥ ३ ॥ अथाऽऽरग्वधा-

दितैलम्—कफोत्थेऽत्र पिबेत्तैलं सिद्धमारग्वधादिना । मन्देऽग्नौ स्तिमिते कोष्ठे स्रोतोरोधेऽरुचावपि ॥ क्षारमूत्रासवारिष्टचूर्णं तत्रैव नियोजयेत् ॥ १ ॥ इति कफशोधचिकित्सा । अथ त्रिदोषजमिश्रे च—मिश्रे मिश्रकर्मं कुर्यात्सर्वजं सर्वमेव तु ॥ १ ॥ अथ पिप्पल्यादिचूर्णम्—पिप्पल्यजाजी गजपिप्पली च निदिग्धिकानागरचित्रकैश्च । रजन्ययः पिप्पलिमूलपाठामुस्तं च चूर्णं सुखतोयपीतम् ॥ कल्कश्च भूनिम्बमहौषधाभ्यां हन्यान्त्रिदोषं चिरजं च शोफम् ॥ १ ॥ अथाऽऽर्द्रकरसादियोगः—रसस्तथैवाऽऽर्द्रकनागरस्य पेयोऽथ जीर्णे पयसाऽन्न मद्यात् । शिलाह्वयं वा त्रिफलारसेन हन्यान्त्रिदोषं श्वयथुं प्रसह्य ॥ १ ॥ इति त्रिदोषजमिश्रचिकित्सा । अथाऽगन्तुजे विषजे च—शोफे चाऽऽगन्तुजे कुर्यात्सेकलेपादिशीतलम् । भल्लातकभवे शोफे सतिला कृष्णसृत्तिका ॥ १ ॥ नवनीततिलालेपादथ दुग्धं तिलान्वितम् । यष्टि दुग्धतिलैर्लेपो नवनीतेन संयुतः ॥ शोफमारुष्करं हन्ति चूर्णं शालदलस्य वा ॥ २ ॥ इत्यागन्तुकविपचिकित्सा ॥

अथ सामान्यविधिः ।

अथ बिल्वपत्रस्वरसः—बिल्वपत्ररसः पीतः शोपणः श्वयथौ रुजि । विदसङ्गे चैव दुर्नाग्निं विपूच्यां कामलास्त्रपि ॥ १ ॥ अथ भूनिम्बादिकल्कः भूनिम्बविश्वकल्कं जग्ध्वा पीतः पुनर्नवाकाथः । अपहरति नियतमाशु श्वयथुं सर्वाङ्गजं नृणाम् ॥ २ ॥

अथ क्वाथाः—तत्राऽदौ पथ्यादिः । पथ्यामृताभार्गिपुनर्नवाग्निदावीनि-शादास्महौषधानाम् । क्वाथो निपीतोदरपाणिपादवक्त्राश्रितं हन्त्यचिरेण शोफम् ॥ १ ॥ अथ त्रिफलादिक्वाथः—त्रिफलाक्वाथपानं हि महिपी-सर्पिषा सह । हन्ति शोफं प्रमेहं च नाडीव्रणभगंदरम् ॥ १ ॥ अथ सिंहा-स्यादिः—सिंहास्यामृतभण्टाकीक्वाथं पीत्वा समाक्षिकम् । कृच्छ्रशोथं जये-जन्तुः कासं श्वासं ज्वरं वमिम् ॥ १ ॥

अथ चूर्णानि—तत्राऽदौ पिप्पल्यादि—कृष्णाग्निविश्वधनजीरकक-ण्टकारीपाठानिशाकरिकणामगधाजटानाम् । चूर्णं कवोष्णसलिलेन विलोड्य पीतं नातः परं श्वयथुरोगहरं नराणाम् ॥ १ ॥ अथ गुडाद्यं चूर्णम्—गुडपि-प्पलिशुण्ठीनां चूर्णं श्वयथुनाशनम् । आमाजीर्णप्रशमनं शूलघ्नं बस्तिशोधनम् ॥ १ ॥ अथान्यच्च—गुडात्पलत्रयं ग्राह्यं शृङ्गबेरं पलत्रयं । शृङ्गबेरसमा कृष्णा लोहकिट्टायसोः पलम् ॥ चूर्णमेतत्समुद्दिष्टं सर्वश्वयथुनाशनम् ॥ १ ॥ अथ पुनर्नवाद्यं चूर्णम्—पुनर्नवा दार्व्यमृता पाठा विश्वश्वदंष्ट्रिका । रजन्यौ द्वे बृहत्यौ च पिप्पल्यश्चित्रकं वृषः ॥ १ ॥ समभागानि संचूर्ण्य गवां मूत्रेण वा पिबेत् । बहुप्रकारं श्वयथुं सर्वगात्रावसारिणम् ॥ हन्ति चाऽऽशूदराण्यष्टौ

त्रणांश्चैवोद्धतानपि ॥ २ ॥ अथ विडङ्गादि—विडङ्गदन्तीकटुकात्रिवृच्चि-
त्रकदारवः । व्योषः सकृष्णा त्रिफला समा देया ह्ययोरजः ॥ द्विगुणं तत्पि-
बेच्चूर्णं पयसा शोफशान्तये ॥ १ ॥ अथ गुडार्द्रकादियोगः—गुडार्द्रकं
वा गुडनागरं वा गुडाभयां वा गुडपिप्पलीं वा । कर्षाभिवृद्धा त्रिपलप्र-
माणं खादेन्नरः पथ्यमथापि मासम् ॥ १ ॥ शोफप्रतिश्यायगलास्यरोगान्स-
श्वासकासारुचिपीनसादीन् । जीर्णज्वराशौग्रहणीविकारान्हन्यात्तथाऽन्यान्पि
वातरोगान् ॥ २ ॥ अथ पुनर्नवादियोगः—पुनर्नवामूलकदेवदारुचिन्नोद्भ-
वाचित्रकमूलसिद्धाः । रसा यवागूश्च पयांसि यूषाः शोफे प्रदेया दशमूल-
गर्भाः ॥ १ ॥ अथ क्षीरम्—क्षीरं शोफहरं दारुवर्षाभूनागैः शृतम् ।
पेयं वा चित्रकव्योषत्रिवृद्दारुप्रसाधितम् ॥ १ ॥ अथाऽर्द्रकरसः—आर्द्र-
कस्य रसः पीतः पुराणगुडमिश्रितः । अजाक्षीराशिनः शीघ्रं सर्वशोथहरो
भवेत् ॥ १ ॥ अथ गोमूत्रमण्डूरम्—गोमूत्रसिद्धमण्डूरं सुरभीरसभावि-
तम् । माणकार्द्रककन्दानां रसेष्वपि च भावयेत् ॥ १ ॥ त्रिफलाकटुकच्युनां
चूर्णं पाणितलद्वयम् । क्षिपेत्सुसिद्धे पाके तु मधुनश्च पलद्वयम् ॥ निहन्ति
सर्वजं शोफं सर्वाङ्गं च विशेषतः ॥ २ ॥ इति गोमूत्रमण्डूरम् । अथ कंस-
हरीतकी—द्विपञ्चमूलस्य पचेत्कषाये कंसेऽभयानां च शतं गुडाच्च । लेहे
सुसिद्धे च विनीय चूर्णं व्योषत्रिसौगन्ध्यमुपस्थिते च ॥ १ ॥ प्रस्थार्धमात्रं
मधुनः सुशीते किञ्चिच्च चूर्णादपि यावद्गुहात् । एकाभयां प्राश्य ततश्च
लेहाच्छुक्तिर्निहन्ति श्वयथुं प्रवृद्धम् ॥ २ ॥ कासज्वरारोचकमेहगुल्मप्लीह-
त्रिदोषोदरपाण्डुरोगान् । कार्श्यामवातानसृगम्लपित्तवैवर्ण्यमूत्रानिलशुक्र-
दोषान् ॥ ३ ॥ दशमूलं हरीतक्या तुल्यं कंसहरीतकी । मानं तेनात्र तत्रस्थं
चरके प्राह जैजटः ॥ ४ ॥ इति कंसहरीतकी । अथ दशमूलहरीतकी—
दशमूलीकषायस्य कंसे पथ्याशतं गुडात् । तुलां पचेद्धने तत्र व्योषक्षारचतु-
ष्पलम् ॥ १ ॥ त्रिजातं तु सुवर्णांशं प्रस्थार्धं मधुनो हिमे । दशमूलहरीत-
क्यः शोफान्घ्नन्ति सुदुस्तरान् ॥ २ ॥

अथ पुनर्नवासवः—पुनर्नवे द्वे तु पले सपाठा दन्ती गुडूची सह चित्र
केण । निदिग्धिका च त्रिफला विषका द्रोणावशेषे सलिले ततस्तम् ॥ १ ॥
पूत्वा रसे द्वे च शतं पुराणं गुडं मधुप्रस्थयुतं सुशीतम् । मासं निदध्याद्
घृतभाजनस्थं पले यवानां परतश्च मासम् ॥ २ ॥ चूर्णाकृतैरर्धपलांशकैस्तैर्ह-
मत्वगोलामरिचाम्बुपत्रैः । गन्धान्वितं क्षौद्रयुतं प्रदिग्धं जीर्णे पिबेद् व्याधि-
बलं समीक्ष्य ॥ ३ ॥ हृत्पाण्डुरोगश्वयथुं प्रवृद्धं प्लीहभ्रमारोचकमेहगुल्मान् ।
भगंदराशौजठराणि कासश्वासग्रहण्यामयकुष्ठकण्डूः ॥ ४ ॥ शाखानिलं बद्ध-
पुरीपतां च हिक्रां तु कासं च हलीमकं च । क्षिप्रं जयेद्वर्णबलायुरोजस्तेजो-
न्वितो मांसरसांश्च भुक्त्वा ॥ ५ ॥ इति गदनिग्रहात्पुनर्नवासवः । अथ

सर्वशोफे वासासवः—वासकस्य तुले द्वे तु द्विद्रोणेऽपां विपाचयेत् ।
द्रोणार्धशेषं तं ज्ञात्वा पूते शीते प्रदापयेत् ॥ १ ॥ गुडस्यैकां तुलां तत्र धात-
क्यास्तु पलाष्टकम् । क्षिपेच्चूर्णीकृतं तस्मिन्स्वगोलापत्रकेसरम् ॥ २ ॥ कङ्को-
लव्योषतोयानि पालिकान्युपकल्पयेत् । निदध्याद्घृतभाण्डे तु पक्षादूर्ध्वं
ततः पिबेत् ॥ वासकासव इत्येव सर्वश्वयथुनाशनः ॥ ३ ॥ इति वासासवः ॥
अथ दार्वादियोगः—पिबेदुष्णाम्बुना दारुपथ्याशुण्ठीपुनर्नवा । विडङ्गा-
तिविषावासाविश्वदारुपणानि च । वषाभूशृङ्गवेराभ्यां कल्कं वा सर्वशोफनुत्
॥ १ ॥ अथ तक्रादियोगः—तक्रं पिबेद्वा गुरुभिन्नवर्चाः सव्योपसौवर्चल-
माक्षिकं च । विडवातसङ्गे पयसा रसेर्वा प्रागुष्णमद्यादुखूकतैलम् ॥ १ ॥
अथ पुनर्नवादिवृत्तम्—पुनर्नवापत्ररसालमूलं संक्षुद्य तोयार्मणशेषसि-
द्धम् । चतुर्थभागेन घृतं विपकं प्रस्थं तु तत्कल्कपलाष्टकेन ॥ १ ॥ संसेवितं
वातबलासरोगान्सर्वांश्च शोफानतिदुस्तरांश्च । गुल्मोदरप्लीहगुदोद्भवांश्च निह-
न्ति वह्निं कुरुतेऽपि पुंसाम् ॥ २ ॥ अथ पञ्चमूलाद्यं तैलम्—पञ्चमूलं
सलवणं सरलं देवदारु च । हस्तिकर्णी पलाशस्य फलानि निचुलस्य च ॥ १ ॥
पलांशं काकनासा च गुडूचीदेवपुष्पकम् । अहिंसा श्रेयसी हिंसा बस्तग-
न्धा पुनर्नवा ॥ २ ॥ कायस्था च वयस्था च दारुका जटिला जटा । अलम्बु-
पोखूकं च प्रपुन्नाटं सनागरम् ॥ ३ ॥ शिशु गोधावनी भार्गी तर्कारी पौष्क-
री जटा । एतैः सिद्धं यथालाभं तैलमभ्यञ्जनैस्त्रिभिः । निहन्त्युदीर्णं श्वयथुं
जन्तोर्वातकफात्मकम् ॥ ४ ॥ अथ शुष्कमूलकाद्यं तैलम्—शुष्कमूल-
कवर्षाभूदारुरास्त्रामहौषधैः । पक्वमभ्यञ्जने तैलं समूलं शोफनाशनम् ॥ १ ॥

अथ सेकलेपस्वेदनानि ।

अथ पुनर्नवादिलेपः—पुनर्नवादारुशुण्ठीसिद्धार्थं शिशुमेव च । पिष्ट्वा
चैवाऽऽरनालेन प्रलेपः सर्वशोथजित् ॥ १ ॥ अथ कृष्णादिलेपः—कृष्णा
पुराणपिण्याकशिशुत्वक्सिकतातसी । प्रलेपो मर्दने युज्ययात्सुखोष्णो मूत्रक-
ल्लितः ॥ १ ॥ अथ दार्वादिः—दारुगुग्गुलुशुण्ठीनां कल्को मूत्रेण शोफ-
जित् । गोमूत्रस्य च योगो वा क्षिप्रं श्वयथुनाशनः ॥ १ ॥ अथार्कादिः—
सेकस्तथाऽर्कवर्षाभूनिम्बकाथेन शोफजित् । गोमूत्रेणापि कुर्वीत सुखोष्णेना-
वसेचनम् । सौवर्चलसमं घृष्टं सर्षपैश्च प्रलेपनम् ॥ १ ॥ अथ न्यग्रोधोधादि-
लेपः—न्यग्रोधोदुम्बराश्चत्थप्लक्षवेतसवलकलैः । ससर्पिष्कैः प्रलेपः स्याच्छो-
फनिर्वारणः परः ॥ १ ॥ गोधूमपोलिका—गोधूमकणिकायुक्ता निर्गुण्डी-
पत्रचूर्णिका । पोलिका तिलतैलेन युक्ता शोधविनाशनी ॥ १ ॥ अथ पुन-
र्नवादिस्वेदः—पुनर्नवाग्निनिर्गुण्डीपलितैरण्डजैर्दलैः । सहचरैर्जलं तप्तं
तत्स्वेदः शोफहा मतः ॥ १ ॥ अथ कुटजादिस्वेदः—कुटजार्कशिरीषाणां
विदुलैरण्डनिम्बजैः । पत्रैर्युक्तं जलं तप्तं तत्स्वेदो दुष्टशोफहृत् ॥ १ ॥ अथ

विभीतकादिलेपः—विभीतकानां फलमध्यलेपः सर्वेषु दाहार्तिहरः प्रशस्तः । यष्टयाह्मसुतैः सकपित्थमूत्रैः सचन्दनैस्तत्पिटिकासु लेपः ॥ १ ॥ इति सेक-
लेपस्वेदनानि ।

अथ रसाः ।

तत्रादौ शोफारिः—हिङ्गुलं जयपालं च मरिचं टङ्गणं कणाम् । संम-
र्द्यं बल्लः सघृतः सर्वशोफहरः परः ॥ १ ॥ अथ श्वयथुघाती रसः—रस-
गन्धकलोहकणात्रिवृतामरिचामरदारुनिशात्रिफलात् । दलितं मृदुगोसलिले-
न पिबेदुनूरुपममुं श्वयथूदरहम् ॥ १ ॥ इति श्वयथुघाती रसः । देयो ह्युद-
यमार्तण्डस्त्रैलोक्याडम्बरोऽथ वा । अग्निकुमारको वाऽत्र देयः शोफविना-
शनः ॥ १ ॥ इति रसाः ।

अथ पथ्यापथ्यम् ।

पुरातनाः शालियवाः कुलत्था मुद्गाश्च गोधाऽपि च शल्लकोऽपि । भुजं-
गभुक्तितरिताम्रचूडलावादयो जाङ्गलविकिराश्च ॥ १ ॥ कूर्मोऽपि शृङ्गी
प्रपुराणसर्पिस्तक्रं सुरा माक्षिकमासवश्च । निष्पावकाटिलकरक्तशिग्रुसोनक-
कोटकबालमूलम् ॥ २ ॥ पुनर्नवं गृज्जनकं पटोलं वेत्राग्रघात्रीफलमूलकानि ।
यथामलं पथ्यमिदं प्रयुक्तं शोफामयं सत्त्वरमुच्छिनत्ति ॥ ३ ॥ ग्राम्यानूपं
पिशितलवणं शुष्कशाकं नवान्नं गौडं पिष्टं दधि सकृशरं निर्झरं मद्यमम्लम् ।
धाना वल्लूरमांसं बह्वशनमथवा गुर्वसात्म्यं विदाहि स्वप्नं रात्रौ श्वयथुगदवा-
न्वर्जयेन्मैथुनं च ॥ ४ ॥ अथ वृन्दात्पथ्यापथ्यम्—पुराणयवशाल्यन्नं दश-
मूलोपसाधितम् । अम्लमल्पकटुस्त्रेहं भोजनं शोफिनां हितम् ॥ १ ॥ पिष्टा-
न्नमुष्णं लवणानि मद्यं मृदं दिवा स्वप्नमजाङ्गलं च । पयो गुडं तैलमथो
गुरुणि शोफं जिघांसुः परिवर्जयेत् ॥ १ ॥ इति शोफामयचिकित्सा ।

अथ मुष्कान्त्रवृद्धिवर्ध्मरोगनिदानम् ।

तस्य संप्राप्तिमाह—कुद्धो रुद्धगतिर्वायुः शोथशूलकरश्चरन् । मुष्को
वृङ्क्षन्तः प्राप्य फलकोशाभिवाहिनीः ॥ प्रपीड्य धमनीवृद्धिं करोति फलको-
शयोः ॥ १ ॥ वृद्धेः संख्यामाह—दोषास्तमेदोमूत्रात्रैः स वृद्धिः सप्तधा
गदः । मूत्रात्रजावप्यनिलाद्धेतुभेदस्तु केवलः ॥ २ ॥ वातजमाह—वातपू-
र्णदृतिस्पर्शो रूक्षो वातादहेतुर्गुरुः । पित्तजमाह—पक्वोदुम्बरसंकाशः पित्ता-
द्वाहोष्मपाकवान् ॥ ३ ॥ श्लेष्मजमाह—कफाच्छीतो गुरुः स्निग्धः कण्डू-
मान्कठिनोऽल्परूक्षः ॥ रक्तजमाह—कृष्णस्फोटावृतः पित्तवृद्धिलिङ्गश्च रक्त-
जः ॥ मेदोजमाह—कफवन्मेदसा वृद्धिर्धृदुस्तालफलोपमः ॥ ४ ॥
मूत्रजमाह—मूत्रधारणशीलस्य मूत्रजः स तु गच्छतः । अम्भोभिः पूर्णद-

तिवत्क्षोभं याति सरुद्ध मृदुः ॥ ५ ॥ मूत्रकृच्छ्रमधस्तात्स्याच्चालयन्फलको-
शयोः ॥ अन्नजमाह—वातकोपिभिराहारैः शीततोयावगाहनैः ॥ ६ ॥
धारणेरणभाराध्वविषमाङ्गप्रवर्तनैः । क्षोभणैः कुपितोऽन्यैश्च क्षुद्रान्नावयवं
यदा ॥ ७ ॥ पवनो विगुणीकृत्य स्वनिवेशादधो नयेत् । कुर्याद्वृक्षणसंधिस्यो
ग्रन्ध्याभं श्वयथुं तदा ॥ ८ ॥ उपेक्ष्यमाणतयाऽन्नवृद्धिमाह—उपेक्ष्यमाणस्य
च मुष्कवृद्धिमाधमानरुक्स्तम्भवतीं स वायुः । प्रपीडितोऽन्तःस्वनवान्प्रयाति
प्राध्मापयन्नेति पुनश्च मुक्तः ॥ ९ ॥ यस्यान्नावयवैः श्लेष्मा मुष्कयोर्याति सं-
चयात् । अन्नवृद्धिरसाध्योऽयं वातवृद्धिसमाकृतिः ॥ १० ॥ इति वृद्धिनि-
दानम् ।

अथ वर्ध्मनिदानम्—अत्यभिष्यन्दिगुर्वन्नसेवनान्निचयं गतः । करोति
ग्रन्थिवच्छोथं दोषो वङ्गणसंधिषु ॥ ज्वरशूलाङ्गसादाढ्यं तं वर्ध्ममिति नि-
र्दिशेत् ॥ १ ॥ इति वर्ध्मनिदानम् । इति मुष्कान्नवृद्धिवर्ध्मनिदानम् ।

अथ वृद्धिचिकित्सामाह ।

तत्र वातवृद्धिचिकित्सा—सक्षीरं वा पिबेत्तैलं मासमेरण्डसंभवम् ।
गुग्गुलूरुबुतैलं वा गोमूत्रेण पिबेन्नरः ॥ वातवृद्धिं निहन्याशु चिरकालानुव-
न्धिनीम् ॥ १ ॥ अथ पित्तवृद्धिचिकित्सा—चन्दनं मधुकं पद्ममुशीरं
नीलमुत्पलम् । क्षीरपिष्टैः प्रदेहः स्यात्पित्तवृद्धिरुजापहः ॥ १ ॥ पञ्चवल्कल-
कल्केन सधृतेन प्रलेपनम् । पानं वाऽपि कषायस्य पित्तवृद्धौ प्रशस्यते ॥ २ ॥
अथ कफवृद्धिचिकित्सा—कफवृद्धौ मूत्रपिष्टैरुष्णवीर्यैः प्रलेपनम् । पात-
व्यो मूत्रसंयुक्तः कषायः पीतदारुणः ॥ १ ॥ त्रिकटुत्रिफलाक्वाथं सक्षारलवणं
पिबेत् । कफवातात्मकोपघ्नं विरेकात्कफवृद्धिजित् ॥ २ ॥ अथ रक्तवृद्धि-
चिकित्सा—अविदाहि च शैपज्यं कर्तव्यं रक्तपैत्तिके । सर्वं पित्तहरं कार्यं
रक्तजे रक्तमोक्षणम् ॥ १ ॥ मुहुर्मुहुर्जलौकाभिः शोणितं रक्तजे हरेत् । शीत-
मालेपनं सर्वं पाको रक्ष्यः प्रयत्नतः ॥ २ ॥ त्रिवृतं प्रपिबेत्क्षौद्रशर्करासहितं
मुहुः । पित्तग्रन्थिक्रमं कुर्यादामे पक्वे च रक्तजे ॥ ३ ॥ अथ मेदोवृद्धिचि-
कित्सा—स्विन्नं मेदःसमुत्थानं लेपयेत्सुरसादिना । शिरोविरेचनद्रव्यैः सु-
खोष्णैर्मूत्रसंयुतैः ॥ १ ॥ अथ षडूषणगुग्गुलुः—षडूषणं क्षौद्रसमं गुग्गुलुं
गव्यसर्पिपा । प्रयुक्तं कुट्टय भुञ्जीत यथाग्निं दिवसानने ॥ कटुतिक्तकपायाशी
मेदोवृद्धिप्रणाशनम् ॥ १ ॥ इति मेदोवृद्धिः ॥ अथ मूत्रजेऽन्नवृद्धौ च—
संस्वेद्य मूत्रप्रभवं वस्त्रखण्डेन वेष्टयेत् । सीवन्याः पार्श्वतोऽधस्ताद्विध्येद्रीहिमु-
खेन वै ॥ १ ॥ मुष्ककोशमगच्छन्त्यामन्नवृद्धौ विचक्षणः । वातवृद्धिक्रमं कु-
र्याद्वाहस्तत्राग्निना हितः ॥ २ ॥ शङ्खोपरि च कर्णान्ते त्यक्त्वा सीवनिमाद-
रात् । व्यत्यासाद्वा शिरां विध्येदन्नवृद्धिनिवृत्तये ॥ ३ ॥ तैलमेरण्डजं पीतं
बलासिद्धं पयोन्वितम् । आध्मानशूलोपचितामन्नवृद्धिं जयेन्नरः ॥ ४ ॥ रा-

स्नायष्टयमृतैरण्डबलागोधुरसाधितः । काथोऽन्नवृद्धिं हन्त्याशु रुबुतैलेन मि-
श्रितः ॥ ५ ॥ पिप्पली जीरकं कुष्ठं बदरं शुष्कगोमयम् । काञ्जिकेन प्रले-
पोऽयमन्नवृद्धिविनाशनः ॥ ६ ॥ देवदारुमिश्रीवासाटाकलीमूलसैन्धवैः ।
क्षौद्रयुक्तैश्च तैलेपो वृद्धिमन्नभवां जयेत् ॥ ७ ॥ अथाण्डवृद्धिचिकित्सा—
तैलं नारायणं योज्यं पानाभ्यञ्जनवस्तिषु । गोमूत्रैरण्डतैलाभ्यां रसगन्धकक-
ज्जलीम् ॥ १ ॥ पीत्वा निहन्ति सहसा वृद्धिं वृषणसंभवाम् । फलत्रिकोद्भवं
काथं गोमूत्रेणैव पाययेत् ॥ वातश्लेष्मकृतं हन्ति शोथं वृषणसंभवम् ॥ २ ॥
प्लक्षाक्षबीजशुण्ठीनिर्गुण्डीनां मिथः समैश्चूर्णैः । घृतमधुसहिता पिण्डी न क्ष-
मते मुष्कवृद्धिकथाम् ॥ ३ ॥ वचासर्षपकल्केन प्रलेपः शोफनाशनः । दार्वी-
चूर्णं गवां मूत्रैर्निपीतं मुष्कवृद्धिजित् । आर्द्रकस्य रसः क्षौद्रयुक्तो वृषणवा-
तजित् ॥ ४ ॥

अथ सामान्यविधिः—

अथ मांस्यादिघृतम्—मांसी कुष्ठं पत्रकैला रास्ना शृङ्गी च चित्रकम् ।
कृमिघ्नमश्वगन्धा च शैलेयं कदुरोहिणी ॥ १ ॥ सैन्धवं तगरं चैव कुटजाति-
विषैः समैः । एतैश्च कार्ष्णिकैः कल्कैर्वृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २ ॥ वृषमुण्डीत-
कैरण्डनिम्बपत्रभवं रसम् । कण्टकार्याश्चापि दुग्धं प्रस्थं प्रस्थं विनिक्षिपेत्
॥ ३ ॥ सिद्धमेतद् घृतं पीतमन्नवृद्धिं व्यपोहति । वातवृद्धिं पित्तवृद्धिं मेदो-
वृद्धिमथापि वा । मूत्रवृद्धिं च हन्येतत्सर्पिराशु न संशयः ॥ ४ ॥ इति मां-
स्यादिघृतम् । अथ पुनर्नवादितैलम्—पुनर्नवाऽमृतादारु सक्षारं लवण-
त्रयम् । कुष्ठं सटी वचा मुस्तं रास्ना कदफलपुष्करम् ॥ १ ॥ यवानी हपुषा
शिमुः शताह्वा चाजमोदिका । विडङ्गातिविषायष्टीपञ्चकोलकसंयुतैः ॥ २ ॥
एतैरक्षसमैः कल्कैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् । गोमूत्रं द्विगुणं देयं काञ्जिकं च त-
थैव च ॥ ३ ॥ पुनर्नवाद्यमेतत्तु बस्तौ पाने तथोत्तमम् । कढ्यूरुष्टमेढ्रेषु
कुक्षौ च वृषणाश्रितम् ॥ कफवातोद्भवं शूलमन्नवृद्धिविनाशनम् ॥ ४ ॥ इ-
त्यन्नवृद्धिचिकित्सा ।

अथ वर्ध्मचिकित्सामाह—

मूलं बिल्वकपित्थयोररलुकस्याग्नेर्वृहत्योर्द्वयोः श्यामापूतिकरञ्जशिमुक्तरो-
विश्वोषधारुष्करम् । कृष्णाग्रन्थिकवेलुपञ्चलवणं क्षाराजमोदान्वितं पीतं का-
ञ्जिकोष्णतोयमथितैश्चूर्णीकृतं वर्ध्मजित् ॥ १ ॥ इति बिल्वादिचूर्णम् ।
भृष्टश्चैरण्डतैलेन कल्कः पथ्यासमुद्भवः । कृष्णासैन्धवसंयुक्तो वर्ध्मरोगहरः
परः ॥ १ ॥ श्वदंष्ट्रासिन्धुविश्वाब्ददारुकिमिहराश्मभिन् । लोघ्रचूर्णं घृतेना-
द्याद्वातवर्ध्महरं परम् ॥ २ ॥ सैन्धवं मदनं कुष्ठं शताह्वा निचुलं वचा । ही-
बेरं मधुकं भार्गी देवदारु सनागरम् ॥ ३ ॥ कदफलं पौष्करं मेदा चविका

चित्रकं सटी । विडङ्गातिविषे श्यामा हरेणुनीलिनी स्थिरा ॥ ४ ॥ बिल्वा-
जमोदा रास्ना च दन्ती कृष्णा च तैः समैः । साध्यमेरण्डजं तैलं तैलं वा
कफवातनुत् ॥ ५ ॥ वर्ध्मोदावर्तगुल्मार्शः क्लीहमेहाढ्यमारुतान् । आनाहम-
श्मरीं चैव हन्यात्तदनुवासनात् ॥ ६ ॥ इति सैन्धवाद्यं तैलम् । अजाजी
हपुषा कुष्ठं गोमयं बदरान्वितम् । काञ्चिकेन तु संपिष्टं कुर्याद्बर्ध्मप्रलेपनम्
॥ १ ॥ सद्योमृतस्य काकस्य मलेन परिलेपनम् । वर्ध्मरोगः प्रयात्याशु र-
विणा तिमिरं यथा ॥ पक्वेऽत्र दारणं कृत्वा प्रकर्तव्या व्रणक्रिया ॥ २ ॥ इति
वर्ध्मचिकित्सा ।

अथ कुरण्डचिकित्सा—

यः पित्तदोषेण कुरण्डरोगो भवेच्छिशोर्दक्षिणमुष्कभागे । तस्योर्ध्वभागं
श्रवणस्य विध्येद्दामस्य वामप्रभवेऽपरस्य ॥ १ ॥ अथैरण्डतैलादियोगः—
एरण्डतैलसंमिश्रं कासीसं सैन्धवं पिबेत् । वस्त्रेण वृषणं बद्धं कुरण्डज्वरना-
शनम् ॥ १ ॥ अथेन्द्रवारुण्यादि—इन्द्रवारुणिकामूलं तैलं पुष्करजं तथा ।
संमर्द्य च सगोदुरधं पिबेज्जन्तुः कुरण्डजे ॥ १ ॥ अथ सैन्धवादिलेपः—
संचूर्णितं सैन्धवमाज्ययुक्तं संमर्द्य तोयस्थितमेव सोष्णम् । मुहुर्मुहुर्दुः कुरुते
प्रलेपं विलीयते तस्य कुरण्डरोगः ॥ १ ॥ इति सैन्धवादिलेपः । गवां घृतेन
संयुक्तं क्षिपेत्सैन्धवचूर्णकम् । पिबेत्सप्तदिनं यावत्तावलेपः कुरण्डजे ॥ १ ॥
तण्डुलवारिविमिश्रं घृतपुरसंज्ञं यदुच्यते लोके । तन्मूलपिष्टलेपं कुरण्डगल-
गण्डयोः कुर्यात् ॥ २ ॥ ईश्वरीमूलमेरण्डमूलं मूषकचर्म च । प्रलेपः स्यात्कुर-
ण्डानां रोगविच्छेदकारकः ॥ ३ ॥ सुपेपितं ब्राह्मणयष्टिकाया मूलं समं त-
ण्डुलधावनेन । निहन्ति लेपाद्गलगण्डमालां कुरण्डमुख्यानखिलान्विकारान्
॥ ४ ॥ वातारितैलमृदितं सुरवारुणीजं मूलं नरः पिबति यो मसृणं विचूर्ण्य ।
गव्ये निधाय पयसि त्रिदिनावसाने तस्य प्रणश्यति कुरण्डकृतो विकारः
॥ ५ ॥ गोमूत्रसिद्धां रुबुतैलमृष्टां हरीतकीं सैन्धवचूर्णयुक्ताम् । खादेन्नरः
कोष्णजलानुपानान्निहन्ति कुरण्डमतीव वृद्धम् ॥ ६ ॥ शम्बूकोदरनिहितं
गव्यं सप्ताहमातपे सर्पिः । स्थितमपहरति कुरण्डं सैन्धवचूर्णान्वितं लेपात्
॥ ७ ॥ इति कुरण्डचिकित्सा ।

अथ पथ्यापथ्यम्—

संशोधनं बस्तिरसृग्विमोक्षः स्वेदः प्रलेपोऽरुणशालयश्च । एरण्डतैलं सुर-
भीजलं च धन्वामिपं शिग्रुफलं पटोलम् ॥ १ ॥ पुनर्नवागोक्षुरकाग्निमन्थं
ताम्बूलपथ्यारसनारसोनम् । वान्त्यङ्गनागृञ्जनकं मधूनि कौम्भं घृतं तप्तजलं
च तक्रम् ॥ २ ॥ अर्धेन्दुवद्भक्षणयोश्च दाहो व्यत्यासतो बाहुशिराव्यधश्च ।
यथामयं शस्त्रविधिश्च वर्गः स्याद्बर्ध्मवृद्ध्यामयिनां सुखाय ॥ ३ ॥ आनूपमां-

सानि दधीनि मापाः पिष्टानि दुष्टान्नमुपोदिका च । गुरुणि शुकोत्थितवेग-
रोधाः र्युर्वध्मवृद्ध्यामयिनाममित्राः ॥ ४ ॥ अथ वृन्दात्—वेगाहतिं पृष्ट-
यानं व्यायामं मैथुनं तथा । अत्याशनमथाध्वानमुपवासं परित्यजेत् ॥ १ ॥
इति मुष्कात्रवृद्धिवध्मकुरण्डचिकित्सा ।

अथ गलगण्डगण्डमालापचीग्रन्थ्यर्बुदनिदानमाह ।

अथ गलगण्डादिनिदानमाह—निबद्धः श्वयथुर्यस्य मुष्कवल्लम्बते गले ।
महान्वा यदि वा ह्रस्वो गलगण्डं तमादिशेत् ॥ १ ॥ यथोक्तं भोजेनापि—
महान्तं शोथमल्पं वा हनुमन्यागलाश्रयम् । लम्बन्तं मुष्कवद् दृष्ट्वा गलगण्डं
विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥ अथ तस्य संप्राप्तिमाह—वातः कफश्चापि गले प्रदुष्टो
मन्ये तु संश्रित्य तथैव मेदः । कुर्वन्ति गण्डं क्रमशः स्खलिङ्गैः समन्वितं तं
गलगण्डमाहुः ॥ २ ॥ अथ तत्र वातिकमाह—तोदान्वितः कृष्णशिराव-
नद्धः श्यावारुणो वा पवनात्मकस्तु । पारुष्ययुक्तश्चिरवृद्ध्यपाको यदृच्छया
पाकमियात्कदाचित् ॥ ३ ॥ वैरस्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुग-
लप्रशोषः ॥ अथ श्लैष्मिकमाह—स्थिरः सवर्णो गुरुरग्रकण्डूः शीतो म-
हांश्चापि कफात्मकस्तु ॥ ४ ॥ चिराभिवृद्धिं भजतेऽचिराद्वा प्रपच्यते मन्द-
रुजः कदाचित् । माधुर्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रलेपः ॥ ५ ॥
अथ मेदोजमाह—स्निग्धो गुरुः पाण्डुरनिष्टगन्धो मेदोभवः कण्डुयुतोऽ-
ल्परुक्च । प्रलम्बतेऽलाबुवदल्पमूलो देहानुरूपक्षयवृद्धियुक्तः ॥ ६ ॥ स्नि-
ग्धास्यता तस्य भवेच्च जन्तोर्गलेऽनुशब्दं कुरुतेऽतिमात्रम् । अथासाध्यत्व-
माह—कृच्छ्राच्छ्वसन्तं मृदुसर्वगात्रं संवत्सरातीतमरोचकार्तम् । क्षीणं च
वैद्यो गलगण्डयुक्तं भिन्नस्वरं चापि विवर्जयेद्धि ॥ ७ ॥ अथ स्थानतुल्यतया
गण्डमालामिहैवाऽऽह—कर्कन्धुकोलामलकप्रमाणैः कक्षांसमन्यागल-
वङ्गणेषु । मेदःकफाभ्यां चिरमन्दपाकैः स्याद्गण्डमाला बहुभिश्च गण्डैः ॥ १ ॥
यदाह भोजः—वातपित्तकफा वृद्धा मेदश्चापि समन्वितम् । जङ्घयोः कण्डरां
प्राप्य मत्स्याण्डसदृशान्वहून् ॥ १ ॥ कुर्वन्ति ग्रन्थींस्तंस्तेभ्यः पुनः प्रकुपितोऽ-
निलः । तान्दोपानूर्ध्वगो वक्षःकक्षामन्यागलाश्रितः ॥ २ ॥ नानाप्रकारान्कु-
रुते ग्रन्थीन्सा त्वपची इव । अपची कण्ठमन्यासु कक्षावङ्गणसंधिषु ॥ ग-
ण्डमालां विजानीयादपचीतुल्यलक्षणाम् ॥ ३ ॥ अथ गण्डमालातुल्यत-
याऽपचीमाह—ते ग्रन्थयः केचिदवाप्तपाकाः स्ववन्ति नश्यन्ति भवन्ति
चान्ये । कालानुबन्धं चिरमादधाति सैवापचीति प्रवदन्ति केचित् ॥ १ ॥
तस्याः साध्यासाध्यत्वमाह—साध्याः स्मृताः पीनसपार्श्वशूलकासज्वर-
च्छ्र्दियुतास्त्वसाध्याः ॥ अथापचीरूपगुणतया ग्रन्थिकानाह—वाता-
दयो मांसमसृक्प्रदुष्टाः संदूष्य मेदश्च तथा शिराश्च । वृत्तोन्नतं विप्रथितं तु
शोथं कुर्वन्त्यतो ग्रन्थिरिति प्रदिष्टः ॥ १ ॥ अथ वातिकमाह—आयम्यते

वृश्चति तुद्यते च प्रत्यस्यते मथ्यति भिद्यते च । कृष्णो मृदुर्बस्तिरिवाऽऽततश्च
भिन्नः स्रवेच्चानिलजोऽस्त्रमच्छम् ॥ २ ॥ अथ पैत्तिकमाह—दंदद्यते धू-
प्यति चूष्यते च पापच्यते प्रज्वलतीव चापि । रक्तः स पीतोऽप्यथ वाऽपि
पित्ताद्भिन्नः स्रवेदुष्टमतीव चास्त्रम् ॥ ३ ॥ अथ श्लैष्मिकमाह—शीतो
विवर्णोऽल्परुजोऽतिपाण्डुः पापाणवत्संहननोपपन्नः । चिराभिवृद्धिश्च कफप्र-
कोपाद्भिन्नः स्रवेच्छुक्लघनं च पूयम् ॥ ४ ॥ अथ मेदोजमाह—शरीरवृद्धि
क्षयवृद्धिहानिः स्निग्धो महान्कंडुयुतोऽल्परुक्च । मेदःकृतो गच्छति चात्र
भिन्ने पिण्याकसर्पिःप्रतिमं च मेदः ॥ ५ ॥ उक्तं च भोजेन—मेदो वायु-
र्यदा मांसे निक्षिपेदथवा त्वचि । तत्र मेदोभवो ग्रन्थिः श्यावो भवति पा-
ण्डुरः ॥ १ ॥ कृशः कृशे महान्स्थूले ग्रन्थिश्छिन्नश्च पीडितः । तिलकल्क-
निभः स्रावो घृतवच्चास्य जायते ॥ २ ॥ अथ शिराजग्रन्थेः संप्राप्तिमाह—
व्यायामजातैरबलस्य तैस्तैराक्षिप्य वायुस्तु शिराप्रतानम् । संकुच्य संपीड्य
विशोष्य चापि ग्रन्थिं करोत्युन्नतमाशु वृत्तम् ॥ ग्रन्थिः शिराजः स तु कृ-
च्छ्रासाध्यो भवेद्यदि स्यात्सरुजश्चलश्च ॥ १ ॥ अथ तस्यासाध्यत्वमाह—
स चारुजश्चाप्यचलो महान्श्च मर्मास्थिजश्चापि विवर्जनीयः ॥ १ ॥
उक्तं भोजेन—पञ्चैतानरुजो ग्रन्थीन्मर्मजानचलांस्त्यजेत् । कपोलगलमन्या-
सु दुश्चिकित्स्याश्च संधिषु ॥ १ ॥ अथार्बुदान्याह—तस्य संप्राप्तिमाह—
गात्रप्रदेशे कचिदेव दोषाः संमूर्छिता मांसमसृक्प्रदूष्य । वृत्तं मृदुं मन्दरुजं
महान्तमनल्पमूलं चिरवृद्धिपाकम् ॥ कुर्वन्ति मांसोच्छ्रयमत्यगाधं तदर्बुदं
शास्त्रविदो वदन्ति ॥ १ ॥ अथ तस्य संख्यामाह—वातेन पित्तेन कफेन
चापि रक्तेन मांसेन च मेदसा च । तज्जायते तस्य च लक्षणानि ग्रन्थेः स-
मानानि सदा भवन्ति ॥ २ ॥ अथ रक्तार्बुदमाह—दोषाः प्रदुष्टा रुधिरं
शिराश्च संकुच्य संपीड्य गतास्त्वपाकम् । सास्त्रावमुन्नहति मांसपिण्डं मांसा
ङ्गुरैराचितमाशु वृद्धिम् ॥ ३ ॥ कुर्वन्त्यजस्रं रुधिरप्रवृत्तिमसाध्यमेतद्गुधिरा-
त्मकं तु । रक्तक्षयोपद्रवपीडितत्वात्पाण्डुर्भवेदर्बुदपीडितस्तु ॥ ४ ॥ मांस-
जस्य संप्राप्तिमाह—मुष्टिप्रहारादिभिरिदितेऽङ्गे मांसं प्रदुष्टं जनयेत्तु शोथम्
अवेदनं स्निग्धमनन्यवर्णमपाकमशोपममप्रचाल्यम् ॥ प्रदुष्टमांसस्य नरस्य
गाढमेतद्भवेन्मांसपरायणस्य ॥ १ ॥ अथास्यासाध्यत्वमाह—मांसार्बुदं
त्वेतदसाध्यमुक्तं साध्येष्वपीमानि विवर्जयेत्तु ॥ संप्रसृतं मर्मणि यच्च जातं
स्रोतःसु वा यच्च भवेदचाल्यम् ॥ २ ॥ अथार्बुदलक्षणमाह—यज्जायतेऽ-
न्यत्खलु पूर्वजाते ज्ञेयं तदध्यर्बुदमर्बुदज्ञैः । यद्वद्वजातं युगपत्कमाद्वा द्विर्बु-
दं तच्च भवेदसाध्यम् ॥ ३ ॥ उक्तं भोजेन—अर्बुदे त्वर्बुदं जातं द्वंद्वजं चा-
नुजं च यत् । द्विर्बुदमिति ज्ञेयं तच्चासाध्यं विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥ अर्बुदानां
पाकाभावे हेतुमाह—न पाकमायान्ति कफाधिकत्वान्मेदोबहुत्वाच्च विशेष-

तस्तु । दोषस्थिरत्वाद्ग्रथनाच्च तेषां सर्वावुदान्येव निसर्गतस्तु ॥ १ ॥ इति
गलगण्डादिनिदानम् ।

अथ गलगण्डचिकित्सा ।

स्वेदोऽनिलोत्थे गलगण्ड आदौ नाड्यानिलघ्नौपधपत्रपिण्डैः । स्वेदोपनाहौ
कफसंभवेऽपि कृत्वा क्रमं श्लेष्महरं विदध्यात् ॥ १ ॥ अथ वातगण्डे—
निचुलं शिशुमूलानि दशमूलमथापि च । आलेपनं वातगण्डे सुखोष्णं संप्रश-
स्यते ॥ १ ॥ अथ कफगण्डे—देवदारु विशालां च कफगण्डे प्रलेपनम् ।
छर्दनं शीर्षरेकश्च सर्वो रेचनिको हितः ॥ १ ॥ अथ मेदोगण्डे—मेदःसमु-
त्थेऽत्र यथोपदिष्टां विध्येच्छिरां स्निग्धतचोर्नरस्य । श्यामासुधालोहपुरीपद-
न्तीरसाज्जनैश्चापि हितः प्रलेपः ॥ १ ॥ अथ सामान्ययोगः—तण्डुलोद-
कपिष्टेन मूलेन परिलेपितः । हितः कर्णे पलाशस्य गलगण्डः प्रशाम्यति ॥ १ ॥
जलकुम्भीकर्जं भस्म पक्त्वा गोमूत्रगालितम् । पिबेत्कोद्रवतक्राशी गलगण्ड-
निवृत्तये ॥ २ ॥ महिषीमूत्रविमिश्रं लोहमलं संस्थितं घटे मासम् । अन्तर्धू-
मविदग्धं मधुना गलगण्डनाशनं लीढम् ॥ ३ ॥ सूर्यावर्तसरसोन्माभ्यां गलग-
ण्डोपनाहनम् । स्फोटास्त्रावैः शमं याति गलगण्डो न संशयः ॥ ४ ॥ सर्पिषाः
शिशुबीजानि शणबीजातसीयवाः । मूलकस्य च बीजानि तत्रेणाम्लेन पेपयेत्
॥ ५ ॥ गण्डानि ग्रन्थयश्चैव गण्डमालास्तथैव च । लेपनात्तेन शाम्यन्ति वि-
लयं यान्ति वाऽचिरात् ॥ ६ ॥ जीर्णकर्कारुकरसो बिडसैन्धवसंयुतः । नस्येन
तरुणं हन्ति गलगण्डं न संशयः ॥ ७ ॥ श्वेतापराजितामूलं प्रातः पिष्ट्वा पि-
बेन्नरः । सर्पिषा नियताहारो गलगण्डप्रशान्तये ॥ ८ ॥ तिक्तालावुफले पक्के
सप्ताहमुषितं जलम् । गलगण्डं निहन्त्याशु पानात्पथ्यानुशीलिनः ॥ ९ ॥
अथामृतादितैलम्—तैलं पिबेच्चामृतवल्लिहिङ्गुनिम्बाभयावृक्षकपिप्प-
लीभिः । सिद्धं बलाभ्यां च सदेवदारु हिताय नित्यं गलगण्डरोगे ॥ १ ॥
अथ तुम्बीतैलम्—विडङ्गक्षारसिन्धूग्रास्राग्निव्योपदारुभिः । कटुतुम्बी-
फलरसैः कटुतैलं विपाचितम् । चिरोत्थमपि नस्येन गलगण्डं विनाशयेत्
॥ १ ॥ अथ वेधविधिः—जिह्वाधः पार्श्वयोर्मूलाच्छिरा द्वादश कीर्तिताः ।
तासां स्थूले शिरे द्वे च छिन्द्यात्ते च शनैः शनैः ॥ १ ॥ बडिशेनैव संगृह्य
कुशपत्रेण बुद्धिमान् । सुते रक्ते व्रणे तस्मिन्दद्यात्सगुडमार्द्रकम् ॥ २ ॥ भो-
जनं चानभिष्यन्दि यूषः कौलथ इष्यते । यवमुद्रपटोलादि कटुरुक्षं तु भो-
जनम् । छर्दिं च रक्तमुक्तिं च गलगण्डे प्रयोजयेत् ॥ ३ ॥ इति गलगण्ड-
चिकित्सा ।

अथ गण्डमालापचीचिकित्सा ।

ब्रह्मदण्डीयमूलं तु पिष्टं तण्डुलवारिणा । स्फुटितां हन्ति लेपेन गण्डमालां

न संशयः ॥ १ ॥ निजद्रवेण संपिष्टं मुण्डीमूलं प्रलेपयेत् । गण्डमाला क्षयं याति तद्वचं च पिबेत्पलम् ॥ २ ॥ काञ्चनारत्वचः काथः शुण्ठीचूर्णेन नाशयेत् । गण्डमालां तथा काथः क्षौद्रेण वरुणत्वचः ॥ ३ ॥ जलेन पेययेत्तुल्यं काञ्चनीचित्रकं विषम् । सप्ताहं लेपयेद्यस्य यदि स्याद्गण्डमालिका ॥ स्फुटन्ती नात्र संदेहोःस्फोटे लेपमिमं कुरु ॥ ४ ॥ आरग्वधशिफां पिष्ट्वा सम्यक्त्तण्डुलवारिणा । तेन नस्यप्रलेपाभ्यां गण्डमालां समुद्धरेत् ॥ ५ ॥

अथ त्रिफलाद्यो गुग्गुलुः—षट्पलं त्रिकटु ज्ञेयं त्रिफलाञ्च पलद्वयम् । काञ्चनारत्वचाचूर्णं योजयेद्वादशं पलम् ॥ १ ॥ गुग्गुलुः सर्वतुल्यः स्यात्सर्वमेकत्र कुट्टयेत् । क्षौद्रं पलशतं देयं गुटिकां कर्षसंमिताम् । भक्षयेद्गण्डमालातो गलग्रन्थि च नाशयेत् ॥ २ ॥ अथ काञ्चनारगुग्गुलुः—पलानां दशकं ग्राह्यं काञ्चनारत्वचो बुधैः । षट्पला त्रिफला ग्राह्या व्योषं ग्राह्यं पलत्रयम् ॥ १ ॥ पलैकं वरुणस्यापि त्वगेलापत्रकं तथा । कर्षकर्षमितं ग्राह्यं सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत् ॥ २ ॥ सर्वं चूर्णमिदं यावत्तावन्मात्रस्तु गुग्गुलुः । संमर्द्य गुटिकाः कार्याः शाणमात्रास्ततो बुधः ॥ ३ ॥ एकैकां भक्षयेत्प्रातर्बुद्धिमांश्च सदा नरः । गण्डमालां जयेदुग्रामपचीमर्बुदानि च ॥ ४ ॥ ग्रन्थी-वृणां सगुलमांश्च कुष्ठानि च भगंदरम् । अनुपाने प्रयोक्तव्यः काथो मुण्डीसमुद्भवः । काथो वा खदिरस्याथ पथ्याकाथोऽथ चाल्पकः ॥ ५ ॥

अथाजमोदादितैलम्—अजमोदा च सिन्दूरं हरितालं निशाद्वयम् । क्षारद्वयं फेनयुतं सार्धकं सरलोद्भवम् ॥ १ ॥ इन्द्रवारुण्यपामार्गकदलीकन्दकैः समैः । एभिः सार्धपकं तैलमजामूत्राष्टयोजितम् ॥ २ ॥ मृद्वशौ पाचयेदेतत्सुहृक्षीरसंयुतम् । अजमोदादिकं तैलं गण्डमालां व्यपोहति ॥ ३ ॥ आमां विदग्ध्वा तु पचेत्पक्वां चैव विशोधयेत् । रोपणं मृदुभावं च तैलेनानेन कारयेत् ॥ ४ ॥ अथ निर्गुण्डीतैलम्—निर्गुण्डीस्वरसेनाथ लाङ्गली-मूलकल्कितम् । तैलं नस्येन हन्त्याशु गण्डमालां सुदुस्तराम् ॥ १ ॥ अथ लुच्छुन्दरीतैलम्—लुच्छुन्दर्या विपकं तु क्षणात्तैलवरं ध्रुवम् । अभ्यङ्गा-न्नाशयेन्नृणां गण्डमालां सुदारुणाम् ॥ १ ॥ अथ गुञ्जातैलम्—गुञ्जामूल-फलैस्तैलं तोयद्विगुणितं पचेत् । तस्याभ्यङ्गेन शमयेद्गण्डमालां सुदारुणाम् ॥ १ ॥ अथ गन्धकादियोगः—गन्धकं टङ्कणं सिन्धुकाञ्चनीनवसारकम् । सौवर्चलं यवक्षारं काचं रक्तं सुवर्चलम् ॥ १ ॥ सितं रक्तं च पापाणं मूप-कोत्थं नियोजयेत् । जेपालबीजमज्जा च सर्वं जम्बीरपीडितम् ॥ २ ॥ शस्त्रै-दिच्छत्वा प्रदातव्यं वेष्ट्यमेरण्डपत्रकैः । एवं त्र्यहात्स्फुटन्त्यत्र दध्यन्नं बन्धये-त्ततः ॥ ३ ॥ गण्डमालाग्रन्थ्यपच्यो बहिर्निर्यान्ति नान्यथा । अभिमन्त्र्य सितं सायं रवौ प्रातः समाहरेत् ॥ ४ ॥ पेटारीमूलकं धूपैर्धूपयित्वाऽथ खण्डयेत् । चतुर्दशगुणैः सूत्रैर्वद्ध्वा ग्रन्थि गले स्थितम् ॥ ५ ॥ मन्त्रः—ॐ

गुडं प्रसाहि तिरि तिरि चित्रपुटक भुगनाङ्गते पापटगालापरदशमूलवासुका-
लदेपालरेदं गुरुप्रसादात् । अथ गन्धकादिलेपः—गन्धकं सूतकं तुल्यम-
र्कक्षीरं ससैन्धवम् । पिष्ट्वा च काञ्चनीमूलं लेपोऽयं गण्डमालिके ॥ १ ॥
अथ जेपालपत्रवटी—पिष्ट्वा जेपालपत्राणि स्वरसेन ततो वटी । छाया-
शुष्का ततो लेपाद्गण्डमाला विनश्यति ॥ १ ॥ अथ भल्लातकादिलेपः—
भल्लातकासीसहुताशदन्तीमूलं गुडस्तुप्रविदुग्धदिग्धैः । लेपान्वितैर्गच्छति
गण्डमाला समीरवेगादिव मेघमाला ॥ १ ॥

अथ गण्डमालाकण्डनो रसः—कर्पसूतं शुद्धमस्य गन्धकं त्वर्धमुत्त-
मम् । सार्धकर्पं ताभ्रमस्य मृतं किटं त्रिकर्पकम् ॥ १ ॥ व्योषं पदकपर्तुलि-
तमक्षार्धं सैन्धवं सितम् । काञ्चनारत्वचश्रूणं पलत्रयमितं क्षिपेत् ॥ २ ॥ प-
लत्रयं गुग्गुलोश्च शुद्धस्य समुपाहरेत् । एतद्युक्त्या तु संमेल्य द्रवं सुरभिस-
र्पिषा ॥ ३ ॥ गण्डमालाकण्डनोऽयं रसो माषत्रयात्मकः । मुक्तो निहन्ति
गण्डानि गण्डमालां च दारुणाम् ॥ ४ ॥ इतिगण्डमालाचिकित्सा ।

अथापचीचिकित्सा—अलम्बुपायाः स्वरसः पीतो द्विपलमात्रया । अ-
पचीगण्डमालानां कामलायाश्च नाशनः ॥ १ ॥ नवकार्पासिकामूलं तण्डुलैः
सह योजितम् । पक्त्वा च पोलिकां खादेदपचीनाशनाय च ॥ २ ॥ सौभाजनं
देवदारु काञ्जिकेन तु पेपितम् । कोष्णं प्रलेपतो हन्यादपचीमतितुष्टराम् ॥
३ ॥ सर्षपारिष्टपत्राणि दन्त्या भल्लातकैः सह । छागमूत्रेण संपिष्टमपचीघ्नं
विलेपनम् ॥ ४ ॥ अश्वत्थकाष्ठनिचुलं गवां दन्तं च दाहयेत् । वराहमजसं-
युक्तं भस्म हन्यपचीघ्नान् ॥ ५ ॥ मणिबन्धोपरिष्ठाद्वा कुर्याद्रक्षत्रयं भि-
षक् । अङ्गुलान्तरितं सम्यगपचीविनिवृत्तये ॥ ६ ॥ अथ चन्दनादितैलम्—
चन्दनं साभया लाक्षा वचा कटुकरोहिणी । एतत्तैलं शृतं पीतं समूलाम-
पचीं जयेत् ॥ १ ॥ अथ व्योषाद्यं तैलम्—व्योषं विडङ्गं मधुकं सैन्धवं
देवदारु च । तैलमेभिः शृतं नस्यात्कुच्छ्रामप्यपचीं जयेत् ॥ १ ॥ इत्यपची-
चिकित्सा ।

इति गण्डमालापचीचिकित्सा ।

अथ ग्रन्थिचिकित्सा ।

ग्रन्थिष्वामेषु कुर्वीत भिषक्शोथप्रतिक्रियाम् । पक्वानापाव्य संशोध्य रोप-
येद्गणभेषजैः ॥ १ ॥ हिंसा सरोहिण्यमृताऽथ भार्गी स्योनाकबिल्वगुरुकृष्ण-
गन्धाः । गोमूत्रपिष्टाः सह तालपत्र्या ग्रन्थौ विधेयोऽनिलजे प्रलेपः ॥ २ ॥
जलायुकाः पित्तकृते हिताः स्युः क्षीरोदकाभ्यां परिपेचनं च । द्राक्षारसेन-
क्षुरसेन चापि चूर्णं पिबेद्वाऽपि हरीतकीनाम् ॥ ३ ॥ मधूकजम्बवर्जुनवेत-
सानां त्वग्भिः प्रदेहानवचारयेच्च । हतेषु दोषेषु यथानुपूर्वं ग्रन्थेर्भिषक्श्लेष्म-

समुत्थितेषु ॥ ४ ॥ अमर्मजातं शममप्रयातं तत्पक्वमेवापहरेद्विचार्य । देह-
स्थिते वाससि सिद्धकर्म सद्यः क्षतोक्तं च विधिं विदध्यात् ॥ ५ ॥ शस्त्रेण
चोक्तस्य सुपक्वमाशु प्रक्षालयैत्पथ्यतमैः कपायैः । संशोधनैस्तं च विशोधयेत्तु
क्षारोत्तरैः क्षौद्रघृतप्रगाढैः ॥ ६ ॥ सिञ्चेच्च तैलं त्वपचारणीयं विडङ्गपाठार-
जनीविपक्वम् । मेदःसमुत्थे तिलकल्कदिग्धैः कृत्वोपरिष्ठाद्विगुणं पटान्तम्
॥ ७ ॥ हुताशतसेन मुहुः प्रमृज्याल्लोहेन धीमान्न च वर्धिताय । प्रलिस-
दव्यां त्वथ लाक्षया वा प्रतप्तयाऽऽश्व्योतनमस्य कार्यम् ॥ ८ ॥ निपात्य वा
शस्त्रमपोह्य मेदो दहेत्सुपक्वं त्वथ वा विदार्थ्य । प्रक्षाल्य मूत्रेण तिलैः सु-
पिष्टैः सुवर्चलाब्धैर्हरितालमिश्रैः ॥ ९ ॥ ससैन्धवैः क्षौद्रघृतप्रगाढैः क्षारो-
त्तरेरेनमभिप्रशोध्य । तैलं विदध्याद्विकरञ्जगुञ्जावंशावलेष्विङ्गुदमूत्रसिद्धम्
॥ १० ॥ इति राजमार्तण्डात् । विष्णुकान्ता च पेटारी काञ्जिकेन सुपेषिता ।
कालस्फोटं हरेत्तेपादुष्टग्रन्थिषु का कथा ॥ १ ॥ पुत्रजीवस्य मज्जानं जले
पिष्ट्वा प्रलेपयेत् । कालस्फोटं विषस्फोटं सद्यो हन्यात्सवेदनम् ॥ २ ॥ कक्षा-
ग्रन्थि कर्णग्रन्थि गलग्रन्थि च नाशयेत् । राजिकालशुनं पेष्ट्य लेपो
हृद्गलग्रन्थिकाः । गन्धोऽर्कदुग्धतालेन जेपालेन च नाशयेत् ॥ ३ ॥

इति ग्रन्थिचिकित्सा ।

अथार्बुदचिकित्सा ।

ग्रन्थ्यर्बुदानां न यतो विशेषः प्रदेशहेत्वाकृतिदोषदूष्यैः । ततश्चिकित्से-
न्निषगर्बुदानि विधानविद्ग्रन्थिचिकित्सितेन ॥ १ ॥ वातार्बुदं क्षीरघृताम्ल-
सिद्धैरुणैः सतैलैरुपनाहयेत् । कुर्यात्तु मुख्यान्पुपनाहनानि सिद्धैश्च मांसैरथ
वेसवारैः ॥ २ ॥ स्वेदं विदध्यात्कुशलश्च नाड्या शृङ्गेण रक्तं बहुशो हरेच्च ।
वातघ्ननिर्यूहपयोम्लभागैः सिद्धां शताह्वां त्रिवृतां पिबेद्वा ॥ ३ ॥ स्नेहोप-
नाहा मृदवस्तु पथ्याः पित्तार्बुदे काथविरेचनं च । विकृष्य सौदुम्बरशाक-
गोजीपत्रैर्भृशं क्षौद्रयुतैः प्रलिम्पेत् ॥ ४ ॥ शुद्धस्य जन्तोः कफजेऽर्बुदे च
रक्ते च सित्ते स्रवतोऽर्बुदं यत् । मेदःकृते मांसकृतेऽपि कार्यं व्रणोदितं स-
र्वचिकित्सितं च ॥ ५ ॥ इति राजमार्तण्डात् । लिप्तं यवक्षारविडङ्गबीजं ग-
न्धोपलैः स्यान्मसुणीकृतैर्यत् । रक्तेन मिश्रैः सरठस्य सद्यस्तदर्बुदं शाम्यति
नान्यथैतत् ॥ १ ॥ उपोदकरसाभ्यक्ता तत्पत्रपरिवेष्टिता । प्रणश्यत्यचिरान्नृणां
पिटिकार्बुदजातयः ॥ २ ॥ उपोदिका काञ्जिकतक्रपिष्टा तयोपनाहो लवणेन
सार्धम् । दृष्टोऽर्बुदानां प्रशमाय कैश्चिद्दिने दिने रात्रिषु मर्मजानाम् ॥ ३ ॥
गन्धशिलाविश्रौषधविडङ्गनागभस्मभिः समैश्चूर्णम् । कृकलासरक्तयुक्तं लेपा-
त्सद्योऽर्बुदध्वंसि ॥ ४ ॥ स्नुहीगण्डीरिकास्वेदो नाशयेदर्बुदानि च । लवणे-
नाथ वा स्वेदः सीसकेन तथैव च ॥ ५ ॥ हरिद्रालोभ्रपत्तङ्गगुडधूमो मनः-

शिला । मधुग्रगाढो लेपोऽयं मेदोर्बुदहरः परः ॥ एतामेव क्रियां कुर्यादशेषां शर्करार्बुदे ॥ ६ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

पुराणघृतपानं च जीर्णलोहितशालयः । यवा मुद्गाः पटोलं च रक्तशिग्रुः कटिलकम् ॥ १ ॥ शालिं च शाकं वेत्राग्रं रूक्षाणि च कटूनि च । दीपनानि च सर्वाणि गुग्गुलुश्च शिलाजतु ॥ २ ॥ गलगण्डे गण्डमालापचीग्रन्थ्यर्बुदान्तरे । यथादोषं यथावस्थं पथ्यमेतत्प्रकीर्तितम् ॥ ३ ॥ दुग्धेष्विविकृतीः सर्वा मांसं चानूपसंभवम् । पिष्टान्नमम्लं मधुरं गुर्वभिष्यन्दकारि च ॥ ४ ॥ गलगण्डं गण्डमालापचीग्रन्थ्यर्बुदामयान् । चिकित्सन्नगदंकारो यशोर्थी परिवर्जयेत् ॥ ५ ॥ इत्यर्बुदचिकित्सा ।

अथ श्लीपदनिदानम् ।

मेदोमांसाश्रयं शोफं पादयोः श्लीपदं वदेत् । खल्लिङ्गदर्शिभिर्दोषैस्त्रेधा स्याच्च कफोत्तरम् ॥ १ ॥ अथ तस्य संप्राप्तिमाह—यः सज्वरो वङ्गणजो भृशार्तिः शोफो नृणां पादगतः क्रमेण । तच्छ्लीपदं स्यात्करकर्णनेत्रशिश्नोष्ठनासास्वपि केचिदाहुः ॥ २ ॥ अथ वातजमाह—वातजं कृष्णरूक्षं तु स्फुटितं तीव्रवेदनम् । अनिमित्तरुजं तस्य बहुशो ज्वर एव च ॥ ३ ॥ अथ पित्तजमाह—पित्तजं पीतसंकाशं दाहज्वरयुतं मृदु ॥ अथ श्लेष्मजमाह—श्लेष्मिकं स्निग्धवर्णं च श्वेतं पाण्डुं गुरु स्थिरम् ॥ ४ ॥ अथैषामसाध्यत्वमाह—वल्मीकमिव संजातं कण्टकैरिव संचितम् । सर्वात्मकं महत्तच्च वर्जनीयं विशेषतः ॥ ५ ॥ अथ श्लीपदे कफस्याव्यभिचारेण प्राधान्यमाह—त्रीण्येतानि विजानीयाच्छ्लीपदानि कफोच्छ्रयात् । गुरुत्वं च महत्त्वं च यस्मान्नास्ति कफाद्विना ॥ ६ ॥ अथ श्लीपदसंभवे हेतुनिर्देशमाह—पुराणोदकभूयिष्ठाः सर्वर्तुषु च शीतलाः । ये देशास्तेषु जायन्ते श्लीपदानि विशेषतः ॥ ७ ॥ अथ पुनरसाध्यत्वमाह—यच्छ्लेष्मलाहारविहारजातं पुंसः प्रकृत्या च कफात्मकस्य । सत्त्वावमत्युन्नतसर्वलिङ्गं सकण्डुरं श्लेष्मयुतं विवर्ज्यम् ॥ ८ ॥

इति श्लीपदनिदानम् ।

अथ श्लीपदचिकित्सा ।

लङ्घनालेपनस्वेदरेचनै रक्तसेचनैः । प्रायः श्लेष्महरैरुणैः श्लीपदं समुपाचरेत् ॥ १ ॥ स्नेहस्वेदोपनाहांश्च श्लीपदेऽनिलजे भिषक् । कृत्वा गुल्फोपरि शिरां विध्येत्तु चतुरङ्गुले ॥ २ ॥ गुल्फस्याधः शिरां विध्येच्छ्लीपदे पित्तसंभवे । पित्तघ्नीं च क्रियां कुर्यात्पित्तार्बुदविसर्पवत् ॥ ३ ॥ मञ्जिष्ठामधुकं रा-

स्नामहिंस्तां सपुनर्नवाम् । पिष्ट्वाऽऽरनालैर्लोऽयं पित्तश्रीपदशान्तये ॥ शि-
रासु विदितां विध्येदङ्गुष्ठे श्लेष्मश्रीपदे ॥ ४ ॥ सिद्धार्थसौभाग्यनदेवदारुवि-
श्रौषधैर्मूत्रयुतैः प्रलेपयेत् । पुनर्नवानागरसर्षपाणां कल्केन वा काज्जिकमि-
श्रितेन ॥ ५ ॥ धत्तूरैरण्डनिर्गुण्डीवर्षाभूशिग्रुसर्षपैः ॥ प्रलेपः श्रीपदं हन्ति
चिरोत्थमपि दारुणम् ॥ ६ ॥ हितश्च लेपने नित्यं चित्रको देवदारु च ॥
सिद्धार्थशिग्रुकल्को वा सुखोष्णो मूत्रपेषितः ॥ ७ ॥ प्रपिबेद्वाऽभयाकल्कं मू-
त्रेणान्यतमेन वा ॥ पिबेदेवं गुडूचीं च नागरं भद्रदारु वा ॥ ८ ॥ पिबेत्स-
र्षपतैलेन श्रीपदानां निवृत्तये ॥ पूतीकरञ्जच्छदजं रसं वाऽपि यथाबलम्
॥ ९ ॥ अनेनैव विधानेन पुत्रजीवकजं रसम् ॥ प्रयुज्जीत भिषक्प्राज्ञः का-
लसात्म्यविभागतः ॥ १० ॥ पलाशमूलस्वरसं पिबेद्वा तैलेन तुल्यं सितस-
र्षपाणाम् । मूत्रेण पथ्यामरदारुविश्वं सगुग्गुलुं श्रीपदिभिर्निषेव्यम् ॥ ११ ॥
वृद्धदारुकचूर्णं वा मूत्रसौवीरकादिभिः । शीलितं श्रीपदं हन्ति कृच्छ्रं संव-
त्सरोषितम् ॥ १२ ॥

अथ पिप्पल्यादिचूर्णम्—पिप्पली त्रिफला दार्वी नागरं सपुनर्नवम् ।
भागैर्द्विपलिकैस्तेषां तत्समं वृद्धदारुकम् ॥ १ ॥ काज्जिकेन तु तच्चूर्णं पिबे-
त्कर्षप्रमाणतः । जीर्णे वा परिहीनं स्याद्भोजन सर्वकामिकम् ॥ २ ॥ श्रीपदं
वातरोगांश्च फ्रीहगुल्ममरोचकम् । अग्निं च कुरुते घोरं भस्मकं च प्रयच्छति
॥ ३ ॥ अथ कृष्णाद्यो मोदकः—कृष्णाचित्रकदन्तीनां कर्षमर्धपलं पलम् ।
विशतिश्च हरीतक्यो गुडस्य च पलद्वयम् । मधुना सह संयुक्तं श्रीपदं हन्ति
दारुणम् ॥ १ ॥ अथ विडङ्गादितैलम्—विडङ्गसारिकावर्केषु नागरे चित्रके
तथा । भद्रदार्वेलकाख्येषु सर्वेषु लवणेषु च ॥ तैलं पक्वं पिबेद्वाऽपि श्रीप-
दानां निवृत्तये ॥ १ ॥

अथ सौरेश्वरघृतम्—सुरसा देवकाष्ठं च त्रिफला त्रिकटुर्गजा । लव-
णीणि च सर्वाणि विडङ्गान्यथ चित्रकम् ॥ १ ॥ चविका पिप्पलीमूलं गुग्गुलुं
हंपुष्पा वचा । यवाग्रजः सपाठश्च चव्येलं वृद्धदारुकः ॥ २ ॥ कल्कैश्च कार्ष्णि-
कैरेभिर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् । दशमूलकषायेण धान्ययूषद्रवेण च ॥ ३ ॥ द-
धिमण्डसमायुक्तं प्रस्थं प्रस्थं पृथक् पृथक् । पक्वं स्यादुद्धृतं कल्कात्पिबेत्क-
र्षित्रयं हविः ॥ ४ ॥ श्रीपदं कफवातोत्थं मांसरक्ताश्रितं च यत् । मेदःश्रि-
ताभिघातोत्थं हन्यादेव न संशयः ॥ ५ ॥ अपचीगलगण्डानि अन्नवृद्धि त-
थाऽर्बुदम् । नाशयेद्ग्रहणीदोषं श्वयथुं गुदजान्यपि ॥ ६ ॥ परमशिकरं हृद्यं
कोष्ठक्रिमिविनाशनम् । घृतं सौरेश्वरं नाम श्रीपदं हन्ति सेवितम् ॥ ७ ॥
जीवकेन घृतं ह्येतद्गोगानीकविनाशनम् । यवाञ्च कूर्ममांसं च कटुतैलं च
योजयेत् । श्रीपदानां प्रशान्त्यर्थं मांसान्तं दाहमग्निना ॥ ८ ॥ गन्धर्वतैल-
भृष्टां हरीतकीं गोजलेन यः पिबति । श्रीपदबन्धनमुक्तो भवत्यसौ सप्तरा-

त्रेण ॥९॥ अथ गुडूच्यादिलेपः—गुडूचीकटुकाशुण्ठीदेवदारुविडङ्गकम् ।
पिष्ट्वा गोमूत्रसंयुक्तं लेपाच्छ्लीपदनाशनम् ॥ १ ॥

अथ धान्याम्लादि—धान्याम्लं तैलसंयुक्तं कफवातविनाशनम् । दी-
पनं चाऽऽमदोषघ्नं मेदःश्लीपदनाशनम् ॥ १ ॥ पिण्डारकतरुसंभवबन्धूकशिफा
जयति सर्पिषा पीता । श्लीपदमुग्रं नियतं बद्धा सूत्रेण जङ्घायाम् ॥ २ ॥ संपि-
ष्टमारनालेन रुयिकामूलवल्कलम् । प्रलेपाच्छ्लीपदं हन्ति बद्धमूलमपि दृढम्
॥ ३ ॥ यवान्नं कटुतैलं च कूर्ममांसं च योजयेत् । श्लीपदानां प्रशान्त्यर्थं मां-
सान्ते दाहमग्निना ॥ ४ ॥ पादकण्डूहरं कुर्यान्नवनीतेन माक्षिकम् । पाददा-
हहरं खादेत्तिलाद्विगुणबाकुचेः । चूर्णं तु मधुसर्पिभ्यां कर्षमार्तिप्रशान्तये ॥ ५ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

पुरातनाः षष्टिकशालयश्च यवाः कुलत्था लशुनं पटोलम् । वार्ताकसौभा-
जनकारवेल्लं पुनर्नवामूलमुपोदिका च ॥ १ ॥ एरण्डतैलं सुरभीजलं च क-
टूनि तिक्तानि च दीपनानि । एतानि पथ्यानि भवन्ति पुंसां रोगे सति श्ली-
पदनामधेये ॥ २ ॥ पिष्टान्नं दुग्धविकृतिं गुडमानूपमामिषम् । स्वाद्वम्लं
पारियात्रं च सिन्धुविन्ध्यनदीजलम् । पिच्छिलं गुर्वभिष्यन्दि श्लीपदी परिव-
र्जयेत् ॥ ३ ॥

इति श्लीपदरोगचिकित्सा ॥

अथ विद्रधिनिदानम् ।

तस्य संप्राप्तिमाह—त्वग्रक्तमांसमेदांसि प्रदूष्यास्थिसमाश्रिताः । दोषाः
शोफं शनैर्वोरं जनयन्त्युच्छ्रिता भृशम् ॥ १ ॥ तत्संख्यालक्षणे आह—महा-
मूलं रुजावन्तं वृत्तं वाऽप्यथ वाऽयतम् । स विद्रधिरिति ख्यातो विज्ञेयः
पङ्क्तिश्च सः ॥ १ ॥ पृथग्दोषैः समस्तैश्च क्षतेनाप्यसृजा तथा । पण्णामपि
च तेषां तु लक्षणं संप्रचक्षते ॥ २ ॥ अथ वातिकमाह—कृष्णोऽरुणो वा
विपमो भृशमत्यर्थवेदनः । चित्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिर्वातसंभवः ॥ १ ॥
अथ पैत्तिकमाह—पकोदुम्बरसंकाशः पीतो वा ज्वरदाहवान् । क्षिप्रोत्था-
नप्रपाकश्च विद्रधिः पित्तसंभवः ॥ १ ॥ अथ श्लेष्मजमाह—शरावसदृशः
पाण्डुः शीतः स्निग्धोऽल्पवेदनः । चिरोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः कफसंभवः
॥ १ ॥ तनुपीतसिताश्चैषामास्त्रावाः क्रमशः स्मृताः । अथ सांनिपातिक-
माह—नानावर्णरुजास्त्रावो घाटालो विपमो महान् । विपमं पच्यते चापि
विद्रधिः सांनिपातिकः ॥ १ ॥ अथाभिघातसंप्राप्तिमाह—तैस्तैर्भावैरभिहते
क्षते वाऽपथ्यकारिणः । क्षतोष्मा वायुविसृतः सरक्तं पित्तमीरयेत् ॥ १ ॥
ज्वरस्तृष्णा च दाहश्च जायन्ते तस्य देहिनः । आगन्तुर्विद्रधिर्ह्येव पित्तविद्र-
धिलक्षणः ॥ १ ॥ अथ रक्तजमाह—कृष्णस्फोटावृतः श्यावस्तीव्रदाहरुजा-

ज्वरः । पित्तविद्रधिलिङ्गस्तु रक्तविद्रधिरुच्यते ॥ १ ॥ उक्ता विद्रधयो ह्येते
तेष्वसाध्यस्तु सर्वजः । अभ्यन्तरविद्रधिकारणमाह—अभ्यन्तरानतस्तू-
र्ध्वं विद्रधीन्संप्रचक्षते । गुर्वसात्म्यविरुद्धान्नशुष्कसंसृष्टभोजनात् ॥ १ ॥ अ-
तिव्यवायव्यायामवेगाघातविदाहिभिः । पृथक्संभूय वा दोषाः कुपिता गुल्म-
रूपिणम् । वल्मीकवत्समुन्नद्धमन्तः कुर्वन्ति विद्रधिम ॥ २ ॥ अथ संस्था-
नमाह—गुदे बस्तिमुखे नाभ्यां कुक्षौ वङ्गणयोस्तथा । वृक्कयोः प्लीहि यकृति
क्लोन्नि वाऽप्यथवा हृदि ॥ १ ॥ अथैषां लक्षणम्—एवमुक्तानि लिङ्गानि
बाह्यविद्रधिलक्षणैः । अधिष्ठानविशेषेण लक्षणानि निबोध मे ॥ १ ॥ गुदे
वातनिरोधस्तु बस्तौ कृच्छ्राल्पमूत्रता । नाभ्यां हिष्मा तु सादोपः कुक्षौ मा-
रुतकोपनम् ॥ २ ॥ कटीपृष्ठग्रहस्तीव्रो वङ्गणस्थे तु विद्रधौ । वृक्कयोः पार्श्व-
संकोचः प्लीहि श्वासनिरोधनम् ॥ ३ ॥ सर्वाङ्गप्रग्रहस्तीव्रो हृदि कासश्च जायते ।
श्वासो यकृति हिक्का च पिपासा क्लोमजेऽधिका ॥ ४ ॥ अथ स्त्रावनिर्गम-
माह—नाभेरपरिजाः पक्का यान्त्यूर्ध्वमितरे त्वधः । अधःस्रुतेषु जीवेत् स्रु-
तेषूर्ध्वं न जीवति ॥ १ ॥ उक्तं हारीतेन—ऊर्ध्वं प्रपन्नेषु मुखान् नराणां
प्रवर्ततेऽसृक्सहितो हि पूयः । अधः प्रपन्नेषु च पायुमार्गाद्वाभ्यां प्रवृत्तिस्त्विह
नाभिजे च ॥ १ ॥ अथ स्त्रावविषयं साध्यासाध्यत्वमाह—हन्नाभिव-
स्तिवर्ज्या ये तेषु भिन्नेषु बाह्यतः । जीवेत्कदाचित्पुरुषो नेतरेषु कदाचन ॥ १ ॥
अथोक्तं भोजेन—असाध्यो मर्मजो ज्ञेयः पक्कोऽपक्वश्च विद्रधिः । संनिपा-
तोत्थितोऽप्येवं पक्व एव तु बस्तिजः ॥ १ ॥ त्वग्जो नाभेरधो यश्च साध्यो
नोपरि नाभिजः ॥ २ ॥ पुनः साध्यासाध्यत्वमाह—साध्या विद्रधयः
पञ्च विवर्ज्यः सांनिपातिकः । आमपक्वविद्रग्धत्वं तेषां शोथवदादिज्ञेत् ॥ १ ॥
अथ तेषामभ्यन्तरेष्वसाध्यमाह—आध्मानवद्धनिप्यन्दं छर्दिहिक्कातृषा-
न्वितम् । रुजाश्वाससमायुक्तं विद्रधिर्नाशयेन्नरम् ॥ १ ॥ आमो वा यदि वा
पक्वो महान्वा यदि वेतरः । सर्वो मर्मोत्थितत्वात्तु विद्रधिः कष्ट उच्यते ॥ २ ॥
हन्नाभिवस्तिजः पक्वो वर्ज्यो यश्च त्रिदोषजः । मुष्टिप्रमाणो गुल्मस्तु विद्र-
धिस्तु ततः परम् ॥ ३ ॥ गुल्मस्तिष्ठति कोष्ठेषु विद्रधिर्मांसशोणिते । विद्रधिः
पच्यते यस्माद्गुल्मश्चात्र न पच्यते ॥ ४ ॥ इति विद्रधिनिदानम् ।

अथ स्तनविद्रधिनिदानम्—

एवमेव स्तनशिराः संवृता वाऽथ योषिताम् । सूतानां गर्भिणीनां च संभवे-
च्छ्रयधुर्वनः ॥ १ ॥ स्तनः स्त्रियाः सद्गुधो वा बाह्यविद्रधिलक्षणः । नाडीनां
सूक्ष्मवक्रत्वात्कन्यानां न स जायते ॥ २ ॥ इति स्तनविद्रधिनिदानम् ।

अथातो विद्रधिचिकित्सां व्याख्यास्यामः ।

रसालफलतुल्यो यः शोफो बाह्योऽथ वाऽऽन्तरः । पृथग्दाहरुजानाहका-

रको विद्रधिः स्मृतः ॥ १ ॥ जलौकापातनं शस्तं सर्वस्त्रिष्वेव विद्रधौ । मृदु-
 विरेको लघ्वन्नं स्वेदः पित्तोत्तरं विना ॥ २ ॥ अथ वातविद्रधौ—व्याघ्री-
 मूलककल्कैस्तु वसातैलघृतान्वितैः । सुखोष्णो बहुलो लेपः प्रयोज्यो वातवि-
 द्रधौ ॥ १ ॥ स्वेदोपनाहाः कर्तव्याः शिशुमूलसमन्विताः । पुनर्नवादारुविश्व-
 दशमूलाभयाम्भसा । गुग्गुल्वेरण्डतैलं वा पिबेन्मारुतविद्रधौ ॥ २ ॥ अथ
 पित्तविद्रधौ—पैत्तिके सारिवालाजामधुकैः शर्करायुतैः । प्रदिह्यात्क्षीरपि-
 ष्टैर्वा पयस्योशीरचन्दनैः ॥ १ ॥ पिबेद्वा त्रिफलाकाथं त्रिवृत्कल्काक्षसंयुतम् ।
 पञ्चवल्कलकल्केन घृतमिश्रेण लेपनम् ॥ २ ॥ अथ श्लेष्मविद्रधौ—त्रिफ-
 लाशिशुवरुणदशमूलाभसा पिबेत् । गुग्गुलुं मूत्रसंयुक्तं विद्रधौ कफसंभवे
 ॥ १ ॥ इष्टकासिकतालोहाश्वशकृत्पपांसुभिः । मूत्रैरुष्णैश्च सततं स्वेदयेच्छ्ले-
 ष्मविद्रधौ ॥ २ ॥ अथ रक्तागन्तुजौ—विद्रधौ कुशलः कुर्याद्रक्तागन्तुनि-
 मित्तजे । पित्तविद्रधिवत्कुर्यात्क्रियां निरवशेषतः ॥ १ ॥ अथ सामान्य-
 विधिः—शिशुदीप्यवरुणद्वियामिनीकुञ्जराशनकृतः कपायकः । बोलचूर्णस-
 हितोऽन्तरुत्थितं विद्रधिं विदलयेदसंशयम् ॥ १ ॥ इति सौभाञ्जनादिकाथः ॥
 अथ वरुणादिकाथः—कासीससैन्धवशिलाजतुहिङ्गुचूर्णमिश्रीकृतो वरुण-
 वल्कलजः कपायः । अभ्यन्तरोत्थितमपक्वमतिप्रमाणं नृणामयं जयति विद्र-
 धिमुग्रशोफम् ॥ १ ॥ अथ श्वेतपुनर्नवादिः—श्वेतवर्षाभुवो मूलं मूलं च
 वरुणस्य च । जलेन कथितं पीतमपक्वं विद्रधिं जयेत् ॥ १ ॥ अथ यवादि-
 लेपः—यवगोधूममुद्गैश्च सिद्धपिष्टैः प्रलेपयेत् । विलीयते क्षणेनैवमपक्वश्चैव
 विद्रधिः ॥ १ ॥ अथ दशमूलादिः—दशमूली छिन्नरुहा पथ्या दारुपुन-
 र्नवा । ज्वरविद्रधिशोफेषु शिशुविश्वयुतो हितः ॥ १ ॥ अथ वरुणगणादिः—
 वरुणादिगणकाथमपक्वमध्यविद्रधौ । ऊषकादिप्रतीवापं पिबेत्संशमनाय वै
 ॥ १ ॥ अथ मानकमूलादि—शमयति मानकमूलं क्षौद्रयुतं तण्डुलाम्भसा
 पीतम् । अन्तर्भूतं विद्रधिमुद्धतमाश्वेव मनुजस्य ॥ १ ॥ अथ हरीतकीचू-
 र्णम्—हरीतकीसैन्धवधातकीनां रजो घृतक्षौद्रयुतं प्रयुक्तम् । निहन्ति लीढं
 ध्रुवमेव पुंसामन्तर्भवं विद्रधिमुग्ररूपम् ॥ १ ॥ अथ सौभाञ्जनादि—सौ-
 भाञ्जनकनिर्यूहो हिङ्गुसैन्धवसंयुतः । अचिराद्विद्रधिं हन्ति प्रातः प्रातर्निपे-
 वितः ॥ १ ॥ शिशुमूलं जले धौतं दरपिष्टं प्रलेपयेत् । तद्रसं मधुना पीत्वा
 हन्यन्तर्विद्रधिं नरः ॥ २ ॥ अथ त्रिफलागुग्गुलुः—त्रीणि पलानि फल-
 त्रितयस्य द्वे तु पले तुलिते मगधायाः । पञ्च पलानि भवन्ति पुरस्य स्यात्स-
 फलत्रिकगुग्गुलुयोगः ॥ १ ॥ पक्केषु विद्रधिषु पूयमतिस्ववत्सु नाडीषु च व्रण-
 गदेषु भगंदरेषु । स्याद्रण्डमालिषु फलत्रिकगुग्गुलुः स्यात्पथ्यं फलत्रिकपुरे
 घृतभोजनं च ॥ २ ॥ अथ वरुणकादिघृतम्—सिद्धं वरुणादिगणेन वि-
 धिना तत्कल्कपाचितं सर्पिः । अन्तर्विद्रधिमुग्रं मस्तकशूलं हुताशमान्धं च

॥ १ ॥ गुल्मानपि पञ्चविधान्नाशयतीदं यथाऽम्बु वायुसखम् । एतत्प्रातः
प्रपिबेद्भोजनसमये निशास्येऽपि ॥ २ ॥ इति वरुणकादिघृतम् । अथ रस-
गन्धकयोगः—वरुणादिकपायेण रसगन्धककज्जलीम् । भुक्त्वा निहन्ति
मापैकां बाह्यमन्तश्च विद्रधिम् । अपके त्वेतदुद्दिष्टं पक्वे तद्व्रणवत्क्रिया ॥ १ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

आमस्ये रेचनं चैव लेपः स्वेदोऽस्त्रमोक्षणम् । जीर्णाः श्यामाककलमाः कु-
लत्था लशुनानि च ॥ १ ॥ रक्तशिशुश्च निष्पावः कारवेलं पुनर्नवा । श्रीपर्णं
चित्रकं शौद्रं शोथोक्तानि च सर्वशः ॥ २ ॥ पक्कावस्ये शस्त्रकर्म पुराणा रक्त-
शालयः । घृतं तैलं मुद्गरसो विलेपी धन्वजा रसाः ॥ ३ ॥ शालिशकं च
कदली पटोलं हिमवालुका । चन्दनं तसशीताम्बु सर्वं चापि व्रणोदितम् ॥ ४ ॥
नराणां विद्रधौ व्याधौ यथावस्थं यथाबलम् । पथ्यान्येतानि सर्वाणि निर्दि-
ष्टानि महर्षिभिः ॥ ५ ॥ शोफिनां यान्यपथ्यानि व्रणिनामपि यानि च । क्र-
मादामे च पक्वे च विद्रधौ वर्जयेन्नरः ॥ ६ ॥ इति विद्रधिचिकित्सा ।

अथ व्रणशोथनिदानम् ।

अथ तस्य प्राग्रूपम्—एकदेशोत्थितः शोफो व्रणानां पूर्वलक्षणम् ॥ १ ॥
अथ तस्य संख्यामाह—षड्विधः स्यात्पृथक्सर्वशोणितागन्तुभेदतः ॥ १ ॥
अथ तेषां लक्षणमाह—शोफाः पडेते विज्ञेयाः प्रागुक्तैः शोफलक्षणैः ।
विशेषः कथ्यते चैषां पक्कापक्कविनिश्चये ॥ १ ॥ विषमं पच्यते वातात्पित्तो-
त्थश्चाचिराच्चिरम् । कफजः पित्तवच्छोफो रक्तागन्तुसमुद्भवः ॥ २ ॥ मन्दो-
त्पत्ताल्पशोफत्वं काठिन्यं त्वक्सवर्णता । मन्दवेदनता चैव शोफानामामल-
क्षणम् ॥ ३ ॥ दह्यते दहनेनेव क्षारेणेव विपच्यते । पिपीलिकागणेनेव द-
श्यते छिद्यते तथा ॥ ४ ॥ भिद्यते चैव शस्त्रेण दण्डेनेव च ताड्यते । पी-
ड्यते पाणिनेवान्तः सूचीभिरिव तुद्यते ॥ ५ ॥ सोपचोपो विवर्णः स्यादङ्गु-
ल्येवावपीड्यते । आसने शयने स्थाने शान्तिं वृश्चिकविद्धवत् ॥ ६ ॥ न ग-
च्छेदाततः शोफो भवेदाध्मातबस्तिवत् । ज्वरस्तृष्णाऽरुचिश्चैव पच्यमानस्य
लक्षणम् ॥ ७ ॥ वेदनोपशमः शोफो लोहितोऽल्पो न चोन्नतः । प्रादुर्भावो
वलीनां च तोदः कण्डूर्मुहुर्मुहुः ॥ ८ ॥ उपद्रवाणां प्रशमो निम्नता स्फुटनं
त्वचाम् । बस्ताविवाम्बुसंचारः स्याच्छोफेऽङ्गुलिपीडिते ॥ ९ ॥ पूयस्य पीड-
यत्येकमन्तमन्ते च पीडिते । भक्ताकाङ्क्षा भवेच्चैव शोफानां पक्कलक्षणम्
॥ १० ॥ नर्तेऽनिलाद्रुद्धं विना च पित्तं दाहः कफं चापि विना न पूयः ।
तस्माद्धि सर्वे परिपाककाले दोषैस्त्रिभिर्यान्ति गदा विपाकम् ॥ ११ ॥ का-
लान्तरेणाभ्युदितं तु पित्तं कृत्वा वशे वातकफौ प्रसह्य । पचत्यतः शोणित-
मेप पाको मतः परेषां विद्रुपां द्वितीयः ॥ १२ ॥ कफजेषु च शोथेषु गम्भीरं

पाकमेत्यसृक् । पक्कलिङ्गं ततः स्पष्टं यतः स्याच्छोथशीतता ॥ त्वक्सावर्ण्यं
रुजोऽल्पत्वं घनस्पर्शत्वमश्मवत् ॥ १३ ॥ कक्षं समासाद्य यथैव वह्निर्वाते-
रितः संदहति प्रसह्य । तथैव पूयोऽप्यविनिःसृतो हि मांसं शिरास्त्रायु च
खादतीह ॥ १४ ॥ आमं विपच्यमानं च सम्यक्पक्वं च यो भिषक् । जानी-
यात्स भवेद्वैद्यः शेषास्तस्करवृत्तयः ॥ १५ ॥ यश्छिनत्त्याममज्ञानाद्यश्च पक्क-
मुपेक्षते । श्वपचाविव मन्तव्यौ तावनिश्चितकारिणौ ॥ १६ ॥ द्विधा व्रणः
परिज्ञेयः शारीरागन्तुभेदतः । दोषैराद्यस्ततोऽन्यश्च शस्त्रादिक्षतसंभवः ॥ १७ ॥
अथ वातिकमाह—स्तब्धः कठिनसंस्पर्शो मन्दस्त्रावो महारुजः । तुद्यते
स्फुरति इयावो व्रणो मारुतसंभवः ॥ १८ ॥ अथ पैत्तिकमाह—तृष्णामो-
हज्वरक्लेददाहदुःखावदारणैः । व्रणं पित्तकृतं विद्याद्गन्धैः स्त्रावैश्च पूतिकैः
॥ १९ ॥ अथ कफजमाह—बहुपिच्छो गुरुः स्निग्धः स्तिमितो मन्दवेदनः ।
पाण्डुवर्णोऽल्पसंक्लेदश्चिरपाकी कफव्रणः ॥ २० ॥ अथ रक्तजमाह—रक्तो
रक्तसुती रक्ताद्विभिजः स्यात्तदन्वयः । त्वज्जांसजः सुखे देशे तरुणस्यानुप-
द्रवः ॥ २१ ॥ धीमतोऽभिनवः काले सुखे साध्यः सुखं व्रणः । गुणैरन्यत-
मैर्हीनस्ततः कृच्छ्रो व्रणः स्मृतः ॥ २२ ॥ सर्वैर्विहीनोऽसाध्यस्तु तथैवोपद्र-
वान्वितः । पूतिः पूयातिदुष्टासृक्स्त्राव्युत्सङ्गी चिरं स्थितः ॥ २३ ॥ दुष्टव्र-
णोऽतिगन्धादिः शुद्धलिङ्गविपर्ययः । जिह्वातलाभः सुश्लक्ष्णः स्निग्धो विगत-
वेदनः ॥ २४ ॥ सुव्यवस्थो निरास्त्रावः शुद्धो व्रण इति स्मृतः । कपोतवर्ण-
प्रतिमा यस्यान्ताः क्लेदवर्जिताः ॥ २५ ॥ स्थिराश्च पिटिकावन्तो रोहतीति
तमादिशेत् । रूढवर्त्मानमग्रन्थिमशूनमरुजं व्रणम् ॥ २६ ॥ त्वक्सवर्णं स-
मतलं सम्यगरूढं तमादिशेत् । कुष्ठिनां विषजुष्टानां शोषिणां मधुमेहिनाम्
॥ २७ ॥ व्रणाः कृच्छ्रेण सिध्यन्ति येषां चापि व्रणे व्रणाः । वसां मेदोऽथ
मज्जानं मस्तुलुङ्गं च यः स्रवेत् ॥ २८ ॥ आगन्तुजो व्रणः सिध्येन्न सिध्येद्दो-
षसंभवः । मद्यागर्वाज्यसुमनःपद्मचन्दनचम्पकैः ॥ २९ ॥ सगन्धा दिव्यग-
न्धाश्च सुमूर्पूर्णां व्रणाः स्मृताः । ये च मर्मसु संभूता भवन्त्यत्यर्थवेदनाः । द-
ह्यन्ते चान्तरत्यर्थं बहिःशीताश्च ये व्रणाः ॥ ३० ॥ प्राणमांसक्षयश्चासकासा-
रोचकपीडिताः । प्रवृद्धपूयरुधिरा व्रणा येषां च मर्मसु ॥ ३१ ॥ क्रियाभिः
सम्यगारब्धा न सिध्यन्ति च ये व्रणाः । वर्जयेदेव तान्वैद्यः संरक्षन्नात्मनो
यशः ॥ ३२ ॥ इति व्रणशोथनिदानम् ॥

अथ व्रणशोथचिकित्सा ।

आदौ विम्लापनं कुर्याद्वितीयमवसेचनम् । तृतीयमुपनाहं च चतुर्थी पा-
टनक्रिया ॥ १ ॥ पञ्चमं शोधनं कार्यं पष्टं रोपणमिष्यते । एते क्रमा व्रण-
स्योक्ताः सप्तमं वैकृतापहम् ॥ २ ॥ अथ विम्लापनम्—अभ्यज्य स्वेद-

यित्वा तु वेणुनाड्या शनैः शनैः । विम्लापनार्थं गृहीत तलेनाङ्गुष्ठकेन वा ॥ १ ॥
 अथावसेचनम्—रक्तावसेचनं कुर्यादादावेव विचक्षणः । शोफे महति
 संवृद्धे वेदनावति वा व्रणे ॥ १ ॥ यो न याति शमं लेपात्स्वेदसेकापतर्पणैः ।
 सोऽपि नाशं व्रजत्याशु शोथः शोणितमोक्षणात् ॥ २ ॥ एकतश्च क्रियाः
 सर्वा रक्तमोक्षणमेकतः । रक्तं हि विक्रियां याति तन्मोक्षे याति विक्रिया
 ॥ ३ ॥ अथ लेपः—मातुलुङ्गाग्निमन्थौ च सुरदारु महौषधम् । अहिंसा
 चैव रास्ना च प्रलेपो वातशोथहा ॥ १ ॥ कल्कः काञ्चिकसंपिष्टः स्निग्धः
 शाखोटकत्वचः । सुपर्ण इव नागानां वातशोथविनाशनः ॥ २ ॥ दूर्वा च
 नलमूलं च मधुकं चन्दनं तथा । शीतलैश्च गणैः सर्वैः प्रलेपः पित्तशोफजित्
 ॥ ३ ॥ अजगन्धाऽश्वगन्धा च काला सरलया सह । कम्पिल्लका च शृङ्गी च
 प्रलेपः श्लेष्मशोथहा ॥ ४ ॥ कृष्णा पुराणपिण्याकं शिशुत्वक्सिकता शिवा ।
 मूत्रपिष्टः सुखोष्णोऽयं प्रलेपः श्लेष्मशोथहा ॥ ५ ॥ न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्ष-
 वेतसशेलुभिः । चन्दनद्वयमञ्जिष्ठायष्टीसूरणगैरिकैः ॥ ६ ॥ शतधौतघृतो-
 न्मिश्रैर्लेपो रक्तप्रसादनः । दाहपाकरुजास्त्रावशोफनिर्वापणः परः ॥ ७ ॥ आग-
 न्तुजे रक्तजे च एष लेपोऽतिपूजितः ॥ ८ ॥ कटुतैलान्वितैर्लेपः सर्पनिर्मोक-
 भस्मभिः । चयः शाम्यति गण्डस्य प्रकोपः स्फुटति द्रुतम् ॥ ९ ॥ न रात्रौ
 लेपनं दद्याद्दत्तं च पतितं तथा । न च पर्युषितं नैव शुष्यमाणं च धारयेत्
 ॥ १० ॥ शुष्यमाणमुपेक्षेत प्रदेहं पीडनं प्रति । न चापि मुखमालिम्पेत्तेन
 दोषः प्रसिच्यते ॥ ११ ॥ न प्रशाम्यति यः शोफः प्रलेपादिविधानतः । द्र-
 व्याणि पाचनीयानि दद्यात्तत्रोपनाहने ॥ १२ ॥

अथोपनाहनम्—सतिलाः सातसीबीजा दध्यन्त्रैः सक्तुपिण्डकाः । स-
 किण्वकुष्ठलवणाः शस्ताः स्युरूपनाहने ॥ १ ॥ तैलेन सर्पिषा वाऽपि द्वाभ्यां
 सक्तुपिण्डका । सुखोष्णः शोथपाकार्थमुपनाहः प्रशस्यते ॥ २ ॥ इत्युपना-
 हनम् ।

अथ पाटनम्—अन्तःपूयिष्वक्त्रेषु तथैवोत्सङ्गवत्स्वपि । गतिमत्सु च
 रोगेषु भेदनं शस्तमुच्यते ॥ १ ॥ बालवृद्धासहक्षीणभीरूणां योषितामपि ।
 मर्मोपरि च जातेषु पक्वे शोफे च दारुणे ॥ २ ॥ चिरिबिल्वोष्णिको दन्ती चित्रको
 ह्यमारकः । कपोतकङ्कगृध्राणां मलं लेपेन दारणम् ॥ ३ ॥ स्वर्जिकायावशू-
 काद्याः क्षारा लेपेन दारणाः । हेमकान्त्यास्तथा लेपो व्रणे परमदारणः ॥ ४ ॥
 शणमूलकशिग्रूणां फलानि तिलसर्पपाः । सक्तवः किण्वमतसी प्रदेहः पाचनः
 स्मृतः ॥ ५ ॥ दन्ती चित्रकमूलत्वक्स्त्रुहर्कपयसी गुडः । भल्लातकास्थिकासी-
 ससैन्धवैर्दारणः स्मृतः ॥ ६ ॥ हस्तिदन्तो जले घृष्टो बिन्दुमात्रः प्रलेपितः ।
 अत्यन्तकठिने चापि शोफे पाचनभेदनः ॥ ७ ॥ यवगोधूमचूर्णं च सक्षारं
 दारणं पृथक् । हरिद्राभस्मचूर्णाभ्यां प्रलेपो दारणः परः । अजविदक्षारमृज्जश्च

प्रलेपो व्रणदारणः ॥ ८ ॥ इति पाटनम् । ततः प्रक्षालने काथः पटोलीनिम्बपत्रजः । अविशुद्धे विशुद्धे तु न्यग्रोधादित्वगुद्भवः ॥ १ ॥ पञ्चमूलीद्वयं चाते न्यग्रोधादिश्च पैत्तिके । आरग्वधादिको योज्यः कफजे सर्वकर्मसु ॥ २ ॥

अथ शोधनरोपणविधिः ।

तिलसैन्धवयष्ट्याह्वनिम्बपत्रनिशायुतैः । त्रिवृन्मधुयुतैः पिष्टैः प्रलेपो व्रणशोधनः ॥ १ ॥ तिलकल्कः सलवणो द्वे हरिद्वे त्रिवृद्घृतम् । मधुकं निम्बपत्राणि लेपः स्याद्रणशोधनः ॥ २ ॥ निम्बकोलकपत्राणां लेपः स्याद्रणशोधनः । निम्बपत्रतिलैः कल्को मधुना व्रणशोधनः ॥ ३ ॥ निम्बपत्रं तिलादन्ती त्रिवृत्सैन्धवमाक्षिकम् । दुष्टव्रणप्रशमनो लेपः शोधनरोपणः ॥ ४ ॥ अभयात्रिवृतादन्तीलाङ्गलीमधुसैन्धवैः । सुषवीपत्रधत्तूरकर्ममोटकुठेरिकाः ॥ ५ ॥ पृथगेते प्रलेपेन गम्भीरव्रणशोधनाः । निम्बपत्रमधुभ्यां तु युक्तः संशोधनः स्मृतः ॥ ६ ॥ एकं वा सारिवामूलं सर्वव्रणविशोधनम् । न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थकदम्बप्लक्षवेतसाः ॥ ७ ॥ करवीरार्ककटुकाकपायो रोपणे हितः ॥ ८ ॥ सप्तदलदुग्धकल्कः शमयति दुष्टव्रणं प्रलेपेन । मधुयुक्ता शरपुङ्खा सर्वव्रणरोपणी कथिता ॥ ९ ॥ पञ्चवल्कलचूर्णैर्वा शुक्तिचूर्णसमायुतैः । धातकीलोध्रचूर्णैर्वा निःसारा हन्ति ते व्रणाः ॥ १० ॥ निम्बपत्रघृतक्षौद्रदार्वीमधुकसंयुता । वर्तिस्तिलानां कल्को वा शोधयेद्रोपयेद्रणम् ॥ ११ ॥ निम्बशम्याकजात्यर्कसप्तपर्णाश्वमारकाः । कृमिघ्ना मूत्रसंयुक्ताः सेकलेपनधावनैः ॥ १२ ॥ करञ्जारिष्टनिर्गुण्डीरसो हन्याद्रणक्रिमीन् । लशुनेनाथवादद्याल्लेपनं कृमिनाशनम् ॥ १३ ॥ निम्बपत्रवचाहिङ्गुसर्पिलवणसैन्धवैः । धूपनं कृमिरक्षोघ्नं व्रणकण्डूरुजापहम् ॥ १४ ॥ ये क्लेदपाकस्रुतिगन्धवन्तो व्रणा महान्तः सरुजाः सशोथाः । प्रयान्ति ते गुग्गुलुमिश्रितेन पीतेन शान्तिं त्रिफलाजलेन ॥ १५ ॥

अथ गुग्गुलुवटकः—त्रिफलाचूर्णसंयुक्तो गुग्गुलुर्वटकीकृतः । निपेक्षितो विबन्धघ्नो व्रणशोधनरोपणः ॥ १ ॥ अथ विडङ्गादिगुग्गुलुः—विडङ्गत्रिफलाव्योपचूर्णं गुग्गुलुना समम् । सर्पिषा वटकान्कुर्यात्खादेद्वा हितभोजनः । दुष्टव्रणापचीमेहकुष्ठनाडीविशोधनः ॥ १ ॥ अथामृताद्यो गुग्गुलुः—अमृतापटोलमूलत्रिकटुत्रिफलाकृमिघ्नानाम् । कृत्वा समभागचूर्णं तत्तुल्यो गुग्गुलुर्योज्यः ॥ १ ॥ प्रतिवासरमेकैकां गुटिकां खादेत्तथाऽक्षपरिमाणाम् । जेतुं व्रणवातासं गुल्मोदरपाण्डुशोथादीन् ॥ २ ॥

अथ जात्यादिघृतम्—जातीपत्रपटोलनिम्बकटुकादार्वीनिशासारिवामञ्जिष्ठाभयतुत्थसिक्थमधुकैर्नक्ताह्वबीजान्वितैः । सर्पिः सिद्धमनेन सूक्ष्मवदना मर्माश्रिताः स्वाविणो गम्भीराः सरुजो व्रणाः सगतिकाः शुद्ध्यन्ति रोहन्ति

च ॥ १ ॥ अथ स्वर्जिकाघृतम्—स्वर्जिका च यवक्षारः कम्पिलं च हरेणुका । टङ्कणं श्वेतखदिरं तुत्थं चूर्णं च गोघृतैः ॥ १ ॥ सर्वं समांशं संचूर्ण्य मर्दयेत्प्रहरं दृढम् । स्वर्जिकाद्यमिदं सर्पिः सर्वव्रणहरं परम् ॥ रोपणं कृमिकण्डूघ्नं सवर्णकरणं परम् ॥ २ ॥ अथ मनःशिलादिलेपः—मनःशिला समञ्जिष्ठा सक्षारा रजनीद्वयम् । प्रलेपः सघृतक्षौद्रस्त्वग्विशुद्धिकरः स्मृतः १

अथ पारदादिमलहरः—रसगन्धकयोश्चूर्णं तत्समं मुर्दंशङ्ककम् । सर्वतुल्यं तु कम्पिलं किञ्चित्तुत्थसमन्वितम् ॥ १ ॥ सर्वं संमेलयेद्वा घृतं सर्वाच्चतुर्गुणम् । पिचुडुतं प्रदातव्यं दुष्टव्रणविशोधनम् ॥ २ ॥ नाडीव्रणहरं चैव सर्वव्रणनिघृदनम् । ये व्रणा न प्रशाम्यन्ति भेषजानां शतेन च ॥ अनेन ते प्रशाम्यन्ति सर्पिषा स्वल्पकालतः ॥ ३ ॥ अथ द्वितीयः पारदादिमलहरः—रसगन्धकसिन्दूररालकम्पिलमुर्दकम् । तुत्थं खादिरकं चूर्णं सर्वं घृतचतुर्गुणम् ॥ १ ॥ युक्त्या संमेल्य पिचुना व्रणे देयं विजानता । सर्वव्रणप्रशमनं घृतमेतन्न संशयः ॥ २ ॥ अथायोरजआदिलेपः—अयोरजः सकासीसं त्रिफला कुसुमानि च । प्रलेपः कुरुते दाव्या सद्य एव नवां त्वचम् ॥ १ ॥

इति व्रणशोधचिकित्सा ।

अथ सद्योव्रणनिदानमाह—

नानाधारामुखैः शस्त्रैर्नानास्थाननिपातितैः । भवन्ति नानाकृतयो व्रणास्तांस्तान्निबोध मे ॥ १ ॥ अथ तेषां षड्विधत्वमाह—छिन्नं भिन्नं तथा विद्धं क्षतं पिच्छितमेव च । घृष्टमाहुस्तथा षष्ठं तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ २ ॥ तिर्यक्छिन्नं ऋजुर्वाऽपि व्रणो यस्त्वायतो भवेत् । गात्रस्य पातनं तद्धि छिन्नमित्यभिधीयते ॥ ३ ॥ शक्तिकुन्तेषु खङ्गाग्रविपाणैराशयो हतः । यत्किञ्चित्प्रसवेत्तद्धि भिन्नलक्षणमुच्यते ॥ ४ ॥ स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च । हृदुन्दुकः फुफ्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते ॥ ५ ॥ तस्मिन्भिन्ने रक्तपूर्णं ज्वरो दाहश्च जायते । मूत्रमार्गगुदास्येभ्यो रक्तं घ्राणाच्च गच्छति ॥ ६ ॥ मूर्च्छां श्वासस्तृषाऽऽध्मानमभक्तच्छन्द एव च । विण्मूत्रवातसङ्गश्च स्वेदस्रावोऽक्षिरक्तता ॥ ७ ॥ लोहगन्धित्वमास्यस्य गात्रे दौर्गन्ध्यमेव च । हृच्छूलं पार्श्वयोश्चापि विशेषं चात्र मे शृणु ॥ ८ ॥ आमाशयस्थे रुधिरे रुधिरं छर्दयत्यपि । आध्मानमतिमात्रं च शूलं च भृशदारुणम् ॥ ९ ॥ पक्काशयगते चापि रुजा गौरवमेव च । अधःकाये विशेषेण शीतता च भवेदिह ॥ १० ॥ सूक्ष्मास्यशल्याभिहतं यदङ्गं त्वाशयं विना । उत्तुण्डितं निर्गतं वा तद्विद्धमिति निर्दिशेत् ॥ ११ ॥ नातिच्छिन्नं नातिभिन्नमुभयोर्लक्षणान्वितम् । विषमं व्रणमङ्गे यत्तत्क्षतं तु विनिर्दिशेत् ॥ १२ ॥ प्रहारपीडनाभ्यां तु यदङ्गं पृथुतां गतम् । सास्थि तत्पिच्छितं विद्यान्मज्जरक्तपरिधुतम् ॥ १३ ॥ वर्षणा-

दभिघाताद्वा यदङ्गं विगतत्वचम् । ऊपास्त्रावान्वितं तच्च घृष्टमित्यभिधीयते ॥ १४ ॥ इथावं सशोफं पिष्टिकान्वितं च मुहुर्मुहुः शोणितवाहिनं च । मृदु-
वृत्तं बुद्बुदतुल्यमांसं व्रणं सशल्यं सरुजं वदन्ति ॥ १५ ॥ त्वचोऽतीत्य शि-
रादीनि भित्त्वा च परिहृत्य वा । कोष्ठे प्रतिष्ठितं शल्यं कुर्यादुक्तानुपद्रवान् ॥ १६ ॥ तत्रान्तलोहितं पाण्डुशीतपादकराननम् । शीतोच्छ्वासं रक्तनेत्रमा-
नन्दं परिवर्जयेत् ॥ १७ ॥ भ्रमः प्रलापः पतनं प्रमोहो विचेष्टनं ग्लानिरथो-
ष्णता च । स्रस्ताङ्गता मूर्छनमूर्ध्ववातस्तीव्रा रुजो वातकृताश्च तास्ताः ॥ १८ ॥
मांसोदकाभं रुधिरं च गच्छेत्सर्वेन्द्रियार्थोपरमस्तथैव । दशार्धसंख्येष्वपि वि-
क्षतेषु सामान्यतो मर्मसु लिङ्गमुक्तम् ॥ १९ ॥ सुरेन्द्रगोपप्रतिमं प्रभूतं रक्तं
स्वेत्तक्षतजश्च वायुः । करोति रोगान्विविधान्यथोक्ताञ्जिरासु विद्वास्वथ
वा क्षतासु ॥ २० ॥ कौडं शरीरावयवावसादः क्रियास्वशक्तिस्तुमुला रु-
जश्च । चिराद्गणो रोहति यस्य चापि तं स्नायुविद्धं पुरुषं व्यवस्येत् ॥ २१ ॥
शोफाभिवृद्धिस्तुमुला रुजश्च बलक्षयः पर्वसु भेदशोफौ । क्षतेषु संधिष्वच-
लाचलेषु स्यात्सर्वकर्मोपरमश्च लिङ्गम् ॥ २२ ॥ घोरा रुजो यस्य निशादिनेषु
सर्वास्ववस्थासु न चेति शान्तिम् । भिषग्विपश्चिद्विदितार्थसूत्रस्तमस्थिविद्धं
मनुजं व्यवस्येत् ॥ २३ ॥ यथास्वमेतानि विभावयेच्च लिङ्गानि मर्मस्वभिता-
डितेषु । पाण्डुर्विवर्णश्च सुखं न वेत्ति यो मांसमर्मण्यभिताडितश्च ॥ २४ ॥
मर्माश्रितं व्रणं प्राप्य वायुर्यः सर्वदेहगः । वेगैरायामयेदेहं व्रणायामं तु तं
त्यजेत् ॥ २५ ॥ विसर्पः पक्षघातश्च शिरास्तम्भोऽपतानकः । मोहोन्मादव्रण-
रुजो ज्वरतृष्णाहनुग्रहाः ॥ २६ ॥ कासश्छर्दिर्नितीसारो हिक्का श्वासः सवे-
पथुः । पोडशोपद्रवाः प्रोक्ता व्रणिनां व्रणचिन्तकैः ॥ २७ ॥ इति सद्योव्रण-
निदानम् ।

अथ सद्योव्रणचिकित्सा ।

बुद्ध्वाऽऽगन्तुव्रणं वैद्यो घृतक्षौद्रसमन्विताम् । शीतां क्रियां चरेदाशु रक्त-
पित्तोष्मनाशिनीम् ॥ १ ॥ क्रुद्धे सद्योव्रणे युज्यादूर्ध्वंचाऽधश्च शोधनम् ।
लङ्घनं च बलं ज्ञात्वा भोजनं चास्त्रमोक्षणम् ॥ २ ॥ घृष्टे विदलिते चैव सु-
तरामिष्यते विधिः । तयोरल्पं स्रवत्यस्रं पाकस्तेनाऽऽशु जायते ॥ ३ ॥ छिन्ने
भिन्ने तथा विद्धे क्षते चासृगतिस्त्रवेत् । रक्तक्षयात्तत्र रुजः करोति पवनो
भृशम् ॥ ४ ॥ स्नेहपानपरीपेकलेपस्वेदोपनाहनम् । कुर्वीत स्नेहवास्ति च मा-
स्तघ्नौपधैः शृतैः ॥ ५ ॥ उक्तं च ग्रन्थान्तरे—छिन्ने भिन्ने तथा विद्धे
क्षते सद्यो भिषग्वरः । पट्टसूत्रेण संस्वेदं कुर्याद् व्रणविशारदः ॥ १ ॥ मुहु-
र्मुहुर्थया दुःखं न प्राप्नोति व्रणी नरः । अथवा दीप्यलवणपोटल्या स्वेदये
न्मुहुः ॥ २ ॥ संतप्तया तसलोहपात्रसंयोगतः क्रमात् । दुष्टं रक्तं स्थितं
चापि शृङ्ग्यलाव्वादिभिर्हरेत् ॥ ३ ॥ सद्यः क्षतव्रणं वैद्यः सशूलं परिषेच-

येत् । यष्टीमधुकमिश्रेण नातिशीतेन सर्पिषा ॥ ४ ॥ कपायमधुराः शीताः क्रियाः सर्वास्तु योजयेत् । सद्योव्रणानां सप्ताहात्पश्चात्पूर्वोक्तमाचरेत् ॥ ५ ॥ चिकित्सितं तु तत्सर्वं सामान्यव्रणनाशनम् । आमाशयस्थे रुधिरे वमनं पथ्यमुच्यते । पक्वाशयस्थे देयं च विरेचनमसंशयम् ॥ ६ ॥

अथ वंशत्वगादिकाथः—काथो वंशत्वगेरण्डश्वदंष्ट्राश्मभिदा कृतः । हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तः कोष्ठस्थं स्त्रावयेदसृक् ॥ १ ॥ अथ यवादिः—यवकोलकुलत्थानां निःस्नेहेन रसेन च । भुञ्जीतान्नं यवागूं वा पिबेत्सैन्धवसंयुताम् ॥ १ ॥ अथ गौराद्यं घृतम्—गौरा हरिद्रा मज्जिष्ठा मांसी मधुकमेव च । प्रपौण्डरीकं ह्रीवेरं नतं मुस्तं च चन्दनम् ॥ १ ॥ जाती निम्बपटोलं च करञ्जं कटुरोहिणी । मधूच्छिष्टं मधूकं च महामेदा तथैव च ॥ २ ॥ पञ्चवल्कलतोयेन घृतप्रस्थं विपाचयेत् । एतद्रौरादिकं सर्पिः सर्वव्रणविशोधनम् ॥ ३ ॥ आगन्तुकाश्च सहजाः सुचिरोत्थाश्च ये व्रणाः । नाडीव्रणश्च विपमो नश्यत्येव न संशयः ॥ ४ ॥ अथ तिकादिघृतम्—तिकासिकथनिशायष्टीनक्ताह्लफलपल्लवैः । पटोलमालतीनिम्बपत्रैर्वर्ण्यं शृतं घृतम् ॥ १ ॥

अथ जात्यादितैलम्—जातीनिम्बपटोलानां नक्तमालस्य पल्लवाः । सिन्धुकं मधुकं कुष्ठं द्वे निशे कटुरोहिणी ॥ १ ॥ मज्जिष्ठा पञ्चकं लोध्रमभया नीलमुत्पलम् । तुत्थकं सारिवा बीजं नक्तमालस्य च क्षिपेत् ॥ २ ॥ एतानि समभागानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् । विपव्रणसमुत्पत्तौ स्फोटेषु च सकच्छुषु ॥ ३ ॥ कण्डूविसर्परोगेषु कीटदष्टेषु सर्वथा । सद्यःशस्त्रप्रहारेषु दग्धविद्धक्षतेषु च ॥ ४ ॥ नखदन्तक्षते देहे दुष्टमांसावधर्पणे । अक्षणार्थमिदं तैलं हितं शोधनरोपणम् ॥ ५ ॥ अथ विपरीतमलुतैलं चक्रदत्तात्—सिन्दूरकुष्ठविषहिङ्गुरसोचित्रवाणाङ्गिलिङ्गलिककल्कविपक्रतैलम् । प्रासादमण्डनयुतश्चसतुत्थफेनः क्लिन्नव्रणप्रशमने विपरीतमलुः ॥ १ ॥ खङ्गाभिघातगुरुगण्डमहोपदंशनाडीव्रणव्रणविचर्चिककुष्ठपाप्माः । एतान्निहन्ति विपरीतकमलुनाम तैलं यथेष्टशयनाशनभोजनस्य ॥ २ ॥ अथ दूर्वादितैलम्—दूर्वास्वरससंसिद्धं तैलं कम्पिल्लकेन वा । दार्वित्वचश्च कल्केन प्रधानं व्रणरोपणम् ॥ १ ॥

अथ सप्तविंशतिको गुग्गुलुः—त्रिकटुत्रिफलामुस्ताविडङ्गामृतचित्रकम् । पटोलं पिप्पलीमूलं हपुषा सुरदारु च ॥ १ ॥ तुम्बरुः पुष्करं चव्यं विशाला रजनीद्वयम् । विडं सौवर्चलं क्षारं सैन्धवं गजपिप्पली ॥ २ ॥ यावन्त्येतानि सर्वाणि तावद्विगुणगुग्गुलुः । कोलप्रमाणां वटिकां भक्षयेन्मधुना सह ॥ ३ ॥ कासं श्वासं तथा शोफमर्शसि च भगंदरम् । हृच्छूलं पार्श्वशूलं च कुक्षिबस्तिगुदे रुजम् ॥ ४ ॥ अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च अन्नवृद्धिं तथा कृमीन् । चिरज्वरोपसृष्टानां क्षतोपहतचेतसाम् ॥ ५ ॥ आनाहं च तथोन्मादं कुष्ठान्यष्टोदराणि च । नाडीदुष्टव्रणान्सर्वान्प्रमेहाञ्छ्लीपदं तथा ॥ ६ ॥ सप्त-

विंशतिको नाम गुग्गुलुः प्रथितो महान् । धन्वन्तरिकृतो ह्येष सर्वरोगनिपू-
दनः ॥ ७ ॥ इति सप्तविंशतिको गुग्गुलुः ।

अपथ्यम्—व्रणे श्वयथुरायासात्स च रागश्च जागरात् । तौ च रुक् दिवा
स्वापात्ते च मृत्युश्च मैथुनात् ॥ १ ॥ अम्लं दधि च शाकं च मांसमानूपवा-
रिजम् । क्षीरं गुरुणि चान्नानि व्रणी च परिवर्जयेत् ॥ २ ॥

इति सद्योव्रणचिकित्सा ।

अथाग्निदग्धव्रणनिदानमाह—

तत्र स्निग्धं रुक्षं वाऽऽश्रित्य द्रव्यमग्निर्दहति । अग्निसंतप्तो हि ज्ञेहः सू-
क्ष्ममार्गानुसारित्वात्त्वगादीननुप्रविश्याऽऽशु दहति । तस्मात्क्षेहदग्धेऽधिका
रुजो भवन्ति । तत्र छुष्टं दुर्दग्धं सम्यग्दग्धमतिदग्धमिति चतुर्विधं भवत्य-
ग्निदग्धम् । तत्र विवर्णमात्रं भुज्यते तत्छुष्टं । यत्रोत्तिष्ठन्ति स्फोटास्तीव्रदाह-
वेदनाश्चिराच्चोपशाम्यन्ति तद्दुर्दग्धम् । सम्यग्दग्धमवगाढं तालफलवर्णं सु-
स्थितं पूर्वलक्षणयुक्तं च । अतिदग्धं तु त्वज्जांसावल्म्वनगात्रविश्लेषणं शिरा-
स्त्रायुसंध्यस्थिव्यापादनमतिमात्रवेदनाज्वरदाहपिपासामूर्च्छाश्वासोपद्रवा भव-
न्ति । इति छुष्टादिभेदेनाग्निदग्धश्चतुर्विधो व्रणो भवति । इत्यग्निदग्धनिदानं
चन्द्रसेनात् ।

अथ अग्निदग्धचिकित्सा ।

छुष्टस्याग्निप्रतपनं कार्यमुष्णं तथौषधम् । शीतामुष्णां च दुर्दग्धे क्रियां
कुर्यात्ततः पुनः ॥ १ ॥ घृतालपेनसेकांस्तु शीतानेवास्य कारयेत् । अतिदग्धे
विशीर्णानि मांसान्युद्धृत्य शीतलाम् ॥ २ ॥ क्रियां कुर्याच्चूर्णकाले शालित-
ण्डुलकण्डनैः । तिन्दुक्यास्त्वक्कपायैर्वा घृतमिश्रैः प्रलेपयेत् ॥ ३ ॥ सम्य-
ग्दग्धे तुगाक्षीरीप्लक्षचन्दनैरैकैः । सासृतैः सर्पिषा युक्तैरालेपं कारयेद्भिषक्
॥ ४ ॥ अथ पथ्यादिलेपः—पथ्याकर्दमजीरकमधुसिक्थकसर्जमिश्रितं ले-
पात् । गव्यं घृतमपहरति च पावकजनितं व्रणं सद्यः ॥ १ ॥ अन्तर्धूमकुटे-
रको दहनजं लेपान्निहन्ति व्रणमश्वत्थस्य विशुष्कवल्कलंभवं चूर्णं तथा गुण्ड-
नात् । अभ्यङ्गाद्विनिहन्ति तैलमखिलं गण्डूपदैः साधितं पिप्प्ला शाल्मलितू-
लकैर्जलगतां लेपात्तथा वालुकाम् ॥ २ ॥ दग्धयवभस्मचूर्णं तिलतैलाक्तं प्र-
लेपनादचिरात् । हरति शिखिदाहदग्धं भूयोभ्यङ्गाव्रणं चाऽऽशु ॥ ३ ॥

अथ मधूच्छिष्टाद्यं तैलम्—मधूच्छिष्टं समधुकं लोभ्रं सर्जरसं तथा ।
मूर्वाचन्दनमज्जिष्ठाः पिप्प्ला सर्पिर्विपाचयेत् । सर्वेषामपि दग्धानां व्रणरोपण-
सुत्तमम् ॥ १ ॥ अथ पटोलीतैलम्—सिद्धं कषायकल्काभ्यां पटोल्याः
कटुतैलकम् । दग्धव्रणरुजास्त्रावदाहविस्फोटनाशनम् ॥ १ ॥ अथ चन्द-
नाद्यं यमकम्—चन्दनं वटशृङ्गाश्च मज्जिष्ठा मधुकं तथा । प्रपौण्डरीकं

दूर्वा च पतङ्गं धातकी तथा ॥ १ ॥ पुतैस्तैलं विपक्तव्यं गोक्षीरेण समायु-
तम् । अग्निदग्धव्रणे श्रेष्ठं तत्क्षणाद्रोषणं परम् ॥ २ ॥ अथ लाङ्गलीघृ-
तम्—उभे हरिद्रे मक्षिष्ठा मधुकं लोध्रकदफलम् । कम्पिल्लकमुभे मेदे ला-
ङ्गलीमूलमेव च ॥ १ ॥ पिप्पली त्रिफला चैव निम्बपत्रं च कार्पिकम् । क-
पिलाया घृतं प्रस्थं पचेत्तद्विगुणं पयः ॥ २ ॥ पलद्वयं च सिक्थस्य सिद्धे पूते
च दापयेत् । लाङ्गलीकं घृतं नाम व्रणानां रोषणं परम् ॥ ३ ॥ अग्निदग्धे
विसर्पे च कीटलूताव्रणे च । चिरोत्थेषु च दुष्टेषु नाडीमर्माश्रितेषु च ॥ ४ ॥
अग्निदग्धव्रणे देयं धातकीचूर्णमुत्तमम् । अतसीतैलसंमिश्रं वह्निदग्धव्रणाप-
हम् ॥ ५ ॥ अन्तर्धूमविदग्धं त्रिफलाचूर्णं विमिश्रितं तैलैः । क्षौमेः शीघ्रं
शमयत्यग्निव्रणमाशु लेपेन ॥ ६ ॥ पित्तविद्रधिर्वीसर्पशमनं लेपनादिकम् ।
अग्निदग्धव्रणे सम्यक्प्रयुज्जीत विचक्षणः ॥ ७ ॥ सुधा पुरातनी दध्ने वा-
रिणा परिपेपिता । लेपनं तैलदग्धस्य विस्फोटव्याधिनाशनम् ॥ ८ ॥ अक्षि-
स्थेषु च कर्तव्यमिदमाश्रयोतनं हितम् । शेलुत्वक्त्रिफलादार्वाक्काथो रोचनया
युतः । सुहृर्कक्षीरसिक्तेऽक्षिणं गव्यं सर्पिर्निपेचयेत् ॥ ९ ॥ इति दग्धव्रण-
चिकित्सा ।

अथ भग्नव्रणनिदानमाह—

भग्नं समासाद्विविधं हुताश काण्डे च संधौ च हि तत्र संधौ । उत्पिष्ट-
विशिष्टविवर्तितं च तिर्यक्प्रतिक्षिप्तमधश्च पोढा । प्रसारणाकुञ्चनवर्तनोग्राह-
कस्पर्शविद्वेषणमेतदुक्तम् ॥ १ ॥ सामान्यतः संधिगतस्य लिङ्गमुत्पिष्टसंधेः
श्वयथुः समन्तात् । विशेषतो रात्रिभवा रुजश्च विशिष्टजे तौ च रुजा च
नित्यम् ॥ २ ॥ विवर्तिते पार्श्वरुजश्च तीव्रास्तिर्यग्गते तीव्ररुजो भवन्ति ।
क्षिप्तेऽतिशूलं विषमं च सकृद्धोः क्षिप्ते त्वधोरुग्विघटश्च संधेः ॥ ३ ॥ काण्डे
त्वधः कर्कटकाश्च कर्णविचूर्णितं पिच्छितमस्थितं च । काण्डेषु भग्नं ह्यतिपातितं
च मज्जागतं च स्फुटितं च वक्रम् ॥ ४ ॥ छिन्नं द्विधा द्वादशधा च काण्डे स्रस्ता-
ङ्गता शोथरुजातिवृद्धिः । संपीड्यमाने भवतीह शब्दः स्पर्शासहस्पन्दनतोद-
शूलः ॥ ५ ॥ सर्वास्त्रवस्थासु न शर्मलाभो भग्नस्य काण्डे खलु चिह्नमेतत् ।
भग्नं तु काण्डे बहुधा प्रयाति समासतो नामभिरेव तुल्यम् ॥ ६ ॥ अल्पा-
शिनोऽनात्मवतो जन्तोर्वातात्मकस्य च । उपद्रवैर्वा जुष्टस्य भग्नं कृच्छ्रेण
सिध्यति ॥ ७ ॥ भिन्नं कपालं कट्यां तु संधिमुक्तं तथा च्युतम् । जघनं
प्रतिपिष्टं तु वर्जयेच्च विचक्षणः ॥ ८ ॥ असंश्लिष्टं कपालं च ललाटे चूर्णितं
च यत् । भग्नं स्तनान्तरे शङ्खे पृष्ठे मूर्ध्नि च वर्जयेत् ॥ ९ ॥ सम्यक्संहित-
मप्यस्थि दुर्निक्षेपनिबन्धनात् । संक्षोभाद्वाऽपि यद्गच्छेद्विक्रियां तच्च वर्ज-
येत् ॥ १० ॥ तरुणास्थीनि नाम्यन्ते भिद्यन्ते नलकानि तु । कपालानि विभि-
द्यन्ते स्फुटन्ति रुचकानि च ॥ ११ ॥ इति भग्नव्रणनिदानम् ।

अथ भग्नचिकित्सा ।

भग्नान्युपचरेद्धीमान्सेकलेपनबन्धनैः । शीतलैरेव विविधैः प्रयोगैश्च समी-
रितैः ॥ १ ॥ तत्रातिशिथिले बन्धे संधिस्थैर्यं न जायते । गाढेनापि त्वगा-
दीनां शोफो रुक्पाक एव च ॥ २ ॥ तस्मात्साधारणं बन्धं भग्ने शंसन्ति
तद्विदः । आदौ भग्नं विदित्वा तु सेचयेच्छीतलाम्बुना ॥ ३ ॥ पङ्केनाऽऽले-
पनं कुर्याद्बन्धनं च कुशान्वितम् । अवनामितमुन्नाम्येदुन्नतं चावपी-
डयेत् ॥ ४ ॥ क्षिप्तं द्विधाऽपि च स्थाने संस्थाप्य विधिमाचरेत् । आले-
पनार्थं मज्जिष्ठामधुकं चाम्लपेपितम् ॥ ५ ॥ शतधौतघृतोन्मिश्रं शालि-
पिष्टं च लेपनम् । न्यग्रोधादिकपायं तु शीतलं परिषेचने ॥ ६ ॥ पञ्चमूली-
विषकं तु क्षीरं दद्यात्सवेदने । मूलं शृगालच्छिन्नायाः पीत्वा मांसरसेन तु
॥ ७ ॥ चूर्णीकृत्य तु सप्ताहादस्थिभङ्गमपोहति । आभाचूर्णं मधुयुतमस्थि-
भङ्गे व्यहं पिबेत् ॥ ८ ॥ पीत्वा चास्थि भवेत्सम्यग्वज्रसारनिभं दृढम् ।
गृष्टिक्षीरं ससर्पिष्कं मधुरौषधसाधितम् ॥ ९ ॥ शीतलं लाक्ष्या युक्तं प्रात-
र्भग्ने पिबेन्नरः । सघृतं चास्थिसंधानं लाक्षागोधूममर्जुनम् ॥ १० ॥ संधि-
मुक्तेऽस्थिभग्ने च पिबेत्क्षीरेण मानवः । रसोनमधुलाक्षाज्यसिताकल्कं सुमि-
श्रितम् । छिन्नभिन्नच्युतास्थीनां संधानमचिराद्भवेत् ॥ ११ ॥

अथ लाक्षागुग्गुलुः—लाक्षास्थिसंहृत्ककुभाश्वगन्धाश्रूणीकृता नाग-
बलाः पुरश्च । संभग्नमुक्तास्थिरुजं निहन्यादङ्गानि कुर्यात्कुलिशोपमानि ॥ १ ॥
सव्रणस्य तु भग्नस्य व्रणः सर्पिर्मधूत्तरैः । प्रतिसार्यः कपायैस्तु शेषं भग्नवदा-
चरेत् । वातव्याधिविनिर्दिष्टं स्नेहं तत्रापि योजयेत् ॥ २ ॥ अथ वह्निजभस्मा-
दि—वह्निजं भस्म मधुना पातव्यं हितभोजिना । संधिभङ्गेऽस्थिभङ्गे च
विशेषेण प्रशस्यते ॥ ३ ॥ अथाऽभाद्यो गुग्गुलुः—आभाफलत्रिकव्योषैः
सर्वैरैतैः समांशकैः । तुल्यं गुग्गुलुना योज्यं भग्नसंधिप्रसाधकम् ॥ १ ॥
अथ गोधूमप्रयोगः—ईपद्विदग्धगोधूमचूर्णं पीतं समाक्षिकम् । कटिसंधिषु
भग्नेषु भुग्नेष्वस्थिषु पूजितम् ॥ १ ॥ अविदाहिभिरन्नैश्च पिष्टकैः समुपाचरेत् ।
मांसं मांसरसं क्षीरं सर्पिर्यूपं च मुद्गजम् ॥ २ ॥ वृंहणं चान्नपानं च संधि-
भग्न्या दापयेत् । लवणं कटुकं क्षारं साम्लं मैथुनमातपम् ॥ ३ ॥ व्यायामं
च न सेवेत भग्नो रुक्षान्नमेव च । बालानां तरुणानां च भग्नान्याशु भव-
न्ति वै । समीचीनानि वृद्धानां भग्नानां न विशेषतः ॥ ४ ॥ इति भग्ननि-
दानचिकित्सा ।

अथ नाडीव्रणनिदानम् ।

यः शोफमाममतिपक्वमुपेक्षतेऽज्ञो यो वा व्रणं प्रचुरपूयमसाधुवृत्तः । अथ-
न्तरं प्रविशति प्रविदार्य तस्य स्थानानि पूर्वविहितानि ततः स पूयः ॥ १ ॥

तस्यातिमात्रगमनाद्गतिरिष्यते तु नाडीव यद्वहति तेन मता तु नाडी ॥ २ ॥
 अथ संख्यामाह—दोषैस्त्रिभिर्भवति सा पृथगेकशश्च संमूर्च्छितैरपि च शल्य-
 निमित्ततोऽन्या । अथ वातिकामाह—तत्रानिलात्परुषसूक्ष्ममुखी सशूला
 फेनानुविद्धमधिकं स्रवति क्षपासु ॥ १ ॥ पित्तजामाह—पित्तात्तु तृड्ज्वरकरी
 भ्रमदाहयुक्ता पित्तं स्रवत्यधिकमुष्णमहःसु चापि ॥ १ ॥ अथ श्लेष्मजामाह—
 ज्ञेया कफाद् बहुघनार्जुनपिच्छिलास्त्रा स्तब्धा सकण्डुररुजा रजनीप्रवृद्धा
 ॥ १ ॥ अथ द्वित्रिदोषामाह—दोषद्वयाभिहितलक्षणदर्शनेन तिस्रो गतीर्व्य-
 तिकरप्रभवास्तु विद्यात् ॥ १ ॥ दाहज्वरश्चसनमूर्च्छनवक्त्रशोषा यस्यां भव-
 न्त्यभिहितानि च लक्षणानि । तामादिशोषवनपित्तकफप्रकोपाद्दोरां गतिं
 त्वसुहरामिव कालरात्रिम् ॥ २ ॥ अथ शल्यनिमित्तजामाह—नष्टं कथं-
 चिदनुमार्गमुदीरितेषु स्थानेषु शल्यमचिरेण गतिं करोति । सा फेनिलं मथि-
 तमुष्णमसृग्विमिश्रं स्रावं करोति सहसा सरुजा च नित्यम् ॥ १ ॥ नाडी-
 त्रिदोषप्रभवा न सिध्येच्छेषाश्चतस्रः खलु यत्नसाध्याः ॥ २ ॥ इति नाडी-
 व्रणनिदानम् ।

अथ नाडीव्रणचिकित्सा ।

नाडीनां गतिमन्वीक्ष्य शस्त्रेणोत्पाद्य कर्मवित् । सर्वं व्रणकर्मं कुर्याच्छो-
 धनारोपणादिकम् ॥ १ ॥ कृशदुर्बलभीरूणां नाडी मर्माश्रिता तु या । क्षार-
 सूत्रेण संछिद्यान्न शस्त्रेण कदाचन ॥ २ ॥ नाडीं वातकृतां साधु पाटितां
 लेपयेद्भिषक् । प्रत्यक्पुष्पीफलयुतैस्तिलैः पिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ ३ ॥ पैत्तिकीं
 तिलमज्जिष्ठानागदन्तीनिशाह्वयैः । श्लैष्मिकीं तिलयष्ट्याह्निकुम्भारिष्टसै-
 न्धवैः ॥ ४ ॥ शल्यजां तिलमज्जिष्ठामध्वाज्यैर्लेपयेन्मुहुः । आरग्वधनिशाको-
 लचूर्णाज्यक्षौद्रसंयुता । सूत्रवर्तिव्रणे योज्या शोधनी गतिनाशिनी ॥ ५ ॥
 जात्यर्कशम्याककरज्जदन्तीसिन्धूत्थसौवर्चलयावशूकैः । वर्तिः कृता हन्त्य-
 चिरेण नाडीः सुक्क्षीरपिष्टा सह सैन्धवेन ॥ ६ ॥ समूलपत्रां निर्गुण्डीं पीड-
 यित्वा रसं हरेत् । तेन सिद्धं समं तैलं नाडीदुष्टव्रणापहम् ॥ ७ ॥ गुग्गुलु-
 त्रिफलाव्योषैः समांशैश्चाऽऽज्ययोजितैः । नाडीदुष्टव्रणं चापि जयेदपि भगंदर-
 म् ॥ ८ ॥ इति नाडीव्रणचिकित्सा ।

अथ सर्वव्रणरोगाणां पथ्यापथ्यम्

यवपष्टिकगोधूमपुराणाः सितशालयः । मसूरतुवरीमुद्गयूपश्च मधुशर्करा
 ॥ १ ॥ विलेपी लाजमण्डश्च जाङ्गला मृगपक्षिणः । घृतं तैलं पटोलं च वेत्रा-
 ग्रं बालमूलकम् ॥ २ ॥ वार्ताकं कारवेहं च कर्कोटं तण्डुलीयकम् । एतत्प-
 थ्यं नरैः सेव्यं यथावस्थं यथामलम् । व्रणशोथे व्रणे सद्योव्रणे नाडीव्रणेऽपि

च ॥ ३ ॥ रूक्षाम्लशीतं लवणं व्यवायमायासमुच्चैःपरिभाषणं च । प्रिया-
समालोकनमहि निद्रां प्रजागरं चङ्क्रमणं नितान्तम् ॥ ४ ॥ शोकं विरुद्धा-
शनमम्बुपानं ताम्बूलशकानि च पत्रवन्ति । अजाङ्गलं मांसमसात्म्यमन्नं विव-
र्जयेत्संततमप्रमत्तः ॥ ५ ॥ इति सर्वव्रणचिकित्सा ।

अथ भगंदरनिदानम् ।

गुदस्य द्यङ्गुले क्षेत्रे पार्श्वतः पिटिकाऽऽर्त्तिकृत् । भिन्ना भगंदरो ज्ञेयः स
च पञ्चविधो मतः ॥ १ ॥ अथ संख्यामाह—वातपित्तकफैस्त्रेधा चतुर्थः
संनिपाततः । उन्मार्गः पञ्चमः स्यादेवं पञ्चविधो मतः ॥ २ ॥ अथ तस्य
पूर्वरूपमाह—कटीकपालनिस्तोददाहकण्डूरुजादयः । भवन्ति पूर्वरूपाणि
भविष्यति भगंदरे ॥ ३ ॥ अथ वातिकमाह—कपायरूक्षैरतिकोपितोऽनि-
लस्त्वपानदेशे पिटिकां करोति सा । उपेक्षणात्पाकमुपैति दारुणं रुजा च
भिन्नाऽरूणफेनवाहिनी ॥ ४ ॥ तत्राऽऽगमो मूत्रपुरीषरेतसां व्रणैरनेकैः शतपो-
नकं वदेत् । अथ पित्तजमाह—प्रकोपणैः पित्तमतिप्रकोपितं करोति रक्तां
पिटिकां गुदार्त्तिदाम् । तदाशुपाकां हिमपूयवाहिनीं भगंदरं तूष्प्रशिरोधरं
वदेत् ॥ ५ ॥ अथ श्लेष्मजमाह—कण्डूयनो घनस्त्रावी कठिनो मन्दवे-
दनः । श्वेतावभासः कफजः परिस्त्रावी भगंदरः ॥ ६ ॥ अथ संनिपातज-
माह—बहुवर्णरुजाः स्त्रावाः पिटिका गोस्तनोपमाः । शम्बूकावर्तवन्नाडी
शम्बूकावर्तको मतः ॥ ७ ॥ अथोन्मार्गमाह—क्षताद्गतिः पायुगता
विवर्धते व्युपेक्षणात्सा कृमिभिर्विदीर्यते । प्रकुर्वते मार्गमनेकधा मुखैर्ब्रणैस्त-
दुन्मार्गि भगंदरं वदेत् ॥ ८ ॥ अथासाध्यलक्षणमाह—घोराः साधयितुं
दुःखाः सर्व एव भगंदराः । तेष्वसाध्यस्त्रिदोषोत्थः क्षतजश्च विशेषतः ॥ ९ ॥
वातमूत्रपुरीषाणि कृमयः शुक्रमेव च । भगंदराः खवन्तस्तु नाशयन्ति तमा-
तुरम् ॥ १० ॥ इति भगंदरनिदानम् ।

अथ भगंदरचिकित्सा ।

गुदपिटिकायामादौ कुर्याद्रक्तावसेचनं मतिमान् । जलसदनाभिरशेषं सा
पाकं न प्रयाति यथा ॥ १ ॥ अपानमार्गपिटिकां दहेत्स्वर्णशलाकया । अग्नि-
प्रतप्तया पश्चात्कुर्यादग्निव्रणक्रियाम् ॥ २ ॥ पिटिकानामपक्वानामपतर्पणपूर्व-
कम् । कर्म कुर्याद्विरेकान्ते भिन्नानां वक्ष्यते क्रिया ॥ ३ ॥ एतासां पाटन-
क्षारवह्निदाहादिकं क्रमम् । विधाय व्रणवत्कार्यं यथादोषं यथाक्रमम् ॥ ४ ॥
अथ वटपत्रादिलेपः—वटपत्रेष्टिकाशुण्ठीगुडूचीसपुनर्नवाः । सुपिष्टाः
पिटिकावक्त्रे लेपः शस्तो भगंदरे ॥ १ ॥ खदिरत्रिफलाकाथो महिषीघृतसंयुतः ।
विडङ्गचूर्णयुक्तश्च भगंदरविनाशनः ॥ २ ॥ त्रिफलारससंयुक्तं बिडालास्थि-
प्रलेपनम् । भगंदरं निहन्त्याशु दुष्टव्रणहरं परम् ॥ ३ ॥ शुनोऽस्थिभूलता

तक्रैः पेपिता खररक्तयुक् । लेपो भगंदरं हन्यान्नरास्त्रां तैलमेव च ॥ ४ ॥
कुष्ठं त्रिवृत्तिलादन्तीमागधीसैन्धवं मधु । रजनीत्रिफलातुतैर्हितं स्याद् व्रण-
रोपणम् ॥ ५ ॥ तिलत्रिवृत्तागदन्तीमञ्जिष्ठाद्यैः ससैन्धवैः । सक्षौद्रैश्च प्रले-
पोऽयं भगंदरकुलान्तकृत् ॥ ६ ॥ रसाञ्जनं हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठानिम्बपल्लवाः ।
त्रिवृत्तेजोवतीदन्तीकल्को नाडीव्रणापहः ॥ ७ ॥ तिलाभयालोभ्रमरिष्टपत्रं
निशावचाकुष्ठमगारधूमः । भगंदरे नाड्युपदंशयोश्च दुष्टव्रणे शोथनरोपणोऽ-
यम् ॥ ८ ॥

अथ नवकार्षिको गुग्गुलुः—त्रिफलापुरकृष्णानां त्रिपञ्चैककर्पयोजिता
गुटिका । कुष्ठभगंदरनाडीदुष्टव्रणशोधिनी कथिता ॥ १ ॥ अथ जम्बूकप्र-
कारः—जम्बूकस्याऽऽमिपं भुक्त्वा प्रकारैर्व्यञ्जनादिभिः । अजीर्णवर्जा मा-
सेन मुच्यते तु भगंदरात् ॥ १ ॥

अथ सप्तविंशतिको गुग्गुलुः—त्रिकटुत्रिफलामुस्तं विडङ्गामृतचित्रकम् ।
चव्यैले पिप्पलीमूलं हृषुपा सुरदारु च ॥ १ ॥ तुम्बरं पुष्करं चव्यं विशाला
रजनीद्वयम् । विडं सौवर्चलं क्षारं सैन्धवं गजपिप्पली ॥ २ ॥ यावन्त्येतानि
द्रव्याणि तावद्विगुणगुग्गुलुः । कोलप्रमाणगुटिकां भक्षयेन्मधुना सह ॥ ३ ॥
कासं श्वासं तथा शोफमर्शांसि च भगंदरम् । हृच्छूलं पार्श्वशूलं च कुक्षिब-
स्तिगुदे रुजम् ॥ ४ ॥ अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च अन्नवृद्धिं तथा कृमीन् । चिरज्व-
रोपसृष्टानां क्षयोपहतचेतसाम् ॥ ५ ॥ आनाहं च तथोन्मादं सकुष्ठान्युद-
राणि च । नाडीदुष्टव्रणान्सर्वान्प्रमेहं श्लीपदं तथा । सप्तविंशतिको ह्येष सर्व-
रोगनिपूदनः ॥ ६ ॥

अथ करवीराद्यं तैलम्—करवीरनिशादन्तीलाङ्गलीलवणाग्निभिः ।
मातुलङ्गार्कपयसा पचेत्तैलं भगंदरे ॥ १ ॥ अथ विष्यन्दनं तैलम्—चित्र-
काकौ त्रिवृत्पाठे मलयूहयमारकौ । सुधां वचां लाङ्गलिकां हरितालं सुवर्चि-
काम् ॥ १ ॥ ज्योतिष्मतीं च संहृत्य तैलं धीरो विपाचयेत् । एतद्विष्यन्दनं
नाम तैलं दद्याद्भगंदरे । शोधनं रोपणं चैव सर्वर्णकरणं तथा ॥ १ ॥ अथ
निशादितैलम्—निशार्कक्षीरसिन्ध्वन्निपुरलाङ्गलिवत्सकैः । सिद्धमभ्यञ्जने
तैलं भगंदरविनाशनम् ॥ १ ॥

अथ पथ्यापथ्यम्—आमे संशोधनं लेपो लङ्घनं रक्तमोक्षणम् । पक्वे
पुनः शस्त्रविधिस्तथा क्षारान्निकर्म च ॥ १ ॥ सर्वत्र शालयो मुद्रा विलेपी
जाङ्गलो रसः । पटोलं शिश्रुवेत्राग्रं धत्तूरो बालमूलकम् ॥ २ ॥ तिलसर्पपयो-
न्मैलं तिक्तवर्गौ घृतं मधु । एतत्पथ्यं नरैः सेव्यं यथादोषं भगंदरे ॥ ३ ॥
व्यायामं मैथुनं युद्धं पृष्ठयानं गुरुणि च । संवत्सरं परिहरेद्यावद्दृढव्रणो नरः
॥ ४ ॥ इति भगंदरचिकित्सा ॥

अथोपदंशनिदानम् ।

अथ तस्य हेतुमाह—हस्ताभिघातान्नखदन्तघातादधावनाद्रत्यतिसेवनाद्वा । योनिप्रदोषाच्च भवन्ति शिश्वे पञ्चोपदंशा विविधापचारैः ॥ १ ॥ अथ वातजमाह—सतोदभेदस्फुरणैः सकृणैः स्फोटैर्व्यवस्येत्पवनोपदंशम् ॥ अथ पित्तजकफजौ आह—पीतैर्बहुक्लेदयुतैः सदाहैः पित्तेन रक्तैः पिशितावभासैः ॥ २ ॥ सकण्डुरैः शोफयुतैर्महद्भिः शुक्लैर्व्रणैः स्रावयुतैः कफेन ॥ अथ संनिपातजमाह—नानाविधस्रावरुजोपपन्नमसाध्यमाहुस्त्रिमलोपदंशम् ॥ ३ ॥ अथासाध्यत्वमाह—विशीर्णमांसं कृमिभिः प्रजग्धं मुष्कावशेषं परिवर्जयेच्च । संजातमात्रे न करोति मूढः क्रियां नरो यो विषये प्रसक्तः ॥ ४ ॥ कालेन शोफकिमिदाहपाकैः प्रशीर्णशिश्वो म्रियते स तेन ॥ ५ ॥

अथैकस्थानत्वेनात्रलिङ्गार्शमाह—अङ्गुरैरिव संघातैरुपर्युपरि संस्थितैः क्रमेण जायते वर्तिस्तान्नचूडशिखोपमा ॥ १ ॥ कोशस्याभ्यन्तरे संघौ सर्वसंघिगताऽपि वा । सवेदना पिच्छिला च दुश्चिकित्स्या त्रिदोषजा ॥ २ ॥ लिङ्गवर्तिरिति ख्याता लिङ्गार्श इति चापरे । मेढूसंघौ व्रणाः केचित्केचित्सर्वाश्रयास्तथा ॥ ३ ॥ कुलत्थाकृतयः केचित्केचित्पद्मदलोपमाः । रुजानाहार्तिबहुलास्तृष्णाक्लेदसमन्विताः । स्त्रीणां पुंसां च जायन्ते उपदंशाश्च दारुणाः ॥ ४ ॥

इत्युपदंशनिदानम् ।

अथ उपदंशचिकित्सा ।

स्निग्धस्त्रिन्नस्य तेष्वदौ ध्वजमध्ये शिराव्यधः । जलौकापातनं वा स्यादूर्ध्वाधः शोधनं तथा ॥ १ ॥ सद्योऽपहतदोषस्य रुक्शोफावुपशाम्यतः । पाको रक्ष्यः प्रयत्नेन शिश्वक्षयकरश्च सः ॥ २ ॥ अथ काथः—पटोलनिम्बत्रिफलाकिरातैः काथं पिबेद्वा खदिरासनाभ्याम् । सगुग्गुलुं वा त्रिफलायुतं वा सर्वोपदंशापहरः प्रयोगः ॥ १ ॥ गैरिकाञ्जनमञ्जिष्ठाधुकोशीरपन्नकैः । सचन्दनोत्पलैः स्निग्धैः पेयः पित्तोपदंशहा ॥ २ ॥

अथ लेपाः ।

सपौण्डरीकैर्मधुकरास्त्राकुष्ठपुनर्नवैः । सरलागुरुभद्राख्यैर्लेपो वातोपदंशहा ॥ १ ॥ बन्बूलदलचूर्णेन दाडिमत्वग्रजोऽथ वा । गुण्डनं लिङ्गदेशस्य लेपः पूगफलेन वा ॥ २ ॥ वटप्ररोहार्जुनजम्बुपथ्या लोभं हरिद्रासहितः प्रलेपः । सर्वोपदंशेष्ववरोहणार्थं चूर्णं च तज्जं विमलाञ्जनेन ॥ ३ ॥ दहेत्कटाहे त्रिफलां तां मपीं मधुसंयुताम् । कृत्वोपदंशलपोऽयं सद्यो रोपयति व्रणम् ॥ ४ ॥ त्वचो दारुहरिद्रायाः शङ्खनाभी रसाञ्जनम् । लाक्षागोमयनिर्यासस्तैलं क्षौद्रं घृतं पयः ॥ ५ ॥ पुभिः सुपिष्टैर्द्रव्यांशैरुपदंशं प्रलेपयेत् । व्रणाश्च तेन शाम्यन्ति श्रयथुर्दाह एव च ॥ ६ ॥ नीलोत्पलानि कुमुदं पद्मसौगन्धिकानि च ।

उपदंशेषु चूर्णानि प्रदेहोऽयं प्रशस्यते ॥ ७ ॥ रसाञ्जनं शिरीषेण पथ्यया च समन्वितम् । सक्षौद्रं लेपनं योज्यं सद्यो रोपयति व्रणम् ॥ ८ ॥ गोपीचन्द-
नतुत्थे च समभागेन मर्दयेत् । कज्जली जलसंयुक्ता व्रणानां लेपने हिता ॥ ९ ॥
मोचापूगविभूतिं च कोलत्वक्शङ्खजीरकम् । पिष्टोपदेशे लेपोऽयं पयसा पा-
नमेव च । नाशयेदुष्णतां तूर्णं शुष्कान्कुर्याद्व्रणानपि ॥ १० ॥ अथ पारदा-
दिलेपः—पारदं गन्धकं तालं दरदं च मनःशिलाम् । पृथक्कर्पं द्विकर्पं च
मुद्गदारं सङ्गजीरकम् ॥ १ ॥ विधाय कज्जलीं श्लक्ष्णां मर्दयेत्सुरसारसैः । छा-
याशुष्कां ततः कृत्वा पुनरुन्मत्तजद्रवैः ॥ २ ॥ विमर्द्याथ वटी कार्या उपदंशे
प्रयोजयेत् । गोघृतेन प्रलेपोऽयं व्रणानां रोपणे हितः ॥ ३ ॥ इति लेपाः ।

अथ स्वरसाः—आम्रत्वचं विनिष्पीड्य निगृह्य स्वरसं पलम् । चतुष्पलं
त्वजाक्षीरं संयुक्तं प्रपिबेत्प्रगे ॥ १ ॥ एवं मुनिदिनं कुर्यादुपदंशे व्रणे हितम् ।
तथा क्षीरं तथा जीर्णं गोधूमं पथ्यमाचरेत् ॥ २ ॥ जातीप्रवालस्वरसं पलाधै
धेनोर्धृतं सर्जरसेन युक्तम् । पिबेत्प्रगे पञ्चविधोपदंशे क्षारादृते गोधूमस-
र्पिपथ्यम् ॥ ३ ॥ इति स्वरसाः ।

अथ प्रक्षालनम्—निम्बार्जुनाश्वत्थकदम्बशालजम्बूवटोदुम्बरवेतसाद्भिः ।
प्रक्षालनालेपघृतानि कुर्याच्चूर्णं च पित्तास्रभवोपदंशे ॥ १ ॥ त्रिफलायाः कपा-
येण भृङ्गराजरसेन वा । व्रणप्रक्षालनं कुर्यादुपदंशप्रशान्तये ॥ २ ॥ अश्वत्थो-
दुम्बरप्लक्षवटवेतसजः शृतः । व्रणशोथोपदंशानां नाशनः क्षालनात्स्मृतः ॥ ३ ॥
जयाजात्यश्वमारकंशम्याकानां दलैः पृथक् । कृतं प्रक्षालने क्वाथं मेढूपाके
प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥

अथोपदंशल्लिङ्गलेपः—रसकर्पूरगद्याणं मर्दयेत्खदिराम्बुना । प्रक्षालये-
द्वारिणा च शुष्के लेपस्तु वारिणा ॥ १ ॥ लिङ्गलेपो व्रणं हन्ति त्रिदिनान्नात्र
संशयः ॥ १ ॥ अथव्रणोपदंशे पूगादिलेपः—पूगं सुदग्धमेकं तु रसग-
न्धकहिङ्गुलम् । खदिरं तुत्थकं चैव मर्दयेन्निम्बुनीरकैः ॥ १ ॥ समभागानि
सर्वाणि गुटिकां कारयेद्बुधः । उपदंशे घृतैर्लेपस्त्रिदिनाद्व्रणरोपणः ॥ २ ॥ अ-
थोपदंशस्फोटिलेपः—जातीफलविडङ्गानि रसकं देवपुष्पकम् । सम-
भागानि सर्वाणि नवनीतेन मर्दयेत् । स्फोटानामुपदंशानां व्रणशोधनरोपणः ३

अथ घृतानि—भूनिम्बनिम्बत्रिफलापटोलकरञ्जजातीखदिरासनानाम् ।
शृतैश्च कल्कैर्घृतमाशु पक्वं सर्वोपदंशापहरं प्रदिष्टम् ॥ १ ॥ करञ्जनिम्बार्जुन-
शालजम्बूवटादिभिः कल्ककपायसिद्धम् । सर्पिर्निहन्त्यादुपदंशदोषं सदाहपाकं
स्तुतिरागयुक्तम् ॥ २ ॥ अथागारधूमादितैलम्—अगारधूमो रजनी सुरा
किण्वं च तैस्त्रिभिः । भागोत्तरैः पचेत्तैलं कण्डूशोथरुजापहम् । शोधनं रोपणं
चैव सवर्णकरणं तथा ॥ १ ॥

अथ चोपचिन्त्याश्चूर्णम्—कुडवं चोपचिन्त्याश्च शर्करायाः पलं तथा ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं देवपुष्पकम् ॥ १ ॥ आकलं क्षुरकं शुण्ठी जन्तुघ्नं च वराङ्गकम् । पृथक्कोलमितं ग्राह्यमेतच्चूर्णीकृतं शुभम् ॥ २ ॥ सर्वमेकत्र सं-
योज्यं कर्पार्थं प्रतिवासरम् । भक्षयेन्मधुसर्पिर्भ्यां युक्तं पथ्यं समाचरेत् ॥ ३ ॥
शाल्योदनं तथा सूपस्तुवरीणां घृतं मधु । गोधूमः सैन्धवं शिग्रुर्विम्बी को-
शातकीफलम् ॥ ४ ॥ आर्द्रकं जलमन्दोष्णं हितमत्र प्रकीर्तितम् । पञ्चोपदं-
शरोगाणां प्रमेहाणां तथैव च । व्रणानां वातरोगाणां कुष्ठानां च विनाशनम् ॥ ५ ॥ इति चोपचिनीपाकः ।

अथ चोपचिनीपाकः—चोपचिनुद्भवं चूर्णं पलद्वादशमेव च । पिप्पली
पिप्पलीमूलं मरिचं नागरं त्वचम् ॥ १ ॥ आकलकं लवङ्गं च प्रत्येकं कर्पसं-
मितम् । शर्करासमचूर्णं च पाचयेत्सर्वमेकतः ॥ २ ॥ मोदकं कारयेत्तत्तु कर्पं
कर्पं प्रमाणतः । सायं प्रातर्निपेव्यस्तु पथ्यं पूर्वोक्तचूर्णवत् ॥ ३ ॥ उपदंशे
व्रणे कुष्ठे वातरोगे भगदरे । धातुक्षयकृते कासे प्रतिश्याये च यक्ष्मणि । स-
र्वान्रोगान्निहन्त्याशु ततः पुष्टिकरो भवेत् ॥ ४ ॥ इति चोपचिनीपाकः ।

अथ बालहरीतकीयोगः—बालपथ्यापलैकं च तुल्यं शाणमितं तथा ।
निम्बुद्रवेण संमर्द्य दृढं सप्तदिनानि वै ॥ १ ॥ गुटिकां चणकप्रायां छायाशुष्कां
तु कारयेत् । शीतोदकानुपानेन नित्यमेकां प्रदापयेत् ॥ २ ॥ घृत्ताणामेकविं-
शत्या मुच्यते तूपदंशतः । शालिगोधूममुद्राश्च गोसर्पिः पथ्यमीरितम् ॥ ३ ॥
अथ रसगन्धककज्जली—कर्पमात्रो रसः शुद्धो द्विकर्पो गन्धकस्तथा ।
विधिवत्कज्जलीं कृत्वा तां च गोघृतसंयुताम् ॥ १ ॥ मापमात्रां प्रतिदिनं द-
द्यादेवं त्रिसप्तकम् । गोधूमाजं घृतं पथ्यं कारयेत्लवणं विना । उपदंशापहः
श्रेष्ठो योगोऽयं मुनिभिः स्मृतः ॥ २ ॥ अथ महाक्षारगुटी—महाक्षारमा-
कलकं खादिरं च क्रमाद्वर्धितं वारिणा पिष्टमेतत् । निपेवेत मापप्रमाणं घृतेन
महारोगनिघ्नं व्रणेषु व्रणघ्नम् ॥ १ ॥ गोधूमं गोघृतं पथ्यं मन्दं लवणमाचरेत् ।
द्विवारं ग्राहयेन्नित्यमुपदंशनिवृत्तये ॥ २ ॥

अथ सर्वोपदंशे रसघृतमुच्यते—शुद्धं रसं पिचुमितं द्विबलिं प्रमर्द्य
सर्वद्विभागनवनीतमपि प्रमर्द्य । वस्त्रे प्रलिप्य पिचुमन्दविपर्णशाखां संवेष्ट-
येन्नतमुखीं परिदीप्य वर्तिसु ॥ १ ॥ तस्या घृतं स्रवति काचमये च पात्रे
धृत्वाऽहिवल्लिदलसाकमिदं प्रदेयम् । सर्वोपदंशकरिकेसरिणं व्रणघ्नं पट्टादिकं
रसघृते च विवर्जनीयम् ॥ २ ॥

अथ पथ्यापथ्यम्—दिवा निद्रां मूत्रवेगं गुर्वन्नं मैथुनं गुडम् । आया-
समम्लं तक्रं च वर्जयेदुपदंशवान् ॥ १ ॥ द्विपलं चिक्रणं पूगं द्विकर्पं सिन्धु-
सस्यकम् । कर्कारुवक्कर्पमिता भृष्टमेतन्निकं भवेत् ॥ २ ॥ जम्भोदरगतंतुल्यं
पुटपाकविधानतः । पक्रं चणकमानं तु सर्वमेतत्सुखलवके ॥ ३ ॥ जम्बीरस-
लिलैर्मर्द्य गाढं सिद्धं दिनत्रयात् । उपदंशं चन्द्रकं च व्रणं पूतिप्रमेहकम्

॥ ४ ॥ पृदाकुवीरुच्छदनलिसं प्सातं निवारयेत् । शर्करासहितं पथ्यं गोधू-
मान्नं घृतशुतम् ॥ ५ ॥ पलमात्रे कटुतैले ब्रक्षं सिक्थं च कर्पमेव पृथक् ।
कम्पिल्लकं विरोजा सिन्दूरः सौरकं चैव ॥ ६ ॥ मुदीडकं च सर्वं पित्तलपात्रे
विपाचितं शिखिना । मन्दं पचेत्प्रमथ्य स्वपाणिनोद्धृत्य तत्सिद्धम् ॥ ७ ॥
सितवस्त्रे संलिप्य व्रणोपरि स्थापयेत्सम्यक् । क्षतभूदेशं सर्वं सशूकदोषं फि-
रङ्गजं हन्यात् ॥ ८ ॥ शस्त्रकृतं नखजातं दन्तजमाशु व्रणं शिखिजम् । दृष्ट्वा
प्रत्ययमेतत्प्रकाशितं बालबोधाय ॥ ९ ॥ इत्युपदंशरोगचिकित्सा ।

अथ शूकदोषनिदानम् ।

अथ तस्य संप्राप्तिमाह—अक्रमाच्छेफसो वृद्धिं योऽभिवान्छति मू-
ढधीः । व्याधयस्तस्य जायन्ते दश चाष्टौ च शूकजाः ॥ १ ॥ अथ सर्षपि-
कामाह—गौरसर्षपसंस्थाना शूकदुर्भुगहेतुका । पिटिका श्लेष्मवाताभ्यां
ज्ञेया सर्षपिका तु सा ॥ २ ॥ अथाष्टीलिकामाह—कठिनैर्विपमैर्भुगैर्वा-
युवाऽष्टीलिका भवेत् । अथ ग्रथितमाह—शूकैर्यत्पूरितं शश्वद्ग्रथितं नाम
तत्कफात् ॥ ३ ॥ अथ कुम्भिकामाह—कुम्भिका रक्तपित्तोत्था जाम्बवा-
स्थिनिभा शुभा ॥ अथालजीमाह—तुल्यजां त्वलजीं विद्याद्यथोक्तां च
विचक्षणैः ॥ ४ ॥ अथ मृदितमाह—मृदितं पीडितं यत् संरब्धं वातको-
पतः ॥ अथ खंमूढपीडिकामाह—पाणिभ्यां भृशसंरुढे खंमूढपीडिका
भवेत् ॥ ५ ॥ अथावमन्थमाह—दीर्घा बह्वयश्च पिटिका दीर्यन्ते मध्य-
तस्तु याः । सोऽवमन्थः कफासृग्भ्यां वेदनारोमहर्षकृत् ॥ ६ ॥ अथ पुष्क-
रिकामाह—पिटिकाभिश्चिता या तु पित्तशोणितसंभवा । पद्मकर्णिकसं-
स्थाना ज्ञेया पुष्करिका च सा ॥ ७ ॥ अथ स्पर्शहानिमाह—स्पर्शहानिं
तु जनयेच्छोणितं शूकदूषितम् । वातपित्तकृतो ज्ञेयस्त्वपाको ज्वरदाहकृत्
॥ ८ ॥ अथोत्तमामाह—मुद्गमापोपमा रक्ता रक्तपित्तोद्भवा च सा । व्या-
धिरेपोत्तमा नाम शूकाजीर्णनिमित्तजः ॥ ९ ॥ अथ शतपोनकमाह—
छिद्रैरण्मुखैर्लिङ्गं चितं यस्य समन्ततः । वातशोणितजो व्याधिः स ज्ञेयः
शतपोनकः ॥ १० ॥ अथ त्वक्पाकमाह—वातपित्तकृतो ज्ञेयस्त्वक्पाको
ज्वरदाहकृत् ॥ अथ शोणितार्बुदमाह—कृष्णैः स्फोटैः सरक्ताभिः पिटि-
काभिर्निपीडितम् ॥ ११ ॥ यस्य वास्तुरुजश्चोग्रा ज्ञेयं तच्छोणितार्बुदम् ॥
अथ मांसार्बुदमाह—मांसदोषेण जानीयादर्बुदं मांससंभवम् ॥ १२ ॥
अथ मांसपाकमाह—शीर्यन्ते यस्य मांसानि यस्य सर्वाश्च वेदनाः । वि-
द्यात्तं मांसपाकं तु सर्वदोषकृतं भिषक् ॥ १३ ॥ अथ चिद्रधिमाह—वि-
द्रधिं संनिपातेन यथोक्तमभिनिर्दिशेत् ॥ अथ तिलकालकानाह—कृ-
ष्णानि चित्राण्यथवा शूकानि सविपाणि तु ॥ १४ ॥ पानितानि पचन्त्याशु

मेढूं निरवशेषतः ॥ कालानि भूत्वा मांसानि शीर्यन्ते यस्य देहिनः । संनि-
पातसमुत्थांश्च तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥ १५ ॥ अथ शूकदोषेऽसाध्य-
त्वमाह—तत्र मांसारुदं यत्तु मांसपाकश्च यः स्मृतः । विद्रधिश्च न सि-
ध्यन्ति ये च स्युस्तिलकालकाः ॥ १६ ॥ इति शूकदोषनिदानम् ।

अथ शूकदोषचिकित्सा ।

हितं च सर्पिषः पानं पथ्यं चापि विरेचनम् । हितः शोणितमोक्षश्च शू-
करोगेषु देहिनाम् ॥ १ ॥ उल्लिख्य सार्पिणीं तालपत्रेणाथ प्रलेपयेत् । त्रिकटु-
त्रिफलालोघ्रैर्गोमूत्रपरिपेतैः ॥ २ ॥ क्रियेयमवमन्येऽपि रक्तं शोध्यं तथो-
भयोः । अष्टीलायां हृते रक्ते श्लेष्मग्रन्थिक्रियां चरेत् ॥ ३ ॥ कुम्भिकायां
हरेद्रक्तं पक्वायां शोधिते व्रणे । तिन्दुकत्रिफलालोघ्रैर्लेपस्तैलं च रोपणम् ॥ ४ ॥
अलज्यां हृतरक्तायां पूर्वं एव क्रियाक्रमः । स्वेदयेद्ब्रथितं पश्चान्नाडीस्वेदेन बु-
द्धिमान् ॥ ५ ॥ सुखोष्णैरुपनाहैश्च व्रणोक्तैरुपनाहयेत् । उत्तमाख्यां तु पि-
टिकां संस्वेद्य बडिशोद्धृताम् ॥ ६ ॥ कल्कचूर्णैः कषायाणां क्षौद्रयुक्तैरुपाच-
रेत् । क्रमः पित्तविसर्पोक्तः पुष्करीमूढयोर्हितः ॥ ७ ॥ त्वक्पाके स्पर्शहानौ
च सेचयेन्मृदितं पुनः । बलातैलेन कोष्णेन मधुरैश्चोपनाहयेत् ॥ ८ ॥ रस-
क्रिया विधातव्या लिखिते शतपोनके । पृथक्पण्यादिभिः सिद्धं तैलं देयम-
नन्तरम् ॥ ९ ॥ रक्तविद्रधिवच्चापि क्रिया शोणितजेऽर्बुदे । मांसारुदे प्रकु-
र्वीत क्रियां सद्योव्रणोदिताम् ॥ १० ॥ त्रिफलागुग्गुलुं चापि विशेषेणावचा-
रयेत् । मांसपाके वटाद्यस्य गणस्य विधिवत्कृतैः ॥ ११ ॥ कषायचूर्णकल्कैश्च
सेकोद्धूलनलेपनम् । विद्रधौ विधिवत्कार्यं रक्तविद्रधिभेषजम् ॥ १२ ॥ वरु-
णादिकषायस्य पानप्रक्षालने हिते । तिलकालं समुल्लिख्य क्षुरेण लघुपाणिना
॥ १३ ॥ भिपजाऽथात्र कर्तव्यः सद्योव्रणविधिर्मतः । मांसारुदं मांसपाकं
विद्रधिं तिलकालकम् । प्रत्याख्याय प्रकुर्वीत भिपक्तेषां प्रतिक्रियाम् ॥ १४ ॥

इति शूकदोषचिकित्सा ।

अथ कुष्ठनिदानम् ।

विरोधीन्यन्नपानानि द्रवस्निग्धगुरूणि च । भजतामागताञ्छर्दिवेगांश्चान्या-
न्यप्रतिघ्नताम् ॥ १ ॥ व्यायाममग्निसंतापमतिभुक्त्वा निपेविणाम् । शीतोष्ण-
लङ्घनाहारान्क्रमं त्यक्त्वा निपेविणाम् ॥ २ ॥ धर्मश्रमभयार्तानां द्रुतं शीता-
म्बुसेविनाम् । अजीर्णाध्यशिनं चैव पञ्चकर्मापचारिणाम् ॥ ३ ॥ नवान्नदधि-
मत्स्याम्ललवणातिनिपेविणाम् । मापमूलकपिष्टान्नतिलक्षारगुडाशिनाम् ॥ ४ ॥
व्यवायं चाप्यजीर्णेऽन्ने निद्रां च भजतां दिवा । विप्राङ्गुरून्धर्षयतां पापं वा
कर्म कुर्वताम् ॥ ५ ॥ पाप्मभिः कर्मभिः सद्यः प्राक्तनैः प्रेरिता मलाः । वातादय-
स्त्रयो दोषास्त्वग्रक्तं मांसमम्बु च ॥ ६ ॥ दूषयन्ति स कुष्ठानां सप्तको द्रव्य-

संग्रहः । त्वचः कुर्वन्ति वैवर्ण्यं दुष्टाः कुष्ठमुशन्ति तत् ॥ ७ ॥ अतः कुष्ठानि जायन्ते सप्त चैकादशैव तु । कुष्ठानि सप्तधा दोषैः पृथग्द्वंद्वैः समागतैः ॥ ८ ॥ सर्वेण्वपि त्रिदोषत्वं व्यपदेशोऽधिकत्वतः । अतिश्लक्ष्णखरस्पर्शः स्वेदास्वेदौ विवर्णता ॥ ९ ॥ दाहः कण्डूस्त्वचि स्वापस्तोदः कोठोन्नतिः श्रमः । व्रणानामधिकं शूलं शीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः ॥ १० ॥ रूढानामतिरूक्षत्वं निमित्तेल्लेऽपि कोपनम् । रोमहर्षोऽसृजः काण्ण्यं कुष्ठलक्षणमग्रजम् ॥ ११ ॥

तत्र कपालकुष्ठमाह—कृष्णारुणं कपालाभं यद्रूक्षं परुषं तनु । कपालं तोदबहुलं तत्कुष्ठं विपमं स्मृतम् ॥ १२ ॥ अथोदुम्बरमाह—रुग्दाहराग कण्डूभिः परितं रोमपिञ्जरम् । उदुम्बरफलाभासं कुष्ठमौदुम्बरं वदेत् ॥ १३ ॥ अथ मण्डलकुष्ठमाह—श्वेतं रक्तं स्थिरं स्त्यानं क्षिग्धमुत्सन्नमण्डलम् । कृच्छ्रमन्योन्यसंयुक्तं कुष्ठं मण्डलमुच्यते ॥ १४ ॥ अथर्ष्यजिह्वामाह—कर्कशं रक्तपर्यन्तमन्तः श्यावं सवेदनम् । यदप्यजिह्वासंस्थानमृष्यजिह्वं तदुच्यते ॥ १५ ॥ अथ पुण्डरीकमाह—सुश्वेतं रक्तपर्यन्तं पुण्डरीकदलोपमम् । रक्तान्तर्दाहकण्डूद्व्यं चितं पद्ममिवांबुभिः ॥ सोत्सेधं च सरागं च पुण्डरीकं प्रचक्षते ॥ १६ ॥ अथ सिध्मकुष्ठमाह—सितं ताम्रं तनु च यद्रजो घृष्टं विमुञ्चति । प्रायश्चोरसि तत्सिध्ममलाबुकुसुमोपमम् ॥ १७ ॥ अथ काकणन्तिकमाह—पूर्वं रक्तं च कृष्णं च काकणन्तिकफलोपमम् । सदाहमस्पर्शसहं सपाकं तीव्रवेदनम् ॥ १८ ॥ यत्काकणन्तिकवर्णं सपाकं तीव्रवेदनम् । त्रिदोषलिङ्गं तत्कुष्ठं काकणं नैव सिध्यति ॥ १९ ॥ इति सप्त महाकुष्ठानि ॥

अथैकादश क्षुद्रकुष्ठानि ।

तत्र चर्मकुष्ठमाह—अस्वेदनं महावास्तु यन्मत्स्यशकलोपमम् । तदेककुष्ठं चर्माख्यं बहुलं हस्तिचर्मवत् ॥ २० ॥ अथ किटिभमाह—श्यावं किणखरस्पर्शं परुषं किटिभं मतम् ॥ अथ वैपादिकमाह—वैपादिकं पाणिपादस्फुटनं तीव्रवेदनम् ॥ २१ ॥ अथालसकमाह—कण्डूमद्भिः सरागैश्च गण्डैरलसकं वदेत् ॥ अथ दद्रुमण्डलमाह—सकण्डुरागपिटिकं दद्रुमण्डलमुद्रतम् ॥ २२ ॥ अथ चर्मदलमाह—रक्तं संशूलं कण्डूमत्सस्फोटं दलयत्यपि । तच्चर्मदलाख्यातमस्पर्शसहमुच्यते ॥ २३ ॥ अथ पामामाह—सूक्ष्मा बह्व्यः पीटिकाः स्राववत्यः पामेत्युक्ताः कण्डुमत्यः सदाहाः । सैव स्फोटैस्तीव्रदाहैरुपेता ज्ञेया पाण्योः कच्छुरुग्रा स्फिजोश्च ॥ २४ ॥ अथ विस्फोटमाह—स्फोटाः श्यावारुणाभासा विस्फोटाः स्युस्तनुत्वचः ॥ अथ रकसामाह—कण्डूचिता या पिटिका शरीरे संस्त्राव्यमाणा रकसोच्यते सा ॥ २५ ॥ अथ शतारुमाह—रक्तं श्यावं सदाहार्ति शतारुः स्याद्बहुव्रणम् ॥ विचर्चिकामाह—सकण्डूः पिटिका श्यावा बहुस्रावा विचर्चिका ॥ २६ ॥

पाण्डुरं श्वित्रमित्युक्तं सखावं कण्डुसंयुतम् ॥ अनग्निदग्धजं साध्यं श्वित्रं
वर्ज्यमतोऽन्यथा ॥ २७ ॥ कुष्ठानां दोषत्रयस्य नियतलिङ्गमाह—खरं
श्यावारुणं रूक्षं वातकुष्ठं सवेदनम् । पित्तात्प्रकुपितं दाहरागस्त्रावान्वितं
मतम् ॥ २८ ॥ कफात्क्लेदि घनं स्निग्धं सकण्डूशैत्यगौरवम् । द्विलिङ्गं द्वंद्वजं
कुष्ठं त्रिलिङ्गं सांनिपातिकम् ॥ स्पर्शहानिः सखेदत्वमीपत्कण्डूश्च जायते ॥ २९ ॥

इदानीमुत्तरोत्तरं सप्तधातुगतकुष्ठलक्षणं क्रमेणोच्यते । तत्राऽऽ
दौ रसगतमाह—त्वक्स्थे वैवर्ण्यमङ्गेषु कुष्ठे रौक्ष्यं च जायते । त्वक्स्वापो
रोमहर्षश्च स्वेदस्यापि प्रवर्तनम् ॥ ३० ॥ रक्तगतमाह—कण्डूर्विपूयकश्चैव
कुष्ठे शोणितसंश्रिते ॥ मांसगतमाह—बाहुल्यं वक्त्रशोषश्च कार्कश्यं पिटि-
कोद्गमः ॥ ३१ ॥ तोदः स्फोटः स्थिरत्वं च कुष्ठे मांससमाश्रिते ॥ मेदोगत-
माह—दौर्गन्ध्यं गात्रदोषश्च पूयोत्थकृमयस्तथा ॥ ३२ ॥ गात्राणां भेदनं
चापि कुष्ठे मेदः समाश्रिते ॥ कौण्यं गतिक्षयोऽङ्गानां संभेदः क्षतसर्पणम् ॥
॥ ३३ ॥ मेदःस्थानगते लिङ्गं प्रागुक्तानि तथैव च ॥ अस्थिमज्जाद्वयगत-
माह—नासाभङ्गोऽक्षिरागश्च क्षतेषु क्रिमिसंभवः । स्वरोपवातश्च भवेदस्थिम-
ज्जासमाश्रिते ॥ ३४ ॥ शुक्रगतमाह—दंपत्योः कुष्ठबाहुल्यादुष्टशोणितशुक्रयोः ।
यदपत्यं तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितम् ॥ ३५ ॥ इति सप्तधातुगतानि कुष्ठानि
अथ साध्यासाध्यमाह—साध्यं त्वग्रक्तमांसस्थं वातश्लेष्माधिकं च यत् ॥
मेदोगं द्वंद्वजं याप्यं वर्ज्यं मज्जास्थिसंश्रितम् ॥ ३६ ॥ पुनरसाध्यलक्ष-
णम्—कृमिकृदाहमन्दाग्निसंयुक्तं यन्निदोषजम् । प्रभिन्नं प्रसृताङ्गं च रक्त-
नेत्रं हतस्वरम् ॥ ३७ ॥ पञ्चकर्मगुणातीतं कुष्ठं हन्तीह कुष्ठिनम् ॥ कुष्ठेषु
चिकित्सार्थं दोषप्राधान्यमाह—वातेन कुष्ठं कापालं पित्तादौदुम्बरं क-
फात् । मण्डलाख्यं विचर्ची च ऋष्याख्यं वातपित्तजम् ॥ ३८ ॥ चर्मैककुष्ठकि-
टिभसिध्मालसविपादिकाः । वातश्लेष्मोद्भवाः श्लेष्मपित्ताद्द्रुशतारूपी ॥ ३९ ॥
पुण्डरीकं सविस्फोटं पामा चर्मदलं तथा । सर्वैः स्यात्काकणं पूर्वं त्रिकं दद्रु
सकाकणम् ॥ ४० ॥ पुण्डरीकमृष्यजिह्वं महाकुष्ठानि सप्त तु ॥

अथ श्वित्रमाह—कुष्ठैकसंभवं श्वित्रं किलासं दारुणं च यत् । निर्दिष्ट-
मपरिस्त्रावि त्रिधातुद्भवसंश्रयम् ॥ १ ॥ वातादूक्षारुणं पित्तात्तान्रं कमल-
पत्रवत् । सदाहं लोमविध्वंसि कफाच्छ्रेतं घनं गुरु ॥ २ ॥ सकण्डुरं क्रमा-
द्भक्तमांसमेदःसु चाऽऽदिशेत् । वर्णेनैवेदगुभयं कृच्छ्रं तच्चोत्तरोत्तरम् ॥ ३ ॥
अथ तस्य साध्यासाध्यत्वमाह—अशुक्ललोमाबहुलमसंसृष्टमथो नवम् ।
अनग्निदग्धजं साध्यं श्वित्रं वर्ज्यमतोऽन्यथा ॥ ४ ॥ गुह्यपाणितलोष्ठेषु जातम-
प्यचिरंतनम् । वर्जनीयं विशेषेण किलासं सिद्धिमिच्छता ॥ ५ ॥ कुष्ठादि-
संसर्गजान्गोणानाह—स्पर्शैकाहारशय्यादिसेवनात्प्रायशो गदाः । सर्वे
संचारिणो नेत्रत्वग्विकारा विशेषतः ॥ ६ ॥ प्रसङ्गाद्वात्रसंस्पर्शाग्निःश्वासा-

त्सहभोजनात् । सहशय्यासनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥ ७ ॥ कुष्ठं
ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिप्यन्द एव च । औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरा-
न्नरम् ॥ ८ ॥ सरणं यदि कुष्ठेन पुनर्जातस्य तद्भवेत् । नातो निन्द्यतरो रोगो
यथा कुष्ठं प्रकीर्तितम् ॥ ९ ॥ इति कुष्ठनिदानम् ।

अथ कुष्ठचिकित्सा ।

वातोत्तरेषु सर्पिर्वमनं श्लेष्मोत्तरेषु कुष्ठेषु । पित्तोत्तरेषु मोक्षो रक्तस्य विरेचनं
विहितम् ॥ १ ॥ प्रभूतं वा जलौकाभिः शृङ्गालाबुशिराव्यधैः । स्निग्धस्यमोक्षये
द्रक्तं दुष्टं कुष्ठे पुनः पुनः ॥ २ ॥ सुते रक्ते हृते दोषे स्नेहैः संशमितेऽनिले ।
रसायनानि प्राश्याश्च प्रशस्ताः कुष्ठिनां मताः ॥ ३ ॥ अथ वमनम्—
यववासापटोलानां निम्बस्य फलिनीत्वचः । कपायो मधुना पीतो वान्तिकृ-
न्मदनान्वितः ॥ १ ॥ इति वमने पञ्चकपायः । अथ विरेचनम्—विरे-
चनं प्रयोक्तव्यं त्रिवृद्दन्तीफलत्रिकैः । पष्टे मासे शिरामोक्षं प्रतिमासं विरेच-
नम् । प्रतिपक्षं च वमनं कुष्ठे लेपं व्यहाचरेत् ॥ १ ॥

अथ लेपाः ।

पथ्याकरञ्जसिद्धार्थनिशाबलगुजसेन्धवैः । विडङ्गसहितैः पिष्टैर्लेपमात्रेण
कुष्ठजित् ॥ १ ॥ एलाकुष्ठविडङ्गानि शताह्वा चित्रकं बला । दन्ती रसाञ्जनं
चेति लेपः कुष्ठविनाशनः ॥ २ ॥ मनःशिलाले मरिचानि तैलमार्कं पयः
कुष्ठहरः प्रदेहः । करञ्जबीजैडगजं सकुष्ठं गोमूत्रपिष्टश्च परः प्रदेहः ॥ ३ ॥
बलिबेलाग्निभल्लातदन्तीशम्याकनिम्बकैः । काञ्जिकैः पेपितैर्लेपः श्वेतकुष्ठवि-
नाशकृत् ॥ ४ ॥ श्वेतकरवीरमूलं कुटजकरञ्जत्वचो दाव्याः । सुमनःप्रवा-
लयुक्तो लेपः कुष्ठापहः सिद्धः ॥ ५ ॥ शैलेयकम्पिलकयष्टिसाहसौराष्ट्रिका-
सर्जरसोत्पलानि । शिला च चूर्णो नवनीतयुक्तः कुष्ठे खवत्यभ्यधिकः प्रदिष्टः
॥ ६ ॥ रसगन्धकयोः पिष्टं कुटुतैलेन भृङ्गजैः । द्रवैः संमर्द्य तलेपात्सर्वकुष्ठं
विनश्यति ॥ ७ ॥

अथ क्वाथाः ।

गुडूचीत्रिफलादार्वीक्वाथ उष्णैश्च वारिभिः । त्वग्दोषप्रणशोफघ्नः पीतो
मासं सगुग्गुलः ॥ १ ॥ खदिरत्रिफलानिम्बपटोलाभृत्वासकैः । अष्टकोऽयं
जयेत्कुष्ठकण्डूविस्फोटकानपि ॥ २ ॥ अथ महाकपायः—शुण्ठीनिम्बकिरा-
तत्तिक्तकणपाठाहरिद्राद्वयं त्रायन्ती त्रिफलाऽभृत्वाऽब्जकटुका वासा वचा
बाकुची । मञ्जिष्ठाऽतिविपादुरालभमहानिम्बाग्निपद्मग्रन्थिका व्याघ्रिश्वा गज-
चिर्मिटा सकुटजा भार्गी समुस्तायवा ॥ १ ॥ मूर्वा चैव पटोलपत्रमहिता
रक्तं तथा चन्दनं श्यामा पर्पटसारिवा कृमिहरा गायत्रिकासंयुता । गोमूत्रेण
महाकपायमरुणोद्भूतं पिबेद्यः पुमांस्तस्याष्टादश यान्ति नाशमचिरान्कुष्ठानि

दुष्टान्यपि ॥ २ ॥ अथ नवककषायः—त्रिफला निम्बपटोलं मञ्जिष्ठा रोहिणी वचा रजनी । एष कषायोऽभ्यस्तो निहन्ति कफपित्तजं कुष्ठम् ॥ १ ॥ इति क्वाथाः ॥ अथ खदिरोदकम्—प्रलेपोद्धर्तनस्नानपानभोजनकर्मसु । शीलितं खादिरं वारि सर्वत्वग्दोषनाशनम् ॥ १ ॥ दह्यमानाद्धृतः कुम्भे समूलखदिराद्रसः । साज्यधात्रीरसः क्षौद्रो हन्यात्कुष्ठं रसायनम् ॥ २ ॥ अथ निम्बादिकल्कः—निम्बपत्रशतं पिष्ट्वा निम्बामलकमेव च । विडङ्ग-बाकुचीकल्कं पिबेदाकुष्ठनाशनम् ॥ १ ॥

अथ चूर्णानि ।

तत्राऽऽदौ पञ्चनिम्बचूर्णम्—पिचुमन्दफलं पुष्पं त्वक्पत्रं मूलमेव च । पञ्चैतानि च सूक्ष्माणि समचूर्णानि कारयेत् ॥ १ ॥ अष्टभागावशेषेण खदिरासनवारिणा । भावयित्वा तु संयोज्य द्रव्याण्येतानि दापयेत् ॥ २ ॥ चित्रकोऽथ विडङ्गानि व्याधिघातकशर्कराः । भल्लातकहरीतक्यौ शुण्ठ्यामल-कगोधुराः ॥ ३ ॥ चक्रमर्दकबाकुचीपिप्पलीमरिचं निशा । लोहचूर्णसमायुक्तं समभागं प्रमाणतः ॥ ४ ॥ भावयेद्भृङ्गराजेन पुनः शुष्काणि कारयेत् । निम्बार्धचूर्णमेतेषामेकीकृत्य निधापयेत् ॥ ५ ॥ विडालपदमात्रं तु सर्पिषा पथ-साऽपि वा । प्रातः प्रातर्निषेवेत खदिरासनवारिणा ॥ ६ ॥ परिहारो न चा-त्रास्ति पञ्चनिम्बेऽवतिष्ठति । मासमात्रप्रयोगेण कुष्ठं हन्ति रसायनम् ॥ ७ ॥ त्वग्दोषनीलिकाव्यङ्गं तथैव तिलकालकान् । अष्टादशविधं कुष्ठं सप्त चैव म-हाक्षयान् ॥ सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो जीवेद्वर्षशतं सुखी ॥ ८ ॥

अथोद्धूलने सर्षपादिचूर्णम्—सर्षपकरञ्जरजनीदारुनिशादारुमञ्जिष्ठाः । त्रिफलाशटीपटीरश्वेतामूर्वाप्रियङ्गुकाश्चापि ॥ १ ॥ त्रिकटुत्रिगन्धकेसरलाक्षा-श्रैषां कृतं रजः श्लक्ष्णम् । उद्धूलनेन रक्तजपित्तजवातोत्थितं वाऽपि ॥ निस्तोद-भेदपिटिकं कुष्ठं स्फुटनं विनाशयति ॥ २ ॥ अथ विडङ्गादिचूर्णम्—विड-ङ्गत्रिफलाकृष्णाचूर्णं लीढं समाक्षिकम् । हन्ति कुष्ठं कृमीन्मेहान्नाडीदुष्टभगं-दरान् ॥ १ ॥ इति चूर्णानि ॥

अथ गुटिकाः ।

तत्राऽऽदौ सर्वाङ्गसुन्दरी गुटिका—भल्लातकसहस्रैकं त्रिफलावा-रिणि क्षिपेत् । द्रोणमात्रे पचेत्तावद्यवत्पादावशेषितम् ॥ १ ॥ शर्कराया दश पलान्येकं बाकुचिकापलम् । तथैवान्नैव देयानि पलानि दश गुग्गुलोः ॥ २ ॥ खदिरारिष्टमञ्जिष्ठाबीजकं चेन्द्रवारुणी । चित्रकं द्वे हरिद्रे च देवदारु हरीतकी ॥ ३ ॥ भार्गी वचेति सर्वेषां प्रत्येकं च पलार्धकम् । प्रक्षिप्य गुटिका कार्या नान्ना सर्वाङ्गसुन्दरी ॥ ४ ॥ प्रत्यहं भक्षयेत्कुष्ठे त्वेतां बदरमात्रया । सर्वा-ण्येवोग्रकुष्ठानि शीघ्रमेव व्यपोहति ॥ ५ ॥

अथ त्रिफलागुटिका—त्रिफलारुष्करलोहैः सावल्गुजभृङ्गलाङ्गलीव्योपैः ।
सगुडैर्वराहकन्दैः पलिकैरेकत्र संमिश्रैः ॥ १ ॥ गुटिकां प्रकल्प्य खादेदेकैक-
मक्षसंमितां प्रातः । कुष्ठं दद्रुकिलासं जित्वा वर्षेण सर्वथा पलितम् ॥ जीवति
वर्षशतं वै दीप्तहुताशो युवेव सोत्साहः ॥ २ ॥

अथैकविंशतिको गुग्गुलुः—चित्रकत्रिफलाव्योपमजाजीकारवीवचाः ।
सैन्धवातिविषा कुष्ठं चव्यैलायावशूकजम् ॥ १ ॥ विडङ्गान्यजमोदा च मुस्ता-
न्यमरदारु च । यावन्त्येतानि सर्वाणि तावन्मात्रस्तु गुग्गुलुः ॥ २ ॥ संकुट्य
सर्पिषा सार्धं गुटिकां कारयेद्भिषक् । प्रातर्भोजनकाले वा भक्षयेत्तु यथाव-
लम् ॥ ३ ॥ हन्त्यष्टादशकुष्ठानि कृमिदुष्टव्रणानपि । ग्रहण्यर्शोविकारांश्च सु-
खामयलग्नग्रहान् ॥ ४ ॥ गृध्रसीमथ भक्षं च गुल्मं चापि नियच्छति । व्या-
धीन्कोष्ठगतांश्चान्याजयेद्विष्णुरिवासुरान् ॥ ५ ॥

अथ त्रिफलामोदकः—त्रैफलस्य तु चूर्णस्य पलानि दश पञ्च च । सप्त
चैव विडङ्गानां लोहचूर्णं पलद्वयम् ॥ १ ॥ शतं भल्लातकानां च पलानि दश
बाकुची । शिलाजतु पलार्धं तु द्वे पले गुग्गुलोस्तथा ॥ २ ॥ पलं पुष्करमूलस्य
पलार्धं त्रिवृतस्य च । सचित्रकं समरिचं पिप्पली विश्वभेषजम् ॥ ३ ॥ त्व-
क्पत्रं कुङ्कुमं मुस्ता कार्पिकानुपकल्पयेत् । यावन्त्येतानि चूर्णानि तावत्खण्डं
प्रदापयेत् ॥ ४ ॥ पालिकान्मोदकान्कृत्वा प्रातरुत्थाय नित्यशः । एकैकं भक्षय-
त्प्राज्ञो यथेष्टं चात्र भोजनम् ॥ ५ ॥ कुष्ठान्यष्टादशापीह स्त्रीहगुल्मभगंदरान् ।
अशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ॥ ६ ॥ विंशतिं श्लैष्मिकांश्चापि संसृ-
ष्टान्सानिपातिकान् । शालक्यगत रोगांश्च शिरोक्षिभ्रूगतांस्तथा ॥ ७ ॥ कण्ठ-
तालुगतांश्चापि जिह्वायामुपजिह्वकम् । ऊर्ध्वजत्रुगते रोगे भुक्तस्योपरि दाप-
येत् ॥ ८ ॥ शरीरे दापयेत्पूर्वमौदरे मध्यभोजने । निर्दिष्टरोगान्शमयेत्क्रिय-
माणं रसायनम् ॥ ९ ॥

अथावलेहः ।

तत्राऽऽदौ भल्लातकावलेहः—निम्बगोपारुणाकट्टीत्रायन्तीत्रिफलाघ-
नम् । पर्पटावल्गुजानन्तावचाखदिरचन्दनम् ॥ १ ॥ पाठा शुण्ठी शटी भार्गी
वासा भूनिम्बवत्सकम् । श्यामेन्द्रवारुणीमूर्वाविडङ्गातिविषानलम् ॥ २ ॥
हस्तिकर्णामृताब्दाह्नं पटोलं रजनीद्वयम् । कृष्णारग्वधसप्ताह्वशिरीषं चोच्छटा-
फलम् ॥ ३ ॥ मज्जिष्ठा लाङ्गली रास्त्रा नक्तमालः पुनर्नवा । दन्ती बीजक-
सारश्च भृङ्गराजकुरण्टकम् ॥ ४ ॥ एतान्द्विपलिकान्भागाजलद्रोणे विपाचयेत् ।
अष्टभागावशिष्टं च कषायमवतारयेत् ॥ ५ ॥ भल्लातकसहस्राणि क्षिपेच्छि-
त्वाऽर्मणेऽम्भसि । चतुर्भागावशिष्टं तु कषायमवतारयेत् ॥ ६ ॥ तौ कषायौ
समादाय वस्त्रपूतौ तु कारयेत् । एकीकृत्य कषायौ तौ पुनरप्रावधिश्रयेत् ॥ ७ ॥
गुडस्यैकतुलं दत्त्वा लेहवत्साधयेद्भिषक् । भल्लातकसहस्रस्य तत्र बीजानि

दापयेत् ॥ ८ ॥ त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चित्रकं तथा । चन्दनं सैन्धवं
कुष्ठं दीप्यकं च पलं पलम् ॥ ९ ॥ चातुर्जातं च संचूर्ण्य घृतभाण्डे निधाप-
येत् । सौगन्धिकस्य दातव्यं चूर्णं पलचतुष्टयम् ॥ १० ॥ महाभल्लातको ह्येष
महादेवेन निर्मितः । प्राणिनां तु हितार्थाय नाशयेच्छीघ्रमेव च ॥ ११ ॥
श्वित्रमौदुम्बरं दद्रुमृष्यजिह्वं सकाकणम् । पुण्डरीकं च चर्माख्यं विस्फोटं र-
क्तमण्डलम् ॥ १२ ॥ कृच्छ्रं कापालिकं कुष्ठं पामां चापि विपादिकाम् । वा-
तरक्तमुदावर्तं पाण्डुरोगं वमीन्कृमीन् ॥ १३ ॥ अशींसि पदप्रकाराणि श्वासं
कासं भगंदरम् । अनुपानेन दातव्यं छिन्नातोयेन तं भिषक् ॥ १४ ॥ भोजने
न सदा योज्यमुष्णं चाम्लं विशेषतः । अन्यान्यपि च कुष्ठानि नाशयेन्नात्र
संशयः ॥ १५ ॥ इति महाभल्लातकावलेहः ।

अथ शशाङ्कलेखादिलेहः—शशाङ्कलेखा सविडङ्गसारा सपिप्पलीका
सहुताशमूला । सायोमला सामलका सतैला सर्वाणि कुष्ठानि निहन्ति
लीढा ॥ १ ॥

अथ धान्यवलेहः—धान्यक्षपथ्यासविडङ्गवह्निभल्लातकावलगुजलोह-
भृङ्गाः । भागाभिवृद्धैस्त्रिलतैलमिश्रैः सर्वाणि कुष्ठानि निहन्ति लेहः ॥ १ ॥

अथ घृतानि ।

तत्राऽऽदौ तिकृषट्पलं घृतम्—निम्बं पटोलदाव्यौ दुरालभां
तिक्तरोहिणीं त्रिफलाम् । कुर्यादधपलांशान्पट्टकं त्रायमाणं च ॥ १ ॥
सलिलाढकसिद्धानां रसेऽष्टभागस्थिते पूते । चन्दनकिराततिक्तक्रमागधि-
कात्रायमाणं च ॥ २ ॥ मुस्तं वत्सकबीजं कल्कीकृत्यार्धकार्षिकान्भागान् ।
नवसर्पिषश्च पटपलमेतत्सिद्धं घृतं पेयम् ॥ ३ ॥ कुष्ठज्वरगुल्माशीर्ग्रहणी-
पाण्ड्वामयान्हन्ति । पामाविसर्पपिटिकाकण्डूगण्डव्रणान्सिद्धम् ॥ ४ ॥

अथ पञ्चतिक्तकं घृतम्—निम्बं पटोलं व्याघ्रीं च गुडूचीं वासकं तथा
कुर्याद्दशपलान्भागानेकैकस्य सुकुटितान् ॥ १ ॥ जलद्रोणे विपक्तव्यं याव-
त्पादावशेषितम् । घृतप्रस्थं पचेत्तेन त्रिफलागर्भसंयुतम् ॥ २ ॥ पञ्चतिक्त-
मिति ख्यातं सर्पिः कुष्ठविनाशनम् । अशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्ति-
कान् ॥ ३ ॥ विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव पानादेवापकर्षति । दुष्टव्रणकृमीनर्शः पञ्च
कासांश्च नाशयेत् ॥ ४ ॥

अथ महातिक्तकं घृतम्—सप्तच्छदं प्रतिविपां शम्याकं तिक्तरोहिणीं
पाठाम् । मुस्तामुशीरं त्रिफलां पटोलं पिचुमन्दपट्टकम् ॥ १ ॥ धन्वयवा-
सकचन्दनमुपकुल्यापन्नकरजन्यौ च । पद्मग्रन्थां सविशालां शतावरीं सारिवे
चोभे ॥ २ ॥ वत्सकबीजं वासां मूर्वामृतां किराततिक्तं च । कल्कान्कुर्या-
न्मतिमान्यष्टयाह्नं त्रायमाणं च ॥ ३ ॥ कल्कस्य चतुर्थभागो जलमष्टगुणं
रत्नोऽमृतफलानाम् । द्विगुणो घृतात्प्रदेयस्तत्सर्पिः प्राशयेत्सिद्धम् ॥ ४ ॥

कुष्ठानि रक्तपित्तं प्रबलान्यर्शांसि रक्तवाहीनि । वीसर्पमम्लपित्तं वातासृक्पाण्डुरोगं च ॥ ५ ॥ विस्फोटकान्सपामानुन्मादं कामलां ज्वरं कण्डुम् । हृद्रोगगुल्मपिटिकां भगंदरं गण्डमालां च ॥ ६ ॥ हन्यादेतत्सद्यः पीतं काले यथाबलं सर्पिः । योगशतैरप्यजितान्महाविकारान्महातिक्रमम् ॥ ७ ॥

अथ महाखदिरघृतम्—खदिरस्य तुलाः पञ्च शिंशपासनयोस्तुले । तुलार्धं सर्व एवैते करञ्जारिष्टवेतसाः ॥ १ ॥ पर्पटः कुटजश्चैव वृषः कृमिहरस्तथा । हरिद्रे कृतमालश्च गुडूची त्रिफला त्रिवृत् ॥ २ ॥ सप्तपर्णश्च संक्षुण्णो दशद्रोणे तु वारिणि । अष्टभागावशेषं तु कपायमवतारयेत् ॥ ३ ॥ धात्रीरसं च तुल्यांशं सर्पिपश्चादऽऽढकं पचेत् । महातिक्रककल्कैस्तु यथोक्तैः पलसंमितैः ॥ ४ ॥ निहन्ति सर्वकुष्ठानि पानाभ्यङ्गनिषेवणात् । महाखदिरमित्येतत्परं कुष्ठविकारनुत् ॥ ५ ॥

अथ तैलानि ।

अथ चित्रकादितैलम्—शुभ्रस्य करवीरस्य रसो वेहं च चित्रकम् । त्रिभिश्च पाचितं तैलमभ्यङ्गात्कुष्ठजातिनुत् ॥ १ ॥

अथ वज्रतैलम्—सप्तपर्णकरञ्जार्कमालतीकरवीरजाः । मूलं सुहीशिरीषाभ्यां चित्रकास्फोटयोरपि ॥ १ ॥ करञ्जबीजं त्रिफलां त्रिकटुं रजनीद्वयम् । सिद्धार्थकं विडङ्गं च प्रपुञ्जाटं च संहरेत् ॥ २ ॥ सूत्रपिष्टैः पचेत्तैलमेभिः कुष्ठविनाशनम् । अभ्यङ्गाद्वज्रकं नाम नाडीदुष्टव्रणापहम् ॥ ३ ॥ अथ मज्जिष्ठाद्यं तैलम्—मज्जिष्ठारुग्निशाचकर्मदार्गवधपल्वैः । तृणकस्त्रसे सिद्धं तैलं कुष्ठहरं परम् ॥ १ ॥ इति तैलानि ।

अथाऽऽसवाः ।

तत्राऽऽदौ खादिरासवः—खादिरस्य तुलार्धं तु तत्तुल्यं देवदार्वपि । वराया विंशतिर्दारुव्याः पलानां पञ्चविंशतिः ॥ १ ॥ बाकुच्या द्वादश पलान्यष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत् । द्रोणशेषे कपाये तु पूतशेषे विनिक्षिपेत् ॥ २ ॥ धातक्या विंशतिपलं माक्षिकस्य शतद्वयम् । शर्करायास्तुलामेकां चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ ३ ॥ कङ्गोलकं लवङ्गं च एलाजातीफलत्वचम् । केशरं मरिचं पत्रं पलिकान्युपकल्पयेत् ॥ ४ ॥ पिप्पलीनां तु कुडवं स्थापयेद्भूतभाजने । मासादूर्ध्वं पिबेन्मात्रामनपेक्ष्य बलाबलम् ॥ ५ ॥ सर्वकुष्ठहरो ह्येष पाण्डुहृद्रोगकासनुत् । कृमिग्रन्थ्यर्बुदग्रन्थिगुल्मग्रीहोदरान्तकृत् । एष वै खदिरारिष्टः कृष्णात्रेयेण पूजितः ॥ ६ ॥

अथ कनकारिष्टः—खदिरकपायं द्रोणं सर्पिष्कुम्भे निधापयेन्मध्ये । पलिकामात्रान्क्षेप्यान्कृत्वा तु तानेव सूक्ष्मचूर्णं तु ॥ १ ॥ त्रिफला त्रिकटुक-रजनीकनकत्वग्बाकुची गुडूची च । सविडङ्गमत्र मधुपलशतद्वयं प्रक्षिपेत्सर्वम्

॥ २ ॥ धातक्याश्च पलान्यष्टौ काथेऽस्मिन्प्रदेयानि । प्रातः प्रातस्तु पिवेन्ना-
शयति चिरोत्थितं कुष्ठम् ॥ ३ ॥ मासेन सर्वरोगान्विनिहन्ति च सर्वशोफ-
मेहांश्च । निर्जितकासश्चासौ गुदकीलभगंदरैर्मुक्तः । कनकारिष्टं प्रपिबन्भवति
पुमान्कनककान्तिश्च ॥ ४ ॥ इत्यासवाः ।

अथ दद्रुचिकित्सा—कासमर्दकमूलानि सौवीरेण तु पेपयेत् । दद्रुकि-
टिभकुष्ठानि जयेदेतत्प्रलेपनात् ॥ १ ॥ बीजानि वा मूलकसर्पपाणां लाक्षार-
जन्यौ प्रपुनाटबीजम् । श्रीवेष्टकं व्योपविडङ्गकुष्ठं पिप्प्रा च मूत्रेण विलेपनं
स्यात् । दद्रूणि सिध्मं किटिभानि पामां कपालकुष्ठं विपमं च हन्युः ॥ २ ॥
आरग्वधस्य पत्राणि आरनालेन पेपयेत् । दद्रुकिटिभकुष्ठानि हन्ति सिध्मम-
संशयः ॥ ३ ॥ प्रपुन्नाटस्य बीजानि धात्री सर्जरसः सुही । सौवीरपिष्टं दद्रू-
णामेतदुद्वर्तनं परम् ॥ ४ ॥ दूर्वाभयासैन्धवचक्रमर्दकुठेरकाः काजिकतकपिष्टाः ।
त्रिभिः प्रलेपैरपि बद्धमूलं दृढं च कण्डूं च विनाशयन्ति ॥ ५ ॥ विडङ्गैर्दग-
जाकुष्ठनिशासिन्धूत्थसर्पपैः । धान्याम्लपिष्टैर्लेपोऽयं दद्रुकुष्ठनिपूदनः ॥ ६ ॥

अथ लघुमरीचाद्यं तैलम्—मरिचालशिलाबर्दार्कपयोऽश्वारिजटात्रि-
वृत् । शकृद्रसविशालारुनिशायुगदारुचन्दनैः ॥ १ ॥ कटुतैलं पचेत्प्रस्थं ब्रक्षे
विपपलान्विते । सगोमूत्रं तदभ्यङ्गाद्दद्रुश्चित्रविनाशकृत् ॥ २ ॥

अथ दरदादिलेपः—दरदगन्धकपारदपिप्पलीविपविडङ्गनिशाग्रिमरी-
चकम् । अभयशुण्ठिघनाढिकवाकुचीकटुनृपद्रुममेडगजान्वितम् ॥ १ ॥
सममिदं खलु निम्बरसैर्युतं हरति दद्रुजकण्डुविसर्पकान् । हरति लतभगंद-
रमण्डलं तनुविलिप्तमहो क्षणतो नृणाम् ॥ २ ॥ इति दद्रुचिकित्सा ।

अथ चर्माख्यचिकित्सा—सूतगन्धकयोः पिप्प्रा कज्जलिकां विधाय
च । अक्षणेन विमर्द्याथ करित्वग्लेपने हितम् ॥ १ ॥ कबाबगौरीगदनुत्थजी-
रवल्लीभवं कर्पमिदं पृथक्च । शिलाबली तौ रविकर्पसंख्यौ सार्धौ विभागः
किल पारदस्य ॥ २ ॥ कर्पैश्च विंशत्प्रमितैर्घृतस्य सर्वं विमर्द्य किल ताम्रपात्रे ।
ततोऽङ्गलेपात्रिदिनं च तीव्रां हरेच्च रोगी गजकर्णपामाम् ॥ ३ ॥ गुञ्जाचित्र-
कशङ्खभस्सरजनीदूर्वाभयालाङ्गलीसुक्सिन्धूत्थकुमारिकाजलधराक्षीरधूमे-
श-जैः । वल्गूण्डगजाविडङ्गमरिचक्षौद्रैश्च खारीयुतैः कार्यं वै गजचर्मदुदुरकसा-
कण्डूभ्रमुद्वर्तनम् ॥ ४ ॥ आरग्वधदलैः पिष्टैर्लेपः काजिकयुक्तः । करित्वगद-
द्रुकुष्ठानि हन्ति पामां विचर्चिकाम् ॥ ५ ॥ इति चर्माख्यचिकित्सा ।

अथ किटिभचिकित्सा—चक्राङ्गबीजं त्वक्क्षीरभावितं मूत्रसंयुतम् ।
रविवेतसकन्दं च लेपनं किटिभापहम् ॥ १ ॥ पिप्पलीपूतिकायस्थाकुष्ठगोपि-
त्तचित्रकैः । लेपं सम्यक्प्रशंसन्ति किटिभग्नं चिकित्सकाः ॥ २ ॥ गोमूत्रवा-
रिसंपिष्टैः शिलाकासीसतुत्थकैः । लेपः किटिभवीसर्पकुष्ठनाशाय पूजितः ॥ ३ ॥

अथ सिध्मचिकित्सा—धात्रीफलं सर्जरसो यावश्चकस्त्विदं त्रयम् ।
सौवीरपेषितं सर्वं सिध्मशूलविदारणम् ॥ १ ॥ शिखरीरसेन सुपिष्टं मूलक-
बीजं प्रलेपतः सिध्मम् । क्षारेण कदल्या वा रजनीमिश्रेण नाशयति ॥ २ ॥
कुष्ठं मूलकबीजं प्रियङ्गवः सर्पपा दुरालम्बा । एतत्केसरपिष्टं निहन्ति चिर-
कालजं सिध्मम् ॥ ३ ॥ गन्धपापाणमिश्रेण यवक्षारेण लेपितम् । सिध्मं
नाशमुपैत्याशु कटुतैलयुतेन च ॥ ४ ॥ कासमर्दकबीजानि मूलकानां तथैव
च । गन्धपापाणमिश्राणि सिध्मानां परमौषधम् ॥ ५ ॥ बीजं मूलकजं निम्ब-
पत्राणि सितसर्पपान् । गृहधूमं च संपिप्य जलेनाङ्गं प्रलेपयेत् ॥ ६ ॥ उद्वर्त्य
नवनीतेन क्षालयेदुष्णवारिणा । व्यहृदनेन सिध्मानि शाम्यन्त्याशु शरीरि-
णाम् ॥ ७ ॥ लाक्षा श्रीवेष्टकं कुष्ठं हरिद्रा गौरसर्पपाः । व्योषं मूलकबी-
जानि प्रपुत्राटफलानि च ॥ ८ ॥ एतान्यत्र प्रदिष्टानि कुष्ठेपूद्वर्तनं परम् । सि-
ध्मानां कितिभानां च दद्रूणां च विशेषतः ॥ ९ ॥ कार्पासिकापत्रविमिश्रका-
कजङ्घाकृतो मूलकबीजयुक्तः । तत्रेण लेपः क्षितिपुत्रवारे सिध्मानि सद्यो
नयति प्रणाशम् ॥ १० ॥ गोमूत्रेणाथ तत्रेण जीर्णसौवीरकेण वा । पिष्टमूल-
कबीजानां लेपनात्सिध्मनाशनम् ॥ ११ ॥ इति सिध्मचिकित्सा ॥

अथ विपादिकाचिकित्सा—धत्तूरबीजकल्केन माणकक्षारवारिणा ।
कटुतैलं विपक्वं तु द्रुतं हन्याद्विपादिकाम् ॥ मुण्डीरसेन संसिद्धं घृतं हन्ति
विपादिकाम् ॥ १ ॥ इति विपादिकाचिकित्सा ॥

अथ क्रमेण पामाकण्डूकच्छूविसर्पणविस्फोटचर्मदलविचर्चिकाचिकित्सां
व्याख्यास्यामः—सिन्दूरजीरद्वयरात्रियुग्ममनःशिलावि जगन्धकानाम् ।
रसान्वितानां घृतयोजितानां पामा व्रजेदूरतरं त्रिलेपात् ॥ १ ॥ सैन्धवं चक्र-
मर्दं च सर्पपं पिप्पलीं तथा । सेचयेदारनालेन पामाकण्डूविनाशनम् ॥ २ ॥
अथ जीरकतैलम्—जीरकस्य पलं पिष्ट्वा सिन्दूरार्धपलं तथा । कटुतैलं
पचेदाभ्यां सद्यः पामाहरं परम् ॥ वृद्धवैद्योपदेशेन पाच्यं तैलं पलाष्टकम् ॥
॥ १ ॥ अथ बृहत्सिन्दूराद्यं तैलम्—सिन्दूरं चन्दनं मांसी विडङ्गं रज-
नीद्वयम् । प्रियंगुं पञ्चकं कुष्ठं मञ्जिष्ठां खदिरं वचाम् ॥ १ ॥ जात्यर्कत्रिवृतानि-
म्बकरञ्जं विषमेव च । कृष्णाचित्रकलोध्रं च प्रपुत्राटं च संहरेत् ॥ २ ॥ श्ल-
क्ष्णपिष्टानि सर्वाणि योजयेत्तैलमात्रया । अभ्यङ्गेन प्रयोज्यं तद्वर्णकृत्कुष्ठना-
शनम् ॥ ३ ॥ पामां विचर्चिकां कच्छूं विसर्पं विषमेव च । रक्तपित्तोत्थिता-
नहन्ति रोगानेवंविधान्बहून् ॥ सिन्दूराद्यमिदं तैलमश्विभ्यां निर्मितं पुरा ॥ ४ ॥

अथ बृहन्मरीचाद्यं तैलम्—मरिचं त्रिवृता दन्ती क्षीरमार्कं शकृद्रसः ।
देवदारु हरिद्रे द्वे मांसी कुष्ठं सचन्दनम् ॥ १ ॥ विशाला करवीरं च हरि-
तालं मनःशिला । चित्रको लाङ्गली चव्यं विडङ्गं चक्रमर्दकम् ॥ २ ॥ शिरी-
षकुटजौ निम्बः सप्तपर्णोऽमृता सुही । शम्याको नक्तमालोऽब्दः खदिरः पि-

प्ली वचा ॥ ३ ॥ जोतिष्मती च पलिका विपस्य द्विपलं भवेत् । आढकं कटुतैलस्य गोमूत्रं च चतुर्गुणम् ॥ ४ ॥ मृत्पात्रे लोहपात्रे वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् । पक्त्वा तैलं वरं ह्येतन्प्रक्षयेत्कोटकव्रणान् ॥ ५ ॥ पामाविचर्चिका-कण्डुदद्रुविस्फोटकानि च । वलयः पलितं छाया नीला व्यङ्गं तथैव च ॥ अभ्यङ्गेन प्रणश्यन्ति सौकुमार्यं च जायते ॥ ६ ॥ अथ माहेश्वरघृतम्—कृत्वा कज्जलिकां रवौ कुण्टिका द्वे जीरके द्वे निशे गोदन्तोपणनाग एडग-जिका बाकुञ्जिका सर्पिपा । लोहे लोहविमर्दितं दृढतरं माहेश्वराख्यं घृतं कण्डूकुष्ठविचर्चिकादिशमनं पामाहरं लेपनात् ॥ १ ॥ मांसीचन्दनशम्याक-करञ्जारिष्टसर्षपम् । यष्टीकुटजदार्वीभिर्हन्ति कण्डूमयं गणः ॥ २ ॥ अवल्गुजं कासमर्दं चक्रमर्दं निशायुतम् । मणिमन्थेन तुल्यांशं मस्तुकाञ्जिकपेपितम् ॥ कण्डूं कच्छूं जयत्युग्रां सिद्ध एष प्रयोगराट् ॥ ३ ॥ कोमलसिंहास्यदलं स-निशं सुरभीजलेनसंपिष्टम् । दिवसत्रयेण नियतं शमयति कच्छूं विलेपनतः ॥ ४ ॥ हरिद्राकल्कसंयुक्तं गोमूत्रस्य पलद्वयम् । पिबेन्नरः कामचारी कच्छू-पामाविनाशनम् ॥ ५ ॥ गन्धपापाणचूर्णं तु कटुतैलेन योजितम् । लेपना-दथ पानाद्वा कच्छूपामाविनाशनम् ॥ ६ ॥ अथ सिन्दूराद्यं तैलम्—सि-न्दूरगुग्गुलुरसाञ्जनसिक्थतुत्यैः कल्कीकृतैः कटुकतैलमिदं सुपक्वम् । कच्छूं स्त्रवत्पिटिकिकामथ वाऽपि शुष्कामभ्यङ्गेन सक्तुद्वरति प्रसह्य ॥ १ ॥

अथार्कतैलम्—अर्कपत्ररसे पक्वं रजनीकल्कसंयुतम् । कटुतैलं हरेत्तूर्णं पामाकच्छूविचर्चिकाः ॥ १ ॥ राजिकागुडयुक्तेन सैन्धवेन प्रलेपितम् । विज-लं चर्मणा बद्धं नाशं चर्मदलं व्रजेत् ॥ २ ॥

अथ रसाः ।

तत्राऽऽदौ विजयेश्वरो रसः—शुद्धतालं मृतं सूतं तुल्यं ताभ्यां चतु-र्गुणम् । भर्जित्वा विजया योज्या सर्वतुल्यं गुडं क्षिपेत् ॥ १ ॥ श्वेतकुष्ठहरं निष्कं रसोऽयं विजयेश्वरः । दार्वीखदिरनिम्बानां काथं तदनु पाययेत् ॥ २ ॥ इत्यष्टादशकुष्ठचिकित्सा ।

अथ श्वित्राण्याह—श्वित्रिणो हतदोषस्य हतरक्तस्य वा सकृत् । खदि-राम्बुयवान्नानां तृप्तस्य मलयूरसः ॥ सगुडः शस्यते पाने यवागूमण्डभो जिनः ॥ १ ॥ खदिरामलककपायं बाकुचित्रीजान्वितं पिबेन्नित्यम् । शङ्खेन्दु कुन्दधवलं श्वित्रं हन्तीह तच्चित्रम् ॥ २ ॥ शिलापामार्गभसितलेपाच्छिन्नं वि-नाशयेत् । किं पुनर्यदि युज्येत धनंजयजटात्वचा ॥ ३ ॥ त्रिफला नीलिनी-पत्रं लोहचूर्णं रसाञ्जनम् । श्वेतगुञ्जा दन्तिदन्तभस्म तुल्यं च मार्कवम् ॥ ४ ॥ मेषीदुग्धेन संपिप्य स्थापयेल्लोहभाजने । दिनमेकं ततो लिम्पेन्मुहुः श्वित्रेष्व-नुक्रमात् ॥ श्वित्राण्यनेन लेपेन निजवर्णं त्यजन्ति वै ॥ ५ ॥ सायोरजःकृष्ण-

तिलाञ्जनानि सावल्गुजान्यामलकानि दग्ध्वा । पिष्टानि भृङ्गस्य सकृद्रसेन
हन्यात्किलासं परिघृष्टलेपात् ॥ ६ ॥ अथ विषतैलम्—नक्तमालो हरिद्रे
द्वे अर्कं तगरमेव च । करवीरवचाकुष्ठमास्फोता रक्तचन्दनम् ॥ १ ॥ मालती
सप्तपर्णी च मञ्जिष्ठा सिन्धुवारिका । एषामर्धपलान्भागान्विषस्य द्विपलं भ-
वेत् ॥ २ ॥ चतुर्गुणे गवां मूत्रे तैलप्रस्थं विपाचयेत् । श्वित्रविस्फोटकिटिभ-
कीटलूताविचर्चिकाः ॥ ३ ॥ कण्डूकच्छूविकारश्च ये त्रणा विषदूषिताः ।
विषतैलमिदं नाम सर्वत्रणविशोधनम् ॥ ४ ॥ अथ ज्योतिष्मतीतैलम्—
मयूरकक्षारजले सप्तकृत्वः परिशृतम् । सिद्धं ज्योतिष्मतीतैलमभ्यङ्गाच्छ्वित्र-
नाशनम् ॥ १ ॥ अथ शशिलेखावटी—शुद्धसूतं समं गन्धं तुल्यं च मृ-
तताम्रकम् । मर्दितं बाकुचीकाथैर्दिनैकं वटकीकृतम् ॥ १ ॥ निष्कमात्रां
सदा खादेच्छ्वित्रघ्नीं शशिलेखिकाम् । बाकुचीतैलकपैकं सक्षौद्रमनु पाययेत्
॥ २ ॥ अथ पथ्यापथ्यम्—अन्नपानं हितं कुष्ठे न त्वम्ललवणोषणम् ।
दधिदुग्धगुडानूपतिलमाषांस्यजेत्तराम् ॥ १ ॥

इति कुष्ठश्वित्रचिकित्सा ॥

अथ शीतपित्तोदर्दकोठनिदानम् ।

आदौ तस्य दोषत्रयजन्यत्वमाह—शीतमास्तसंस्पर्शात्प्रदुष्टौ कफमा-
स्तौ । पित्तेन सह संभूय बहिरन्तर्विसर्पतः ॥ १ ॥ अथ तस्य पूर्वरूप-
माह—पिपासारुचिह्लासदाहसादाङ्गगौरवम् । रक्तलोचनता तेषां पूर्वरूप-
मिति स्मृतम् ॥ २ ॥ लक्षणमाह—वरटीदंष्ट्रसंस्थानः शोफः संजायते
बहिः । सकण्डूतोदबहुलश्छर्दिज्वरविदाहवान् ॥ ३ ॥ उदर्दमिति तं विद्या-
च्छीतपित्तमथापरे । वाताधिकं शीतपित्तमुदर्दस्तु कफाधिकः ॥ ४ ॥ अथो-
दर्दस्य धर्मान्तरमाह—सोत्सङ्गैश्च सरागैश्च कण्डूमङ्गिश्च मण्डलैः । शै-
शिरः कफजो व्याधिरुदर्दः परिकीर्तितः ॥ ५ ॥ अथ त्वग्दोषसामान्यादत्रैव
कोठः प्रोच्यते—असम्यग्बमनोदीर्णपित्तश्लेष्मान्ननिग्रहैः । आरनालैश्च शु-
क्लैश्च आसुरीलवणेन च ॥ १ ॥ वर्षाकाले प्रकुप्येत्स तथा दुष्टैश्च कारणैः ।
मण्डलानि सकण्डूनि रागावन्ति बहूनि च ॥ २ ॥ उत्कोठः सानुबन्धश्च कोठ
इत्यभिधीयते ॥ ३ ॥

इति शीतपित्तोदर्दकोठनिदानम् ।

अथ शीतपित्तादीनां चिकित्सा ।

अभ्यङ्गः कटुतैलेन स्वेदश्रोणेन वारिणा । तथाऽऽशु बमनं कार्यं पटोला-
रिष्टवासकैः ॥ १ ॥ त्रिफलापुरकृष्णाभिर्विरेकश्च प्रशस्यते । सर्पिः पीत्वा म-
हातित्तं कार्यं शोणितमोक्षणम् ॥ सक्षारसिन्धुतैलैश्च गात्राभ्यङ्गं प्रकल्पयेत्

॥ २ ॥ गम्भारिकाफलं पक्वं शुष्कमुत्स्वेदितं पुनः ॥ क्षीरेण शीतपित्तघ्नं खा-
दितं पथ्यसेविना ॥ ३ ॥ यष्टी मधूकपुष्पं च सरासं चन्दनद्वयम् ॥ नि-
गुण्डी सकणाकाथं शीतपित्तहरं पिबेत् ॥ ४ ॥ अमृतारजनीनिम्बधन्वयासैः
पृथक्शृतम् ॥ प्राणिनां प्राणदं चैतच्छीतपित्ते समाचरेत् ॥ ५ ॥ सगुडं दी-
प्यकं यस्तु खादेत्पथ्यान्नभुङ्गनरः ॥ तस्य नश्यति सप्ताहादुदरदः सर्वदेहजः
॥ ६ ॥ यवान्नीं पाययेद्वाऽपि सव्योपां क्षीरसंयुताम् ॥ पिप्पलीवर्धमानं वा
लशुनं वा प्रयोजयेत् ॥ ७ ॥ अग्निमन्थभवं मूलं पिष्टं पीतं च सर्पिषा ।
शीतपित्तोदरदकोठान्सप्ताहादेव नाशयेत् ॥ ८ ॥ निम्बस्य पत्राणि सदा घृतेन
धात्रीविमिश्राण्यथ वा प्रयुज्यात् । विस्फोटकोष्ठक्षतशीतपित्तं कण्डूक्षपित्तं
सकलं निहन्यात् ॥ ९ ॥ कुष्ठं हरिद्रे सुरसं पटोलं निम्बाश्वगन्धे सुरदारु
शिशुः । ससर्षपं तुम्बरुधान्यकं त्वक्काण्डावचूर्णानि समानि कुर्यात् ॥ १० ॥
तैस्तक्रपिष्टैः प्रथमं शरीरं तैलाक्तमुद्वर्तयितुं यतेत । तथा सकण्डूः पिटिका
सकोठा कुष्ठानि शोफश्च शमं व्रजन्ति ॥ ११ ॥ ससैन्धवेन कुष्ठेन सर्पिषा
लेपमाचरेत् । सुरसास्त्रसैर्वाऽथ लेपयेत्परमौषधम् ॥ १२ ॥ सिद्धार्थरजनी-
कुष्ठप्रमुत्राटितैः सह । कटुतैलेन संमिश्रमेतदुद्वर्तनं हितम् ॥ १३ ॥ शीत-
पित्त उदरे च तथा कोठाभिधे गदे । कृमिदद्रुहरः कार्यः शीतपित्तेऽखिलः
क्रमः ॥ १४ ॥ स्निग्धस्निग्धस्य संशुद्धिमादौ कोष्ठे समाचरेत् । ततः कुष्ठहरः
सर्वो विधेयो विधिरादरात् ॥ १५ ॥ अथ पथ्यापथ्यम्—शालिसुदृकुल-
त्थांश्च कारवेल्लमुपोदिकाम् । वेत्राग्रं तप्तनीरं च पित्तश्लेष्महराणि च ॥ १ ॥
शीतपित्तोदरदकोठरोगिणां पथ्यमीरितम् । स्नानमातपमम्लं च गुर्वन्नं च वि-
वर्जयेत् ॥ २ ॥ इति शीतपित्तादिचिकित्सा ।

अथाम्लपित्तनिदानम् ।

अथ तस्य संप्राप्तिमाह—विरुद्धदुष्टाम्लविदाहिपित्तप्रकोपिपानान्नभुजो
विदग्धम् । पित्तं स्वहेतूपचितं पुरा यत्तदम्लपित्तं प्रवदन्ति सन्तः ॥ १ ॥
अथ तस्य लिङ्गमाह—अविपाककृमोत्क्लेशतिकांम्लोद्गारगौरवैः । हृत्कण्ठ-
दाहारुचिभ्राम्लपित्तं वदेद्भिषक् ॥ २ ॥ अथ तस्य कदाचिद्धोगति-
माह—तृडदाहमूर्छाभ्रममोहकारि प्रयात्यधो वा विविधप्रकारम् । हृत्लास-
कोठानलसादहर्षस्वेदाङ्गपीतत्वकरं कदाचित् ॥ ३ ॥ अथ कदाचिद्धूर्ध्वग-
तिमाह—वातं हरिपीतकनीलकृष्णमारुक्तरक्ताभमतीव चाम्लम् । मांसो-
दकाभं त्वतिपिच्छिलाच्छं श्लेष्मानुयातं विविधं रसेन ॥ ४ ॥ भुक्ते विदग्धे-
ऽप्यथ वाऽप्यभुक्ते करोति तिकांम्लवमिं कदाचित् । उद्गारमेवंविधमेव कण्ठे
हृत्कुक्षिदाहं शिरसो रुजं वा ॥ ५ ॥ अथ कफपित्तजन्यमाह—करचर-
णदाहमौष्ण्यं महतीमरुचिं ज्वरं च कफपित्तम् । जनयति कण्डूमण्डलपिटि-
काचितगात्ररोगचयम् ॥ ६ ॥ रोगोऽयमम्लपित्ताख्यो यत्नात्संसाध्यते नवः ।

चिरोत्थितो भवेद्याप्यः कष्टसाध्यः स कस्यचित् ॥ ७ ॥ अथ तस्मिन्ननिलकफसंसर्गमाह—सानिलं सानिलकफं सकफं तच्च लक्षयेत् । दोषलिङ्गेन मतिमान्निभषज्जोहकरं हि तत् ॥ ८ ॥ कम्पप्रलापमूर्च्छाचिमिचिमिगात्रावसादशूलानि । तमसो दर्शनविभ्रमप्रमोहहर्षा अनिलयुते ॥ ९ ॥ अथ कफानुगतमाह—कफनिष्टीवनगौरवजडतारुचिशीतसादवमिलेपाः । दहनबलसादकण्डूनिद्राचिह्नं कफानुगते ॥ १० ॥ अथ वातश्लेष्मानुगतमाह—उभयमिदमेव चिह्नं मारुतकफसंभवे भवत्यम्ले । कटुम्ललवणरसासेवितकोपं भजत्येव । तिक्ताम्लकटुकोद्गारवमिहृत्कण्ठदाहकृत् ॥ ११ ॥ अथ कफपित्तमाह—अमो मूर्च्छाऽरुचिश्छर्दिरालस्यं च शिरोरुजा । प्रसेको मुखमाधुर्यं श्लेष्मपित्तस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥ इत्यम्लपित्तस्य निदानम् ।

अथ अम्लपित्तस्य चिकित्सा ।

अम्लपित्ते तु वमनं पटोलारिष्टवारिणा । कारयेन्मदनक्षौद्रसिन्धुयुक्तं ततो भिषक् । विरेचनं त्रिवृच्चूर्णं मधुना त्रिफलाद्रवैः ॥ १ ॥ कृतवमनविरेकस्यापि दोषोपशान्तिर्भवति न यदि कार्यो रक्तमोक्षश्च युक्त्या । कृतशिशिरविलेपस्याम्लपित्तघ्नभक्ष्यौदनसमुदितवृत्तेर्वातरक्षा च कार्या ॥ २ ॥ अथ लक्ष्मणोत्सवात्—ज्वलन्तमिव चाऽऽत्मानं मन्यते योऽम्लपित्तवान् । तस्य संशोधनं पूर्वं कार्यं पश्चाच्च भेषजम् ॥ १ ॥ पूर्वं तु वमनं कार्यं पश्चान्मृदु विरेचनम् । कृतवान्तिविरेकस्य सुस्निग्धस्यानुवासनम् ॥ २ ॥ आस्थापनं चिरोत्थेऽस्मिन्देयं दोषाद्यपेक्षया । दोषसंसर्गजे कार्यमौषधाहारकल्पनम् ॥ ३ ॥ ऊर्ध्वदेहस्थितं वान्त्याऽप्यधःस्थं रेचनैर्हरेत् । पाचनं तिक्तबहलं पथ्यं च परिकल्पयेत् ॥ ४ ॥ विकारान्यवगोधूमकृतांस्तीक्ष्णविवर्जितान् । भक्षयेद्वाजसक्तूंश्च सिताक्षौद्रयुतान्पिबेत् ॥ ५ ॥ अथ वृन्दात्—अम्लपित्ते प्रयोक्तव्यः कफपित्तहरो विधिः । गुडकूष्माण्डकं चैव तथा खण्डामलक्यपि ॥ १ ॥ गुडक्षीरकणासिद्धं सर्पिरत्र प्रयोजयेत् । सवाते सविबन्धेऽस्मिन्निहता कंसहरीतकी ॥ २ ॥

अथ काथाः—

यवकृष्णापटोलानां काथं क्षौद्रयुतं पिबेत् । नाशयेदम्लपित्तं च ह्यरुचिं च वमिं तथा ॥ १ ॥ निस्तुपयववृषधत्रीकाथं त्रिसुगन्धिमधुयुतं पीत्वा । अपहरति चाम्लपित्तं यदि भुङ्क्ते मुद्गयूपेण ॥ २ ॥ गुडूचीचित्रकारिष्टपटोलैः कथितं पिबेत् । क्षौद्रयुक्तं निहन्त्येतच्छर्दिं पित्ताम्लसंभवाम् ॥ ३ ॥ भूनिम्बत्रिफलापटोलवासामृतापर्पटमार्कवाणाम् । काथो हरेत्क्षौद्रयुतोऽम्लपित्तं चित्तं यथा वारवधूकटाक्षः ॥ ४ ॥ पटोलत्रिफलानिम्बकाथं क्षौद्रयुतं पिबेत् । अम्लपित्तं हरेच्छर्दिदाहशूलकफान्वितम् ॥ ५ ॥ कण्टकार्यमृतावा-

साकषायं मधुसंयुतम् । अम्लपित्तं जयेत्पीत्वा श्वासं कासं वमिं ज्वरम् ॥६॥
चित्रकैरण्डमूलानि यवाश्च सयवासकाः । जलेन कथितं पीतं कोष्ठदाहाम्ल-
पित्तजित् ॥ ७ ॥

अथैलादिचूर्णम्—एलातुगाचोचशिवाभयानां सप्रन्थिपाटीरदलालुका-
नाम् । चूर्णं सितातुल्यमपाकरोति प्रौढाम्लपित्तं दिवसास्यभुक्तम् ॥ १ ॥
अथ त्रिकटुकाद्यं चूर्णं लेहश्च—त्रिकटुकसकण्टकारीपर्पटवारिकुटजबी-
जानाम् । सौराष्ट्रिकापटोलीत्रायन्तीदारुमूर्वाणाम् ॥ १ ॥ तित्तामृणालमल-
यजकलिङ्गकैलाकिराततित्कानाम् । सवचातिविषाकेसरदीप्यकमधुशिग्रुबीजा-
नाम् ॥ २ ॥ चूर्णं पटवृष्टमिदं पीतं शिशिरेण वारिणा प्रातः । क्षौद्रेण चाथ
लीढं प्रायेणाधोगतं हन्ति । अतिविषममम्लपित्तं पथ्यभुजो वासैरैः कैश्चित्
॥ ३ ॥ अथ द्राक्षादिगुटिका—द्राक्षापथ्ये समे कृत्वा तयोस्तुल्यां सितां
क्षिपेत् । संकुट्याक्षद्वयमितां तत्पिण्डीं कारयेद्विपक् ॥ १ ॥ तां खादेदम्ल-
पित्तातो हृत्कण्ठदहनापहाम् । तृणमूर्छाभ्रममन्दाग्निनाशिनीमामवातहाम्
॥ २ ॥ अथाभयाद्यवलेहः—अभया पिप्पली द्राक्षा सिता धन्वयवास-
कम् । मधुना कण्ठहृद्दाहमूर्छाश्लेष्माम्लपित्तनुत् ॥ १ ॥

अथ खण्डपिप्पल्यवलेहो योगरत्नावल्याः—पिप्पल्याः कुडवं चूर्णं
शृतस्य कूडवद्वयम् । पलपोडशकं खण्डाच्छतावर्याः पलाष्टकम् ॥ १ ॥ शि-
वायाः स्वरसस्यापि पलपोडशकं मतम् । क्षीरप्रस्थद्वये साध्ये लेहीभूतेऽत्र
निक्षिपेत् ॥ २ ॥ त्रिजातकाभयाजाजीधान्यमुस्तशिवातुगाः । एतेषां कार्पिकं
चूर्णं कर्षाधिं कृष्णजीरकम् ॥ ३ ॥ नागरं नागकं जातीफलं समरिचं हिमम् ।
दत्त्वा पलत्रयं क्षौद्रं स्त्रिधभाण्डे विनिक्षिपेत् ॥ ४ ॥ प्रातर्यथाबलं लिह्या-
दम्लपित्तप्रशान्तये । हृल्लासारोचकच्छर्दिपिपासादाहनाशनम् । शूलहृद्रोग-
शमनं हृद्यं चेदं रसायनम् ॥ ५ ॥

अथ नारिकेलखण्डपाको योगरत्नावल्याः—कुडवमितमिह स्यान्नारि-
केलं सुपिष्टं पलपरिमितसर्पिःपाचितं तुल्यखण्डम् । निजपयसि तदेतत्प्रस्थ-
मात्रे विपक्वं कुडवमथ सुशीते शाणमात्रं क्षिपेच्च ॥ १ ॥ धान्याकपिप्पलिप-
योदतुगाद्विजीरैः साकं त्रिजातमिभकेसरवद्विचूर्ण्य । हन्त्यम्लपित्तमरुचिं क्ष-
यमसपित्तं शूलं वमिं सकलपौरुषकारि पुंसाम् ॥ २ ॥ अथ गुडाद्यो मो-
दकः—गुडपिप्पलिपथ्याभिस्तुल्याभिर्मोदकः कृतः । पित्तश्लेष्महरः प्रोक्तो
मन्दाग्नित्वं च नाशयेत् ॥ १ ॥ अथ खण्डकूष्माण्डः—कूष्माण्डस्य रसो
ग्राह्यः पलानां शतमात्रकः । रसतुल्यं गवां क्षीरं धात्रीचूर्णं पलाष्टकम् ॥ १ ॥
लघ्वग्निना पचेत्तावद्यावद्भवति पिण्डितम् । धात्रीतुल्या सिता योज्या पलार्धं
लेहयेदनु । खण्डकूष्माण्डकं ख्यातमम्लपित्तं नियच्छति ॥ २ ॥ अथ मधु-

पिप्पल्यादियोगः—पिप्पली मधुसंयुक्ता अम्लपित्तविनाशिनी । जम्बीर-स्वरसः पीतः सार्यं हन्यम्लपित्तकम् ॥ १ ॥

अथ पिप्पलीघृतम्—पिप्पलीकाथकलकेन घृतं सिद्धं मधुघृतम् । पि-
बेत्प्रातः समुत्थाय अम्लपित्तनिवृत्तये ॥ १ ॥ **अथ द्राक्षादिघृतम्**—द्रा-
क्षाभयाशकपटोलपत्रैः सोशीरधात्रीयवचन्दनैश्च । त्रायन्तिकापद्मकिरात-
धान्यैः कल्कैः पचेत्सर्पिरूपेतमेभिः ॥ १ ॥ भुञ्जीत मात्रां सह भोजनेन सर्वं
तु पाने ह्यमृतोपमं च ॥ २ ॥ **अथ शतावरीघृतम्**—शतावरीमूलकलके
घृतं प्रस्थं पयःसमम् । पचेन्मृद्वग्निना सम्यक्क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ १ ॥
नाशयेदम्लपित्तं च वातपित्तोद्भवान्गदान् । रक्तपित्तं तृपां मूर्छां श्वासं संता-
पमेव च ॥ २ ॥ **अथ नारायणघृतम्**—जले दशगुणे काथ्यं पिप्पलीनां
पलाष्टकम् । पादशेषं हरेत्काथं काथतुल्यं घृतं क्षिपेत् ॥ १ ॥ अम्लपित्तहरं
श्रेष्ठं घृतं नारायणं महत् । गुडक्षीरकणासिद्धं सर्पिश्चात्रापि योजयेत् ॥ २ ॥

अथ रसा आरभ्यन्ते ।

तत्राऽऽदौ लीलाविलासो रसः—शुद्धसूतं समं गन्धं मृतताम्राभ्र-
रोचनम् । तुल्यांशं मर्दयेद्यामं रुद्ध्वा लघुपुटे पचेत् ॥ १ ॥ अक्षधात्रीहरी-
तकीः क्रमवृद्ध्या विपाचयेत् । जलेनाष्टगुणेनैव ग्राह्यमष्टावशेषकम् ॥ २ ॥
अनेन भावयेत्पूर्वं पक्वसूतं पुनः पुनः । पञ्चविंशतिवारं च तावता भृङ्गज-
द्रवैः ॥ ३ ॥ शुष्कं तच्चूर्णितं खादेत्पञ्चगुञ्जमधुघृतम् । रसो लीलाविलासो-
ऽयमम्लपित्तं नियच्छति ॥ ४ ॥ इति लीलाविलासो रसो वृन्दात् ।

अथ रसामृतम्—त्रिकटु त्रिफला मुस्ता विडङ्गश्चित्रकं तथा । गुपां
संचूर्णितानां तु प्रत्येकं तु पलं भवेत् ॥ १ ॥ कर्पद्वयं गन्धकस्य तदर्धं पार-
दस्य च । बिडालपदमात्रं तु लिह्यात्तन्मधुसर्पिणा ॥ २ ॥ शीतोदकं चातु
पिबेत्क्रमाद्गन्धं पयस्तथा । अम्लपित्तमग्निमान्द्यं परिणामरुजं तथा । कामलां
पाण्डुरोगं च हन्यादेतद्रसामृतम् ॥ ३ ॥ इति रसामृतम् ।

अथ सूतशेखररसः सारसंग्रहात्—शुद्धं सूतं मृतं स्वर्णं टङ्कणं व-
त्सनागकम् । व्योषमुन्मत्तबीजं च गन्धकं ताम्रभस्मकम् ॥ १ ॥ चातुर्जातं
शङ्खभस्म बिल्वमज्जा कचोरकम् । सर्वं समं क्षिपेत्खल्वे मर्द्यं भृङ्गरसैर्दिनम्
॥ २ ॥ गुञ्जामात्रां वटीं कृत्वा द्विगुञ्जे मधुसर्पिणी । भक्षयेदम्लपित्तघ्नो वा-
न्तिशूलामयापहः ॥ ३ ॥ पञ्च गुल्मान्पञ्च कासान्ग्रहण्यामयनाशनः । त्रि-
दोषोत्थातिसारघ्नः श्वासमन्दाग्निनाशनः ॥ ४ ॥ उग्रहिक्कामुदावर्तं देहयाप्य-
गदापहः । मण्डलान्नात्र संदेहः सर्वरोगहरः परः । राजयक्ष्महरः साक्षाद्र-
सोऽयं सूतशेखरः ॥ ५ ॥ इति सूतशेखरो रसः ।

अथ पथ्यापथ्यम्—

यवगोधूममुद्गाश्च पुराणा रक्तशालयः । जलानि तप्तशीतानि शर्करा मधु

सक्तवः ॥ १ ॥ कर्कोटकं कारवेलं रम्भापुष्पं च वास्तुकम् । वेत्राग्रं वृद्धकृष्माण्डं पटोलं दाडिमं तथा ॥ २ ॥ पानान्नानि समस्तानि कफपित्तहराणि च । अम्लपित्तामये नित्यं सेवितव्यानि मानवैः ॥ ३ ॥ वमिवेगं तिलान्माषान्कुलत्थांस्तिलभक्षणम् । अविदुग्धं च धान्याम्लं लवणाम्लकटूनि च । गुर्वन्नं दधि मद्यं च वर्जयेदम्लपित्तवान् ॥ ४ ॥ इत्यम्लपित्तचिकित्सा ।

अथ विसर्पनिदानमाह ।

अथ तस्य संप्राप्तिमाह—लवणाम्लकटूष्णादिसंसेवादोषकोपतः । विसर्पः सप्तधा ज्ञेयः सर्वतः परिसर्पणात् ॥ १ ॥ अथ तस्य संख्यामाह—वातिकः पैत्तिकश्चैव कफजः सांनिपातिकः । चत्वार एते वीसर्पा वक्ष्यन्ते द्वंद्वजास्त्रयः ॥ २ ॥ आग्नेयो वातपित्ताभ्यां ग्रन्थ्याख्यः कफवातजः । यस्तु कर्दमको घोरः स पित्तकफसंभवः ॥ ३ ॥ रक्तं लसीका त्वङ्मांसं दूष्यं दोषास्त्रयो मलाः । विसर्पाणां समुत्पत्तौ विज्ञेयाः सप्त धातवः ॥ ४ ॥ अथ तत्र वातिकमाह—तत्र वातात्परीसर्पो वातज्वरसमव्यथः । शोफस्फुरणनिस्तोदभेदायामार्तिहर्षवान् ॥ ५ ॥ अथ पैत्तिकमाह—पित्ताद्द्रुतगतिः पित्तज्वरलिङ्गोऽतिलोहितः ॥ अथ कफजमाह—कफात्कण्डूयुतः स्निग्धः कफज्वरसमानरुक् ॥ ६ ॥ अथ सांनिपातिकमाह—संनिपातसमुत्थश्च सर्वलिङ्गसमन्वितः ॥ स चात्रान्तर्बहिर्भेदाद्विसर्पः पठितो द्विधा ॥ ७ ॥ मर्मोपतापात्संमोहादयनानां विघट्टनात् ॥ तृष्णादियोगाद्वेगानां विषमं च प्रवर्तनात् ॥ ८ ॥ विद्याद्विसर्पमन्तर्जमाशु चाग्निबलक्षयात् । अतो विसर्पणाद्वाह्यमन्यं विद्यात्सुलक्षणैः ॥ ९ ॥ अथ द्वंद्वजमाह—वातपित्ताज्वरच्छर्दिमूर्छातीसारतृड्भ्रमैः । अस्थिभेदाग्निसदनतमकारोचकैर्युतः ॥ १० ॥ करोति सर्वमङ्गं च दीप्ताङ्गारावकीर्णवत् । यं यं देशं विसर्पश्च विसर्पति भवेत्स सः ॥ ११ ॥ शान्ताङ्गारासितो नीलो रक्तो वाऽऽशु च चीयते । अग्निदग्ध इव स्फोटैः शीघ्रगत्वाद्द्रुतं च सः ॥ १२ ॥ मर्मानुसारी वीसर्पः स्याद्वातोऽतिबलस्ततः । व्यथेताङ्गं हरेत्संज्ञां निद्रां च श्वासमीरयेत् ॥ १३ ॥ हिध्मां च सगतोऽवस्थामीदृशीं लभते न ना । क्वचिच्छर्मा रतिग्रन्तो भूमिशय्यासनादिषु ॥ १४ ॥ चेष्टमानस्ततः क्लिष्टो मनोदेहश्रमोद्धवाम् । दुष्प्रबोधोऽश्रुते निद्रां सोऽग्निवीसर्प उच्यते ॥ १५ ॥ अथ कफमारुतजग्रन्थिविसर्पमाह—कफेन रुद्धः पवनो भित्त्वा तं बहुधा कफम् । रक्तं वा वृद्धरक्तस्य त्वक्शिरास्त्रायुमांसगम् ॥ १६ ॥ दूषयित्वा च दीर्घाणुवृत्तस्थूलखरात्मनाम् । ग्रन्थीनां कुरुते मालां रक्तानां तीव्ररुग्ज्वराम् ॥ १७ ॥ श्वासकासास्यवैरस्यशोषहिध्मावभिभ्रमैः । मोहवैवर्ण्यमूर्छाङ्गभङ्गाग्निसदनैर्युताम् ॥ १८ ॥ इत्ययं ग्रन्थिवीसर्पः कफमारुतकोपजः ॥ अथ कफपित्तात्मककर्दमविसर्पमाह—कफ-

पित्ताज्वरः स्तम्भो निद्रा तन्द्रा शिरोरुजा ॥ १९ ॥ अङ्गावसादविक्षेपप्रला-
पारोचकभ्रमाः ॥ मूर्छाग्निहानिर्भेदोऽस्त्रां पिपासेन्द्रियगौरवम् ॥ २० ॥ आ-
मोपवेशनं लेपः स्रोतसां स च सर्पति ॥ प्रायेणाऽऽमाशयं गृह्णन्नेकदेशं न
चातिरूक् ॥ २१ ॥ पिटकैरवकीर्णोऽतिपीतलोहितपाण्डुरैः ॥ स्निग्धोऽसितो
मेचकाभो मलिनः शोथवान्गुरुः ॥ २२ ॥ गम्भीरपाकः प्राज्योष्मा स्पृष्टः
क्लिन्नोऽवदीर्यते ॥ पङ्कवच्छीर्णमांसश्च स्पटस्त्रायुशिरागणः ॥ २३ ॥ शव-
गन्धिः स वीसर्पः कर्दमाख्यमुशन्ति तम् । अशिकर्दमको घोरः स पित्तकफ-
संभवः ॥ २४ ॥ क्षतजमाह—बाह्यहेतोः क्षतात्कुन्धः सरक्तं पित्तमीरयेत् ।
विसर्पमास्तुः कुर्यात्कुलत्थसदृशैश्चितम् । स्फोटैः शोथज्वररुजादाहाढ्यं श्या-
वलोहितम् ॥ २५ ॥ अथ विसर्पोपद्रवानाह—ज्वरातिसारवमथुत्वङ्मां-
सदरणकुमाः । अरोचकाविपाकौ च विसर्पाणामुपद्रवाः ॥ २६ ॥ अथ सा-
ध्यासाध्यमाह—सिध्यन्ति वातकफपित्तकृता विसर्पाः सर्वात्मकः क्षत-
कृतश्च न सिद्धिमेति । पित्तात्मकोऽञ्जनवपुश्च भवेदसाध्यः कृच्छ्राच्च मर्मसु
भवन्ति हि सर्व एव ॥ २७ ॥

इति विसर्पनिदानम् ।

अथ विसर्पचिकित्सा ।

पूर्वमेव विसर्पेषु कुर्याल्लङ्घनरूक्षणे । विरेकवमनालेपसेचनासृग्विमोक्षणैः ॥
उपाचरेद्यथादोषं विसर्पानविदाहिभिः ॥ १ ॥ अथ विरेचनम्—त्रिफला-
रससंयुक्तं सर्पिस्त्रिवृतया सह । प्रयोक्तव्यं विरेकार्थं विसर्पज्वरशान्तये ॥
त्रिवृद्धरीतकीभिर्वा विसर्पे शोधनं हितम् ॥ १ ॥ अथ वमनम्—पटोल-
पिचुमन्दाभ्यां पिप्पल्या मदनेन वा । विसर्पे वमनं शस्तं तथा चेन्द्रियवैः
सह ॥ १ ॥ श्लेष्मिकेऽत्र वमिः कार्या पूर्वं रेचनकं ततः । मदनं मधुकं नि-
म्बवत्सकस्य फलानि च ॥ एतैर्वमिर्विधातव्या विसर्पे कफसंभवे ॥ २ ॥

अथ लेपाः—

रास्त्रा नीलोत्पलं दारु चन्दनं मधुकं बला । पिप्वाऽऽज्यक्षीरवांलेपो वातवी-
सर्पनाशनः ॥ १ ॥ प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठापद्मकोशीरचन्दनैः । सयष्टीन्दीवरैःपैत्ते
क्षीरपिष्टैः प्रलेपनम् ॥ २ ॥ कसेरुशृङ्गाटकपद्मगुञ्जाः सशैवलाः सोत्पलकर्द-
माश्च । वस्त्रान्तराः पित्तकृते विसर्पे लेपा विधेयाः सधृताः सुशीताः ॥ ३ ॥
गायत्रीसप्तपर्णाब्दवासारवधदारुभिः । कुटत्रोटैर्भवेलेपो विसर्पे श्लेष्मसंभवे
॥ ४ ॥ त्रिफलापद्मकोशीरसमङ्गाकरवीरकम् । नलमूलमनन्ता च लेपः श्ले-
ष्मविसर्पहा ॥ ५ ॥ सर्पिपा शतधौतेन कृतो लेपो मुहुर्मुहुः । निहन्ति सर्ववी-
सर्पं सर्पं पतगराडिव ॥ ६ ॥ अथ दशाङ्गलेपः—शिरिषयष्टीनतचन्दनै-
लामांसीहरिद्राद्वयकुष्ठवालैः । लेपो दशाङ्गः सधृतः प्रयोज्यो विसर्पकुष्ठवण-

शोथहारी ॥ १ ॥ अथ मांस्यादिलेपः—मांसी सर्जरसो लोघ्नं मधुकं सह-
रेणुकम् । मूर्वा नीलोत्पलं पद्मं शिरीषकुसुमानि च ॥ एतैः प्रदेहः कथितो
वह्निवीसर्पनाशनः ॥ १ ॥ शतधौतघृतविमिश्रः कल्कस्त्वक्पञ्चकस्य लेपेन ।
बहुदाहकरमुच्चैरग्निसर्पं विनाशयति ॥ २ ॥ न्यग्रोधपादो गुञ्जा च कदली-
गर्भ एव च । एतैर्ग्रन्थिविसर्पघ्नो लेपो धौताज्यसंयुतः ॥ ३ ॥ शतधौतघृ-
तोन्मिश्रः शिरीषत्वग्रजःकृतः । लेपः शमयति क्षिप्रं विसर्पं कर्दमाभिधम् ॥
॥ ४ ॥ इति लेपाः ।

अथ काथाः

कनीयःपञ्चमूलस्य यववल्कलकस्य वा । कषायः पित्तवीसर्पे पाने सेकेऽपि
शस्यते ॥ १ ॥ अथ पटोलादिः—कुलकवृषकिरातारिष्टतिकाक्षपथ्यामल-
कमलयजानां कौशिकाढ्यः कषायः । सकलगदसमुत्थं हन्ति वीसर्पमुग्रं ज्व-
रवमिविषदाहभ्रान्तिवृष्णारुजाभिः ॥ १ ॥ अथ गुडूच्यादिः—अमृतवृष-
पटोलं निम्बकल्कैरुपेतं त्रिफलखदिरसारं व्याधिघातं च तुल्यम् । कथितमि-
दमशेषं गुग्गुलोः पादयुक्तं हरति विषविसर्पान्कुष्ठसंघातमाशु ॥ १ ॥ इति
वृन्दात् । अथ भूनिम्बाद्यः—भूनिम्बवासाकटुकापटोलं फलत्रिकं चन्दन-
निम्बसिद्धः । विसर्पदाहज्वरशोफकण्डूविस्फोटवृष्णावमिनुत्कषायः ॥ १ ॥
अथ दुरालभादिः—दुरालभा पर्पटकं गुडूची विश्वभेषजम् । निशापर्युपितं
दद्यात्तृष्णावीसर्पशान्तये ॥ १ ॥ अथ द्वितीयः पटोलादिर्वृन्दात्—पटोलं
पिचुमन्दं च दावीं कटुकरोहिणीम् । यष्टयाह्नं त्रायमाणां च दद्याद्वीसर्प-
शान्तये ॥ १ ॥ अथ मुस्तादिः—मुस्तारिष्टपटोलानां काथः सर्वविसर्पनुत् ।
धात्रीपटोलमुद्गानामथवा घृतसंयुतः ॥ १ ॥ इति काथाः ॥

अथ घृतानि ।

तत्राऽऽदौ गौराद्यं सर्पिः—द्वे हरिद्वे स्थिरा मूर्वा सारिवा चन्दनद्व-
यम् । मधुकं मधुपर्णी च पञ्चकं पञ्चकेसरम् ॥ १ ॥ उशीरमुत्पलं मेदा त्रि-
फला पञ्चवल्कलम् । कल्कैरक्षसमैरेभिर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २ ॥ विषवी-
सर्पविस्फोटकीटलूताव्रणापहम् । गौराद्यमिति विख्यातं सर्पिः श्लेष्ममरुत्प्रणु-
त् ॥ ३ ॥ अथ वृषादिसर्पिः—वृषखदिरपटोलपत्रनिम्बैः समममृतामल-
कीकषायकल्कैः । घृतमभिनवमेतदाशु पक्वं जयति सदाऽस्रविसर्पकुष्ठगुल्मान्
॥ १ ॥ अथ दूर्वादिसर्पिः—दूर्वावटोदुम्बरजम्बुसालससच्छदाश्वत्थकषाय-
कल्कैः । सिद्धं विसर्पज्वरदाहपाकविस्फोटशोफान्विनहिहन्ति सर्पिः ॥ १ ॥
इति घृतानि ॥

अथ करञ्जादितैलम्—करञ्जससच्छदलाङ्गलीकास्तुत्यर्कदुग्धानलभृङ्ग-

राजैः । तैलं निशामूत्रविपैर्विपक्वं विसर्पविस्फोटविचर्चिकाघ्नम् ॥ १ ॥ अथ-
मज्जिष्ठाभया—मज्जिष्ठा कुटजो मुस्ता गुडूची रजनीद्वयम् । कण्टकारी वचा
शुण्ठी कुष्ठारिष्टपटोलकम् ॥ १ ॥ नागीविडङ्गका माची मोरटा प्लक्षदारुकम् ।
कलिङ्गभृङ्गत्रायन्तीपाठाकाश्मीरिका बलिः ॥ २ ॥ गायत्री त्रिफला तिक्ता
सारिवा नक्तमालकः । वासोशीरमहावृक्षसोमराजीप्रियंगुकाः ॥ ३ ॥ चन्दनं
पर्पटानन्ताविशालात्रिवृता जलम् । कटुत्रिकं खुरासानं पलमेकं पृथक्पृथक् ॥
॥ ४ ॥ द्वाविंशतिपलां पथ्यां जलद्रोणे विपाचयेत् । अष्टावशेषः कर्तव्यः का-
थः सन्निषजा ततः ॥ ५ ॥ वस्त्रपूता शिवा कार्या तीक्ष्णलोहेन वेधयेत् ।
मधुमध्ये विनिक्षिप्य दिनत्रिःसप्तसंख्यया ॥ ६ ॥ विनष्टं मधु संत्यज्य मधु
श्रेष्ठं पुनः क्षिपेत् । ततः सुखादसंपन्नां प्रभाते भक्षयेच्छिवाम् ॥ ७ ॥ विस-
र्पान्नाशयेत्सर्वान्कुष्ठान्यष्टादशापि च । खुडं पामां च कण्डूं च दद्रुविस्फोटवि-
द्रधीन् ॥ अन्यांस्त्वरदोषजान्गोमांस्तथा रक्तसमुद्भवान् ॥ ८ ॥ इति मज्जि-
ष्ठाभया ॥ त्रिदोषघ्नीं क्रियां कुर्याद्विसर्पे द्वंद्वसंभवे । रसायनानि कुष्ठेषु सर्पा-
णि काथनानि च । चूर्णादीन्यपि सर्वाणि विसर्पेष्वपि तान्यलम् ॥ १ ॥

अथ पथ्यापथ्यम्

विरेको वमनं लेपो लङ्घनं रक्तमोक्षणम् । पुराणयवगोधूमकङ्कुपष्टिकशा-
लयः । मुद्गा मसूराश्चणकास्तुवर्यो जाङ्गलो रसः ॥ १ ॥ नवनीतं घृतं द्राक्षा
दाडिमं कारवेल्लकम् । वेत्राग्रं कुलकं धात्री खदिरो नागकेसरम् ॥ २ ॥ द्रा-
क्षा शिरीषकर्पूरं चन्दनं तिललेपनम् । यथादोषं पथ्यमिदं सेवितव्यं विस-
र्पिभिः ॥ ३ ॥ व्यायाममहि शयनं सुरतं प्रवातं क्रोधं शुचं वमनवेगविधा-
रणं च । गुर्वन्नपानमखिलं लशुनं कुलित्थान्मापांस्तिलान्सकलमांसमजाङ्गलं
च ॥ स्वेदं विदाहिलवणाम्लकटूनि मद्यमर्कप्रभामपि विसर्पगदी त्यजेच्च ॥ ४ ॥
इति पथ्यापथ्यम्

इति विसर्परोगचिकित्सा ॥

अथ विस्फोटनिदानम् ।

कटुम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरुक्षक्षारैरजीर्णाध्यशनातपैश्च । तथर्तुदोषेण विप-
र्ययैश्च कुप्यन्ति दोषाः पवनादयस्तु ॥ १ ॥ त्वचमाश्रित्य ते रक्तमांसास्थीनि
प्रदूष्य च । घोरान्कुर्वन्ति विस्फोटान्सर्वाञ्ज्वरपुरःसरान् ॥ २ ॥ अथ तेषां
रूपमाह—अग्निदग्धनिभाः स्फोटाः सज्वरा रक्तपित्तजाः । क्वचित्सर्वत्र वा
देहे विस्फोटा इति संस्मृताः ॥ ३ ॥ अथ वातिकमाह—शिरोरुक्शूलभू-
यिष्ठज्वरतृट्पर्वभेदनम् । सकृष्णवर्णता चेति वातविस्फोटलक्षणम् ॥ ४ ॥
अथ पैत्तिकमाह—ज्वरदाहरुजास्त्रावपाकतृष्णाभिरन्वितम् । पीतलोहित-

वर्णं च पित्तविस्फोटलक्षणम् ॥ ५ ॥ अथ श्लैष्मिकमाह—छर्द्यरोचकजा-
ड्यानि कण्डूकाठिन्यपाण्डुताः । अवेदनश्चिरात्पाकी स विस्फोटः कफात्मकः ॥
॥ ६ ॥ अथ कफपैत्तिकमाह—कण्डूर्दाहो ज्वरश्छर्दिरेतैस्तु कफपैत्तिकः
॥ ७ ॥ अथ वातपित्तजमाह—वातपित्तकृतो यस्तु कुरुते तीव्रवेदनाम् ॥
अथ कफवातिकमाह—कण्डूस्त्रैमित्यगुरुभिर्जानीयात्कफवातिकम् ॥ ८ ॥
अथ त्रिदोषजमाह—मध्ये निश्चोन्नतोऽन्ते च कठिनोऽल्पप्रपाकवान् ।
दाहरोगतृपामोहच्छर्दिमूर्छास्त्रयो ज्वरः । प्रलापो वेपथुस्तन्द्रा सोऽसाध्यस्तु
त्रिदोषजः ॥ ९ ॥ अथ रक्तजमाह—रक्ता रक्तसमुत्थाना गुञ्जाविद्रुमसं-
निभाः । वेदितव्यास्तु रक्तेन पैत्तिकेन च हेतुना ॥ १० ॥ न ते सिद्धिं समा-
यान्ति सिद्धैर्योगवरैरपि । एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः ॥
॥ ११ ॥ सर्वरूपान्वितो योरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ॥ १२ ॥ हिक्का श्वासोऽ-
रुचिस्तृष्णा चाङ्गमर्दो हृदि व्यथा । विसर्पज्वरहृल्लासविस्फोटानामुपद्रवाः ॥
॥ १३ ॥ इति विस्फोटनिदानम् ॥

अथ विस्फोटचिकित्सा ।

तत्राऽऽदौ लङ्घनं कार्यं वमनं पथ्यभोजनम् । यथादोषं बलं वीक्ष्य प्रो-
क्तं युक्तं च रेचनम् ॥ १ ॥ अथ काथाः । तत्राऽऽदौ द्विपञ्चमूलादिः—
द्विपञ्चमूलीं रास्त्रां च दार्व्युशीरं दुरालभाम् । सामृतं धान्यकं मुस्तां काथ-
यित्वा शृतं पिबेत् । विस्फोटं वातसंभूतं निहन्त्येतन्न संशयः ॥ १ ॥ अथ
द्राक्षादिः—द्राक्षाकाशमर्थखर्जूरपटोलारिष्टवासकैः । कटुकालाजदुःस्पशैः
काथः शर्करया युतः । विस्फोटं पित्तजं हन्ति सोपद्रवमसंशयम् ॥ १ ॥ अथ
भूनिम्बादिः—भूनिम्बनिम्बवासाश्च त्रिफलेन्द्रयवासकाः । पित्तमन्दः प-
टोली च काथमेपां सशर्करम् । पीत्वा विमुच्यते नूनं कफविस्फोटकान्नरः ॥
॥ १ ॥ अथ द्वादशाङ्गः—किराततिक्तकारिष्ठयष्ट्याह्वाम्बुदर्पपटैः । पटोल-
वासकोशीरत्रिफलाकौटजेः शृतम् ॥ १ ॥ द्वादशाङ्गं नरः पीत्वा विस्फोटेभ्यो
विमुच्यते । द्वंद्वजेभ्यस्त्रिदोषोत्थाद्रक्तजाच्च हिताशनः ॥ २ ॥ अथामृतादि-
काथः—अमृतवृषपटोलं मुस्तकं सप्तपर्णं खदिरमसितवेत्रं निम्बपत्रं हरिद्रे ।
शृतमिति स विसर्पान्कुष्ठविस्फोटकण्डूरपनयति मसूरीं शीतपित्तज्वरं च ॥
॥ १ ॥ अथ पटोलादिवृन्दात्—पटोलामृतभूनिम्बवासारिष्टकर्पटैः । ख-
दिराब्दयुतैः काथो विस्फोटज्वरशान्तये ॥ १ ॥ अथ निम्बादिः—निम्बत्व-
क्खादिरः सारो गुडूचीशुक्रजोऽथ वा । काथो माक्षिकसंयुक्तो विस्फोटादि-
ज्वरापहः ॥ १ ॥ अथ भूनिम्बादिश्चिकित्सासारात्—भूनिम्बवासाक-
टुकापटोलं फलत्रिकं चन्दननिम्बसिद्धः । विसर्पदाहज्वरशोककण्डूविस्फोट
तृष्णावमिनुत्कपायः ॥ १ ॥ इति काथाः ॥

अथ पद्मकं घृतम्—पद्मकं मधुकं लोभ्रं नागपुष्पस्य केशरम् । हरिद्रे
द्वे विडङ्गानि सूक्ष्मैला तगरं तथा ॥ १ ॥ कुष्ठं लाक्षा पत्रकं च सिक्थकं
तुथमेव च । तोयेनाऽऽलोढ्य तत्सर्वं घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २ ॥ यांश्च
रोगान्निह्न्याद्दि तान्निबोध महामुने । सर्पकीटाखुदष्टेषु नाडीदुष्टविसर्पिषु
॥ ३ ॥ विविधेऽपि च विस्फोटे लूतामूत्रक्षतेषु च । नाडीषु गण्डमालासु
प्रभिन्नासु विशेषतः ॥ आस्तीकविहितं धन्यं पद्मकं तु महद्घृतम् ॥ ४ ॥
अथ पञ्चतिकं घृतम्—पटोलसप्तच्छदनिम्बवासाफलत्रिकच्छिन्नरुहाविप-
कम् । तत्पञ्चतिकं घृतमाशु हन्याद्दिदोपविस्फोटविसर्पकण्डूः ॥ १ ॥ अथ
चन्दनादिलेपः—चन्दनं नागपुष्पं च तण्डुलीयकवारिणा । शिरीषवल्कलं
जाती लेपः स्याद्वाहनाशनः ॥ १ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

क्षुधिते लङ्घिते वान्ते जीर्णशालियवादिभिः । मुद्गाढकीमसूराणां रसैर्वा
विश्वस्युतैः ॥ १ ॥ सुनिषण्णकवेत्राग्रतण्डुलीयकठिलकैः । कुलकाभीरुकैरे-
भिः सपर्पटसतीनकैः ॥ २ ॥ टङ्कारवेल्लैः कुसुमैर्निम्बपल्लवविल्वजैः । तिक्त
यूपसमायुक्तैर्भोजनं संप्रयोजयेत् ॥ ३ ॥ तिलान्मापान्कुलित्थांश्च लवणा-
म्लकटूनि च । विदाहि रुक्षमुष्णं च विस्फोटी परिवर्जयेत् ॥ ४ ॥ इति
विस्फोटचिकित्सा ।

अथ स्नायुकनिदानम् ।

पूर्वरूपमाह—शाखासु कुपितो दोषः शोथं कृत्वा विसर्पवत् । भिनत्ति
तत्क्षते तत्र सोष्मा स्नायुं विशोष्य च ॥ १ ॥ कुर्यात्तन्तुनिभं जीवं वृत्तं
श्वेतद्युतिं बहिः । शनैः शनैः क्षताद्याति छेदात्कोपमुपैति सः ॥ २ ॥ तत्पा-
ताच्छोफशान्तिः स्यात्पुनः स्थानान्तरे भवेत् । स स्नायुकेति विख्यातः क्रियो-
क्ता तु विसर्पवत् ॥ ३ ॥ बाह्वोर्यदि प्रमादेन जङ्घयोस्त्रुव्यति क्वचित् ।
संकोचं खञ्जतां चैव च्छिन्नतन्तुः करोत्यसौ ॥ ४ ॥ वातेन श्यावरुक्षः सरु-
गथ दहनाग्नीलीपीतः सदाहोऽथ श्वेतः श्लेष्मणा स्यात्पृथुगारिमयुतोऽथ द्विदो-
षो द्विलिङ्गी । रक्तेनाऽऽरक्तकान्तिः समधिकदहनोऽथाखिलैः सर्वलिङ्गो रोगोऽ
सावष्टधेत्यं मुनिभिरभिहितः स्नायुकस्तन्तुकीटः ॥ ५ ॥ इति स्नायुकनि-
दानम् ॥

अथ स्नायुकचिकित्सा ।

स्नेहस्वेदप्रलेपादि कर्म कुर्याद्यथामलम् । अहिंस्त्रामूलगोमूत्रकल्कालेपस्तु
वातजे ॥ १ ॥ पञ्चवल्कलकल्केन हितो लेपोऽत्र पित्तजे । श्लेष्मजे स्नायुके लेपः
प्रशस्तः काञ्चनारजः ॥ २ ॥ तद्वाभ्यां द्वंद्वजे लेपः सर्वैस्तैः सर्वजे हितः । रक्तजे स्नायुके
लेपो वटप्लक्षत्वचो हितः । विसर्पोक्ताः क्रियाः सर्वाः स्नायुके तु हितामताः ॥ ३ ॥

इति सारसंग्रहात्। अथ बबूलबीजादिलेपः—बबूलबीजं गोमूत्रपिष्टं हन्ति
 प्रलेपनात् । स्नायुकानि समस्तानि सशोथानि सरुजि च ॥ १ ॥ अथ शिशुमू-
 लादिलेपः—शिशुमूलदलैः पिष्टैः काञ्जिकेन ससेन्धवैः। लेपः स्नायुकरोगाणां
 शमनः परमः स्मृतः ॥ १ ॥ सुधया सह लोणारं जलेनाऽऽलोढ्य लेपयेत् ।
 अनेन तु प्रयोगेण त्रिदिनादेव नश्यति ॥ २ ॥ पातालगरुडीमूलं पिबेत्स्ना-
 युक्नाशनम् । तिलपिण्याकलेपो वा ह्यारनालेन पेपितः ॥ ३ ॥ तत्रेण वा-
 ऽथ तैलेन ह्यश्वगन्धां प्रलेपयेत् । श्वेतविष्णुकान्तया वा शिशुमूलेन वा पुनः
 ॥ ४ ॥ पुंमूत्रैः काञ्चनीं पिष्ट्वा लेपः स्नायुकजिह्ववेत् । वार्ताकमूलं पुंमूत्रैः
 पत्रैर्वाऽश्वत्थजैश्च वा । सुतप्तैर्बन्धयेच्छीघ्रं शमयेत्स्नायुकं गदम् ॥ ५ ॥ इति
 सुश्रुतात् । अथ रामठादियोगः—रामठं टङ्कणं क्षारं प्रत्येकं शाणसंमितम् ।
 चूर्णयित्वा सप्तदिनं खादेत्संध्याद्वये नरः । अनेन योगराजेन स्नायुको नश्यति
 ध्रुवम् ॥ १ ॥ अथातिविषाद्यं चूर्णम्—अतिविषमुस्तकभार्गीविश्वौषध-
 पिप्पलीबिभीतानाम् । चूर्णं तन्तुकृमिघ्नं पुंसामुष्णेन वारिणा पीतम् ॥ १ ॥
 अथ कुष्ठादिकल्कः—कुष्ठरामठशुण्ठीभिः कल्कं शिशुसमन्वितम् । पान-
 लेपनयोगेन तन्तुकीटविनाशनम् ॥ १ ॥ गव्यं सर्पिरुयहं पीत्वा निर्गुण्डी-
 स्वरसं व्यहम् । पीत्वा स्नायुकमत्युग्रं हन्त्यवश्यं न संशयः ॥ २ ॥ मूलं
 सुपत्र्या हिमवारिपिष्टं पानादिनान्ते तु गदं प्रचण्डम् । शान्तिं नयेत्सव्रण-
 माशु पुंसां गन्धर्वगन्धश्च घृतेन पीतः ॥ ३ ॥ पारावतपुरीषस्य मधुना
 कल्कितस्य च । गिलिता गुटिका हन्ति स्नायुकामयमुद्धतम् ॥ ४ ॥ निम्ब-
 शम्याकजात्यर्कसप्तपर्णाश्वमारकाः । क्रिमिघ्ना मूत्रसंयुक्ताः सेकलेपनधावनैः
 ॥ ५ ॥ वृन्ताकं भर्जितं भाण्डे कृत्वा दक्षा सहोपरि बन्धयेत्स्नायुको बहिः
 प्रतति । एवं सप्तदिनं कार्यम् । । शणबीजचूर्णं भागमेकं गोधूमपिष्टं
 भागमेकं द्वयमेकीकृत्य घृतेन पक्तव्यं गुडेन भक्षयेत् । एवं त्रिदिनं कार्यं
 स्नायुको नश्यति । इति स्नायुकचिकित्सा ॥

अथ मसूरिकानिदानमाह ।

तत्राऽदौ तत्संप्राप्तिमाह—कटुम्ललवणक्षारविरुद्धाध्यशनाशनैः । दु-
 ष्टनिष्पावशाकाद्यैः प्रदुष्टैः पवनोदकैः ॥ १ ॥ कुष्ठग्रहेक्षणाद्वाऽपि देहे दोषाः
 समुद्धताः । जनयन्ति शरीरेऽस्मिन्दुष्टरक्तेन संगताः । मसूराकृतिसंस्थानाः
 पिटिकाः स्युर्मसूरिकाः ॥ २ ॥ अथ तासां पूर्वरूपमाह—तासां पूर्वं
 ज्वरः कण्डूर्गात्रभङ्गोऽरुचिर्भ्रमः । त्वचि शोथः सवैवर्ण्यो नेत्ररोगस्तथैव च
 ॥ ३ ॥ अथ वातजामाह—स्फोटः कृष्णारुणा रूक्षास्तीव्रवेदनयाऽन्विताः ।
 कठिनाश्चिरपाकाश्च भवन्त्यनिलसंभवाः ॥ ४ ॥ संध्यस्थिपर्वणां भेदः कास-
 कम्पारतिभ्रमाः । शोथस्ताल्वोष्ठजिह्वानां नृणां चारुचिसंयुता ॥ ५ ॥

पित्तजामाह—रक्ताः पीताः सिताः स्फोटाः सदाहास्तीव्रवेदनाः । मृदवोऽ-
चिरपाकाश्च पित्तकोपसमुद्भवाः ॥ ६ ॥ विड्भेदश्चाङ्गमर्दश्च दाहस्तृष्णाऽरुचि-
स्तथा । मुखपाकोऽक्षिपाकश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः ॥ ७ ॥ रक्तजामाह—
रक्तजायां भवन्त्येते विकाराः पित्तलक्षणाः । अथ कफजामाह—कफप्र-
सेकः सैमित्यं शिरोरुग्गात्रगौरवम् ॥ ८ ॥ हृल्लासश्चारुचिर्निद्रा तन्द्राऽऽल-
स्यसमन्विता । श्वेताः स्निग्धा भृशं स्थूलाः कण्डूरा मन्दवेदनाः । मसूरिकाः
कफोत्थाश्च चिरपाकाः प्रकीर्तिताः ॥ ९ ॥ अथ संनिपातजामाह—नीला-
श्चिपिटविस्तीर्णा मध्ये निम्ना महारुजाः । प्रभूताश्चिरपाकाश्च पूतिस्त्रावास्त्रि-
दोषजाः ॥ १० ॥ चर्मपिटिकामाह—कण्ठरोधोऽरुचिस्तन्द्राप्रलापारुचि-
संयुता । दुश्चिकित्स्याः समुद्दिष्टाः पिटिकाश्चर्मसंज्ञिताः ॥ ११ ॥ रोमांति-
काआह—रोमकूपोन्नतिसमा रागिण्यः कफपित्तजाः । कासारोचकसंयुक्ता
रोमान्त्यो ज्वरपूर्विकाः ॥ १२ ॥

अथ सप्तधातुगताः ।

तत्र रसजाः—तोयबुद्बुदसंकाशास्त्वग्गतास्तु मसूरिकाः । स्वल्पदोषाः
प्रजायन्ते भिन्नास्तोयं स्रवन्ति च ॥ १ ॥ अथ रक्तजामाह—रक्तस्था लो-
हिताकाराः शीघ्रपाकास्तनुत्वचः । साध्या नात्यर्थदुष्टाश्च भिन्ना रक्तं स्रवन्ति
च ॥ २ ॥ अथ मांसस्थामाह—मांसस्थाः कठिनाः स्निग्धाश्चिरपाकास्तनुत्वचः ।
गात्रशूलोऽरतिः कण्ठतृष्णाज्वरसमन्विताः ॥ ३ ॥ मेदोगतामाह—मेदोजा
मण्डलाकारा मृदवः किञ्चिदुन्नताः । घोरज्वरपरीताश्च स्थूलाः स्निग्धाः सवे-
दनाः ॥ संमोहारतिसंतापाः कश्चिदाभ्यो विनिस्तरेत् ॥ ४ ॥ अस्थिमज्जाग-
तामाह—क्षुद्रा गात्रसमा रूक्षाश्चिपिटाः किञ्चिदुन्नताः । मज्जोत्था भृशसं-
मोहवेदनारतिसंयुताः ॥ ५ ॥ छिन्दन्ति मर्मधामानि प्राणानाशु हरन्ति च ।
अमरेणेव विद्धानि कुर्वन्त्यस्थीनि सर्वतः ॥ ६ ॥ अथ शुक्रगतामाह—
पक्वाभाः पिटिकाः स्निग्धाः श्लक्ष्णाश्चात्यर्थवेदनाः । सैमित्यारतिसंमोहदाहो-
न्मादसमन्विताः ॥ ७ ॥ शुक्रजायां मसूर्यां तु लक्षणानि भवन्ति हि । नि-
र्दिष्टं केवलं चिह्नं दृश्यते न तु जीवितम् ॥ ८ ॥ इति सप्तधातुगताः ॥

साध्यासाध्यत्वमाह ।

दोषमिश्राश्च सप्तेता द्रष्टव्या दोषलक्षणैः । त्वग्गता रक्तजाश्चैव पित्तजाः
श्लेष्मजास्तथा ॥ १ ॥ श्लेष्मपित्तकृताश्चैव सुखसाध्या मसूरिकाः । एता विना-
ऽपि क्रियया प्रशाम्यन्ति शरीरिणाम् ॥ २ ॥ वातजा वातपित्तोत्थाः श्लेष्म-
वातकृताश्च याः । कृच्छ्रसाध्या मतास्तस्माद्यत्नादेता उपाचरेत् ॥ ३ ॥ अतो-

ऽन्यास्तु विनिर्दिष्टा यास्तु सम्यक्क्रियां विना । न सिध्यन्ति यतस्तस्मात्ता-
स्तु यत्नादुपाचरेत् ॥ ४ ॥ असाध्याः संनिपातोत्थास्तासां वक्ष्यामि लक्षणम् ।
प्रवालसदृशाः काश्चित्काश्चिजम्बूफलोपमाः ॥ ५ ॥ लोहजालनिभाः काश्चिदतसी-
फलसंनिभाः । आसां बहुविधा वर्णा जायन्ते दोषभेदतः ॥ ६ ॥ कासो हिक्का
प्रमोहश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः । प्रलापश्चरतिर्मूर्छा तृष्णा दाहोऽतिघूर्णता
॥ ७ ॥ मुखेन प्रसवेद्रक्तं तथा घ्राणेन चक्षुषा । कण्ठे घुर्घुरकं कृत्वा श्वसि-
त्यत्यर्थदारुणम् ॥ ८ ॥ मसूरिकाभिभूतस्य यस्यैतानि भिषग्वरः । लक्षणा-
नीह दृश्यन्ते न दद्यात्तत्र भेषजम् ॥ ९ ॥ मसूरिकाभिभूतो यो भृशं घ्राणे-
न निःश्वसेत् । स भृशं त्यजति प्राणांस्तृष्णातौ वायुदूषितः ॥ १० ॥ मसूरि-
कान्ते शोथः स्यात्कूर्परे मणिबन्धके । तथाऽसफलके वाऽपि दुश्चिकित्स्यः
सुदारुणः ॥ ११ ॥

इति मसूरिकानिदानम् ।

अथ मसूरिकाचिकित्सामाह ।

मसूरिकायां कुष्ठोक्ता लेपनादिक्रिया हिता । पित्तश्लेष्मविसर्पोक्ता क्रिया
वाऽत्र प्रशस्यते ॥ १ ॥ सर्वासां वमनं पूर्वं पटोलारिष्टवासकैः । कपायश्च
वचावत्सयष्ट्याह्वफलकल्कितैः ॥ २ ॥ सक्षौद्रं पाययेद्ब्राह्मीरसं वा हिलमो-
चकम् । वान्तस्य रेचनं देयं शमनं त्वबले नरे ॥ उभाभ्यां हृतदोषस्य विशु-
ष्यन्ति मसूरिकाः ॥ ३ ॥ अथ वेणुत्वगादिधूपः—वेणुत्वक्सुरसालाक्षा-
कार्पासास्थिमसूरिकाः । यवपिष्टं विपं सर्पिर्वचा ब्राह्मी सुवर्चला ॥ १ ॥
धूपनार्थं यथालाभं धूपमेनं प्रयोजयेत् । आदावयं प्रयोक्तव्यो नश्यन्त्यस्मा-
न्मसूरिकाः ॥ न गृह्णन्ति विपं केचिद्यथालाभं श्रुतेरिह ॥ २ ॥ अथ श्वेत-
चन्दनादिः—श्वेतचन्दनकल्काढ्यं हिलमोचाभवं द्रवम् । पिबेन्मसूरिका-
रम्भे नैम्बं वा केवलं रसम् ॥ १ ॥ गुडूची मधुकं द्राक्षा मोरटं दाडिमैः
सह । पाककाले प्रदातव्यं भेषजं गुडसंयुतम् ॥ तेन कुप्यति नो वायुः
पाकं यान्ति मसूरिकाः ॥ २ ॥ अथ बृहत्पटोलादिकाथः—पटोलं सारि-
वा मुस्तं पाठा कटुकरोहिणी । खदिरः पिचुमन्दश्च बला धात्री विकङ्कतः ॥
एषां कपायपानं तु हन्ति वातमसूरिकाम् ॥ १ ॥ अथ दशमूलादिः—द्वे
पञ्चमूल्यौ रास्त्रा च धान्युशीरं दुरालभा । सामृतं धान्यकं मुस्तं जयेद्वात-
मसूरिकाम् ॥ १ ॥ अथ न्यग्रोधदिलेपः—न्यग्रोधप्लक्ष्मज्जिष्ठाशिरीषो-
दुम्बरत्वचाम् । ससर्पिष्कं मसूर्यां तु वातजायां प्रलेपनम् ॥ १ ॥ शोधनं
पित्तजायां न कार्यं वैद्येन जानता । तत्राऽऽदौ तर्पणं कार्यं लाजाचूर्णैः सशर्करैः
॥ २ ॥ आदावेव मसूर्यां तु पित्तजायां प्रयोजयेत् । निम्बादिकथितं तेन
प्रशाम्यति मसूरिका ॥ ३ ॥ तद्यथा—निम्बः पर्पटकं पाठा पटोलं चन्द-

नद्वयम् । वासा दुरालभा धात्री सेव्यं कटुकरोहिणी ॥ ४ ॥ एतेषां कथितं
 शीतं सितया मधुरीकृतम् । मसूरिकां पित्तकृतां हन्ति रक्तोत्तरामपि ॥ ५ ॥
 अथ द्राक्षादिः—द्राक्षाकाशमर्यखर्जूरपटोलारिष्टवासकैः । लाजामलकदु-
 स्पशैः कथितं शर्करान्वितम् ॥ मसूरिकां पित्तकृतां रक्तजां च विनाशयेत्
 ॥ १ ॥ अथ पञ्चमूलादिकाथः—बृहतः पञ्चमूलस्य वृषपत्रयुतस्य च ।
 कषायः शमयेत्पीतः कफोत्थां तु मसूरिकाम् ॥ १ ॥ वृषपत्ररसं दद्यात्पा-
 नार्थं मधुसंयुतम् । कफजायां मसूर्यां तु कठिनायां विशेषतः ॥ २ ॥ खदि-
 रारिष्टपत्रैश्च शिरीषोदुम्बरत्वचाम् । कुर्याल्लेपं कफोत्थायां मसूर्यां भिषगुत्तमः
 ॥ ३ ॥ अथ दुरालभादिः—दुरालभा पर्पटकं पटोलं कटुरोहिणी । पिबे-
 न्मसूर्यामेतेषां काथं पित्तकफात्मनि ॥ अथ गुडूच्यादिः—गुडूचीपर्पटा-
 नन्ताकटुकाकथितं पिबेत् । वातपित्तमसूर्यां तु घोरोपद्रवभाजि च ॥ १ ॥
 अथ नागरादिः—नागरमुस्तगुडूचीधान्यकभार्गीवृषैः कृतः काथः । वात-
 श्लेष्ममसूरीं दूरीकुरुतेऽनुपानतः सत्यम् ॥ १ ॥ अथ निम्बादिकाथः—
 निम्बः पर्पटकं पाठा पटोलं कटुरोहिणी । वासा दुरालभा धात्री ससेव्यं
 चन्दनद्वयम् ॥ १ ॥ एष निम्बादिकः काथः पीतः शर्करयाऽन्वितः । मसूरीं
 सर्वजां हन्ति ज्वरवीसर्पसंयुताम् ॥ २ ॥ अथ काञ्चनारादिकाथः—काञ्च-
 नारत्वचकाथस्ताप्यचूर्णावचूर्णितः । निर्गल्यान्तः प्रविष्टां तु मसूरीं बाह्यतो
 नयेत् ॥ १ ॥ अथ पटोलादिः—पटोलकुण्डलीमुस्तावृषधन्वयवासकैः ।
 भूनिम्बनिम्बकटुकापर्पटैश्च शृतं जलम् ॥ १ ॥ मसूरीं शमयेदामां पक्वां चैव विशो-
 धयेत् । नातः परतरं किञ्चिच्छीतलाज्वरशान्तये ॥ २ ॥ दाहे ज्वरे विसर्पे च
 व्रणे पित्ताधिकेऽपि च । मसूर्यो रक्तजा नाशं यान्ति शोणितमोक्षणैः ॥ ३ ॥
 धात्रीफलं समधुकं कथितं मधुसंयुतम् । मुखे कण्ठे व्रणे जाते गण्डूपार्थं प्रशस्यते
 ॥ ४ ॥ अक्ष्णोः सेकं प्रशंसन्ति गवेधुमधुकाम्बुना । मधुकं त्रिफला मूर्वा दा-
 र्चित्वङ्गनीलमुत्पलम् ॥ ५ ॥ उशीरलोध्रमज्जिष्ठाः प्रलेपाश्चोतने हिताः । नश्य-
 न्यनेन दृग्जाता मसूर्यो न भवन्ति च ॥ ६ ॥ अथाञ्जनम्—शम्बूकमांस-
 स्वरसेन नेत्रे समञ्जयेत्तेन मसूरिकाभ्यः । न जायते तत्र भयं भवन्ति नैताः
 प्रजातास्तु शर्मं प्रयान्ति ॥ १ ॥ इत्यञ्जनम् । प्रलेपं चक्षुषोर्दद्याद्बहुवारस्य
 वल्कलैः । पञ्चवल्कलचूर्णेन क्लेदिनीमवधूलयेत् ॥ १ ॥ भस्मना केचिदिच्छन्ति
 केचिद्भोमयरेणुना । निम्बातिमुक्तकास्फोताबिम्बीवेतसवल्कलम् ॥ २ ॥ शृत-
 शीतं प्रयोक्तव्यं मसूरीव्रणधावने । रालहिङ्गुरसोनैश्च धूपयेत्ता मसूरिकाः ।
 कृमयो न पतन्त्यत्र जाताः शाम्यन्ति ते लघु ॥ ३ ॥

अथ मसूरिकाभेदस्य शीतलाया अधिकारः ।

तत्र शीतलाया रूपमाह—भावप्रकाशात्—देव्या शीतलया क्रान्ता

मंसूर्येव हि शीतला । ज्वर एव यथा भूताधिष्ठितो विषमज्वरः ॥ १ ॥
 सा च सप्तविधा ख्याता तासां भेदान्प्रचक्षमहे । ज्वरपूर्वा बृहत्स्फोटैः शीत-
 ला बृहती भवेत् ॥ २ ॥ सप्ताहान्निःसरत्येषा सप्ताहात्पूर्णतां व्रजेत् । ततस्तृ-
 तीये सप्ताहे शुष्यति स्खलति त्वचम् ॥ ३ ॥ तासां मध्ये यदा काश्चित्पाकं
 गत्वा स्रवन्ति च । तत्रावधूलनं कुर्याद्वनगोमयभस्मना ॥ ४ ॥ निम्बसत्प-
 त्रशाखाभिर्मक्षिकामपसारयेत् । जलं च शीतलं दद्याज्ज्वरेऽपि न तु तप्तक-
 म् ॥ ५ ॥ स्वापयेत्तं स्थले पूते रम्ये रहसि शीतले । नाशुचिः संस्पृशेत्तं तु
 न च तस्यान्तिकं व्रजेत् ॥ ६ ॥ बहवो भिषजो नात्र भेषजं योजयन्ति हि ।
 केचित्प्रयोजयन्त्येव मतं तेषामथो ब्रुवे ॥ ७ ॥ ये शीतलेन सलिलेन विपि-
 प्य सम्यक्चिञ्चोत्थबीजसहितां रजनीं पिबन्ति । तेषां भवन्ति न कदाचिद-
 पीह देहे पीडाकरो जगति शीतलिकाविकारः ॥ ८ ॥ मोचारसेन सहितं
 सितचन्दनं ये वासारसेन मधुकं मधुकेन वाऽथ । आदौ पिबन्ति सुमना-
 स्वरसेन मिश्रं ते नाऽऽप्नुवन्ति भुवि शीतलिकाविकारम् ॥ ९ ॥ शीतलासु
 क्रिया कार्या शीतला रक्षया सह । बध्नीयान्निम्बपत्राणि परितो भवनान्तरे
 ॥ १० ॥ कदाचिदपि नो कार्यमस्पृश्यस्य प्रवेशनम् । स्फोटेष्वधिकदाहेषु रक्षा-
 रेणूत्करो हितः ॥ ११ ॥ तेन ते शोपमायान्ति प्रकोपं न भजन्ति च । च-
 न्दनं वासको मुस्तं गुडूची द्राक्षया सह । एषां शीतकपायस्तु शीतलाज्वर-
 नाशनः ॥ १२ ॥ जपहोमोपहारैश्च दानस्वस्त्ययनार्चनैः । विप्रगोशंभुगौरी-
 णां पूजनैस्ताः शमं नयेत् ॥ १३ ॥ स्तोत्रं च शीतलादेव्याः पठेच्छीतलिनोऽ-
 न्तिके । ब्राह्मणः श्रद्धया युक्तस्तेन शाम्यन्ति शीतलाः ॥ १४ ॥ अथ शीत-
 लाया भेदानाह—कफमारुतसंभूतः कोद्रवो नामतो गदः । अपाकः कोद्र-
 वाकारः सूचीनिस्तोदकारकः ॥ १ ॥ जलशूक इवाङ्गेषु विध्यतीव विशेषतः ।
 सप्ताहाद्वा दशाहाद्वा शान्तिं याति विनौषधैः ॥ २ ॥ यदि वा भेषजं दद्यात्खदिरा-
 ष्टकनिर्मितम् । कपायं हि तदा दद्यात्कोद्रवस्य प्रशान्तये ॥ ३ ॥ खदिरत्रिफ-
 लानिम्बपटोलामृतवासकः । अष्टकोऽयं जयेत्कुष्ठकण्डूविस्फोटकानि च ॥ ४ ॥
 विसर्पपामाकिटिभं शीतपित्तमसूरिके । काश्चिद्विनाऽपि यत्नेन सुखं सिध्य-
 न्ति शीतलाः ॥ ५ ॥ दुष्टाः कष्टतराः काश्चित्काश्चित्सिध्यन्ति वा न वा ।
 काश्चिन्नैव तु सिध्यन्ति यत्नतोऽपि चिकित्सिताः ॥ ६ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

जीर्णाः पष्टिकशालयोऽपि चणका मुद्गा मसूरा यवाः सर्वेऽपि प्रतुदाः कपो-
 तचटकापृष्ट्याह्वादात्यूहकाः । कर्कोटं कदलं च शिमु कुलकं द्राक्षाफलं दाडि-
 मं मेध्यं बृंहणमन्नपानमखिलं कोलानि मांसो रसः ॥ १ ॥ अक्ष्णोः सेकवि-
 धौ गवेधुमधुकोद्भूतं सुशीतोदकं शम्बूकोदरकोशनीरमपि वा कर्पूरचूर्णानि
 वा । पक्वो मुद्गरसोऽपि जाङ्गलरसः शालिश्च शाकं घृतं धूपो गोमयभस्मगु-

ण्ठनमयो शेषा व्रणोक्तक्रियाः ॥ २ ॥ इत्थं सर्वदृशा विभागविहितं पथ्यं
यथादोषतः संयुक्तं मुदमातनोति नितरां नृणां मसूरीगदे ॥ ३ ॥ वातं स्वेदं
श्रमं तैलं गुर्वन्नं क्रोधमातपम् । कटुम्लं वेगरोधं च मसूरीगदवांस्यजेत्
॥ ४ ॥ इति मसूरिकाविकित्सा ।

अथ क्षुद्ररोगनिदानम् ।

ते समासेन चतुश्चत्वारिंशत्क्षुद्ररोगा भवन्ति तद्यथा, अथाजगल्लिका—
स्त्रिधा सवर्णा ग्रथिता नीरुजा मुद्गसन्निभा । कफवातोत्थिता ज्ञेया बाला-
नामजगल्लिका ॥ १ ॥ अथ यवप्रख्यामाह—यवाकारा सुकठिना ग्रथि-
ता मांससंश्रिता । पिटिका श्लेष्मवाताभ्यां यवप्रख्येति सोच्यते ॥ २ ॥
अथान्धालजीमाह—वनामवक्त्रां पिटिकामुन्नतां परिमण्डलाम् । अन्धा-
लजीमल्पपूयां तां विद्यात्कफवातजाम् ॥ ३ ॥ अथ विवृत्तामाह—विवृ-
त्तास्यां महादाहां पक्वोदुम्बरसंनिभाम् । विवृत्तामिति तां विद्यात्पित्तोत्थां
परिमण्डलाम् ॥ ४ ॥ अथ कच्छपिकामाह—ग्रथिताः पञ्च वा षड् वा
दारुणाः कच्छपोन्नताः । कफानिलाभ्यां संभूता ज्ञेयाः कच्छपिका बुधैः ॥ ५ ॥
अथ वल्मीकमाह—ग्रीवांसकक्षाकरपाददेशे संधौ गले वा त्रिभिरेव दो-
षैः । ग्रन्थिः सवल्मीकवदक्रियाणां जातः क्रमेणैव गतः स वृद्धिम् ॥ ६ ॥
मुखैरनेकैः स्तुतितोदवद्भिर्विसर्पवत्सर्पति चोन्नताग्रैः । वल्मीकमाहुर्भिषजो
विकारं निष्प्रत्यनीकं चिरजं विशेषात् ॥ ७ ॥ अथेन्द्रवृद्धामाह—पद्मक-
र्णिकवन्मध्ये पिटिकां पिटिकाचिताम् । इन्द्रवृद्धां तु तां विद्याद्वातपित्तोत्थि-
तां भिषक् ॥ ८ ॥ अथ गर्दभिकामाह—मण्डलं वृत्तमुत्सन्नं सरक्तं पि-
टिकाचितम् । रुजाकरीं गर्दभिकां तां विद्याद्वातपित्तजाम् ॥ ९ ॥ अथ पा-
षाणगर्दभमाह—वातश्लेष्मसमुद्भूतः श्वयथुर्हनुसंधिजः । स्थिरो मन्दरु-
जः स्त्रिगधो ज्ञेयः पाषाणगर्दभः ॥ १० ॥ अथ पनसिकालक्षणमाह—
कर्णस्याभ्यन्तरे जातां पिटिकामुग्रवेदनाम् । स्थिरां पनसिकां तां तु विद्या-
दन्तःप्रपाकिनीम् ॥ ११ ॥ अथ जालगर्दभमाह—विसर्पवत्सर्पति यः
शोफस्तनुरपाकवान् । दाहज्वरकरः पित्तात्स ज्ञेयो जालगर्दभः ॥ १२ ॥
अथेरिवेल्लिकामाह—पिटिकामुत्तमाङ्गस्थां वृत्तामुग्ररुजाज्वराम् । सर्वा-
त्मिकां सर्वलिङ्गां जानीयादिरिवेल्लिकाम् ॥ १३ ॥ अथ कक्षागन्धनाम्योर्लक्षण-
माह—बाहुकक्षांसपार्श्वेषु कृष्णस्फोटोऽसवेदनाम् । पित्तप्रकोपसंभूतां कक्षा-
मिति विनिर्दिशेत् ॥ १४ ॥ एकामेतादृशीं दृष्ट्वा पिटिकां स्फोटसंनिभाम् ।
त्वग्गतां पित्तकोपेन गन्धनाग्नीं प्रचक्षते ॥ १५ ॥ अथाग्निरोहिणीलक्ष-
णमाह—कक्षाभागेषु ये स्फोटा जायन्ते मांसदारुणाः । अन्तर्दाहज्वरकरा
दीप्तपावकसंनिभाः ॥ १६ ॥ सप्ताहाद्वा दशाहाद्वा पक्षाद्वा भवन्ति मानवम् ।

तामशिरोहिणीं विद्यादसाध्यां संनिपातजाम् ॥ १७ ॥ अथ चिप्यलक्षण-
माह—नखमांसमधिष्टाय वातः पित्तं च देहिनाम् । कुर्वाते दाहपाकौ च
तं व्याधिं चिप्यमादिशेत् ॥ १८ ॥ अथ कुनखस्य लक्षणमाह—अभि-
घातात्प्रदुष्टो यो नखो रूक्षासितः खरः । भवेत्तं कुनखं विद्यात्कुलीरमिति सं-
ज्ञितम् ॥ १९ ॥ अथानुशयीलक्षणमाह—गम्भीरामल्पसंरम्भां सवर्णा-
मुपरि स्थिताम् । पादस्यानुशयीं तां तु विद्यादन्तःप्रपाकिनीम् ॥ २० ॥ अथ
विदारिकालक्षणमाह—विदारीकन्दवद्धृत्ता कक्षावङ्क्षणसंधिषु । विदारि-
का भवेद्रक्ता सर्वजा सर्वलक्षणा ॥ २१ ॥ अथ शर्करार्बुदस्य लक्षण-
माह—प्राप्य मांसं शिरास्त्रायूर्मेदः श्लेष्मा तथाऽनिलः । ग्रन्थिं करोत्यसौ
भिन्नो मधुसर्पिर्वसानिभम् ॥ २२ ॥ स्रवत्यास्त्रावमत्यर्थं तत्र वृद्धिं गतोऽनिलः ।
मांसं विशोष्य ग्रथितां शर्करां जनयेत्ततः ॥ २३ ॥ दुर्गन्धिं क्लिन्नमत्यर्थं
नानावर्णं ततः शिराः । स्रवन्ति सहसा रक्तं तं विद्याच्छर्करार्बुदम् ॥ २४ ॥
अथ पाददार्या लक्षणमाह—परिक्रमणशीलस्य वायुरत्यर्थरूक्षयोः । पाद-
योः कुरुते दारिं सरुजां तलसंश्रिताम् ॥ २५ ॥ अथ कदरस्य लक्षण-
माह—शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कण्टकादिभिः । ग्रन्थिः कोलवदुत्सन्नो
जायते कदरं तु तत् ॥ २६ ॥ अथालसस्य लक्षणमाह—क्लिन्नाङ्गुल्य-
न्तरौ पादौ कण्डूदाहरुजान्वितौ । दुष्टकर्दमसंस्पर्शादलसं तं विभावयेत् ॥
॥ २७ ॥ अथेन्द्रलुप्तस्य लक्षणम्—रोमकूपानुगं पित्तं वातेन सह मूर्च्छि-
तम् । प्रच्यावयति रोमाणि ततः श्लेष्मा सशोणितः ॥ २८ ॥ रुणद्धि रोम-
कूपांस्तु ततोऽन्येषामसंभवः । तदिन्द्रलुप्तं खालिलं रुजेति च विभाव्यते
॥ २९ ॥ अथ दारुणकस्य लक्षणमाह—दारुणा कण्डुरा रूक्षा केशभूमिः
प्रजायते । कफमारुतकोपेन विद्याद्दारुणकं तु तत् ॥ ३० ॥ अथारुणिकाल-
क्षणमाह—अरुणि बहुवक्त्राणि बहुक्लेदीनि मूर्धनि । कफासृक्कृमिकोपेन
तानि विद्यादारुणिकाम् ॥ ३१ ॥ अथ पलितस्य निदानसंप्राप्तिपूर्वकं
लक्षणमाह—क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः । पित्तं च केशान्प-
चति पलितं तेन जायते ॥ ३२ ॥ वातिकं विपमं रूक्षं पीतं पित्तात्सितं क-
फात् । सर्वरूपान्वितं विद्यात्संनिपातसमुत्थितम् ॥ ३३ ॥ अथ यौवनपि-
टिकालक्षणमाह—शाल्मलीकण्टकप्रख्याः कफमारुतरक्तजाः । जायन्ते पि-
टिका यूनां विज्ञेया मुखदूषिकाः ॥ ३४ ॥ अथ पद्मिनीकण्टकमाह—
कण्टकैराचितं वृत्तं कण्डूमत्पाण्डुमण्डलम् । पद्मिनीकण्टकप्रख्यैस्तदाख्यं
कफवातजम् ॥ ३५ ॥ अथ जतुमणिमाह—सममुत्सन्नमरुजं मण्डलं क-
फरक्तजम् । सहजं लक्ष्मं चैकेपां लक्ष्यो जतुमणिस्तु सः ॥ ३६ ॥ अथा
स्य त्रिदोषजत्वं चरकेणोक्तं तद्यथा—कृष्णः स्निग्धो जतुमणिर्ज्ञेयो वातोत्त-
रैस्त्रिभिः । अरुजं त्वपरे रक्तं लक्ष्मेत्याहुर्भिषग्वराः ॥ ३७ ॥ अथ माषमा-

ह—अवेदनं स्थिरं चैव यस्मिन्गात्रे प्रदृश्यते । माषवत्कृष्णमुत्सन्नमनिला-
न्माषमादिशेत् ॥ ३८ ॥ तथा च भोजः—वातेरिते त्वचि यदा दृष्येते
कफमेदसी । श्लक्ष्णं मृदु सवर्णं च कुर्यात्तं माषकं वदेत् ॥ ३९ ॥ अथ ति-
लकालकमाह—कृष्णानि तिलमात्राणि नीरुजानि समानि च । वातपि-
त्तकफोद्वेकात्तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥ ४० ॥ अथ न्यच्छमाह—महद्वा
यदि वा चाल्पं श्यावं वा यदि वा सितम् । नीरुजं मण्डलं गात्रे न्यच्छमि-
त्यभिधीयते ॥ ४१ ॥ अथ मुखव्यङ्गस्य लक्षणमाह—क्रोधायासप्रकुपि-
तो वायुः पित्तेन संयुतः । मुखमागत्य सहसा मण्डलं विसृजत्यतः ॥ ४२ ॥
नीरुजं तनुकं श्यावं मुखव्यङ्गं तमादिशेत् ॥ अथ नीलिकामाह—कृष्णमे-
वंगुणं गात्रे मुखे वा नीलिकां विदुः ॥ ४३ ॥ अथ परिवर्तिकालक्षण-
माह—मर्दनात्पीडनाद्वाऽपि तथैवाप्यभिधाततः । मेढूचम यदा वायुर्भज-
ते सर्वतश्चरन् ॥ ४४ ॥ तदा वातोपसृष्टत्वाच्चर्मं तत्परिवर्तते । सवेदनं सदा-
हं च पाकं च व्रजति क्वचित् ॥ ४५ ॥ मणेरधस्तात्कोशस्तु ग्रन्थिरूपेण ल-
म्बते । सरुजां वातसंभूतां विद्यात्तां परिवर्तिकाम् ॥ सकण्डूः कठिना चापि
सैव श्लेष्मसमुत्थिता ॥ ४६ ॥ अथावपाटिकालक्षणमाह—अल्पीयःखां
यदा हर्षाद्विलाद्वच्छेत्स्त्रियं नरः । हस्ताभिघातादपि वा चर्मण्युद्धर्तिते बलात् ॥
॥ ४७ ॥ मर्दनात्पीडनाद्वाऽपि शुक्रवेगविधाततः । यत्रावपाट्यते चर्मं तां
विद्यादवपाटिकाम् ॥ ४८ ॥ अथ निरुद्धप्रकशस्य लक्षणमाह—वातो-
पसृष्टे मेढू वै चर्मं संश्रयते मणिम् । मणिश्चर्मावनद्धस्तु मूत्रस्रोतो रुणद्धि
च ॥ ४९ ॥ निरुद्धप्रकशे तस्मिन्मन्दधारमवेदनम् । मूत्रं प्रवर्तते जन्तोर्म-
णिर्विचित्रियते न च ॥ निरुद्धप्रकशं विद्यात्सरुजं वातसंभवम् ॥ ५० ॥ अथ
संनिरुद्धगुदस्य लक्षणमाह—वेगसंधारणाद्वायुर्विहतो गुदसंस्थितः ।
निरुणद्धि महत्त्वोतः सूक्ष्मद्वारं करोति च ॥ ५१ ॥ मार्गस्य सौक्ष्म्यात्कृच्छ्रे-
ण पुरीपं तस्य गच्छति । संनिरुद्धगुदव्याधिमेवं विद्यात्सुदुस्तरम् ॥ ५२ ॥
अथाहिपूतनस्य लक्षणमाह—शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपाने शिशोर्भवे-
त् । स्त्रिन्ने वा स्नाप्यमानेऽस्य कंडूरक्तकफोद्भवा ॥ ५३ ॥ कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं
स्फोटः स्त्रावश्च जायते । एकीभूतं व्रणं घोरं तं विद्यादहिपूतनम् ॥ ५४ ॥
अथ वृषणकच्छूलक्षणमाह—स्नानोत्सादनहीनस्य मलो वृषणसंश्रितः ।
यदा प्रकृष्टयते स्वेदात्कण्डूं जनयते तदा ॥ ५५ ॥ कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटः स्त्रा-
वश्च जायते । प्राहुर्वृषणकच्छूं तां श्लेष्मरक्तप्रकोपजाम् ॥ ५६ ॥ अथ गुद-
भ्रंशस्य लक्षणमाह—प्रवाहणातिसाराभ्यां निर्गच्छति गुदं बहिः । रुक्ष-
दुर्बलदेहस्य तं गुदभ्रंशमादिशेत् ॥ ५७ ॥ अथ सूकरदंष्ट्रस्य लक्षणमा-
ह—सदाहो रक्तपर्यन्तस्त्वक्पाकी तीव्रवेदनः । कण्डूमाञ्ज्वरकारी च स-
स्यात्सूकरदंष्ट्रकः ॥ ५८ ॥ इति शुद्धरोगनिदानम् ॥

अथातः क्षुद्ररोगचिकित्सा ।

अथाजगल्लिकाचिकित्सा—तत्राजगल्लिकामामां जलौकाभिरुपाचरेत् । शुक्तिसौराष्ट्रिकाक्षारकल्कैश्चाऽऽलेपयेन्मुहुः ॥ १ ॥ कठिनां क्षारयोगैश्च द्रावयेदजगल्लिकाम् । श्यामालाङ्गलिकामूर्वाकल्कैरपि विलेपयेत् । पक्वां व्रणविधानेन यथोक्तेन प्रसाधयेत् ॥ २ ॥ अथ यवप्रख्यान्वालीचिकित्सा—अन्वालीजीं यवप्रख्यां पूर्वं स्वेदैरुपाचरेत् । मनःशिलादेवदारुकुष्ठकल्कैः प्रलेपयेत् ॥ १ ॥ पक्वां व्रणविधानेन यथोक्तेन प्रसाधयेत् ॥ १ ॥ अथ विवृत्तेन्द्रवृद्धागर्दभिकाजालगर्दभानां चिकित्सा—विवृत्तामिन्द्रवृद्धां च गर्दभीं जालगर्दभम् । पैत्तिकस्य विसर्पस्य क्रियया साधयेद्विपक् ॥ १ ॥ पाके तु रोपयेदाज्यैः पक्कैर्मधुरभेषजैः । नीलपटोलमूलाभ्यां साज्याभ्यां लेपनं हितम् ॥ जालगर्दभरूपं तु सद्यो हन्ति सवेदनम् ॥ २ ॥ अथ कच्छपिकाचिकित्सा—कच्छपीं स्वेदयेत्पूर्वं तत एभिः प्रलेपयेत् । कल्कीकृतैर्निशाकुष्ठशिलातालकदारुभिः ॥ तां पक्वां साधयेच्छीघ्रं भिषग्व्रणचिकित्सया ॥ १ ॥ अथ वल्मीकचिकित्सा—शस्त्रेणोत्कृत्य वल्मीकं क्षाराग्निभ्यां प्रसाधयेत् । विधानेनार्तुदोक्तेन शोधयित्वा च रोपयेत् ॥ १ ॥ वल्मीकं तु भवेद्यस्य नातिवृद्धममर्मणि । तत्र संशोधनं कृत्वा शोणितं मोक्षयेद्विपक् ॥ २ ॥ कुलत्थकानां मूलैश्च गुडूच्या लवणेन च । आरग्वधस्य मूलैश्च दन्तिमूलैस्तथैव च ॥ ३ ॥ श्यामामूलैः सपल्लैः सक्तुमिश्रैः प्रलेपयेत् । सुस्निग्धैश्च सुखोष्णैश्च भिषक्तमुपनाहयेत् ॥ ४ ॥ अथ मनःशिलादितैलम्—मनःशिलाक्तभल्लातसुक्ष्मैलागुरुचन्दनैः । जातीपल्लवकल्कैश्च निम्बतैलं विपाचयेत् ॥ १ ॥ वल्मीकं नाशयेत्तद्वि बहुच्छिद्रं बहुव्रणम् । पाणिपादोपरिष्ठात्तच्छिद्रैर्बहुभिरावृतम् ॥ वल्मीकं यत्सशोफं स्याद्द्रव्यं तद्वि विजानता ॥ २ ॥ अथ पाषाणगर्दभचिकित्सा—सुरदारुशिलाकुष्ठैः स्वेदयित्वा प्रलेपयेत् । कफमारुतशोथघ्नो लेपः पापाणगर्दभे ॥ १ ॥ अथ पनसिकाचिकित्सामाह—भिषक्पनसिकां पूर्वं स्वेदनैरपतर्पणैः । जयेद्विदारिवह्नेपैः शिग्रुदेवद्रुमोद्भवैः ॥ १ ॥ अथेरिवेल्लिकाचिकित्सा—पैत्तिकस्य विसर्पस्य या चिकित्सा प्रकीर्तिता । तथैव भिषगेतां च चिकित्सेदिरिवेल्लिकाम् ॥ १ ॥ अथ कक्षागन्धनयोश्चिकित्सा—कक्षां च गन्धनां तां च चिकित्सेत चिकित्सकः । पैत्तिकस्य विसर्पस्य क्रियया पूर्वमुक्तया ॥ १ ॥ अथाग्निरोहिणीचिकित्सा—पित्तवीसर्पविधिना साधयेदग्निरोहिणीम् । रोहिण्यां लङ्घनं कुर्याद्रक्तमोक्षणरूक्षणम् ॥ १ ॥ शरीरस्य च संशुद्धिं तां तु वृद्धां परित्यजेत् ॥ २ ॥ अथ चिप्यकुनखयोश्चिकित्सा—चिप्यं रुधिरमोक्षेण शोधनेनाप्युपाचरेत् । गतोष्माणमथैनं तु सेचयेदुष्णवारिणा ॥ १ ॥ शस्त्रेणापि यथायोग्यमुच्छिद्य स्थावयेत्ततः । व्रणोक्तेन विधानेन रोपयेत्तु

विचक्षणः ॥ २ ॥ स्वरसेन हरिद्रायाः पात्रे कृत्वाऽऽयसेऽभयाम् । घृष्टा
तजेन कल्केन लिम्पेच्चिप्यं पुनः पुनः ॥ ३ ॥ काश्मर्याः सप्तभिः पत्रैः
कोमलैः परिवेष्टितः । अङ्गुलीवेष्टकः पुंसां भ्रुवमाशु प्रशाम्यति ॥ ४ ॥
श्लेष्मविद्रधिकल्पेन कुनखं समुपाचरेत् । नखकोटिप्रविष्टेन टङ्कणेन न
शाम्यति । कुनखश्चेत्तदा शैलः सलिले प्लवतेऽपि च ॥ ५ ॥ दाडिमकुसु-
मयवासैरभया सुश्लक्ष्णचूर्णिता लेपात् । नखकोटिपूतिभावं शमयति शूलं च
तत्क्षणादेव ॥ ६ ॥ अथानुशयीचिकित्सा—हरेदनुशयीं वैद्यः क्रियया
श्लेष्मविद्रधेः ॥ १ ॥ अथ विदारिकाचिकित्सा—विदारिकायां प्रथमं जलौका-
योजनं हितम् । पाटनं च विपक्वायां ततो व्रणविधिः स्मृतः । जयेद्विदारि-
कां लेपैः शिशुदेवद्रुमोज्ज्वैः ॥ १ ॥ इति वृन्दात् । अथ शर्करार्बुदस्य
चिकित्सा—मेदोर्बुदविधानेन साधयेच्छर्करार्बुदम् ॥ १ ॥ अथ पाददा-
र्याश्चिकित्सा—पाददार्यां शिरां प्राज्ञो मोक्षयेत्तलशोधिनीम् । स्नेहस्वेदो-
पपन्नौ तु पादौ वा लेपयेन्मुहुः ॥ १ ॥ मधूच्छिष्टवसामज्जाघृतैः क्षारविमि-
श्रितैः । सर्जोत्थसिन्धूद्भवयोश्चूर्णं मधुघृतप्लुतम् । निर्मथ्य कटुतैलाक्तं हितं
पादप्रमार्जने ॥ २ ॥ मधुसिक्थकसैन्धवघृतगुडमहिपाक्षशालनिर्यासैः । गै-
रिकसहितैर्लेपः पादस्फुटनापहः सिद्धः ॥ ३ ॥ उपोदिकासर्पपनिम्बमोचक-
कार्करैर्वारुकभस्मतोयैः । तैलं विपक्वं लवणेन युक्तं तत्पाददारीं विनिहन्ति
लेपात् ॥ ४ ॥ इत्युपोदकाद्यं तैलम् । मदनं च तथा सिक्थं सामुद्रलवणं
तथा । महिषीनवनीतेन संततं लेपनं हितम् ॥ १ ॥ सप्ताहात्स्फुटितौ पादौ
जायेते कमलोपमौ । सैन्धवं चन्दनं रालं मधु सर्पिः पुरो गुडः । गैरिका
स्फुटितौ पादौ लिप्तौ स्तः पङ्कजोपमौ ॥ २ ॥ मदनसैन्धवगुग्गुलुगैरिकाज्य-
मधुरालगुडांघ्रिविलेपनात् । स्फुटितमप्यखिलं चरणद्वयं विकचतामरसप्र-
तिमं भवेत् ॥ ३ ॥ अथ कदरस्य चिकित्सा—दहेत्कदरमुद्धृत्य तैलेन
दहनेन वा ॥ १ ॥ अथालसस्य चिकित्सा—पादौ सिक्त्वाऽऽरनालेन
लेपनं त्वलसे हितम् । पटोलकुनटीनिम्बरोचनामरिचैस्तिलैः ॥ १ ॥ क्षुद्रास्वरससिद्धे-
न कटुतैलेन लेपयेत् । ततः कासीसकुनटीतिलचूर्णैर्विचूर्णयेत् ॥ २ ॥ करञ्ज-
बीजरजनीकासीसं पक्वं मधु । रोचना हरितालं च लेपोऽयमलसे हितः
॥ ३ ॥ अथेन्द्रलुप्तस्य चिकित्सा—इन्द्रलुप्तापहो लेपो मधुना बृहती-
रसः । गुञ्जामूलं फलं वाऽपि भक्ष्यातकरसोऽपि वा ॥ १ ॥ लेपः सनवनीतो
वा श्वेताश्वरुजामपी । हस्तिदन्तमपीं कृत्वा छागदुग्धं रसाञ्जनम् । रोमाण्येतेन
जायन्ते लेपात्पाणितलेष्वपि ॥ २ ॥ तिक्तपटोलीपत्रस्वरसैर्घृष्टा शमं याति ।
चिरकालजाऽपि निरुजा नियतं दिवसत्रयेणैव ॥ ३ ॥ गोक्षुरस्तिलपुष्पाणि
तुल्ये च मधुसर्पिपी । शिरः प्रलेपितं तेन केशैः समुपचीयते ॥ ४ ॥ जाती-
करञ्जवरुणकरवीराग्निपाचितम् । तैलमभ्यञ्जनाद्धन्यादिन्द्रलुप्तं न संशयः

॥ ५ ॥ सुहीपयः पयोऽर्कस्य मार्कवो लाङ्गली विपम् । अजामूत्रं सगोमूत्रं रक्तिका सेन्द्रवारुणी ॥ ६ ॥ सिद्धार्थकस्तीक्ष्णगन्धा सम्यगेभिर्विपाचितम् । तैलं भवति नियमात्खालित्यव्याधिनाशनम् ॥ ७ ॥ इति सुहिदुग्धादितैलम् । अथ दारुणस्य चिकित्सा—कार्यो दारुणके मूर्ध्नि प्रलेपो मधुसंयुतः । प्रियालबीजमधुकुष्ठमापैः ससैन्धवैः ॥ १ ॥ काञ्जिकैस्तु त्रिसप्ताहं लेपो दारुणकापहः । आन्नबीजस्य चूर्णं तु शिवाचूर्णं समं द्वयम् । दुग्धपिष्टप्रलेपोऽयं दारुणं हन्ति दारुणम् ॥ २ ॥ अथ भृङ्गराजतैलम्—भृङ्गराजरसेनैव लोहकिट्टं फलत्रिकम् । सारिवां च पचेत्कल्कैस्तैलं दारुणनाशनम् । अकालपलितं कण्डूमिन्द्रलुप्तं च नाशयेत् ॥ १ ॥ अथ गुञ्जातैलम्—गुञ्जाफलैः शृतं तैलं भृङ्गराजरसेन च । कण्डूदारुणहृत्कुष्ठकपालव्याधिनाशनम् ॥ १ ॥ दुग्धेन खाखसं बीजं प्रलेपाद्दारुणं हरेत् । कण्टकारीफलरसैस्तुल्यं तैलं विपाचयेत् । जपापुष्पद्रवैर्वाऽथ तलेपो दारुणप्रणुत् ॥ २ ॥ अथारुणिकायाश्चिकित्सा—नीलोत्पलस्य किञ्जल्को धात्रीफलसमन्वितः । यष्टीमधुकुयुक्तश्च लेपाद्वन्यादरुणिकाम् ॥ १ ॥ अथ त्रिफलाद्यं तैलम्—त्रिफलाया रजो यष्टी मार्कवोत्पलसारिवा । सैन्धवं पक्वमेतैस्तु तैलं हन्यादरुणिकाम् ॥ १ ॥ अरुणिकायां रुधिरैऽवसिक्ते शिराव्यधेनाथ जलौकया वा । निम्बाम्बुसिक्ते शिरसि प्रलेपो देयश्च वर्चोरससैन्धवाभ्याम् ॥ २ ॥ पुराणमथ पिण्याकं पुरीषं कुकुटस्य च । मूत्रपिष्टः प्रलेपोऽयं शीघ्रं हन्यादरुणिकाम् ॥ ३ ॥ अथ हरिद्राद्यं तैलम्—हरिद्राद्वयभूनिम्बत्रिफलारिष्टचन्दनैः । एतत्तैलमरुणिकां सिद्धमभ्यञ्जने हितम् ॥ १ ॥ खदिरारिष्टजम्बूनां त्वरिभर्वा मूत्रसंयुतैः । कुटजत्वक्सैन्धवं वा लेपाद्वन्यादरुणिकाम् ॥ २ ॥ अथ पलितस्य चिकित्सा—अयोरजो भृङ्गराजस्त्रिफला कृष्णमृत्तिका । स्थितमिक्षुरसे मासं लेपनात्पलितं जयेत् ॥ १ ॥ धात्रीफलद्वयं पथ्ये द्वे तथैकं विभीतकम् । पञ्चाश्रमज्ञो लोहस्य कषैकं च प्रदीयते ॥ २ ॥ पिष्ट्वा लोहमये भाण्डे स्थापयेदुषितं निशि । लेपोऽयं हन्ति नचिरादकालपलितं महत् ॥ ३ ॥ निम्बस्य तैलं प्रकृतिस्थमेव नस्य विधेयं विधिना यथावत् । मासेन गोक्षीरभुजो नरस्य चिरात्प्रभूतं पलितं निहन्ति ॥ ४ ॥ काशमर्यं मूलमादौ सहचरकुसुमं केतकस्यापि मूलं लौहं चूर्णं सभृङ्गं त्रिफलजलयुतं तैलमेभिः पचेयुः । कृत्वा लोहस्य भाण्डे क्षितितलनिहितं स्थापयेन्मासमेकं केशाः काशप्रकाशा अपि मधुपनिभा अस्य योगाद्भवन्ति ॥ ५ ॥ त्रिफला नीलिकापत्रं भृङ्गराजो ह्ययोरजः । अविमूत्रेण संपिष्टं लेपात्कृष्णीकरं परम् ॥ ६ ॥ अथ यौवनपिटिकान्यच्छमुखव्यङ्गनीलिकाचिकित्सामाह—यौवनपिटिकान्यच्छनीलिकाव्यङ्गशर्कराः । शिरावधैः प्रलेपैश्च जयेदभ्यञ्जनैस्तथा ॥ १ ॥ जातीफलं चन्दनं च मरिचैः सह पेधितम् । मुखलेपेन हन्त्याशु पिटिकां यौवनोद्भवाम् ॥ २ ॥ लोध्रधान्यवचालेपस्तारुण्यपिटिकापहः । तद्वद्गोरोचनायुक्तं

मरिचं मुखलेपनात् ॥ ३ ॥ सिद्धार्थकवचालोघ्रसैन्धवैश्च प्रलेपनम् । गव्येन चार्जुनत्वग्वा मज्जिष्ठा वा समाक्षिका ॥ ४ ॥ कण्टकैः शाल्मलीयैश्च क्षीर-
पिष्टैः प्रलेपयेत् । मुखे तस्यापि पिटिकाः संक्षयं यान्त्यसंशयम् ॥ ५ ॥ त्रिभुवन-
त्रिजयापत्रं मूलं स्थविरस्य शिशपाचैभिः । उद्धर्तनं विरचितं न्यच्छव्यङ्गापहं
सिद्धम् ॥ ६ ॥ वटाङ्कुरा मसूराश्च प्रलेपाब्जङ्गनाशनाः । व्यङ्गे मज्जिष्ठया लेपः
अशस्तो मधुयुक्तया ॥ ७ ॥ व्यङ्गेषु चार्जुनत्वक्च मज्जिष्ठावृषमाक्षिकैः । लेपः
सनवनीतो वा श्वेताश्वत्थुरजा मपी ॥ ८ ॥ व्यङ्गानां लेपनं शस्तं शशस्य रुधि-
रेण वा । वरुणस्य कपायेण मुखं प्रक्षाल्य लेपयेत् ॥ ९ ॥ वटस्य पाण्डुप-
त्राणि मालती रक्तचन्दनम् । कुष्ठं कालीयकं लोघ्रमेभिर्लेपं प्रयोजयेत् ॥ १० ॥
यौवनपिटिकानां तु व्यङ्गानां च विनाशनम् । मातुलङ्गजटा सर्पिः शिला
गोशकृतो रसः ॥ ११ ॥ मुखकान्तिकरो लेपः पिटिकाव्यङ्गकालजित् । जा-
तीफलस्य लेपस्तु हरेब्जं च नीलिकाम् ॥ १२ ॥ अर्कक्षीरहरिद्राभ्यां मर्द-
यित्वा प्रलेपयेत् । मुखकाण्ठं शमं याति चिरकालोद्भवं ध्रुवम् ॥ १३ ॥
मसूरैः क्षीरसंपिष्टैर्लिप्तमास्यं घृतान्वितैः । सप्तरात्राद्भवत्स्यं पुण्डरीकदलो-
पमम् ॥ १४ ॥ अथ कुङ्कुमाद्यं तैलम्—कुङ्कुमं चन्दनं लोघ्रं पतङ्गं रक्त-
चन्दनम् । कालीयकमुशीरं च मज्जिष्ठा मधुयुष्टिका ॥ १ ॥ पत्रकं पद्मकं
पञ्चं कुष्ठं गोरोचनं निशा । लाक्षा दारुहरिद्रा च गैरिकं नागकेशरम् ॥ २ ॥
पालाशकुसुमं चापि प्रियंगुश्च वटाङ्कुराः । मालती च मधूच्छिष्टं सर्पपाः सुर-
भिर्वचा ॥ ३ ॥ चतुर्गुणपयःपिष्टैरेतैरक्षमितैः पृथक् । पचेन्मन्दाग्निना वैद्य-
स्तैलं प्रस्थद्वयोन्मितम् ॥ ४ ॥ वदनाभ्यञ्जनादेतद्ब्रजं नीलिकया सह । तिल-
कं मापकं न्यच्छं नाशयेन्मुखदूषिकाम् ॥ ५ ॥ पद्मिनीकण्टकं वाऽपि हरेज-
तुमणिं तथा । विदध्याद्द्वन्द्वं पूर्णचन्द्रमण्डलसुन्दरम् ॥ ६ ॥ इति कुङ्कुमाद्यं
तैलं भावप्रकाशात् । अथ मज्जिष्ठाद्यं तैलं योगतरङ्गिण्याः—मज्जिष्ठं
मधुकं लाक्षा मातुलिङ्गं सयष्टिकम् । कर्पप्रमाणैरेतैस्तु तैलस्य कुडवं तथा
॥ १ ॥ आजं पयस्तु द्विगुणं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् । नीलिकापिटिकाव्यङ्गान-
भ्यङ्गादेव नाशयेत् ॥ २ ॥ मुखं प्रसादोपचितं वलीपलितवर्जितम् । सप्तरात्र-
प्रयोगेण भवेत्कनकसंनिभम् ॥ ३ ॥ अथ पद्मिनीकण्टकचिकित्सा—
पद्मिनीकण्टके रोगे लर्दयेन्निम्बवारिणा । तेनैव सिद्धं सक्षौद्रं सर्पिः पातुं प्रदा-
पयेत् ॥ १ ॥ निम्बारग्वधकलकैर्वा मुहुरुद्धर्तनं हितम् । चतुर्गुणेन निम्बोत्थपत्रकाथेन
गोघृतम् ॥ २ ॥ पचेत्ततस्तु निम्बस्य कृतमालस्य पत्रजैः । कलकैर्भूयः पचेत्सिद्धं
तत्पिबेत्पलसंमितम् । पद्मिनीकण्टकाद्रोगान्मुक्तो भवति नान्यथा ॥ ३ ॥
इति निम्बादिघृतम् । अथ तिलकालकमाषजतुमणीनां चिकित्सा-
चर्मकीलं जतुमणिं माषकांस्तिलकालकान् । उत्कृत्य शस्त्रेण दहेत्क्षाराग्निभ्या-
मशेषतः ॥ १ ॥ अथ परिवर्तिकाचिकित्सामाह—स्वेदोपनाहौ परि-

वर्तिकायां कृत्वा समभ्यज्य घृतेन पश्चात् । प्रवेशयेच्चर्म शनैः प्रविष्टे माषैः सुपिष्टैरुपनाहयेत्तम् ॥ १ ॥ इति वृन्दात् । अथ भावप्रकाशात्—परिवर्ति घृताभ्यक्तां सुस्विन्नामुपनाहयेत् । त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा वातघ्नैः शाल्वणादिभिः ॥ १ ॥ ततोऽभ्यज्य शनैश्चर्म वेशयेत्पीडयेन्मणिम् । प्रविष्टे चर्मणि मणौ स्वेदयेदुपनाहयेत् । दद्याद्वातहरान्बस्तीन्निग्नधान्यन्नानि भोजयेत् ॥ २ ॥ अथावपाटिकाचिकित्सा—स्नेहस्वेदैरिमां वैद्यश्चिकित्सेदवपाटिकाम् ॥ १ ॥ अथ निरुद्धप्रकशस्य चिकित्सा—निरुद्धप्रकशे नाडीं लौहीमुभयतोमुखीम् । दारवीं वा जतुकृतां घृताक्तां संप्रवेशयेत् ॥ १ ॥ परिषिञ्चेद्वसां मज्जां शिशुमारवराहयोः । चुक्रतैलं तथा योज्यं वातघ्नद्रव्यसंयुतम् ॥ २ ॥ ज्यहात्स्थूलतरां सम्यङ्नाडीं गर्भे प्रवेशयेत् । स्रोतो विवर्धयेदेवं स्निग्धमन्नं च भोजयेत् । भित्त्वा वा सीवनीं मुक्त्वा सद्यः क्षतवदाचरेत् ॥ ३ ॥ अथ संनिरुद्धगुदस्य चिकित्सा—संनिरुद्धगुदे तैलैः सेको वातहरैर्हितः । तथा निरुद्धप्रकशक्रिया वा कथिता हिता ॥ १ ॥ अथाहिपूतनचिकित्सा—तत्र संशोधनैः पूर्वं धात्रीस्तन्यं विशोधयेत् । त्रिफलाखदिरकाथैर्व्रणानां क्षालनं हितम् ॥ १ ॥ शङ्खसौवीर्यष्टयाद्वैलैः कार्याऽहिपूतने । पटोलपत्रत्रिफलारसाञ्जनविपाचितम् । पीतं घृतं नाशयति कृच्छ्रमप्यहिपूतनम् ॥ २ ॥ अथ वृषणकच्छुचिकित्सा—सर्जांम्बुकुष्ठसैन्धवसितसिद्धार्थैः प्रकल्पितो योगः । उद्वर्तनेन नियतं शमयति वृषणकण्डूतिम् ॥ १ ॥ भिषग्वृषणकच्छुं तु चिकित्सेत्पामरोगवत् । अहिपूतननिर्दिष्टक्रियाऽपि च तां हरेत् ॥ २ ॥ कासीसरोचनातुथहरितालरसाञ्जनैः । अम्लपिष्टैः प्रलेपोऽयं मुष्ककण्डूहिपूतने ॥ ३ ॥ अथ गुदभ्रंशो—गुदभ्रंशो गुदं स्विन्नं स्नेहेनाक्तं प्रवेशयेत् । प्रविष्टं रोधयेद्यत्नाद्रव्यसच्छिद्रचर्मणा ॥ १ ॥ पद्मिन्याः कोमलं पत्रं यः खादेच्छर्करान्वितम् । एतन्निश्चित्य निर्दिष्टं न तस्य गुदनिर्गमः ॥ २ ॥ मूषिकाणां वसाभिर्वा गुदं भ्रंशे प्रलेपयेत् । स्विन्नमूषकमांसेन अथवा स्वेदयेद्गुदम् ॥ ३ ॥ चाङ्गेरीकोलदध्यम्लनागरक्षारसंयुतम् घृतमुत्कथितं पेयं गुदभ्रंशरूपापहम् ॥ ४ ॥ वृक्षाम्लनलचाङ्गेरीबिल्वपाठाय वाग्रजम् । तक्रेण शीलयेत्पायुभ्रंशातोऽनलदीपनम् ॥ ५ ॥ अथ मूषकतैलम्—मूषकान्दशमूलानि गृह्णीयादुभयं समम् । तयोः काथेन कल्केन पचेत्तैलं यथोदितम् ॥ १ ॥ अभ्यङ्गात्तस्य तैलस्य गुदभ्रंशो विनश्यति । विनश्यन्ति तथा तेन गुदशूलभगंदराः ॥ २ ॥ गुदं च गव्यपयसा वेशयेद्विशङ्कितः । दुष्प्रवेशो गुदभ्रंशो विशत्याशु न संशयः । रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम् ॥ ३ ॥ अथ शूकरदंष्ट्रस्य चिकित्सा—भृङ्गराजकमूलस्य रजन्या सहितस्य च । चूर्णं तु सहसा लेपाद्वराहद्विजनाशनम् ॥ १ ॥ राजीवमूलकलकः पीतो गव्येन सर्पिषा प्रातः । शमयति शूकरदंष्ट्रं दंष्ट्रोद्भूतं

ज्वरं घोरम् ॥ २ ॥ रजनी मार्कवं मूलं पिष्टं शीतेन वारिणा । तल्लेपाद्धन्ति
वीसर्पं वाराहदशनाह्वयम् ॥ ३ ॥ इति शूकरदंष्ट्रस्य चिकित्सा । अथ पथ्या-
पथ्यम्—क्षुद्ररोगेषु सर्वेषु नानारोगानुकारिषु । दोषान्दूष्यानावस्थां च
निरीक्ष्य मतिमान्भिषक् ॥ १ ॥ तस्य तस्य च रोगस्य पथ्यापथ्यानि सर्वशः ।
यथादोषं यथादूष्यं यथावस्थं प्रकल्पयेत् ॥ २ ॥

इति क्षुद्ररोगचिकित्सा ॥

अथ मुखरोगाणां निदानान्याह

तत्र मुखस्य स्वरूपमाह—ओष्ठौ च दन्तमूलानि दन्ता जिह्वा च ता-
लु च । गलो गलादि सकलं ससाङ्गं मुखमुच्यते ॥ १ ॥ आनूपपिशितक्षी-
रदधिमाषादिसेवनात् । मुखमध्ये गदान्कुर्युः कुद्धा दोषाः कफोत्तराः ॥ २ ॥
अथ मुखरोगाणां संख्यामाह—स्युरष्टावोष्ठयोर्दन्तमूलेषु दश षट् तथा ।
दन्तेष्वष्टौ च जिह्वायां पञ्च स्युर्नव तालुनि ॥ ३ ॥ कण्ठे त्वष्टादश प्रोक्ता-
स्त्रयः सर्वसराः स्मृताः । एवं मुखामयाः सर्वैः सप्तपष्टिर्मता बुधैः ॥ ४ ॥
तत्रौष्ठरोगांस्तेषां निदानपूर्विकां संख्यां चाऽऽह—पृथग्दोषैः समस्तैश्च
रक्तजो मांसजस्तथा । मेदोजश्चाभिघातोत्थ एवमष्टौष्टजा गदाः ॥ १ ॥
अथ तत्र वातिकस्य लक्षणमाह—कर्कशौ परुषौ स्तब्धौ कृष्णौ तीव्रर-
जान्वितौ । दाल्येते परिपाव्येते ह्योष्ठौ मारुतकोपतः ॥ २ ॥ अथ पैत्तिक-
माह—चीयेते पिटिकाभिस्तु सरुजाभिः समन्ततः । सदाहपाकपिटिकौ
पीताभासौ च पित्ततः ॥ ३ ॥ अथ श्लेष्मिकमाह—सवर्णाभिस्तु चीयेते
पिटिकाभिरवेदनौ । कण्डूमन्तौ कफाच्छ्वेतौ शीतलौ पिच्छिलौ गुरु ॥ ४ ॥
अथ सान्निपातिकमाह—सकृत्कृष्णौ सकृत्पीतौ सकृच्छ्वेतौ तथैव च ।
सन्निपातेन विज्ञेयावनेकपिटिकाचितौ ॥ ५ ॥ अथ रक्तजमाह—खर्जूरफ-
लवर्णाभिः पिटिकाभिर्निपीडितौ । रक्तोपसृष्टौ रुधिरं स्रवतः शोणितप्रभौ ॥
॥ ६ ॥ अथ मांसजमाह—मांसदुष्टौ गुरुस्थूलौ मांसपिण्डवदुद्गतौ ।
जन्तवश्चात्र मूर्च्छन्ति नरस्योभयतो मुखात् ॥ ७ ॥ अथ मेदोजमाह—
सर्पिर्मण्डप्रतीकाशौ मेदसा कण्डुरौ मृदू । स्वच्छं स्फटिकसंकाशमासावं स्र-
वतो भृशम् ॥ ८ ॥ अथाभिघातजमाह—क्षतजामौ विदीर्येते पीड्येते
चाभिघाततः । मथितौ च समाख्यातावोष्ठौ कण्डूसमन्वितौ ॥ ९ ॥ उक्तं
भोजेन—क्षतावबिहतौ चापि रक्तावोष्ठौ सवेदनौ । भवतः सपरिस्रावौ रक्त-
पित्तप्रदूषितौ ॥ १० ॥ इत्योष्ठरोगनिदानम् ।

अथ दन्तवेष्टरोगाः

तत्र दन्तवेष्टरोगाणां नामानि संख्यां चाऽऽह—शीतादो गदितः पूर्वं
दन्तपुण्ड्रकस्ततः । दन्तवेष्टः सौषिरश्च महासौषिर एव च ॥ १ ॥ ततः प-

रिदरः प्रोक्तस्ततस्तूपकुशः स्मृतः । वैदर्भश्च ततः प्रोक्तः खलिवर्धन एव च ॥ २ ॥ अधिमांसकनामा च दन्तनाड्यश्च पञ्च च । दन्तविद्रधिरेष्यत्र दन्त-
वेष्टेषु षोडश ॥ ३ ॥ तत्र शीतादस्य लक्षणमाह—शोणितं दन्तवेष्टे-
भ्यो यत्राकस्मात्प्रवर्तते । दुर्गन्धीनि सकृष्णानि प्रक्लेदीनि मृदूनि च ॥ ४ ॥
दन्तमांसानि शीर्यन्ते पचन्ति च परस्परम् । शीतादो नाम स व्याधिः क-
फशोणितसंभवः ॥ ५ ॥ अथ दन्तपुष्पुटकमाह—दन्तयोस्त्रिषु वा यत्र
श्वयथुर्जायते महान् । दन्तपुष्पुटको नाम स व्याधिः कफरक्तजः ॥ ६ ॥
अथ दन्तवेष्टमाह—स्रवन्ति पूयं रुधिरं चला दन्ता भवन्ति च । दन्त-
वेष्टः स विज्ञेयो दुष्टशोणितसंभवः ॥ ७ ॥ अथ सौपिरमाह—श्वयथुर्द-
न्तमूलेषु रुजावान्कफवातजः । लालास्रावी सकण्डूश्च स ज्ञेयः सौपिरो गदः
॥ ८ ॥ अथ महासौपिरमाह—दन्ताश्चलन्ति वेष्टेभ्यस्तालु चाप्यवदीर्य-
ते । यस्मिन्स सर्वजो व्याधिर्महासौपिरसंज्ञकः ॥ ९ ॥ ससरात्रान्मारकश्चायं
यत आह भोजः—सदाहो दन्तमूलेषु शोथः पित्तकफानिलात् । महासौ-
पिर इत्येष ससरात्रान्निहन्त्यसून् ॥ १० ॥ अथ परिदरमाह—दन्तमांसा-
नि शीर्यन्ते यस्मिन्स्रवति चाप्यसृक् । पित्तासृक्कफजो व्याधिर्ज्ञेयः परिदरो
हि सः ॥ ११ ॥ अथोपकुशमाह—वेष्टेषु दाहः पाकश्च ताभ्यां दन्ताश्च-
लन्ति च । अत्यर्दिताः प्रस्रवन्ति शोणितं मन्दवेदनम् ॥ १२ ॥ आध्माय-
न्ते स्फुटे रक्ते मुखं पूति च जायते । यस्मिन्नुपकुशः स स्वात्पित्तरक्तसमुद्भवः
॥ १३ ॥ अथ वैदर्भमाह—घृष्टेषु दन्तमूलेषु संरम्भो जायते महान् । च-
लन्ति च रदा यस्मिन्स वैदर्भोऽभिघातजः ॥ १४ ॥ अथ खलिवर्धनमाह—
मारुतेनाधिको दन्तो जायते तीव्रवेदनः । खलिवर्धनसंज्ञोऽसौ संजाते रुक्प्र-
शाम्यति ॥ १५ ॥ अथाधिमांसकमाह—हानव्ये पश्चिमे दन्ते महान्-
शोथो महारुजः । लालास्रावी कफकृतो विज्ञेयः सोऽधिमांसकः ॥ १६ ॥
अथ पञ्च दन्तनाडीराह—दन्तमूलगता नाड्यः पञ्च ज्ञेया यथेरिताः ॥
॥ १७ ॥ अथ दन्तविद्रधिमाह—दन्तमांसमलैः सास्त्रैर्बाह्यतः श्वयथुर्म-
हान् । सदाहरुक्स्त्रवेद्भिन्नः पूयास्त्रं दन्तविद्रधिः ॥ १८ ॥ इति दन्तवेष्टरोगाः

अथ दन्तरोगाः ।

तत्र दन्तरोगाणां नामानि संख्यां चाऽऽह—दालनः कथितः पूर्वं कृमिद-
न्तक एव च । प्रोक्तो भञ्जनको दन्तहर्षो वै दन्तशर्करा ॥ १ ॥ कपालिकाऽ
त्र कथिता श्यावदन्तक एव च । करालसंज्ञ इत्यष्टौ दन्तरोगाः प्रकीर्तिताः
॥ २ ॥ तत्र दालनस्य लक्षणमाह—दीर्यमाणेष्विव रुजा यत्र दन्तेषु जा-
यते । दालनो नाम स व्याधिः सदागतिनिमित्तजः ॥ ३ ॥ अथ कृमिदन्त-
माह—कृष्णच्छिद्रश्चलः स्रावी ससंरम्भो महारुजः । अनिमित्तरुजो वा-
तात्स ज्ञेयः कृमिदन्तकः ॥ ४ ॥ अथ भञ्जनकमाह—वक्त्रं वक्त्रं भवेद्य

स्य दन्तभङ्गश्च जायते । कफवातकृतो व्याधिः स भञ्जनक उच्यते ॥ ५ ॥
 अथ दन्तहर्षमाह—शीतरूक्षप्रवाताम्लस्पर्शानामसहा द्विजाः । यत्र स्यु-
 र्वातपित्ताभ्यां दन्तहर्षः स कीर्तितः ॥ ६ ॥ अथ दन्तशर्करामाह—मलो
 दन्तगतो यस्तु कफश्चानिलशोषितः । शर्करेव खरस्पर्शा सा ज्ञेया दन्तशर्करा
 ॥ ७ ॥ अथ कपालिकामाह—कपालेष्पिव दीर्यसु दन्तेषु समलेषु च ।
 कपालिकेति विज्ञेया दन्तच्छिदन्तशर्करा ॥ ८ ॥ अथ श्यावदन्तकमाह—
 योऽसृङ्मिश्रेण पित्तेन दग्धो दन्तस्त्वशेषतः श्यावतां नीलतां वाऽपि गतः
 स श्यावदन्तकः ॥ ९ ॥ अथ करालमाह—शनैः शनैः प्रकुपितो यत्र द-
 न्ताश्रितोऽनिलः । करालान्विकटान्दन्तान्स करालो न सिध्यति ॥ १० ॥
 अथ हनुमोक्षमाह—वातेन तैस्तैर्भावैस्तु हनुसंधिर्विसंहतः । हनुमोक्ष
 इति ज्ञेयो व्याधिरर्दितलक्षणः ॥ ११ ॥ तत्रान्तरे—भाराभिघाताज्जन्तोश्च
 हनुसंधिर्विमुच्यते । निरस्तजिह्वः कृच्छ्रेण भाषितुं तत्र गच्छति ॥ सकृच्छ्र-
 मनिलव्याधिं हनुमोक्षं विनिर्दिशेत् ॥ १२ ॥ इत्येवमष्टौ दन्तरोगाः ॥

अथ जिह्वारोगाः

तत्र जिह्वारोगाणां निदानं नामानि संख्यां चाऽह—वातजः पित्तजश्चापि
 कफजोऽलाससंज्ञकः ॥ उपजिह्विका च गदा जिह्वायां पञ्च कीर्तिताः ॥ १ ॥
 अथ वातजमाह—जिह्वाऽनिलेन स्फुटिता प्रसुप्ता भवेच्च शाकच्छदनप्रका-
 शा ॥ अथ पित्तजमाह—पित्तात्सदाहैरनुचीयते च दीर्घैः सरक्तैरपि कण्ठ-
 कैश्च ॥ २ ॥ अथ कफजमाह—कफेन गुर्वी बहुलान्विता च मांसोच्छ्रयैः
 शाल्मलिकण्टकभैः ॥ ३ ॥ अथालासमाह—जिह्वातले यः श्वयथुः प्रगा-
 ढः सोऽलाससंज्ञः कफरक्तमूर्तिः । जिह्वां स तु स्तम्भयति प्रवृद्धो मूले च
 जिह्वा भृशमेति पाकम् ॥ ४ ॥ अथोपजिह्विकामाह—जिह्वाग्ररूपः श्वयथु-
 र्हि जिह्वासुन्नम्य जातः कफरक्तयोनिः । प्रसेककण्डूपरिदाहयुक्तः प्रकथ्यते
 सा उपजिह्विकेति ॥ ५ ॥ इति जिह्वारोगाः ॥

अथ तालुरोगाः ।

तत्र तालुरोगाणां नामानि संख्यां चाऽह—गलशुण्डीतुण्डिकेयध्रुवाः क-
 च्छप एव च । ताल्वर्बुदश्च कथितो मांससंघात एव च ॥ १ ॥ तालुपुण्ड-
 नामा च तालुशोषस्तथैव च । तालुपाकश्च कथितास्तालुरोगा अमी नव ॥ २ ॥
 तत्र गलशुण्डीलक्षणमाह—श्लेष्मासृग्भ्यां तालुमूलात्प्रवृद्धो दीर्घः शो-
 फो ध्मातवस्तिप्रकाशः । तृष्णाकासश्वासकृतं वदन्ति व्याधिं वैद्याः कण्ठशु-
 ण्डीति नाम्ना ॥ ३ ॥ अथ तुण्डिकेरीमाह—शोथः शूलस्तोददाहप्रपा-
 की प्रागुक्ताभ्यां तुण्डिकेरी मता तु ॥ अथाध्रुवलक्षणमाह—शोथः स्तब्धो
 लोहितः शोणितोऽथो ज्ञेयोऽध्रुवः सज्वरस्तीव्रस्त्वच ॥ ४ ॥ अथ कच्छप-

माह—कूर्मोत्सन्नोऽवेदनोऽशीघ्रजन्मा रोगो ज्ञेयः कच्छपः श्लेष्मणा च ॥
 अथ ताल्वर्बुदमाह—पञ्चाकारं तालुमध्ये तु शोथं विद्याद्रक्तादर्बुदं प्रोक्त-
 लिङ्गम् ॥ ५ ॥ अथ मांससंघातमाह—दुष्टं मांसं श्लेष्मणा नीरुजं च
 ताल्वन्तःस्थं मांससंघातमाहुः ॥ अथ तालुपुप्पुटमाह—नीरुक्स्थायी
 कोलमात्रः कफात्स्यान्मदोयुक्तात्पुप्पुटस्तालुदेशे ॥ ६ ॥ अथ तालुशोष-
 माह—शोपोऽत्यर्थं दीर्यते चापि तालु श्वासो वातात्तालुशोषोऽयमुक्तः ॥ अथ
 तालुपाकमाह—पित्तं कुर्यात्पाकमत्यर्थघोरं तालुन्येवं तालुपाकं वदन्ति
 ॥ ७ ॥ इति तालुरोगाः ॥

अथ गलरोगाः ।

तत्र गलरोगाणां नामानि संख्यां चाऽऽह—रोहिणी पञ्चधा प्रोक्ता
 कण्ठशालूक एव च । अधिजिह्वश्च वलयोऽलासनामैकवृन्दकः ॥ १ ॥ ततो
 वृन्दं शतप्री च गिलायुः कण्ठविद्रधिः । गलौवश्च स्वरघ्नश्च मांसतानस्तथैव
 च ॥ विदारी कण्ठदेशे तु रोगा अष्टादश स्मृताः ॥ २ ॥ अथ तत्र पञ्चाना-
 मपि रोहिणीनां सामान्यां संप्राप्तिमाह—गलेऽनिलः पित्तकफौ च मूर्च्छितौ
 प्रदूष्य मांसं च तथैव शोणितम् । गलोपसंरोधकरैस्तथाऽङ्कुरैर्निहन्त्यसूनव्या-
 धिरयं तु रोहिणी ॥ ३ ॥ अथ तत्र वातजालक्षणमाह—जिह्वासमन्ता-
 नृशवेदनास्तु मांसाङ्कुराः कण्ठनिरोधनाः स्युः । सा रोहिणी वातकृता प्रदिष्टा
 वातात्मकोपद्रवगाढजुष्टा ॥ ४ ॥ अथ पित्तजामाह—क्षिप्रोद्गमाक्षिप्रविदाह-
 पाका तीव्रज्वरा पित्तनिमित्तजाता ॥ अथ श्लेष्मजामाह—स्रोतोनिरोधि-
 न्यपि मन्दपाका गुरुस्थिरा सा कफसंभवा तु ॥ ५ ॥ अथ संनिपातजा-
 माह—गम्भीरपाकिन्यनिवार्यवीर्या त्रिदोषलिङ्गा त्रिभवा भवेत्सा ॥ अथ
 रक्तजामाह—स्फोटैश्चिता पित्तसमानलिङ्गाऽसाध्या प्रदिष्टा रुधिरात्मिका
 तु ॥ ६ ॥ सद्यस्त्रिदोषजा हन्ति व्यहात्कफसमुद्भवा । पञ्चाहात्पित्तसंभूता
 सप्ताहात्पवनोत्थिता ॥ ७ ॥ अथ कण्ठशालूकमाह—कोलास्थिमात्रः क-
 फसंभवो यो ग्रन्थिर्गले कण्ठकशूकभूतः । खरः स्थिरः शस्त्रनिपातसाध्यस्तं
 कण्ठशालूकमिति ब्रुवन्ति ॥ ८ ॥ अथाधिजिह्वमाह—जिह्वाग्ररूपः श्वयथुः
 कफात्तु जिह्वोपरिष्ठादसृजैव मिश्रात् । ज्ञेयोऽधिजिह्वः खलु रोग एव विवर्ज-
 येदागतपाकमेनम् ॥ ९ ॥ अथ वलयमाह—बलास एवाऽऽयतमुन्नतं च
 शोथं करोत्यन्नगतिं निवार्य । तं सर्वथैवाप्रतिवार्यवीर्यं विवर्जनीयं वलयं व-
 दन्ति ॥ १० ॥ अथालासमाह—गले तु शोथं कुरुतः प्रवृद्धौ श्लेष्मानि-
 लौ श्वासरुजोपपन्नम् । मर्मच्छिदं दुस्तरमेनमाहुरलाससंज्ञं भिषजो विकार-
 म् ॥ ११ ॥ अथैकवृन्दमाह—वृत्तोन्नतोऽन्तःश्वयथुः सदाहः सकण्डुरोऽ
 पाक्यमृदुर्गुश्च । नाग्नैकवृन्दः परिकीर्तितोऽसौ व्याधिर्बलासक्षतजप्रसूतः
 ॥ १२ ॥ अथ वृन्दमाह—समुन्नतं वृत्तममन्ददाहं तीव्रज्वरं वृन्दमुहाद-

रन्ति । तच्चापि पित्तक्षतजप्रकोपाद्विद्यात्सतोदं पवनात्मकं तु ॥ १३ ॥ अथ शतघ्नीमाह—वर्तिर्धना कण्ठनिरोधिनी या चिताऽतिमात्रं पिशितप्ररोहैः । अनेकरुक्प्राणहरा त्रिदोषाज्ज्ञेया शतघ्नीसदृशी शतघ्नी ॥ १४ ॥ अथ गिलायुमाह—ग्रन्थिर्गले त्वामलकास्थिमात्रः स्थिरोऽल्परुक्स्यात्कफरक्तमूर्तिः । संलक्ष्यते सक्तमिवाशनं च स शस्त्रसाध्यस्तु गिलायुसंज्ञः ॥ १५ ॥ अथ गलविद्रधिमाह—सर्वं गलं व्याप्य समुत्थितो यः शोफो रुजः सन्ति च यत्र सर्वाः । स सर्वदोषैर्गलविद्रधिस्तु तस्यैव तुल्यः खलु सर्वजस्य ॥ १६ ॥ अथ गलौघमाह—शोथो महानन्नजलावरोधी तीव्रज्वरो वायुगतेर्निहन्ता । कफेन जातो रुधिरान्वितेन गले गलौघः परिकीर्त्यतेऽसौ ॥ १७ ॥ अथ स्वरघ्नमाह—यस्ताम्यमानः श्वसिति प्रसक्तं भिन्नस्वरः शुष्कविमुक्तकण्ठः । कफोपदिग्धेष्वनिलायनेषु ज्ञेयः स रोगः श्वसनात्स्वरघ्नः ॥ १८ ॥ अथ मांसतानमाह—प्रतानवान्यः श्वयथुः सुकष्टो गलोपरोधं कुरुते क्रमेण । स मांसतानः कथितोऽवलम्बी प्राणप्रणुत्सर्वकृतो विकारः ॥ १९ ॥ अथ विदारीलक्षणमाह—सदाहतोदं श्वयथुं प्रसक्तमन्तर्गले पृतिविशीर्णमांसम् । पित्तेन विद्याद्वदने विदारीं पार्श्वे विशेषात्स तु येन शेते ॥ १॥ इति गलरोगाः ॥

अथ समस्तमुखरोगाः ।

तत्र तेषां निदानं संख्यां चाऽऽह—पृथग्दोषैस्त्रयो रोगाः समस्तमुखजाः स्मृताः ॥ १ ॥ अथ तत्र वातिकस्य लक्षणमाह—स्फोटैः सतोदैर्बदनं समन्ताद्यस्याऽऽचितं सर्वसरः स वातात् । अथ पैत्तिकमाह—रक्तैः सदाहैः पिडकैः सपीतैर्यस्याऽचितं वाऽपि स पित्तकोपात् ॥ १ ॥ अथ श्लेष्मिकमाह—अवेदनैः कण्डुयुतैः सवर्णैर्यस्याऽऽचितं वाऽपि स वै कफेन ॥ अथ कैश्चिन्मुखपाकरोग एक एव प्रदिष्टः—रक्तेन पित्तोदित एक एव कैश्चित्प्रदिष्टो मुखपाकरोगः ॥ २ ॥

अथ मुखरोगेष्वसाध्यानाह—ओष्ठप्रकोपे वज्र्याः स्युर्मांसरक्तत्रिदोषजाः । दन्तवेष्टेषु वज्र्यौ तु त्रिलिङ्गगतिसौपिरौ ॥ १ ॥ दन्तेषु च न सिध्यन्ति श्यावदालम्भजनाः । जिह्वारोगेष्वलासस्तु तालुजेष्वर्बुदं तथा ॥ २ ॥ स्वरघ्नो बलयो वृन्दो बलासः सविदारिकः । गलौघो मांसतानश्च शतघ्नी रोहिणी गले ॥ ३ ॥ असाध्याः कीर्तिता ह्येते रोगा दश नवोत्तराः । तेषु चापि क्रियां वैद्यः प्रत्याख्याय समाचरेत् ॥ ४ ॥

इति समस्तमुखरोगाः ॥

अथ मुखरोगाणां चिकित्सा ।

तत्रौष्ठरोगेषु—गलदन्तमूलदशनच्छदेषु रोगाः कफास्त्रभूयिष्ठाः । तस्मा-

देतेष्वसकृद्बुधिरं विस्त्रावयेदुष्टम् ॥ १ ॥ इति भावप्रकाशात् । अथ वातजे-
स्त्रेहांस्तथोष्णान्परिपेकलेपान्घृतस्य पानं रसभोजनं च । अभ्यञ्जनस्वेदनले-
पनं तदोष्टे विदध्यात्पवनाभिभूते ॥ १ ॥ तैलं घृतं सर्जरसं ससिक्थं रास्त्रा-
गुडं सैन्धवगैरिकं च । पक्त्वा समांशं दशनच्छदानां त्वग्भेदहन्तुं व्रणरोपणं
च ॥ २ ॥ रालं मधूच्छिष्टगुडेन पक्वं तैलं घृतं वा विनिहन्ति लेपात् । त्व-
क्तोदपारुष्यरुजोऽधरस्य पूयास्त्रसंस्त्रावमपि प्रसह्य ॥ ३ ॥ अथ पित्तजे—
वेधं शिराणां वमनं विरेकं तिक्तस्य पानं रसभोजनं च । शीताः प्रदेहाः
परिषेचनं च पित्तोपसृष्टेष्वधरेषु कुर्यात् ॥ १ ॥ अथ कफजे—शिरोविरे-
चनं धूमः स्वेदः कवल एव च । हृते रक्ते प्रयोक्तव्य ओष्ठकोपे कफात्मके
॥ १ ॥ मेदोजे स्वेदिते भिन्ने शोधिते कवलो हितः । प्रियंगुत्रिफलालोभ्रं
सक्षौद्रं प्रतिसारणम् ॥ २ ॥ अथ प्रतिसारणस्य विधिमाह—दन्तजि-
ह्वामुखानां यच्चूर्णकल्कावलेहकैः । शनैर्धर्षणमङ्गुल्या तदुक्तं प्रतिसारणम् ॥ १ ॥
ओष्ठरोगेष्वशेषेषु दृष्ट्वा दोषमुपाचरेत् । तेषु व्रणत्वं यातेषु व्रणवत्समुपाच-
रेत् ॥ २ ॥ इत्योष्ठरोगचिकित्सा ॥

अथ दन्तमूलरोगाणां चिकित्सा—दन्तमूलसमुत्थेषु दन्तोत्थेषु ग-
देषु च । रक्तमोक्षं प्रशंसन्ति जलौकालाबुशृङ्गकैः ॥ १ ॥ अथ शीतादस्य
चिकित्सा—शीतादेऽस्रस्रुतिं कुर्यात्तथा गण्डूपधारणम् । शुण्ठीपर्पटककाथैः
कवोष्णैश्च मुहुर्मुहुः ॥ १ ॥ इति योगतरङ्गिण्याः । शीतादे हृतरक्ते तु तोये
नागरसर्षपान् । निष्काथ्य त्रिफलां चापि कुर्याद्गण्डूपधारणम् ॥ १ ॥ इति
भावप्रकाशात् । कासीसलोध्रकृष्णामनःशिलासप्रियंगुतेजोह्वाः । एषां चूर्णं
मधुयुक्शीतादे पृथिमांसहरम् ॥ १ ॥ तैलं घृतं वा वातघ्नं शीतादे संप्रशस्यते
॥ २ ॥ अथ दन्तपुष्पुटकस्य चिकित्सा—दन्तपुष्पुटके कार्यं तरुणे
रक्तमोक्षणम् । सपञ्चलवणक्षारैः सक्षौद्रैः प्रतिसारणम् ॥ १ ॥ अथ दन्तवे-
ष्टस्य चिकित्सा—दन्तवेष्टे विधिः कार्यो रक्तपित्तनिबर्हणः । शिरोविरे-
कश्च हितो नस्यं स्निग्धं च भोजनम् ॥ १ ॥ विस्त्राविते दन्तवेष्टे व्रणं तु प्रति-
सारयेत् । लोभ्रपत्तङ्गमधुकलाक्षाचूर्णैर्मधुलुतैः ॥ २ ॥ गण्डूपे क्षीरिणे यो-
ज्याः सक्षौद्रघृतशर्कराः । चलदन्तस्थैर्यकरं कार्यं वकुलचर्वणम् ॥ ३ ॥
अथ भद्रमुस्तादिवटिका—भद्रमुस्ताभयाव्योपविडङ्गारिष्टपल्वैः । गोमू-
त्रपिष्टैर्गुटिकां छायाशुष्कां प्रकल्पयेत् ॥ १ ॥ तां निधाय मुखे स्वप्याच्चलद-
न्तातुरो नरः । नातः परतरं किञ्चिच्चलदन्तस्य भेषजम् ॥ २ ॥ अथ सहा-
चरादितैलम्—तुलां घृतां नीलराहाचरस्य द्रोणेऽम्भसः संश्रपयेद्यथावत् ।
ततश्चतुर्भागरसे तु तैलं पचेच्छनैर्धर्षणप्रमाणैः ॥ १ ॥ कल्कैरनन्ताखदिरा-
रिमेदजम्बवान्नयष्टीमधुकोत्पलानाम् । तत्तैलमाश्वेव घृतं मुखेन स्थैर्यं द्विजा-
नां विदधाति सद्यः ॥ २ ॥ इति सहाचरादितैलं भावप्रकाशात् । अथ

जीरकाद्यं चूर्णम्—जरणलवणपथ्याशाल्मलीकण्टकानामनुदिनमनुघृष्टं दन्तमूलेषु चूर्णम् । व्रणदरणरुगस्रस्त्रावचाञ्जल्यशोथानपनयति विवस्वान-
न्धकारानिवाऽऽशु ॥ १ ॥ अथ कणाद्यं चूर्णम्—कणासिन्धूत्थजरणचूर्णं
तूर्णं व्यपोहति । घर्पणादन्तचाञ्जल्यव्यथाशोथोत्संस्रवान् ॥ १ ॥ अथ दश-
मूलादितैलघृते—दशमूलीकपायेण तैलं वा घृतमेव वा । विपक्वं केवलं
शस्तं सक्षौद्रं दन्तचालने ॥ १ ॥ इति दन्तवेष्टरोगचिकित्सा ॥ अथ सौषि-
रस्य चिकित्सा—सौषिरे हतरक्ते तु लोभ्रमुस्तारसाज्जनैः । सक्षौद्रैः शस्यते
लेपो गण्डूषे क्षीरिणो हिताः ॥ १ ॥ अथ परिदरोपकुशयोश्चिकित्सा—
क्रियां परिदरे कुर्याच्छीतादोक्तां विचक्षणः । संशोध्योभयतः कायं शिरश्चो-
पकुशे तथा ॥ १ ॥ काकोदुम्बरिकापत्रैर्व्रणं विस्त्रावयेद्विषक् । लवणैः क्षौद्र-
युक्तैश्च सव्योषैः प्रतिसारयेत् ॥ २ ॥ अथ वैदर्भखलिवर्धनाधिमांसकद-
न्तविद्रधिरोगाणां चिकित्सामाह—शस्त्रेणोत्कृत्य वैदर्भं दन्तमूलानि शोध-
येत् । ततः क्षारं प्रयुज्जीत क्रियाः सर्वाश्च शीतलाः ॥ १ ॥ उद्धृत्याधिकदन्तं तु
ततोऽग्निमवधारयेत् । कृमिदन्तकवच्चात्र विधिः कार्यो विज्ञानता ॥ २ ॥
छित्त्वाऽधिमांसं सक्षौद्रैरेतैश्चूर्णैरुपाचरेत् । वचातेजोवतीपाठास्त्रजिकायावशू-
कजैः ॥ ३ ॥ क्षौद्रद्वितीयपिप्पल्यः कवले चात्र कीर्तिताः । पटोलनिम्बत्रि-
फलाकषायश्चात्र धावनः ॥ ४ ॥ विद्रध्युक्तं च विधिवद्विदध्यादन्तविद्रधौ ।
शस्त्रकर्म नरस्तत्र कुशलेनैव कारयेत् ॥ ५ ॥ नाडीव्रणहरं कर्म दन्तनाडीषु
कारयेत् । यद्दन्तमध्ये जायेत नाडी दन्तं तमुद्धरेत् ॥ ६ ॥ छित्त्वा मांसानि
शस्त्रेण यदि नोपरमो भवेत् । उद्धृत्य च दहेच्चापि क्षारेण ज्वलनेन वा ॥ ७ ॥
भिनच्युपेक्षिते दन्ते हनुं सास्थिगतिर्ध्रुवम् । उद्धृते तूत्तरे दन्ते शोणितं प्रस्त्र-
वेदति ॥ ८ ॥ रक्तातिसेकात्पूर्वोक्ता घोरा रोगा भवन्ति हि । काणः संजायते
जन्तुरर्दितं तस्य जायते ॥ ९ ॥ चलमप्युत्तरं दन्तमतो नैवोद्धरेद्विषक् । समूलं
दशनं तस्मादुद्धरेद्भग्नमस्थि च ॥ १० ॥ अथ जात्यादितैलम्—कपायै
र्जातिमदनकण्टकीस्वादुकण्टकैः । मज्जिष्ठालोभ्रखदिरयष्ट्याह्वैश्चापि यत्कृतम् ।
तैलं यत्साधितं तत्र हन्यादन्तगतां गतिम् ॥ १ ॥

अथ दन्तरोगाणां चिकित्सा—दन्तरोगेषु सर्वेषु शस्तो वातहरो
विधिः । पक्वं तैलं कवोष्णं च शस्तं कवलधारणे ॥ १ ॥ जयेद्विस्त्रावणैः स्विन्न-
मचलं कृमिदन्तकम् । तथाऽवपीडैर्वातघ्नैः स्नेहगण्डूषधारणैः ॥ २ ॥ भद्र-
दार्वादिवर्षाभूलेपैः स्निग्धैश्च भोजनैः । कृमिदन्तापहं कोष्णं हिङ्गु दन्ता-
म्बरे स्थितम् ॥ ३ ॥ बृहतीभूमिकादम्बीपञ्चाङ्गुलकण्टकारिकाकाथः । गण्डू-
पस्तैलयुतः कृमिदन्तकवेदनाशमकः ॥ ४ ॥ नीलीवायसजङ्घाकटुतुम्बीमू-
लमेकैकम् । संचूर्ण्य दशनविघृतं दशनक्रिमिपातनं प्राहुः ॥ ५ ॥ पिप्पु च
सारिवापणं दृढं दन्तेषु धारयेत् । पतन्ति दन्तकीटाश्च चाञ्जल्यं हरति क्षणा-

त् ॥ ६ ॥ इति वैद्यविलासात् । कासीसं हिङ्गु सौराष्ट्री देवदारु समं जलेः । गुटिकां धारयेदन्तकृमिशूलहरां पराम् ॥ १ ॥ इति चिकित्सासारात् । अथ दन्तहर्षचिकित्सा—स्नेहानां कवलाः कोष्णाः सर्पिपस्त्रिवृतस्य च । निर्यूहाश्चानिलम्लानां दन्तहर्षप्रमर्दनाः ॥ १ ॥ स्नेहिकोऽत्र हितो धूमो नस्यं स्नेहिकमेव च । रसा रसयवाग्वश्च क्षीरं संतानिकाघृतम् । शिरोवस्त्रिहितश्चापि क्रमो यश्चानिलापहः ॥ २ ॥ अच्छिद्य दन्तमूलानि शार्करामुद्धरेद्विपक्व । लाक्षाचूर्णैर्मधुयुतैस्ततस्तान् प्रतिसारयेत् ॥ ३ ॥ दन्तहर्षक्रियां चात्र कुर्यान्निर्वशेषतः । कपालिका कृच्छ्रतमा तत्राप्येपा क्रिया हिता ॥ ४ ॥

अथ सामान्यचिकित्सा—अरिमेदत्वचं क्षुण्णां पचेच्छतपलोन्मिताम् । जलद्रोणेन तत्क्राथं गृह्णीयात्पादशेषितम् ॥ १ ॥ तैलस्यार्धाढकं दत्त्वा कल्कैः कर्षमितैः पचेत् । अरिमेदलवङ्गाभ्यां गैरिकागुरुपद्मकैः ॥ २ ॥ मज्जिष्ठालो-
ध्रमधुकैर्लाक्षान्यग्रोधमुस्तकैः । त्वग्जातीफलकर्पूरकक्कोलखदिरैस्तथा ॥ ३ ॥ पत्तङ्गधातकीपुष्पसूक्ष्मैलानागकेशरैः । कदफलेन च संसिद्धं तैलं मुखरुजं जयेत् ॥ ४ ॥ प्रदुष्टमांसंचलितं शीर्णं दन्तं च सौषिरम् । शीतादं दन्तहर्षं च विद्रधिं कृमिदन्तकम् । दन्तस्फुटनदौर्गन्ध्यं जिह्वातालवोष्ठजां रुजम् ॥ ५ ॥ इत्यरिमेदादितैलं भावप्रकाशात् । अथ लाक्षादितैलम्—तैलं लाक्षारसं क्षीरं पृथक्प्रस्थमितं पचेत् । द्रव्यैः पलमितैरैतैः काथैश्चापि चतुर्गुणैः ॥ १ ॥ लोध्रकदफलमज्जिष्ठापद्मकेसरपद्मकैः । चन्दनोत्पलयष्टयाह्वैस्तैलं वदने धृतम् ॥ २ ॥ दालनं दन्तचालं च दन्तमोक्षकपालिकाम् । शीतादं पूतिवक्त्रं च विरुचिं विरसास्यताम् ॥ ३ ॥ हन्यादाशु गदानेतान्कुर्याद्दन्तानपि स्थिरान् । लाक्षादिकमिदं तैलं दन्तरोगेषु पूजितम् ॥ ४ ॥ इति लाक्षादितैलम् । अथ कुष्ठादिचूर्णम्—कुष्ठं दार्वीं लोध्रमब्दं समङ्गा पाठा तित्का तेजनी पीतिका च । चूर्णं शस्तं वर्षणे तद्विजानां रक्तस्त्रावं हन्ति कण्डूरुजं च ॥ १ ॥ सौराष्ट्रीत्रिफलामदत्रुटिकृमिद्विद्रुत्यपत्राङ्गकं कासीसं खदिरस्य सारममलं मायाफलं चाऽऽयसम् । जीमूतं च समांशकं हि सकलं संकुट्य वस्त्रे भृशं पूतं तोययुतं रदेषु रदरुगिच्छित्तिक्कुद्घृष्टकम् ॥ २ ॥ छिन्नया पिष्टया वारा दन्तशूलो विनश्यति । स्वेदिता रवितोयेन चलतां नाशयेद्ध्रुवम् ॥ ३ ॥ अथ जातीपत्रादिचूर्णम्—जातीपत्रपुनर्नवागजकणाकोरण्टकुष्ठं वचाशु-
ण्ठीदीप्यहरीतकीतिलसमं श्लक्ष्णं भृशं चूर्णयेत् । तच्चूर्णं वदने धृतं विजयते दौर्गन्ध्यदन्तव्यथां चाञ्जल्यत्वमतिव्रणश्रयधुरुक्कण्डूकृमिव्यापदः ॥ १ ॥ फलान्यम्लानि शीताम्बु रुक्षाञ्जं दन्तधावनम् । तथाऽतिकठिनं भक्ष्यं दन्त-
रोगी विवर्जयेत् ॥ २ ॥ इति दन्तरोगचिकित्सा ॥

अथ जिह्वारोगाणां चिकित्सामाह ॥

जिह्वागतविकाराणां शस्तं शोणितमोक्षणम् । गुडूचीपिप्पलीनिम्बकवलः

कटुभिः सुखः ॥ १ ॥ ओष्ठप्रकोपेऽनिलजे यदुक्तं प्राक्चिकित्सितम् । कण्ट-
केष्वनिलोत्थेषु तत्कार्यं भिषजा खलु ॥ २ ॥ पित्तजेषु विष्टेषु निःसृते दुष्ट-
शोणिते । प्रतिसारणगण्डूपनस्य च मधुरं हितम् ॥ ३ ॥ उपजिह्वां तु संलि-
ख्य क्षारेण प्रतिसारयेत् । शिरोविरेकगण्डूषधूमैश्चैनामुपाचरेत् ॥ ४ ॥ व्योष-
क्षाराभयावह्निचूर्णमेतत्प्रघर्षणम् । उपजिह्वाप्रशान्त्यर्थमेभिस्तैलं च पाचयेत्
॥ ५ ॥ गृहधूमारनालेन काथं समधुसैन्धवम् । पाणिना मर्दयेच्चाऽऽस्य उप-
जिह्वाप्रशान्तये ॥ ६ ॥ निर्गुण्डीमुसलीकन्दं चर्वयेदुपजिह्वजित् । काञ्चना-
रत्नचः काथः प्रातरास्ये घृतः सुखः । कुर्यात्सखदिरो जिह्वादरणोन्मूलनं मुहुः
॥ ७ ॥ इति जिह्वारोगचिकित्सा ॥

अथ तालुरोगाणां चिकित्सा—युक्त्यात्कफहरं शुण्ड्यां रसं गण्डूष-
धारणे । कुष्ठोपणवचासिन्धुकणापाठाग्नवैः सह ॥ १ ॥ सक्षौद्रैर्भिषजा कार्यं
गलशुण्डीप्रघर्षणम् । अङ्गुष्ठाङ्गुलिसंदंशेनाऽऽकृष्य गलशुण्डिकाम् ॥ २ ॥
छेदयेन्मण्डलाग्रेण जिह्वोपरि तु संस्थिताम् । अतिच्छेदात्सर्वेद्रक्तं ततो हेतो
त्रियेत च ॥ ३ ॥ हीनच्छेदान्नवेच्छेथो लालास्रावो भ्रमस्तथा । तस्माद्वैद्यः
प्रयत्नेन दृष्टकर्मा विशारदः ॥ ४ ॥ गलशुण्डीं तु संलिख्य कुर्यात्प्राप्तमिमं
कमम् । पिप्पल्यतिविपाकुष्टवचामरिचनागरैः ॥ ५ ॥ क्षौद्रयुक्तैः सलवणै-
स्ततस्तां प्रतिसारयेत् । तुण्डीकेर्यध्रुवे कूर्मे संघाते तालुपुष्पुटे ॥ ६ ॥ एष
एव विधिः कार्यो विशेषः शस्त्रकर्मणि । तालुपाके तु कर्तव्यं विधानं पित्तना-
शनम् ॥ स्नेहस्वेदौ तालुशोषे विधिश्चानिलनाशनः ॥ ७ ॥ इति तालुरो-
गाणां चिकित्सा ॥

अथ गलरोगाणांचिकित्सा—रोहिणीनां तु साध्यानां हितं शोणितमो-
क्षणम् । वमनं धूमपानं च गण्डूषो नस्यकर्म च ॥ १ ॥ वातजां तु हृते रक्ते लवणैः
प्रतिसारयेत् । सुखोष्णान्स्नेहगण्डूपानधारयेच्चाप्यभीक्ष्णशः ॥ २ ॥ विस्त्राव्य
पित्तसंभूतां सिताक्षौद्रप्रियंगुभिः । घर्षयेत्कवलो द्राक्षापरूपैः कथितैर्हितः ॥ ३ ॥
आगारधूमकटुकैः कफजां प्रतिसारयेत् । श्वेताविडङ्गदन्तीषु तैलं सिद्धं ससै-
न्धवम् ॥ ४ ॥ नस्यकर्मणि दातव्यं कवलं च कफोच्छ्रये । पित्तवत्साधयेद्वैद्यो
रोहिणीं रक्तसंभवाम् ॥ ५ ॥ विस्त्राव्य कण्टशालूकं साधयेत्तुण्डिकेरिवत् । एक-
काले यवाञ्च च भुञ्जीत स्निग्धमल्पशः ॥ ६ ॥ उपजिह्वकवचापि साधयेद-
धिजिह्वकम् । एकवृन्दं तु विस्त्राव्य विधिं शोधनमाचरेत् ॥ ७ ॥ एकवृन्द-
मिव प्रायो वृन्दं च समुपाचरेत् । गिलायुश्चापि यो व्याधिस्तं च शस्त्रेण
साधयेत् ॥ भ्रमरस्यं सुसंपकं छेदयेद्गलविद्रधिम् ॥ ८ ॥

अथ सामान्यानां गलरोगाणां चिकित्सा—कण्ठरोगेष्वसृज्जोक्षैस्ती-
क्ष्णैर्नस्यादिकर्मभिः । चिकित्सकश्चिकित्सां तु कुशलोऽत्र समाचरेत् ॥ १ ॥
काथं दद्याच्च दार्वात्त्वग्निम्बुताक्ष्यकलिङ्गजम् । हरीतकीकषायो वा हितो मा-

क्षिकसंयुतः ॥ २ ॥ कटुकातिविपादारूपाठामुस्ताकलिङ्गकाः । गोमूत्रकथिताः पीताः कण्ठरोगविनाशनाः ॥ ३ ॥ मृद्वीकाकटुकाव्योपदार्वीत्वक्त्रिफला घनम् । पाठा रसाञ्जनं दूर्वा तेजोहेति सुचूर्णितम् ॥ ४ ॥ क्षौद्रयुक्तं विधातव्यं गलरोगे महौषधम् । योगास्त्वते त्रयः प्रोक्ता वातपित्तकफापहाः ॥ ५ ॥ यवाग्रजं तेजवर्ती सपाठां रसाञ्जनं दासुनिशां सकृष्णाम् । क्षौद्रेण कुर्याद्दुटिकां मुखेन तां धारयेत्सर्वगलामयेषु ॥ ६ ॥ इति गलरोगाणां चिकित्सा ॥

अथ समस्तमुखरोगाणां चिकित्सा—वातात्सर्वसरं चूर्णैर्लवणैः प्रतिसारयेत् ॥ तैलं वातहरैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः ॥ १ ॥ पित्तात्मके सर्वसरे शुद्धकायस्य देहिनः । सर्वपित्तहरः कार्यो विधिर्मधुरशीतलः ॥ २ ॥ प्रतिसारणगण्डूषधूमसंशोधनानि च । कफात्मके सर्वसरे क्रमं कुर्यात्कफापहम् ॥ ३ ॥ इति सर्वसरोपक्रमः ॥ मुखपाके शिरावेधः शिरसश्च विरेचनम् । मधुमूत्रघृतक्षीरैः शीतैश्च कवलग्रहः ॥ १ ॥ जातीपत्रामृताद्राक्षायसदार्वीफलत्रिकैः । काथः क्षौद्रयुतः शीतो गण्डूषो मुखपाकनुत् ॥ २ ॥ कार्यं च बहुधा नित्यं जातीपत्रस्य चर्वणम् । कृष्णजीरककुष्ठेन्द्रयवचर्वणतत्तुह्यात् ॥ ३ ॥ मुखपाकव्रणक्लेददौर्गन्ध्यमुपशाम्यति । पटोलनिम्बजम्बाम्रमालतीनवपल्लवैः ॥ ४ ॥ पञ्चपल्लवजः श्रेष्ठः कपायो मुखधावने । पञ्चवल्कलजः काथस्त्रिफलासंभवोऽथ वा ॥ ५ ॥ मुखपाके प्रयोक्तव्यः सक्षौद्रो मुखधावने । स्वरसः कथितो दाव्यां घनीभूतो रसक्रिया ॥ सक्षौद्रो मुखरोगासृग्दोषनाडीव्रणापहः ॥ ६ ॥ ससच्छदोशीरपटोलमुस्ताहरीतकीतिक्तकरोहिणीभिः । यष्ट्याह्वराजद्रुमचन्दनैश्च काथं पिबेत्पाकहरं मुखस्य ॥ ७ ॥ पटोलशुण्ठीत्रिफलाविशालात्रायन्तितित्काद्विनिशामृतानाम् । पीतः कपायो मधुना निहन्ति मुखे स्थितश्चाऽऽस्यगदानशेषान् ॥ ८ ॥ तिला नीलोत्पलं सर्पिः शर्करा क्षीरमेव च । सलोध्रो दिग्धवक्त्रस्य गण्डूषो दाहनाशनः ॥ ९ ॥ अथ हरिद्रातैलम्—हरिद्रा निम्बपत्राणि मधुकं नीलमुत्पलम् । तैलमेभिर्विपक्तव्यं मुखपाकहरं परम् ॥ १ ॥ अथ यष्टीमध्वादितैलम्—यष्टीमधुपलमेकं त्रिंशन्नीलोत्पलस्य तैलस्य । प्रस्थं तद्विगुणपयो विधिना पक्वं तु नस्येन ॥ १ ॥ निशि वदनस्य स्नावं क्षपयति गात्रस्य दोषसंघातम् । वपुः स्वर्णत्वमवश्यं क्रमशोऽभ्यङ्गेन जन्तूनाम् ॥ २ ॥ अथ खदिरादिगुटिका—खदिरस्य तुलां तोयद्रोणे पक्त्वाऽष्टशेषिते । जातीकोशेन्दुपूगैश्च चातुर्जातमृगाण्डजैः ॥ १ ॥ पृथक्कर्षमितैः पिष्टैर्मेलयित्वा चणोपमाम् । गुटीं कृत्वा मुखे धार्या सा निहन्यखिलान्नादान् ॥ जिह्वोष्ठदन्तवदनगलतालुसमुद्भवान् ॥ २ ॥ अन्यच्च—तुल्यं खदिरसारस्य त्वेषां चूर्णं विनिक्षिपेत् । जातीकङ्कोलकर्पूरकमुकाणां विचक्षणः ॥ गुटिकास्तु प्रकर्तव्या मुखे स्थाप्याः सदैव हि ॥ १ ॥ ताम्बूलमध्यस्थितचूर्णकेन दग्धं मुखं यस्य भवेत्कथंचित् । तैलेन गण्डूषमसौ

विदध्यादम्भारनालेन पुनः पुनर्वा ॥ २ ॥ इति समस्तमुखरोगाणां चिकित्सा ॥

अथ पथ्यापथ्यविधिः—स्वेदो विरेको वमनं गण्डूपः प्रतिसारणम् ।
कवलोऽसृक्स्त्रुतिर्नस्यं धूमः शस्त्राग्निकर्मणी ॥ १ ॥ तृणधान्यं यवा मुद्गाः
कुलत्था जाङ्गलो रसः । बहुपत्री कारवेहं पटोलं बालमूलकम् ॥ २ ॥ कर्पूर-
नीरं ताम्बूलं तप्ताम्बु खदिरो घृतम् । कटुतिकौ च वर्गोऽयं मित्रं स्यान्मुख-
रोगिणाम् ॥ ३ ॥ दन्तकाष्ठं स्नानमम्लं मत्स्यमानूपमामिपम् । दधि क्षीरं
गुडं मापं रुक्षाक्षं कठिनाशनम् ॥ ४ ॥ अधोमुखेन शयनं गुर्वभिप्यन्दकारि
च । मुखरोगेषु सर्वेषु दिवानिद्रां च वर्जयेत् ॥ ५ ॥ इति पथ्यापथ्यविधिः ॥

इति मुखरोगाधिकारः ॥

अथ कर्णरोगाधिकारः ।

अवश्यायजलक्रीडाकर्णकण्डूयनैर्मरुत् । मिथ्यायोगेन शस्त्रस्य कुपितोऽ-
न्यैश्च क्षोपनैः ॥ १ ॥ प्राप्य श्रोत्रशिराः कुर्याच्छूलं स्रोतसि वेगवान् । ते वै
कर्णगता रोगा अष्टाविंशतिरीरिताः ॥ २ ॥ तत्र कर्णरोगाणां नामानि
संख्यां चाऽऽह—कर्णशूलं प्रणादश्च बाधिर्यं क्ष्वेड एव च । कर्णस्त्रावः कर्ण-
कण्डूः कर्णगूथस्तथैव च ॥ ३ ॥ प्रतिनाहो जन्तुकर्णो विद्रधिर्द्विविधस्तथा ।
कर्णपाकः पूतिकर्णस्तथैवार्शश्चतुर्विधम् ॥ ४ ॥ तथाऽर्बुदं सप्तविधं शोफश्चापि
चतुर्विधः । एते कर्णगता रोगा अष्टाविंशतिरीरिताः ॥ ५ ॥ तेषु कर्णशू-
लस्य संप्राप्तिपूर्वकं लक्षणमाह—समीरणः श्रोत्रगतोऽन्यथा चरन्सम-
न्ततः शूलमतीव कर्णयोः । करोति दोषैश्च यथास्वमावृतः स कर्णशूलः क-
थितो दुरासदः ॥ १ ॥ मूर्च्छाद्युपद्रवसंसर्गात्कर्णशूलस्यासाध्यतां चाऽऽह—
मूर्च्छा दाहो ज्वरः कासः कृमोऽथ वमथुस्तथा । उपद्रवाः कर्णशूले भवन्त्येते
मरिष्यतः ॥ २ ॥ अथ कर्णनादस्य लक्षणमाह—कर्णस्रोतःस्थिते वाते
शृणोति विविधान्स्वरान् । भेरीमृदङ्गशङ्खानां कर्णनादः स उच्यते ॥ ३ ॥
अथ बाधिर्यमाह—यदा शब्दवहं वायुः स्रोत आवृत्य तिष्ठति । शुद्धः
श्लेष्मान्वितो वाऽपि बाधिर्यं तेन जायते ॥ ४ ॥ अथ कर्णक्ष्वेडमाह—
वायुः पित्तादिभिर्युक्तो वेणुघोषोपमं स्वनम् । करोति कर्णयोः क्ष्वेडं कर्ण-
क्ष्वेडः स उच्यते ॥ ५ ॥ अथ कर्णस्त्रावमाह—शिरोभिवातादथवा नि-
मज्जतो जले प्रपाकादथ वाऽपि विद्रधेः । स्रवेद्धि पूयं श्रवणोऽनिलार्दितः स
कर्णजः स्त्राव इति प्रकीर्तितः ॥ ६ ॥ अथ कर्णकण्डूमाह—मारुतः कफ-
संयुक्तः कर्णे कण्डूं करोति हि ॥ अथ कर्णगूथमाह—पित्तोष्मशोषितः
श्लेष्मा कुरुते कर्णगूथकम् ॥ ७ ॥ अथ प्रतिनाहमाह—स कर्णगूथो द्र-
वतां यदा गतो विलायितो घ्राणमुखं प्रपद्यते । तदा स कर्णप्रतिनाहसंज्ञितो
भवेद्विकारः शिरसोऽर्धभेदकृत् ॥ ८ ॥ अथ कृमिकर्णमाह—यदा तु सू-

छेन्त्यथ वाऽपि जन्तवः सृजन्यपत्यान्यथ वाऽपि मक्षिकाः । तद्वज्रनत्वाच्छ्र-
वणे निरुच्यते भिषग्भिराद्यैः कृमिकर्णको गदः ॥ ९ ॥ अथ पतङ्गादिषु
कर्णप्रविष्टेषु लक्षणमाह—पतङ्गाः शतपद्यश्च कर्णस्रोतः प्रविश्य हि ।
अरतिं व्याकुलत्वं च भृशं कुर्वन्ति वेदनाम् ॥ १० ॥ कर्णो निस्तुद्यते तस्य
तथा फरफरायते । कीटे चरति रुक्तीवा निष्पन्दे मन्दवेदना ॥ ११ ॥ अथ
द्विविधं कर्णविद्रधिमाह—क्षताभिघातप्रभवस्तु विद्रधिर्भवेत्तथा दोष-
कृतोऽपरः पुनः । स रक्तपीतारुणमस्रमास्रवेत्प्रतोदभूमायनदाहचोपवान्
॥ १२ ॥ अथ कर्णपाकमाह—कर्णपाकस्तु पित्तेन कोथविक्लेदकृद्भवेत् ॥
अथ पूतिकर्णमाह—कर्णविद्रधिपाकाद्वा जायते चाम्बुपूरणात् । पूयं स्र-
वति वा पूति स ज्ञेयः पूतिकर्णकः ॥ १३ ॥ अथ कर्णगतानां शोथार्ध-
दार्शसां लक्षणान्याह—कर्णशोथार्धुदार्शीसि जानीयादुक्तलक्षणैः ॥ १४ ॥
इदानीं चरकोक्तं कर्णरोगचतुष्टयं वातपित्तकफसंनिपातकृतमाह—ना-
दोऽतिरुक्कर्ममलस्य शोषः स्रावस्तनुश्चाश्रवणं च वातात् । शोथः सरागो दरुणं
विदाहः सपूतिपीतस्रवणं च पित्तात् ॥ १५ ॥ वैश्रुत्यकण्डूस्थिरशोथशुक्रस्ति-
ग्धस्रुतिः स्वल्परुजः कफाच्च । सर्वाणि रूपाणि च संनिपातात्स्रावश्च तत्रा-
धिकदोषवर्णः ॥ १६ ॥ इति कर्णरोगनिदानम् ॥

अथ कर्णपालीरोगनिदानम् ।

तत्र परिपोटलक्षणमाह—सौकुमार्याच्चिरोत्सष्टे सहस्रैवातिवर्धिते ।
कर्णपाल्यां भवेच्छोथः सरुजः परिपोटवान् ॥ १ ॥ कृष्णारुणनिभः स्तब्धः स
वातात्परिपोटकः ॥ अथोत्पातमाह—गुर्वाभरणसंयोगात्ताडनाद्वर्षणादपि
॥ २ ॥ शोथः पाल्यां भवेच्छयावो दाहपाकरुजान्वितः । रक्तो वा रक्तपि-
त्ताभ्यामुत्पातः स गदो मतः ॥ ३ ॥ अथोन्मन्थकमाह—कर्णं बलाद्वर्ध-
यतः पाल्यां वायुः प्रकुप्यति । कफं संगृह्य कुरुते शोथं स्तब्धमवेदनम् ॥
उन्मन्थकः सकण्डूको विकारः कफवातजः ॥ ४ ॥ अथ दुःखवर्धनमाह—
संवर्धमाने दुर्विद्धे कण्डूदाहरुजान्वितः । शोथो भवति पाकश्च त्रिदोषो
दुःखवर्धनः ॥ ५ ॥ अथ परिलेहिनमाह—कफासृक्कृमयः क्रुद्धाः सर्पपाभा
विसर्पिणः । कुर्वन्ति पिटिकाः पाल्यां कण्डूदाहरुजान्विताः ॥ ६ ॥ कफासृ-
कृमिसंभूतः स विसर्पन्नितस्ततः । विलिह्यात्सकलां पालीं परिलेही च स
स्मृतः ॥ इति कर्णरोगनिदानम् ॥

अथ कर्णरोगाणां चिकित्सा ।

अथ कर्णपूरणविधिः—स्वेदयेत्कर्णदेशं तु किञ्चिद्भुः पार्श्वशायिनः ।
मूत्रैः स्नेहै रसैः कोष्णैस्तच्च श्रोत्रं प्रपूरयेत् ॥ १ ॥ कर्णं च पूरितं रक्षेच्छतं
पञ्च शतानि च । सहस्रं वाऽपि मात्राणां श्रोत्रकण्ठशिरोगदे ॥ २ ॥ स्वजा-

नुनः करावर्तं कुर्याच्छोटिकया युतम् । एषा मात्रा भवेदेका सर्वत्रैवं विनि-
 श्रयः ॥ ३ ॥ रसाद्यैः पूरणं कर्णे भोजनात्प्राक्प्रशस्यते । तैलाद्यैः पूरणं कर्णे
 भास्करेऽस्तमुपागते ॥ ४ ॥ कर्णशूले कर्णनादे बाधिर्ये क्ष्वेड एव च । चतु-
 र्वर्षि च रोगेषु सामान्यं भेषजं स्मृतम् ॥ ५ ॥ शृङ्गवेररसं क्षौद्रं सैन्धवं तै-
 लमेव च । कटूष्णं कर्णयोर्धार्यमेतत्स्याद्वेदनापहम् ॥ ६ ॥ लशुनार्द्रकशिग्रूणां
 वारुण्या मूलकस्य च । कदल्याः स्वरसः श्रेष्ठः कटुष्णः कर्णपूरणे ॥ ७ ॥ अ-
 र्काङ्कुरानम्लपिष्टान्सतैलाह्वयान्वितान् । संनिदध्यात्सुधाकाण्डे कोरिते मृ-
 त्स्त्रयाऽऽवृते ॥ ८ ॥ पुटपाकक्रिया स्विन्नं पीडयेदारसागमात् । सुखोष्णं तद्रसं
 कर्णे प्रक्षिपेच्छूलशान्तये ॥ ९ ॥ अर्कस्य पत्रं परिणामपीतमाज्येन लिप्तं शि-
 खियोगतप्तम् । आपीड्य तस्याम्बु सुखोष्णमेव कर्णे निषिक्तं हरतेऽतिशूलम्
 ॥ १० ॥ तीव्रशूलतुरे कर्णे सरागे क्लेदवाहिनि । छागमूत्रं प्रशंसन्ति कोष्णं
 सैन्धवसंयुतम् ॥ ११ ॥ तैलं स्योनाकमूलेन मन्देऽग्नौ विधिना शृतम् । हरे-
 दाशु त्रिदोषोत्थं कर्णशूलं प्रपूरणात् ॥ १२ ॥ हिङ्गुसैन्धवशुण्ठीभिस्तैलं सर्प-
 पसंभवम् । विपक्वं हरतेऽवश्यं कर्णशूलं प्रपूरणात् ॥ १३ ॥ कर्णशूले कर्णनादे
 बाधिर्ये क्ष्वेड एव च । पूरणं कटुतैलेन हितं वातघ्नमौषधम् ॥ १४ ॥ अथा-
 पामार्गतैलम्—अपामार्गक्षारजले तत्कृतकल्केन साधितं तिलजम् । अपह-
 रति कर्णनादं बाधिर्यं चापि पूरणतः ॥ १ ॥ अथ बिल्वतैलम्—गवां मू-
 त्रेण बिल्वानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् । सजलं च सदुग्धं च तद्बाधिर्यहरं परम्
 ॥ १ ॥ अथ चत्वारि तैलानि—तैलं काञ्जिकबीजपूरकरसक्षौद्रैः समुन्नैः
 शृतं स्यात्क्षौद्रार्द्रकशिग्रुमूलकदलीकन्दद्रवैर्वा समम् । शुण्ठीतुम्बरुहिङ्गुभिः
 शृतमपि स्यात्कर्णशूलापहं सिद्धं बिल्वगारेण साजपयसा मूत्रेण बाधिर्यजित्
 ॥ १ ॥ अथ हिङ्वादिक्षारतैलम्—हिङ्गवददारुमिसिमूलकभस्मभूर्ज-
 त्वक्क्षारसिन्धुरुचकोद्भिदशिशुविश्वैः । सस्वर्जिकाविडवचाज्जनमातुलुङ्गै रम्भा-
 रसैः समधुसूक्तमिदं विपक्वम् ॥ १ ॥ तैलं प्रसिद्धमिति तच्छ्रवणामयघ्नं कर्ण-
 प्रणादबधिरत्वहरं नराणाम् । भूमस्तकश्रवणशङ्कुलिकान्तरालशूलापहं चरक-
 सुश्रुतपूजितं च ॥ २ ॥ अथ मधुसूक्तम्—जम्बीराणां फलरसः प्रस्थैकः
 कुडवोन्मितम् । माक्षिकं तत्र दातव्यं पिप्पली च पलोन्मिता ॥ १ ॥ घृत-
 भाण्डे निधायैतद्धान्यराशौ विधारयेत् । मासेन तज्जातरसं मधुसूक्तं प्रजायते
 ॥ २ ॥ इति मधुसूक्तम् ॥ अथ दीपिकातैलम्—महतः पञ्चमूलस्य का-
 ण्डान्यष्टाङ्गुदानि च । क्षौमेणाऽऽवेष्ट्य संसिच्य तैलेनाऽऽदीपयेत्ततः ॥ १ ॥
 यत्तैलं च्यवते तेभ्यः सुखोष्णं तेन पूरयेत् । ज्ञेयं तद्दीपिकातैलं कुष्ठदेवतरो-
 स्तथा ॥ २ ॥ अथ निर्गुण्ड्यादितैलम्—निर्गुण्डजातिरविभृङ्गरसोनरम्भा-
 कार्पासशिग्रुसुरसार्द्रककारवेल्हयः । एषां रसे तिलभवं सविपं सुकर्णबाधिर्य-
 नादकृमिवेदनपूययुक्ते ॥ १ ॥ अथ नागरादितैलम्—नागरसैन्धवमागधि-

मुस्ताहिङ्गुवचालशुनं तिलतैलम् । अर्कसुपक्वपलाशरसेन कर्णरुजं बधिरं वि-
 निहन्ति ॥ १ ॥ अथ कर्णस्त्रावपूतिकर्णकृमिकर्णानां चिकित्सामाह—
 कर्णस्त्रावे पूतिकर्णे तथैव कृमिकर्णके । सामान्यं कर्म कुर्वीत योगान्वैशेषिका-
 नपि ॥ १ ॥ स्वर्जिकाचूर्णसंयुक्तं बीजपूररसं क्षिपेत् । कर्णस्त्रावरूजादाहास्तेन
 नश्यन्त्यसंशयम् ॥ २ ॥ अथ समुद्रफेनचूर्णम्—समुद्रफेनचूर्णं तु न्यस्तं
 श्रवणसंश्रये । पूयस्त्रावं व्रणं सान्द्रं हन्ति ध्वान्तमिवांशुमान् ॥ १ ॥ सर्ज-
 त्वक्चूर्णसंयुतः कार्पासीफलजो रसः । मधुसंमिश्रितः साधुः कर्णस्त्रावे प्रशस्यते
 ॥ २ ॥ जम्बवाग्रपत्रं तरुणं समांशं कपित्थकार्पासफलं च सान्द्रम् । हत्वा
 रसं तन्मधुना विमिश्रं स्त्रावापहं संप्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ एतैः शृतं निम्बकर-
 ज्जैतैलं ससार्पपं स्त्रावहरं प्रदिष्टम् ॥ ३ ॥ अथ जम्बवाद्यं तैलं वृन्दात्—
 आम्रजम्बूप्रवालानि मधुकस्य वटस्य च । एभिस्तु साधितं तैलं पूतिकर्णगदं
 हरेत् ॥ जातीपत्ररसे तैलं विपक्वं पूतिकर्णजित् ॥ १ ॥ अथ कर्णप्रक्षालने
 पञ्चकपायः—कर्णप्रक्षालने शस्तं कवोष्णं सुरभीजलम् । पथ्यामलकमञ्जि-
 ष्ठालोध्रतिन्दुकवाश्च वा ॥ १ ॥ अन्यच्च—राजवृक्षादितोयेन सुरसादिज-
 लेन वा । कर्णप्रक्षालनं कुर्याच्चूर्णैरेतैस्तु पूरणम् ॥ १ ॥ अथ रसाञ्जनादि-
 योगः—वृष्टं रसाञ्जनं नार्थाः क्षीरेण क्षौद्रसंयुतम् । प्रशस्यते चिरोत्थे तत्सा-
 स्त्रावे पूतिकर्णके ॥ १ ॥ अथ कुप्रादितैलम्—कुपं हिङ्गुवचादारुशताह्वा-
 विश्वसैन्धवैः । पूतिकर्णापहं तैलं वस्त्रमूत्रेण साधितम् ॥ १ ॥ अथ शम्बू-
 कतैलम्—शम्बूकस्य तु मांसेन कटुतैलं विपाचयेत् । तस्य पूरणमात्रेण कर्ण-
 नाडी प्रशाम्यति ॥ १ ॥ अथ गन्धकतैलम्—चूर्णेन गन्धकशिलारजनी-
 भवेन मुष्ट्यंशकेन कटुतैलपलाष्टकं तु । धतूरपत्ररसतुल्यमिदं विपक्वं नाडीं
 जयेच्चिरभवामपि कर्णजाताम् ॥ १ ॥ कृमिकर्णविनाशाय कृमिघ्नीं कारयेत्कि-
 याम् । वार्ताकधूमश्च हितः सार्पपः स्नेह एव च ॥ २ ॥ पूरितं हरितलेन
 गव्यमूत्रयुतेन च । धूपने कर्णदौर्गन्ध्ये गुग्गुलुः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ३ ॥ अथ
 कृमिकर्णे योगचतुष्टयम्—सूर्यावर्तकस्वसरं सरं वा सिन्धुवारजम् । लाङ्ग-
 लीमूलतोयं वा धूपणं वाऽपि चूर्णितम् ॥ १ ॥ एते योगास्तु चत्वारः पूरणा-
 त्कृमिकर्णके । कृमीन्निर्मूलयन्त्याशु शतपद्यस्त्रपादिकान् ॥ २ ॥ अथ गोम-
 क्षिकायां योगः—दन्तेन चर्वयेन्मूलं नन्द्यावर्तपलाशयोः । तल्लालापूरिते
 कर्णे ध्रुवं गोमक्षिकां जयेत् ॥ १ ॥ अथ कृमिकर्णे योगः—हलिरविभ-
 क्तिव्योपानेकीकृत्य प्रकल्पयेद्बद्ध्वा । वसनान्तरे रसेन श्रवणे परिपूरयेद्युक्त्या
 ॥ १ ॥ कर्णजलौका नियतं कृमिकीटपिपीलिकास्तथाऽन्येऽपि । निपतन्ति नि-
 रवशेषाः कारण्डाश्चापि मुण्डस्थाः ॥ २ ॥ इति वृन्दात् ॥ अथ कर्णकण्डूक-
 र्णगूथप्रतिनाहकर्णविद्रधिकर्णपाकानां चिकित्सामाह—स्नेहः स्वेदो-
 ऽथ वमनं धूमं मूर्ध्नि विरेचनम् । विधिश्च कफहा सर्वः कर्णे कण्डूमतीप्यते

॥ १ ॥ प्रक्षिध धीमांस्तैलेन प्रविलाप्य च शोधनम् । कर्णगूथं तु मतिमान्निमगजह्याच्छलाकया ॥ २ ॥ अथ कर्णप्रतीनाहे स्नेहस्वेदौ प्रयोजयेत् । ततो विरिक्तशिरसः क्रियां प्रोक्तां समाचरेत् ॥ ३ ॥ विद्रधौ वा विकुर्वन्ति विद्रध्युक्तं चिकित्सितम् । कर्णपाकस्य भैषज्यं कुर्यादतिविसर्पवत् ॥ ४ ॥ अथ कर्णशोथकर्णार्शःकर्णवृद्धानां चिकित्सा—चिकित्सा कर्णशोथानां तथा कर्णार्शसामपि । कर्णवृद्धानां कुर्यात् शोथार्शोर्बुदवद्विपक् ॥ १ ॥ अथ रास्नाद्यो गुग्गुलुः—रास्नामृतैरण्डसुराह्विश्वं तुल्यं पुरेणोपविमृश्य खादेत् । वातामयी कर्णशिरोगदी च नाडीव्रणी चापि भगंदरी च ॥ १ ॥ इति कर्णरोगचिकित्सा ॥

अथ कर्णपालीविकाराणां चिकित्सा ।

पालीसंशोषणे कुर्याद्वातकर्णरुजः क्रियाम् । स्वेदयेद्यत्नतस्तां तु स्विन्नां संवर्धयेत्तैलैः ॥ १ ॥ माहिषनवनीतयुतं सप्ताहं धान्यराशिपर्युषितम् । नवमुसलिकन्दचूर्णं वृद्धिकरं कर्णपालीनाम् ॥ २ ॥ अथ शतावरीतैलम्—शतावरीवाजिगन्धापयस्यैरण्डबीजकैः । तैलं विपक्वं सक्षीरं पालीं संवर्धयेत्सुखम् ॥ १ ॥ अथ जीवनीयं तैलम्—शीतैर्लेपैर्जलौकाभिरुत्पातं समुपाचरेत् । जीवन्त्या चाश्वगन्धार्कवाकुचीबीजसैन्धवैः ॥ १ ॥ हलिनीसुरसाभ्यां च गोधाकङ्कवसान्वितम् । तैलं विपक्वमभ्यङ्गादुन्मन्थं नाशयेद् ध्रुवम् ॥ २ ॥ दुःखवर्धनकं सिक्त्वा जम्बवान्नाश्वत्थपत्रजैः । काथैस्तैलेन सुस्निग्धं तच्चूर्णैश्चावधूलेत् ॥ ३ ॥ बहुशो गोमयैस्तप्तं स्वेदितं परिलेहितम् । घनसारैः समालिम्पेदजामूत्रेण कल्कितैः ॥ ४ ॥ इति कर्णपालीरोगचिकित्सा ॥

अथ पथ्यापथ्यम्—स्वेदो विरेको वमनं नस्यं धूमः शिराव्यधः । गोधूमाः शालयो मुद्रा यवाश्च प्रतनं हविः ॥ १ ॥ लावो मयूरो हरिणस्तित्तिरो वनकुक्कुटः । पटोलं शिशुवार्ताकं सुनिपण्णं कठिलकम् ॥ २ ॥ रसायनानि सर्वाणि ब्रह्मचर्यमभाषणम् । उपयुक्तं यथादोषमिदं कर्णामये हितम् ॥ ३ ॥ दन्तकाष्ठं शिरःस्नानं व्यायामं श्लेष्मलं गुरु । कण्डूयनं तुषारं च कर्णरोगी परित्यजेत् ॥ ४ ॥

इति कर्णरोगाधिकारः ॥

अथ नासारोगाधिकारः ।

अवश्यायानिलरजोभाष्यातिस्वप्नजागरैः । नीचात्युच्चोपधानेन पीतेनान्येन वारिणा ॥ १ ॥ अत्यम्बुपानरमणैश्छर्दिबाष्पग्रहादिभिः । क्रुद्धा वातोल्बणा दोषा नासायां स्त्यानतां गताः ॥ २ ॥ तत्र नासारोगाणां नामानि संख्यां चाऽऽह—आदौ च पीनसः प्रोक्तः पूतिनासस्ततः परम् । नासापाकोऽत्र

गणितः पूयशोणितमेव च ॥ ३ ॥ क्ष्वथुर्भ्रंशथुर्दांसः प्रतिनाहः परिस्रवः । नासाशोषः प्रतिश्यायाः पञ्च सप्तार्जुदानी च ॥ ४ ॥ चत्वार्यर्शांसि चत्वारः शोथाश्चत्वारि तानि च । रक्तपित्तानि नासायां चतुर्ध्विंशद्गदाः स्मृताः ॥ ५ ॥ तेषु पीनसस्य लक्षणमाह—आनह्यते शुष्यति यस्य नासा प्रक्लेदमायाति च धूप्यते च । न वेत्ति यो गन्धरसांश्च जन्तुर्जुष्टं व्यवस्येत्स तु पीनसेन ॥ तं चानिलश्लेष्मभवं विकारं द्रूयात्प्रतिश्यायसमानलिङ्गम् ॥ ६ ॥ अथ पूतिनासमाह—दोषैर्विदग्धैर्गलतालमूलात्संदूषितो यस्य समीरणस्तु ॥ निरेति पूतिर्मुखनासिकाभ्यां तं पूतिनासं प्रवदन्ति रोगम् ॥ ७ ॥ अथ नासापाकमाह—घ्राणाश्रितं पित्तमरूपि कुर्याद्यस्मिन्विकारे बलवांश्च पाकः ॥ तं नासिकापाक इति व्यवस्येद्विक्लेदकोथावथ वाऽपि यत्र ॥ ८ ॥ अथ पूयरक्तमाह—दोषैर्विदग्धैरथ वाऽपि जन्तोर्ललाटदेशेऽभिहतस्य तैस्तैः ॥ नासा स्रवेत्पूयमसृग्विमिश्रं तं पूयरक्तं प्रवदन्ति रोगम् ॥ ९ ॥ अथ क्ष्वथुमाह । तत्राऽऽदौ दोषजमाह—घ्राणाश्रिते मर्मणि संप्रदुष्टो यस्यानिलो नासिकया निरेति । कफानुयातो बहुशोऽथ शब्दस्तं रोगमाहुः क्ष्वथुं विधिज्ञाः ॥ १० ॥ अथाऽऽगन्तुजमाह—तीक्ष्णोपयोगादतिजिघ्रतो वा भावान्कट्टनर्कनिरीक्षणाद्वा । मूलादिभिर्वा तरुणास्थिमर्मण्युद्धाटितेऽन्यः क्ष्वथुर्निरेति ॥ ११ ॥ अथ भ्रंशथुमाह—प्रभ्रश्यते नासिकया हि यस्य सान्द्रो विदग्धो लवणः कफस्तु । प्राक्संचितो मूर्धनि पित्ततप्तस्तं भ्रंशथुं रोगमुदाहरन्ति ॥ १२ ॥ अथ दीप्तमाह—घ्राणे भृशं दाहसमन्विते तु दिनेऽपि निरेद्धम इवेह वायुः । नासा प्रदीप्तेव च यस्य जन्तोर्व्याधिं तु तं दीप्तमुदाहरन्ति ॥ १३ ॥ अथ प्रतिनाहमाह—उच्छ्वासमार्गं तु कफः सवातो रुन्ध्यात्प्रतीनाहमुदाहरेत्तम् ॥ अथ स्रावमाह—घ्राणाद्धनः पीतसितस्तनुर्वा दोषः स्रवेत्स्रावमुदाहरेत्तम् ॥ १४ ॥ अथ नासाशोषमाह—घ्राणाश्रिते श्लेष्मणि मारुतेन पित्तेन गाढं परिशोषिते च । कृच्छ्राच्छ्वसेदूर्ध्वमधश्च जन्तुर्यस्मिन्स नासापरिशोष उक्तः ॥ १५ ॥ अथ प्रतिश्यायमाह । तस्य निदानं द्विविधम्—एकं सद्योजनकं तद्वलवत्त्वेन चयं नापेक्षते । यत उक्तम्—न केवलं चयं प्राप्य दोषाः कुप्यन्ति देहिनाम् । अन्यदाऽपि हि कुप्यन्ति हेतुबाहुल्यतोरणात् ॥ १ ॥ चयादिक्रमशोजनकमपरम् । तथा च—संचयः संचयात्प्रकोपः प्रकोपात्प्रसरः प्रसरात्स्थानसंश्रयस्ततो व्यक्तिस्ततो भेद इति । तत्र प्रतिश्यायस्य सद्योजनकनिदानपूर्विकां संप्राप्तिमाह—संधारणाजीर्णरजोतिभाष्यक्रोधतुवैषम्यशिरोभितापैः । प्रजागरात्स्वप्नवाम्बुशीतावश्यायकैर्मैथुनबाष्पशोकैः ॥ १६ ॥ संस्थानदोषे शिरसि प्रवृद्धो वायुः प्रतिश्यायमुदीरयेत्तु ॥ चयादिक्रमशोजनकनिदानपूर्विकां संप्राप्तिमाह—चयं गता मूर्धनि मारुतादयः पृथक्समस्ताश्च तथैव शोणितम् । प्रकुप्यमाणा विविधैः प्रकोप-

नैस्ततः प्रतिश्यायकरा भवन्ति हि ॥ १७ ॥ अथ पूर्व्वरूपमाह—क्षवप्र-
वृत्तिः शिरसोऽभिपूर्णता स्तम्भोऽङ्गमर्दः परिहृष्टरोमता । उपद्रवाश्चाप्यपरे
पृथग्विधा नृणां प्रतिश्यायपुरःसराः स्मृताः ॥ १८ ॥ अथ वातिकस्य प्र-
तिश्यायस्य लक्षणमाह—आनद्धा पिहिता नासा तनुस्त्रावप्रसेकिनी ।
गलताल्वोष्ठशोषश्च निस्तोदः शङ्खयोस्तथा ॥ १९ ॥ भवेत्स्वरोपघातश्च प्रति-
श्यायेऽनिलात्मके ॥ अथ पैत्तिकमाह—उष्णः सपीतकः स्त्रावो घ्राणात्स-
वति पैत्तिके ॥ २० ॥ कृशोऽपि पाण्डुसंतप्तो भवेदुष्णाभिपीडितः ॥ नासया
तु सधूमाग्निं वमतीव स मानवः ॥ २१ ॥ अथ श्लैष्मिकमाह—घ्राणा-
त्कफकृतः श्वेतः कफः शीतः स्रवेद्बहुः । शुक्लावभासः शूनाक्षो भवेद्गुरुशिरा
नरः ॥ गलताल्वोष्ठशिरसां कण्डूभिरतिपीडितः ॥ २२ ॥ अथ सान्निपा-
तिकमाह—भूत्वा भूत्वा प्रतिश्यायो योऽकस्मात्संनिवर्तते । संपक्वो वाऽ-
प्यपक्वो वा स सर्वप्रभवः स्मृतः ॥ २३ ॥ अथ दुष्टप्रतिश्यायलिङ्गमाह—
प्रक्लिद्यते मुहुर्नासा पुनश्च परिशुष्यति । पुनरानह्यते वाऽपि पुनर्विब्रियते
तथा ॥ २४ ॥ निःश्वासो वाति दुर्गन्धो नरो गन्धान्न वेत्ति च । एवं दुष्टप्र-
तिश्यायं जानीयात्कृच्छ्रसाधनम् ॥ २५ ॥ अथ रक्तजमाह—रक्तजे तु
प्रतिश्याये रक्तस्त्रावः प्रवर्तते । पित्तप्रतिश्यायकृतैर्लिङ्गैश्चापि समन्वितः ॥ २६ ॥
ताम्राक्षश्च भवेज्जन्तुरोघातप्रपीडितः । दुर्गन्धोच्छ्वासवक्त्रश्च गन्धानपि न
वेत्ति सः ॥ २७ ॥ अथासाध्या भवन्तीत्याह—सर्व एव प्रतिश्याया
नरस्याप्रतिकारिणः । दुष्टां यान्ति कालेन तदाऽसाध्या भवन्ति च ॥ २८ ॥
अथ प्रतिश्यायेषु कृमयोऽपि भवन्तीत्याह—मूर्च्छन्ति कृमयश्चात्र श्वेताः
स्निग्धास्तथाऽणवः । कृमिजो यः शिरोरोगस्तुल्यं तेनात्र लक्षणम् ॥ २९ ॥
अथ प्रतिश्याया अपरानपि विकारान्कुर्वन्ति तानाह—बाधिर्यमान्ध्यमग्रत्वं
घोरांश्च नयनामयान् । शोफाग्निसादकासांश्च वृद्धाः कुर्वन्ति पीनसाः ॥ ३० ॥
पीनसमारभ्य प्रतिश्यायपर्यन्तं पञ्चदशोक्ताः । अपरांश्चतुस्त्रिंशत्संख्यापू-
रणायाऽऽह—अर्बुदं सप्तधा शोथाश्चत्वारोऽर्शश्चतुर्विधम् । चतुर्विधं रक्त-
पित्तमुक्तं घ्राणेऽपि तद्विदुः ॥ ३१ ॥ अथ चिकित्साभेदात्पीनसस्याऽऽ-
मस्य लक्षणमाह—शिरोगुरुत्वमरुचिर्नासास्त्रावस्तनुस्वरः । क्षामः धीवति
चाभीक्षणमामपीनसलक्षणम् ॥ ३२ ॥ अथ पक्वपीनसस्य लक्षणमाह—
आमलिङ्गान्वितः श्लेष्मा घनः खेषु निमज्जति । स्वरवर्णविशुद्धिश्च पक्वपीनस-
लक्षणम् ॥ ३३ ॥ इति नासारोगनिदानम् ॥

अथ नासारोगाणां चिकित्सा ।

तत्राऽऽदौ पीनसस्य चिकित्सामाह—सर्वेषु पीनसेष्वादौ निवाता-
गारगो भवेत् । शिरसोऽभ्यञ्जनैः स्वेदैर्नैस्यैर्मन्दोष्णभोजनैः ॥ वसनैश्चैतपा-

नैश्च तान्यथास्वमुपाचरेत् ॥ १ ॥ सर्जार्जुनोदुम्बरवत्सकानां त्वचा कपायैः
 परिधावनेन । कपायकल्कैरपि चैभिरेव सिद्धं घृतं घ्राणविपाकनाशि ॥ २ ॥
 इति सर्जकादिकपायो घृतं च ॥ अथ मरीचादियोगः—सर्वेषु सर्वकालं
 पीनसरोगेषु जातमात्रेषु । मरिचं गुडेन दध्ना भुञ्जीत नरः सुखं लभते ॥ १ ॥
 अथ पञ्चमूल्यादियूपः—पञ्चमूलीयुतं क्षीरं किं वा स्याच्चित्रकाभया । स-
 पिर्गुण्डो विडङ्गश्च यूपः पीनसशान्तये ॥ १ ॥ अथ गुडाद्यो योगः—गुड-
 मरिचविमिश्रं पीतमाशु प्रकामं हरति दधि नराणां पीनसं दुर्निवारम् ।
 यदि तु सघृतमन्नं श्लक्ष्णगोधूमचूर्णैः कृतमुपहरतेऽसौ तत्कुतोऽस्यावकाशः
 ॥ १ ॥ अथ वेल्गोधूमयोगौ—वेल्गोधूमभोजी च निद्राकाले च शीत-
 लम् । जलं पिबति यो रोगी पीनसान्मुच्यते नरः ॥ १ ॥ अथ व्योषादि-
 चट्टी—व्योपचित्रकतालीसतित्तिडीकाम्लवेतसम् । सचव्याजाजितुल्यांशमे-
 लात्वक्पत्रपादिकम् ॥ १ ॥ व्योपादिकमिदं चूर्णं पुराणगुडमिश्रितम् । पी-
 नसश्वासकासघ्नं रुचिस्वरकरं परम् ॥ २ ॥ अथ कट्फलादिचूर्णं काथ-
 श्च—कट्फलं पौष्करं शृङ्गी व्योषं यासश्च कारवी । एषां चूर्णं कपायं वा
 दद्यादाद्रकजै रसैः ॥ १ ॥ पीनसे स्वरभेदे च तमके सहलीमके । संनिपाते
 कफे वाते कासे श्वासे च शस्यते ॥ २ ॥ अथ पाठादितैलम्—पाठाद्विर-
 जनीमूर्वापिप्पलीजातिपल्लवैः । एभिश्च तैलं संसिद्धं नस्यतः पीनसापहम्
 ॥ १ ॥ अथ षड्विन्दुघृतम्—मृङ्गं लवङ्गं मधुकं च कुष्ठं सनागरं गोघृ-
 तमिश्रितं च । षड्विन्दु नासास्थिगतं च पीनसं शिरोगतं रोगशतं च हन्ति
 ॥ १ ॥ अथ कलिङ्गाद्यवपीडः—कलिङ्गहिङ्गुमरिचलाक्षास्वरसकट्फलैः ।
 कुष्ठोग्राशियुजन्तुघ्नैरवपीडः प्रशस्यते ॥ १ ॥ कफघ्नमन्नं वार्ताकं कुलत्थाढकि-
 मुद्गजाः । यूपाः ससैन्धवव्योपाः शस्ताश्चोष्णास्तु पीनसे ॥ २ ॥ इति पीन-
 सचिकित्सा ॥

अथापररोगाणां चिकित्सा । अथ व्याघ्रीतैलम्—व्याघ्रीदन्तीव-
 चाशियुसुरसाव्योपसिन्धुजैः । सिद्धं तैलं नसि क्षिप्तं पूतिनासागदापहम्
 ॥ १ ॥ अथ शियुतैलम्—शियुसिंहीनिकुम्भानां बीजैः सव्योपसैन्धवैः ।
 बिल्वपत्ररसे सिद्धं तैलं स्यात्पूतिनस्यनुत् ॥ १ ॥ नासापाके पित्तनाशं वि-
 धानं कार्यं सर्वं बाह्यमाभ्यन्तरं च । हरेद्रक्तं क्षीरिवृक्षत्वचश्च योज्याः सेके
 सघृताश्च प्रलेपाः ॥ २ ॥ पूयास्त्रे रक्तपित्तघ्नाः कपाया नावनानि च । पाक-
 दाहादिरोगेषु शीता लेपादिकाः क्रियाः ॥ ३ ॥ घृतगुग्गुलिमिश्रस्य सिक्थ-
 कस्य प्रयत्नतः । धूमं क्षवथुरोगघ्नं अंशथुघ्नं च निर्दिशेत् ॥ ४ ॥ शुण्ठीकुष्ठ-
 कणाबिल्वद्राक्षाकल्ककपायवत् । तैलं पक्कमथाऽऽज्यं वा नस्यात्क्षवथुनाश-
 नम् ॥ ५ ॥ नस्यं हितं निम्बरसाज्जनाभ्यां दीप्ते शिरःस्वेदनमल्पशस्तु ।
 नस्ये कृते क्षीरजलावसेकान्शंसन्ति भुञ्जीत च मुद्गयूपैः ॥ ६ ॥ नासावनाहे

कर्तव्यं पानं गव्यस्य सर्पिषः । नासाशोषे क्षीरपानं ससितं च प्रशस्यते ॥ ७ ॥
नासास्त्रावे घ्राणयोश्चूर्णमुक्तं नाड्या देयं येऽवपीडाश्च पथ्याः । तीक्ष्णान्धूमा-
न्देवदार्वाग्निकाभ्यां मांसं चाऽऽजं पथ्यमत्राऽऽदिशन्ति ॥ ८ ॥

अथ प्रतिश्यायप्रतीकारः—प्रतिश्यायेषु सर्वेषु गृहं वातविवर्जितम् ।
वखेण गुरुणोष्णेन शिरसो वेष्टनं हितम् ॥ १ ॥ बालमूलकयोर्यूपः कुलत्थो-
त्थश्च पूजितः । स्वेदोष्णं च हिमं भोज्यं पाचनाय प्रशस्यते ॥ २ ॥ ततः
पक्वं कफं ज्ञात्वा हरेच्छीर्षविरेचनैः । पिप्पल्यः शिग्रुबीजानि विडङ्गं मरिचानि
च ॥ ३ ॥ अवपीडः प्रशस्तोऽयं प्रतिश्यायनिवारणः । वातिके च प्रतिश्याये
पिबेत्सर्पिष्यथाक्रमम् ॥ ४ ॥ पञ्चभिर्लवणैः सिद्धं प्रथमेन गणेन च । रक्तपि-
त्तोत्थयोः पेयं सर्पिर्मधुरकैः शृतम् ॥ ५ ॥ परिपेकान्प्रदेहांश्च कुर्यादपि च
शीतलान् । हितं पित्तप्रतिश्याये पाचनार्थं घृतं पयः ॥ ६ ॥ शृङ्गबेरेण प-
यसा शृङ्गबेरमथापि वा । सर्पिपा भृष्टया धान्या शिरसो लेपतः क्षणात्
॥ ७ ॥ नासायां संप्रवृत्तं च रुधिरं च विनश्यति । कफजे सर्पिषा स्निग्धं
तिलमापविपकया ॥ ८ ॥ यवाग्वा वामयित्वा तु श्लेष्मघ्नं क्रममाचरेत् ।
दार्वाङ्गुदनिकुम्भैश्च किण्विह्वा सरलेन च । वर्तयोऽत्र कृता योज्या धूमपाने
यथाविधि ॥ ९ ॥ इति वृन्दात् । विडङ्गं सैन्धवं हिङ्गु गुग्गुलुः समनः-
शिलः । प्रतिश्याये वचायुक्तं शक्या धूमं पिबेन्नरः ॥ १ ॥ एतच्चूर्णं समा-
घ्रातं प्रतिश्यायं विनाशयेत् । घृततैलसमायुक्तं सक्तुधूमं पिबेन्नरः ॥ २ ॥
स धूमः स्यात्प्रतिश्यायकासहिक्काहरः परः । प्रतिश्याये पिबेद्धूमं सर्वं गव्य-
समायुतम् ॥ ३ ॥ चातुर्जातकचूर्णं वा द्वेयं वा कृष्णजीरकम् । प्रतिश्यायेषु
सशिरःपीडेषु नवसागरम् ॥ ४ ॥ समानं कलिकाचूर्णं सूक्ष्मं संचूर्णितं द्व-
यम् । गुज्जामात्रं तु तच्चूर्णं नस्यं प्रधमनं चरेत् ॥ ५ ॥ नश्यन्त्यनेन नस्येन
प्रतिश्यायशिरोरुजः । सवचाचूर्णमाघ्राय वाससा पोटलीकृतम् ॥ ६ ॥ का-
रवी वस्त्रवद्धा वा प्रतिश्यायमपोहति । शटीतामलकीव्योपचूर्णं सर्पिर्गुडान्वि-
तम् ॥ ७ ॥ हरेद्दोरं प्रतिश्यायं पार्श्वहृदस्तिशूलनुत् । पुटपक्वं जयापत्रं तैल-
सैन्धवसंयुतम् । प्रतिश्यायेषु सर्वेषु शीलितं परमौषधम् ॥ ८ ॥

अथ चित्रकहरीतकी—चत्वार्यत्र शतानि चित्रकजटायुकपञ्चमूलामृता-
धात्रीणामुदकर्मणे त्रिभिरपां द्रोणैश्च संकाथयेत् । पादस्थे कथने गुडस्य च
शतं पथ्याढकेनान्वितं पक्तव्यं शृतशीतले च मधुनः प्रस्थार्धमात्रं क्षिपेत्
॥ १ ॥ व्योपस्य त्रिसुगन्धकस्य च पलान्यत्रैव पदं प्रक्षिपेत्क्षारस्यार्धपलं र-
सायनमिदं संसेव्यते सर्वदा । शोषश्वासमलावकाशवमथुश्लेष्मप्रतिश्यायिभिः
क्षीणोरःक्षतहिक्किभिः कफशिरोरुग्भिः ग्रनष्टाग्निभिः ॥ २ ॥ इति चित्रकह-
रीतकी योगरत्नावलितः ॥

अथ हिङ्गवादि तैलं चिकित्साकलिकातः—हिङ्गुव्योपविडङ्गकदफ-

लवचारुक्तीक्ष्णगन्धैर्युतैर्लाक्षाश्वेतपुनर्नवाब्दकुटजैः पुष्पोद्भवैः सौरसैः । इत्येभिः कटुतैलमेतदनले मन्दे समूत्रं शृतं पीतं नासिकया यथाविधि भवेन्नासामधिभ्यो हितम् ॥ १ ॥ इति हिङ्गवादितैलम् ॥ कृमिघ्ना ये क्रमाः प्रोक्तास्तान्वै कृमिषु योजयेत् । धावनानि कृमिघ्नानि भेषजानि च बुद्धिमान् ॥ १ ॥ रक्ताग्रस्वरसः शुद्धस्तक्रेण सह नस्यतः । तस्य पर्णानि पिष्ट्वा च बद्धीयाद्वासिकामुखे ॥ २ ॥ पतन्ति कीटकाः सद्यो योगोऽयं त्रिदिनैर्हितः । पीनसान्मुच्यते रोगी शतशोऽनुमितं त्विदम् ॥ ३ ॥ इति वैद्यविलासात् ॥ इति प्रतिश्यायादिचिकित्सा ॥ रक्तपित्तानि शोथाश्च तथाऽशौस्यर्बुदानि च । नासिकायां स्युरेतेषां स्वं स्वं कुर्याच्चिकित्सितम् ॥ १ ॥ गृहधूमकणादारुक्षारनक्ताहसैन्धवैः । सिद्धं शिखरिबीजैश्च तैलं नासारशोसे हितम् ॥ २ ॥ रक्तकरवीरपुष्पं जात्यं वा तथा मल्लिकायाः । पुतैः समं तिलतैलं नासारशोनाशनं परम् ॥ ३ ॥ नासाशोके क्षीरसर्पिःप्रधानं तैलं सिद्धं चाणुकलकेन नस्यम् । सर्पिष्पानं भोजनं लाङ्गलैश्च स्नेहस्वेदैः सैहिकश्चात्र धूमः ॥ ४ ॥ इति वृन्दात् ॥ क्षारोऽर्बुदेशमांसे च क्रिया शोषेऽप्यवेक्ष्य च । स्थितिर्निर्वातनिलये प्रगाढोष्णीपधारणम् । गण्डूपो लङ्घनं नस्यं धूमश्छर्दिः शिरान्वधः ॥ १ ॥

अथ पथ्यापथ्यम्—स्नेहः स्वेदः शिरोभ्यङ्गः पुराणा यवशालयः । कुलित्थमुद्रयोर्यूपो ग्राम्या जाङ्गलजा रसाः ॥ १ ॥ वार्ताकं कुलकं शिशु कर्कोटं बालमूलकम् । लशुनं दधि तप्तम्बु वारुणी च कटुत्रयम् ॥ २ ॥ कटुम्ललवणं स्निग्धमुष्णं च लघु भोजनम् । नासारोगे पीनसादौ सेव्यमेतद्यथामलम् ॥ ३ ॥ स्नानं क्रोधं शक्नुमूत्रवातवेगान्शुचं द्रवम् । भूमिशय्यां च यत्नेन नासारोगी परित्यजेत् ॥ ४ ॥ इति नासारोगाधिकारः ॥

अथ शिरोरोगनिदानम् ।

धूमातपतुषाराम्बुकीडातिस्वप्नजागरैः । उत्सेधातिपुरोवातबाष्पनिग्रहरोदनैः ॥ १ ॥ अत्यम्बुमद्यपानेन कृमिभिर्वेगधारणैः । उपधानमृजाभ्यङ्गद्वेषाच्च प्रततेक्षणैः ॥ २ ॥ असात्म्यगन्धदुष्टाजभापाद्यैश्च शिरोरोगताः । शिरोरोगास्तु जायन्ते वातपित्तकफैस्त्रिभिः ॥ ३ ॥ संनिपातेन रक्तेन क्षयेण कृमिभिस्तथा । सूर्यावर्तान्तवातशङ्खकार्धावभेदकाः । एकादशविधस्यास्य लक्षणानि प्रचक्षते ॥ ४ ॥ अथ चोक्तम्—सर्व एव शिरोरोगाः संनिपातसमुद्भवाः । औत्कर्ष्यात्कीर्तितास्ते हि दशैकश्च क्षयेण च ॥ १ ॥ अथ वातिकस्य लक्षणमाह—यस्यानिमित्तं शिरसो रुजश्च भवन्ति तीव्रा निशि चातिमात्रम् । बन्धोपतापैः प्रशमश्च यत्र शिरोभितापः स समीरणेन ॥ ५ ॥ अथ पैत्तिकमाह—यस्योष्णमङ्गारचितं यथैव भवेच्छिरो दहति चाक्षिनासम् । शीतेन रात्रौ च भवेच्छमश्च शिरोभितापः स तु पित्तकोपात् ॥ ६ ॥ अथ श्लैष्मिकमाह—

शिरो भवेद्यस्य कफोपदिग्धं गुरु प्रतिष्टब्धमथो हिमं च । शूनाक्षिनासावदनं च यस्य शिरोभितापः स कफप्रकोपात् ॥ ७ ॥ अथ सांनिपातिकमाह—शिरोभितापे त्रितयप्रवृत्ते सर्वाणि लिङ्गानि समुद्भवन्ति ॥ अथ रक्तजमाह—रक्तात्मकः पित्तसमानलिङ्गः स्पर्शासहत्वं शिरसो भवेच्च ॥ ८ ॥ अथ क्षयजमाह—वसावलासक्षतसंभवानां शिरोगतानामतिसंक्षयेण । क्षयप्रवृत्तः शिरसोऽभितापः कष्टो भवेदुग्ररुजोऽतिमात्रम् ॥ ९ ॥ संस्वेदनच्छर्दनधूमनस्यैरसृग्विमोक्षैश्च विवृद्धिमेति ॥ अथ कृमिजमाह—निस्तुद्यते यस्य शिरोऽतिमात्रं संभक्ष्यमाणं स्फुटतीव चान्तः । घ्राणाच्च गच्छेद्बुधिरं सपूर्य शिरोभितापः कृमिभिः स घोरः ॥ १० ॥ अथ सूर्यावर्तमाह—सूर्योदयं या प्रति मन्दमन्दमक्षिभ्रुवौ रुक्समुपैति गाढम् । विवर्धते चांशुमता सहेव सूर्यापवृत्तौ विनिवर्तते च ॥ ११ ॥ शीतेन शान्तिं लभते कदाचिदुष्णेन जन्तुः सुखमामुयाच्च । सर्वात्मकं कष्टतमं विकारं सूर्यापवृत्तं तमुदाहरन्ति ॥ १२ ॥ अथानन्तवातमाह—दोषास्तु दुष्टास्त्रय एव मन्यां संपीड्य गाढं सरुजां सुतीव्राम् । कुर्वन्ति साक्षिभ्रुवि शङ्खदेशे स्थितिं करोत्याशु विशेषतस्तु ॥ १३ ॥ गण्डस्य पार्श्वे च करोति कम्पं हनुग्रहं लोचनजान्विकारान् । अनन्तवातं तमुदाहरन्ति दोषत्रयोत्थं शिरसो विकारम् ॥ १४ ॥ अथ शङ्खकमाह—पित्तरक्तानिला दुष्टाः शङ्खदेशे विमूर्छिताः । तीव्ररुग्दाहरोगं हि शोथं कुर्वन्ति दारुणम् ॥ १५ ॥ स शिरो विपवद्वेगान्निरुद्ध्याऽशु गलं तथा । त्रिरात्राजीवितं हन्ति शङ्खको नाम नामतः ॥ त्र्यहं जीवति भैषज्यं प्रत्याख्यायास्य कारयेत् ॥ १६ ॥ अथार्धावभेदकमाह—रुक्षाशनादध्यशनात्प्राग्वातावश्यमैथुनैः । वेगसंधारणायसव्यायामैः कुपितोऽनिलः ॥ १७ ॥ केवलः सकफो वाऽर्धं गृहीत्वा शिरसो बली । मन्याभ्रशङ्खकर्णाक्षिललाटाधेपु वेदनाम् ॥ १८ ॥ शस्त्राशनिनिभां कुर्यात्तीव्रां सोऽर्धावभेदकः । नयनं वाऽथ वा श्रोत्रमतिवृद्धो विनाशयेत् ॥ १९ ॥ इति शिरोरोगनिदानम् ॥

अथ शिरोरोगाणां चिकित्सा ।

अथ वातिकस्य चिकित्सामाह—वातजातशिरोरोगे स्नेहस्वेदनमर्दनम् । पानाहारोपनाहांश्च कुर्याद्वातामयापहान् ॥ १ ॥ कुष्ठमेरण्डमूलं च नागरं तक्रपेपितम् । कटुपुष्पं च शिरःपीडां भाललेपनतो हरेत् ॥ २ ॥ रसः श्वासकुठारो यस्तस्य नस्यं विशेषतः । शिरःशूलं हरत्येव विधेयं नात्र संशयः ॥ ३ ॥ देवदारु नतं कुष्ठं नलदं विश्वभेषजम् । सकाञ्जिकः स्नेहयुक्तो लेपो वातशिरोर्तिनुत् ॥ ४ ॥ कुष्ठमेरण्डमूलं च लेपः काञ्जिकपेपितः । शिरोर्तिं वातजां हन्यात्पुष्पं वा मुचुकुन्दजम् ॥ ५ ॥ अथ शिरोवस्तिविधिः—आशिरोव्यापि तच्चर्म पोडशाङ्गुलमुच्छ्रितम् । तेनाऽऽवेष्ट्य शिरोऽधस्तान्मापकत्केन

लेपयेत् ॥ १ ॥ निश्चलस्योपविष्टस्य तैलैः कोष्णैः प्रपूरयेत् । धारयेदासृजः शान्तेर्यामं यामार्धमेव वा ॥ २ ॥ शिरोबन्धिर्हरत्येव शिरोरोगं मरुद्भवम् । हनुमन्याक्षिकर्णातिमर्दितं मूर्धकम्पनम् ॥ ३ ॥ विना भोजनमेवैव शिरो-
बन्धिः प्रयुज्यते । पञ्चाहं वाऽपि सप्ताहं षडहं चैवमाचरेत् ॥ ४ ॥ ततोऽप-
नीतस्नेहस्तु मोचयेद्वस्तिबन्धनम् । शिरोललाटवदनग्रीवांसादीन्विमर्दयेत् ।
सुखोष्णेनाम्भसा गात्रं प्रक्षाल्याश्नाति यद्वितम् ॥ ५ ॥ अथ पैत्तिकचिकि-
त्सामाह—पित्तात्मके शिरोरोगे स्निग्धं सम्यग्विरेचयेत् । मृद्वीकात्रिफले-
क्षूणां रसैः क्षीरघृतैरपि ॥ १ ॥ शर्कराक्षीरसलिलैः शिरश्च परिपेचयेत् । स-
र्पिपः शतधौतस्य शिरसा धारणं हितम् ॥ २ ॥ निमज्जनं च शिरसः शीतले
शस्यतेऽम्भसि । कुमुदोत्पलपद्मानां शीतानां चन्दनाम्बुभिः ॥ ३ ॥ स्पर्शाः
सुखाश्च पवनाः सेव्या दाहार्तिशान्तये । चन्दनोशीरयष्ट्याह्वबलाव्याघ्रनखो-
त्पलैः ॥ ४ ॥ क्षीरपिष्टैः प्रदेहः स्याच्छृतैर्वा परिपेचनम् । यष्ट्याह्वचन्दनान-
न्ताक्षीरसिद्धं हितं घृतम् ॥ ५ ॥ नावनं शर्कराद्राक्षामधुकैर्वाऽपि पित्तजे ।
धात्रीकसेरुहबीरपद्मपद्मकचन्दनैः ॥ ६ ॥ दूर्वाशीरनलानां च मूलैः कुर्यात्प्र-
लेपनम् । शिरोर्तिं पित्तजां हन्याद्रक्तपित्तरुजं तथा ॥ ८ ॥ रसः श्वासकुठा-
रोऽल्पः कर्पूरः कुङ्कुमं नवम् । सिता छागीपयः सर्वं चन्दनेनानुवर्पयेत् ॥ ८ ॥
तस्य नस्यं भिषग्दद्यात्पित्तजायां शिरोरुजि । किं तु मस्तकशूलेषु सर्वेष्वेव
हितं मतम् । गुडनागरकल्कस्य नस्यं मस्तकशूलनुत् ॥ ९ ॥ अथ श्लेष्मिक-
चिकित्सा—श्लेष्मिके लङ्घनं रूक्षं लेपस्वेदादि कारयेत् । हरेणुनतशैलेयमु-
ल्लैलागुरुदारुभिः ॥ १ ॥ मांसीरास्त्रोरुवृकैश्च कोष्णो लेपः कफार्तिनुत् । शु-
ण्ठीकुष्ठप्रपुत्रातदेवकाष्ठैः समाहिपैः । मूत्रपिष्टैः सुखोष्णैश्च लेपः श्लेष्मशिरो-
र्तिनुत् ॥ २ ॥ अथ सांनिपातिकचिकित्सा—संनिपातसमुत्थेऽत्र घृतं
तैलं च वस्तयः । धूमनस्यशिरोरेकलेपस्वेदाद्यमाचरेत् ॥ पुराणसर्पिपः पानं
विशेषेण दिशन्ति हि ॥ १ ॥ अथ स्वरफलादिप्रधमनम्—स्वरफलतिल-
पर्णाबीजसंयुक्तभूतां कुशदलवटबीजत्वग्रजोऽर्धशतुत्थम् । प्रधमनविधिना
तद्वत्मात्रं शिरोरुक्प्रलपनकफतन्द्रासंनिपातं निहन्त्यात् ॥ १ ॥ अथ रक्त-
जचिकित्सा—रक्तजे पित्तवत्सर्वं भोजनालेपसेवनम् । शोतोष्णयोश्च वि-
न्यासो विशेषाद्रक्तमोक्षणम् ॥ १ ॥ अथ क्षयजचिकित्सामाह—क्षयजे
क्षयनाशाय कर्तव्यो बृंहणो विधिः । पाने नस्ये च सर्पिः स्याद्वातघ्नैर्मधुरैः
शृतम् ॥ १ ॥ योजयेत्सगुडं सर्पिर्घृतपूरांश्च भक्षयेत् । नावनं क्षीरसर्पिर्भ्यां
पानं च क्षीरसर्पिपोः । क्षीरपिष्टैस्तिलैः स्वेदो जीवनीयैश्च शस्यते ॥ २ ॥ अथ
कृमिजचिकित्सा—कृमिजे तु शिरोरोगे व्योपनक्ताह्वशिमुजैः । अजामूत्रेण
सर्पिष्टैर्नस्यं कृमिहरं परम् ॥ १ ॥ अथ विडङ्गाद्यं तैलम्—विडङ्गं स्वर्जिका
दन्ती हिङ्गु गोमूत्रसंयुतम् । त्रिपक्वं सर्पिपं तैलं कृमिघ्नं नस्यतः स्मृतम् ॥ १ ॥

अथ सूर्यावर्तार्धावभेदकयोश्चिकित्सा—सूर्यावर्ते शिरावेधो नावनं क्षीर-
सर्पिषोः । हितः क्षीरघृताभ्यासस्ताभ्यां सह विरेचनम् ॥ १ ॥ भृङ्गराजरस-
श्छागक्षीरतुल्योऽर्कतापितः । सूर्यावर्ते निहन्त्याशु नस्येनैव प्रयोगराद ॥ २ ॥
शिरीषमूलकफलैरवपीडं प्रयोजयेत् । अवपीडो हितो वा स्याद्वाचापिप्पलिभिः
कृतः ॥ ३ ॥ जाङ्गलानि च मांसानि कारयेदुपनाहनम् । तेनास्य शाम्यते
व्याधिः सूर्यावर्तः सुदारुणः ॥ ४ ॥ एष एव विधिः कार्यः कृत्स्नश्चार्धावभेदके ।
अर्धावभेदके पूर्वं स्नेहः स्वेदो हि भेषजम् ॥ ५ ॥ विरेकः कायशुद्धिश्च धूपः
स्निग्धोष्णभोजनम् । विडङ्गानि तिलान्कृष्णान्समान्पिष्ट्वा विलेपयेत् ॥ ६ ॥
नस्यं चाथाऽऽचरेत्स्मादर्थभेदं व्यपोहति । गिरिकर्णफलं मूलं सजलं नस्य-
माचरेत् ॥ ७ ॥ मूलं वा बन्धयेत्कर्णे निहन्त्यर्धशिरोरुजम् । मरीचं भृङ्गज-
द्रवैर्मरिचं शालितण्डुलैः ॥ ८ ॥ अर्धशीर्षव्यथां हन्ति लेपो वा शुण्ठिवा-
रिणा । पिबेत्सशर्करं क्षीरं नीरं वा नारिकेलजम् ॥ ९ ॥ सुशीतं वाऽपि पा-
नीयं सर्पिर्वा नस्यतस्तयोः । सारिवाकुष्ठमधुकवचाकृष्णोत्पलैस्तथा ॥ १० ॥
लेपः सकाञ्जिकस्नेहः सूर्यावर्तार्धभेदयोः । सितोपलायुतं घृष्टं मदनं गोपयो-
न्वितम् ॥ ११ ॥ नस्यतोऽनुदिते सूर्ये निहन्त्येवार्धभेदकम् । पीत्वा शशमु-
ण्डरसं मरिचैरवचूर्णितम् ॥ १२ ॥ भोजनादौ तु सप्ताहात्सूर्यावर्तार्धभेदकौ ।
हन्ति सर्वात्मकौ शीघ्रं दुःखदौ भृशदारुणौ ॥ १३ ॥ अथानन्तवातशङ्ख-
कयोश्चिकित्सा—अनन्तवाते कर्तव्यः सूर्यावर्तहितो विधिः । शिराव्यधश्च
कर्तव्योऽनन्तवातप्रशान्तये ॥ १ ॥ आहारश्च प्रदातव्यो वातपित्तविनाशनः ।
मधुमस्तकसंयावघृतपूरैर्विशेषतः ॥ २ ॥ दूर्वा हरिद्रा मज्जिष्ठा सनिम्बोक्षीर-
पन्नकम् । एतद्व्रलेपनं कुर्याच्छङ्खकस्य प्रशान्तये ॥ ३ ॥ शीततोयनिपेकश्च शीत-
लक्षीरसेवनम् । कल्कैश्च क्षीरवृक्षाणां शङ्खके लेपनं हितम् ॥ ४ ॥ बला नी-
लोत्पलं दूर्वा तिलाः कृष्णाः पुनर्नवा । शङ्खकेऽनन्तवाते च लेपः सर्वशिरो-
र्तिनुत् ॥ ५ ॥ अथ सामान्यप्रतीकारमाह । अथ पङ्चविन्दुतैलम्—
एरण्डमूलं तगरं शताह्वा जीवन्ति रास्त्रा सह सैन्धवेन । भृङ्गं विडङ्गं मधु-
यष्टिका च विश्वौषधं कृष्णतिलस्य तैलम् ॥ १ ॥ अजापयस्तैलविमिश्रितं तु
चतुर्गुणं भृङ्गरसे विपक्वम् । पङ्चविन्दवो नासिकयोः प्रदेयाः सर्वान्निहन्त्युः
शिरसो विकारान् ॥ २ ॥ च्युतांश्च केशांश्चलितान्श्च दन्ताश्चिबद्ममूलान्सुदृढी-
करोति । सुपर्णदृष्टिप्रतिमं च चक्षुः कुर्वन्ति बाह्वोरधिकं बलं च ॥ ३ ॥ स-
शर्करं कुङ्कुममाज्यभृष्टं नस्यं विधेयं पवनान्मृगुत्थे । भृशशङ्खकर्णाक्षिशिरोर्धशूले
दिनाभिवृद्धिप्रभवे च रोगे ॥ ४ ॥ पथ्याक्षधात्रीरजनीगुडूचीभूनिम्बनिम्बैः
सगुडः कषायः । भृशशङ्खकर्णाक्षिशिरोर्धशूलं निहन्ति नासानिहितः क्षणेन
॥ ५ ॥ किं तु मस्तकशूलेषु सर्वेष्वेतद्वितं मतम् । गुडनागरकल्कस्य नस्यं
मस्तकशूलनुत् ॥ ६ ॥ नागरकल्कविमिश्रं क्षीरं नस्येन योजितं नृणाम् ।

नानादोषोद्धृतां शिरोरुजं हन्ति तीव्रतराम् ॥ ७ ॥ शताद्वैरण्डमूलोप्राचक्र-
व्याघ्रीफलैः शृतम् । तैलं नस्यान्मरुच्छेप्समितिमिरोर्ध्वगदापहम् ॥ ८ ॥ अथ
मयूराद्यं घृतम्—मयूरं पक्षपादाभ्रशकृत्पित्तास्यवर्जितम् । जले पक्त्वा
घृतप्रस्थं तस्मिन्क्षीरसमं पचेत् ॥ १ ॥ दशमूलबलारास्त्रामधुकैस्त्रिफलैः सह ।
मधुरैः कार्ष्णिकैः कल्कैः शिरोरोगार्दितापहम् ॥ २ ॥ कर्णनासास्यजिह्वाक्षिग-
लरोगविनाशनम् । मयूराद्यमिति ख्यातमूर्ध्वजत्रुगदापहम् ॥ ३ ॥ नस्येन
कलिकाचूर्णं नवसागरजं रजः । वातश्लेष्मभवां पीडां शिरसो हन्ति सर्वदा
॥ ४ ॥ करञ्जशिमुबीजानि पत्रकं सर्पपत्वचा । सर्वेषां शीर्परोगाणामेतच्छी-
र्षविरेचनम् ॥ ५ ॥ त्रिकटुकपुष्कररजनीरास्त्रासुरदारुसोमग्रगन्धानाम् । काथः
शिरोर्तिजालं नासापीतो निवारयति ॥ ६ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

अथ भावप्रकाशाच्छिरोबस्तिविधौ पथ्यमुच्यते—आमिषं जाङ्गलं पथ्यं
तत्र शाल्यादयोऽपि च । मुद्गान्मापान्कुलित्थांश्च खादेद्वा निशि केवलान् ।
कटुकोष्णान्सर्पिष्कानुष्णं क्षीरं पिबेत्तथा ॥ १ ॥ अथ पथ्यापथ्यसंहि-
तायाम्—स्वेदो नस्यं धूमपानं विरेको लेपः सेको लङ्घनं शीर्षबस्तिः । रक्तो-
न्मुक्तिर्वह्निकर्मोपनाहो जीर्णं सर्पिः शालयः पट्टिकाश्च ॥ १ ॥ यूपो दुग्धं
धन्वमांसं पटोलं शिशुर्द्राक्षा वास्तुकं कारवेलम् । आभ्रं धात्री दाडिमं मातु-
लुङ्गं तैलं तक्रं काजिकं नारिकेलम् ॥ २ ॥ पथ्या कुष्ठं भृङ्गराजः कुमारी
मुस्तोशीरं चन्द्रिका गन्धसारः । कर्पूरं च ख्यातिमानेष वर्गः सेव्यो मलैः
शीर्परोगे यथास्वम् ॥ ३ ॥ अथापथ्यम्—क्षवजृम्भामूत्रबाष्पनिद्रावि-
ड्वेगभञ्जनम् । दुग्धं नीरं विरुद्धाभ्रं विरुद्धजलमज्जनम् । दन्तकाष्ठं दिवा-
निद्रां शिरोरोगी परित्यजेत् ॥ १ ॥ इति पथ्यापथ्यम् । इति शिरोरोगचि-
कित्सा ॥

अथ नेत्ररोगाणामधिकारः ।

तत्र नेत्रस्य प्रमाणमाह—विद्याद् ब्रह्मलबाहुल्यं स्वाङ्गुष्ठोदरसंमितम् ।
ब्रह्मलं सर्वतः सार्धं भिषङ्गनयनमण्डलम् ॥ १ ॥ अथ नेत्रस्याङ्गान्याह—
पक्ष्मवर्त्मश्चेतकृष्णदृष्टीनां मण्डलानि तु । अनुपूर्वं तु ते मध्याश्रन्वारोऽन्त्या
यथोत्तरम् ॥ २ ॥ तत्र नेत्रमण्डलेऽष्टसप्ततिर्व्याधयो भवन्तीत्याह—
द्वादश व्याधयो दृष्ट्यां तत्रैवान्यौ गदाबुभौ । कृष्णभागे तु चत्वारो दशैकः
शुक्लभागजाः ॥ ३ ॥ वर्त्मन्येको विंशतिश्च पक्ष्मजौ द्वौ प्रकीर्तितौ । नव
संधिषु सर्वस्मिन्नेत्रे सप्तदशोदिताः ॥ ४ ॥ एवं नेत्रे समन्ताः स्युरष्टसप्तति-
रामयाः ॥ सुश्रुतोक्तान्पट्सप्ततिसंख्यानाह—वातादृशं तथा पित्तात्क-
फाच्चैव त्रयोदश ॥ ५ ॥ रक्तात्पोडश विज्ञेयाः सर्वजाः पञ्चविंशतिः । बाह्यां

पुनर्दोषं नयने रोगाः पदसप्ततिः स्मृताः ॥ ६ ॥ अथ नेत्ररोगाणां सामान्यतो
विप्रकृष्टं संनिष्कृष्टं च निदानमाह—उष्णाभितप्तस्य जलप्रवेशादूरेक्ष-
णात्स्वप्नविपर्ययाच्च । स्वेदाद्रजोधूमनिपेवणाच्च चर्द्धेर्विघाताद्वमनातियोगात्
॥ ७ ॥ द्रवान्नपानातिनिपेवणाच्च विष्णुमूत्रवातक्रमनिग्रहाच्च । प्रसक्तसंरोदन-
शोकतापाच्छिरोभिघातादतिमद्यपानात् ॥ ८ ॥ तथा ऋतूनां च विपर्ययेण
क्लेशाभितापादतिमैथुनाच्च । बाष्पग्रहात्सूक्ष्मनिरीक्षणाच्च नेत्रे विकाराजन-
यन्ति दोषाः ॥ ९ ॥ नयनरोगसंप्राप्तिः सुश्रुते पठ्यते—शिरानुसारि-
भिर्दोषैर्विगुणैरूर्ध्वमाश्रितैः । जायन्ते नेत्रभागेषु रोगाः परमदारुणाः ॥ ने-
त्रभागेषु नेत्रस्य दृष्ट्याद्यवयवेषु च ॥ १० ॥ अथाऽऽदौ दृष्टिरोगानाह ।
तत्र दृष्टिलक्षणम्—मसूरदलमात्रां तु पञ्चभूतप्रसादजाम् । खद्योतविस्फु-
लिङ्गाभां सिद्धां तेजोभिरव्ययैः ॥ ११ ॥ आवृतां पटलेनाक्ष्णोर्बाह्येन विवरा-
कृतिम् । शीतसात्कर्म्यां नृणां दृष्टिमाहुर्नयनचिन्तकाः ॥ १२ ॥ अथ तत्र प-
टलानि चत्वारि भवन्ति तान्याह—तेजोजलाश्रितं बाह्यं तेष्वन्यत्पिशि-
ताश्रितम् । मेदस्तृतीयं पटलमाश्रितं त्वस्त्रिं चापरम् । पञ्चमांशसमं दृष्टे-
स्तेषां बाहुल्यमिष्यते ॥ १३ ॥ अथ तत्र प्रथमपटलगतस्य दोषस्य स्व-
भावमाह—प्रथमे पटले दोषो यस्य दृष्ट्यां व्यवस्थितः । अव्यक्तानि च
रूपाणि कदाचिदथ पश्यति ॥ १४ ॥ दृष्टेरभ्यन्तरे दोषाः पटले समधि-
ष्ठिताः । एकैकमनुपद्यन्ते पर्यायात्पटलान्तरम् ॥ १५ ॥ इति विदेहवचनात् ।
अथ द्वितीयपटलगतदोषस्वभावमाह—दृष्टिर्भृशं विद्वलति द्वितीयं प-
टलं गते ॥ मक्षिकामशकान्केशान्जालकानीव पश्यति ॥ १६ ॥ मण्डलानि
पताकाश्च मरीचीन्कुण्डलानि च ॥ परिप्लवांश्च विविधान्वर्पमभ्रतमांसि च
॥ १७ ॥ दूरस्थानि च रूपाणि मन्यते च समीपतः ॥ समीपस्थानि दूरे च
दृष्टेर्गोचरविभ्रमात् ॥ १८ ॥ यत्नवानपि चालयथं सूचीपाशं न पश्यति ॥
अथ तृतीयपटलगतदोषमाह—ऊर्ध्वं पश्यति नाधस्तात्तृतीयं पटलं गते
॥ १९ ॥ महान्त्यपि च रूपाणि छादितानीव चाम्बुरैः । कर्णनासाक्षिरूपाणि
विकृतानीव पश्यति ॥ २० ॥ अथात्र रागप्राप्तिमाह—यथादोषं च र-
ज्येत दृष्टिर्दोषे बलीयसि । अधःस्थे तु समीपस्थं दूरस्थं चोपरिस्थिते ॥ २१ ॥
पार्श्वस्थिते पुनर्दोषे पार्श्वस्थानि न पश्यति ॥ समन्ततः स्थिते दोषे संकुला-
नीव पश्यति ॥ २२ ॥ दृष्टिमध्यस्थिते दोषे महद्भ्रमं प्रपश्यति ॥ दोषे दृ-
ष्टिस्थिते तिर्यगेकं वै मन्यते द्विधा ॥ २३ ॥ द्विधा स्थिते त्रिधा पश्येद्बहुधा
वाऽनवस्थिते ॥ अथ चतुर्थपटलगतदोषमाह—तिमिराख्यः स वै दोष
श्चतुर्थं पटलं गतः ॥ २४ ॥ रुणद्धि सर्वतो दृष्टिं लिङ्गनाश इति क्वचित् ॥ अ-
स्मिन्नपि तमोभूते नातिरूढे महागदे ॥ २५ ॥ चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रावन्त-
रिक्षे च विद्युतः ॥ निर्मलानि च तेजांसि आजिष्णूनि च पश्यति ॥ २६ ॥

स एव लिङ्गनाशस्तु नीलिकाकाचसंज्ञितः ॥ अथ दृष्टिरोगाणां संख्यां
 नामानि चाऽऽह—दृष्ट्याश्रयाः पदच पडेव रोगाः पडलिङ्गनाशा हि भ-
 वन्ति तत्र । वातेन पित्तेन कफेन सर्वे रक्तात्परिम्लाय्यभिधश्च पट्टः ॥ २७ ॥
 तथा नरः पित्तविदग्धदृष्टिः कफेन चान्यस्त्वथ धूमदर्शी । यो ह्रस्वजात्यो न-
 कुलान्धसंज्ञो गम्भीरसंज्ञा च तथैव दृष्टिः ॥ २८ ॥ तत्रैव द्वावन्यावाह—
 तत्रैवान्यौ गदौ द्वौ च संनिपातनिमित्तकौ ॥ तेषु वातजस्य लिङ्गनाशस्य
 लक्षणमाह—वातेन खलु रूपाणि भ्रमन्तीव स पश्यति ॥ २९ ॥ आवि-
 लान्यरूपाभानि व्याविद्धानीव मानवः ॥ अथ पैत्तिकमाह—पित्तेनाऽऽ-
 दित्यखद्योतशक्रचापतडिद्रुणान् ॥ ३० ॥ नृत्यतश्चैव शिखिनः सर्वं नीलं च
 पश्यति ॥ अथ श्लैष्मिकमाह—कफेन पश्येद्रूपाणि स्निग्धानि च सितानि
 च ॥ ३१ ॥ सलिलप्लावितानीव परिजाड्यानि मानवः ॥ अथ संनिपात-
 जमाह—संनिपातेन चित्राणि विडुतानि च पश्यति ॥ ३२ ॥ बहुधाऽपि
 द्विधा वाऽपि सर्वाण्येव समन्ततः । हीनाधिकाङ्गान्यथ वा ज्योतींष्यपि च
 भूयसा ॥ ३३ ॥ अथ रक्तजमाह—पश्येद्रक्तेन रक्तानि तमांसि विवि-
 धानि च । हरितान्यथ कृष्णानि पीतान्यपि च मानवः ॥ ३४ ॥ अथ प-
 रिम्लायिनमाह—रक्तेन मूर्छितं पित्तं परिम्लायिनमाचरेत् । तेन पीत-
 दिशः पश्येदुद्यन्तमिव भास्करम् ॥ ३५ ॥ विकीर्यमाणान्खद्योतैर्वृक्षांस्तेजांसि
 चैव हि ॥ अथ नेत्रवर्णैः षड्विधं लिङ्गनाशमाह—वातादिजनितैर्नेत्र-
 वर्णैरपि च षड्विधः ॥ ३६ ॥ लिङ्गनाशो निगदितो वर्णो वातादिजो यथा ॥
 रागोऽरुणो मारुतजः प्रदिष्टो म्लायी च नीलश्च तथैव पित्तात् । कफात्सितः
 शोणितजः सरक्तः समस्तदोषप्रभवो विचित्रः ॥ ३७ ॥ अथ वातादिना हे-
 तुभूतेन जनिते नेत्रमण्डले रूपविशेषमाह—अरुणं मण्डलं वाताच्चञ्चलं
 परुषं तथा । पित्तान्मण्डलमानीलं कांस्याभं पीतमेव च ॥ ३८ ॥ श्लेष्मणा
 वहलं स्निग्धं शङ्खकुन्देन्दुपाण्डुरम् । चलत्पद्मपलाशस्थः शुक्लो बिन्दुरिवा-
 म्भसः ॥ ३९ ॥ संकुचत्पातपेऽत्यर्थं छायायां विस्तृतो भवेत् । मृद्यमाने तु
 नयने मण्डलं तद्विसर्पति ॥ ४० ॥ मण्डलं तु भवेच्चित्रं लिङ्गनाशे त्रिदोषजे ॥
 प्रवालपद्मपत्राभं मण्डलं शोणितात्मकम् ॥ ४१ ॥ रक्तजं मण्डलं दृष्टौ स्थूलं
 काचारुणप्रभम् ॥ परिम्लायिनि रोगे स्यान्म्लानं नीलं च मण्डलम् ॥ ४२ ॥
 दोषक्षयात्स्वयं तत्र कदाचित्स्यात्तु दर्शनम् ॥ अनुक्तव्यथादाहगौरवादिदो-
 पलिङ्गसंग्रहार्थमाह—यथास्वं दोषलिङ्गानि सर्वेष्वेव भवन्ति हि ॥ ४३ ॥
 अथ पित्तविदग्धदृष्टेर्लक्षणमाह—पित्तेन दुष्टेन गतेन वृद्धिं पीता भवे-
 दस्य नरस्य दृष्टिः । पीतानि रूपाणि च तेन पश्येत्स वै नरः पित्तविदग्ध-
 दृष्टिः ॥ ४४ ॥ तस्मिन्नेव पित्ते दृष्टौ तृतीयं पटलं गते रूपविशेषेण दिवा-
 न्धलक्षणमाह—प्राप्ते तृतीयं पटलं तु दोषे दिवा न पश्येन्नृशि वीक्षते

सः । रात्रौ स शीतानुगृहीतदृष्टिः पित्तालपभावात्सकलानि पश्येत् ॥ ४५ ॥
 अथ श्लेष्मविदग्धदृष्टिलिङ्गमाह—तथा नरः श्लेष्मविदग्धदृष्टिस्तान्येव
 शुक्लानि हि मन्यते तु ॥ अथ नक्तान्ध्यमाह—त्रिषु स्थितो यः पटलेषु
 दोषो नक्तान्ध्यमापादयति प्रसह्य ॥ ४६ ॥ दिवा स सूर्यानुगृहीतदृष्टिः प-
 श्येत्तु रूपाणि कफालपभावात् ॥ अथ धूमदर्शिनमाह—शोकज्वरायास-
 शिरोभितापैरभ्याहता यस्य नरस्य दृष्टिः ॥ ४७ ॥ धूम्रास्तु यः पश्यति सर्व-
 भावान्स धूमदर्शीति नरः प्रदिष्टः ॥ अथ ह्रस्वजात्यमाह—यो वासरे प-
 श्यति कष्टतोऽथ रूपं महच्चापि निरीक्षतेऽल्पम् ॥ ४८ ॥ रात्रौ पुनर्यः प्रकृ-
 तानि पश्येत्स ह्रस्वजात्यो मुनिभिः प्रदिष्टः ॥ तन्त्रान्तरे दृष्टिमध्यस्थितं
 दोषे महद्भ्रस्वं न पश्यति । रात्रौ पित्तालपभावाच्च तानि रूपाणि पश्यति ॥
 अथ नकुलान्ध्यमाह—विद्योतते यस्य नरस्य दृष्टिर्दोषाभिपन्ना नकुलस्य
 यद्वत् ॥ ४९ ॥ चित्राणि रूपाणि दिवा स पश्येत्स वै विकारो नकुलान्ध्य-
 संज्ञः ॥ अथ गम्भीरकामाह—दृष्टिर्विरूपा श्वसनोपसृष्टा संकोचमभ्यन्त-
 रतस्तु याति ॥ ५० ॥ रुजावगाढा च तमक्षिरोगं गम्भीरकेति प्रवदन्ति
 वृद्धाः ॥ अथ बाह्यौ निमित्तानिमित्तसंज्ञौ लिङ्गनाशावाह—बाह्यौ पुनर्द्वा-
 विह संप्रदिष्टौ निमित्ततश्चाप्यनिमित्ततश्च ॥ ५१ ॥ निमित्ततस्तत्र शिरोभि-
 तापाञ्ज्यस्त्वभिप्यन्दनिदर्शनः सः ॥ सुरर्पिगन्धर्वमहोरगाणां संदर्शनेनापि
 च भास्करस्य ॥ ५२ ॥ हन्येत दृष्टिर्मुजस्य तस्य स लिङ्गनाशस्त्वनिमित्त-
 संज्ञः ॥ अथानिमित्ततो लिङ्गनाशस्य लक्षणमाह—तत्राक्षि विस्पष्ट-
 मिवावभाति वैदूर्यवर्णा विमला च दृष्टिः ॥ ५३ ॥ अथ दृष्टिमण्डलप्रत्यास-
 न्तया कृष्णगतविकारानाह—यत्सव्रणं शुक्रमथाव्रणं च पाकात्ययश्चाप्य-
 जका तथैव । चत्वार एते नयनामयान्तु कृष्णप्रदेशे नियता भवन्ति ॥ ५४ ॥
 तत्र सव्रणशुक्रलिङ्गमाह—निमग्नरूपं तु भवेद्धि कृष्णे सूच्येव विद्वं प्र-
 तिभाति यद्वै । सावं सव्रेदुष्टमतीव यच्च तत्सव्रणं शुक्रमुदाहरन्ति ॥ ५५ ॥
 विदेहेऽप्युक्तम्—रक्तराजिनिभं कृष्णे लिङ्गाभं यत्र लभ्यते । सूच्यप्रेणेव
 तच्छुक्रमुष्णाश्रुत्तावि तद्गणम् ॥ अथास्य साध्यासाध्यलक्षणमाह—
 दृष्टेः समीपे न भवेत्तु यच्च न चावगाढं न च संस्रवेच्च । अवेदनं वा न च
 युग्मशुक्रं तत्सिद्धिमायाति कदाचिदेव ॥ ५६ ॥ अथाव्रणशुक्रमाह—स्व-
 न्दात्मकं कृष्णगतं तु शुक्रं शङ्खेन्दुकुन्दप्रतिमावभासम् । वैहायसाश्रप्रतनु-
 प्रकाशं तं चाव्रणं साध्यतमं वदन्ति ॥ ५७ ॥ साध्यतमस्याप्यवस्थभेदेन
 कष्टसाध्यतामाह—गम्भीरजातं बहुलं च शुक्रं चिरोत्थितं चापि वदन्ति
 कृच्छ्रम् ॥ अथासाध्यतां चाऽऽह—विच्छिन्नमध्यं पिशितावृतं वा चलं
 शिरासूक्ष्ममदृष्टिकृच्च ॥ ५८ ॥ द्वित्वगतं लोहितमन्ततश्च चिरोत्थितं चापि
 विवर्जनीयम् ॥ अपरमसाध्यलक्षणमाह—उष्णाश्रुपानः पिटिका च नेत्रे

यस्मिन्भवेन्मुद्गनिभं च शुक्रम् ॥ ५९ ॥ तदप्यसाध्यं प्रवदन्ति केचिदन्यच्च
वा तित्तिरिपक्षतुल्यम् ॥ अथाक्षिपाकात्ययमाह—श्वेतः समाक्रामति स-
र्वतो हि दोषेण यस्यासितमण्डलं तु ॥ ६० ॥ तमक्षिपाकात्ययमक्षिकोपं स-
र्वात्मकं वर्जयितव्यमाहुः ॥ अथाजकाजातमाह—अजापुरीपप्रतिमो रु-
जावान्सलोहितो लोहितपिच्छिलाश्रु ॥ ६१ ॥ विगृह्य कृष्णं प्रचयोऽभ्युपैति
तं चाजकाजातमिति व्यवसेत् ॥ अथात्र विदेहः—कृष्णेक्षणोद्भवे शुष्क-
च्छगलीविद्समप्रभम् । सान्द्रपिच्छलरक्तासं द्वित्वगं वाजकेति सा ॥ ६२ ॥
इति कृष्णजाः ॥

अथ शुक्रभागजा रोगाः ।

तेषां नामानि संख्यां चाऽऽह—प्रस्तारिशुक्रक्षतजाधिमांसस्त्राय्वर्म-
संज्ञाः खलुः पञ्च रोगाः ॥ ६३ ॥ स्याच्छुक्तिका सार्जुनपिट्टकाख्या जालं
शिराणां पिट्टिकाश्च तासाम् ॥ रोगा बलासग्रथितेन सार्धमेकादशोक्ताः खलु
शुक्रभागे ॥ ६४ ॥ तेषु प्रस्तार्यर्मणो लक्षणमाह—प्रस्तारि तनु विस्तीर्णं
श्यावं रक्तनिभं सिते ॥ अथ शुक्लार्माऽऽह—सश्वेतं मृदु शुक्लार्मं शुक्ले
तद्वर्धतेचिरात् ॥ ६५ ॥ अथ रक्तार्माऽऽह—पद्माभं मृदु रक्तार्मं य-
न्मांसं चीयते सिते ॥ अथाधिमांसार्माऽऽह—पृथु मृद्वधिमांसार्मं बहलं
च यकृन्निभम् ॥ ६६ ॥ अथ स्त्राय्वर्माऽऽह—स्थिरं प्रस्तारिमांसाढ्यं
शुष्कं स्त्राय्वर्मं पञ्चमम् ॥ अथ शुक्तिकामाह—श्यावाः स्युः पिशितनि-
भास्तु बिन्दवो ये शुक्त्याभास्त्वसितसिताः स शुक्तिसंज्ञः ॥ अथार्जुन-
माह—एको यः शशरुधरोपमश्च बिन्दुः शुक्रस्थो भवति तदर्जुनं वदन्ति
॥ ६७ ॥ अथ पिट्टकमाह—श्लेष्ममारुतकोपेन शुक्ले मांसं समुन्नतम् ।
पिट्टवत्पिट्टकं विद्धि मलाक्तादर्शसंनिभम् ॥ ६८ ॥ अथ शिराजालमाह—
जालाभः कठिनशिरो महान्सरक्तः संतानः स्मृत इह जालसंज्ञितस्तु ॥ अथ
शिरापिट्टिकामाह—शुक्रस्थाः सितपिट्टिकाः शिरावृता यास्ता ब्रूयादसि-
तसमीपजाः शिराजाः ॥ ६९ ॥ अथ बलासग्रथितमाह—कांस्याभोऽमृ-
दुरथ वारिबिन्दुकल्पो विज्ञेयो नयनसिते बलाससंज्ञः ॥ ७० ॥ इति शुक्रभागजा
रोगाः ॥

अथ वर्त्मपक्ष्मजाः ।

तत्रत्यानां रोगाणां नामानि संख्यां चाऽऽह—उत्सङ्गिन्यथ कु-
म्भीका पोथकी वर्त्मशर्करा । तथाऽशौवर्त्मं शुष्काशस्तथैवाञ्जननामिका
॥ ७१ ॥ बहलं वर्त्म यच्चापि तथोक्तो वर्त्मबन्धकः । क्लिष्टवर्त्मं तथा वर्त्म-
कर्दमः श्याववर्त्मं च ॥ ७२ ॥ प्रक्लिन्नवर्त्मं चाक्लिन्नवर्त्मं वातहतं च तत् ।
वर्त्मायुदं निमेषश्च शोणिताशस्तथैव च ॥ ७३ ॥ लगणो बिसवर्त्मापि कु-

ञ्जनं नाम तत्परम् । एकविंशतिरित्येते विकारा वर्त्मसंश्रयाः ॥ ७४ ॥ अथ
तेषूत्सङ्गपिटिकामाह—अभ्यन्तरमुखी ताम्रा बाह्यतो वर्त्मनश्च या । सो-
त्सङ्गोत्सङ्गपिटिका सर्वजा स्थूलकण्डुरा ॥ ७५ ॥ अथ कुम्भीकामाह—
वर्त्मान्तःपिटिका ध्माता भिद्यन्ते च स्रवन्ति च । कुम्भीकाबीजसदृशाः कु-
म्भीकाः संनिपातजाः ॥ ७६ ॥ अथ पोथकीमाह—स्त्राविण्यः कण्डुरा
गुर्व्यो रक्तसर्पपसंनिभाः । रुजावत्यश्च पिटिकाः पोथक्य इतिसंज्ञिताः ॥ ७७ ॥
अथ वर्त्मशर्करामाह—पिटिकाभिः सुसूक्ष्माभिर्वनाभिरभिसंवृता । पि-
टिका या खरा स्थूला वर्त्मस्था वर्त्मशर्करा ॥ ७८ ॥ अथाशौवर्त्माऽऽह—
गुर्वारुबीजप्रतिमाः पिटिका मन्दवेदनाः ॥ श्लक्षणाः खराश्च वर्त्मस्थान्तदशौ-
वर्त्म कीर्त्यते ॥ ७९ ॥ तथा च निमिः—नीरुजा कठिना वर्त्मपक्ष्मान्ते
बाह्यगाऽपि वा ॥ पिटिका संनिपातेन तदशौवर्त्म कीर्तयेत् ॥ अथ शुष्काशौ
आह—दीर्घाङ्कुरः खरः स्तब्धो दारुणोऽभ्यन्तरोद्भवः । व्याधिरेपोऽभिवि-
ख्यातः शुष्काशौ नाम नामतः ॥ ८० ॥ अथाञ्जननामिकामाह—दाह-
तोदवती ताम्रा पिटिका वर्त्मसंभवा । सृद्धी मन्दरुजा सूक्ष्मा ज्ञेया साऽञ्ज-
ननामिका ॥ ८१ ॥ अथ वहलवर्त्माऽऽह—वर्त्मोपचीयते यस्य पिटि-
काभिः समन्ततः । सवर्णाभिः स्थिराभिश्च विद्याद्गहलवर्त्मं तत् ॥ ८२ ॥
अथ वर्त्मबन्धकमाह—कण्डुरेणाल्पतोदेन वर्त्मशोफेन मानवः । असमं
छादयेदक्षि यत्रासौ वर्त्मबन्धकः ॥ ८३ ॥ अथ क्लिष्टवर्त्माऽऽह—सृद्ध-
ल्पवेदनं ताम्रं यद्वर्त्मं सममेव च । अकस्माच्च भवेद्रक्तं क्लिष्टवर्त्मेति तद्विदुः
॥ ८४ ॥ तथा च निमिः—श्लेष्मा दुष्टेन रक्तेन क्लिष्टमांसगतः समम् ।
बन्धुजीविनिभं वर्त्मं क्लिष्टमांसं तदुच्यते ॥ अथ वर्त्मकर्ममाह—क्लिष्टं
पुनः पित्तयुतं शोणितं विदहेद्यदा । तदा क्लिष्टत्वमापन्नमुच्यते वर्त्मकर्मम्
॥ ८५ ॥ अथ श्याववर्त्माऽऽह—वर्त्मं यद्बाह्यतोऽन्तश्च श्यावं शूनं च
जायते । तदाहुः श्याववर्त्मेति वर्त्मरोगविशारदाः ॥ ८६ ॥ तथा च निमिः
दुष्टं श्लेष्मानिलात्पित्तं वर्त्मनोऽश्रीयते यदा । अग्निदग्धनिभं श्यावं श्यावव-
र्त्मेति तद्विदुः ॥ ८७ ॥ अथ प्रक्लिन्नवर्त्माऽऽह—अरुजं बाह्यतः शूनं वर्त्मं यस्य
नरस्य च । प्रक्लिन्नवर्त्मं तद्विद्यात्क्लिन्नमत्यर्थमन्ततः ॥ ८८ ॥ अथाक्लिन्नव-
र्त्माऽऽह—यस्य धौतान्यधौतानि संवध्यन्ते पुनः पुनः । वर्त्मोन्यपरिप-
क्वानि विद्यादक्लिन्नवर्त्मं तत् ॥ ८९ ॥ अथ वातहतवर्त्माऽऽह—विमु-
क्तसंधि निश्चेष्टं वर्त्मं यस्य निमील्यते । तद्वातनिहतं वर्त्मं जानीयादक्षिचि-
न्तकः ॥ ९० ॥ अथ वर्त्मावुदमाह—वर्त्मान्तरस्थं विषमं ग्रन्थिभूतमवे-
दनम् । आचक्षतेऽवुदमिति सरक्तमविलम्बितम् ॥ ९१ ॥ अथ निमेष-
माह—निमेषणीः शिरा वायुः प्रविष्टः संधिसंश्रयः । संचालयति वर्त्मनि
निमेषः स न सिध्यति ॥ ९२ ॥ अथ शोणिताशौलक्षणमाह—वर्त्मस्थो

यो विवर्धेत लोहितो मृदुरङ्कुरः । तद्रक्तजं शोणितार्शश्छिन्नं वाऽपि विवर्धते ॥ ९३ ॥ तथा च विदेहः—वायुः शोणितमादाय शिराणां प्रमुखस्थितः । जनयत्यङ्कुरं ताम्रं वर्त्मनि च्छिन्नरोहिणम् ॥ तच्छोणितार्शोऽसाध्यं स्याद्रक्त-
स्त्राव्यथ रक्तजम् ॥ ९४ ॥ अथ लगणमाह—अपाकी कठिनः स्थूलो ग्र-
न्थिर्वर्त्मभवोऽरुजः । सकण्डूः पिच्छिलः कोलप्रमाणो लगणः स्मृतः ॥ ९५ ॥
अथ बिसवर्त्माऽऽह—त्रयो दोषा बहिः शोथं कुर्युश्छिद्राणि वर्त्मनाम् ।
प्रस्रवन्त्यन्तरुदकं बिसवद्विसवर्त्म तत् ॥ ९६ ॥ अथ कुञ्चनमाह—वा-
ताद्या वर्त्मसंकोचं जनयन्ति मला यदा । तदा द्रष्टुं न शक्नोति कुञ्चनं नाम
तद्विदुः ॥ ९७ ॥ इति वर्त्मरोगाः ॥

अथ पक्ष्मरोगौ ।

तत्रत्ययो रोगयोर्नामनी आह—पक्ष्मकोपः पक्ष्मशातो रोगौ द्वौ प-
क्ष्मसंश्रयौ ॥ अथ तत्र पक्ष्मकोपमाह—प्रचालितानि वातेन पक्ष्माण्यक्षि
विशन्ति हि । असिते सितभागे च मूलकोशात्पतन्त्यपि ॥ ९८ ॥ घृष्य-
न्त्यक्षि मुहुस्तानि संरम्भं जनयन्ति च । पक्ष्मकोपः स विज्ञेयो व्याधिः पर-
मदारुणः ॥ ९९ ॥ अथ पक्ष्मशातमाह—वर्त्मपक्ष्माशयगतं पित्तं रोमाणि
शातयेत् । कण्डूं दाहं च कुरुते पक्ष्मशातं तमादिशेत् ॥ १०० ॥ इति पक्ष्म-
रोगौ । इति वर्त्मपक्ष्मजाः ॥

अथ संधिरोगाः ।

तत्र संधयः षट् तानाह—पक्ष्मवर्त्मगतः संधिर्वर्त्मशुक्लगतोऽपरः ।
शुक्लकृष्णगतस्त्वन्यः कृष्णदृष्टिगतोऽपि च ॥ ततः कनीनिकागतः पृष्ठश्चा-
पाङ्गसंश्रितः ॥ १०१ ॥ तत्रत्यानां रोगाणां नामानि संख्यां चाऽऽह—
पूयालसः सोपनाहः स्त्रावाश्चत्वार एव च । पर्वणीकाऽलजी जन्तुग्रन्थिः संधौ
नवाऽऽमयाः ॥ १०२ ॥ अथ तेषु पूयालसमाह—पक्कः शोथः संधिजो यः
सतोदः स्रवेत्पूयं पूति पूयालसाख्यः ॥ अथोपनाहमाह—ग्रन्थिर्नाल्पो
दृष्टिसंधावपाकी कण्डूप्रायो नीरुजश्चोपनाहः ॥ १०३ ॥ अथ स्त्रावाणां संप्राप्ति-
माह—गत्वा संधीनश्रुमार्गेण दोषाः कुर्युः स्त्रावाल्लक्षणैः स्वरूपेतान् । तं हि
स्त्रावं नेत्रनाडीति चैके तस्या लिङ्गं कीर्तयिष्ये चतुर्धा ॥ १०४ ॥ अथ पै-
त्तिकं स्त्रावमाह—हरिद्राभं पीतमुष्णं जलं वा पित्तस्त्रावः संस्रवेत्संधिम-
ध्यात् ॥ अथ श्लेष्मस्त्रावमाह—श्वेतं सान्द्रं पिच्छिलं यः स्रवेत्तु श्लेष्म-
स्त्रावोऽसौ विकारः प्रदिष्टः ॥ १०५ ॥ अथ संनिपातस्त्रावमाह—शोथः
संधौ संस्रवेद्यस्तु पक्कः पूयं स्त्रावः सर्वजः संमतः सः ॥ अथ रक्तस्त्राव-
माह—रक्तस्त्रावः शोणिताद्यो विकारो गच्छेद्दृष्टं तत्र रक्तं प्रभूतम् ॥ १०६ ॥
अथ पर्वणीकालज्यावाह—ताम्रा तन्वी दाहपाकोपपन्ना रक्ताज्ज्ञेया प-

वर्णी वृत्तशोका । जाता संधौ कृष्णशुक्लेऽलजी स्यात्तस्मिन्नेव व्याहृता पूर्व-
लिङ्गैः ॥ १०७ ॥ अथ जन्तुग्रन्थिमाह—जन्तुग्रन्थौ वर्त्मनः पक्ष्मणश्च कण्डू-
कुर्युर्जन्तवः संधिजाताः । नानारूपा वर्त्मशुक्लान्तसंधौ चरन्त्यन्तर्लोचनं दू-
षयन्तः ॥ १०८ ॥ इति संधिजा रोगाः ॥

अथ समस्तनेत्रजा रोगाः ।

तेषां नामानि संख्यां चाऽऽह—स्यन्दाश्चतुष्का इह संप्रदिष्टाश्चत्वार
एवेह तथाऽधिमन्थाः । पाकः सशोथः स च शोथहीनो हताधिमन्थोऽनिल-
पर्ययश्च ॥ १ ॥ शुष्काक्षिपाकस्त्विह कीर्तितश्च तथाऽन्यतोवात उदीरितश्च ।
दृष्टिस्तथाऽम्लाध्युपिता शिराणामुत्पातहर्षौ च समस्तनेत्रे ॥ २ ॥ एवं सम-
स्तनेत्रे स्युरामया दश सप्त च । तेषामिह पृथग्वक्ष्ये यथावल्लक्षणान्यपि ॥ ३ ॥
तत्राऽभिष्यन्दाश्चत्वार इत्याह—वातात्पित्तात्कफाद्रक्तादभिष्यन्दश्चतु-
र्विधः । प्रायेण जायते घोरः सर्वनेत्रामयाकरः ॥ ४ ॥ तेषु वातिकमभि-
ष्यन्दमाह—निस्तोदनस्तम्भनरोमहर्षसंघर्षपाख्यशिरोभिदापाः । विशुष्क-
भावः शिशिराश्रुता च वाताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ५ ॥ अथ पैत्तिकम-
भिष्यन्दमाह—दाहप्रपाकौ शिशिराभिनन्दा धूमायनं बाष्पसमुद्भवश्च ।
उष्णाश्रुता पीतकनेत्रता च पित्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ६ ॥ अथ श्ले-
ष्मिकमभिष्यन्दमाह—उष्णाभिनन्दा गुरुताऽक्षिशोथः कण्डूपदेहावति-
शीतता च । स्रावो बहुः पिच्छिल एव चापि कफाभिपन्ने नयने भवन्ति
॥ ७ ॥ अथ रक्तजमभिष्यन्दमाह—ताम्राश्रुता लोहितनेत्रता च राज्यः
समन्तादतिलोहिताश्च । पित्तस्य लिङ्गानि च यानि तानि रक्ताभिपन्ने नयने
भवन्ति ॥ ८ ॥ अथाधिमन्थानामभिष्यन्दजन्यत्वमाह—वृद्धैरेतैर-
भिष्यन्दैर्नराणामक्रियावताम् । तावन्तस्त्वधिमन्थाः स्युर्नयने तीव्रवेदनाः
॥ ९ ॥ अथाधिमन्थानां सामान्यं लक्षणम्—उत्पाद्यत इवात्यर्थं
तथा निर्मथ्यतेऽपि च । शिरसोऽर्धं तु तं विद्यादधिमन्थं स्वलक्षणैः ॥ १० ॥
स चाधिमन्थो यदात्मको यावता कालेन मिथ्याचारादृष्टिं हन्ति तदाह
हन्यादृष्टिं श्लैष्मिकः ससरात्राद्याधिर्वोरो रक्तजः पञ्चरात्रात् । पञ्चरात्राद्वा
वातिको वै निहन्यान्मिथ्याचारात्पैत्तिकः सद्य एव ॥ ११ ॥ अथ सशोथं पा-
कमाह—कण्डूपदेहाश्रुयुतः पक्कोदुम्बरसंनिभः । संरम्भी पच्यते यस्तु ने-
त्रपाकः सशोथकः ॥ १२ ॥ अथाशोथपाकमाह—शोथहीनानि लिङ्गानि
नेत्रपाके त्वशोथके ॥ अथ हताधिमन्थमाह—उपेक्षणादक्षि यदा-
ऽधिमन्थो वाताधिकः शोषयति प्रसद्य ॥ १३ ॥ रुजाभिरुग्राभिरसाध्य
एव हताधिमन्थः खलु नाम रोगः ॥ १४ ॥ अथ वातपर्ययमाह—वारं
वारं च पर्येति भ्रुवौ नेत्रे च मारुतः । रुजाभिः सह तीव्राभिः स

ज्ञेयो वातपर्ययः ॥ १५ ॥ अथ शुष्काक्षिपाकमाह—यत्कृणितं दारुणरुक्षवर्मं संदह्यते चाऽऽविलदर्शनं यत् । सुदारुणं यत्प्रतिबोधने च शुष्काक्षिपाकोपहतं तदक्षि ॥ १६ ॥ अथान्यतोवातमाह—यस्यावद्व-
कर्णशिरोहनुस्थो मन्यागतो वाऽप्यनिलोऽन्यतो वा । कुर्याद्गुजं वै भ्रुवि लो-
चने च तमन्यतोवातमुदाहरन्ति ॥ १७ ॥ विदेहेनाप्युक्तम्—मन्यानाम-
न्तरे वायुरुत्थितः पृष्ठतोऽपि वा । करोति भेदं निस्तोदं शङ्खे चाक्ष्णोर्भ्रुवो-
स्तथा ॥ तमाहुरन्यतोवातं रोगं दृष्टिविदो जनाः ॥ १८ ॥ अथाम्लाध्युपि-
तमाह—श्यावं लोहितपर्यन्तं सर्वमक्षि प्रपच्यते । सदाहशोथं सास्त्रावम-
म्लाध्युपितमम्लतः ॥ १९ ॥ अथ शिरोत्पातमाह—अवेदना वाऽपि
सवेदना वा यस्याक्षिराज्यो हि भवन्ति ताम्राः । मुहुर्विरज्यन्ति च याः स
तादृग्व्याधिः शिरोत्पात इति प्रदिष्टः ॥ २० ॥ अथ शिराप्रहर्षमाह—
मोहाच्छिरोत्पात उपेक्षितस्तु जायेत रोगः स शिराप्रहर्षः । ताम्राभमस्त्रं स्र-
वति प्रगाढं तथा न शक्नोत्यभिवीक्षितुं च ॥ २१ ॥ अथ नेत्रस्य सामता-
लक्षणमाह—उदीर्णवेदनं नेत्रं रागशोफसमन्वितम् । वर्पेनिस्तोदशूलश्रु-
युक्तमामान्वितं विदुः ॥ २२ ॥ अथ नेत्रस्य निरामतालक्षणमाह—म-
न्दवेदनता कण्डूः संरम्भाश्रुप्रशान्तता । प्रसन्नवर्णता चाक्ष्णोर्निरामस्य च
लक्षणम् ॥ २३ ॥ इति नेत्रजा रोगाः ॥

अथ नेत्ररोगाणां चिकित्सा ।

तथा च तन्त्रान्तरे—सेको दिनानि चत्वारि लङ्घनं भोजने रसः ।
स्वादुस्तिक्तश्च लेपश्च बाष्पः स्वेदनमेव च ॥ १ ॥ पुतानि नेत्ररोगाणां सा-
मानां पाचनानि हि । अञ्जनं सर्पिषः पानं कपायं गुरुभोजनम् ॥ नेत्ररोगेषु
सामेषु स्नानं च परिवर्जयेत् ॥ २ ॥ अक्षिकुक्षिभवा रोगाः प्रतिश्यायव्रण-
ज्वराः । पञ्चैते पञ्चरात्रेण रोगा नश्यन्ति लङ्घनात् ॥ ३ ॥ पदसप्ततिर्लोच-
नजा विकारास्तेषामभिष्यन्दसमुद्भवानाम् । श्लेष्माश्रयत्वादिह लङ्घनं प्राक्प्र-
शस्यते मुद्गरसौदनं च ॥ ४ ॥ अञ्जनं पूरणं क्वाथपानमामे न शस्यते । आ-
चतुर्थीद्दिनादाममभिष्यन्देऽपि लोचनम् ॥ ५ ॥ गण्डूपाञ्जननस्यादिहीनानां
कफकोपतः । पदसप्ततिर्नेत्ररोगा दुःसहाः स्युरपेक्षिताः ॥ ६ ॥ सेक आश्रो-
तनं पिण्डी विडालस्पर्णं तथा । पुटपाकोऽञ्जनं चैभिः कल्पैर्नेत्रमुपाचरेत्
॥ ७ ॥ अथ दृष्टिगतरोगचिकित्सामाह—वर्जयेदुपसर्गांथां गम्भीरां
ह्रस्वसंज्ञिताम् । काचांस्तु यापयेत्सर्वाङ्गकुलान्ध्यं तथैव च ॥ १ ॥ तिमिरं
नेत्ररोगेषु कष्टं तद्यत्नतो हरेत् । मूलं दृष्टिविनाशस्य तिमिरं समुदाहृतम् ।
ऋषिभिस्तूदितं तस्मात्तस्य कुर्याच्चिकित्सितम् ॥ २ ॥ अथ चातिक्रिमिर-
चिकित्सामाह—स्निग्धानि नस्याञ्जनशोधनानि पाकाः पुटानामथ तर्पणं च ।

घृतस्य पानान्यथ वस्तिकर्म कुर्यादभीक्ष्णं तिमिरेऽनिलोत्थे ॥ १ ॥ दशमूल-
दिना पक्वं घृतं दुग्धचतुर्गुणम् । त्रिफलाकल्कसंयुक्तं तिमिरे वातजे पिबेत्
॥ २ ॥ रास्त्राफलत्रयकाथे दशमूलरसे शृतम् । कल्केन जीवनीयानां घृतं
तिमिरनाशनम् ॥ ३ ॥ वातिके तिमिरे पक्वं दशमूलरसे घृतम् । त्रिवृच्चूर्ण-
समायुक्तं विरेकार्थं प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥ त्रिफलादशमूलानां निर्यूहं दुग्धमि-
श्रितम् । गन्धर्वतैलसंयुक्तं प्रयुज्जीत विरेचनम् ॥ ५ ॥ अथ पैत्तिकतिमि-
रचिकित्सा—शीताञ्जनाश्रोतनतर्पणेश्च नस्यैर्विरेकैर्मृदुभिर्घृतैश्च । तिक्तप्र-
धानैस्तिमिरं निहन्यात्पित्तात्मकं शोणितमोक्षणेश्च ॥ १ ॥ तिमिरे पित्तजे
सर्पिर्जीवनीयवराशृतम् । पाययित्वा शिरां विध्येत्सितैलाकुम्भसैन्धवैः ॥ २ ॥
चूर्णैर्माक्षिकसंयुक्तै रेचनं कारयेन्नरः । बलाशतावरीधीरासिताशैलेयकैः पचेत्
॥ ३ ॥ त्रिफलासहितं सर्पिस्तिमिरघ्नमनुत्तमम् । सारिवात्रिफलोशीरमुक्ता-
चन्दनपद्मकैः । पिष्टं वर्तीकृतं हन्ति पित्तोत्थं तिमिरं नृणाम् ॥ ४ ॥ अथ
श्लैष्मिकतिमिरचिकित्सामाह—तीक्ष्णानि नस्याञ्जनशोधनानि पाकः
पुटानामपतर्पणं च । घृतानि वासात्रिफलापटोलसंज्ञानि कुर्यात्तिमिरे कफोत्थे
॥ १ ॥ कफोद्भवे वराचव्यशृते काथे शृतं हविः । पाययित्वा शिरां विध्ये-
द्रेचनं तिमिरे भिषक् ॥ २ ॥ यूथी पथ्या कणा शुण्ठी कुसुम्भस्याम्बुनिर्झरः ।
गोमूत्रकथिता शुण्ठी त्रिवृत्सिद्धा विरेचनम् ॥ ३ ॥ नस्यं मरीचयष्ट्याह्वि-
डङ्गामरदारुभिः । नेपालत्रिफलाशङ्ककान्ताव्योषं च पेपितम् । वर्तीकृतं ब-
लासोत्थमञ्जनं तिमिरापहम् ॥ ४ ॥ अथ सांनिपातिकतिमिरचिकि-
त्सा—संसर्गं संनिपाते च यथादोषोदयक्रियाम् । धात्रीरस्माञ्जनं क्षौद्रं स-
र्पिर्भिस्तु रसक्रिया ॥ १ ॥ पित्तानिलाक्षिरोगघ्नी तैमिर्यपटलापहा । दद्यादु-
शीरनिर्यूहे चूर्णितं कणसैन्धवम् ॥ २ ॥ तच्छृतं स्पृष्टं भूयः पचेत्क्षौद्रं घने
ततः । शीते चास्मिन्हतमिदं सर्वजे तिमिरे हितम् ॥ ३ ॥ वातपित्तकफसं-
निपातजां नेत्रयोर्बहुविधामपि व्यथाम् । शीघ्रमेव जयति प्रयोजितः शिशु-
पल्लवरसः समाक्षिकः ॥ ४ ॥

अथ तिमिरे सामान्यचिकित्सा ।

अथाञ्जनविधिः—अथ संपक्वदोषस्य प्राप्तमञ्जनमाचरेत् । अञ्जनं क्रि-
यते येन तद्द्रव्यं चाञ्जनं मतम् ॥ १ ॥ तद्यथा—गुटिकारमचूर्णानि त्रिवि-
धान्यञ्जनानि तु । कुर्याच्छलाकयाऽद्गुल्या हीनानि च यथोत्तरम् ॥ २ ॥
स्नेहनं रोपणं चापि लेखनं तद्विधा पृथक् । मधुरं स्नेहगंपन्नमञ्जनं स्नेहनं म-
तम् ॥ ३ ॥ कपायतिक्तसरसयुक्सस्नेहं रोपणं स्मृतम् । अञ्जनं क्षारनीक्ष्णाम्ल-
रसैर्लेखनमुच्यते ॥ ४ ॥ हरेणुमात्रां कुर्वीत वार्ति तीक्ष्णाञ्जने भिषक् । प्र-
माणं मध्यमे सार्धं द्विगुणं तु मृदौ भवेत् ॥ ५ ॥ रसक्रिया वृत्तमा स्याद्वि-

विडङ्गमिता हिता । मध्यमा द्विविडङ्गा सा हीना त्वेकविडङ्गिका ॥ ६ ॥
 शलाकाः स्नेहने चूर्णे चतस्रः प्रादुरञ्जने । रोपणे तास्तु तिस्रः स्युस्ते उभे
 लेखने स्मृते ॥ ७ ॥ मुखयोः कुञ्चिता श्लक्ष्णा शलाकाऽष्टाङ्गुलोन्मिता । अ-
 श्मजा धातुजा वा स्यात्कलायपरिमण्डला ॥ ८ ॥ सुवर्णरजतोद्भूता शलाका
 स्नेहने स्मृता । ताम्रलोहाश्मसंजाता शलाका लेखने मता ॥ अङ्गुलिस्तु मृ-
 दुत्वेन रोपणे कथिता बुधैः ॥ ९ ॥ अञ्जने केवलमपि शलाकाविशेष-
 माह—त्रिफलाभृङ्गशुण्ठीनां रसैस्तद्वच्च सर्पिणा । गोमूत्रमध्वजाक्षीरैः सिक्तो
 नागः प्रतापितः ॥ १ ॥ तच्छलाका हरत्येव सकलान्नयनामयान् । कृष्णभा-
 गादधः कुर्यादपाङ्गं यावदञ्जनम् ॥ २ ॥ प्रथमं सन्यमञ्जीयात्पश्चादक्षिणम-
 ञ्जयेत् । शलाकया साञ्जनया न च तन्नयनं स्पृशेत् ॥ ३ ॥ हेमन्ते शिशिरे
 वाऽपि मध्याह्नेऽञ्जनमिष्यते । पूर्वाह्णे वाऽपराह्णे वा ग्रीष्मे शरदि चेप्यते
 ॥ ४ ॥ वर्षास्वनश्रे नात्युष्णे वसन्ते च सदैव हि । प्रातः सायं च तत्कुर्यान्न
 च कुर्यात्सदैव हि ॥ ५ ॥ श्रान्ते प्ररुदिते भीते पीतमध्ये नवज्वरे । अजीर्णे
 वेगघाते च नाञ्जनं संप्रशस्यते ॥ ६ ॥ सौवीरमञ्जनं नित्यं हितमक्ष्णोः प्रयो-
 जयेत् । पञ्चरात्रेऽष्टरात्रे वा स्नावनार्थं रसाञ्जनम् ॥ ७ ॥ अथ मुक्तादिम-
 हाञ्जनं भावप्रकाशात्—मुक्ताकर्पूरकाचागुरुमरिचकणासैन्धवं सैलवालं
 शुण्ठीकङ्गोलकांस्यत्रपुरजनिशिलाशङ्खनाभ्यभ्रतुत्थम् । दक्षाण्डत्वक् साक्ष-
 क्षतजयुतशिवाक्कीतकं राजवर्तं जातीपुष्पं तुलस्याः कुसुममभिनवं बीजम-
 स्यास्तथैव ॥ १ ॥ पूतीकनिम्बाञ्जनभद्रमुस्तं सताम्रसारं रसगर्भयुक्तम् ।
 प्रत्येकमेषां खलु माषकैकं पलेन पिष्यान्मधुनाऽतिसूक्ष्मम् ॥ २ ॥ भवन्ति
 रोगा नयनाश्रिता ये नितान्तमात्रोपचिताश्च तेषाम् । विधीयते शान्तिरव-
 श्यमेव मुक्तादिनाऽनेन महाञ्जनेन ॥ ३ ॥ अथ नयनशाणनामाञ्जनम्—
 कणा सलवणोपणा सहरसाञ्जना साञ्जना सरित्पतिकफः शिफा सितपुनर्न-
 वासंभवा । रजन्यरुणचन्दनं मधुकतुत्थपथ्या शिला अरिष्टदलशाबरस्फटि-
 कशङ्खनाभीन्दवः ॥ १ ॥ इमानि तु विचूर्णयेन्निविडवाससा शोधयेत्ततोऽ-
 यसि विमर्दयेत्समधुताम्रखण्डेन तत् । इदं मुनिभिरीरितं नयनशाणनामा-
 ञ्जनं करोति तिमिरक्षयं पटलपुष्पनाशं बलात् ॥ २ ॥ अथ चन्द्रोदय-
 वर्तिः—शङ्खनाभिर्विभीतस्य मज्जा पथ्या मनःशिला । पिप्पली मरिचं कुष्टं
 वचा चेति समांशकम् ॥ १ ॥ छागक्षीरेण संपिप्य वर्तिं कुर्याद्यवोन्मिताम् ।
 हरेणुमात्रां संघृष्य जलेनाञ्जनमाचरेत् ॥ २ ॥ तिमिरं मांसवृद्धिं च काचं
 पटलमर्बुदम् । रात्र्यन्धं वार्षिकं पुष्पं वर्तिश्चन्द्रोदया हरेत् ॥ ३ ॥ अथ
 चन्द्रप्रभावर्तिः—रजनी निम्बपत्राणि पिप्पली मरिचानि च । विडङ्ग भ-
 द्रमुस्तं च सप्तमी त्वभया स्मृता ॥ १ ॥ अजामूत्रेण संपिप्य छायायां शोप-
 येद्वटी । वारिणा तिमिरं हन्ति गोमूत्रेण तु पिष्टिकाम् ॥ २ ॥ मधुना पटलं

हन्ति नारीक्षीरेण पुष्पकम् । एषा चन्द्रप्रभा वर्तिः स्वयं रुद्रेण निर्मिता ॥ ३ ॥
 अथ शशिकलावर्तिः—रसकजलजनाभिः पौरतुथं समांशं वसनगलित-
 मेतन्निम्बुनीरेण पिष्टम् । हरति शशिकलैतद्वर्तिरभ्यञ्जिताऽक्ष्णोस्तिमिरकुसुम-
 कण्डूस्त्रावरागार्मपिल्लान् ॥ १ ॥ अथ लोचनशूलघ्नी पोटली—कृतलाज-
 सुराद्रजाहिफेनं रुचिरं नागजगालवोत्थचूर्णम् । सुकुमार्युदकेन शुल्वपात्रे मृ-
 दितं दृष्टिरुजं जयेत्पटस्थम् ॥ १ ॥ अथ नयनामृतम्—रसेन्द्रभुजगौ
 तुल्यौ तयोर्द्विगुणमञ्जनम् । सूततुर्यांशकर्पूरमञ्जनं नयनामृतम् ॥ १ ॥ ति-
 मिरं पटलं काचं शुक्रममार्जुनानि च । क्रमात्पथ्याशिनो हन्ति तथाऽन्यानपि
 दग्गदान् ॥ २ ॥ अथ कुसुमिकावर्तिः, रोपणी—तिलपुष्पाण्यशीतिः
 स्युः पष्टिः पिप्पलितण्डुलाः । जात्याः कुसुमपञ्चाशन्मरिचानि च षोडश ॥ १ ॥
 सूक्ष्मपिष्टा जलैर्वर्तिः कृता कुसुमिकाभिधा । तिमिरार्जुनशुक्राणां नाशनी
 मांसवृद्धिनुत् ॥ एतस्याश्चाञ्जने मात्रा प्रोक्ता सार्धहरेणुका ॥ २ ॥ अथ दा-
 र्वाद्यञ्जनम्—दार्वाविरामधुकमम्भसि नारिकेले पक्त्वाऽष्टभागपरिशिष्टरसं
 पुनस्तम् । सान्द्रं विपाच्य शशिसैन्धवमाक्षिकाढ्यं युज्याद्वणार्तितिमिरार्तिपु-
 पित्तजेपु ॥ १ ॥ अथ शङ्खादिवटी—शङ्खस्य भागाश्चत्वारस्तदर्धेन मनः-
 शिला । मनःशिलार्धं मरिचं मरिचार्धेन पिप्पली ॥ १ ॥ सर्वमेकत्र संमर्द्य
 गुटिकां कारयेत्ततः । वारिणा तिमिरं हन्ति चार्बुदं हन्ति मस्तुना ॥ पिचटं
 मधुना हन्ति स्त्रीक्षीरेण तथाऽर्जुनम् ॥ २ ॥ अथ पुनर्नवाद्यञ्जनम्—दु-
 ग्धेन कण्डुं क्षौद्रेण नेत्रस्त्रावं च सर्पिषा । पुष्पं तैलेन तिमिरं काञ्जिकेन नि-
 शान्धताम् । पुनर्नवा हरत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १ ॥ अथ गुडूच्या-
 द्यञ्जनम्—गुडूचीस्वरसः कर्पः क्षौद्रं स्यान्मापकोन्मितम् । सैन्धवं क्षौद्र-
 तुल्यं स्यात्सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥ १ ॥ अञ्जयेन्नयनं तेन पिल्लार्मतिमिरं जयेत् ।
 काचं कण्डुं लिङ्गनाशं शुकुकृष्णगतान्गदान् ॥ २ ॥ अथ कतकफलादि—
 कतकस्य फलं घृष्ट्वा मधुना नेत्रमञ्जयेत् । ईपत्कर्पूरसहितं तत्स्यान्नेत्रप्रसाद-
 नम् ॥ १ ॥ अन्यच्च—कतकस्य फलं शङ्खं सैन्धवं त्र्युपणं सिता । फेनो
 रसाञ्जनं क्षौद्रं विडङ्गानि मनःशिला । सर्वमेतत्समं कृत्वा नारीक्षीरेण पेप-
 येत् ॥ १ ॥ तिमिरं पटलं काचमर्मशुक्रं व्यपोहति । कण्डूक्लेदार्युदान् हन्ति
 मलं वा सुसुखावति ॥ २ ॥ इति शार्ङ्गधरः । अथ पिलपल्याद्यञ्जनम्—
 पिप्पलीत्रिफलालाक्षालोध्रकं च ससैन्धवम् । भृङ्गराजरसे घृष्टं गुटिकाञ्जन-
 मिष्यते ॥ १ ॥ अमं सतिमिरं काचं कण्डूं शुक्रं तथाऽर्जुनम् । अञ्जनं नेत्र-
 जान्मरोगान्निहन्त्येव न संशयः ॥ २ ॥ अथ गुञ्जामूलद्यञ्जनम्—गुञ्जा-
 मूलं बस्तमूत्रेण पिष्टं निघृष्टा वा वारिणा भद्रमुत्ता । आन्ध्यं सद्यस्तेमिरं
 हन्ति पुंसामत्युद्गाढं नेत्रयोरञ्जनेन ॥ १ ॥ अथ तुलस्यादि—तुलस्या त्रि-
 ल्वपत्रस्य रसो ग्राह्यः समांशकः । ताभ्यां तुल्यं पयो नार्याश्रितयं कांस्यपा-

त्रके ॥ १ ॥ गजवल्या दृढं मर्घं ताम्रेण प्रहरं पुनः । कज्जलत्वं समुत्पाद्य ते-
नाञ्जितविलोचनः । सद्यो नेत्ररुजं हन्ति सशूलां पाकसंभवाम् ॥ २ ॥ अथ
क्वाथाः—वासा घनं निम्बपटोलपत्रं तिक्तामृताचन्दनवत्सकत्वक् । कलिङ्ग-
दार्वाद्दहनं सनागरं भूनिम्बधात्री ह्यभया बिभीतकम् ॥ १ ॥ तथा यवक्वाथ-
मथाष्टमांशं पिबेदिमं पूर्वदिने कपायकम् । तैमिर्यकण्डूपटलार्बुदं च शुक्रं
तथा सव्रणमव्रणं च । दाहं सरागं सरुजं सपिहं हन्यात्समस्तानपि नेत्ररो-
गान् ॥ २ ॥ इति महावासादिक्वाथः । अथ त्रिफलाक्वाथः—अयःस्थं
त्रिफलाक्वाथं सर्पिषा सह योजितम् । भुक्तोपरि पिबेत्सायं मासेनान्धोऽपि
पश्यति ॥ १ ॥ अथ चित्रकादिक्वाथः—चित्रकमूलत्रिफलापटोलयवसा-
धितं पिबेदम्भः । सघृतं निशि चक्षुष्यं तिमिरं च विशेषतो हन्ति ॥ १ ॥

अथ चूर्णानि ।

तत्राऽऽदौ त्रिफलाचूर्णम्—त्रिफलात्वचमायसं च चूर्णं समयष्टीम-
धुकं त्रिसप्तरात्रम् । मधुना सह सर्पिषा दिनान्ते पुरुषो निष्परिहारमाददीत
॥ १ ॥ तिमिरार्बुदरक्तराजिकण्डूक्षणदान्ध्यामयदाहशूलतोदान् । पटलं च
सशुक्लकाचपिहं शमयत्येव निपेवितः प्रयोगः ॥ २ ॥ न च केवलमेव लोच-
नानां विहितो रोगनिबर्हणाय योगः । दशनश्रवणोर्ध्वजत्रुजानां प्रथमे हेतु-
रयं महामयानाम् ॥ ३ ॥ गुदजानि भगंदरप्रमेहान्सहकुष्ठानि हलीमकं कि-
लासम् । पलितानि विनाशयेत्तथाऽग्निं चिरनष्टं कुरुते रविप्रचण्डम् ॥ ४ ॥
प्रमदाभिरयं जराधिरूढः स्फुटचन्द्राभरणासु यामिनीषु । सुरतानि पदे पदे
निपेवेत्पुरुषो योगमिमं निपेवमाणः ॥ ५ ॥ स्मृतिविक्रमबुद्धिशक्तियुक्तः श-
रदां जीवति वै शतं समग्रम् ॥ ६ ॥ मुखेन नीलोत्पलचारुगन्धिना शिरोरु-
हैरञ्जनमेचकप्रभैः । भवेत्तु गृध्रस्य समानलोचनश्चिरं नरो वर्षशतं तु जीवति
॥ ७ ॥ इति सप्तामृतो लोहः । मधुकत्रिफलाचूर्णं लोहचूर्णं समं लिहेत् ।
मधुसर्पिर्युतं सम्यगव्यक्षिरं पिबेदनु ॥ १ ॥ छार्दि सतिमिरां शूलमम्लपित्तं
ज्वरं क्लमम् । आनाहं मूत्रसङ्गं च शोथं चैव निहन्ति हि ॥ २ ॥ अथ श-
तावर्यादिचूर्णम्—शतावरी सूर्यसमा प्रदेया एला तथा रावणमूर्धतुल्या ।
देयं विडङ्गं वसुभिः समानमृतोः समं चाऽऽमलकास्थिबीजम् ॥ १ ॥ वि-
ष्णोर्भुजैस्तुल्यगुणं मरीचं तद्विक्रमैर्मागधिका प्रदेया । चूर्णं समध्वाज्यकमर्ध-
कर्मक्षयामयानां विनिवारणार्थम् ॥ २ ॥ कण्डूं सधूमं तिमिरं सुघोरमर्माणि
काचं पटलं त्रिदोषम् । ये चापरे रक्तभवा विकारास्तेपामयं चूर्णवरो निहन्ता
॥ ३ ॥ अथ द्वितीयं त्रिफलादिचूर्णं वङ्गसेनात्—लिह्यात्सदा वा त्रि-
फलां सुचूर्णितां घृतप्रगाढां तिमिरेऽथ पित्तजे । समीरणे तैलयुतां कफात्मके
मधुप्रगाढां विदधीत युक्तिः ॥ १ ॥

अथ घृतानि—

बिभीतकशिवाधत्रीपटोलारिष्टवासकैः । पक्वमेभिर्घृतं सर्वानक्षिरोगान्व्य-
पोहति ॥ १ ॥ त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं भृङ्गरसस्य च । वृषस्य च रसप्रस्थं
शतावर्याश्च तत्समम् ॥ २ ॥ अजाक्षीरं गुडूच्याश्च आमलक्या रसं तथा ।
प्रस्थं प्रस्थं समाहृत्य सर्वैरेभिर्घृतं पचेत् ॥ ३ ॥ कल्कः कणासिताद्राक्षात्रि-
फला नीलमुत्पलम् । मधुकं क्षीरकाकोली मधुपर्णी निदिग्धिका ॥ ४ ॥ त-
त्साधु सिद्धं विज्ञाय शुभे भाण्डे निधापयेत् । ऊर्ध्वपानमधःपानं मध्ये पानं
च शस्यते ॥ ५ ॥ यावन्तो नेत्रजान् रोगान्पानादेवापकर्षति । सरक्ते रक्तदुष्टे
च रक्ते वा विस्त्रुते तथा ॥ ६ ॥ नक्तान्ध्ये तिमिरे काचे नीलिकापटलार्बुदे ।
अभिष्यन्देऽधिमन्थे च पक्ष्मकोपे सुदारुणे ॥ ७ ॥ नेत्ररोगेषु सर्वेषु दोषत्र-
यकृतेष्वपि । परं हितमिदं प्रोक्तं त्रिफलाद्यं महाघृतम् ॥ ८ ॥ अथ द्वितीयं
त्रिफलाद्यं घृतम्—शतमेकं हरीतक्या द्विगुणं च बिभीतकम् । चतुर्गुणं
त्वामलकं वृषमार्कवयोः समम् ॥ १ ॥ चतुर्गुणोदकं दत्त्वा शनैर्मृद्वग्निना
पचयित्वा चतुर्थं संरक्ष्य काथं तमवतारयेत् ॥ २ ॥ शर्करा मधुकं द्राक्षा
मधु कण्टारिका । शकोली क्षीरकाकोली त्रिफला नागकेशरम् ॥ ३ ॥
पिप्पली चन्दन मुस्तं पायमाण्डा तथोत्पलम् । घृतप्रस्थं समं क्षीरं कल्कैरेतैः
पचनैः पचेत् ॥ ४ ॥ हन्यात्सतिमिरं काचं तद्वान्ध्यं शुभमेव च । तथा स्थानं
कण्डू च श्वयथुं च कषायताम् ॥ ५ ॥ कलुषत्वं च नेत्रस्य विदुर्मपटला-
श्वेतम् । बहुनाऽत्र किमुक्तेन सर्वास्त्रैरामयान्दरेत् ॥ ६ ॥ यस्य चोपहता
दृष्टिः सूर्याग्निभ्यां प्रपश्यतः । तस्मै तद्भेषजं प्रोक्तं मुनिभिः परमं हितम्
॥ ७ ॥ मार्जितं दर्पणं यद्वत्परां निर्मलतां व्रजेत् । तद्वदेतेन पीतेन नेत्रं नि-
र्मलतामियात् ॥ वारिद्र्येणद्वयं चात्र वृषमार्कवयोस्तुले ॥ ८ ॥ अथ लघु-
त्रिफलाघृतम्—त्रिफलाकाथकल्काभ्यां सपयस्कं घृतं शृतम् । तिमिरा-
ण्यचिराद्हन्यात्पीतमेतन्निशामुखे ॥ १ ॥ इति घृतानि ॥ अथ भृङ्गराजतै-
लम्—भृङ्गरसस्थं तैलात्कुडवं तथा पलं च मधुकस्य । क्षीरप्रस्थविपक्वं गत-
मपि चक्षुर्निवर्तयते ॥ १ ॥ अथ धावनम्—स्नानं कृष्णतिलैश्चापि चक्षु-
ष्यमनिलापहम् । मधुकामलकस्नानं पित्तघ्नं तिमिरापहम् ॥ १ ॥ वचाद्यैः
स्नानमिच्छन्ति श्लेष्मघ्नं तिमिरापहम् । आमलैः सततं स्नानं परं दृष्टिबलाव-
हम् ॥ २ ॥ ॥ त्रिफलायाः कषायस्तु धावनास्त्रैररोगजित् । कवलान्मुखरो-
गघ्नः पानतः कामलापहः ॥ ३ ॥ भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्यदि दी-
यते । अचिरेणैव तद्धारि तिमिराणि व्यपोहति ॥ ४ ॥ इति तिमिरचिकित्सा ॥

अथ काचोपक्रमः ।

काचे रक्तं जलौकाभिर्हृत्वा पूर्वोक्तमाचरेत् । शाणार्थं मरिचं द्वौ च पिल्प-

त्यर्णवफेनयोः ॥ १ ॥ शाणार्धं सैन्धवाच्छाणा नव सौवीरकाञ्जनात् । पिष्टं
 सुसूक्ष्मं चित्रायां चूर्णाञ्जनमिदं शुभम् ॥ २ ॥ कण्डूकाचकफार्तानां मलानां
 च विशोधनम् ॥ ३ ॥ इति शार्ङ्गधरात् ॥ समेपशृङ्ग्यञ्जनभागसंमितः श-
 ङ्खोञ्जनात्काचमलं व्यपोहति ॥ १ ॥ शिलासैन्धवकासीसशङ्खव्योपरसा-
 ञ्जनैः । सक्षौद्रैः काचशुक्रार्मतिमिरञ्जी रसक्रिया ॥ २ ॥ इति काचोपक्रमः ॥
 अथ पित्तविदग्धदृष्टेश्चिकित्सा—रसाञ्जनं घृतक्षौद्रतालीसस्वर्णगैरिकैः ।
 गोशकृद्रससंयुक्तं पित्तोपहतदृष्टये ॥ १ ॥ काश्मरीपुष्पमधुकदार्वीलोध्ररसा-
 ञ्जनैः । सक्षौद्रमञ्जनं कुर्यात्पित्तव्याधिप्रशान्तये ॥ २ ॥ अथ श्लेष्मविद-
 ग्धदृष्टेश्चिकित्सा—हरेणुमगधाबीजमज्जनं यकृदन्वितम् । शकृद्रसेनाञ्जनं
 वा श्लेष्मोपहतदृष्टये ॥ १ ॥ अथ दिवान्धराज्यगन्धयोश्चिकित्सामाह—
 नलिनोत्पलकिञ्जल्कगैरिकं सयकृद्रसम् । गुटिकाञ्जनमेतस्य दिनराज्यन्धयो-
 र्हितम् ॥ १ ॥ नदीजशङ्खत्रिकटूत्रसाञ्जनं मनःशिला द्वे च निशे गवां श-
 कृत् । सचन्दनेयं गुटिकाऽऽशु कृत्वा प्रशस्यते रात्रिदिने न पश्यताम् ॥ २ ॥
 सूर्यादिदर्शनैर्दग्धे तत्र शीतं प्रयोजयेत् । हेमघृष्टं घृतोपेतमञ्जनं चोपशस्यते ॥ ३ ॥
 अथ केवलराज्यन्धचिकित्सा—रसाञ्जनं हरिद्रे द्वे मालती निम्बपल्लवाः ।
 गोशकृद्रससंयुक्ता वटी नक्तान्ध्यनाशनी ॥ १ ॥ द्रुतस्याश्वाञ्जने मात्रा प्रोक्ता
 सार्धहरेणुका । कणा छागयकृन्मध्ये पक्वा तद्रसपेयिता ॥ २ ॥ अचिराद्वन्ति
 नक्तान्ध्य तद्रत्सक्षौद्रमूपणम् । करञ्जपद्मकिञ्जल्कचन्दनोत्पलगैरिकैः ॥ ३ ॥
 गोशकृद्रससंयुक्तैर्नक्तान्ध्ये हितमञ्जनम् । रसाञ्जनं शिला दारु जातीपत्ररस-
 मधु ॥ ४ ॥ नक्तान्धतां जयेदेतदञ्जनं साधु योजितम् । मालतीपत्रक्षौद्रं च
 निशाद्वयरसाञ्जनैः ॥ ५ ॥ नक्तान्ध्यमञ्जनं हन्यात्कृष्णा वा गोमयान्विता ।
 दक्षा घृष्टं मरीचं वा राज्यन्धाञ्जनमुत्तमम् ॥ ६ ॥ इति दिवान्धराज्यन्धयोश्चि-
 कित्सा ॥ अथ नकुलान्ध्यरोगस्य रागरहितस्य चिकित्सा—वचा त्रिवृच-
 न्दनकुण्डली च भूनिम्बनिम्बौ रजनी सवासा । प्रस्थं जलस्य कथिताष्टभागं
 पिबेत्सुजीर्णं नकुलान्ध्यरोगे ॥ १ ॥ इति वज्रसेनात् । इति दृष्टिगतरोगचि-
 कित्सा ॥

अथ कृष्णगतरोगचिकित्सा ।

तत्राऽऽदौ सव्रणशुक्रप्रतीकारमाह—व्रणशुक्रप्रशान्त्यर्थं पडङ्गं गु-
 गुलुं पचेत् । शिरसश्चाऽऽहरेद्रक्तं जलौकाभिश्च लोचनात् ॥ १ ॥ ससैन्धवं
 त्रिवृत्काथे त्रीन्वारान्पाचयेद् घृतम् । पीत्वा सर्वेषु शुक्लेषु शीघ्रं कुर्याच्छिरा-
 व्यधम् ॥ २ ॥ अथ यष्ट्याह्वाद्याश्चोत्तनम्—यष्ट्याह्वाद्युत्पलपद्मलाक्षा-
 प्रपौण्डरीकं नलदाम्बुना च । आश्चोत्तनं स्त्रीपयसा विपक्वं निहन्ति तत्सव्रण-
 दाहशुक्रम् ॥ १ ॥ अथ लामज्जकाद्यञ्जनम्—लामज्जकोत्पलसितासारि-

वाचन्दनद्वयैः । कार्पिकैः सारिवाप्रस्थं काथयेत्सलिलाढके ॥ १ ॥ पादशेषं
परिस्राव्य पचेदादर्विलेपनात् । भाजने लोहशैले वा प्रातस्तत्सायमञ्जनम्
॥ २ ॥ प्रधानमेतच्छुक्रव्रणशुक्रं शमं नयेत् । श्यामामूलकपायं वा मधुना
व्रणशुक्रिणाम् ॥ ३ ॥ अथ चन्दनादिवर्तिः—चन्दनं गैरिकं लाक्षा मा-
लती कलिकान्विता । व्रणशुक्रहरी वर्तिः शोणितस्य प्रसादनी ॥ १ ॥ अथा-
व्रणशुक्रचिकित्सा । अथाऽऽश्रोतनम्—जात्याः प्रवालं मधुकं च स-
र्पिर्भृष्टं सुखोष्णाम्बुसुशीतलं च । आश्रोतनं शुक्रहरं प्रदिष्टं शुक्रापहं स्त्रीप-
यसा महाहर्मम् ॥ १ ॥ अथ धात्रीफलादिसेचनम्—धात्रीफलं निम्बकपित्तपत्रं
यष्ट्याह्वलोघ्रं खदिरं तिलाश्च । काथः सुशीतो नयनेऽभिषिक्तः सर्वप्रकारं
विनिहन्ति शुक्रम् ॥ १ ॥ अथ वर्तयः—पलाशपुष्पस्वरसैर्बहुशः परिभा-
विता । करञ्जबीजवर्तिस्तु दृष्टेः पुष्पं व्यपोहति ॥ १ ॥ समुद्रफेनसिन्धूथशङ्ख
दक्षाण्डवलकलैः । शिमुबीजयुतैर्वर्तिः शुक्रादीन्शस्त्रवह्निषेत् ॥ २ ॥ अथ च-
न्द्रोदयवर्तिः—रसाञ्जनं सशैलेयं कुङ्कुमं समनःशिलम् । शङ्खं सश्वेतम-
रिचं शर्करा चेति सप्तमम् ॥ १ ॥ एषा चन्द्रोदया नाम वर्तिर्वैदेहिनिर्मिता ।
हन्यात्पिलं च कण्डूं च शुक्रं सतिमिरावुदम् ॥ २ ॥ अथाञ्जनम्—वटक्षी-
 ॥ संयुक्तं मृणालं कर्पूरं रजः ॥ क्षिप्रमञ्जनतो हन्ति कुसुमं तु द्विमासिकम् ॥ १ ॥
संपुष्पं पिप्पली ॥ १ ॥ कर्पूरं काययोजनं , सक्षेपं ॥ १ ॥ अथनोपेतमञ्जनं शुक्रना-
शनम् ॥ २ ॥ ताप्यं मधुकसारो वा बीजं चाक्षस्य सैन्धवम् । मधुनाऽऽन-
योगाः स्युश्चत्वारः शुक्रनाशनाः ॥ ३ ॥ कुकुटाण्डकपालानि शङ्खः काचोऽथ
चन्दनम् । सैन्धवाधोऽशसंयुक्तमञ्जनं शुक्रलेखनम् ॥ ४ ॥ अथ लोहादि-
गुग्गुलः—अथश्च यष्टीत्रिफलाकणानां चूर्णानि तुल्यानि पुरेण नित्यम् । स-
र्पिर्मधुभ्यां सह भक्षितानि सर्वाणि शुक्राणि निहन्ति शीघ्रम् ॥ १ ॥ अथ
पटोलाद्यं घृतम्—पटोलं कटुकादार्वांनिम्बवासाफलत्रिकम् । दुरालभां पर्प-
टकं त्रायन्तीं च पलोन्मिताम् ॥ १ ॥ प्रस्थमामलकानां च काथयेन्नलवणेऽ-
म्भसि । तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २ ॥ कल्कैर्भूनिम्बकुटजमु-
स्तयष्ट्याह्वचन्दनैः । सपिप्पलीकैस्तत्सिद्धं चक्षुष्यं शुक्रयोजितम् ॥ ३ ॥ घ्रा-
णकर्णाक्षिवर्त्मवङ्कुखरोगव्रणापहम् । कामलाज्वरवीसर्पगण्डमालापहं परम्
॥ ४ ॥ अथ कृष्णाद्यं तैलम्—कृष्णाधिडङ्गमधुयष्टिकसिन्धुजन्मविश्वोपधैः
पयसि सिद्धमिदं छगल्याः । तैलं व्रणं निमिरशुक्रशिरोक्षिवर्त्मपाकात्ययाञ्ज-
यति नस्यविधौ प्रयुक्तम् ॥ १ ॥ अथाक्षिपाकात्ययचिकित्सामाह—
एवार्क पुण्डरीकं च गवां क्षीरावशेषितम् । रागाश्रुवेदनां हन्यादक्षिपाकात्ययं
तथा ॥ १ ॥ अथाजकाचिकित्सामाह—मूर्धाक्षिकर्णभ्रूगण्डशङ्खचर्माश्रि-
ताऽजका । जायते व्यथते नेत्रं मथ्यमानमिवान्तरा ॥ १ ॥ उष्णमशु स्रव-
त्यक्षि दूषितं क्लिघते भृशम् । असाध्यरोगसंभूतां दृष्टिजां च विवर्जयेत् ॥ २ ॥

स्वयं प्रवृद्धां कठिनां चिरकालोत्थितामपि । साध्यरोगसमुत्पन्नां कृष्णजां त्व-
जकां जयेत् ॥ ३ ॥ अजकायां शिरां मुक्त्वा त्रिवृच्चूर्णेर्विरेचयेत् । घृतं वातहरैः
सिद्धमजकायां प्रयोजयेत् । सेके पाने तथाऽक्षयङ्गे भोज्ये दृष्टिविदां वरः ॥ ४ ॥
पक्ववटपत्रपुटके निधाय मासं धवलकर्कटकान् । पुटवद्विदह्य बद्ध्वा तद्रस-
सेको जयेदजकाम् ॥ ५ ॥ गवाप्तस्थित्वचं कांसे विनिर्घृष्य सुखाम्बुना । पूर-
येदक्षि तेनाऽऽशु प्रशाम्यत्यजकामयः ॥ ६ ॥ अङ्गारपक्वशम्बूकरसेनाऽऽश्रोत-
नाञ्जनम् । कर्पूरचूर्णयुक्तेन शाम्यते त्वजकामयः ॥ ७ ॥ सैन्धवं वाजिपादं
च गोरोचनसमायुतम् । शैलुत्वग्रससंयुक्तं पूरणं चाजकापहम् ॥ ८ ॥ अथ
शशकादिघृतम्—शशकस्य कपाये तु घृतप्रस्थं विपाचयेत् । कल्कं दद्यात्तु
सक्षीरं यथोक्तान्कर्पसंमितान् ॥ १ ॥ सारिवा मधुकं लाक्षा चन्दनं नीलमु-
त्पलम् । बला चातिबला चैव मृणालं पत्रकं तथा ॥ २ ॥ कार्पिकं सविपं
लोभ्रं जीवनीयगणान्वितम् । घृतमेतत्प्रयोक्तव्यं पाने नस्ये च पूरणे ॥ ३ ॥
अजकामर्जुनं काचं पटलं शुक्रमेव च । तथाऽक्षिरोगान्सकलान्वातपित्तोत्तरा-
ञ्जयेत् ॥ ४ ॥ इति कृष्णगतरोगचिकित्सा ॥

अथ शुक्लजाः—

प्रस्तार्थमार्थ स्नायवर्म तथैवार्थभिर्मांसकम् । लोहितार्म सशुक्लार्म शुक्ल-
प्राप्तानि वेदयेत् ॥ १ ॥ अर्मवाच्यं दधिनिभं नीलं रक्तमथापि वा । धूसरं
तन्नु यच्चाऽऽशु शुक्रवत्समुपाचरेत् ॥ २ ॥ अथ कृष्णादिपुटपाकः—कृष्णा-
लोहरजस्ताम्रशङ्खविद्रुमसिन्धुजैः । समुद्रफेनकासीसत्तोतोजदधिमस्तुभिः ॥
लेखने वा कृते तस्य परं धारणमिष्यते ॥ १ ॥ अथ पिप्पल्यादिगुटिका-
ञ्जनम्—पिप्पलीत्रिफलालाक्षालोहचूर्णं ससैन्धवम् । शृङ्गाराजसे पिष्टं गुटि-
काञ्जनमिष्यते ॥ १ ॥ अर्मं सतिमिरं काचं कण्डूं शुक्रमथार्जुनम् । अजकां
नेत्ररोगांश्च हन्यान्निरवशेषतः ॥ २ ॥ अथ मरिचादिलेपः—संचूर्ण्य मरि-
चाक्षे च रजन्या रसमर्दिते । लेपनादर्मणां नाशं करोत्येव प्रयोगराट् ॥ १ ॥
अथ पुष्पाक्षादिरसक्रिया—पुष्पाक्षताक्ष्यं रजसितोदधिफेनशङ्खसिन्धूत्थगै-
रिकशिलामरिचैः समांशैः । पिष्टैस्तु माक्षिकरसेन रसक्रियेयं हन्त्यर्मकाच-
तिमिरार्जुनवर्मरोगान् ॥ १ ॥ क्रिया शुक्लामये कार्या पित्ताभिष्यन्दजिच्छुभा ।
बलासाह्वयपिष्टे तु कार्यं शोणितमोक्षणम् ॥ २ ॥ कफाभिष्यन्दजित्सर्वं क्रमं
कुर्याद्विचक्षणः । अञ्जनं कटफलव्योषबीजपूररसाञ्जनैः ॥ ३ ॥ अर्जुने शर्करा-
मस्तुक्षौद्रैराश्रोतनं हितम् । शङ्खः क्षौद्रेण संयुक्तः कतकः सैन्धवेन वा ।
सितयाऽर्णवफेनो वा पृथगाञ्जनमर्जुने ॥ ४ ॥ इति शुक्लगतरोगचिकित्सा ॥

अथ वर्त्मपक्षमजाः—

उत्सङ्गिनी बहलकर्दमवर्त्मनी च श्यावं च यच्च पठितं त्विह अर्शवर्त्म । छिष्टं

च पोथकियुतं खलु वर्त्म यच्च कुम्भीकिनी च सह शर्करया च लेख्याः ॥
 श्लेष्मोपनाहलगणं च विसं च भेद्या ग्रन्थिश्च यः कृमिकृतोऽञ्जननामिका च
 ॥ १ ॥ स्त्रिन्नां भित्त्वा विनिष्पीड्य भिन्नामञ्जननामिकाम् । शिलैलानतसि-
 न्धूतैः सक्षौद्रैः प्रतिसारयेत् ॥ २ ॥ रसाञ्जनमधुभ्यां वा भित्त्वा शस्त्रेण
 वर्त्मवित् । प्रतिसार्याञ्जनैर्युक्तादुष्णैर्दीपशिखोद्भवैः ॥ ३ ॥ स्वेदयेद् घृष्टयाऽ-
 ङ्गुल्या हरेद्रक्तं जलौकया । करे संघृष्य दुर्वर्ण्यमञ्जयेल्लोचने मुहुः ॥ ४ ॥
 द्वित्रिवाराब्धमयति कण्डूदोषान्विताञ्जनम् । रसाञ्जनं व्योपयुतं सपिष्टं वट-
 कीकृतम् ॥ ५ ॥ कण्डूपाकान्वितं हन्ति नूनमञ्जननामिकाम् । रोचनाक्षार-
 तुत्थानि पिप्पल्यः क्षौद्रमेव च ॥ ६ ॥ प्रतिसारणमेकैकं भिन्ने लगण इष्यते ।
 निमेषं नाशमायाति सर्पिस्तेन च पूरणम् ॥ ७ ॥ स्वेदयित्वा विसग्रन्थिच्छि-
 द्राण्यस्य निराश्रयेत् । पक्वं भित्त्वा तु शस्त्रेण सैन्धवेन प्रपूरयेत् ॥ ८ ॥ इति
 निमेषविसग्रन्थी ॥ अथ क्लिन्नवर्त्म—आलदारुवचाः पिष्ट्वा सुरसापत्रवा-
 रिणा । छायाशुष्का कृता वर्तिः क्लिन्नवर्त्मनिवारणी ॥ १ ॥ रसाञ्जनं सर्ज-
 रसो जातीपुष्पं मनःशिला । समुद्रकेनो लवणं गेरिकं मरिचानि च ॥ २ ॥
 एतत्समांशं मधुना पिष्ट्वा प्रक्लिन्नवर्त्मनि । अञ्जनं क्लेदकण्डूघ्नं पक्ष्मणां च प्र-
 रोहणम् ॥ ३ ॥ अथ पिल्लम्—पित्तश्लेष्मप्रकोपेण वर्त्मान्तः संप्रकुप्यते ।
 नास्त्राऽतिलोमशं वाऽपि विक्लिष्टं पिल्लमेव च ॥ १ ॥ वर्त्मावलेख्यं बहुशस्त-
 द्रच्छोणितमोक्षणम् । पुनः पुनर्विरेकं च पिल्लरोगातुरो भजेत् ॥ २ ॥ पिल्ली
 स्निग्धो वमेत्पूर्वं क्रियाव्यवसृतेऽमृजि । शिलारसाञ्जनव्योपगोपितैर्वर्तिरञ्ज-
 नम् ॥ ३ ॥ पिल्लघ्नं छागमूत्रेण भावितं देवदारु च । हरितालवचादारुस्सर-
 ात्सर्वेष्विषाणु ॥ ४ ॥ अभयारससंपिष्टं तगरं पिल्लना ॥ ५ ॥ रसाञ्जनं पिल्लनाश-
 नम् । तुत्थकस्य पलं श्वेतमरिचानि च विंशतिः ॥ ६ ॥ त्रिंशता काञ्जिकपलैः
 पिष्ट्वा ताग्रे निधापयेत् । पिल्लानपिल्लान्कुरुते बहुवर्षोन्थितानपि । उत्सेकेनो-
 पदेहेन कण्डूशोथांश्च नाशयेत् ॥ ७ ॥ अथ पक्ष्मरोगयोश्चिकित्सा—रक्षन्नक्षि
 द्रहेत्पक्ष्म तप्तलोहशलाकया । पक्ष्मकोपे पुनर्नैवं कदाचिद्रोमसंभवः ॥ १ ॥
 पुष्पकासीसचूर्णं वा सुरम्भारसभावितम् । ताग्रे दशाहं तद्योज्यं पक्ष्मशातन-
 लेपनम् ॥ २ ॥ इति वर्त्मपक्ष्मजाः ॥

अथ संधिजानां चिकित्सामाह ।

तत्र पूयालसचिकित्सा—पूयालसे शिरां भित्त्वा लेपोपनाहकर्मभिः ।
 नेत्रपाकविधिः कुर्यात्परमुक्ताञ्जनं हितम् ॥ १ ॥ आर्द्रकस्वरसैर्घृष्टं मिन्धुका-
 सीससंमितम् । छायाशुष्कां वर्टी कुर्यात्पूयालये हितमञ्जनम् ॥ २ ॥ अथो-
 पनाहालज्योश्चिकित्सा—हितोपनाहे त्वलजे पिप्पलीमधुसैन्धवैः । वि-

लिखेन्मण्डलाग्रेण छेदयेद्वा समन्ततः ॥ १ ॥ अथ स्नावाः—स्नावेषु त्रिफलाकाथं यथादोषं प्रयोजयेत् । क्षौद्रेणाऽऽज्येन पिप्पल्या मिश्रं विध्येच्छिरां तथा ॥ १ ॥ पथ्याक्षधात्रीफलमध्यबीजैस्त्रिभ्योऽकभागैर्विदधीत वर्तिम् । तयाऽज्येदस्त्रमतिप्रवृद्धमक्ष्णोर्हरेत्कष्टमपि प्रकोपम् ॥ २ ॥ कार्पासीफलजम्बा-अजलैर्घृष्टं रसाञ्जनम् । मधुयुक्तं चिरोत्थं च चक्षुःस्नावमपोहति ॥ ३ ॥ अथ पर्वणी—पर्वणीपिटकां संधिभागे छिन्वादसंशयम् । हितमाश्रोतनं तत्र योजयेन्मधुसैन्धवैः ॥ १ ॥ अथ जन्तुग्रन्थिः—त्रिफलामृतकासीससैन्धवैः सरसाञ्जनैः । रसक्रियां कृमिग्रन्थौ भिन्ने स्यात्प्रतिसारणम् ॥ १ ॥ इति संधिजाः ॥

अथ समस्तनेत्रजरोगचिकित्सामाह ।

तत्र सेकविधिः—सेकस्तु सूक्ष्मधाराभिः सर्वस्मिन्नयने हितः । मीलिताक्षस्य मर्त्यस्य प्रदेयश्चतुरङ्गुलः ॥ १ ॥ सर्वोऽपि स्नेहानो वाते रक्ते पित्ते च रोपणः । लेखनश्च कफे कार्यस्तत्र मात्राऽधुनोच्यते ॥ २ ॥ पट्टाकशतैः स्नेहनेषु चतुर्भिश्चैव रोपणे । वाक्शतैश्च त्रिभिः कार्यः सेको लेखनकर्मणि ॥ कार्यस्तु दिवसे सेको रात्रौ वाऽऽत्यधिके गदे ॥ ३ ॥ अथाऽऽश्रोतनविधिः—अथ त्वाश्रोतनं कार्यं निशायां न कथंचन । उन्मीलितेऽक्षिण दृष्ट्याध्वे बिन्दुभिर्झङ्गुलाद्धितम् ॥ १ ॥ बिन्दवोऽष्टौ लेखनेषु स्नेहने दश बिन्दवः । रोपणे द्वादश प्रोक्तास्ते शीते कोष्णरूपिणः ॥ २ ॥ उष्णे च शीतरूपाः स्युः सर्वत्रैवैष निश्चयः । वाते तिक्तं तथा स्निग्धं पित्ते मधुरशीतलम् ॥ ३ ॥ तिक्तोष्णरूक्षं च कफे क्रमादाश्रोतनं हितम् । आश्रोतनानां सर्वेषां मात्रा स्याद्वाक्शतान्मिता ॥ ४ ॥ निमेषोन्मेषणं पुंसामङ्गुल्योस्त्रोटिकास्थ वा । गुर्वक्षरो-च्चारुं वा क्षत्र्यात्रेयं स्मृता बुधैः ॥ ५ ॥ अथ पिण्डिकाविधिः—पिण्डी कवलिका प्रोक्ता बध्यते नखपट्टकैः । नेत्राभिष्यन्दयोग्या सा व्रणेऽपि निगद्यते ॥ १ ॥ अथ बिडालकविधिः—बिडालको बहिलेपो नेत्रे पक्ष्मविर्वर्जिते । तस्य मात्रा परिज्ञेया मुखलेपविधानवत् ॥ १ ॥ अथ तर्पणविधिः—अथ तर्पणकं वच्मि नेत्रतृप्तिकरं परम् । यच्चक्षुः परिशुष्कं च नेत्रं कुटिलमाविलम् ॥ १ ॥ शीर्णपक्ष्मशिरोत्पातकृच्छ्रोन्मीलनसंयुतम् । तिमिरार्जुनशुक्राद्यैरभिष्यन्दाधिमन्थकैः ॥ २ ॥ शुष्काक्षिपाकशोथाभ्यां युतं वात्तविपर्ययैः । तन्नेत्रं तर्पणे योज्यं नेत्ररोगविशारदैः ॥ ३ ॥ दुर्दिनात्युष्णशीतेषु चिन्तायासभ्रमेषु च । अशान्तोपद्रवे चाक्षिण तर्पणं न प्रशस्यते ॥ ४ ॥ वातातपरजोहीने देशे चोत्तानशायिनः । आधारौ मापचूर्णेन क्लिन्नेन परिमण्डलौ ॥ ५ ॥ समौ दृढावसंबाधौ कर्तव्यौ नेत्रकोशयोः । पूरयेद् घृतमण्डेन विलीनेन सुखोदकैः ॥ ६ ॥ अथ वा शतधौतेन सर्पिपा क्षीरजेन वा । निमज्जन्त्यक्षिपक्ष्माणि यावता तावदेव हि ॥ ७ ॥ पूरयेन्मीलिते नेत्रे तत उन्मीलयेच्छनैः । धारयेद्द्वर्त्मरोगेषु वाङ्मात्राणां शतं बुधः ॥ ८ ॥ स्वच्छे कफे सं-

धिरोगे मात्रापञ्चशतं हितम् । शुक्ले च षट्शतं कृष्णरोगे सप्तशतं मतम् ॥ ९ ॥ दृष्टिरोगेष्वष्टशतमधिमन्थे सहस्रकम् । सहस्रं वातरोगेषु धार्यमेवं हि तर्पणम् ॥ १० ॥ एकाहं वा त्र्यहं वाऽपि पञ्चाहं चेप्यते परम् । तर्पणा-
त्तृप्तिलिङ्गानि नेत्रस्यैतानि लक्षयेत् ॥ ११ ॥ सुखस्वप्नावबोधत्वं वैशद्यं वर्ण-
पाटवम् । निर्वृतिर्व्याधिशान्तिश्च क्रियालाघवमेव च ॥ १२ ॥ अथ साश्रु-
गुरु स्निग्धं नेत्रं स्यादतितर्पितम् । रूक्षमस्त्राविलं रूक्षं नेत्रं स्यान्दीनतर्पितम् ॥
रूक्षस्निग्धोपचाराभ्यामेतयोः स्यात्प्रतिक्रिया ॥ १३ ॥ अथाभिष्यन्दचि-
कित्सामाह—तेषु वातिकाभिष्यन्दचिकित्सा । अथ सेकः—एरण्डवक्प-
त्रमूलैः शृतमाजं पयो हितम् । सुखोष्णं सेचनं नेत्रे वाताभिष्यन्दनाशनम् ॥ १ ॥ परिपेके हितं नेत्रे पयः कोष्णं ससैन्धवम् । रजनीदारुसिद्धं वा सै-
न्धवेन समन्वितम् ॥ वाताभिष्यन्दशमनं हितं मास्तुतर्पये ॥ २ ॥ अथाऽऽ-
श्रोतनम्—बिल्वादिपञ्चमूलेन बृहत्येरण्डशिग्रुभिः । काथश्चाऽऽश्रोतनं कोष्णो
वाताभिष्यन्दनाशनः ॥ १ ॥ अम्बुपिष्टैर्निम्बपत्रैस्त्वचं लोभ्रस्य पेपयेत् । प्र-
ताप्य वह्निना पिष्ट्वा तद्रसो नेत्रपूरणात् ॥ वातोत्थं रक्तपित्तोत्थमभिष्यन्दं
विनाशयेत् ॥ २ ॥ अथ पिण्डिका—वाताभिष्यन्दशान्त्यर्थं स्निग्धोष्णा
पिण्डिका भवेत् । एरण्डपत्रमूलत्वङ्निर्मिता वातनाशिनी ॥ १ ॥ अथा-
ञ्जनम्—हरिद्रा मधुकं पथ्या देवदारु च पेपयेत् । आजेन पयसा श्रेष्ठम-
भिष्यन्दे तदञ्जनम् ॥ अथ पित्ताभिष्यन्दचिकित्सा । अथ सेकः—
चन्दनारिष्टपत्राणि यष्टीदान्याससैन्धवैः । पिष्ट्वाऽम्भसा भवेत्सेकः पित्ते क्षौ-
द्रसमन्वितः ॥ १ ॥ अथाऽऽश्रोतनम्—निम्बस्य पत्रैः परिलिप्य लोभ्रं
स्वेदोऽग्निना चूर्णमथापि कल्कम् । आश्रोतनं मान्यद्वयं ॥ १ ॥ अथ पिण्डिका—
पित्ताभिष्यन्दनाशाय धात्रीपिण्डी सुखावहा । महानिम्बदलोद्भूता पिण्डिका पित्त-
नाशिनी ॥ १ ॥ अथ बिडालकः—पैत्तिके चन्दनानन्तामज्जिष्टाभिर्विडाल-
कः । कार्यः सपद्मयष्ट्याह्वमांसीकालीयकैस्तथा ॥ १ ॥ चन्दनं मधुकं लोभ्रं
जातीपुष्पाणि गैरिकम् । प्रलेपो दाहरोगघ्नस्तोदाभिष्यन्दनाशनः ॥ २ ॥ अथ
श्लेष्मिकाभिष्यन्दचिकित्सामाह—कफजे लङ्घनं स्वेदो नस्यं तिक्तादि-
भोजनम् । तीक्ष्णैः प्रधमनं कुर्यात्तीक्ष्णैरेवोपनाहनम् । रूक्षतीक्ष्णविरैकैश्च मलं
सम्यग्विनिर्हरेत् ॥ १ ॥ अथ सेकः—निम्बार्कपत्रसंपक्वं लोभ्रं भागचतुष्ट-
यम् । धूपः सर्पिः पयोभागैः कफे सेकः सुखाम्बुना ॥ १ ॥ अथाऽऽश्रोत-
नम्—ससैन्धवं लोभ्रमथाऽऽज्यभृष्टं सौवीरपिष्टं सितवस्त्रबद्धम् । आश्रोतनं
तन्नयनस्य कुर्यात्कण्डूं च दाहं च रुजं च हन्यात् ॥ १ ॥ अथ पिण्डिका—
शिग्रुपत्रकृता पिण्डी श्लेष्माभिष्यन्दहारिणी । शुण्ठीनिम्बदलैः पिण्डी सु-

खोष्णा स्वल्पसैन्धवा ॥ धार्या चक्षुषि संयोगाच्छोधकण्डुव्यथाहरा ॥ १ ॥
 अथ विडालकः—रसाञ्जनेन वा लेपः पथ्याविश्वदलैरपि । वचाहरिद्रावि-
 श्वैर्वा तथा नागरगैरिकैः ॥ १ ॥ अथ स्वेदनम्—फणिज्जकास्फोटकपित्त-
 बिल्वधत्तूरभङ्गार्जुनपत्रयोगैः । स्वेदं विद्ध्यादथ वा प्रलेपं सलोध्रशुण्ठीसुर-
 दारुकुष्ठैः ॥ १ ॥ अथ सामान्योपचारः—वल्कलं पारिजातस्य तैलसैन्ध-
 वकाञ्जिकम् । कफजाक्षिजशूलघ्नं तरुघ्नं कुलिशं यथा ॥ १ ॥ सौवीरं सैन्धवं
 तैलं मूर्वामूलं तथैव च । कांस्यपात्रे विघृष्टं स्यादक्ष्णोः शूलनिवारणम् ॥ २ ॥
 सलवणकटुतैलं काञ्जिकं कांस्यपात्रे निहितमुपलघृष्टं धूपितं गोमयाग्नौ । स-
 पवनकफकोपं छागदुग्धावसिक्तं जयति नयनशूलं स्त्रावशोथं सरागम् ॥ ३ ॥
 स्यन्दाधिमन्थे क्रममाचरेच्च सर्वेषु चैतेषु सदा प्रशस्तम् ॥ ४ ॥ अथ रक्त-
 जाभिष्यन्दचिकित्सामाह । अथ सेकः—त्रिफलालोध्रयष्टीभिः शर्क-
 राभद्रमुस्तकैः । पिष्टैः शीताम्बुना सेको रक्ताभिष्यन्दनाशनः ॥ १ ॥ अथा-
 ऽऽश्रोतनम्—स्त्रीसूत्राश्रोतनं नेत्रे रक्तपित्तानिलातिजित् । क्षीरसर्पिर्घृतं
 वाऽपि रक्तपित्तरुजं जयेत् ॥ १ ॥ लोध्रचूर्णं घृते घृष्टं रुजमाश्रोतनैर्हरेत् ।
 शर्करात्रिफलाचूर्णमिदमाश्रोतनं परम् ॥ २ ॥ अथाञ्जनम्—श्रीपर्णीपाट-
 लाधात्रीधातकीतिल्वकार्जुनात् । पुष्पाण्यथ बृहत्याश्च बिम्बीलोध्रं च तुल्यशः
 ॥ १ ॥ मज्जिष्टं चापि मधुना पिष्ट्वाऽपीक्षुरसेन वा । रुधिरस्यन्दशान्त्यर्थमे-
 तदञ्जनमिष्यते ॥ २ ॥ अथ वासादिकाथः—आटरूपाभयानिम्बधात्री-
 मुस्तकमूलकैः । रक्तास्त्रावं कफं हन्ति चक्षुष्यं वासकादिकम् ॥ १ ॥ अथा-
 धिमन्थान्यतोवातयोश्चिकित्सा—अधिमन्थेषु सर्वेषु ललाटे व्यधयेच्छि-
 राम् । अङ्गुष्ठे सर्वथा मन्थे भ्रुवोरुपरि दाहयेत् ॥ १ ॥ अभिष्यन्देषु याः
 प्रोक्ताश्चतुर्विधं प्रतिष्ठिताः । ताः सर्वा अधिमन्थेषु प्रयोज्याश्च भिषग्वरैः
 ॥ २ ॥ सर्व एव विधिः सर्वमन्थादिभ्यश्चिन्त्यते । तथा चाप्यन्यतोवाते
 सामान्यो वक्ष्यते विधिः ॥ ३ ॥ यष्टीं गुडूचीं त्रिफलां सदावीमक्ष्यामये
 सर्वभवे पिबेद्वा । आश्रोतनं सान्द्ररसेन दाव्याः शस्तं सदा क्षौद्रयुतं नरा-
 णाम् ॥ ४ ॥ गुडूचीत्रिफलाकाथो मधुना सह योजितः । पीतः सर्वाक्षिरौ-
 गघ्नः कृष्णाचूर्णावचूर्णितः ॥ ५ ॥ प्रपौण्डरीकयष्ट्याह्वादावीलोध्रैः सचन्दनैः ।
 पुरण्डाम्बुयुतैः सेकैः सर्वनेत्ररुजापहः ॥ ६ ॥ श्वेतलोध्रं घृते भृष्टं चूर्णितं
 ताप्यतुल्यकम् । कृष्णाम्बुना विमृदितं सेकः शूलहरः परः ॥ ७ ॥ यष्टीगैरि-
 कसिन्धूत्थदावीताक्ष्यैः समांशकैः । जलपिष्टैर्बहिल्लैः सर्वनेत्रामयापहः ॥ ८ ॥
 दग्ध्वा ससैन्धवं लोध्रं मधूच्छिष्टयुते घृते । पिष्टमञ्जनलेपाभ्यां सद्यो नेत्ररु-
 जापहम् ॥ ९ ॥ लोहस्य पात्रे संघृष्टो रमो निम्बुफलोद्भवः । किञ्चिद्वनो ब-
 हिल्लैः पात्रे त्रय्याधि व्यपोहति ॥ १० ॥ निम्बस्य चोदुम्बरवल्कलस्य पुरण्डय-
 ष्ठीमधुचन्दनस्य । पिण्डो विधेयो नयनप्रकोपे कफेन पित्तेन समीरणेन ॥ ११ ॥

अथ शोथपाकयोश्चिकित्सा—जलौकापातनं श्रेष्ठं नेत्रपाके विरेचनम् । शिराव्यधं वा कुर्वीत सेकलेपौ च शुक्रवत् ॥ १ ॥ विभीतकशिवाधात्रीपटोलारिष्टवासकैः । काथो गुग्गुलुसंयुक्तः शोथशूलक्षिरोगानुत् ॥ २ ॥ अथ वातपर्ययशुष्काक्षिपाकयोश्चिकित्सा—वाताभिप्यन्दवच्चात्र वातमारुतपर्यये । अनेनैव विधानेन भिषक्चैवाभिसाधयेत् ॥ १ ॥ पूर्वं तत्र हितं सर्पिः क्षीरं वाऽप्यथ भोजनम् । परिपेको हितं नेत्रे पयः कोष्णं ससैन्धवम् ॥ २ ॥ रजनीदारुसिद्धं वा सैन्धवेन समन्वितम् । वाताभिप्यन्दशमनं हितं मारुतपर्यये ॥ ३ ॥ शुष्काक्षिपाके च सदा इदं सेचनकं हितम् । सैन्धवं दारु शुण्ठी च मातुलुङ्गरसे घृतम् ॥ ४ ॥ स्तन्योदकार्थं कुर्वीत शुष्कपाके तदञ्जनम् । शुष्काक्षिपाके हविषः पानमक्ष्णोश्च तर्पणम् ॥ घृतेन जीवनीयेन नस्यं तैलेन योजयेत् ॥ ५ ॥ अथाम्लाध्युपितमाह—तिक्तस्य सर्पिषः पानं बहुशश्च विरेचनम् । अम्लाध्युपितशान्त्यर्थं कुर्याल्लेपान्सुशीतलान् ॥ १ ॥ विल्वकं त्रिफलां सर्पिर्जीर्णं वा केवलं पिबेत् । शिराव्यधं विना कार्यः पित्तस्यन्दहरो विधिः ॥ २ ॥ अथ शिरोत्पातशिराहर्षयोश्चिकित्सा—शिरोत्पातं शिराहर्षमन्यांश्चास्त्रभवान्गदान् । स्निग्धस्य कोष्णेनाऽऽज्येन शिरावेधैः शमं नयेत् ॥ १ ॥ सर्पिः क्षौद्रं चाञ्जनं स्याच्छिरोत्पातस्य भेषजम् । तद्वत्सैन्धवकासीसं स्तन्यपिष्टं च पूजितम् ॥ २ ॥ शिराहर्षेऽञ्जनं कार्यं फागितं मधुसंयुतम् । मधुना तार्क्ष्यशैलं च कासीसं वा समाक्षिकम् ॥ ३ ॥ वेदसाम्बलं सान्धधुतं फागितं तु ससैन्धवम् । पित्ताभिप्यन्दशमनं विधिं चात्रापि योजयेत् ॥ ४ ॥ इति सर्वप्रथमः ॥ अथ अन्तःशान्तरे नयनाभिघातस्य निदानचिकित्से—स्ववत्यशु च यन्त्रं घृतं लोप्यते विधिः । निमेषोन्मेषणाशक्तं सशल्यं तं विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥ नेत्रेऽभिघातः शिराव्यधः च विनिर्दिशेत् । अन्तःस्त्रीस्तन्यसेकश्च रक्तमोक्षश्च शस्यते ॥ २ ॥ दृष्टिप्रसादजननं विधिमाशु कुर्यात्स्निग्धैर्हिमैश्च मधुरैश्च तथा प्रयोगैः । स्वेदाग्निधूमभयशोकरुजादितापैरभ्याहतामपि तथैव भिषक्चिकित्सेत् ॥ ३ ॥ सूर्यार्चिराशाम्बरविद्युतादिविलोकनेनोपहृतेक्षणस्य । संतर्पणं स्निग्धहिमादि कार्यं सायं निषेव्यस्त्रिफलाप्रयोगः ॥ ४ ॥ निशाब्दत्रिफलादावीं सितामधुसमन्विता । अभिघाताक्षिशूलघ्नं नारीक्षीरेण पूरणम् ॥ ५ ॥ साबरं मधुकं तुल्यं घृतभृष्टं सुचूर्णितम् । छागक्षीरोत्थितं सेकः पित्तरक्ताभिघातजित् ॥ ६ ॥ इति नयनाभिघातः ॥ क्षौद्राश्वलालासंघृष्टैर्मरिचैर्नेत्रमञ्जयेत् । अतिनिद्रा शमं याति तमः सूर्योदयादिव ॥ १ ॥ जातीपुष्पं प्रवालं च मरिचं कटुका वचा । सैन्धवं बस्तमूत्रेण पिष्टं तन्द्राघ्नमञ्जनम् ॥ २ ॥ अथ नेत्ररोगे भीमसेनीकर्पूरः—सुधांशोर्वसुभागाः स्युरेलाभागद्वयं तथा । चन्दनं चावधिफेनं च बीजं कतकसंभवम् ॥ १ ॥ रसा-

जनं भद्रमुस्तं प्रत्येकं कर्पसंमितम् । सर्वं दुग्धे विमर्द्याथ पिण्डे गोधूमपिष्ट-
चत् ॥ २ ॥ कृत्वा पात्रे निधायाथ क्षिपेत्पात्रं तथोपरि । अधः प्रज्वालयेद्दीपं
चर्त्याऽङ्गुष्ठसमानया ॥ ३ ॥ एवं प्रहरपर्यन्तं वह्निं कुर्याच्च युक्तितः । पात्रस्यो-
परिभागं तु शीतलं रक्षयेद्दुग्धः ॥ ४ ॥ सदाऽऽर्द्रचैलखण्डेन शीतलेन च
चारिणा । स्वाङ्गशीतं ततो ज्ञात्वा पश्चात्कर्पूरमाहरेत् ॥ ५ ॥ स्फटिकाकारम-
त्यच्छं श्वेतहीरमणिप्रभम् । भीमसेन्याख्यकर्पूरमौपधेषु प्रयोजयेत् ॥ ६ ॥
इति भीमसेनीकर्पूरः ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

आश्रोतनं लङ्घनमजनं च स्वेदो विरेकःप्रतिसारणं च । प्रपूरणं नस्यमसु-
ग्विमोक्षः शस्त्रक्रिया लेपनमाज्यपानम् ॥ १ ॥ सेको मुनीष्टातिमिरघ्नपूजा मुद्रा
यवा लोहितशालयश्च । कौम्भं हविर्वन्यकुलत्थयूपः पेया विलेपी सुरणं पटो-
लम् ॥ २ ॥ वार्ताककर्कोटककारवेलं नवीनमोचं नतमूलकं च । पुनर्नवा-
मार्कवकाकमाचीपत्तूरशाकानि कुमारिका च ॥ ३ ॥ कुस्तुम्बुरुः शीरकमा-
णिमन्थो रोध्रं वरा क्षौद्रमुपानहश्च । नारीपयश्चन्दनमिन्दुखण्डं तिक्तानि
सर्वाणि लघूनि चापि ॥ ४ ॥ विजानता पथ्यमिदं प्रयुक्तं यथामलं नेत्रगदं
निहन्ति । क्रोधं शुचं मैथुनमश्रुवायुविण्मूत्रनिद्रावमिवेगरोधम् ॥ ५ ॥ सू-
क्ष्मेक्षणं दन्तविवर्पणं च स्नानं निशाभोजनमातपं च । प्रजल्पनं छर्दनमम्बु-
पानं मधूकपुष्पं दधिपत्रशाकम् ॥ ६ ॥ कालिङ्गपिण्याकविरूढकानि मत्स्यं
सुरा मांसमजाङ्गलं च । ताम्बूलमम्लं लवणं विदाहि तीक्ष्णं कटूष्णं गुरु चा-
न्नपानम् । नरो न सेवेत हिताभिलाषी सर्वेषु रोगेषु दृशाश्रयेषु ॥ ७ ॥ शा-
लितण्डुलगोधूममुन्मथ्यगोघृतम् । गोपयश्च सिता क्षौद्रं पथ्यं नेत्रगदे
स्मृतम् ॥ ८ ॥ सर्वं शाकमन्नक्षुष्यं चक्षुष्यं शाकपञ्चकम् । जीवन्ती वास्तु
मत्स्याक्षी मेघनादः पुनर्नवा ॥ ९ ॥ माषारनालकटुतैलजलावगाहक्षुद्राक्षु-
रैश्च सुरतैर्निशि जागरैश्च । शाकाम्लमत्स्यदधिफाणितवेसवारैश्चक्षुः क्षयं व्र-
जति सूर्यविलोकनाच्च ॥ १० ॥ इति नेत्ररोगाधिकारः ।

अथ स्त्रीरोगाधिकारः ।

तत्राऽऽदौ प्रदरस्य निदानमाह—विरूद्धमद्याध्यशनादजीर्णाद्गर्भप्रपा-
तादतिमैथुनाच्च । यानाध्वशोकादतिकर्पणाच्च भाराभिघाताच्छयनाद्दिवा च
॥ १ ॥ तं श्लेष्मपित्तानिलसंनिपातैश्चतुष्प्रकारं प्रदरं वदन्ति ॥ २ ॥ प्रदरस्य
सामान्यलक्षणमाह—असृग्दरं भवेत्सर्वं साङ्गमर्दं सवेदनम् ॥ अथ श्ले-
ष्मिकस्य लक्षणमाह—आमं सपिच्छप्रतिमं सपाण्डु पुलकतोयप्रतिमं
कफात्तु ॥ पैत्तिकमाह—सपीतनीलासितरक्तमुष्णं पित्तार्तियुक्तं भृशवेगि
पित्तात् ॥ ३ ॥ वातिकमाह—रूक्षारुणं फेनिलमल्पमल्पं वातात्सतोदं पि-

शितोदकाभम् ॥ अथ सांनिपातिकमाह—सक्षौद्रसर्पिर्हरितालवर्णं मज्ज-
प्रकाशं कुणपं त्रिदोषम् । तं चाप्यसाध्यं प्रवदन्ति तज्ज्ञा न तत्र कुर्वन्ति
भिषक्चिकित्साम् ॥ ४ ॥ अथ रक्तस्यातिप्रवृत्तावुपद्रवानाह—तस्या-
तिवृत्तौ दौर्बल्यं भ्रमो मूर्छा मदस्तृपा । दाहः प्रलापः पाण्डुत्वं तन्द्रा रो-
गाश्च वातजाः ॥ ५ ॥ अथासाध्यां प्रदरव्याधिमतीमाह—शश्वत्स्वव-
न्तीमास्त्रावं तृपादाहज्वरान्विताम् । दुर्बलां क्षीणरक्तां च तामसाध्यां विवर्ज-
येत् ॥ ६ ॥ अथ चिकित्सानिवृत्त्यर्थं शुद्धान्तवलक्षणमाह—मासान्निष्पि-
च्छदाहार्ति पञ्चरात्रानुबन्धि च । नैवातिबहु नात्यल्पमार्तवं शुद्धमादिशेत्
॥ ७ ॥ शशासृक्प्रतिमं यच्च यद्वा लाक्षारसोपमम् । तदार्तवं प्रशंसन्ति य-
च्चाप्सु न विरज्यते ॥ ८ ॥ इति प्रदरनिदानम् ॥

अथ प्रदरचिकित्सा ।

दध्ना सौवर्चलाजाजीमधुकं नीलमुत्पलम् । पिबेत्क्षौद्रयुतं नारी वातासृ-
ग्दरशान्तये ॥ १ ॥ नागरं मधुकं तैलं सिता दधि च तत्समम् । खजेनोन्म-
थितं पीतं वातप्रदरनाशनम् ॥ २ ॥ एलामंशुमतीं द्राक्षामुशीरं तिक्तरोहि-
णीम् । चन्दनं कृष्णलवणं सारिवालोध्रसंयुतम् ॥ ३ ॥ वातासृग्दरशान्त्यर्थं
पिबेद्दध्ना सहाङ्गना । पित्तासृग्दरशान्त्यर्थं सक्षौद्रं ललना पिबेत् ॥ ४ ॥ वा-
सकस्य गुडूच्या वा रसं किं वा वरीभवम् । मधुकं कर्पमेकं तु चतुष्करीं
सितां तथा ॥ तण्डुलोदकसंयुतं लोहिते प्रदरे पिबेत् ॥ ५ ॥ प्रदरं हन्ति
बलाया मूलं दुग्धेन संयुतं पीतम् । कुशवाट्यालकमूलं तण्डुलसलिलेन र-
क्ताख्यम् ॥ ६ ॥ बलाकङ्कतिकाल्या या तस्या मूलं सुचूर्णितम् । लोहित-
प्रदरे खादेच्छर्करामधुसंयुतम् ॥ ७ ॥ मधैर्निम्बगुडूच्योश्च रोहितस्याथ वा
रसम् । कफप्रदरनाशाय पिबेद्वा मलयूरसम् ॥ ८ ॥ काकजङ्घामूलरसं म-
धुना सह भामिनी । सलोध्रचूर्णमापीय कफप्रदरकं जयेत् ॥ ९ ॥ पथ्याम-
लकबिभीतकविश्वौषधदारुजनीनाम् । सक्षौद्रलोध्रचूर्णः काथो हन्त्येष स-
र्वजं प्रदरम् ॥ १० ॥ रसाज्जनं तण्डुलकस्य मूलं क्षौद्रान्वितं तण्डुलतोयपी-
तम् । असृग्दरं सर्वभवं निहन्ति श्वासं सुभार्गी सह नागरेण ॥ ११ ॥ अ-
शोकवल्कलकाथशृतं दुग्धं सुशीतलम् । यथाबलं पिबेत्प्रातस्तीव्रासृग्दरना-
शनम् ॥ १२ ॥ समुद्भूत्य कुशमूलं पेपयेत्तण्डुलाम्बुना । पृतपीत्वा त्र्यहं
नारी प्रदरात्परिमुच्यते ॥ १३ ॥ क्षौद्रयुक्तं फलरसं काष्ठोदुम्बरजं पिबेत् ।
असृग्दरविनाशाय सशर्करपयोन्नभुक् ॥ १४ ॥ मलयूफलचूर्णस्य शर्करासहि-
तस्य च । मधुना मोदकं कृत्वा खादेत्प्रदरनाशनम् ॥ १५ ॥ दार्वीरसाज्जन-
वृषादकिरातविल्वभल्लातकैरवकृतो मधुना कपायः । पीतो जयत्यतिबलं प्रदरं
सशूलं पीतासितारुणविलोहितनीलशुक्लम् ॥ १६ ॥ भूम्यामलकमूलं तु पीतं

तण्डुलवारिणा । द्वित्रैरेव दिनैर्नार्याः प्रदरं दुस्तरं जयेत् ॥ १७ ॥ शुण्ठीति-
रिण्टयोश्चूर्णं भुक्तं सघृतशर्करम् । प्रबलं प्रदरं हन्ति नार्या वा कुटजाष्टकम्
॥ १८ ॥ धातक्याश्च तथा पूगीकुसुमानां पिबेच्छृतम् । नाशयेत्प्रदरं सद्य-
स्त्रिदिनाद्योपितां ध्रुवम् ॥ १९ ॥ आखोः पुरीषं पयसा निपीय वह्नेर्बलादे-
कमहर्ब्यहं वा । स्त्रियरुग्रहं वा प्रदरं स्रवन्त्यः प्रसह्य पारं परमाप्नुवन्ति ॥ २० ॥
अशोकवल्कलं पिष्ट्वा सताक्ष्यं तण्डुलाम्भसा । सक्षौद्रं तद्रसं पीत्वा प्रदरा-
न्मुच्यतेऽङ्गना ॥ २१ ॥ शुचिस्थाने व्याघ्रनख्या मूलमुत्तरदिग्भवम् । नीत-
मुत्तरफलगुन्यां कटिबद्धं हरेदसृक् ॥ २२ ॥

अथ पुण्यानुगं चूर्णम्—पाठा रसाञ्जनं मुस्तं मज्जा जम्बवाग्रयोस्तथा ।
अम्बष्ठकी शिलोद्भेदं समङ्गा पद्मकेसरम् ॥ १ ॥ बिल्वं मोचरसं लोभ्रं केशरं
गैरिकं तथा । विश्वौषधं कटफलं च मरिचं रक्तचन्दनम् ॥ २ ॥ कटुङ्गं धा-
तकी द्राक्षाऽनन्ता मधुकमर्जुनम् । वत्सकातिविपा चेति पुण्येणोद्धृत्य बुद्धि-
मान् ॥ ३ ॥ तुल्यभागानि सर्वाणि सूक्ष्माणि च विचूर्णयेत् । तच्चूर्णं माक्षि-
कोपेतं पीतं तण्डुलवारिणा ॥ ४ ॥ जयेदशीस्यतीसारं तथा रक्तप्रवाहिकाम् ।
बालानां कृमिरोगांश्च योनिदोषांश्च योपिताम् ॥ ५ ॥ रजोदोषी तथा सर्वा-
न्प्रदरान्दुस्तरानपि । पीतनीलारुणश्चेतान्सर्वानेव विनाशयेत् । चूर्णं पुण्यानुगं
नाम पूर्वमात्रेयभाषितम् ॥ ६ ॥ इति पुण्यानुगं चूर्णम् ॥

अथ जीरकावलेहः—जीरकं प्रस्थमेकं तु क्षीरं व्याढकमेव च । प्रस्थाध्वं
लोभ्रघृतयोः पचेन्मन्देन वह्निना ॥ १ ॥ लेहीभूतेऽथ शीतेऽत्र सिताप्रस्थं
विनिक्षिपेत् । चातुर्जातकणाविश्वमज्जाजी मुस्तवालकम् ॥ २ ॥ दाडिमं र-
सजं धान्यं रजनी पडवासकम् । वंशजं च तवक्षीरी प्रत्येकं शुक्तिसंमितम्
॥ ३ ॥ जीरकस्यावलेहोऽयं प्रमेहप्रदरापहः । ज्वराबल्यारुचिश्चासतृष्णादाह-
क्षयापहः ॥ ४ ॥ निष्कमैन्द्रियवं चूर्णं सिताद्विगुणितं भवेत् । उपितेन जले-
नैव पीतं प्रदरनाशनम् ॥ ५ ॥ अथ मुद्गाद्यं घृतम्—मुद्गमापस्य निर्यूहे
रास्त्राचित्रकमुस्तकैः । सिद्धं सपिप्पलीबिल्वैः सर्पिः श्रेष्ठमसृग्दरे ॥ १ ॥ अथ
शाल्मलीघृतम्—शाल्मलीपुष्पनिर्यासः पृश्निपर्णी तथैव च । काश्मरी च-
न्दनं चैषां कल्केन स्वरसेन वा ॥ १ ॥ गव्यं पचेद् घृतप्रस्थं तत्सिद्धं तरुणी
पिबेत् । सर्वप्रदरनाशाय बलवर्णाग्निवर्धनम् ॥ २ ॥ अथ शीतकल्याणकं
घृतं वृन्दात्—कुमुदं पद्मकोशीरं गोधूमो रक्तशालयः । मुद्गपर्णी पयस्या
च काश्मरी मधुयष्टिका ॥ १ ॥ बलातिबलयोर्मूलमुत्पलं तालमस्तकम् ।
विदारी शतपुष्पी च शालपर्णी सजीवका ॥ २ ॥ त्रिफला त्रापुसं बीजं प्र-
त्यग्रं कदलीफलम् । पुषामर्धपलान्भागान् गव्यक्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ३ ॥ पानीयं
द्विगुणं दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् । प्रदरे रक्तगुल्मे च रक्तपित्ते हलीमके
॥ ४ ॥ अरोचके ज्वरेऽजीर्णे पाण्डुरोगे मदे भ्रमे । तरुणी त्वल्पपुष्पा वा या

च गर्भं न विन्दति ॥ ५ ॥ अहन्यहनि च स्त्रीणां भवति प्रीतिवर्धनम् । शीतकल्याणकं नाम परमुक्तं रसायनम् ॥ ६ ॥ रक्तपित्ताधिकारोक्तं कूष्माण्डखण्डं च प्रदरे देयम् ॥

अथ रसाः—रसं गन्धं सीसं मृतमिति समं तैस्तु रसजं समानं सर्वैः स्यात्तुलितमपि लोभ्रं वृपरसैः । दिनं पिष्टं नाम्ना प्रदररिपुरेणोऽपहरति द्विवल्लः क्षौद्रेण प्रदरमपि दुःसाध्यमपि च ॥ १ ॥ इति प्रदरारी रसरत्नप्रदीपात् ॥ अथ बोलपर्पटी—सूतगन्धकसुकज्जलिकायाः पर्पटी समयुता समभागम् । बोलचूर्णविहितं प्रतिवाप्यं स्याद्रसोऽयमसृगामयहारी ॥ १ ॥ वल्लयुग्मयुगुलं प्रतिदेयं शर्करामधुयुतः किल दत्तः । रक्तपित्तगुदजासृत्तियो-
निस्रावमाशु विनिवारयतीशः ॥ २ ॥ इति बोलपर्पटी योगसारात् ॥ इति प्रदरचिकित्सा ॥

अथ सोमरोगाधिकारः ।

तत्र सोमरोगस्य निदानपूर्विकां संप्राप्तिमाह—स्त्रीणामतिप्रसङ्गाद्वा शोकाच्चापि श्रमादपि । अतिसारकयोगाद्वा गरदोपात्तथैव च ॥ १ ॥ आपः सर्वशरीरस्थाः क्षुभ्यन्ति प्रस्रवन्ति च । तस्यास्ताः प्रच्युताः स्थानान्मूत्रमार्गं व्रजन्ति हि ॥ २ ॥ अथ तस्य लक्षणमाह—प्रसन्ना विमलाः शीता नि-
र्गन्धा नीरुजः सिताः । स्रवन्ति चातिमात्रं ताः सा न शक्नोति दुर्बला ॥ ३ ॥ वेगं धारयितुं तासां न विन्दति सुखं क्वचित् । शिरःशिथिलता तस्या मुखं तालु च शुष्यति ॥ ४ ॥ मूर्छा जृम्भा प्रलापश्च त्वग्रक्षा चातिमात्रतः । भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पेयैश्च न तृप्तिं लभते सदा ॥ ५ ॥ संधारणाच्छरीरस्य ता आपः सोमसंज्ञिताः । ततः सोमक्षयात्स्त्रीणां सोमरोग इति स्मृतः ॥ ६ ॥ तस्मात्सो-
मक्षयाद्देहो निश्चेष्टश्च भवेत्सदा । स एव सरुजः सोमो मूत्रेण स्रवते मुहुः ॥ ७ ॥ सोमलक्षणसंसृष्टः कालातिक्रान्तयोगतः । सोमक्रान्तिक्रमेणैव स्रव-
न्मूत्रमभीक्षणशः ॥ मूत्रातिसार इत्येव तमाहुर्बलनाशनम् ॥ ८ ॥ इति सो-
मरोगनिदानम् ॥

अथ सोमरोगस्य चिकित्सा ।

कदलीनां फलं पक्वं धात्रीफलरसं मधु । शर्करासहितं खादेत्सोमधारणमु-
त्तमम् ॥ १ ॥ माषचूर्णं समधुकं विदारीमधुशर्कराम् । पयसा पाययेत्प्रातः सोमधारणमुत्तमम् ॥ २ ॥ जलेनाऽऽमलकीबीजकल्कं समधुशर्करम् । पिबे-
द्दिनत्रयेणैव श्वेतप्रदरनाशनम् ॥ ३ ॥ तक्रौदनाहाररता संपिबेन्नागकेशरम् ।
त्र्यहं तक्रेण संपिष्टं श्वेतप्रदरनाशनम् ॥ ४ ॥ चूर्णं तु पडवासस्य तिलतैलेन
लेहयेत् । ससरात्रेण योषाणां श्वेतप्रदरनाशनम् ॥ ५ ॥ अत्रैव मूत्रातिसा-
रस्य चिकित्सामाह—स एव सरुजः सोमः स्रवेन्मूत्रेण चेन्मुहुः । तत्रै-

लापत्रचूर्णेन पाययेत्तरुणीं सुराम् ॥ १ ॥ तालकन्दं च खर्जूरं मधुकं च वि-
दारिकाम् । सितामधुयुतां खादेन्मूत्रातीसारनाशनम् ॥ २ ॥ चक्रमर्दकमूलं
तु संपिष्टं तण्डुलान्बुना । प्रभातसमये पीतं जलप्रदरनाशनम् ॥ ३ ॥

अथ कदलीघृतम्—कदलीकन्दनिर्यासद्रोणे शतपलान्वितम् । कदली-
कुसुमं पक्वं क्वाथं पादावशेषितम् ॥ १ ॥ घृतप्रस्थं पयस्तुल्यं पिप्पल्येलाल-
वङ्गकम् । कपित्थस्य फलं मांसी कदलीकन्दचन्दनम् ॥ २ ॥ न्यग्रोधादिगणैः
सार्धं सर्वान्वारिसमुद्भवान् । सर्वं समं कर्पमात्रं कल्की कृत्वा पचेच्छनैः ॥ ३ ॥
घृतं क्वाथं च कल्कं च पक्त्वा चैवावतारयेत् । प्रातःकाले पिबेन्नित्यं सेवयेत्क-
र्पमात्रकम् ॥ ४ ॥ सोमरोगं हरेद्वाहं मूत्रकृच्छ्राश्मरीं तथा । प्रमेहान्विशतिं
हन्यात्प्रमेहगजकेसरी ॥ ५ ॥ मूत्रातिसारमप्यन्यं व्याधिं विध्वंसयेद् ध्रुवम् ।
कदलीकन्दनामेदं घृतं सर्वरुजापहम् ॥ ६ ॥

अथ रसः—कूष्माण्डपत्रस्वरसैः पक्वं पारदनिष्ककम् । द्विनिष्कं गन्धकं
कृत्वा ज्वलने कज्जलीकृतः ॥ असौ समरिचः सोमरोगातिसृतिनाशनः ॥ १ ॥
इति सोमरोगमूत्रातिसाराधिकारः ॥

अथ योनिरोगाधिकारः ।

तत्र योनिव्यापद्रोगाणां निदानान्याह—विंशतिर्व्यापदो योनेर्नि-
दिष्टा रोगसंग्रहे । मिथ्याचारेण ताः स्त्रीणां प्रदुष्टेनाऽऽर्तवेन च ॥ जायन्ते
बीजदोषाश्च दैवाद्वा शृणु ताः पृथक् ॥ १ ॥ अथ रोगिणीनां योनीनां
नामान्याह—उदावर्ता तथा वन्ध्या विप्लुता च परिश्रुता । वातला यो-
निरुग्नेया वातदोषेण पञ्चधा ॥ २ ॥ पञ्चधा पित्तदोषेण तत्राऽऽदौ लोहित-
क्षया । प्रसंसिनी वामिनी च पुत्रघ्नी पित्तला तथा ॥ ३ ॥ अत्यानन्दा क-
र्णिनी च चरणानन्दपूर्विका । अतिपूर्वाऽपि सा ज्ञेया श्लेष्मला च कफादिमाः
॥ ४ ॥ पण्ड्यण्डिनी च महती सूचीवक्त्रा त्रिदोषिणी । पञ्चैता योनयः प्रोक्ताः
सर्वदोषप्रकोपतः ॥ ५ ॥ अथ तासां लक्षणमाह—या फेनिलमुदावर्ता
रजः कृच्छ्रेण मुञ्चति । सा तु योनिः कफेनैवमार्तवं च विमुञ्चति ॥ ६ ॥
वन्ध्या नष्टार्तवा ज्ञेया विप्लुता नित्यवेदना । परिप्लुतायां भवति ग्राम्यध-
र्मेण रुग्भृशम् ॥ ७ ॥ वातला कर्कशा स्तब्धा शूलनिस्तोदपीडिता । चतसृ-
ष्वपि चाऽऽद्यासु भवन्त्यनिलवेदनाः ॥ ८ ॥ सदाहं क्षीयते रक्तं यस्यां सा
लोहितक्षया । प्रसंसिनी संसते च क्षोभिता दुष्प्रजायिनी ॥ ९ ॥ सवातमु-
द्विरेद्वीजं वामिनी रजसा युतम् । स्थितं स्थितं हन्ति गर्भं पुत्रघ्नी रक्तसंक्षयात्
॥ १० ॥ अत्यर्थं पित्तला योनिर्दाहपाकज्वरान्विता । चतसृष्वपि चाऽऽद्यासु
पित्तलिङ्गोच्छ्रयो भवेत् ॥ ११ ॥ अत्यानन्दा न संतोषं ग्राम्यधर्मेण गच्छति ।
कर्णिन्यां कर्णिका योनौ श्लेष्मासृग्भ्यां प्रजायते ॥ १२ ॥ मैथुने चरणापूर्वं

पुरुषादतिरिच्यते । बहुशश्चातिचरणा तयोर्बीजं न विन्दति ॥ १३ ॥ श्लेष्मला पिच्छिला योनिः कण्डूग्रस्ताऽतिशीतला । चतसृष्वपि चाऽऽद्यासु श्लेष्मलिङ्गोच्छ्रयो भवेत् ॥ १४ ॥ अनार्तवाऽस्तनी पण्डी खरस्पर्शा च मैथुने । अतिकायगृहीतायास्तरुण्या अण्डिनी भवेत् ॥ १५ ॥ विवृता तु महायोनिः सूचीवक्त्राऽतिसंवृता । सर्वलिङ्गसमुत्थाना सर्वदोषप्रकोपजा ॥ १६ ॥ चतसृष्वपि चाऽऽद्यासु सर्वलिङ्गनिदर्शनम् । पञ्चासाध्या भवन्तीह योनयः सर्वदोषजाः ॥ १७ ॥ इति योनिव्यापद्रोगनिदानम् ॥

अथ योनिकन्दस्य निदानमाह— दिवा स्वप्नादतिक्रोधाद्यायामादति-मैथुनात् । क्षताच्च नखदन्ताद्यैर्गताद्याः कुपिता मलाः ॥ १ ॥ पूयशोणित-संकाशं लकुचाकृतिसंनिभम् । जनयन्ति यदा योनौ नास्मा कन्दं तु योजिजम् ॥ २ ॥ रूक्षं विवर्णं स्फुटितं वातिकं तं विनिर्दिशेत् । दाहरागज्वरयुतं विद्यात्पित्तात्मकं तु तम् ॥ ३ ॥ नीलपुष्पप्रतीकाशं कण्डूमन्तं कफात्मकम् । सर्वलिङ्गसमायुक्तं संनिपातात्मकं वदेत् ॥ ४ ॥ इति योनिकन्दनिदानम् ॥

अथ योनिव्यापद्रोगाणां चिकित्सा ।

तत्र वन्ध्याचिकित्सा— अर्तवादर्शने नारी मत्स्यान्सेवेत नित्यशः । काञ्जिकं च तिलान्मापातुदध्नि च तथा दधि ॥ १ ॥ पीतं ज्योतिष्मतीपत्र-राजिकोग्रासनं त्र्यहम् । शीतेन पयसा पिष्टं कुसुमं जनयेद् ध्रुवम् ॥ २ ॥ सगुडः श्यामतिलानां क्वाथः पीतः सुशीलितो नार्या । जनयति कुसुमं सहसा गतमपि सुचिरं निरातङ्गम् ॥ ३ ॥ तिलशेलुकारवीणां क्वाथं पीत्वा नष्टरजा महिला । सगुडं शिशिरं त्रिदिनाज्जनयति कुसुमं न संदेहः ॥ ४ ॥ इक्ष्वाकु-बीजदन्तीचपलागुडमदनकिण्वयावशूकैः । सस्रुकक्षीरैर्वार्तिर्योनिगता कुसुम-संजननी ॥ ५ ॥ इति वन्ध्याचिकित्सा ॥

अथ वन्ध्याया गर्भप्रदभेषजमाह— बला सिता सातिबला मधूकं वटस्य शृङ्गं गजकेशरं च । पृतन्मधुक्षीरघृतैर्निपीय वन्ध्या सुपुत्रं नियतं प्रसूते ॥ १ ॥ अश्वगन्धाकपायेण सिद्धं दुग्धं घृतान्वितम् । ऋतुस्नाताऽङ्गना प्रातः पीत्वा गर्भं दधाति हि ॥ २ ॥ पुण्योद्धृतं लक्ष्मणाया मूलं दुग्धेन कन्यया । पिष्टं पीत्वा ऋतुस्नाता गर्भं धत्ते न संशयः ॥ ३ ॥ कुरण्ट-मूलं धातक्याः कुसुमानि वटाङ्कुराः । नीलोत्पलं पयोयुक्तमेतद्गर्भप्रदं ध्रुवम् ॥ ४ ॥ याऽबला पिबति पार्श्वपिप्पलं जीरकेण सहितं हिताशना । श्वेतया विशिखपुङ्खया युतं सा सुतं जनयतीह नान्यथा ॥ ५ ॥ पत्रमेकं पलाशस्य पिष्ट्वा दुग्धेन गर्भिणी । पीत्वा पुत्रमवाप्नोति वीर्यवन्तं न संशयः ॥ ६ ॥ शूकरशि-म्बीमूलं मध्यं वा दधिकलस्य सपयस्कम् । पीत्वाऽथोभयलिङ्गीबीजं कन्यां न सूते स्त्री ॥ ७ ॥ क्षीरेण श्वेतवृहतीमूलं नासापुटे पिबेत् । पुत्रार्थं दक्षिणा नासा वामया कन्यकार्थिनी ॥ ८ ॥ लक्ष्मणा क्षीरसंयुक्ता नस्ये पाने प्रदाप्य-

ताम् । तेन साऽपि लभेद्गर्भं पुत्रो विद्याधरो भवेत् ॥ ९ ॥ वामनाड्या भवे-
त्कन्या पुत्रो दक्षिणया भवेत् । रक्तेऽधिके भवेत्कन्या पुत्रः शुक्लेऽधिके भवेत् ॥
१० ॥ शुक्रशोणितमिश्रेण भवेद्योऽसौ नपुंसकः । गुरण्डस्य तु बीजानि
मातुलुङ्गस्य चैव हि ॥ सर्पिषा परिपिष्टानि पिबेद्गर्भप्रदानि च ॥ ११ ॥ इति
चक्रदत्तात् ॥ लङ्काकारं लक्ष्मणायाश्च मूलं कण्ठे बद्धं सर्पिषा नस्ययोगात् ।
पीत्वा सूते पुत्रमत्यन्तवीर्यं पश्चादन्यानप्यमन्दाङ्गयष्टिः ॥ १२ ॥ तिलतैलदु-
ग्धफाणितदधिघृतमेकत्र पाणिना मथितम् । पीतं सपिप्पलीकं जनयति पुत्रं
परं महिला ॥ १३ ॥ एकस्य मातुलुङ्गस्य बीजानि सकलान्यपि । ऋत्वन्ते
दुग्धपिष्टानि पीत्वाऽऽप्तोत्पबला सुतम् ॥ १४ ॥

अथ फलघृतम्—मज्जिष्ठा मधुकं कुष्ठं त्रिफला शर्करा बला । मेदे प-
यस्या काकोली मूलं चैवाश्वगन्धजम् ॥ १ ॥ अजमोदा हरिद्रे द्वे प्रियंगुः
कटुरोहिणी । उत्पलं कुमुदं लाक्षा काकोल्यौ चन्दनद्वयम् ॥ २ ॥ एतेषां
कार्पिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् । शतावरीरसं क्षीरं घृताद्द्वयं चतुर्गुणम् ॥ ३ ॥
सर्पिरेतन्नरः पीत्वा स्त्रीषु नित्यं वृषायते । पुत्राञ्जनयते वीरान्मेधाढ्यान्प्रियद-
र्शनान् ॥ ४ ॥ या चैवास्थिरगर्भा स्यात्पुत्रं वा जनयेन्मृतम् । अल्पायुषं वा
जनयेद्या च कन्यां प्रसूयते ॥ ५ ॥ योनिरोगे रजोदोषे परिस्त्रावे च शस्यते ।
प्रजावर्धनमायुष्यं सर्वप्रहनिवारणम् ॥ ६ ॥ नाम्ना फलघृतं ह्येतदधिभ्यां परि-
कीर्तितम् । अनुक्तं लक्ष्मणामूलं क्षिपन्त्यत्र चिकित्सकाः ॥ ७ ॥ जीवद्वत्सैकव-
र्णाया घृतं त्वत्र प्रयुज्यते । आरण्यगोमयेनेह वह्निज्वाला च दीयते ॥ ८ ॥
इति वन्ध्याचिकित्सा ॥

अथ गर्भनिवारणम्—पिप्पलिविडङ्गटङ्गणसमचूर्णं या पिबेत्पयसा ।
ऋतुसमये न हि तस्या गर्भः संजायते कापि ॥ १ ॥ आरनालपरिपेषितं त्र्यहं
या जपाकुसुममत्ति पुष्पिणी । सत्पुराणगुडमुष्टिसेविनी सा दधाति न हिगर्भ-
मङ्गना ॥ २ ॥ तैलाविलं सैन्धवखण्डमादौ निधाय रण्डा निजयोनियध्ये ।
नरेण सार्धं रतिमातनोति या सा न गर्भं लभते कदाचित् ॥ ३ ॥ तण्डुली-
यकमूलानि पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा । ऋत्वन्ते तु त्र्यहं पीत्वा वन्ध्याः कुर्वन्ति
योषितः ॥ ४ ॥ धूपिते योनिरन्ध्रे तु निम्बकाष्ठैश्च युक्तितः । ऋत्वन्ते रमते
या स्त्री न सा गर्भमवामुयात् ॥ ५ ॥ तालीसगैरिके पीते बिडालपदमात्रके ।
शीताम्बुना चतुर्थेऽह्नि वन्ध्या नारी प्रजायते ॥ ६ ॥ ग्राह्यं कृष्णचतुर्दश्यां
धतूरस्य च मूलकम् । कटौ बद्ध्वा रमेत्कान्तं न गर्भः संभवेत्कचित् ॥ ७ ॥
मुक्तेन लभते गर्भं पुरा नागार्जुनोदितम् । तन्मूलचूर्णं योनिस्थं न गर्भः संभ-
वेत्कचित् ॥ ८ ॥ इति गर्भनिवारणम् ॥

अथ गर्भपातनविधिः—गृञ्जबीजं टङ्कत्रितयं तावच्च दाडिमीमूलम् ।
तुवरीटङ्कद्वितयं सिन्दूरं टङ्कयुगलं च ॥ १ ॥ संमर्द्य खल्वमध्ये तोयेनैतन्निपीय

गर्भवती रण्डा योपिद्रुर्भे वेद्या वा पातयत्याशु ॥ २ ॥ निर्गुण्डीद्रवसंपिष्टं चित्रमूलं
मधुसुतम् । कर्पे पीत्वा स्रवत्याशु गर्भं रण्डाकुलोद्भवम् ॥ ३ ॥ काण्डमेरण्डपत्रस्य
योनावष्टाङ्गुलं क्षिपेत् । चतुर्मासोद्भवो गर्भः स्रवत्येव हि तत्क्षणात् ॥ ४ ॥
देवालये तु यज्ञूर्णं कर्पेकं तोयपेपितम् । पिबेद्रुर्भवती नारी गर्भः स्रवति
तत्क्षणात् ॥ ५ ॥ आलोढ्य काञ्जिकैर्घोटीपुरीषं वस्त्रगालितम् । ससिंधूग्रासु-
रीतैलविपमागतगर्भनुत् ॥ ६ ॥ इति गर्भपातनम् ॥

अथावशिष्टयोनिव्यापद्रोगाणां चिकित्सा—तासु योनिषु चाऽऽ-
द्यासु स्नेहादिक्रम इष्यते । बस्यभ्यङ्गपरीपेकप्रलेपाः पिचुधारणम् ॥ १ ॥ न-
तवातीकनीकुष्ठसैन्धवामरदारुभिः । तिलतैलं पचेन्नारी पिचुं तस्य विधारयेत्
॥ २ ॥ विद्युतायां सदा योनौ व्यथा तेन प्रशाम्यति । वातलां कर्कशां स्त-
ब्धामल्पस्पर्शां तथैव च ॥ ३ ॥ कुम्भीस्वेदैरुपचरेदन्तर्वैश्मनि संवृते । धार-
येद्वा पिचुं योनौ तिलतैलस्य सा सदा ॥ ४ ॥ राक्षाश्वगन्धावृषकैर्योनिशूल-
हरं पयः । गुडूचीत्रिफलादन्तीकाथैश्च परिपेचनम् ॥ ५ ॥ बिल्वमार्कवजं बी-
जकल्कं मद्येन पाययेत् । तेन योनिगतं शूलमाशु शाम्यति योपिताम् ॥ ६ ॥
उपकुञ्चिकां पिप्पलीं च मदिरां लाभतः पिबेत् । सौवर्चलेन संयुक्तं योनिशूल-
निवारणम् ॥ ७ ॥ पित्तलानां च योनीनां सेकाभ्यङ्गपिचुक्रियाः । शीताः पि-
त्तहराः कार्याः स्नेहनार्थं घृतानि च ॥ ८ ॥ प्रस्रंसिनीं घृताभ्यक्तां क्षीरस्विनां
प्रवेशयेत् । विधाय वेसवारेण ततो बन्धं समाचरेत् ॥ ९ ॥ अथ वेस-
वारः—शुण्ठीमरीचकृष्णामिर्धान्यकाजाजिदाडिमैः । पिप्पलीमूलसंयुक्तैर्वैस-
वारः स्मृतो बुधैः ॥ १ ॥ धात्रीरसं सितायुक्तं योनिदाहे पिबेत्सदा । सूर्य-
क्रान्ताभवं मूलं पिबेद्वा तण्डुलाम्बुना ॥ २ ॥ योन्यां तु पूयस्त्राविण्यां शोध-
नद्रव्यनिर्मितैः । सगोमूत्रैः सलवणैः पिण्डैः संपूरणं हितम् ॥ ३ ॥ पिचवश्च
घृताभ्यक्ताश्चन्दनाम्भःसमुत्थिताः । योनौ स्थाप्याः स्त्रिया दाहकृच्छ्रपाकप्र-
शान्तये ॥ ४ ॥ योन्यां बलासजुष्टायां सर्वं रूक्षोष्णमौषधम् । तैलं सीधु य-
वान्नं च पथ्यारिष्टं च योजयेत् ॥ ५ ॥ गुडूचीत्रिफलादन्तीकथितोदकधारया ।
योनिं प्रक्षालयेत्तेन ततः कण्डूः प्रशाम्यति ॥ ६ ॥ सुद्रुपुष्पं सखदिरं पथ्याजा-
तीफलं तथा । वृकीपूगं च संचूर्ण्य वस्त्रपूतं क्षिपेद्भगे ॥ ७ ॥ योनिर्भवति सं-
कीर्णा न स्रवेच्च जलं ततः । कपिकच्छूभवं मूलं काथयेद्विधनाऽम्भसा ॥ ८ ॥
योनिः संकीर्णतां याति काथेनानेन धावनान् । पिप्पल्या मरिचैर्मपैः शता-
ह्लाकुष्ठसैन्धवैः ॥ ९ ॥ वर्तिस्तुल्या प्रदेशिन्या धार्या योनिविशोधनी । सुरा-
मण्डोत्थितो धार्यः पिचुर्योनौ कफात्मनि ॥ १० ॥ कण्डूपैच्छिल्यसंस्त्रावशैथि-
ल्यविनिवृत्तये । सुगन्धानां पदार्थानां कल्कचूर्णैः शृतः कृतः ॥ ११ ॥ योनौ
दौर्गन्ध्यशमनः पूयपैच्छिल्यभाजि च । संनिपातसमुत्थायां कार्या योन्यां
यदा क्रियाः ॥ १२ ॥ साधारणा दशाङ्गीश्रीमदाकाथपिचुर्हितः । जीरकद्वि-

तयं कृष्णा सुपवी सुरभिर्वचा ॥ १३ ॥ वासकं सैन्धवं चापि यवक्षारो य-
वानिका । एषां चूर्णे घृते किञ्चिद्द्रष्टा खण्डेन मोदकम् ॥ १४ ॥ कृत्वा खा-
देद्यथावह्नि योनिरोगाद्विमुच्यते । मूषककाथसंसिद्धतिलतैलकृतः पित्तुः । ना-
शयेद्योनिरोगास्तान्घृतो योनौ न संशयः ॥ १५ ॥ अथ त्रिफलादिघृतम्—
त्रिफलां द्वौ सहचरौ गुडूचीं सपुनर्नवाम् । शुकनासां हरिद्रे द्वे रास्त्रामेदाश-
त्तावरीः ॥ १ ॥ कल्कीकृत्य घृतप्रस्थं पचेत्क्षीरे चतुर्गुणे । तत्सिद्धं पाययेन्मारीं
योनिरोगप्रशान्तये ॥ २ ॥ इति योनिव्यापद्रोगचिकित्सा ॥

अथ योनिकन्दस्य चिकित्सा—गैरिकाम्रास्थिजठररजन्यजनकदफलाः ।
पूरयेद्योनिमेतेषां चूर्णेः क्षौद्रसमन्वितैः ॥ १ ॥ त्रिफलायाः कपायेण सक्षौ-
द्रेण च सेचयेत् । प्रमदा योनिकन्देन व्याधिना परिमुच्यते ॥ २ ॥ आखो-
र्मासं सपदि बहुधा सूक्ष्मखण्डीकृतं तत्तैले पाच्यं द्रवति नियतं यावदेतेन
सम्यक् । तत्तैलाक्तं वसनमनिशं योनिभागे दधाना सत्यं व्रीडाजनकमबला
योनिकन्दं निहन्ति ॥ ३ ॥ इति योनिकन्दचिकित्सा । इति योनिरोगाधिकारः ॥

अथ स्त्रीगर्भरोगनिदानम् ।

तत्र गर्भस्य स्त्रावपातयोर्निदानमाह—भयाभिघातात्तीक्ष्णोष्णपानाश-
ननिपेवणात् । गर्भे पतति रक्तस्य सशूलं दर्शनं भवेत् ॥ १ ॥ अथ स्त्राव-
पातयोरवधिमाह—आ चतुर्थात्ततो मासात्प्रसवेद्गर्भविद्रवः । ततः स्थिर-
शरीरस्य पातः पञ्चमपष्ठयोः ॥ २ ॥ अथ गर्भपातस्य दृष्टान्तं दर्शयति—
गर्भोऽभिघातविपमाशनपीडनाद्यैः पक्वं द्रुमादिव फलं पतति क्षणेन ॥ १ ॥
इति गर्भस्त्रावपातयोर्निदानं माधवात् ॥ अथ भावप्रकाशाद्गर्भपातस्योपद्र-
वानाह—प्रसंसमाने गर्भे स्याद्दाहः शूलश्च पार्श्वयोः । पृष्ठे रुक्प्रदरानाहौ
मूत्रसङ्गश्च जायते ॥ १ ॥ अथ गर्भस्य स्थानान्तरगमने चोपद्रवानाह—
स्थानात्स्थानान्तरं तस्मिन्प्रयात्यपि च जायते । आमपकाशयादौ तु क्षोभः
पूर्वेऽप्युपद्रवाः ॥ १ ॥ प्रसवोचिते काले यथा मूढो गर्भो भवति तदाह ॥

तत्र मूढगर्भस्य निदानसंप्राप्तिपूर्वकं सामान्यं लक्षणमाह—मूढं करोति
पवनः खलु मूढगर्भं शूलं च योनिजठरादिषु मूत्रसङ्गम् । भुम्नोऽनिलेन वि-
गुणेन ततः स गर्भः संख्यामतीत्य बहुधा समुपैति योनिम् ॥ १ ॥ तत्राष्टौ
प्रकारानाह—द्वारं निरुद्धशिरसा जठरेण कश्चित्कश्चिच्छरीरपरिवर्तनकुब्ज-
देहः । एकेन कश्चिदपरस्तु भुजद्वयेन तिर्यग्गतो भवति कश्चिद्वाङ्मुखोऽन्यः
॥ १ ॥ पार्श्वपवृत्तिगतिरेति तथैव कश्चिदित्यष्टधा भवति गर्भगतिः प्रसूतौ
॥ २ ॥ सुश्रुतस्त्वष्टौ प्रकारान्तराण्याह—कश्चिद्वाभ्यां सक्थिभ्यां योनि-
मुखं प्रपद्यते ॥ १ ॥ कश्चिदाभुक्षैकसक्थिरितरेण सक्थ्या ॥ २ ॥ कश्चिदाभु-
मसक्थिशरीरः स्फिग्देशेन तिर्यग्गतः ॥ ३ ॥ कश्चिदुदरपार्श्वपृष्ठानामन्यत-

मेन योनिद्वारं पिधायावतिष्ठते ॥ ४ ॥ अन्तःपार्श्वोपवृत्तशिराः कश्चिदेकेन बाहुना ॥ ५ ॥ कश्चिदाभुग्नशिरा बाहुद्वयेन ॥ ६ ॥ कश्चिदाभुग्नमध्ये हस्तपादशिरोभिः ॥ ७ ॥ कश्चिदेकेन सक्त्वा योनिद्वारं प्रतिपद्यतेऽपरेण पायुमिति ॥ ८ ॥ अथापराश्रितस्यो गतीराह—सकीलकः प्रतिखुरः परिवोऽथ बीजस्तेपूर्वबाहुचरणैः शिरसा च योनौ । सङ्गी च यो भवति कीलकवत्सकीलो दृश्यैः खुरैः प्रतिखुरः स हि कायसङ्गी ॥ गच्छेद्भुजद्वयशिराः स च बीजकाख्यो योनौ स्थितः स परिवः परिवेण तुल्यः ॥ १ ॥ अथ परिघमाह । परिघस्य लक्षणं भोजेऽपि पठ्यते तद्यथा—योनिमावृत्य यस्तिष्ठेत्परिवो गोपुरं यथा । तथाऽन्तर्गर्भमायान्तं विद्यात्परिघसंज्ञितम् ॥ १ ॥ अथासाध्यमूढगर्भगर्भिण्यालोक्षणमाह—अपविद्धशिरा या तु शीताङ्गी निरपत्रपा । नीलोद्वतशिरा हन्ति सा गर्भं स च तां तथा ॥ १ ॥ अथ मृतस्य मूढगर्भस्य प्रतिपाद्यत्वात्कर्षणार्थं लक्षणमाह—गर्भास्पन्दनमावीनां प्रणाशः श्यावपाण्डुता । भवेदुच्छ्वासपूतित्वं शूलश्चान्तमृते शिशौ ॥ १ ॥ अथ गर्भस्य मरणहेतुमाह—मानसागन्तुभिर्मातुरुपतापैः पृथग्विधैः । गर्भो व्यापद्यते कुक्षौ व्याधिभिश्च प्रपीडितः ॥ १ ॥ अथापरमसाध्यगर्भिणीलक्षणमाह—योनिसंवरणं सङ्गः कुक्षौ मक्कल एव च । हन्युः स्त्रियं मूढगर्भो यथोक्ताश्चाप्युपद्रवाः ॥ १ ॥ वातलान्यन्नपानानि ग्राम्यधर्मं प्रजागरम् । अत्यर्थं सेवमानाया गर्भिण्या योनिमार्गगः ॥ २ ॥ मातरिश्वा प्रकुपितो योनिद्वारस्य संवृतिम् । कुरुते रुद्धमार्गत्वात्पुनरन्तर्गतोऽनिलः ॥ ३ ॥ निरुणञ्ज्याशयद्वारं पीडयन्गर्भसंस्थितिम् । निरुद्धवदनोच्छ्वासो गर्भश्चाऽऽशु विपद्यते ॥ ४ ॥ उच्छ्वासरुद्धहृदयां नाशयत्यथ गर्भिणीम् । योनिसंवरणं नाम व्याधिमेनं प्रचक्षते ॥ अन्तकप्रतिमं घोरं नाऽऽरभेत चिकित्सितुम् ॥ ५ ॥ इति मूढगर्भनिदानम् ॥

अथ विकृताकृतिगर्भलक्षणमाह—ऋतुस्नाता तु या नारी स्वप्ने मैथुनमावहेत् । भार्तेवं वायुरादाय कुक्षौ गर्भं करोति हि ॥ १ ॥ मासि मासि विवर्धेत गर्भिण्या गर्भलक्षणम् । कललं जायते तस्या वर्जितं पैतृकैर्गुणैः ॥ २ ॥ सर्पवृश्चिककूष्माण्डविकृताकृतयश्च ये । गर्भाश्चेति त्रयश्चैव ज्ञेयाः पापकृतो भृशम् ॥ ३ ॥ इति सुश्रुतात् ॥

अथ स्त्रीगर्भरोगचिकित्सा ।

तत्र गर्भस्य स्नावपातयोश्चिकित्सामाह—गुर्विण्या गर्भतो रक्तं न्ववेद्यदि मुहुर्मुहुः । तन्निरोधाय सा दुग्धमुत्पलादिशृतं पिबेत् ॥ १ ॥ उत्पलादिगणमाह—उत्पलं नीलमारक्तं कङ्गारं कुमुदं तथा । श्वेताम्भोजं च मधुकमुत्पलादिरयं गणः ॥ १ ॥ संशीलितो हरत्वेव दाहं तृष्णां हृदामयम् । रक्त

पित्तं च मूर्छां च तथा छर्दिमरोचकम् ॥ २ ॥ लज्जालुर्धातकीपुष्पमुत्पलं
मधु लोध्रकम् । जलस्थया स्त्रिया पीतं गर्भपातं निवारयेत् ॥ ३ ॥ पतन्तं
स्तम्भयेद्गर्भं कुलालकरमृत्तिका । मधुच्छागीपयःपीता किं वा श्वेताऽपराजि-
ता ॥ ४ ॥ पारावतमलः पीतरुयहं ताम्बूलवारिणा । गर्भिणी गर्भतो रक्तं
स्तम्भयेन्निरुपद्रवम् ॥ ५ ॥ शर्कराबिसतिलं समांशकं माक्षिकेण सह भक्ष्यते
यदा । नास्ति गर्भपतनोद्भवं भयं पापभीतिरिव तीर्थसेवया ॥ ६ ॥ कङ्कती-
मूलमाबद्धं कुमारीसूत्रकैः समैः । कटिदेशे नितम्बिन्या गर्भपातं निवारयेत्
॥ ७ ॥ वेणुग्रन्थिकुलत्थानां हरिद्राजनितं शृतम् । देयं न्यूनदिने पाते गर्भि-
णीनां भिषग्वरैः ॥ ८ ॥ ह्रीवेरातिविषामुस्तामोचशकैः शृतं जलम् । दद्या-
द्गर्भे प्रचलिते प्रदरे कुक्षिरुज्यपि ॥ ९ ॥

अतः परं मासानुमासिकं वक्ष्यामः—मधुकं शाकबीजं च पयस्या
सुरदारु च । अश्वमन्तकः कृष्णतिलास्ताम्रवल्ली शतावरी ॥ १ ॥ वृक्षादनी
पयस्या च लता चोत्पलसारिवा । अनन्ता सारिवा रास्ना पद्मा मधुकमेव च
॥ २ ॥ बृहतीद्वयकाश्मर्यक्षीरिशृङ्गास्त्वचो घृतम् । पृश्निपर्णी बला शिमुः श्व-
दंष्ट्रा मधुपर्णिका ॥ ३ ॥ शृङ्गाटकं बिसं द्राक्षा कसेरुमधुकं सिता । ससैता-
न्यस्यसा योगानर्धश्लोकसमापितान् ॥ ४ ॥ क्रमात्सप्तसु मासेषु गर्भे स्रवति
योजयेत् । कपित्थबिल्वबृहतीपटोलेक्षुनिदिग्धजैः ॥ ५ ॥ मूलैः शृतं प्रयु-
ज्जीत क्षीरं मासे तथाऽष्टमे । नवमे मधुकानन्तापयस्यासारिवाः पिबेत्
॥ ६ ॥ क्षीरं शुण्ठीपयस्याभ्यां सिद्धं स्यादशमे हितम् । सक्षीरा वा हिता
शुण्ठी मधुकं सुरदारु च ॥ ७ ॥ क्षीरिकामुत्पलं दुग्धं समङ्गामूलकं शिवा-
म् । पिबेदेकादशे मासि गर्भिणी शूलशान्तये ॥ ८ ॥ सिताविदारिकाको-
लीक्षीरिकाश्च मृणालिकाः । गर्भिणी द्वादशे मासि पिबेच्छूलघ्नमौषधम् ।
एवमाप्यायते गर्भस्तीव्रा रुक्चोपशाम्यति ॥ ९ ॥

अथान्यच्च—ग्रन्थान्तरे मासविशेषे गर्भवेदनाहरमौषधम्—चलनं
प्रथमे मासि गर्भस्य यदि जायते । औषधं च तदा देयं विचक्षणभिष-
ग्वरैः ॥ १ ॥ मृद्वीका ज्येष्ठिकां चैव चन्दनं रक्तचन्दनम् । गवां च पयसा
पेयं स्थिरता जायते ध्रुवम् ॥ २ ॥ नीलोत्पलं सवालं च शृङ्गाटं च कसेरु-
कम् । शीततोयेन पिष्ट्वा तु क्षीरेणाऽऽलोढ्य तत्पिबेत् ॥ ३ ॥ एवं न पतते
गर्भः स च शूलः प्रशाम्यति । द्वितीये मासि गर्भस्य चलनं च भवे-
द्यदि ॥ ४ ॥ पयसा च तदा पेयं मृणालं नागकेशरम् । तगरं कमलं बिल्वं
कर्पूरेण समन्वितम् ॥ ५ ॥ अजाक्षीरेण तत्पिष्ट्वा क्षीरेणाऽऽलोढ्य पूर्ववत् ।
तृतीये मासि चलनं जायते गर्भजं यदि ॥ ६ ॥ पयसाऽऽलोढितं पेयं
शर्करानागकेशरम् । पद्मकं चन्दनं चैव वालकं पद्मनालकम् ॥ ७ ॥ पिष्ट्वा
शीतेन तोयेन क्षीरेणाऽऽलोढ्य तत्पिबेत् । एवं न पतते गर्भः स च शूलः

प्रशाम्यति ॥ ८ ॥ यदि गर्भस्य चलनं चतुर्थे मासि जायते । तृष्णाशूल-
विदाहैश्च ज्वरेण च निपीडनम् ॥ ९ ॥ क्षीरं च कदलीमूलमुत्पलं बालकं तथा ।
आलोढ्य समभागेन पिबेद्गोपशान्तये ॥ १० ॥ पञ्चमे मासि गर्भस्य
चलनं कुत्रचिद्भवेत् । दध्ना च मधुना पेयं दाडिमीपत्रचन्दनम् ॥ ११ ॥
नीलोत्पलं मृणालं च कौन्तीक्षीरीं तथैव च । केशरं पद्मकं चैव तोयेनाऽऽ-
लोढ्य तत्पिबेत् ॥ १२ ॥ एवं न पतते गर्भः स च शूलः प्रशाम्यति ।
षष्ठे मासि तु गर्भस्य चलता जायते यदा ॥ १३ ॥ गैरिका गोमयं भस्म
कृष्णा मृत्स्ना तथैव च । एतेषां साधितं प्राज्ञभिषजा चामृतं तदा ॥ १४ ॥
पेयं शीतं परं साकं सितया चन्दनेन च । सप्तमे मासि गर्भस्य चलनं
जायते यदा ॥ १५ ॥ उक्षीरं गोक्षुरघनः समङ्गा नागकेशरम् । सपद्मकं
समधुना पाययेच्च विचक्षणः ॥ १६ ॥ अष्टमे मासि चलनं गर्भजं यदि
जायते । लोघ्रमागधिकाचूर्णं मधुना पयसा पिबेत् । नवमे सुप्रसूतिः
स्यादेवं गर्भस्य पोषणम् ॥ १७ ॥ इति गर्भस्त्रावपातादिचिकित्सा ॥

अथ गर्भपातस्योपद्रवाणां चिकित्सा—स्निग्धशीताः क्रियान्तेषु
दाहादिषु समाचरेत् । कुशकाशोरूकाणां मूलैर्गोधुरकस्य च ॥ १ ॥ शृतं
दुग्धं सितायुक्तं गर्भिण्याः शूलहृत्परम् । श्वदंष्ट्रामधुकद्राक्षाम्लानैः सिद्धं पयः
पिबेत् ॥ २ ॥ शर्करामधुसंयुक्तं गुर्विणीवेदनापहम् । मृत्कोष्ठगारिका गोह-
संभवा नवमृत्तिका ॥ ३ ॥ समङ्गा धातकीपुष्पं गैरिकं च रसाञ्जनम् । तथा
सर्जरसश्चैतान्यथालाभं विचूर्णयेत् ॥ ४ ॥ तच्चूर्णं मधुना लिह्यान्नारी प्रदर-
शान्तये । कसेरुत्पलशृङ्गाटककं वा पयसा पिबेत् ॥ ५ ॥ पक्वं वचारसोना-
भ्यां हिङ्गुसौवर्चलान्वितम् । आनाहेषु पिबेद् दुग्धं गुर्विणी सुग्विनी भवेत्
॥ ६ ॥ तृणपद्मकमूलानां कल्केन विपचेत्प्रयः । तत्पयो गुर्विणी पीत्वा मूत्र-
सङ्गाद्विमुच्यते ॥ ७ ॥ शालीक्षुकुशकाशैः स्याच्छरेण तृणपद्मकम् । एषां शृतं
तृपादाहपित्तासृग्मूत्रसङ्गहृत् ॥ ८ ॥ कसेरुशृङ्गाटकपद्मकोत्पलं समुद्रपर्णी-
मधुकं सशर्करम् । सशूलगर्भसुतिपीडिताऽबला पयोविमिश्रं पयसाऽन्नभु-
क्पिबेत् ॥ ९ ॥ इति गर्भपातोपद्रवचिकित्सा ॥

अथ गुर्विण्या रोगाणां चिकित्सा—मधूकचन्दनोशीरसारिवायष्टिप-
द्मकैः । शर्करामधुसंयुक्तः कपायो गर्भिणीज्वरे ॥ १ ॥ चन्दनं सारिवालोग्र-
मृद्वीकाशर्करान्वितम् । काथं कृत्वा प्रदद्याच्च गर्भिणीज्वरशान्तये ॥ २ ॥
पयस्यासारिवापाठातोयतोयदनागरैः । शृतं शीतं पिबेद्भारि गर्भिणीज्वरवार-
णम् ॥ ३ ॥ मृद्वीकापद्मकोशीरश्रीपर्णीचन्दनं तथा । मधुकं च पयस्या च
सारिवामलकं तथा ॥ ४ ॥ पित्तज्वरहरः काथो गर्भिणीनां प्रशस्यते । पीतं
विश्वमजाक्षीरैर्नाशयेद्विषमज्वरम् ॥ ५ ॥ ह्रीवैरारलुरक्तचन्दनबलाधान्याक-
वत्सादनीमुस्तोशीरयवासपर्पटविपाकाथं पिबेद्गुर्विणी । नानावर्णरजातिसार-

कगदे रक्तस्रुतौ वा ज्वरे योगोऽयं मुनिभिः पुरा निगदितः सूत्यामयेपूतमः
 ॥ ६ ॥ ज्वरातिसारे गर्भिण्याः शस्तं सामे सशोणिते । समङ्गामधुकं लोभ्रं
 फाणितं शर्करान्वितम् ॥ ७ ॥ प्रवाहिकायां गर्भिण्याः शस्तं सामे सशोणिते ।
 आम्रजम्बूत्वचः काथैर्लेहयेलाजसक्तुकम् ॥ ८ ॥ अनेन लीढमात्रेण गर्भिणी
 ग्रहणीं जयेत् । शुण्ठीबिल्वकपायं तु यवसक्तुसमन्वितम् ॥ ९ ॥ गर्भिणीं
 पाययेद्वैद्यश्छर्द्यतीसारनाशनम् । पृश्निपर्णीबलावासानिर्यूहो रक्तपित्तजित्
 ॥ १० ॥ गर्भिण्याः कामलाशोफइवासकासज्वरापहः । कुस्तुम्बरीणां कल्कं
 तु तण्डुलोदकसंयुतम् ॥ ११ ॥ पिबेत्सशर्करं हृद्यं गर्भिणीच्छर्दिवारणम् ।
 बिल्वमज्जा च लाजाम्बु पिबेच्छर्दिषु गर्भिणी ॥ १२ ॥ भांगीशुण्ठीकणाचूर्णं
 गुडेन श्वासकासनुत् । अजमोदा नागरं च पिप्पली जीरकं समम् ॥ १३ ॥
 तच्चूर्णं सगुडक्षौद्रं गर्भिण्या वह्निदीपनम् । गिल्वाग्निमन्थपक्वं वा पाटल्या
 नागरेण वा ॥ १४ ॥ सिद्धमम्बु पिबेच्छीतं गर्भिणी वातरोगनुत् । चन्दनं
 मधुकोशीरं नागपुष्पं तिलास्तथा ॥ १५ ॥ अजशृङ्गी च मज्जिष्ठा रविमूलं
 पुनर्नवा । श्रेष्ठः शोफहरो लेपो गर्भिणीनां विशेषतः ॥ १६ ॥ इति गुर्विणी-
 रोगाणां चिकित्सा ॥

अथ वातशुष्कस्य गर्भस्य चिकित्सा—गर्भो वातेन संशुष्को नोदरं
 पूरयेद्यदि । सा बृंहणीयैः संसिद्धं दुग्धं मांसरसं पिबेत् ॥ १ ॥ शुक्रार्तवम-
 जाताङ्गं प्रत्यङ्गं मारुतादितम् । त्यक्तं जीवेन तत्तस्मात्कथितं चावतिष्ठते
 ॥ २ ॥ शुक्रार्तवार्द्रको वायुरुदराध्मानकृद्भवेत् । कदाचिच्चेत्तदाध्मानं स्वय-
 मेवाऽऽपतेत्तराम् ॥ ३ ॥ नैगमेयेन गर्भोऽयं हतो लोकध्वनिस्तथा । स चापि
 गर्भो भवति लोके नागोदराह्वयः । धान्यकुट्टनमुख्या स्याच्चिकित्सा तूभयो-
 रपि ॥ ४ ॥ अथ प्रसवमासमाह—नवमे दशमे मासि नारी गर्भं प्रसू-
 यते । एकादशे द्वादशे वा ततोऽन्यत्र विकारतः ॥ १ ॥ अथ च प्रसवमास-
 मतिक्रम्य स्थायिनि गर्भं चिकित्सामाह—वातेन गर्भसंकोचात्प्रसूतिस-
 मयेऽपि या । गर्भं न जनयेन्नारी तस्याः शृणु चिकित्सितम् ॥ १ ॥ कुट्टये-
 न्मुशलेनैषा कृत्वा धान्यमुलूखले । विषमं चाऽऽसनं यानं सेवेत प्रस-
 वार्थिनी ॥ २ ॥

अथ काले प्रसवविलम्बे चिकित्सामाह—प्रसवस्य विलम्बे तु धूपये-
 दभितो भगम् । कृष्णसर्पस्य निर्मोकैस्तथा पिण्डीतकेन वा ॥ १ ॥ तन्तुनालाङ्ग-
 लीमूलं बन्नीयाद्वस्तपादयोः । सुवर्चलां विशल्यां वा धारयेदाशु सूतये ॥ २ ॥
 कृष्णा वचा चापि जलेन पिष्टा सैरण्डतैला खलु नाभिलेपात् । सुखप्रसूतिं
 कुरुतेऽङ्गनानां निपीडितानां बहुभिः प्रमादैः ॥ ३ ॥ मातुलङ्गस्य मूलं तु
 मधुकैः संयुतं तथा । घृतेन सहितं पीत्वा सुखं नारी प्रसूयते ॥ ४ ॥
 इक्षोरुत्तरमूलं निजतनुमानेन तन्तुना बद्ध्वा । कटिविषये गर्भवती

सुखेन सूतेऽविलम्बितेनापि ॥ ५ ॥ तालस्य चोत्तरं मूलं स्वप्रमाणेन तन्तुना । बद्ध्वा कट्यां तु नियतं सुखं नारी प्रसूयते ॥ ६ ॥ प्रत्यक्पुण्याः पारिभद्रस्य यद्वा मूलं यद्वा काकजङ्घासमुत्थम् । कट्यां बद्धं योपितां संप्रसूतिं योगे युक्त्या संहतं साधु कुर्यात् ॥ ७ ॥ इहामृतं च सोमश्च चित्रभानुश्च भामिनि । उच्चैःश्रवाश्च तुरगो मन्दिरे निवसन्तु ते ॥ ८ ॥ इदममृतमपां समुद्धृतं वै तव लघु गर्भमिमं विमुञ्चतु स्त्रि । तदनलपवनार्कवासवास्ते सह लवणाम्बुधरैर्दिशन्तु शान्तिम् ॥ ९ ॥ मुक्ताः पाशा विपाशाश्च मुक्ताः सूर्येण रश्मयः । मुक्तः सर्वभयाद्गर्भं एहि मा चिर मा चिरम् स्वाहा ॥ १० ॥ जलं च्यावनमन्त्रेण सप्तवाराभिमन्त्रितम् । पीत्वा प्रसूयते नारी दृष्ट्वा चोभयत्रिंशकम् ॥ ११ ॥ कलारसाष्टभिः पक्षदिगष्टादशभिः क्रमात् । अर्कैश्च भुवनैर्वैदेरुभयत्रिंशकं भवेत् ॥ १२ ॥ हिमवदक्षिणे पार्श्वे सुरसा नाम यक्षिणी । तस्या नूपुरशब्देन विशल्या भव गर्भिणि ॥ १३ ॥ इमं श्लोकं पठित्वा तु क्षिपेदक्षतपञ्चकम् । गर्भिण्युपरि सद्यः सा गर्भं मुञ्चति गर्भिणी ॥ १४ ॥ इति काले प्रसवविलम्बे चिकित्सा ॥

अथ मूढगर्भस्य चिकित्सामाह—याभिः संकटकाले वैद्यैर्नार्यः प्रसाविताः सम्यक् । लब्धं यशः समग्रास्ता एवातः क्रियाः कुर्युः ॥ १ ॥ गर्भे जीवति मूढं तु गर्भं यत्नेन निर्हरेत् । हस्तेन सर्पिपाऽक्तेन योनेरन्तर्गतेन सा ॥ मृते तु गर्भे गर्भिण्या योनौ शस्त्रं प्रवेशयेत् ॥ २ ॥ शस्त्रशास्त्रार्थविदुषी लघुहस्ता भयोज्झिता । सचेतनं तु शस्त्रेण न कथंचन दारयेत् ॥ ३ ॥ स दार्यमाणो जननीमात्मानं चापि मारयेत् । नोपेक्षेत मृतं गर्भं मुहूर्तमपि पण्डितः ॥ स चाऽऽशु जननीं हन्ति प्रभूतान्नं यथा पशुम् ॥ ४ ॥

अथ च्छेदनप्रकारः—यद्यदङ्गं हि गर्भस्य योनौ सज्जति तद्विपक् । सम्यग्गुविनिर्हरेच्छित्त्वा रक्षेत्रारिं प्रयत्नतः ॥ १ ॥ एवं निर्हृतशल्यां तां सिञ्चेदुष्णेन वारिणा । ततोऽभ्यक्तशरीराया योनौ स्नेहं निधापयेत् ॥ एवं मृद्वी भवेद्योनिस्तच्छूलं चोपशाम्यति ॥ अथ प्रसूताया योनौ क्षतादेस्तु चिकित्सितम् । तुम्बीपत्रं तथा लोघ्रं समभागं तु पेपयेत् । तेन लेपो भगे कार्यः शीघ्रं स्याद्योनिरक्षता ॥ १ ॥ पलाशोदुम्बरफलं तिलतैलसमन्वितम् । योनौ प्रलितं मधुना गाढीकरणमुत्तमम् ॥ २ ॥ प्रसूता वनिता वृद्धकुक्षिह्वासाय संपिबेत् । प्रातर्मथितसंमिश्रां त्रिःसप्ताहात्कणाजटां ॥ ३ ॥ इति भावप्रकाशात् ॥ अथ वङ्गसेनात्—आसुरीहिङ्गुसिन्धूत्थं काञ्जिकेनावलोडितम् । गर्भाशये मृतं गर्भं पातयेत्पानयोगतः ॥ १ ॥ आलोढ्य काञ्जिकैर्घोटीपुरीषं वस्त्रगालितम् । ससिन्धूयासुरीतैलं विपमागतगर्भनुत् ॥ २ ॥ परूपकशिलालेपः स्थिरामूलकृतोऽथ वा । नाभिबस्तिभगाद्येषु मूढगर्भापकर्षणः ॥ ३ ॥ इति मूढगर्भचिकित्सा ॥

अथ प्रसूताया उदरस्थापरोपद्रवानाह ।

प्रसूताया न पतिता जठरादपरा यदि । तदा सा कुरुते शूलमाध्मानं वह्निमन्दताम् ॥ १ ॥ अथ तच्चिकित्सा—केशवेष्टितयाऽङ्गुल्या तस्याः कण्ठं प्रघर्षयेत् । निर्मोककटुकालाबुद्धतवेधनसर्पपैः ॥ १ ॥ चूर्णितैः कटुतैलाक्तैर्धूपयेदभितो भगम् । लाङ्गलीमूलकल्केन पाणिपादतलानि हि । प्रलिम्पेत्सूतिका योपिदपरापातनाय वै ॥ २ ॥ हस्तं छिन्नखं स्निग्धं सूती योनौ शनैः क्षिपेत् । अपरां तेन हस्तेन जनयित्री विनिर्हरेत् ॥ ३ ॥ इत्यपरापातनविधिः ॥

अथ सूतिकारोगाधिकारः ।

पृथिव्यां पतिते वस्से योनौ पिण्डनमिष्यते । अप्रवेशो यथा वायोस्तथा संरक्षणक्रिया ॥ १ ॥ वायुः प्रकुपितः कुर्यात्संरुध्य रुधिरं च्युतम् । सूताया हृच्छिरोवस्तिशूलं मक्कलसंज्ञितम् ॥ २ ॥ अथ मक्कलस्य चिकित्सा—संचूर्णितं यवक्षारं पिबेत्कोष्णेन वारिणा । सर्पिषा वा पिबेन्नारी मक्कलस्य निवृत्तये ॥ १ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं गजपिप्पली । नागरं चित्रकं चव्यं रेणुकैलाजमोदिकाः ॥ २ ॥ सर्पपो हिङ्गु भार्गी च पाठेन्द्रयवजीरकाः । महानिम्बश्च मूर्वा च विपा तिक्ता विडङ्गकम् ॥ ३ ॥ पिप्पल्यादिगणो ह्येष कफमारुतनाशनः । गुल्मशूलज्वरहरो दीपनश्चाऽऽमपाचनः ॥ ४ ॥ काथमेपां पिबेन्नारी लवणेन समन्वितम् । मक्कलशूलगुल्मघ्नं कफानिलहरं परम् ॥ ५ ॥ त्रिकटुकचातुर्जातककुस्तुम्बरचूर्णसंयुक्तम् । खादेद्गुडं पुराणं नित्यं नारी मक्कलदलनाय ॥ ६ ॥ शोणं बोलं सघृतं सगुडं गुटकीकृतं गिलितम् । मक्कलाभिधशूलं हन्ति समूलं सशोणितातङ्कम् ॥ ७ ॥ हिङ्गु शुद्धं ससर्पिष्कं भुक्तं मक्कलशूलनुत् ॥ ८ ॥ इति मक्कलचिकित्सा ॥ अथ प्रसूताया द्विदान्याह—प्रसूता युक्तमाहारं विहारं च समाचरेत् । व्यायामं मैथुनं क्रोधं शीतसेवां च वर्जयेत् ॥ १ ॥ मिथ्याचारात्सूतिकाया यो व्याधिरुपजायते । स कृच्छ्रसाध्योऽसाध्यो वा भवेत्पथ्यं समाचरेत् ॥ २ ॥ इति भावप्रकाशात् ।

अथ सूतिकारोगनिदानम्—

मिथ्योपचारात्संक्षेपाद्विपमाजीर्णभोजनात् । सूतिकायास्तु ये रोगा जायन्ते दारुणाश्च ते ॥ १ ॥ अङ्गमर्दो ज्वरः कम्पः पिपासा गुरुगात्रता । शोफः शूलातिसारौ च सूतिकारोगलक्षणम् ॥ २ ॥ ज्वरादीनां रोगविशेषाणां निदानविशेषमाह—ज्वरातीसारशोथाश्च शूलानाहबलक्षयाः । तन्द्रारुचिप्रसेकाद्या वातश्लेष्मसमुद्भवाः ॥ ३ ॥ कृच्छ्रसाध्या हि ते रोगाः क्षीणमांसबलाश्रिताः । ते सर्वे सूतिकानाश्चा रोगास्ते चाप्युपद्रवाः ॥ ४ ॥

अथ सूतिकारोगचिकित्सामाह—

सूतिकारोगशान्त्यर्थं कुर्याद्वातहरीं क्रियाम् । दशमूलकृतं काथं कोष्णं

दद्याद् घृतान्वितम् ॥ १ ॥ अमृतानागरसहचरभद्रोत्कटपञ्चमूलकं जलदः ।
शृतशीतं मधुयुक्तं शमयत्यचिरेण सूतिकातङ्कम् ॥ २ ॥

अथ देवदार्वीदिः—देवदारु वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम् । भूनिम्बः
कदफलं मुस्तं तिक्ता धान्यं हरीतकी ॥ १ ॥ गजकृष्णा च दुःस्पर्शा
गोक्षुरो धन्वयासकः । बृहत्यतिविपा छिन्ना कर्कटी कृष्णजीरकम् ॥ २ ॥
समभागान्वितैरेतैः सिन्धुरामठसंयुतम् । काथमष्टावशेषं तु प्रसूतां पायये-
त्स्त्रियम् ॥ ३ ॥ शूलकासज्वरश्वासमूर्च्छाकम्पशिरोर्तिभिः । युक्तं प्रलापतृड्-
दाहतन्द्रातीसारवान्तिभिः ॥ ४ ॥ निहन्ति सूतिकारोगं वातपित्तकफोद्भ-
वम् । कपायो देवदार्वीदिः सूतायाः परमौषधम् ॥ ५ ॥

अथ निर्गुण्ड्यादिकाथः—संयोजितो दलितया कणया कवोष्णो निर्गु-
ण्डिकालशुननागरजः कपायः । पीतो निहन्ति कफमारुतकोपजातं सूत्रामयं
सकलमेव सुदुस्तरं च ॥ १ ॥

अथ सहचरादिः—सहचरकुलत्थपुष्करदारुनिशादारुवेतसकाथः । पीतः
सहिङ्गुलवणः शमयति शूलज्वरौ सूत्राः ॥ १ ॥

अथ पञ्चमूलादिः—पञ्चमूलस्य वा काथं तप्तलोहेन संगतम् । सूति-
कारोगनाशाय पिबेद्वा तद्युतां सुराम् ॥ १ ॥

अथ पञ्चजीरकपाकः—जीरकं स्थूलजीरश्च शतपुष्पाद्वयं तथा । यवानी
चाजमोदा च धान्यकं मेथिकाऽपि च ॥ १ ॥ शुण्ठी कृष्णा कणामूलं चित्रकं
हपुषाऽपि च । विदारीफलचूर्णं तु कुष्ठं कम्पिल्लकं तथा ॥ २ ॥ एतानि पलमा-
त्राणि गुडं पलशतं मतम् । क्षीरं प्रस्थद्वयं दद्यात्सर्पिषः कुडवं तथा ॥ ३ ॥
पञ्चजीरकपाकोऽयं प्रसूतानां प्रशस्यते युज्यते सूतिकारोगे योनिरोगे ज्वरे
क्षये । कासेश्वासे पाण्डुरोगे काश्ये वातामयेषु च ॥ ४ ॥ इति पञ्चजीरकपाकः ।

अथ सौभाग्यशुण्ठी—आज्यस्याञ्जलियुग्ममत्र पयसः प्रस्थद्वयं खण्डतः
पञ्चाशत्पलमत्र चूर्णितमथ प्रक्षिप्यते । नागरम् । प्रस्थार्धं गुडवद्विपाच्य वि-
धिना मुष्टित्रयं धान्यकान्मिस्याः पञ्चपलं पलं कृमिरिपोः साजाजिजीरादपि
॥ १ ॥ व्योषाम्भोददलोरोगेन्द्रसुमनःसद्भाविडीनां पलं पक्कं नागरखण्डसंज्ञ-
कमिदं सौभाग्यदं योषिताम् । तृदृच्छर्दिज्वरदाहशोषशमनं सश्वासकासापहं
ह्रीह्वयाधिविनाशनं कृमिहरं मन्दाग्निसंदीपनम् ॥ २ ॥ इति सौभाग्यशुण्ठी ।
अन्यच्च—नागरं कणशः कृत्वा प्रस्थमात्रं भिषग्वरः । अजादुग्धाढकद्वंद्वे
विपचेन्मन्दवह्निना ॥ १ ॥ घनीभूते तु पयसि तस्माच्छुण्ठीं समुद्धरेत् ।
अतिसूक्ष्मं विनिष्पिप्य शोषयेदातपे खरे ॥ २ ॥ घृतमार्नीं समावाप्य तदु-
ग्धं तु पुनः पचेत् । यावत्पिण्डत्वमायाति ततस्तत्र विनिक्षिपेत् ॥ ३ ॥ चातु-
र्जातं तुगावेह्लं धान्यकं जीरकद्वयम् । मिशिमाकल्लकं शुण्ठीं लवङ्गं च शता-
वरीम् ॥ ४ ॥ तालमूलीत्रिकटुकं कपिकच्छूं च पट्कुटु । जातीफलं जातिपर्त्रीं

शृङ्गाटं वृद्धदारुकम् ॥ ५ ॥ त्रिवृतांपद्मबीजं च त्रिफलां च बलात्रयम् ।
जलं सेव्यं वाजिगन्धाचन्दनागरुकारवीः ॥ ६ ॥ कक्कोलमजगन्धां च द्राक्षा-
माक्षोटवारिजे । अजमोदं च वादामं नारीकेलगतं तथा ॥ ७ ॥ कर्पूरमभ्रकं
लोहं वङ्गं ताम्रं शिलाजतु । स्वर्णमाक्षिकमप्येतत्प्रत्येकं कर्पमात्रकम् ॥ ८ ॥
चूर्णीकृत्य क्षिपेत्तत्र पाणिभ्यां मर्दयेद्दृढम् । ततः खण्डतुलां पक्त्वा तथा
तच्च क्रियां चरेत् ॥ ९ ॥ खण्डनागरकं नाम्ना भैषज्यमिदमुत्तमम् । यथा
बलमिदं खादेत्प्रातः सायं च भेषजम् ॥ १० ॥ स्त्रीणामतिहितं नात्र पथ्या
पथ्यविचारणा । क्षये पाण्डौ ज्वरे कासे श्वासे मन्दानले तथा ॥ ११ ॥ सं-
ग्रहण्यां रक्तगुल्मे प्रदरे सोमरोगके । दुग्धक्षये मूत्रकृच्छ्रे कामलायां गलग्रहे
॥ १२ ॥ पित्तरोगेषु सर्वेषु वातपित्तगदेषु च । सूतिकापवनव्याधौ शस्त्रमेतन्न सं-
शयः ॥ १३ ॥ अश्विभ्यां पूर्वमुदितः सेव्यो योगोऽयमुत्तमः । एषा सौभा-
ग्यदा शुण्ठी स्त्रीणां पुत्रप्रदा शुभा ॥ १४ ॥ इति द्वितीयसौभाग्यशुण्ठीपाकः ।
अथान्यच्च—नागरस्य पलान्यष्टौ घृतस्य पलविंशतिम् । क्षीराढकेन संयुक्तं
खण्डस्यार्धतुलां पचेत् ॥ १ ॥ शताह्वाजीरकव्योपत्रिसुगन्धिवानिकाः ।
कारवीमिसिचव्याग्निमुस्तानां च पलं पलम् ॥ २ ॥ लेहीभूतमिदं सिद्धं घृत-
भाण्डे निधापयेत् । तद्यथाग्निबलं खादेत्सूतिका तु विशेषतः ॥ ३ ॥ ब्रह्मं
वर्णं तथाऽऽयुष्यं वलीपलितनाशनम् । वयसः स्थापनं हृद्यं मन्दाग्नेर्दीपनं
परम् ॥ ४ ॥ आमवातप्रशमनं सौभाग्यकरमुत्तमम् । मकलशूलशमनं सूति-
कारोगनाशनम् ॥ ५ ॥ इति तृतीयसौभाग्यशुण्ठी ॥

अथ प्रतापलङ्केश्वरो रसः—एकेन्दुचन्द्रानलवार्धिदन्तीकलैकभागं
क्रमशो विमिश्रम् । सूताभ्रगन्धोपणलोहशङ्खवन्योत्पलामभसविपं च पिष्टम्
॥ १ ॥ प्रसूतिवातेऽनिलदन्तबन्धे सार्द्रांभसा बलममुष्य लिह्यात् । वाता
मये श्लेष्मगदेऽर्शसि स्यात्पुरामृताद्रात्रिफलायुतोऽयम् ॥ २ ॥ सशृङ्गबेरद्रव
एष हन्ति ससंनिपातं ज्वरमुग्ररूपम् । निजानुपानैर्निजपथ्ययुक्तः सर्वाति-
सारान् ग्रहणीविकारान् ॥ ३ ॥ प्रतापलङ्केश्वरनामधेयः सूतः प्रयुक्तो गिरि-
राजपुत्र्या ॥ ४ ॥ इति प्रतापलङ्केश्वरः ॥ अथ प्रसूताया नियमसमयाव-
धिमाह—सर्वतः परिशुद्धा स्यात्स्निग्धपथ्याऽल्पभोजना । स्वेदाभ्यङ्गपरा
नित्यं भवेन्मासमतन्द्रिता ॥ १ ॥ प्रसूता सार्धमासान्ते दृष्टे वा पुनरातवे ।
सूतिकानामहीना स्यादिति धन्वन्तरेर्मतम् ॥ २ ॥ उपद्रवैर्विशुद्धां च विज्ञाय
वरवर्णिनीम् । ऊर्ध्वं चतुर्भ्यो मासेभ्यः परिहारं विसर्जयेत् ॥ ३ ॥ इति
भावप्रकाशात् ॥ इति सूतिकारोगचिकित्सा ॥

अथ स्तनरोगस्य निदानपूर्विकां चिकित्सामाह ।

सक्षीरौ चाप्यदुग्धौ वा दोषः प्राप्य स्तनौ स्त्रियाः । रक्तं मांसं च संदूष्य
स्तनरोगाय कल्पते ॥ १ ॥ स्तनरोगाणामतिदेशेन लक्षणान्याह—५

ज्ञानामपि तेषां हि रक्तजं विद्रधिं विना । लक्षणानि समानानि बाह्यविद्रधिलक्षणेः ॥ २ ॥ इति स्तनरोगनिदानम् ॥ अथ स्तनरोगचिकित्सा—शोथं स्तनोत्थितमवेक्ष्य भिषग्विदध्याद्यद्विद्रधावभिहितं बहुधा विधानम् । आमे विदह्यति तथैव गते च पाकं यस्याः स्तनौ सततमेव च निर्गृहीतौ ॥ १ ॥ पित्तघ्नानि सुशीतानि द्रव्याण्यत्र प्रयोजयेत् । जलौकाभिर्हरेद्रक्तं तत्स्तनावुपनाहयेत् ॥ २ ॥ लेपो विशालामूलेन हन्ति पीडां स्तनोत्थिताम् । निशाकनककल्काभ्यां लेपः प्रोक्तः स्तनार्तिहा ॥ ३ ॥ लेपान्निहन्ति मूलं स्तनरोगं वन्ध्यकर्कोट्याः । निर्वाप्य तत्सलोहं सलिले तद्वा पिबेत्तत्र ॥ ४ ॥ इति स्तनरोगचिकित्सा ॥

अथ क्षीरदोषचिकित्सा ।

उक्तं सुश्रुते—रक्तप्रसादो मधुरः पक्वाहारनिमित्तजः । कृत्स्नदेहात्स्तनौ प्राप्तः स्तन्यमित्यभिधीयते ॥ १ ॥ माधवेनाप्युक्तम्—गुरुभिर्विविधैरन्नैर्दुष्टैर्दोषैः प्रदूषितम् । क्षीरं धात्र्याः कुमारस्य नानारोगाय कल्पते ॥ २ ॥ कपायं सलिलप्लावि स्तन्यं मारुतदूषितम् । कट्वम्ललवणं पीतराजिमपित्तसंज्ञितम् ॥ ३ ॥ कफदुष्टं घनं तोये निमज्जति सुपिच्छिलम् । द्विलिङ्गं द्वंद्वजं विद्यात्सर्वलिङ्गं त्रिदोषजम् ॥ ४ ॥ अथाविकृतस्तन्यमाह—अदुष्टं चाम्बुनिक्षिप्तमेकीभवति पाण्डुरम् । मधुरं चाधिवर्णं च तत्प्रसन्नं विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥ इति क्षीरदोषनिदानम् ॥ अथतच्चिकित्सा—तत्र वातात्मके स्तन्ये दशमूर्लीं त्र्यहं पिबेत् । वातव्याधिहरं सर्पिः पीत्वा मृदु विरेचयेत् ॥ १ ॥ पित्तदुष्टेऽमृताभीरुपटोलं निम्बचन्दनम् । धात्री कुमारश्च पिबेत्काथयित्वा सशर्करम् ॥ २ ॥ कफदुष्टे घृतं पेयं यष्टीसैन्धवसंयुतम् । राठपुष्पैः स्तनौ लिम्पेच्छिशोश्च दशनच्छदौ ॥ ३ ॥ सुखमेवं वमेद्बालः कफकोपश्च शाम्यति । द्वंद्वदुष्टं द्वियोगाभ्यां पूर्वोक्ताभ्यां विशोधयेत् ॥ ४ ॥ स्तन्ये त्रिदोषसंदुष्टे शकृदामं जलोपमम् । नानावर्णरुजं चार्धविबद्धमुपवेशयेत् ॥ ५ ॥ पाठा मूर्वा च भूनिम्बदारुशुण्ठीकलिङ्गकाः । सारिवाघनतिक्ताख्यं तच्च स्तन्यविशोधनम् ॥ ६ ॥ इति क्षीरदोषविशुद्धिचिकित्सा ॥ अथ स्तन्यजननविधिः—भूमिकृष्माण्डमूलस्य क्षीरपिष्टस्य चा रसम् । पिबेत्सशर्करं तस्याः क्षीरं बहु विवर्धते ॥ १ ॥ शतावरी क्षीरपिष्टा पीता स्तन्यविवर्धनी । कवोष्णं कणया पीतं क्षीरं क्षीरविवर्धनम् ॥ २ ॥ वनकार्पासकेशूणां मूलं सौवीरकेण वा । विदारिकन्दं सुरया पिबेद्वा स्तन्यवर्धनम् ॥ ३ ॥ अथ वज्रकाञ्जिकम्—पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यं शुण्ठी यवानिका । जीरके द्वे हरिद्रे द्वे बिडं सौवर्चलं तथा ॥ १ ॥ एतैरेवौषधैः पिष्टैरारनालं विपाचयेत् । तद्यथाश्विलं पीत्वा प्रसूता सुखमश्नुते ॥ २ ॥ आमवातहरं वृष्यं कफघ्नं वातनाशनम् । तद्वज्रकाञ्जिकं

नाम्ना स्त्रीणामग्निविवर्धनम् ॥ मकलशूलशमनं परं क्षीरविवर्धनम् ॥ ३ ॥
 इति वज्रकाञ्चिकम् । इति स्तन्यजननविधिः ॥ अथ पथ्यापथ्यम्—
 यत्पथ्यं यदपथ्यं च रक्तपित्तेषु कीर्तितम् । प्रदरेऽपि यथादोषं तत्तु नारी रुजि
 त्यजेत् ॥ १ ॥ वातव्याधिमतां पथ्यापथ्यं च यदुदीरितम् । योनिव्यापत्सु
 सर्वासु तद्विद्यात्तुयथामलम् ॥ २ ॥ शालयः पथिका मुद्गा गोधूमा लाजसक्तवः ।
 नवनीतं घृतं क्षीरं रसाला मधुशर्करा । पनसं कदलं धात्री द्राक्षाम्लं स्वादु
 शीतलम् ॥ ३ ॥ कस्तूरी चन्दनं माला कर्पूरमनुलेपनम् । चन्द्रिका स्नानम-
 भ्यङ्गः मृदुशय्या हिमानिलः ॥ ४ ॥ संतर्पणं प्रियाश्लेषो विहारश्च मनोरमाः ।
 प्रियंकरंचान्नपानं गर्भिणीनां हितं सदा ॥ ५ ॥ इति पथ्यम् ॥ स्वेदनं वमनं
 क्षारं कदन्नं विपमाशनम् । अपथ्यमिदमुद्दिष्टं गुर्विणीनां महर्षिभिः ॥ १ ॥
 सूतिकाख्येषु रोगेषु वातश्लेष्मोद्भवेषु च । तत्र रोगानुकल्पेन पथ्यापथ्यानि
 निर्दिशेत् ॥ २ ॥ इति पथ्यापथ्यम् ॥ इति स्त्रीरोगाधिकारः ॥

अथ बालरोगाधिकारः ॥

तत्र बालरोगाणां निदानानि लक्षणानि चाऽऽह—धाध्यास्तु
 गुरुभिर्भोज्यैर्विषमैर्दोषलैस्तथा । दोषा देहे प्रकुप्यन्ति ततः स्तन्यं प्रदुष्यति
 ॥ १ ॥ मिथ्याहारविहारिण्या दुष्टा वातादयस्त्रयः । दूषयन्ति पयस्तेन
 जायन्ते व्याधयः शिशोः ॥ २ ॥ वातदुष्टं शिशुः स्तन्यं पिबन्वातगदातुरः ।
 क्षामस्वरः कृशाङ्गः स्याद्बद्धविण्मूत्रमारुतः ॥ २ ॥ स्त्रियो भिन्नमलो बालः
 कामलापित्तरोगवान् । तृणालुरुष्णसर्वाङ्गः पित्तदुष्टं पयः पिबन् ॥ ४ ॥ कफ-
 दुष्टं पिबन्क्षीरं लालालुः श्लेष्मरोगवान् । निद्रादितो जडः शूनवक्त्राक्षश्छ-
 र्दनः शिशुः ॥ अथ शिशोर्वकुमक्षमस्यान्तर्गतवेदनाज्ञानोपायमाह—शि-
 शोस्तीव्रामतीव्रां च रोदनालक्षयेद्भुजम् ॥ १ ॥ अथ कुकूणकमाह—कुकू-
 णकः क्षीरदोषाच्छिशूनामेव वर्त्मनि । जायते तेन तन्नेत्रं कण्ठं च स्रवेन्मुहुः
 ॥ १ ॥ शिशुः कुर्याल्ललाटाक्षिकण्ठनामावघर्षणम् । शक्तो नार्कप्रभां द्रष्टुं न
 वर्त्मन्मीलनक्षमः ॥ २ ॥ अथ पारिगर्भिकमाह—मातुः कुमारो गर्भिण्याः
 स्तन्यं प्रायः पिबन्नपि । श्वासाग्निमादवमथुतन्द्राकासारुचिभ्रमैः ॥ १ ॥ युज्यते
 कोष्ठवृक्षा च तमाहुः पारिगर्भिकम् । रोगं परिभवाख्यं च तत्र युज्जीत दीपनम्
 ॥ २ ॥ अथ तालुकण्टकमाह—तालुमांसे कफः कुट्टः कुरुते तालुकण्टकम् ।
 तेन तालुप्रदेशस्य निम्नता मूर्ध्नि जायते ॥ १ ॥ तालुपातः स्तनद्वेषः कृच्छ्रात्पानं
 शकृद्भवन् । तृडक्षिकण्ठास्यरुजो ग्रीवा दुर्धरता वमिः ॥ २ ॥ अथ महाप-
 ञ्चमाह—विसर्पस्तु शिशोः प्राणनाशनो वस्तिशीर्षजः । पञ्चवर्णो महापञ्च-
 रोगो दोषत्रयोद्भवः ॥ १ ॥ शङ्खाभ्यां हृदयं याति हृदयाच्च गुदं व्रजेत् ।
 क्षुद्ररोगे च कथिते अजगल्यहिपूतने ॥ २ ॥ अथान्येऽपि विकारा बाला-

नां भवन्ति तानतिदेशेनाऽऽह—ज्वराद्या व्याधयः सर्वे महतां ये पुरेःरिताः । बालदेहेऽपि ते तद्वज्जेयाः स्युः कुशलैरिह ॥ १ ॥ अथ दन्तोद्भेदकान्शो-
गानाह दन्तोद्भेदः शिशोः सर्वरोगाणां कारणं स्मृतः । विशेषाज्ज्वरविद्-
भेदकामच्छर्दिशिरोरुजाम् । अभिप्यन्दस्य पोथक्या विसर्पस्य च जायते ॥ १ ॥
इति बालरोगनिदानलक्षणानि ॥

अथग्रहस्तबालरोगलक्षणानि—बालग्रहा अनाचारात्पीडयन्ति शिशुं
यतः । तस्मात्तदुपसर्गेभ्यो रक्षेद्बालं प्रयत्नतः ॥ १ ॥ अथ बालग्रहाणां
नामान्याह—स्कन्दग्रहस्तु प्रथमः स्कन्दापस्मार एव च । शकुनी रेवती
चैव पूतना गन्धपूतना ॥ १ ॥ पूतना शीतपूर्वा च तथैव मुखमण्डिका ।
नवमो नैगमेयश्च प्रोक्ता बालग्रहा अमी ॥ २ ॥ अथ सामान्यग्रहजुष्टानां
- बालानां लक्षणान्याह—क्षणादुद्विजते बालः क्षणाव्रस्यति रोदिति । नखैर्द-
न्तैर्दारयति धात्रीमात्मानमेव च ॥ १ ॥ ऊर्ध्वं निरीक्षते दन्तान्खादेत्कूजति
जृम्भति । भ्रुवौ क्षिपति दन्तोष्ठं फेनं वमति चासकृत् ॥ २ ॥ क्षामोऽति
निशि जागर्ति शूनाङ्गो भिन्नविदस्वरः । मांसशोणितगन्धिश्च न चाश्नाति
यथा पुरा ॥ ३ ॥ दुर्बलो मलिनाङ्गश्च नष्टसंज्ञोऽपि जायते । सामान्यग्रहजु-
ष्टानां लक्षणं समुदाहृतम् ॥ ४ ॥

अथ विशिष्टग्रहजुष्टानां लक्षणान्याह—तत्राऽऽदौ स्कन्दग्रहस्य
लक्षणमाह—एकनेत्रस्य गात्रस्य स्रावः स्यन्दनकम्पनम् । ऊर्ध्वदृष्ट्या निरीक्षेत
वक्रास्यो रक्तगन्धिकः ॥ १ ॥ दन्तान्खादति विव्रस्तः स्तन्यं नैवाभिनन्दति ।
स्कन्दग्रहगृहीतानां रोदनं चालपमेव च ॥ २ ॥ अथ स्कन्दापस्मारग्रह-
स्य लक्षणम्—नष्टसंज्ञो वमत्फेनं संज्ञावानतिरोदिति । पूयशोणितगन्धित्वं
स्कन्दापस्मारलक्षणम् ॥ १ ॥ अथ शकुन्या लक्षणमाह—स्रस्ताङ्गो भय-
चकितो विहङ्गगन्धिः सास्त्रावव्रणपरिपीडितः समन्तात् । स्फोटैश्च प्रचिततनुः
सदाहपाकैर्विज्ञेयो भवति शिशुः क्षतः शकुन्या ॥ १ ॥ अथ रेवतीग्रहल-
क्षणम्—व्रणैः स्फोटैश्चितं गात्रं पङ्कगन्धं स्रवेदसृक् । भिन्नवर्चा ज्वरी दाही
रेवतीग्रहलक्षणम् ॥ १ ॥ अथ पूतनालक्षणमाह—अतीसारो ज्वरस्तृष्णा
तिर्यक्प्रेक्षणरोदनम् । नष्टनिद्रस्तथोद्विग्नो ग्रस्तः पूतनया शिशुः ॥ १ ॥ अथ
गन्धपूतनालक्षणमाह—छर्दिः कासो ज्वरस्तृष्णा वसागन्धोऽतिरोदनम् ।
स्तन्यद्वेषोऽतिसारश्च गन्धपूतनया भवेत् ॥ १ ॥ अथ शीतपूतनालक्षण-
माह—वेपते कासते क्षीणो नेत्ररोगो विगन्धिता । छर्द्यतीसारयुक्तश्च शीत-
पूतनया शिशुः ॥ १ ॥ अथ मुखमण्डनिकालक्षणमाह—प्रसन्नवर्णवद-
नः शिराभिरभिसंवृतः । मूत्रगन्धिश्च बह्वाशी मुखमण्डनिकाग्रहे ॥ १ ॥
अथ नैगमेयग्रहलक्षणमाह—छर्दिः स्यन्दनकण्ठास्यशोषो मूर्च्छा विगन्धि-
ता । ऊर्ध्वं पश्येदशोदन्ताञ्चैगमेयग्रहं वदेत् ॥ १ ॥ स्रस्ताक्षश्च स्तनद्वेषी मुखते

चानिशं मुहुः । तं बालमचिराद्वन्ति ग्रहः संपूर्णलक्षणः ॥ २ ॥ इति ग्रहग्र-
स्तबालरोगाः ॥

अथ चिकित्सा ।

तत्राऽऽदौ बालरोगाणां चिकित्सा—भैषज्यं पूर्वमुद्दिष्टं महतां य-
ज्वरादिषु । तदेव कार्यं बालानां किं तु दाहादिकं विना ॥ १ ॥ दाहादिकं
विना अग्निदाहक्षारवमनविरेचनशिराम्यधादिकं विना । महाकष्टे चोत्पन्ने
वमनविरेकाद्यपि दद्यात् । यत आह सुश्रुतः—विरेकवस्तिवमनान्यृते
कुर्याच्च नात्यथात् । त एव दोषादूष्याश्च ज्वराद्या व्याधयश्च ते । अतस्तदेव
भैषज्यं मात्रा त्वस्य कनीयसी ॥ १ ॥ अथ कनीयसी मात्रामाह वि-
श्वामित्रः—विडङ्गफलमात्रं तु जातमात्रस्य भैषजम् । अनेनैव प्रमाणेन मासि
मासि प्रवर्धयेत् ॥ १ ॥ अथ तन्त्रान्तरे त्वन्यथाऽभिहितम्—प्रथमे
मासि बालाय देया भैषज्यरक्तिका । अवलेह्या तु कर्तव्या मधुक्षीरसितामृतैः
॥ १ ॥ एकैकां वर्धयेत्तावद्यावत्संवत्सरो भवेत् । तदूर्ध्वं मापवृद्धिः स्याद्याव-
त्षोडश वत्सराः ॥ २ ॥ ततः स्थिरा भवेत्तावद्यावद्वर्षाणि सप्ततिः । ततो
बालकवन्मात्रा हासनीया शनैः शनैः ॥ ३ ॥ चूर्णकल्कावलेहानामियं मात्रा
प्रकीर्तिता । कपायस्य पुनः सैव विज्ञातव्या चतुर्गुणा ॥ ४ ॥ क्षीरपस्य शिशोर्देय-
मौषधं क्षीरसर्पिपा । धात्र्यास्तु केवलं देयं न क्षीरेणापि सर्पिपा ॥ ५ ॥
अथ ज्वरस्य चिकित्सा—सर्वं निवार्यते बाले स्तन्यं नैव निवार्यते । मा-
त्रया लङ्घयेद्दात्रीं शिशोरेतद्विलङ्घनम् ॥ ६ ॥ क्षीरादस्यौषधं धात्र्याः क्षीरा-
न्नादस्य चोभयोः ॥ १ ॥ अन्नादस्य तु बालस्य योजयेत्कुशलो भिषक् ।
अथ भद्रमुस्तादिकाथः सर्वज्वरेषु—भद्रमुस्ताभयानिम्बपटोलमधुकैः
कृतः । काथः कोष्णः शिशोरेष निःशेषज्वरनाशनः ॥ २ ॥ एलान्नास्थिकटु-
त्रिकत्रिफलिकावेलाब्दशृङ्गीविपालोघ्रं धातकिचित्रकालहपुषाबिल्वजमोदाः
समाः । वस्वंशा तुरगी जया नृपलवा सर्वैः समांशासिता बालानां ज्वरकार्श्य-
कासशमनशूर्णोऽतिसारं जयेत् ॥ ३ ॥ अथ जिह्वायां लेपः—बालो योऽचिरजातः
स्तन्यं गृह्णाति नो तदा तस्य । सैन्धवधात्रीमधुशृतपथ्याकल्केन घर्षयेज्जिह्वाम्
॥ १ ॥ अथ पलंकपादिधूपः—पलंकपा वचा कुष्ठगजचर्मविचर्म च ।
निम्बस्य पत्रं क्षौद्रेण सार्धमुक्तं तु धूपनम् । ज्वरवेगं निहन्त्याशु बालकानां
विशेषतः ॥ १ ॥ अथ मूर्वाद्युद्धर्तनम्—मूर्वानिशासर्पपरामसेनश्चेतासम-
ङ्गाम्बुदकारवीणाम् । छागीपयोभिः सह पेपितानामुद्धर्तनं स्याज्ज्वरजिच्छि-
ज्ञानम् ॥ १ ॥ इति ज्वरचिकित्सा ॥

अथातिसारग्रहण्योश्चिकित्सा—घनकृष्णारुणाशृङ्गीचूर्णं क्षौद्रेण सं-
युतम् । शिशोर्ज्वरातिसारघ्नं कासं श्वासं चर्मि हरेत् ॥ १ ॥ लोद्रेण
पिप्पली बाला बालाकातिस्तौ हितः । श्रीरसो माक्षिकयुतो धातकीकुसुमैः

समम् ॥ २ ॥ बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीनां जलं सलोध्रं गजपिप्पली च । क्वाथावलेहौ मधुना विमिश्रौ बालेषु योज्यावतिसारितेषु ॥ ३ ॥ समङ्गा धातकीलोध्रसारिवाभिः शृतं जलम् । दुधैरेऽपि शिशोर्देयमतीसारे समाक्षिकम् ॥ ४ ॥ विडङ्गान्यजमोदा च पिप्पलीतण्डुलानि च । एपामालिह्य चूर्णानि सुखतप्तेन वारिणा ॥ ५ ॥ आमे प्रवृत्तेऽतीसारे कुमारं पाययेद्विपक् । मोचरसं समङ्गा च धातकी पञ्चकेसरम् । पिष्टैरेतैर्यवागूः स्याद्रक्तातीसारनाशिनी ॥ ६ ॥ इति मोचरसादिर्यवागू रक्तातिसारे ॥ नागरातिविषामुस्तबालकेन्द्रयवैः शृतम् । कुमारं पाययेत्प्रातः सर्वातीसारनाशनम् ॥ १ ॥ लाजाः सयष्टिमधुका शर्करा क्षौद्रमेव च । तण्डुलोदकयोगेन क्षिप्रं हन्ति प्रवाहिकाम् ॥ २ ॥ इति लाजादिचूर्णं प्रवाहिकायाम् ॥ लोघ्रेन्द्रयवधान्याकधात्रीहीवेरमुस्तकम् । मधुना लेहयेद्बालं ज्वरातीसारनाशनम् ॥ १ ॥ रजनी सरलो दारु बृहती गजपिप्पली ॥ २ ॥ पृथ्विपर्णी शताव्हा च लीढा माक्षिकसर्पिषा । दीपनी ग्रहणी हन्ति मारुतातिं सकामलाम् । ज्वरातीसारपाण्डुत्वं बालानां सर्वरोग-नुत् ॥ ३ ॥ इति रजन्यादिचूर्णं संग्रहण्यादौ । इत्यतिसारग्रहण्योश्चिकित्सा ॥ अथ कासरोगचिकित्सा पौष्करातिविषाशृङ्गीमागधीघन्वयासकैः । कृतं चूर्णं तु सक्षौद्रं शिशूनां पञ्चकासजित् ॥ १ ॥ इति पौष्करादिचूर्णम् । अथ मुस्तकादिस्वरसः—मुस्तकातिविषावासाकणाशृङ्गीरसं लिहन् । मधुना मुच्यते बालाः कासैः पञ्चभिरुच्छ्रितैः ॥ १ ॥ अथ व्याघ्रीकुसुमाद्यलेहिका—व्याघ्रीकुसुमसंजातकेसरैरवलेहिका । मधुना चिरसंजाताशिशोः कासान्यपोहति ॥ १ ॥ अथ कासश्वासचिकित्सामाह—धान्यं शर्करया युक्तं तण्डुलोदकसंयुतम् । पानमेतत्प्रदातव्यं कासश्वासापहं शिशोः ॥ १ ॥ इति धान्यादिपानकम् । अथ द्राक्षादिचूर्णम्—द्राक्षावासाभयाकृष्णाचूर्णं क्षौद्रेण सर्पिषा । लीढं श्वासं निहन्त्याशु कासं च तमकं तथा ॥ १ ॥ अथ दु-रालभादिलेहः—दुरालभाकणाद्राक्षापथ्याः क्षौद्रेण लेहयेत् । त्रिरात्रं पञ्च-रात्रं वा कासश्वासहरः शिशोः । तुगा च क्षौद्रसंलीढा कासश्वासौ शिशोर्ज-येत् ॥ १ ॥ इति कासश्वासयोश्चिकित्सा ॥ अथ हिक्यायां छर्द्यां च—चूर्णं कटुकरोहिण्या मधुना सह योजयेत् । हिकां प्रशमयेत्क्षिप्रं छर्दि चापि चिरोत्थिताम् ॥ १ ॥ आम्रास्थिलाजसिन्धूत्थं सक्षौद्रं छर्दिनुद्भवेत् । घनशृङ्गीविषाणां च चूर्णं हन्ति समाक्षिकम् । वान्ति ज्वरं तथा योगो मधुनाऽतिविषारजः ॥ २ ॥ अथ क्षीरच्छर्द्याम्—पीतं पीतं वमेद्यस्तु स्तन्यं तं मधुसर्पिषा । द्विवार्ताकीफलरसं पञ्चकोलं च लेहयेत् । पंचकोलयथा—पिप्पलीपिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम् ॥ १ ॥ अथ तृष्णायाम्—हीवेर शर्कराक्षौद्रं लीढं तृष्णाहरं परम् । अथाऽऽनाहे शूले च—घृतेन सिन्धुविश्वै-लाहिङ्गुभांगैर्रजो लिहन् । आनाहं वातिकं शूलं हन्यात्तोयेन वा शिशोः

॥ १ ॥ अथ रेचनम्—पिष्टा गन्धर्वबीजानि त्वाखुविणिम्युवारिणा । नाभौ गुदे वा लेपेन शिशूनां रेचनं परम् ॥ १ ॥ इन्दुलोचननेत्राणि शिबिभागं हि योजयेत् । तृटिगन्धकमुर्दाडशतपुष्पा विचूर्णिताः ॥ २ ॥ मापद्वयं गवां दुग्धैः सेवयेद्दिनपञ्चकम् । रेचयेन्मृत्तिकां शुद्धां शिशूनां हितमोपधम् ॥ १ ॥ इतिवैद्यविलासात् । अथ सूत्राघाते—कणोपणसिताक्षौद्रसूक्ष्मैलासै-
न्धवैः कृतः । मूत्रग्रहे प्रयोक्तव्यः शिशूनां लेह उत्तमः ॥ १ ॥ अथ काश्ये-
—यथा तु दुर्बलो बालः खादन्नपि च वह्निमान् । विदारीकन्दगोधूमयवचू-
र्णं घृतशुतम् ॥ १ ॥ खादयेत्तदनु क्षीरं शृतं समधुशर्करम् । सौवर्णं सुकृतं चूर्णं कुष्ठं मधु घृतं वचा ॥ २ ॥ मत्स्याक्षकः शङ्खपुष्पी मधुसर्पिः सकाञ्चनम् । अर्क-
पुष्पी घृतं क्षौद्रं चूर्णितं कनकं वचा ॥ ३ ॥ सहेमचूर्णं कैडर्यं श्वेतदूर्वा घृतं मधु । चत्वारोऽभिहिताः प्राश्या अर्धश्लोकसमापनाः ॥ कुमारानां वपुर्मे-
धाबलपुष्टिकराः स्मृताः ॥ ४ ॥ अथ लाक्षादितैलम्—लाक्षारससमं तैलं मस्तुन्यथ चतुर्गुणे । रास्त्राचन्द्रनकुष्ठाब्दवाजिगन्धानिशायुतैः ॥ १ ॥ शता-
ह्वादारुयष्ट्याह्नमूर्वातिकाहरेणुभिः । संसिद्धं ज्वररक्षोघ्नं बलवर्णकरं शिशोः ॥ २ ॥ इति लाक्षादितैलम् । अथाश्वगन्धाघृतम्—पादकल्केऽश्वगन्धायाः क्षीरेष्टगु-
णिते पचेत् । घृतं देयं कुमारानां पुष्टिकृद्बलवर्धनम् ॥ १ ॥ इत्यश्वगन्धाघृतम् सप्तच्छदार्कच्छदनक्तमालमूलैस्तुरंगारिजटासमेतैः । उत्सादिताङ्गः पशुमूत्रपि-
ष्टैर्हीबिरमुण्डीसलिलाभिषिक्तः ॥ १ ॥ दिनेदिनेयाति शिशुः प्रवृद्धिं पतिः क्षपाणामिव शुक्लपक्षे ॥ इति राजमार्तण्डात् ॥ इति काश्यचिकित्सा ॥
अथ शोथे—सुस्तकूष्माण्डबीजानि भद्रदारुकलिङ्गकान् । पिष्ट्वा तोयेन संलिम्पेलेपोऽयं शोथहृच्छिशोः ॥ १ ॥ अथ नाभिशोथे—मृत्पिण्डेनाग्नि-
तप्तेन क्षीरसिक्तेन सोष्मणा । स्वेदयेदुत्थितां नाभिं शोथस्तेनोपशाम्यति ॥ १ ॥ अथ नाभिपाके—नाभिपाके निशालोघ्रप्रियंगुमधुकैः शृतम् । तैलमभ्यञ्जने शस्तमेभिश्चात्रावधूलनम् ॥ १ ॥ दुग्धेन च्छागशकृता नाभिपाकेऽवचूर्णनम् ।
त्वक्चूर्णैः क्षीरिणा वाऽपि कुर्याच्चन्दनरेणुना ॥ २ ॥ अथ गुदपाके—गुद-
पाके तु बालानां पित्तघ्नीं कारयेत्क्रियाम् । रसाञ्जनं विशेषेण पानलेपनयो-
र्हितम् ॥ शङ्खयष्टयञ्जनैश्चूर्णं शिशूनां गुदपाकनुत् ॥ १ ॥ अथाहिपूतने—
शङ्खसौवीरयष्ट्याह्नैर्लेपो देयोऽहिपूतने ॥ १ ॥ अथ पारिगर्भिके—पारिगर्भि-
करोगे तु युज्यते वह्निदीपनम् ॥ १ ॥ अथ क्षतविसर्पविस्फोटज्वरेपु—
पटोलत्रिफलारिष्टहरिद्राकथितं पिबेत् क्षतवीसर्पविस्फोटज्वराणां शान्तये शिशोः ॥ १ ॥ अथ सिध्मपामाविचर्चिकासु—गृहधूमनिशाकुष्ठराजि-
केन्द्रयवैः शिशोः ॥ १ ॥ लेपस्तकेण हन्त्याशु सिध्मपामाविचर्चिकाः ॥ १ ॥ अथ मुखस्त्रावे मुखपाकेच—सारिवातिललोघ्राणां कपायोमधुकस्य च ।
संस्त्राविणि मुखे शस्तो धावनार्थं शिशोः सदा ॥ १ ॥ मुखपाके तु बालाना-
माम्रसारमथोरसः । गैरिकं क्षौद्रसंयुक्तं भेषजं सरसाञ्जनम् ॥ २ ॥ दावीय-

पृथाऽभयाजातीपत्रक्षौद्रैस्तु धावनम् । अश्वत्थत्वग्दलक्षौद्रैर्मुखपाके प्रलेपनम् ॥ ३ ॥ अथ रोदने—पिप्पलीत्रिफलाचूर्णं घृतक्षौद्रपरिष्कृतम् । बालो रोदति यस्तस्मै लेढुं दद्यात्सुखावहम् ॥ १ ॥ अथ तालुकण्टके—हरीतकीवचा-कुष्ठकल्कं माक्षिकसंयुतम् । पीत्वा कुमारः स्तन्येन मुच्यते तालुकण्टकात् ॥ १ ॥ अथ तालुपाके—तालुपाके यवक्षारमधुभ्यां प्रतिसारणम् ॥ १ ॥ अथ कुकूणके—फलत्रिकं लोध्रपुनर्नवे च सशृङ्गवेरं बृहतीद्वयं च । आलेपनं श्लेष्महरं सुखोष्णं कुकूणके कार्यमुदाहरन्ति ॥ १ ॥ अथ नयनं—व्योषं सभृङ्गं च मनःशिलालं करञ्जबीजं च सुपिष्टमेतत् । कण्डूर्वर्दिनानामथ वर्त्मनां तु श्रेष्ठं शिशूनां नयने विदध्यात् ॥ १ ॥ अथ दन्तोद्भेदजरोरोगेषु—दन्तपालीं तु मधुना चूर्णेन प्रतिसारयेत् । धातकीपुष्पपिप्पल्योर्धात्रीफल-रसेन वा ॥ १ ॥ दन्तोत्थानभवा रोगाः पीडयन्ति च बालकम् । जाते दन्ते हि शाम्यन्ति यतस्तद्धेतुका गदाः ॥ २ ॥ प्राचीगतं पाण्डुरसिन्दुवारमूलं शिशूनां गलके निबद्धम् । हिनोति दन्तोद्भववेदनां च निःशेषमेकाण्डकुरण्डमुवा ॥ ३ ॥ इति दन्तोद्भेदजरोरोगेषु । यस्ताम्रचूडविहगोभयपार्श्वपक्षपुच्छैर्गवाज्य-सहितैः कृतधूपनाङ्गः । आरभ्य जन्मदिवसाद्दिनसप्तकं हि बालस्य तस्य न कुतश्चन भीतिरस्ति ॥ ४ ॥ इति राजमार्तण्डात् । इति बालरोगाणां चिकित्सा ।

अथ ग्रहग्रस्तबालरोगाणां चिकित्सामाह । तत्राऽऽदौ सामान्यग्रहजुष्टानां चिकित्सा—सहामुण्डीनिकोदीच्यक्वाथस्नानं ग्रहापहम् । सप्तच्छदाभयनिशाचन्दनैश्चानुलेपनम् ॥ १ ॥ अथ धूपः—सर्पत्वग्लशुनं मूर्वा सर्पपारिष्टपल्लावाः । बिडालविडजालोमपेशृङ्गीवचा मधु ॥ धूपः शिशो-ज्वरघ्नोऽयमशेषग्रहनाशनः ॥ १ ॥ अथ बालरोगे पर्पटीरसः—रसगन्धं समं शुद्धं तयोः कृत्वा तु कज्जलीम् । लोहद्वयं घृताक्तायामाधाय कदलीदलैः ॥ १ ॥ छादयेदुपरिन्यस्तगोमयैर्बदरीन्धनात् । शिखिनः कोमलादेव विधेया रसपर्पटी ॥ २ ॥ पर्पट्या द्विगुणो जीरः सूर्यांशो रामठः स्मृतः । दीयते मधुना तेषां शिशोर्गुञ्जाचतुष्टयम् ॥ ३ ॥ श्लेष्मपित्तानिलश्वासकासपीनसपाण्डुताः । स्त्रीहासिसादशूलानि हन्यादस्य ज्वरं जवात् ॥ ४ ॥ अथाष्टमङ्गलघृतम्—वचा कुष्ठं तथा ब्राह्मी सिद्धार्थकमथापि च । सारिवासेन्धवं चैव पिप्पली घृतमष्टकम् ॥ १ ॥ सिद्धं घृतमिदं मेध्यं पिबेत्प्रातर्दिने दिने । दृढस्मृतिः क्षिप्रमेधाः कुमारो बुद्धिमान्भवेत् ॥ २ ॥ न पिशाचा न रक्षांसि न भूता न च मातरः । प्रभवन्ति कुमाराणां पिबतामष्टमङ्गलम् ॥ बलिशान्तीष्टिकर्माणि कार्याणि ग्रहशान्तये ॥ ३ ॥

अथ विशिष्टग्रहजुष्टानां चिकित्सा—तत्र स्कन्दग्रहजुष्टस्य चिकित्सा—स्कन्दग्रहोपसृष्टस्य कुमारस्य प्रशस्यते । वातघ्नद्रुमपत्राणां क्वाथेन

परिषेचनम् ॥ १ ॥ देवदारुणि रास्त्रायां मधुरेषु गणेषु च । मिद्धं सर्पिश्च
सक्षीरं पातुमस्मै प्रदापयेत् ॥ २ ॥ सर्पपाः सर्पनिर्मोको वचा काकादनी घृत-
म् । उष्ट्राजाविगवां चापि रोम्णामुद्धूपनं भवेत् ॥ ३ ॥ सोमवल्लीमिन्द्रवृक्षं
बृहतीबिल्वजे शमीम् । मृगादन्याश्च मूलानि ग्रथितानि विधारयेत् ॥ ४ ॥
रक्तानि माल्यानि तथा पताका रक्तांश्च गन्धान्विविधांश्च भक्ष्यान् । घण्टां
च देवाय बलिं निवेद्य सकुक्कुटं स्कन्दग्रहाभिधाय ॥ ५ ॥ स्नानं त्रिरात्रं निशि
चत्वरेषु कुर्यात्परं शान्तिपदैर्निवेद्य । गायत्रिपूताभिरथाद्भिरग्निं प्रज्वालयेद्वाऽऽ
हुतिभिश्च धीमान् ॥ ६ ॥ रक्षामतः प्रवक्ष्यामि बालानां पापनाशिनीम् ।
अहन्यहनि कर्तव्या याभिरद्भिरतन्द्रितैः ॥ ७ ॥ तपसां तेजसां चैव यशसां
चपुपां तथा । निधानं योऽव्ययो देवः स ते स्कन्दः प्रसीदतु ॥ ८ ॥ ग्रहसे-
नापतिर्देवो देवसेनापतिर्विभुः । देवसेनारिपुहरः पातु त्वां भगवान्गुहः ॥ ९ ॥
देवदेवस्य महतः पावकस्य च यः सुतः । गङ्गोमाकृतिकानां च स ते शर्म
प्रयच्छतु ॥ १० ॥ रक्तमाल्याम्बरधरो रक्तचन्दनभूषितः । रक्तदिव्यवपुर्देवः
पातु त्वां क्रौञ्चसूदनः ॥ ११ ॥ इति भावप्रकाशात् ॥

अथ स्कन्दापस्सारग्रहजुष्टस्य चिकित्सा बिल्वः शिरीषो गोलोमी
सुरसादिश्च यो गणः । परिषेके प्रयोक्तव्यः स्कन्दापस्सारशान्तये ॥ १ ॥
अथ सुरसादिर्गणो यथा—सुरसा श्वेतसुरसा पाठा फज्जी फणिज्जकः ।
सौगन्धिकं भूस्तृणकं राजिका श्वेतबर्बरी ॥ २ ॥ कट्फलं खरपुष्पा च कास-
मर्दश्च शलुकी । विडङ्गमथ निर्गुण्डी कर्णिकार उदुम्बरः ॥ ३ ॥ बला च
काकमाची च तथा च विपमुष्टिका ॥ ४ ॥ कफक्रिमिहरः ख्यातः सुरसादि-
रयं गणः ॥ अष्टमूत्रे विपकं च तैलमभ्यञ्जने हितम् ॥ ५ ॥ अथ मूत्रा-
ष्टकमाह—गोजाविमहिषाश्वानां खरोष्ट्रकरिणां तथा । मूत्राष्टकमिति ख्यातं
सर्वशास्त्रेषु संमतम् ॥ १ ॥ क्षीरिवृक्षकपायेण काकोल्यादिगणेन च । विप-
क्तव्यं घृतं पश्चाद्वातव्यं पयसा सह ॥ २ ॥ काकोल्यादिर्गणो यथा—
काकोली क्षीरकाकोली जीवको ऋषभमत्था । ऋद्धिर्बृद्धिस्तथा मेदा महामेदा
गुडूचिका ॥ १ ॥ मुद्गपर्णी मापपर्णी पन्नकं वंशरोचना । शृङ्गी प्रपौण्डरीकं
च जीवन्ती मधुयष्टिका ॥ २ ॥ द्राक्षा चेति गणो नाम्ना काकोल्यादिरुदी-
रितः । स्तन्यकृद् बृंहणो वृष्यः पित्तरक्तानिलापहः ॥ ३ ॥ उत्सादनं वचाहि-
ङ्गयुक्तमत्र प्रकीर्तितम् । गृध्रोल्कपुरीपाणि केशा हस्तिनखो घृतम् ॥ १ ॥
वृषभस्य च रोमाणि योज्यान्युद्धूपने सदा । अनन्ताकुक्कुटीबिम्भीमर्कटाश्चापि
धारयेत् ॥ २ ॥ पक्वान्यामानि मांसानि प्रसन्नं रुधिरं पयः । भूतौदनं निवे-
द्याथ स्कन्दापस्सारिणं वटे ॥ ३ ॥ चतुष्पथे कारयेच्च स्नानं तेन ततः पठेत् ।
स्कन्दापस्सारसंज्ञो यः स्कन्दस्य दयितः सखा । विशाखः स शिशोरस्य शि-
वायास्तु शुभाननः ॥ ४ ॥

अथ शकुनीग्रहजुष्टस्य चिकित्सामाह—शकुनीग्रहजुष्टस्य कार्यं वैद्येन जानता । वेतसाम्रकपित्थानां काथेन परिपेचनम् ॥ १ ॥ ह्रीबेरमधुको-
शीरसारिवोत्पलपन्नकैः । लोध्रप्रियंगुमञ्जिष्ठागैरिकैः प्रदिहेच्छिशुम् ॥ २ ॥
स्कन्दप्रहोक्तधूपाश्च हिता अत्र भवन्ति हि । स्कन्दापसारशमनं घृतमत्रापि
पूजितम् ॥ ३ ॥ शतावरीमृगेर्वारुणागदन्तीनिदिग्धिकाः । लक्ष्मणां सहदेवीं
च बृहतीं चापि धारयेत् ॥ ४ ॥ तिलतण्डुलकं माला हरितालं मनःशिला ।
बलिरेषां करञ्जे तु निवेद्यो नियतात्मना ॥ ५ ॥ निकुम्भोक्तेन विधिना स्नाप-
येत्तं ततः पठेत् । अन्तरिक्षचरा देवी सर्वालंकारभूषिता । अयोमुखी सूक्ष्म-
तुण्डा शकुनी ते प्रसीदतु ॥ ६ ॥ दुर्दर्शना महाकाया पिङ्गाक्षी भैरवस्वरा ।
लम्बोदरी शङ्खकर्णी शकुनी ते प्रसीदतु ॥ ७ ॥

अथ रेवतीग्रहजुष्टस्य चिकित्सामाह—अश्वगन्धाऽजशृङ्गी च सारि-
वाऽथ पुनर्नवा । सहा विदारी ह्येतासां काथेन परिपेचनम् ॥ १ ॥ तैलम-
भ्यञ्जने कार्यं कुष्ठे सर्जरसे तथा । पलंकपाया नलदे तथा गौरकदम्बके ॥ २ ॥
धवाश्वकर्णककुभशङ्खकीतिन्दुकेषु च । काकोल्यादिगणे वाऽपि सिद्धं सर्पिः
पिबेच्छिशुः ॥ ३ ॥ कुलिथाः शङ्खचूर्णं च प्रदेहः पूर्वगन्धिकः । गृध्रोल्क-
पुरीषाणि यवान्यवफलो घृतम् ॥ ४ ॥ सन्ध्ययोरुभयोः कार्यमेतदुद्धूपनं शिशोः ।
शुक्ला सुमनसो लाजाः पयः शाल्योदनं दधि ॥ ५ ॥ बलिर्निवेद्यो गोतीर्थे
रेवत्यै प्रयतात्मना । स्नानं धात्रीकुमाराभ्यां संगमे कारयेद्भिषक् ॥ ६ ॥ ना-
नाशस्त्रधरा देवी चित्रमाल्यानुलेपना । चलत्कुण्डलिनी श्यामा रेवती ते
प्रसीदतु ॥ ७ ॥ उपासते यां सततं देव्यो विविधभूषणाः । लम्बा कराला वि-
नता तथैव बहुपुत्रिका ॥ रेवती शुष्कनासा च तुभ्यं देवी प्रसीदतु ॥ ८ ॥

अथ पूतनाग्रहजुष्टस्य चिकित्सामाह—कपोतवङ्गा स्योनाको वरुणः
पारिभद्रकः । आस्फोता चैव योज्याः स्युर्बालानां परिपेचने ॥ १ ॥ नवा पय-
स्या गोलोमी हरितालं मनःशिला । कुष्ठं सर्जरसश्चैव तैलार्थे कल्क इष्यते
॥ २ ॥ हितं घृतं तुगाक्षीर्या संसिद्धं मधुनाऽपि च । कुष्ठतालीसखदिराः स्य-
न्दनोऽर्जुन एव च ॥ ३ ॥ पनसः ककुभश्चापि मज्जानो बदरस्य च । कुक्कुटा-
स्थि घृतं चापि धूपनं सह सर्पपैः ॥ ४ ॥ काकादर्नीं चित्रफलां बिम्बीं गुञ्जां
च धारयेत् । मत्स्यौदनं बलिं दद्यात्कृशरां पललं तथा ॥ ५ ॥ शरावसंपुटे
कृत्वा तस्यै शून्ये गृहे भिषक् । उत्सृष्टान्नाभिपित्तस्य शिशोः स्नपनमिष्यते
॥ ६ ॥ कुष्ठतालीसखदिरं चन्दनं स्यन्दनं तथा । देवदारु वचा हिङ्गु कुष्ठं
गिरिकदम्बकः । एला हरेणवश्चापि योज्या उद्धूपने सदा ॥ ७ ॥ मलिनाम्ब-
रसंवीता मलिना रुक्षमूर्धजा । शून्यागाराश्रया देवी दारकं पातु पूतना ॥ ८ ॥

अथ गन्धपूतनाग्रहजुष्टस्य चिकित्सा—तिक्तद्रुमाणां पत्रेषु काथः
कार्योऽभिपेचने ॥ १ ॥ अथ तिक्तद्रुमानाह—विल्वः पटोलः क्षुद्रा च

गुडूची वासकस्तथा । विसर्पकुष्ठनुत्ख्यातो गणोऽयं पञ्चतित्तकः ॥ १ ॥ पिप्प-
ली पिप्पलीमूलं वर्गो मधुरकोऽपि च । शालिपर्णीवृहत्यौ च घृतार्थे सममा-
हरेत् ॥ २ ॥ सर्वगन्धैः प्रदेहश्च गात्रे चाक्ष्णोश्च शीतलैः । पुरीषं कौक्कुटं
केशाश्चर्म सर्पभवं तथा ॥ ३ ॥ जीर्णं च वीक्ष्याधोवासो धूपनायोपकल्पयेत् ।
कुक्कुटीं मर्कटीं बिम्बीमनन्तां चापि धारयेत् ॥ ४ ॥ मांसमन्नं तथा पक्कं
शोणितं च चतुष्पथे । निवेद्यमन्तश्च गृहे शिशोः स्नपनमिष्यते ॥ ५ ॥ क-
राला पिङ्गला मुण्डा कापायाम्बरसंवृता । देवी बालमिमं प्रीता रक्षताद्ग-
न्धपूतना ॥ ६ ॥

अथ शीतपूतनाग्रहजुष्टस्य चिकित्सामाह—गोमूत्रं वस्तमूत्रं च
मुस्ताममरदारु च । कुष्ठं च सर्वगन्धांश्च तैलार्थमवचारयेत् ॥ १ ॥ रोहिणी-
निम्बखदिरपलाशकुकुभत्वचः । निष्काथ्य तस्मिन्निष्काथे सक्षीरे विपचेद्घृ-
तम् ॥ २ ॥ गृध्रोलकपुरीपाणि वस्तगन्धामहित्वचम् । निम्बपत्राणि च तथा
धूपनार्थं समाहरेत् ॥ ३ ॥ धारयेदपि गुञ्जां च बलां काकादनीं तथा । नद्यां
मुद्गौदनैश्चापि तर्पयेच्छीतपूतनाम् ॥ ४ ॥ जलाशयान्ते बालस्य स्नपनं चोप-
दिश्यते । देव्यै देयश्चोपहारो वारुणी रुधिरं तथा ॥ ५ ॥ मुद्गौदनाशिनी
देवी सुराशोणितपायिनी । जलाशयरता नित्यं पातु त्वां शीतपूतना ॥ ६ ॥

अथ मुखमण्डनिकाग्रहजुष्टस्य चिकित्सामाह—कपित्थबिल्वतर्का-
रीवासागन्धर्वहस्तकाः । कुबेराक्षी च योज्यास्तु बालानां परिपेचने ॥ १ ॥
स्वरसैर्भृङ्गवृक्षाणां तथैव हयगन्धया । तैलं वचां च संयोज्य पचेद्भ्यञ्जने
शिशोः ॥ २ ॥ वचा सर्जरसं कुष्ठं सर्पिश्रोद्धूपने हितम् । वर्णकं चूर्णकं माल्य-
मञ्जनं पारदं तथा ॥ ३ ॥ मनःशिलां चोपहरेद्गोष्ठमध्ये बलिं ततः । पायसं
सपुरोडाशं तद्व्यर्थमुपाहरेत् । मन्त्रपूताभिरङ्गिश्च तत्रैव स्नपनं हितम् ॥ ४ ॥
जलाभिमन्त्रणमन्त्रमाह—अलंकृता कामवती सुभगा कामरूपिणी । गोष्ठ-
मध्यालयरता पातु त्वां मुखमण्डिका ॥ १ ॥

अथ नैगमेयग्रहजुष्टस्य चिकित्सामाह—विल्वाग्निमन्थपूतीकैः कार्यं
स्यात्परिपेचनम् । प्रियंगुसरलानन्ताशतपुष्पाकुटनटैः ॥ १ ॥ पचेत्तैलं सगो-
मूत्रं दधिमस्त्वल्काज्जिकैः । वचां वयस्थां जटिलां गोलोमीं चापि धारयेत्
॥ २ ॥ उत्सादनं हितं चात्र स्कन्दापस्सारनाशनम् । कमठोलकगृध्राणां पुरी-
पाणि पितृग्रहे ॥ ३ ॥ धूपः सुप्ते जने कार्यो बालस्य हितमिच्छता । तिलत-
ण्डुलकं माल्यं भक्ष्यांश्च विविधानपि ॥ ४ ॥ कौमारभृत्यमेपाय षष्ठमूले
निवेदयेत् । अधस्तात्क्षीरवृक्षस्य स्नपनं चोपदिश्यते ॥ ५ ॥ अजाननश्चल-
न्विभ्रूः कामरूपी महायशः । बालं पालयिता देवो नैगमेयोऽभिरक्षतु ॥ ६ ॥
इति ग्रहग्रस्तबालरोगाणां चिकित्सा ॥

अथ ग्रन्थान्तरे उत्फुल्लिकालक्षणमाह—आध्मानवातसंफुल्लो दक्ष-

कुक्षिः शिशोर्भवेत् । उत्फुल्लिका सा विख्याता श्वासश्चयथुसंकुला ॥ १ ॥
अथैतस्य चिकित्सामाह—निःसारयेज्जलौकैर्भी रक्तं च जठरात्तदा । कर्को-
टनागरामेघकङ्कोलातिविषाभवम् ॥ १ ॥ चूर्णं दुग्धेन संमिश्रं पाययेन्मातरं
भिषक् । धात्रीं वा पाययेत्सद्यः क्षीरदोषनिवारणम् ॥ २ ॥ अग्निना स्वेदये-
द्वाऽपि दाहयेच्च शलाकया । जठरे बिन्दुकाकारं पृष्ठभागे यथा ध्रुवम् ॥ ३ ॥
बिल्वमूलकं नीरदो वृकी त्रैफलं तथा सिंहिकाद्वयम् । गौडमिश्रितं काथितं
समं पाययेच्छिशुं फुल्लिकापहम् ॥ ४ ॥ पिप्पली ग्रन्थिकं विश्वा त्रायमाणा
च दार्विका । पथ्येभपिप्पली भार्गी लवङ्गं टङ्गणस्तथा ॥ ५ ॥ कुमारी बाल-
पथ्ये च सैन्धवस्त्वाजवारिणा । घर्पितं पाययेत्प्रातर्द्विटङ्गं फुल्लिकापहम् ॥ ६ ॥
इति वैद्यविलासात् ॥

अथ पथ्यापथ्यम्—यत्पथ्यं यदपथ्यं च नृणामुक्तं ज्वरादिषु । तत्तद्वि-
धेयमौचित्याद्वालानां तेषु जानता ॥ १ ॥ पूर्वं पथ्यमपथ्यं च मन्दाग्नौ यत्प्रकीर्ति-
तम् । औचित्याद्योजयेज्जाते बालानां पारिगर्भिके ॥ २ ॥ आगन्तून्मादवाता-
नां पथ्यापथ्यं यदीरितम् । औचित्याद्योजयेत्तत्र बालेषु ग्रहरोगिषु ॥ ३ ॥
इति पथ्यापथ्यविधिः ॥

इति बालरोगाधिकारः ॥

अथ विषाधिकारः ।

तत्र विषस्य द्वैविध्यमाह—स्थावरं जङ्गमं चैव द्विविधं विषमुच्यते ।
दशाधिष्ठानमाद्यं तु द्वितीयं षोडशाश्रयम् ॥ १ ॥ अथ स्थावरविषस्य द-
शाश्रयानाह—मूलं पत्रं फलं पुष्पं त्वक्क्षीरं सार एव च । निर्यासो धातवः
कन्दः स्थावरस्याऽऽश्रया दश ॥ १ ॥ तद्यथा—मूलविषं करवीरादि । पत्र-
विषं विषपत्रिकादि । फलविषं कर्कोटकादि । पुष्पविषं वेत्रादि । त्व-
क्क्षीरनि-
र्यासविषाणि कर्मभादीनि । क्षीरविषं सुह्यादि । धातुविषं हरतालादि । क-
न्दविषं वत्सनाभसक्तुकादि ॥ अथ जङ्गमविषस्य षोडशाऽऽश्रयानाह—
दृष्टिनिःश्वासदंष्ट्राश्च नखमूत्रमलानि च । शुक्रं लाला स्पर्शो मुखसदंशश्च विश-
र्धितम् ॥ गुदास्थिपित्तशूकादि दश षड्जङ्गमाश्रयाः ॥ १ ॥ तथा हि—दृष्टि-
निःश्वासविषा दिव्याः सर्पास्तक्षकादयः । दंष्ट्राविषा भौमाः सर्पाः । नखविषा
मार्जारमकरव्याघ्रादयः, ते दंष्ट्राविषा अपि । मूत्रपुरीपविषा गृहगोधिका-
दयः शुक्रविषाः सर्पलालनादयो मूषिकाः । लालाविषा वरव्युच्चटीलिङ्गा-
दयः । स्पर्शविषा लूतादयः । मुखसदंशविषा मक्षिकादयः । विशर्धितगुदवा-
तविषाश्वित्रशीर्षादयः । विशर्धितं नाम पायुकृतकुत्सितशब्दः । अस्थिविषाः
सर्पादयः । पित्तविषा नकुलमत्स्यादयः । शूकविषा वृश्चिकभ्रमरादयः । एतेषां
च सुश्रुते कल्पस्थाने विस्तारो द्रष्टव्यः । अथ स्थावरजङ्गमविषाणां सा-
मान्यलक्षणान्याह—स्थावरं तु ज्वरं हिक्कां दन्तहर्षं गलग्रहम् । फेनच्छर्ध-

रुचिश्चासं मूर्च्छां च कुरुते विषम् ॥ १ ॥ निद्रां तन्द्रां कुमं दाहं सकम्पं रोम-
हर्षणम् । शोफं चैवातिसारं च कुरुते जङ्गमं विषम् ॥ २ ॥ अथावनिपतेर-
न्यस्य वाऽऽज्ञादौ निभृतेन परिकर्मिणो विषमवचारयन्ति तेषां विषदातृणां
लक्षणमाह—इङ्गितज्ञो मनुष्याणां वाक्चेष्टामुखवैकृतैः । जानीयाद्विषदाता-
रमेतैर्लिङ्गैश्च बुद्धिमान् ॥ १ ॥ न ददात्युत्तरं पृष्टो विवक्षुर्मोहमेति च । अ-
पार्थं बहु संकीर्णं भापते मूढवत्तदा ॥ २ ॥ अङ्गुलीः स्फोटयेदुर्वीं विलिखेत्प्र-
हसेदपि । वेपथुश्चास्य भवति त्रस्तश्चान्योन्यमीक्षते ॥ ३ ॥ विवर्णवक्त्रोऽध्यामस्तु
नखैः किञ्चिच्छिनत्त्यपि । वर्तते विपरीतं च विषदाता विचेतनः ॥ ४ ॥ आ-
लभेतासकृद्दीनः करणे च शिरोरुहान् । निर्यियासुरपद्वारैर्वीक्षते च पुनः पुनः
॥ ५ ॥ अथ स्थावरविषस्य दशाश्रयाणां प्रत्येकं लक्षणान्याह—उद्दे-
ष्टनं मूलविषैः प्रलापो मोह एव च । जृम्भणं वेपनं श्वासो ज्ञेयं पत्रविषेण च
॥ १ ॥ मुष्कशोथः फलविषैर्दाहोऽन्नद्वेष एव च । भवेत्पुष्पविषैश्छर्दिराध्मानं
श्वास एव च ॥ २ ॥ त्वक्सारनिर्यासविषैरुपयुक्तैर्भवन्ति हि । आस्यदौर्गन्ध्यपारुष्य-
शिरोरुक्कफसंस्त्रवाः ॥ ३ ॥ फेनागमः क्षीरविषैर्विद्भेदो गुरुजिह्वता । हृत्पी-
डनं धातुविषैर्मूर्च्छां दाहश्च तालुनि । प्रायेण कालघातीनि विषाण्येतानि नि-
र्दिशेत् ॥ ४ ॥ अथ कन्दविषस्य कार्यमाह—कन्दजान्युग्रवीर्याणि यान्यु-
क्तानि त्रयोदश । सर्वाण्येतानि कुशलैर्ज्ञेयानि दशभिर्गुणैः ॥ १ ॥ स्थावरं ज-
ङ्गमं वाऽपि कृत्रिमं चापि यद्विषम् । सद्यो निहन्ति तत्सर्वगुणैश्च दशभिर्यु-
तम् ॥ १ ॥ अथ तान्दश गुणानाह—रूक्षमुष्णं तथा तीक्ष्णं सूक्ष्ममाशु
व्यवायि च । विकाशि विशदं चापि लघ्वपाकि च ते दश ॥ १ ॥ अथ तै-
र्गुणैर्विषस्य कार्यमाह—तद्रौक्ष्यात्कोपयेद्वायुमौष्ण्यात्पित्तं सशोणितम् ।
तैक्षण्यान्मतिं मोहयति मर्मबन्धांश्छिनत्ति हि ॥ २ ॥ शरीरावयवान्सौक्ष्म्या-
त्प्रविशेद्विकरोति च । आशुत्वादाशु तद्धन्ति व्यवायात्प्रकृतिं हरेत् ॥ ३ ॥
विकाशित्वात्क्षपयति दोषान्धातून्मलानपि । अतिरिच्येत वैशद्यादुश्चिकित्स्यं च
लाघवात् । दुर्जरं चाविपाकित्वात्तस्मात्क्लेशयते चिरम् ॥ ४ ॥ इति भावप्र-
काशात् ॥ अथ विपलितशस्त्रहतस्य लक्षणमाह—सद्यः पाकं याति
यस्य क्षतं तत्स्त्रवेदं पच्यते चाप्यभीक्षणम् । कृष्णीभूतं क्लिन्नमत्यर्थं पूति क्ष-
तान्मांसं शीर्यते यस्य चापि ॥ १ ॥ तृष्णा मूर्च्छा ज्वरदाहौ च यस्य दिग्धा-
विद्धं तं मनुष्यं व्यवसेत् । लिङ्गान्येतान्येव कुर्यादभिषेदं च क्ष्वेदो वा व्रणे
यस्य चापि ॥ २ ॥ इति स्थावरादिविषम् ॥ अथ जङ्गमविषाणां कार्या-
ण्याह—तत्र जङ्गमेषु तीक्ष्णतरत्वेन सर्पानाह—वातपित्तकफात्मानो भो-
गिमण्डलिराजिलाः । यथाक्रमं समाख्याता व्यन्तरा द्वंद्वरूपिणः ॥ १ ॥ अथ
भोगिप्रभृतिभिः कृतदंशेषु वातादीनां लिङ्गमाह—दंशो भोगिकृतः कृष्णः
सर्ववातविकारकृत् । पीतो मण्डलिजः शोथो मृदुः पित्तविकारवान् ॥ १ ॥

राजिलोत्थोभवेदंशः स्थिरशोथश्च पिच्छिलः । पाण्डुः स्निग्धोऽतिसान्द्रासृक्सर्वश्ले-
ष्मविकारकृत् ॥ २ ॥ अथ देशविशेषे च कालविशेषे दृष्ट्यासाध्यत्वमाह—
अश्वत्थदेवायतनश्मशानवल्मीकसंध्यासु चतुष्पथेषु । याम्ये च पिण्ड्ये परिवर्ज-
नीया ऋक्षे नरा मर्मसु ये च दृष्टाः ॥ १ ॥ दर्वीकराणां विपमाशु हन्ति स-
र्वाणि चोष्णे द्विगुणी भवन्ति ॥ २ ॥ दर्वीकरलक्षणमाह—रथाङ्गलाङ्गल-
च्छत्रस्वस्तिकाङ्कुशधारिणः । ज्ञेया दर्वीकराः सर्पाः फणिनः शीघ्रगामिनः ॥ १ ॥
तथाऽपरेषु विपमाशु मारकं भवति तानाह—अजीर्णपित्तातपपीडितेषु
बालेषु वृद्धेषु बुभुक्षितेषु । क्षीणे क्षते मेहिनि कुष्ठजुष्टे रूक्षेऽबले गर्भवतीषु
चापि ॥ १ ॥ शस्त्रक्षते यस्य न रक्तमग्नि राज्यो लताभिश्च न संभवन्ति ।
शीताभिरद्भिश्च न रोमहर्षो विपाभिभूतं परिवर्जयेत्तम् ॥ २ ॥ जिह्वं मुखं
यस्य च केशशातो नासावसादश्च सकण्ठभङ्गः । कृष्णश्च रक्तः श्वयथुश्च देशे
हन्वोः स्थिरत्वं च स वर्जनीयः ॥ ३ ॥ अपरं च—वर्तिर्धना यस्य निरेति
वक्त्राद्रक्तं स्रवेदूर्ध्वमधश्च यस्य । दंष्ट्रानिपातांश्चतुरश्च पश्येद्यस्यापि वैद्यः प-
रिवर्जयेत्तम् ॥ ४ ॥ उन्मत्तमत्यर्थमुपद्रुतं वा हीनस्वरं वाऽप्यथवा विवर्णम् ।
सारिष्टमत्यर्थमवेगिनं च त्यजेन्नरं तत्र न कर्म कुर्यात् ॥ ५ ॥ इति सर्पादिवि-
पम् ॥ अथ स्थावरजङ्गमविपमेव जीर्णत्वादिभिः कारणैर्दूषीविषसंज्ञां लभ-
ते तदाह—जीर्णं विपन्नौपधिभिर्हतं वा दावाग्निवातातपशोपितं वा । स्वभा-
वतो वा गुणविप्रहीनं विपं हि दूषीविपतामुपैति ॥ १ ॥ अथ दूषीविपस्य
कार्यमाह—वीर्याल्पभावान्न निपातयेत्तत्कफान्वितं वर्षगणानुबन्धि । तेना-
र्दितो भिन्नपुरीषवर्णो विगन्धवैरस्ययुतः पिपासी ॥ १ ॥ मूर्च्छाभ्रमं गद्गदवा-
ग्वमिश्च विचेष्टमानो रतिमामुयाद्वा ॥ २ ॥ अथ स्थानविशेषस्थिते दूषीविपे
लिङ्गविशेषमाह—आमाशयस्थे कफवातरोगी पक्काशयस्थेऽनिलपित्तरोगी ।
भवेत्समुद्धस्तशिरोरुहाङ्गो विलूनपक्षस्तु यथा विहङ्गः ॥ १ ॥ अथ तस्य र-
सादिधातुगतस्य लिङ्गमाह—स्थितं रसादिष्वथ तद्यथोक्तान्करोति धातु-
प्रभवान्विकारान् । कोपं च शीतानिलदुर्दिनेषु यात्याशु पूर्वं शृणु तस्य रूपम्
॥ १ ॥ अथ पूर्वरूपमाह—निद्रा गुरुत्वं च विजृम्भणं च विस्लेपहर्षावथ
वाऽङ्गमर्दः । ततः करोत्यन्नमदाविपाकावरोचकं मण्डलकोटजन्म । मांसक्षयं
पाणिपदाक्षिशोथं मूर्च्छां तथा छर्दिमथातिसारम् ॥ १ ॥ दूषीविपं श्वासतृपा-
ज्वरांश्च कुर्यात्प्रवृद्धिं जठरस्य चापि ॥ १ ॥ अथ दूषीभेदेन विकारभेद-
माह—उन्मादमन्यजनयेत्तथाऽन्यदानाहमन्यत्क्षपयेच्च शुक्रम् । गाद्वद्यमन्य-
जनयेच्च कुष्ठं तांस्तान्विकारांश्च बहुप्रकारान् ॥ १ ॥ अथ दूषीविपस्य नि-
रुक्तिमाह—दूषितं देशकालान्नदिवास्वापैरभीक्षणशः । यस्मात्संदूषयेद्वातं-
स्तस्माद्दूषीविपं स्मृतम् ॥ १ ॥ अथ दूषीविपस्य साध्यत्वादिकमाह—
साध्यमात्मवतः सद्यो याप्यं संवत्सरोपितम् । दूषीविपमसाध्यं स्यात्क्षीणस्या-

हितसेविनः ॥ १ ॥ अथ कृत्रिमं विपं द्विविधम्—एकं सविपं दूषीविपसं-
ज्ञम् । अपरमविपं तदेव गरसंज्ञम् । तथा च काश्यपसंहितायाम्—संयो-
गजं च द्विविधं द्वितीयं विपमुच्यते । दूषीविपं तु सविपमविपं गर उच्यते
॥ १ ॥ तत्र दूषीविपमभिधाय गरं दर्शयितुमाह—सौभाग्यार्थाः स्त्रियः
स्वेदरजोनानाङ्गजान्मलान् । शत्रुप्रयुक्तांश्च गरान्प्रयच्छन्त्यन्नमिश्रितान् ॥ १ ॥
अथ गरकार्यमाह—तैः स्यात्पाण्डुः कृशोऽल्पाग्निर्गरश्चास्योपजायते । मर्म-
ग्रधमनाध्मानं हस्तयोः शोथसंभवः ॥ १ ॥ जठरं ग्रहणीरोगो यक्ष्मा गुल्मः
क्षयो ज्वरः । एवंविधस्य चान्यस्य व्याधेरुल्लिङ्गं च जायते ॥ १ ॥ इति दूषी-
विपादिनिदानम् ॥ अथ लूतानां जन्तुविशेषाणामुत्पत्तिनिरुक्तिसंख्यादि
चाऽह—यस्माल्लूनं तृणं प्राप्ता मुनेः प्रस्वेदविन्दवः । तेभ्यो जातास्ततो लूता
इति ख्यातास्तु षोडश ॥ १ ॥ अत्र सुश्रुतः—विश्वामित्रो नृपवरः कदाचि-
द्विपसत्तमः । वसिष्ठं कोपयामास गत्वाऽऽश्रमपदं किल ॥ २ ॥ कुपितस्य मु-
नेस्तस्य ललाटात्स्वेदविन्दवः । अपतन्दर्शनादेव ह्यधस्तात्तीव्रवर्चसः ॥ ३ ॥
लूने तृणे महर्षेस्तु धेन्वर्थं संभृतेऽपि च । ततो जातास्त्विमा घोरा नानारू-
पा महाविपाः ॥ ४ ॥ तासामष्टौ कष्टसाध्या वर्ज्या स्तावत्य एव हि ॥ ५ ॥
तत्र त्रिमण्डलाप्रभृतयः कष्टसाध्याः । सौवर्णिकाप्रभृतयोऽष्टावसाध्याः । अथ
तासां सामान्यानां दंशलक्षणमाह—ताभिर्दष्टे दंशकोथः प्रवृत्तिः क्षत-
जस्य च । ज्वरो दाहोऽतिसारश्च गदाः स्युश्च त्रिदोषजाः ॥ १ ॥ पिटिका वि-
विविधाकारा मण्डलानि महान्ति च । शोथा महान्तो मृदवो रक्ताः श्यावा-
श्चलास्तथा । सामान्यं सर्वलूतानामेतदंशस्य लक्षणम् ॥ २ ॥ अथ त्रिमण्ड-
लादयोऽष्टौ दूषीविपास्तासां लक्षणमाह—दंशमध्ये तु यत्कृष्णं श्यावं वा
जालकावृतम् । दग्धाकृति भृशं पाकक्लेदशोथज्वरान्वितम् । दूषीविपाभिर्ल-
ताभिस्तद्वृष्टमिति निर्दिशेत् ॥ १ ॥ अथसौवर्णिकादयोऽष्टावसाध्याः प्रा-
णहरास्तासां लक्षणमाह—शोथाः श्वेताः सिता रक्ताः पीता वा पिटिका ज्वरः ।
प्राणान्तिको भवेद्दाहः श्वासो हिक्का शिरोग्रहः ॥ १ ॥ अथाऽऽखुदूषीवि-
पलक्षणमाह—आ दंशाच्छोणितं पाण्डु मण्डलानि ज्वरोऽरुचिः । रोमह-
र्षश्च दाहश्चाप्याखुदूषीविपादिते ॥ १ ॥ अथ प्राणहरमूपकविपकार्य-
माह—मूर्छाङ्गशोथवैवर्ण्यक्लेदशब्दाश्रुतिज्वराः । शिरोगुरुत्वं लालाऽसृक्छ-
र्दिश्वासाध्यमूपकात् ॥ १ ॥ अथ कृकलासदृष्टस्य लक्षणमाह—काण्ठ्यं
श्यावत्वमथ वा नानावर्णत्वमेव च । मोहोऽथ वर्चसो भेदो दृष्टस्य कृकला-
सकैः ॥ १ ॥ अथ वृश्चिकविपस्य लक्षणमाह—दहत्यग्निरिवाऽऽदौ तु
भिनत्तीवोर्ध्वमाशु च । वृश्चिकस्य विपं याति पश्चादंशेऽवतिष्ठति ॥ १ ॥
असाध्यवृश्चिकदृष्टस्य लक्षणमाह—दृष्टोऽसाध्यस्तु हृद्ग्राणरसनोपहतो
नरः । मांसैः पतद्भिरत्यर्थं वेदनातो जहात्यसून् ॥ १ ॥ अथ कणभदृष्टस्य

लक्षणमाह—विसर्पः श्वयथुः शूलं ज्वरश्छर्दिर्थापि वा । लक्षणं कणभेदष्टे दंशश्चैवावशीर्यते ॥ १ ॥ अथोच्चिटिङ्गदष्टस्य लक्षणमाह—हृष्टलोमोच्चिटिङ्गेन स्तब्धलिङ्गो मृशार्तिमान् । दष्टः शीतोदकेनेव सिक्तान्यङ्गानि मन्यते ॥ १ ॥ अथ सविपमण्डूकदष्टस्य लक्षणमाह—एकदंशार्दितः शूनः सरुजः पीतकः सतृद् । सनिद्रश्छर्दिमान्दष्टो मण्डूकैः सविपैर्भवेत् ॥ १ ॥ अथ मत्स्यविषस्यकार्यमाह—मत्स्यास्तु सविपाः कुर्युर्दाहं शोथं ज्वरं तथा ॥ १ ॥ अथ जलौकाविषकार्यमाह—कण्डूं शोथं ज्वरं कुर्युः सविपास्तु जलौकसः ॥ १ ॥ अथ गृहगोधिकाविषकार्यमाह—विदाहं श्वयथुं तोदं स्वेदं च गृहगोधिका ॥ १ ॥ अथ शतपदीविषलक्षणमाह—दंशे स्वेदं रुजां दाहं कुर्याच्छतपदीविषम् ॥ १ ॥ अथ मशकविषलक्षणमाह—कण्डूमान्मशकैरीपच्छोथः स्यान्मन्दवेदनः ॥ १ ॥ असाध्यमशकक्षतलक्षणमाह—असाध्यकीटसदृशमसाध्यमशकक्षतम् ॥ १ ॥ अथ मक्षिकादंशलक्षणमाह—सद्यः प्रक्ष्ताविणी श्यावा दाहमूर्छाज्वरान्विताऽपिटिकामक्षिकादंशे तासां तु स्थगिका सुहृत् ॥ १ ॥ अथ व्याघ्रादिप्रमुखाणां विषकार्यमाह—चतुष्पाद्भिर्द्विपाद्भिर्वा नखदन्तक्षतं च यत् । शूयते पच्यते वाऽपि स्रवति ज्वरयत्यपि ॥ १ ॥ अथ श्वानदष्टविषलक्षणमाह—प्रभ्रान्तस्तापयुक्तः श्वसनकसनवान्पीतदृक्पीतमूत्रः सोन्मादो बुक्कमानो दशति च मनुजं योऽतिकालक्रमेण । वर्षाकाले विषार्तः प्रभवति विकलोऽसाध्यतामाप्नुयाच्च प्रायो वातप्रधानोऽखिलमलकलितः सारमेयेण दष्टः ॥ १ ॥ अथ विप्रोज्झितः कीदृशो भवतीति दर्शयितुमाह—प्रसन्नदोषं प्रकृतिस्थधातुमन्नाभिकामं सममूत्रविद्रुम् । प्रसन्नवर्णेन्द्रियचित्तचेष्टं वैद्योधिगच्छेद्विषं मनुष्यम् ॥ १ ॥ इति जङ्गमविषाणि ॥

अथ विषाणां चिकित्सा ।

तत्राऽऽदौ स्थावरविषस्य चिकित्सा—स्थावरेण विषेणाऽऽर्तं नरं यत्नेन वामयेत् । वमनेन समं नास्ति यतस्तस्य चिकित्सितम् ॥ १ ॥ अथ वमनम्—तिक्तकोशातकीकाथं पिबेन्मध्वाज्यसंयुतम् । कटुकालाबुमूलं वा तत्पत्रं वा पिबेज्जलैः ॥ १ ॥ तत्क्षणाद्गमनाद्भवन्ति विषयोगाद्विमुच्यते । विषमलर्थमुष्णं च कथितं मुनिभिर्यतः ॥ २ ॥ अतः सर्वविषे प्रोक्तः परिपेकस्तु शीतलः । औष्ण्यात्तैक्षण्याद्विशेषेण विषं पित्तं प्रकोपयेत् ॥ ३ ॥ वमितं सेचयेत्तस्माच्छीतलेन जलेन च । पाययेन्मधुसर्पिर्भ्यां विषघ्नं भेषजं द्रुतम् ॥ ४ ॥ भोक्तुमम्लरसं दद्याच्चर्वयेन्मरिचानि च । यस्य यस्य च दोषस्य पश्येल्लिङ्गानि भूरिशः ॥ तस्य तस्यौषधैः कुर्याद्विपरीतगुणैः क्रियाम् ॥ ५ ॥ अथ लेपः—मूलत्वक्पत्रपुष्पाणि बीजं चेति शिरीषतः । गवां मूत्रेण संपिष्टं लेपाद्विपहरं परम् ॥ १ ॥ इति स्थावरविषचिकित्सा ॥

अथ जङ्गमविषचिकित्सा-तत्राऽऽदौ सर्पविषचिकित्सामाह-
 कार्याः सद्यः सर्पदष्टे मणिमन्त्रौपधक्रियाः । अचिन्त्यो हि प्रभावोऽस्ति मणि-
 मन्त्रौपधस्य यत् ॥ १ ॥ तण्डुलीयकमूलं तु पीतं तण्डुलवारिणा । तक्षकेणापि
 दष्टं हि निर्विषं कुरुते नरम् ॥ २ ॥ घृतमधुनवनीतं पिप्पलीशृङ्गबेरं मरिच-
 मपि च दद्यात्सप्तमं सैन्धवं च । यदि भवति सरोपं तक्षकेणापि दष्टोऽगद-
 मिह खलु पीत्वा निर्विषंस्तत्क्षणेन ॥ ३ ॥ मूलं तण्डुलवारिणा पिवति यः
 प्रत्यङ्गिरासंभवं निष्पिष्टं शुचिभद्रयोगदिवसे तस्याहिभीतिः कुतः । दर्पादेव
 फणी यदा दशति तं मोहान्वितो मूलतः स्थाने तत्र तदैव याति नियतं व-
 कत्रं यमस्याचिरात् ॥ ४ ॥ शिरीषपुष्पस्वरसे सप्ताहं मरिचं सितम् । भावि-
 तं सर्पदष्टानां पाने नस्याज्जने हितम् ॥ ५ ॥ दंशोपरि निबद्धीयात्तक्षणाच्च-
 तुरङ्गुलम् । क्षौमादिभिर्वेणिकया सिद्धैर्मन्त्रैश्च मन्त्रयेत् ॥ ६ ॥ अम्बुवत्सेतुब-
 न्धेन स्तब्धयते विषमं विषम् । नक्तमालफलव्योपबिल्वमूलनिशाद्वयम् ॥ ७ ॥
 सौरसं पुष्पमाजं वा मूत्रं बोधनमज्जनम् । वन्ध्या कर्कोटकीमूलं छागमूत्रेण
 भावितम् ॥ ८ ॥ नस्यं काञ्जिकसंपिष्टं विषोपहतचेतसः । श्वेतामूलं शमीमू-
 लमीश्वरीमूलमेव च ॥ ९ ॥ आदालिका तथा पाठा पृथग्दष्टकवान्धवाः ।
 कुलीकमूलनस्येन कालदष्टोऽपि जीवति ॥ १० ॥ वृन्दात् ॥ जलेन जाङ्गली-
 कन्दं नस्यं सर्पविषापहम् । वारिणा टङ्कणं पीतमथ वाऽर्कस्य मूलकम् ॥ ११ ॥
 अथ धूपः—कपोतविष्मत्संशिरोरुहाणि सगोविषाणं शिखिपिच्छकाग्रम् ।
 यवस्य धान्यस्य तुपाश्च बीजं कार्पासजं वाऽप्युपिताश्च मालाः ॥ १ ॥ इत्यौ-
 पधीभिः परिकल्पितोत्तमो धूपोऽगदः स्याद्भुजगैरमुक्तः । गृहे विधेयः कुश-
 लैरनेन नश्यन्ति सर्पाश्च तथाऽऽस्त्रवश्च ॥ २ ॥ इति धूपः ॥ सातलाफलफे-
 नेनाज्जनं कृत्वा सर्पविषं नश्यति । अथ मन्त्रः—ॐ ह्रः सर्पकुलाय स्वाहा,
 अनेन मन्त्रेण सप्तवारमभिमन्त्रितां मृत्तिकां गृहमध्ये क्षिपेत्सर्पाः पलायन्ते ।
 अथ कालवज्राशनिरसः—पारदं गन्धकं तुत्थं टङ्कणं रजनी समम् । देव-
 दाल्या द्रवैर्मर्द्यं दिनं शुष्कं तु भक्षयेत् । कालवज्राशनिर्नाम रसः सर्वविषा-
 पहः । नरमूत्रं पिबेच्चानु कालदष्टोऽपि जीवति ॥ २ ॥ इति सर्पविष-
 चिकित्सा ॥

अथ दूषीविषचिकित्सा—दूषीविषातं सुस्निग्धमूर्ध्वं चाऽधश्च शोधि-
 तम् । पाययेदगदं मुख्यमिमं दूषीविषापहम् ॥ १ ॥ पिप्पली धान्यकं मांसी
 लोध्रमेला सुवर्चिका । मरिचं वालकं चैला तथा कनकगौरिकम् । क्षौद्रयुक्तः
 कपायोऽयं दूषीविषमपोहति ॥ २ ॥ इति भावप्रकाशात् ॥

अथ कृत्रिमविषचिकित्सा—कृत्रिमं तु विषं ख्यातं पक्षान्मासाद्विबा-
 धते । आलस्यं कुरुते जाड्यं कासश्चासौ बलक्षयम् ॥ १ ॥ रक्तस्त्रावो ज्वरः
 शोकः पीतचक्षुश्च लक्षयेत् । शर्कराचूर्णसंयुक्तं चूर्णं ताप्यसुवर्णयोः ॥ २ ॥

लेहः प्रशमयत्युग्रं नानायोगकृतं विषम् । पुत्रजीवस्य मज्जां च निष्कमात्रां
गवां पयैः ॥ ३ ॥ पिष्ट्वा चोग्रं गरं हन्यान्नानायोगकृतं विषम् । गृहधूमं जलेः
पिष्ट्वा तण्डुलीमूलतुल्यकम् ॥ ४ ॥ कल्काच्चतुर्गुणं चाऽऽज्यं घृतात्क्षीरं चतु-
र्गुणम् । घृतशेषं पचेत्सर्वं पिबेत्सर्वगरापहम् ॥ ५ ॥ पारावतामिषसटीपुष्क-
राद्विशृतं हिमम् । गरतृष्णारुजाकासश्वासहिध्माज्वरापहम् ॥ ६ ॥ वृन्दात् ॥
अथ गरनाशनरसः—शुद्धसूतं मृतं स्वर्णं संशुद्धं हेममाक्षिकम् । त्रयाणां
गन्धकं तुल्यं मर्द्यात्कन्याद्रवैर्दिनम् ॥ १ ॥ तच्छुष्कं ससितक्षौद्रं माषैकं
लेहयेत्सदा । बद्धिमूलं शृतं क्षीरैरेनु स्याद्गरनाशनम् ॥ २ ॥ इति कृत्रिमवि-
षचिकित्सा ॥ अथ नखदन्तविषचिकित्सा—पिचुमन्दशमीवटकलकयुतं
कथितं जलमाशु विलोडनतः । नखदन्तविषाणि निहन्ति नृणां विषमाण्य-
खिलान्यपि सत्यमिदम् ॥ १ ॥ अथाऽऽखुविषचिकित्सा—आगारधूम-
मज्जिष्ठारजनीलवणोत्तमैः । लेपो जयत्याखुविषं कोशातक्यथ वा सिता ॥ १ ॥
उरगेण विनिर्मुक्तनिर्मोकधूमसेवनात् । पथ्याशी त्रिदिनं धूमो भवेदाखुविषा-
पहः ॥ २ ॥ इति सारसंग्रहात् । कुष्ठं वचामदनकोशवतीफलेन संयोजितं
तदिति चूर्णमिदं चतुर्णाम् । गोमूत्रपीतमखिलाखुविषं निहन्ति कोशातकी-
कथनमापिबतोऽथ वाऽपि ॥ ३ ॥ तुलसीरसेन गोदन्तशिलाभ्यां क्षुरेण प्र-
च्छिद्य लेपः कार्यो विषं नश्यति ॥ अथ वा चित्रकमूलचूर्णं तैले विषाच्य
मस्तके क्षुरेण प्रच्छिद्य शिरसि ब्रह्मरन्ध्रे मर्दनं कृत्वाऽऽखुविषं नश्यति ॥
चिञ्चाफलसमायुक्तं गृहधूमं पलाधकम् । पुराणाज्येन सप्ताहं लिहेदाखु-
विषं हरेत् ॥ १ ॥

अथ रसाः—रसं गन्धं विषं चैव त्र्यूपणं टङ्करोहिणी । पुनर्नवारसैर्म-
र्द्यं गोमूत्रे च द्विगुञ्जकम् ॥ १ ॥ पिबेदाखुविषातानां सर्वं हरति तद्विषम् ।
विषदष्टोद्भवानन्यान्हन्यादाखुविषान्तकः ॥ २ ॥ रसगन्धनिशाबन्धुगृहधू-
मशिरीषजम् । बीजं दिनकरक्षीरैर्मर्दयित्वा विलेपयेत् ॥ विशेषान्मूपकविषं
हन्यादन्यान्विषोद्भवान् ॥ ३ ॥ इत्याखुविषचिकित्सा ॥

अथ वृश्चिकविषचिकित्सा—जीरकस्य कृतः कल्को घृतसैन्धवसंयुतः ।
सुखोष्णो मधुना लेपो वृश्चिकस्य विषं हरेत् ॥ १ ॥ गन्धमाघ्राय मृदितं
सूर्यावर्तदलस्य तु । वृश्चिकेन नरो विद्धः क्षणाद्भवति निर्विषः ॥ २ ॥ इति
भावप्रकाशात् । यः कासमर्दपत्रं वदने निक्षिप्य कर्णफूत्कारम् । मनुजो
ददाति शीघ्रं जयति विषमाशु वृश्चिकानां सः ॥ १ ॥ वृन्दात् ॥ अजाक्षी-
रेण संपिष्टा शिरीषफलमिश्रिता । उपकुल्या विषं हन्ति वृश्चिकस्य प्रलेपतः
॥ १ ॥ कार्पासपत्रैः संपिष्टैराज्यलेपो विषापहः । वृश्चिकस्याथ वा वत्सनाग-
लेपः प्रशस्यते ॥ २ ॥ मनः शिलाकुष्ठकरञ्जबीजशिरीषकाश्मीरभैवः समांशैः ।
विनिर्मिताऽऽस्ये विधृता च लिप्ता संहारिणी वृश्चिकवैकृतस्य ॥ ३ ॥ मातुल-

ङ्गस्य मूलं तु रविवारे समुद्धरेत् । उत्तराभिमुखेनैव ह्रीमन्त्रोच्चारणात्स्पृशेत् ॥ ४ ॥ वामाङ्गे दक्षिणे दष्टे वामदष्टे च दक्षिणे । सप्तधा मार्जनेनैव विपं वृश्चिकजं हरेत् ॥ ५ ॥ श्वेतं पुनर्नवामूलं रविवारे समुद्धरेत् । कार्पासमूलं चर्वित्वा विपं वृश्चिकजं हरेत् ॥ ६ ॥ ग्राह्यं हंसपदीमूलं प्रातरादित्यवासरे । मुखैस्तन्निष्कृतिः कर्णे विपं वृश्चिकजं हरेत् ॥ ७ ॥ अथ मन्त्रविधिः—ॐ क्षः फट्स्वाहा । अनेन मन्त्रेणापो मार्जयेत् । अथ मन्त्रः— आदित्यरथवेगेन विष्णुवाणबलेन च । गरुडपक्षनिपातेन भूम्यां गच्छ महाविष ॥ १ ॥ इति मन्त्रः । पानीयपिष्टजेपालकल्कलेपेन सर्वथा । विपं वृश्चिकविद्वस्य भस्मी भवति तत्क्षणात् ॥ २ ॥ नवसागरहरिताले पिष्टे तोयेन लेपनादंशे । तत्क्षणमेव हि जयतो वृश्चिकविद्वस्य दुर्धरक्ष्वेडम् ॥ ३ ॥ उल्लीपापाणमादाय निम्बुनीरेण संयुतम् । दंशस्थाने लेपनं स्याद्विपं वृश्चिकजं हरेत् ॥ ४ ॥ इति वृश्चिकविपचिकित्सा ॥

अथ कीटजलौकादिविपचिकित्सा—कटभ्यर्जुनशैरीपशेलुक्षीरिद्रुमत्वचाम् । कपायकल्कचूर्णाः स्युः कीटलूताव्रणापहाः ॥ १ ॥ वृन्दात् ॥ वचा-हिङ्गुविडङ्गानि सैन्धवं गजपिप्पली । पाठाप्रतिविषाव्योपं कश्यपेन विनिर्मितम् ॥ २ ॥ दशाङ्गमगदं पीत्वा सर्वकीटविपं जयेत् । कीटदष्टक्रियाः सर्वाः समानाः स्युर्जलौकसाम् ॥ ३ ॥ अथ वरटीविपचिकित्सा—मरीचं नागरोपेतं सिन्धुसौवर्चलान्वितम् । फणिवल्लीरसैर्लेपाद्वन्ति तद्वरटीविपम् ॥ १ ॥ अथ लूताविपचिकित्सा—रजनीद्वयमज्जिष्ठापतङ्गगजकेशरैः । शीताम्बुपिष्टैरालेपः सद्यो लूताविषापहः ॥ १ ॥ गिरिकर्णीद्वयं शेलुः पाटला द्वे पुनर्नवे । कपित्थश्च शिरीषश्च लेपो लूताविषापहः ॥ २ ॥ अथ मण्डूकविपचिकित्सा—शिरीषबीजैः कुलिशद्रुमस्य क्षीरेण पिष्टैः कृतलेपनानाम् । विपं विनाशं व्रजति क्षणेन मण्डूकदंशप्रभवं नराणाम् ॥ १ ॥ अथ भृङ्गीमत्स्यविपचिकित्सा—कृष्णवेत्रस्य निष्काथे कल्को घृतविमिश्रितः । भृङ्गीमत्स्यविपं हन्ति धूमो वा बर्हिपक्षजः ॥ १ ॥ अथ शतपदीविषचिकित्सा—लेपः प्रदीपतैलस्य खर्जूरविपनाशनः । हरिद्राद्वयलेपो वा सगैरिकमनःशिलः ॥ १ ॥ अथ भ्रमरविपचिकित्सा—नागरं गृहकपोतपुरीषं बीजपूरकसो हरितालम् । सैन्धवं च विनिहन्ति विलेपादाशुभृङ्गजनितं विपमेतत् ॥ १ ॥ अथ पिपीलिकादिविपचिकित्सा—पिपीलिकाभिर्दष्टानां मक्षिकामशकैस्तथा । गोमूत्रेण वरालेपः कृष्णवल्मीकमृत्कृतः ॥ १ ॥ अथ मक्षिकापिटकाविपचिकित्सा—सोमवल्कोऽश्वकर्णश्च गोजिह्वा हंसपद्मपि । रजन्यौ गैरिकं लेपो मक्षिकापिटकापहः ॥ १ ॥ अथ श्वानविपचिकित्सा—काकोदुम्बरिका-मूलं धत्तूरफलसंयुतम् । पीतं तण्डुलतोयेन सारमेयविषापहम् ॥ १ ॥ पारस्करफलं सेव्यं क्रमवृद्धं दिने दिने । सारमेयविपं हन्ति मासेन न हि संश-

यः ॥ २ ॥ पिष्ट्वाऽपामार्गमूलं तु कपैकं मधुना लिहेत् । श्वदंष्ट्राजं विपं ह-
न्यात्कुमारीदलसैन्धवम् ॥ ३ ॥ दंशस्थाने बन्धयेत्तुत्रिदिनान्ते सुखावहम्
॥ ४ ॥ कस्तूरीबबूलपत्ररसो गोघृतेन पाने देयः शुनो विपं नश्यति । अथ
वा शतावरीमूलरसो गोदुग्धेन सह पाने देयः शुनो विपं नश्यति ॥ श्वान-
दंष्ट्राविपं हन्ति लेपात्कुटुविष्टया । गुडतैलार्कदुग्धं वा लेपाच्छ्वानविपं हरेत्
॥ ५ ॥ अथ रोगोन्मादितश्चानविपचिकित्सा—तैलं तिलानां पल-
लं गुडं च क्षीरं तथाऽऽर्कं सममेव पीतम् । आलर्कमुग्रं विपमाशु हन्ति
सद्यो भवं वायुरिवाभवृन्दम् ॥ १ ॥ इति श्वानविपचिकित्सा ॥ इति जङ्गम-
विपचिकित्सा ॥

अथ सामान्यविपचिकित्सा ।

सैन्धवं मरिचं तुल्यं निम्बबीजं समीकृतम् । मधुसर्पियुतं हन्ति विपं
स्थावरजङ्गमम् ॥ १ ॥ अगरधूमो महिषाक्षयुक्तः सवाजिगन्धानततण्डुलीयः ।
गोमूत्रपिष्टोऽप्यगदो निहन्ति विपाणि च स्थावरजङ्गमानि ॥ २ ॥ मयूरपि-
च्छेन च तण्डुलीयकं काकाण्डयुक्तं प्रपिबेदनल्पम् । विपाणि च स्थावरजङ्ग-
मानि सोपद्रवाण्यप्यचिरेण हन्ति ॥ ३ ॥ अथ प्राचेतसं चूर्णम्—ससप्त-
पर्णात्कुटजात्सनिम्बादब्दामयोशीरनतानि ताप्यम् । रोध्रं विदध्यान्नवमं न-
वाङ्गं प्राचेतसं चूर्णमुदाहरन्ति ॥ १ ॥ लोहेऽथ हैमे त्वथ राजते वा स्थितं सदा
सद्धानि भूपतीनाम् । क्षौद्रेण लीढं सचराचराणि विपाणि हन्याद्भुवि मानवा-
नाम् ॥ २ ॥ श्लेष्मातकत्वक्क्षवकं गुडूची नृपद्मत्वग्बृहतीद्वयं च । एषोऽगदः
सर्वविपाणि हन्यादास्तीकनाम्ना मुनिना प्रदिष्टः ॥ ३ ॥ कृकलासपदं यस्तु
सितवस्त्रेण वेष्टयेत् । बाहौ बद्ध्वा विपं हन्ति विपंभुक्त्वा न वाधते ॥ ४ ॥
यः पिबति पुष्यदिवसे जलपिष्टं सितपुनर्नवामूलम् । तत्संनिधौ न वर्षं
वृश्चिकभुजगाः प्रसर्पन्ति ॥ ५ ॥ मसूरं निम्बपत्राभ्यां पिबेन्मेपगते रवौ ।
अव्दमेकं न भीतिः स्याद्विपार्तस्य न संशयः ॥ ६ ॥

अथ गरुडाञ्जनम्—सूतं चूर्णमगारधूमममलं प्रत्येकगद्याणकं धत्तूरस्य
रसेन मर्दितमलं पश्चाच्छतं भासुरम् । जेपालं मरिचं चतुःशतयुतं वातारि-
बीजं लसद्युक्तं पष्टिसुखल्विदं दृढतरैर्जम्बीरनीरैर्वैरैः ॥ १ ॥ कुर्यान्मापवदा-
कृतिं च वटिकां छायासु शुष्कीकृतां रात्र्यन्धं ग्रहसर्पसंधिसकलं शीतज्वरं
दुर्धरम् । सन्नेत्राञ्जनमात्रकं च भुवने चाजीर्णदोषापहं नश्यन्ति प्रबलं महा-
गुणयुतं श्रीपूज्यपादोदितम् ॥ २ ॥ इति गरुडाञ्जनम् । अथ मृत्युच्छर्दि-
घृतम्—अभयां रोचनां कुष्ठमर्कपुष्पं तथोत्पलम् । नलवेतसमूलानि गरलं
सुरसां तथा ॥ १ ॥ सकलिङ्गांसमञ्जिष्ठामनन्तां च शतावरीम् । शृङ्गाटकं
समङ्गां च पद्मकेसरमित्यपि ॥ २ ॥ कल्कीकृत्य पचेत्सर्पिः पयो दद्याच्चतुर्गु-

णम् । सम्यक्पक्वेऽवतीर्णे च शीते तस्मिन्विनिक्षिपेत् ॥ ३ ॥ सर्पिस्तुल्यं भि-
पक्क्षौद्रं कृतरक्षं निधापयेत् । विपाणि हन्ति दुर्गाणि गरदोपकृतानि च ॥ ४ ॥
स्पर्शाद्वन्ति विपं सर्वं गैरुपहतत्वचम् । संयोगजं तमः कण्डूं मांससादं वि-
संज्ञताम् ॥ ५ ॥ नाशयेदङ्गनाभ्यङ्गपानबस्तिषु योजितम् । सर्पकीटाखुलता-
दिदृष्टानां विपहृत्परम् ॥ ६ ॥

अथ पथ्यापथ्यम्—शालयः पष्टिकाश्चैव कोरदृष्यप्रियंगवः । मुद्रा हरे-
णवसैलं सर्पिश्चापि नवं क्वचित् ॥ १ ॥ वार्ताकं कुलकं धात्री जीवन्ती तण्डु-
लीयकम् । भोजनार्थं विपार्तानां हितं पटुषु सन्धवम् ॥ २ ॥ विरुद्धाध्यश-
नक्रोधक्षुब्धयायासमैथुनम् । वर्जयेद्विषमुक्तोऽपि दिवा स्वप्नं विशेषतः ॥ ३ ॥

इति विपाधिकारः ॥

अथोत्तरखण्डः ।

तत्र वाजीकरणद्रव्यस्य लक्षणमाह—यद्रव्यं पुरुषं कुर्याद्वाजीवत्सुर-
तक्षमम् । तद्वाजीकरणमाख्यातं मुनिभिर्भिषजां वरैः ॥ १ ॥ अत्र प्रसङ्गा-
त्कैव्यलक्षणं संख्यां निदानं चाऽऽह—ह्रीबः स्यात्सुरताशक्तस्तद्भावः कै-
व्यमुच्यते । तच्च सप्तविधं प्रोक्तं निदानं तस्य कथ्यते ॥ १ ॥ तैस्तैर्भावैरह-
द्यैस्तु रिरंसोर्मनसि क्षते । ध्वजः पतत्यतो नृणां कैव्यं समुपजायते ॥ २ ॥
द्वेप्यस्त्रीसंप्रयोगाच्च कैव्यं तन्मानसं स्मृतम् । कटुकाम्लैः सलवणैरतिमात्रोप-
सेवितैः ॥ ३ ॥ पित्ताच्छुक्रक्षयो दृष्टः कैव्यं तस्मात्प्रजायते । अतिव्यवाय-
शीलो यो न च वाजीक्रियारतः ॥ ४ ॥ ध्वजभङ्गमवाप्नोति स शुक्रक्षयहेतुकः ।
महता मेढ्ररोगेण चतुर्थी ह्रीवता भवेत् ॥ ५ ॥ वीर्यवाहिशिराछेदान्मेहना-
नुव्रतिर्भवेत् । बलिनः क्षुब्धमनसो निरोधाद्ब्रह्मचर्यतः ॥ ६ ॥ पष्टं कैव्यं
स्मृतं तत्तु शुक्रस्तम्भनिमित्तकम् । जन्मप्रभृति यत्कैव्यं सहजं तद्वि सप्तमम्
॥ ७ ॥ अथासाध्यं कैव्यमाह—असाध्यं सहजं कैव्यं मर्मच्छेदाच्च यद्भ-
वेत् । साध्यानामवशिष्टानां कार्यो वाजीकरोविधिः ॥ १ ॥ अथ कैव्यस्य
चिकित्सा—कैव्यानामिह साध्यानां कार्यो हेतुविपर्ययः । मुख्यं चिकित्सितं
यस्मान्निदानपरिवर्जनम् ॥ १ ॥ अथ कैव्यस्य चिकित्सायां वाजीकरं वि-
धिमाह—नरो वाजीकरान्योगान्सम्यक्शुद्धो निरामयः । सप्तत्यन्तं प्रकुर्वति
वर्षादूर्ध्वं तु षोडशात् ॥ १ ॥ न चैव षोडशादूर्ध्वं सप्तत्याः परतो न च ।
आयुष्कामो नरः स्त्रीभिः संयोगं कर्तुमर्हति ॥ २ ॥ क्षयवृद्ध्युपदंशाद्या रो-
गाश्चातीव दुर्जयाः । अकालमरणं च स्याद्भजतस्त्रियमन्यथा ॥ ३ ॥ स्त्रीभजन-
विधिर्विस्तरतो रात्रिचर्यायां लिखितोऽस्ति तत्र द्रष्टव्यः । विलासिनामर्थवतां
रूपयौवनशालिनाम् । नराणां बहुभार्याणां विधिर्वाजीकरो हितः ॥ ४ ॥ स्थ-
विराणां रिरंसूनां स्त्रीणां बालभ्यमिच्छताम् । योपितप्रसङ्गात्क्षीणानां ह्रीबा-

नामल्परेतसाम् ॥ ५ ॥ हिता वाजीकरा योगाः प्रीत्यपत्यबलप्रदाः । एतेऽपि पुष्टदेहानां सेव्याः कालाद्यपेक्षया ॥ ६ ॥

अथ वाजीकराण्याह—भोजनानि विचित्राणि पानानि विविधानि च । वाचः श्रोत्राभिरामाश्च त्वचः स्पर्शसुखास्तथा ॥ १ ॥ यामिनी सेन्दुतिलका कामिनी नवयौवना । गीतं श्रोत्रमनोहारि ताम्बूलं मदिरा स्रजः ॥ २ ॥ गन्धा मनोज्ञा रूपाणि चित्राण्युपवनानि च । मनसश्चाप्रतीघातो वाजीकुर्वन्ति मानवम् ॥ ३ ॥ अथ पायसम्—गवां विरूढवत्सानां सिद्धं पयसि पायसम् । तथा गोधूमचूर्णं च सितामधुघृतान्वितम् । भुक्त्वा हृष्यति जीर्णोऽपि दशदारान्वजत्यपि ॥ १ ॥ अथ रसाला—दध्नोऽर्धाढकमीपदम्लमधुरं खण्डस्य चन्द्रद्युतेः प्रस्थं क्षौद्रपलं पलं च हविषः शुण्ठ्याश्चतुर्मापकान् । तद्वन्मापचतुष्टयं मरिचितः कर्पलवङ्गं तथा घृत्वा शुक्लपटे शनैः करतलेनोन्मथ्य विस्रावयेत् ॥ १ ॥ मृद्धान्डे मृगनाभिचन्दनरसस्पृष्टेऽगुरुद्वूपिते कर्पूरेण सुगन्धितं तदखिलं संलोढ्य संस्थापयेत् । स्वस्वार्थे मधुरेश्वरेण रचिता ह्येषा रसाला स्वयं भोक्तुं मन्मथदीपनी सुखकरी कान्तेव नित्यं प्रिया ॥ २ ॥ अथ शतावर्यादिचूर्णम्—शतावरीनागबलाविदारीत्रिकण्टकैरामलकीफलान्वितैः । विचूर्णितैः पञ्चभिरेकशः पृथक्प्रकल्पितैर्वा घृतमाक्षिकप्लुतैः ॥ १ ॥ इति प्रयोगाः पडिमे भिषग्वरैरुदीरिताः शर्करया समन्विताः । नृणां मदान्धप्रमदोपसर्पिणां प्रधानघातोरतिरेककारणम् ॥ २ ॥ अथ मुसल्यादि चूर्णम्—मुसलिकोकिलगोक्षुरचूर्णकं शशिविलोचनराममितं पचेत् । पयसि प्रातरिदं यदि कोष्णके सितया टङ्ककपट्टकया तु तत् ॥ १ ॥ त्रिगुणसप्तदिनं परिभक्ष्य च शतवया अपि काङ्क्षति कामिनीम् । किमिह चित्रमुदित्वरयौवनः शशिमुखीं शयनान्न जिहासति ॥ २ ॥ अथ वानरीगुटिका—बीजानि हि कपिकच्छोः कुडवमितानि स्वेदयेच्छनकैः । प्रस्थे गोभवदुग्धे दुग्धं यावद्भवेद्वाढम् ॥ १ ॥ त्वग्रहितानि च कृत्वा सूक्ष्मं संपेपयेत्तानि । पिष्टिकायाः सुवटिकाः कृत्वा गव्ये पचेदाज्ये ॥ २ ॥ द्विगुणितशर्करया ता वटिकाः संपक्वया लेप्याः । वटिका माक्षिकमध्ये मज्जनयोग्येऽखिलाः स्थाप्याः ॥ ३ ॥ पञ्चटङ्कमितास्तास्तु प्रातः सायं च भक्षयेत् । अनेन शीघ्रद्रावी यो यश्च स्यात्पतितध्वजः ॥ ४ ॥ सोऽपि प्राप्नोति सुरते सामर्थ्यमतिवाजिवत् । नानेन सदृशं किञ्चिद्भवं वाजीकरं परम् ॥ ५ ॥ इति वानरीगुटिका भावप्रकाशात् ॥ बस्ताण्डसिद्धे पयसि भावितानसकृत्तिलान् । यः खादेत्समुपागच्छेत्स्त्रीणां शतमपूर्ववत् ॥ १ ॥ पिप्पलीलवणोपेते बस्ताण्डे घृतसाधिते । कच्छपस्याथ वा खादेत्तु वाजीकरं भृशम् ॥ २ ॥ शतावरीगोक्षुरकाश्वगन्धापुनर्नवानागबला मुसल्या । घृतेन खण्डेन तु भक्षणीयाः क्षीणा नरा नागबला भवन्ति ॥ ३ ॥ विदारीकन्दचूर्णं तु घृतेन पयसा नरः । उदुम्बरसमं खादन्बृद्धोऽपि तरुणायते ॥ ४ ॥

सितामधुघृतं क्षीरं पलाण्डुरससंयुतम् । पिबेन्नरो भवेत्कामी वृद्धोऽपि तरु-
णायते ॥ ५ ॥ अथ गोक्षुरचूर्णम्—शमयति गोक्षुरचूर्णं छागक्षीरेण साधि-
तं समधु । भुक्तं क्षपयति पाण्ड्यं यज्जनितं कुप्रयोगेण ॥ १ ॥

अथामृतभल्लातकः—भल्लातकानां पवनोत्थितानां तरुयुतानां च
यदाढकं स्यात् । घृष्टेष्टिकाचूर्णकणैर्जलैश्च प्रक्षाल्य संशोष्य च मारु-
त्तेन ॥ १ ॥ शुष्काणि तानि द्विदलीकृतानि विपाचयेदप्सु चतुर्गुणासु ।
तत्पादशेषं पुनरेव शीतं क्षीरेण तुल्येन विपाचयेत्तत् ॥ २ ॥ तदर्धया शर्क-
रया विमिश्रय पश्चात्स्वजेनोन्मथनं विधाय । सन्ध्यूपणं त्रैफलचन्द्रमांसीत्रिवृच्च
वांशीखदिरामृतं च ॥ ३ ॥ सचन्दनाकलकणाकबाबं सदेवपुष्पं सुसलीद्वयं च ।
कङ्कोलमोचाह्वयदीप्ययुग्मं नतं समातङ्गकणा विदारी ॥ ४ ॥ जातीफलं सुस्त-
कजातिपत्री कुबेरजीरागरुसाब्धिशोपम् । मेदाद्वयं लोहरसेन्द्रवङ्गमभ्रं तथा
कुङ्कुमकं च कर्पम् ॥ ५ ॥ तत्सप्तरात्रादतिजातवीर्यं सुधारसादप्यधिकं वदन्ति ।
प्रातः प्रबुद्धः कृतदेवकार्यो मात्रां भजेत्सात्म्यशरीरयोग्याम् ॥ ६ ॥ न चानुपाने
परिहार्यमस्ति न चाऽऽतपे नाध्वनि मैथुने च । यथेष्टचेष्टो विचरेत्प्रयोगाक्षरो
भवेत्काञ्चनराशिगौरः ॥ ७ ॥ अनेन मेधानरसिंहवीर्यो दृढेन्द्रियो व्याधिगतः
सुबुद्धिः । दन्ता विशीर्णाः पुनरेव दिव्याः केशाश्च शुभ्राः पुनरेव कृष्णाः
॥ ८ ॥ नीलाञ्जनालिप्रतिमा भवन्ति त्वचो विशीर्णाः पुनरेव भव्याः । विशीर्ण-
कर्णाङ्गुलिनासिकोऽपि कृम्यर्दितो भिन्नगलोऽपि कुप्टी ॥ ९ ॥ शुष्कः पुनः
स्याद्गतमूलशाखस्तर्ह्यथा भाति नवाम्बुसिक्तः । बृहस्पतेरप्यधिको हि बुद्ध्या
ग्रन्थं विशालं च नयं करोति ॥ १० ॥ गृह्णाति सद्यो न च विस्मृतिं च
करोति कल्पायुरनल्पवीर्यम् । कुर्वन्निमं कल्पमनल्पबुद्धिर्जीवन्नरो वर्षशतं
सुखी स्यात् ॥ ११ ॥ इत्यमृतभल्लातकः ॥

अथ केशरपाकः—व्योषं चतुर्जातफलत्रिकं च लवङ्गकृष्णागुरुचन्दनं
च । इक्षूरबीजं करहाटकं च जातीफलं मर्कटिकाफलं च ॥ १ ॥ शाल्मत्य-
निर्यासवलाश्रगन्धगोक्षूरबीजं सुसली कृमिघ्नम् । समुद्रशोषं विपपञ्जरं च
पुष्पं सुजात्युद्भवकङ्कबीजम् ॥ २ ॥ सर्वं समं योज्य सुकुङ्कुमं च सुचूर्णितं
विंशतिभागयुक्तम् । कस्तूरिकापोडशभागचूर्णं खण्डं चतुर्भागयुतं विपक्वम्
॥ ३ ॥ वङ्गं रसेन्द्रं गगनं सुलोहं कान्तं हि ताम्रं रविभागयुक्तम् । दलानि
हेश्चो द्विशतानि दत्त्वा तथैव देयानि च राजतानि । एकत्र सर्वं विनिधाय
वैद्यो जयाष्टभागं विदधीत लेहम् ॥ ४ ॥ जातीफलप्रमाणेन भक्षयेत्प्रातरु-
त्थितः । वीर्यवृद्धिं करोत्येव सर्वव्याधिविनाशनः ॥ ५ ॥ शतं च रमते
स्त्रीणां कामतुल्यो भवेन्नरः । सर्वान्वातामयान्हन्ति प्रबृद्धं वातशोणितम्
॥ ६ ॥ अस्थिरोगं शिरोरोगं संधिरोगं च नाशयेत् । अस्य सेवनमात्रेण वृद्धो-

ऽपि तरुणायते ॥ ७ ॥ धन्यं यशस्करं सम्यगायुरारोग्यवर्धनम् । काश्मीर-
कावलेहोऽयं बलकान्तिविवर्धनः ॥ ८ ॥ इति केशरपाकः ॥

अथ रतिवृद्धिकरो मोदकः—गोक्षुरेक्षुरबीजानि वाजिगन्धा शतावरी ।
मुशली वानरीबीजं यष्टी नागबला बला ॥ १ ॥ एषां चूर्णं दुग्धसिद्धं गव्येना
ऽऽज्येन भर्जितम् । सितया मोदकं कृत्वा भक्ष्यं वाजीकरं परम् ॥ २ ॥ चूर्णा-
दष्टगुणं क्षीरं घृतं चूर्णसमं स्मृतम् । सर्वतो द्विगुणं खण्डं खादेदग्निबलं
यथा ॥ ३ ॥ वाजीकराणि भूरीणि संगृह्य रचितो यतः । तस्माद्बहुषु योगेषु
योगोऽयं प्रवरो मतः ॥ ४ ॥ अथ रतिवल्लभाख्यपूगपाकः—पूगं दक्षिण-
देशजं दशपलोन्मानं भृशं कर्तयेत्तच्छिन्नं जलयोगतो मृदुतरं संकुट्य चूर्णीकृत-
म् । तच्चूर्णं पटशोधितं वसुगुणे गोशुद्धदुग्धे पचेद्गव्याज्याक्षलिसंयुतंऽतिनि-
बिडे दद्यात्तुलाधीं सिताम् ॥ १ ॥ पकं तज्ज्वलनात्क्षितिं प्रति नयेत्तस्मिन्पुनः
प्रक्षिपेद्दद्यात्तत्तदुदीरयामि बहुला दृष्ट्वाऽऽदरात्संहिताः । एला नागबला बला
सचपला जातीफलं लिङ्गिता जातीपत्रकपत्रपत्रकयुगं तच्च त्वचा संयुतम् ॥ २ ॥
विश्वावीरणवारिवारिदवरा वांशी वरी वानरी द्राक्षा सेक्षुरगोक्षुराऽथ महती ख-
र्जूरिका क्षीरिका । धान्याकं सकसेरुकं समधुकं शृङ्गाटकं जीरकं पृथ्वीकाऽथ
यवानिका वरटिका मांसी मिसी मेथिका ॥ ३ ॥ कन्देप्पत्र विदारिकाऽथ मुशली
गन्धर्वगन्धा तथा कर्चूरं करिकेसरं समरिचं चारस्य बीजं नवम् । बीजं शालम-
लिसंभवं करिकणा बीजं च राजीवजं श्वेतं चन्दनमत्र रक्तमपि च श्रीसंज्ञपुष्पैः
समम् ॥ ४ ॥ सर्वं चेति पृथक्पृथक्पलमितं संचूर्ण्य तत्र क्षिपेत्सूतं वज्रभुजंग-
लोहगगनं सन्मारितं स्वेच्छया । कस्तूरीवनसारचूर्णमपि च प्राप्तं तथा प्रक्षिपे-
त्पश्चादस्य तु मोदकान्विरचयेद् बिल्वप्रमाणानथ ॥ ५ ॥ तान्भुक्त्वाऽति सदा
यथानलबलं भुङ्गीत नाम्लं रसं पूर्वस्निग्धशिते गते परिणतिं प्राग्भोजनाद्भक्षयेत् ।
नित्यं श्रीरतिवल्लभाख्यकमिमं यः पूगपाकं भजेत्स स्याद्दीर्यविवृद्धिवृद्धमद-
नो वाजीव शक्तो रतौ ॥ ६ ॥ दीप्ताग्निर्बलवान्वलीविरहितो हृष्टः सुपुष्टः सदा
वृद्धो योऽपि युवेव सोऽपि रुचिरः पूर्णेन्दुवत्सुन्दरः ॥ ७ ॥ इति रतिवल्लभा-
ख्यपूगपाकः ॥ एतस्मिन् रतिवल्लभे यदि पुनः सम्यक्चुरासानिका धत्तूरस्य च
बीजमर्ककरभः पाथोधिः शोपस्तथा । सन्माजूफलकं तथा खसफलं त्वक्चापि
निक्षिप्यते चूर्णाधीं विजया तथा स हि भवेत्कामेश्वरो मोदकः ॥ १ ॥ इति का-
मेश्वरमोदकः ॥ अथाऽऽम्रपाकः—पकाग्रस्य रसद्रोणे सितामाढकसंमिता-
म् । घृतं प्रस्थमितं दद्यान्नागरस्य पलाष्टकम् ॥ १ ॥ मरिचं कुडवोन्मानं पिप्पलीं
द्विपलोन्मिताम् । सलिलस्याऽऽढकं दत्त्वा सर्वमेकत्र कारयेत् ॥ २ ॥ पचेत्तन्मृ-
न्मये पात्रे दारुद्वया प्रचालयेत् । चूर्णान्येषां क्षिपेत्तत्र घनीभूतेऽवतारिते
॥ ३ ॥ धान्याकं जीरकं चित्रं पत्रकं मुस्तकं त्वचम् । वृहज्जीरकमप्यत्र ग्रन्थि-
कं नागकेशरम् ॥ ४ ॥ एलां पत्रीं लवङ्गं च पृथग्जातीफलं पलम् । सिद्धशी-

ते प्रदद्याच्च मधुनः कुडवद्वयम् ॥ ५ ॥ भक्षयेद्भोजनादर्वाक्पलमात्रमिदं नरः ।
 अथवा नियता नात्र मात्रा खादेद्यथानलम् ॥ ६ ॥ मानवः सेवनादस्य
 वाजिवत्सुरते भवेत् । समर्थो बलवान्पुष्टो हृष्टो नित्यं निरामयः ॥ ७ ॥ ग्रह-
 णीं नाशयेदेष क्षयं श्वासमरोचकम् । अम्लपित्तं च पित्तं तु कुष्ठं वै पाण्डुता-
 मपि ॥ ८ ॥ इत्यान्नपाकः ॥ अथ कामाग्निसंदीपनो मोदकः—
 कर्पो रसो गन्धकमश्वकं च द्विक्षारचित्रं लवणानि पञ्च । शटी यवानीद्वयकी-
 टहारी तालीसपत्राणि परं विपं च ॥ १ ॥ जीरं चतुर्जातलवङ्गजातीफलं
 च कर्पत्रयमेवमन्यत् । सुवृद्धसर्वं कटुकत्रयं च तथा चतुष्कर्पमिदं निबोध ॥ २ ॥
 धान्याकयष्टीमधुकं कसेरुपलं पृथक्पञ्चपलं विदारी । दन्ती कणा चातिबलात्म-
 गुसाबीजं तथा गोक्षुरकस्य बीजम् ॥ ३ ॥ सबीजपूरेन्द्ररजःसमानं समा सिता
 क्षौद्रयुतं च तुल्यम् । कर्पकमिन्दोरथ मोदकं च कामाग्निसंदीपनमेनमाहुः
 ॥ ४ ॥ वृष्यं तथा परतरं सततं सदीप्यमानं निषेव्य मनुजः प्रमदासहस्रम् ।
 गच्छेन्न लिङ्गं शिथिलत्वमेति नागाधिपं विजयते बलतः प्रमत्तः ॥ ५ ॥ वातान-
 शीतिमथ पित्तभवांश्च रोगाञ्छ्मोत्थविंशतिरुजः परमाग्निमान्धम् । दुर्वारका-
 मलभगंदरपाण्डुरोगान्मेहातिसारकृमिहृद्ग्रहणीविकारान् ॥ ६ ॥ कासज्वरश्च-
 सनयश्मकफप्रतिश्याशूलामवातसहिताश्च रुजः समन्ताः । हत्वा गदान्बहुवि-
 धांस्तदपत्यकारी सर्वत्र पथ्यमथ सर्वसुखप्रदायी । बल्यं वलीपलितहारि रसा-
 यनं स्थान्मूलं तदेव कथितं परमं पवित्रम् ॥ ७ ॥ इति कामाग्निसंदीपनो
 मोदकः ॥ अथ शतावरीघृतम्—घृताच्छतावरीगर्भक्षीरे दशगुणे पचेत् ।
 शर्करापिप्पलीक्षौद्रयुक्तं तद्दृष्यमुच्यते ॥ १ ॥ अथ लघुवाजिगन्धासर्पिः—
 कल्केन वाजिगन्धाया विपचेद्धृतमुत्तमम् । चतुर्गुणमजाक्षीरं दत्त्वोद्भृत्याथ शी-
 तले ॥ सितां समां प्रदायाद्याद्वलपुष्टिविवृद्धये ॥ १ ॥ अथ चन्दनादितैलम्
 द्रव्याणि चन्दनादेस्तु चन्दनं रक्तचन्दनम् । पतङ्गमथ कालीयागरुकृष्णागुरुणि
 च ॥ १ ॥ देवद्रुमः ससरलः पद्मकं क्रमुकोऽपि च । कर्पूरो मृगनाभिश्च लता
 कस्तूरिकाऽपि च ॥ २ ॥ सिंहकः कुङ्कुमं गव्यं जातीफलकमेव च । जातीपत्री ल-
 वङ्गं च सूक्ष्मैला महती तथा ॥ ३ ॥ कङ्कोलफलकं त्वक्च पद्मकं नागकेशरम् ।
 वालकं च तथोशीरं मांसी दारु सिताऽपि च ॥ ४ ॥ मुरा कर्चूरकश्चापि शैलेयं
 भद्रमुस्तकम् । रेणुकाश्च प्रियंगुश्च श्रीवासो गुग्गुलुस्तथा ॥ ५ ॥ लाक्षा नखश्च
 रालश्च धातकीकुसुमं तथा । ग्रन्थिपर्णं च मज्जिष्ठा तगरं सिक्थकस्तथा ॥ ६ ॥
 एतानि शाणमानानि कल्कीकृत्य शनैः पचेत् । तैलं प्रस्थमितं सम्यगेतत्पात्रे
 शुभे क्षिपेत् ॥ ७ ॥ अनेनाभ्यक्तगात्रस्तु वृद्धोऽशीतिसमोऽपि यः । सुखी
 भवति शुक्राढ्यः स्त्रीणामत्यन्तवल्लभः ॥ ८ ॥ वन्ध्याऽपि लभते गर्भं पण्डोऽपि
 तरुणायते । अपुत्रः पुत्रमाप्नोति जीवेच्च शरदां शतम् ॥ ९ ॥ चन्दनादि म-

हातैलं रक्तपित्तं क्षयं ज्वरम् । दाहं प्रस्वेददौर्गन्ध्यं कुष्ठं कण्डूं विनाशयेत् ॥ १० ॥ इति चन्दनादितैलम् ॥

अथ महासुगन्धि तैलम्—कर्पूरागुरुचोचपत्रनलिकालाक्षाशटीधातकी-
पुष्पैः सप्तदलैलवालुसरलैः शैलेयमांसीप्लवैः । एलाकुङ्कुमरोचनादमनकैः श्री-
वासजातीफलैः कङ्कोलक्रमुकोच्चटामदमुराकान्तालवङ्गामयैः ॥ १ ॥ वालो-
शीरहरेणुकामलयजस्थौणेयचण्डानखैर्जातीकोशकुलीरपद्मकनतैः स्पृक्कान्वितैः
पालिकैः । लाक्षायोजनवल्लिलोघ्रसलिलैस्तैलं विपाच्याऽऽढकं तैलाभ्यक्ततनु-
र्जरन्नपि भवेत्स्त्रीणां परं बल्लभः ॥ २ ॥ शुक्राढ्यो द्युतिमाननल्पतनयः प-
ण्डोऽपि रत्युत्सुको बन्ध्या गर्भवती भवेदपि तथा वृद्धाऽपि सूते सुतम् । क-
ण्डूस्वेदविवर्चिकामलहरं दौर्गन्ध्यकुष्ठापहमश्विभ्यां परिकीर्तितं बहुगुणं तैलं
सुगन्धं महत् ॥ ३ ॥ इति महासुगन्धतैलं वृन्दात् ॥

अथ पञ्चबाणरसः—सूताभ्रलोहोरगवङ्गशङ्खकर्पदिकाश्चैव समं विधाय ।
सूतार्धभागं कनकस्य दद्याद्धारत्रयं क्षीरविभावितं तत् ॥ १ ॥ पोस्तैस्तथा भा-
वितमेकविंशद्वारं तथा यष्टिसुवर्णकानाम् । लवङ्गकाकल्करविश्वजातीफलत्रिकं
कोलकचन्दनानाम् ॥ २ ॥ एषां द्रवैर्भावय सप्तवारं पृथक्तथैकं मृगनाभिकायाः ।
रसोऽयमुक्तः परमेश्वरेण श्रीपञ्चबाणो रतिशक्तिदो नृणाम् ॥ ३ ॥ एतस्माद-
धिकं च नास्ति भुवने वीर्याधिकं धीप्रदमायुष्कान्तिकरं हितं वसुमतां नृणा-
मुदारात्मनाम् । आज्ञासिद्धमिदं रसायनवरं बल्यं वयःस्थापनं मेहप्लीहजलो-
दरादमरिरुजापस्मारविध्वंसनम् ॥ ४ ॥ इति पञ्चबाणरसः ॥

अथ चन्द्रोदयरसः—पलं मृदु स्वर्णदलं रसेन्द्रपलाष्टकं षोडश गन्ध-
कस्य । शोणैस्तु कार्पासभवैः प्रसूनैः सर्वे विमर्द्याथ कुमारिकाभिः ॥ १ ॥
तत्काचकुम्भे निहितं सुगाढे मृत्कर्पटैस्तद्विवसत्रयं च । पचेक्रमाशौ सिकता-
ख्ययत्रे ततो रसः पल्लवरागरम्यः ॥ २ ॥ सौवर्णमेतत्सकलामयज्ञं सर्वेषु यो-
गेषु च योजनीयम् । निगृह्य चैतस्य पलं पलानि चत्वारि कर्पूररजस्तथैव ॥ ३ ॥
जातीफलं चोषणमिन्द्रपुष्पं कस्तूरिकायाइह शाण एकः । चन्द्रोदयोऽयं क-
थितोऽस्य मापो भुक्तोऽहिवल्लीदलमध्यवर्ती ॥ ४ ॥ मदोद्धतानां प्रमदाश-
तानां गर्वाधिकत्वं श्लथयत्यवश्यम् । शृतं घनीभूतमतीव दुग्धं मृदूनि मां-
सानि समण्डकानि । मापान्नमिष्टानि रसेऽत्र पथ्यमानन्ददायिनीयपराणि चात्र
॥ ५ ॥ वलीपलितनाशनस्तनुभृतां वयःस्तम्भनः समस्तगदखण्डनः प्रचुररो-
गपञ्चाननः । गृहे च रसराडयं भवति यस्य चन्द्रोदयः स पञ्चशरदर्पितो मृ-
गदृशां भवेद्बल्लभः ॥ ६ ॥ इति चन्द्रोदयरसः ॥

अथ वृद्धपुष्पधन्वा रसः—कनकहरजकान्तं ताप्यकं वृद्धिभावं द्वि-
जकुवलययष्टीशाल्मलीनागवल्लयः । धृतमधुपयस्वण्डं पुष्पधन्वा द्विवल्लो रम-

यति बहुकान्ता दीर्घमायुर्वली स्यात् ॥ १ ॥ अथ लघुपुष्पधन्वारसः—
हरजभुजगलोहान्यभ्रकं च त्रिभागं कनकविजययष्टीशाल्मलीनागवह्यः । सि-
तमधुघृतदुग्धैः सेवितो वीर्यवृद्धी रमयति बहुकान्ता पुष्पधन्वा रसः स्यात् १

अथ मदनकामदेवो रसः—तारं वज्रं सुवर्णं च ताम्रसूतकगन्धकम् ।
लोहं क्रमविवृद्धानि कुर्यादेतानि मात्रया ॥ १ ॥ विमर्द्य कनकाद्रावैर्यस्ये-
त्काचमये घटे । विमुद्य पिठरीमध्ये धारयेत्सैन्धवैर्भृते ॥ २ ॥ वह्निं शनैः
शनैः कुर्याद्विनैकं तु तदुद्धरेत् । स्वाङ्गशीतं च संचूर्ण्य भावयेदर्कदुग्धकैः ॥ ३ ॥
अश्वगन्धा च काकोली वानरी मुसली क्षुरा । त्रिवारं च रसैर्भावं शताव-
र्याश्च भावयेत् ॥ ४ ॥ कस्तूरीव्योपकर्पूरं कङ्कलैलालवङ्गकम् । पूर्वचूर्णादष्ट-
मांशमेतच्चूर्णं विमिश्रयेत् ॥ ५ ॥ सवैः समां शर्करां च दत्त्वा शाणोन्मितं
पिबेत् । गोदुग्धद्विपलेनैव मधुराहारसेवकः ॥ ६ ॥ अस्य प्रभावात्सौन्दर्यं
बलं तेजो विवर्धते । तरुणी रमयेद्वृद्धो न च हानिः प्रजायते ॥ ७ ॥ इति
मदनकामदेवो रसः ॥

अथ महाराजवटीरसः—बीजं ब्रह्मतरोर्विधाय बहुधा खण्डं त्रियामो-
पितं छागे दुग्धवरेऽथ शुष्कमथ तद्गन्धेन तिथ्यंशिना । युक्तं काचघटीयुतं
हुतभुजो योगेन च त्वान्ततः सत्त्वं तस्य निगृह्य काचघटिते भाण्डे सुखं स्था-
पयेत् ॥ १ ॥ तत्तैलं बलमात्रं तु ताम्बूलीपत्रगं चरेत् । क्षिप्त्वा तत्र रसं बल-
मङ्गुल्यग्रेण मर्दयेत् ॥ २ ॥ युक्त्या तां कज्जलीं भुक्त्वा ताम्बूलं शीलयेदनु ।
शाकाम्लं मापपटकादिवर्जितं पथ्यमाचरेत् ॥ ३ ॥ अनेन योगराजेन पण्डोऽपि
पुरुषायते । अपूर्ववच्छतं गच्छेद्वनितानां मदागणान् ॥ ४ ॥ बलीपलितवि-
ध्वंसी यौगोऽयं क्षयकुष्ठजित् । वातपित्तकफातङ्कहस्तिपञ्चाननः परम् । ना-
स्त्यनेन समं लोके किञ्चिदन्यद्रसायनम् ॥ ५ ॥ इति महाराजवटीरसः सार-
संग्रहात् ॥

अथ पूर्णेन्दुनामा रसः—शाल्मल्युत्थैर्द्रवैर्मर्द्यं पक्षैकं शुद्धसूतकम् ।
यामद्वयं पचेच्चापि वस्त्रे बद्धाऽथ मर्दयेत् ॥ १ ॥ द्विनैकं शाल्मलीद्रावैर्मर्द-
यित्वा वटीकृतम् । वष्टयेन्नागवल्लयाऽथ निक्षिपेत्काचभाजने ॥ २ ॥ भाजनं
शाल्मलीद्रावैः पूर्णं यामद्वयं पचेत् । वालुकायत्रमध्ये तु द्रवे जीर्णे समुद्धरेत्
॥ ३ ॥ द्विगुञ्जं भक्षयेत्प्रातर्नागवल्लीदलान्तरे । मुसलीं ससितां क्षीरं पलैकं
पाययेदनु ॥ ४ ॥ रसः पूर्णेन्दुनामाऽयं सम्यग्वीर्यकरो भवेत् । कामिनीनां
सहस्रैकं नरः कामयते ध्रुवम् ॥ ५ ॥ इति पूर्णेन्दुनामा रसः ॥ अथ रसभ-
स्मयोगः—खर्परं धारयेद्गन्धं तैलवद्बहिना क्षणम् । ततस्तस्मिन्निक्षिपेत्सूतं तत्स-
मानं ततः परम् ॥ १ ॥ घर्षयेत्लोहदर्व्याऽथ यावज्ज्वलति वह्निना । खर्पर-
स्यान्तरं वह्निर्यदा ज्वलति केवलम् ॥ २ ॥ अथो वह्निं तदा मन्दं विधाय

घटयेत्पुनः । लोहद्वयां भवेद्यावद्भस्म तत्स्फटिकोपमम् ॥ ३ ॥ तदादाय प्र-
योक्तव्यं रोगेषु सकलेष्वपि । अग्निमान्द्यं च पाण्ड्यं च कासश्वासभगंदराः
॥ ४ ॥ व्रणाश्च विविधाः सर्वे बलयः पलितानि च । नश्यन्त्यनेन योगेन
सत्यं शिववचोदितम् ॥ ५ ॥ अथ ध्वजवृद्धिकरणम्—क्षौद्रं क्षुद्रातगर-
मरिचैः पिप्पलीसैन्धवाभ्यां प्रत्यक्पुष्पीयवतिलगुडश्चेतसिद्धार्थमापैः । श्लक्ष्णी-
भूतैर्भवति मिलितं वाजिगन्धासनाथैः श्रोणीश्रोत्रभुजकचशिरःशेफसां वृ-
द्धिकारी ॥ १ ॥ इति राजमार्तण्डात् ॥ सकुष्ठमातङ्गबलाबलानां वचाश्वग-
न्धागजपिप्पलीनाम् । तुरङ्गशत्रोर्भवनीतयोगालेपेन लिङ्गं मुशलत्वमेति ॥ २ ॥
इत्यनङ्गरङ्गात् ॥ इति वाजीकरणाधिकारः ॥

अष्टाङ्गमैथुनम्—स्वरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् । संकल्पोऽ-
ध्यवसायश्च क्रियानिवृत्तिरेव च ॥ १ ॥ एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम् ॥ २ ॥ अथ कामेश्वरः—जातीफलं च
सौराष्ट्री कृष्णधत्तबीजकम् । जातीपुष्पमफेनं च नागं हिङ्गुलमेव च ॥ १ ॥
एतानि समभागानि खसकथेन मर्दयेत् । गुञ्जामात्रां च वटिकां सितया
सह भक्षयेत् ॥ नाम्ना कामेश्वरः प्रोक्तो रमते कामिनीशतम् ॥ २ ॥ अथ
वङ्गेश्वरः—रसं वङ्गसमं कृत्वा चतुर्भागं च गन्धकम् । कुमारीरससंयुक्तं
दिनमेकं तु मर्दयेत् ॥ १ ॥ मन्दमध्यमतीव्राग्निबालकायन्नगं पचेत् । अश्व-
गन्धामृतासारमोचारसशतावरीः ॥ २ ॥ गोक्षूरधात्री कृष्माण्डी वाराही प-
त्रमागधी । त्रिफला कर्कटी मुस्ता यष्टीमधुसमन्वितम् ॥ ३ ॥ सर्वसाम्यं सि-
तायुक्तं चूर्णं कर्पाधसंयुतम् । गुञ्जाचतुष्टयां मात्रां गोक्षीरमनुपानतः ॥ ४ ॥
प्रातरुत्थाय सेवेत लवणाम्लं च वर्जयेत् । बहुमूत्रं मूत्रकृच्छ्रं रक्तमूलप्रमेह-
कम् ॥ ५ ॥ मधुमेहं नष्टशुक्रं नष्टलिङ्गं च नाशयेत् । सर्वमेहप्रशमनो वङ्ग-
ेश्वर इति स्मृतः ॥ ६ ॥ शतायुष्यश्चगन्धा च वानरी मुशली तथा । गोकण्टो
शर्कराक्षीरं पिबेन्नष्टेन्द्रियो नरः ॥ १ ॥ तिलगोक्षुरचूर्णेन साधितं छागलं
पयः । पीत्वा सशर्कराक्षौद्रं शीघ्रं गच्छति पण्डता ॥ २ ॥ सेवति गोक्षुरचूर्णं
छागक्षीरेण साधितम् । शर्करामधुसंयुक्तं शीघ्रं गच्छति पण्डता ॥ ३ ॥ सिन्दूरं
कनकं बीजं विजया क्षुरबीजकैः । जातीफलं जातिपत्रीं कटुशिग्रुमफेनकम् ॥ ४ ॥
समुद्रशोपसंयुक्तं लवङ्गं च तथैव च । विजयारससैर्मथं याममेकं प्रशस्यते
॥ ५ ॥ बदरीबीजमात्रं तु स्त्रीशतं रमते मुदा । अद्विधशोपं च सिद्धार्थांश्चतु-
र्वल्लमितान्पृथक् ॥ ६ ॥ अर्धशिष्टं च तद्गुग्गुलुं सायंकाले पिबेन्नरः । बिन्दुपा-
तेन कुरुते वाजीकरणमुत्तमम् ॥ ७ ॥ अथ रसभस्मयोगः—शुद्धं सूतं
द्विधा गन्धं लोहपात्रेऽग्निसंस्थिते । आर्द्रन्यग्रोधदण्डेन चालयेद्भस्मतां नयेत् ॥
रक्तिकाद्वितयं भुक्तं रेतःपुष्टिकरं परम् ॥ १ ॥ अथ वीर्यस्तम्भवटी—जा-
तीफलं लवङ्गं च जातीपत्रं सकुङ्कुमम् । सूक्ष्मैला चाहिफेनं च त्वाकारकरभं

तथा ॥ १ ॥ प्रत्येकं कर्पमात्राणि कर्पूरं शाणमात्रकम् । नागवल्लीदलरसैर्वटी चण-
कसंनिभा । वीर्यसंस्तम्भनी होपा बलवर्णाग्निदीपनी ॥ २ ॥ अथ कपिकच्छूपा-
कः—निस्तुपं वानरीबीजं कृत्वा विंशत्पलानि च । त्रिंशत्पलां सितां दृष्ट्वा घृतं
दत्त्वा पलाष्टकम् ॥ १ ॥ दुग्धाढकसमायुक्तं मृदुना वह्निना पचेत् । यावद्दूर्वाप्रलेपः
स्यात्तन्मध्ये चूर्णितं क्षिपेत् ॥ २ ॥ जातीफलं त्रिकटुकं त्रिगन्धं देवपुष्पकम् ।
अकल्करं जातिपत्री कोकिलाबीजकेसरम् ॥ ३ ॥ पुनर्नवापले द्वे च सुसली
साहिफेनकम् । पारदं लोहचूर्णं च त्वश्रकं च पलार्धकम् ॥ ४ ॥ चन्दनाग-
रूकस्तूरीकर्पूरं शाणमात्रकम् । पलार्धं भक्षयेत्तत्तु क्रमाद्वीर्यबलप्रदम् ॥ ५ ॥

अथ रसवैकृतियोगोऽभिलिख्यते—जनितविविधदाहे शीततोयाभि-
पेको मलयजघनसारो लेपनं गन्दवातः । तरुणदधिसिताक्तं नारिकेलीफ-
लाम्भो मधुरशिशिरपानं शीतमन्यच्च शस्तम् ॥ १ ॥ सौभाग्यमेघनादाङ्ग-
घ्रिसितामधुकचन्दनम् । तुषोदकेन पातव्यं सर्वस्मिन्नमवैकृते ॥ २ ॥ छर्द्यां
चेक्षुरसो देयः कपित्थं वा सितान्वितम् । कुमारीगिल्लेषश्च सर्वाङ्गेण प्रश-
स्यते ॥ ३ ॥ क्षीरं मधुसितोपेतं काथो वाऽमृतबिन्दुकः । उपचारा अमी सर्वे
प्रशस्ता रसतापिनाम् ॥ रसदाहे भवेत्सर्वं पित्तज्वरभिपगृजितम् ॥ ४ ॥

अथ रससारः—मुक्ताविद्रुमवङ्गभूतिसहितं वह्लं पृथक्स्वर्णकं छिन्ना-
सत्त्वतुगासितानवनितं चाऽऽलोड्य संभक्षयेत् । संजाते तृपि नारिकेलसलि-
लं तत्कालिकं प्राशयेत्सर्वस्मिन्नरसवैकृते च गदितं ह्येतच्च योगामृते ॥ १ ॥
सर्वस्मिन् रसवैकृते हि शिशिरं स्वेच्छाम्बुपानादिकं देयं तापशमाय दाडिमत-
रोरग्राणि दूर्वाशिफाः । संपेप्यामलया ददीत च तदा स्वेच्छावशेन त्यजेद्याव-
त्पूर्वबलं भवेत्पटुतरं तावत्स्त्रियं न स्पृशेत् ॥ २ ॥ यष्टीपटोलनिष्काथो मधु-
ना मधुरीकृतः । तीव्रपित्तज्वरोन्मादनाशनो रसदाहजित् ॥ ३ ॥ छिन्नायष्टी-
घनोशीरधान्यपर्पटचन्दनैः । रसदाहं जयेत्काथो खण्डवंशीकसंयुतः ॥ ४ ॥
चन्दनोदीच्यशीतैश्च काथः खण्डोपलान्वितः । रसदाहं जयत्याशु पित्तज्वर-
हरः परः ॥ ५ ॥ दूर्वा सोत्पलकिञ्जल्कमज्जिष्टाशैलवालुकम् । सितासितमु-
शीरं च मुस्तं चन्दनपद्मकम् ॥ ६ ॥ तत्समं च भवेत्क्षीरं घृतप्रस्थं विपाच-
येत् । जीवकर्पभकौ मेदा महामेदा तथैव च ॥ ७ ॥ काकोली क्षीरकाकोली
मृद्वीका मधुकं तथा । मुद्गपर्णी मापपर्णी विदारी रक्तचन्दनम् ॥ ८ ॥ शर्क-
रामधुसंयुक्तं सिद्धं विष्ठावयेद् घृतम् । रक्तपित्तविकारेषु वातरक्तगदेषु च ॥ ९ ॥
क्षीणशुक्ले प्रदातव्यं वाजीकरणमुत्तमम् । अङ्गदाहं शिरोदाहं ज्वरं पित्तसमुद्भ-
वम् ॥ १० ॥ विकारो यदि जायेत पारदान्मलसंयुतात् । गन्धकं सेवयेत्तत्र
शोधितं विधिपूर्वकम् ॥ ११ ॥ गन्धकं मापयुग्मं च नागवल्लीदलैः सह ।
खादयेत्पारदग्रस्तो दोषशान्तिस्तदा भवेत् ॥ १२ ॥ अथान्यच्च—लाक्षा-
कृष्माण्डखण्डाश्च तुलसीं शतपुष्पिकाम् । लवङ्गं वत्सनागं च गन्धकेन समा-

त्रकम् ॥ १ ॥ कर्षमात्रं पयो भुक्तं सर्वं तत्र पृथक्पृथक् । सर्वयोगोत्तरासा-
ध्यः सूतदोषविकारनुत् ॥ २ ॥ अथान्यच्च—नागवल्लीरसप्रस्थं भृङ्गरा-
जरसं तथा । तुलस्याश्च रसं प्रस्थं छागदुग्धं समांशकम् ॥ १ ॥ मर्दनं सर्व-
गात्रेषु यामयुग्मं दिनत्रयम् । स्नानं शीतलतोयेन सूतदोषप्रशान्तये ॥ २ ॥
इति रसवैकृतियोगाः ॥

अथ रसायनाधिकारः ॥

तत्र रसायनस्य लक्षणमाह—यज्जराव्याधिविध्वंसि वयसः स्तम्भकं
तथा । चक्षुष्यं बृंहणं वृष्यं भेषजं तद्रसायनम् ॥ १ ॥ रसायनस्य फलमाह—
दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणं वयः । देहेन्द्रियबलं कान्तिं नरो विन्दे-
द्रसायनात् ॥ १ ॥ तद्विधिमाह—पूर्वं वयसि मध्ये वा मनुष्यस्य रसाय-
नम् । प्रयुञ्जीत भिषक्प्राज्ञः स्निग्धशुद्धतनोः सदा ॥ १ ॥ नाविशुद्धशरीर-
स्य युक्तो रासायनो विधिः । आभाति वाससि क्लिष्टे रङ्गयोग इवाऽऽहितः
॥ २ ॥ अथ तदुदाहरणानि—शीतोदकं पयः क्षौद्रं घृतमेकैकशो द्विशः ।
त्रिशः समस्तमथ वा प्राक्पीतं स्थापयेद्वयः ॥ १ ॥ मण्डूकपर्ण्याः स्वरसः
प्रभाते प्रयोज्य यष्टीमधुकस्य चूर्णम् । रसो गुड्यास्तु समूलपुण्याः कल्कः
प्रयोज्यः खलु शङ्खपुण्याः ॥ २ ॥ आयुःप्रदान्यामयनाशनानि बलाग्निवर्णस्व-
रवर्धनानि । मेध्यानि चैतानि रसायनानि मेध्या विशेषेण च शङ्खपुष्पी ॥ ३ ॥
विशेषेण तुगाक्षीर्या पिप्पल्या लवणेन च । त्रिफला सितया वाऽपि युक्ता
सिद्धं रसायनम् ॥ ४ ॥ सिन्धूत्थशर्कराशुण्ठीकणामधुगुडैः क्रमात् । वर्षादि-
ष्वभया प्राश्या रसायनगुणैपिणा ॥ ५ ॥

अथ ग्रन्थान्तराद्धरीतक्यनुपानानि—ग्रीष्मे तुल्यगुडां सुसैन्धव-
युतां मेघावनद्धाम्बरे सार्धं शर्करया शरद्यमलया शुण्ठ्या तुपारागमे । पि-
प्पल्या शिशिरे वसन्तसमये क्षौद्रेण संयोजितां राजन्भुङ्क्व हरीतकीमिव गदा
नश्यन्तु ते शत्रवः ॥ १ ॥ पुनर्नवस्यार्धपलं नवस्य पिष्टं पिबेद्यः पयसाऽर्ध-
मासम् । मासद्वयं तत्रिगुणं समां वा जीर्णोऽपि भूयः स पुनर्नवः स्यात् ॥ २ ॥
ये मासमेकं स्वरसं पिबन्ति दिने दिने भृङ्गरजःसमुत्थम् । क्षीराशिनस्ते
बलवीर्ययुक्ताः समाः शतं जीवनमामुवन्ति ॥ ३ ॥ शतावरी मुण्डिनिका
गुडूची सहस्तिकर्णी सहतालुमूली । एतानि कृत्वा समभागयुक्तान्याज्येन
किं वा मधुनाऽवलिह्यात् ॥ ४ ॥ जरारुजामृत्युवियुक्तदेहो भवेन्नरो वीर्यब-
लादियुक्तः । विभाति देवप्रतिमः स नित्यं प्रभामयो भूरिविवृद्धबुद्धिः ॥ ५ ॥
पीताश्वगन्धा पयसाऽर्धमासं घृतेन तैलेन सुखाम्बुना वा । कृशस्य पुष्टिं व-
पुपो दधाति नरस्य सस्यस्य यथाऽम्बुवृष्टिः ॥ ६ ॥ शिशिरे चाश्वगन्धायाः
कन्दचूर्णं पयोन्वितम् । मासमन्ति समध्वाज्यं स वृद्धोऽपि युवा भवेत् ॥ ७ ॥

घृतामलकशर्करातिलपलाशबीजानि यः समानि शयनस्थितो मधुयुताग्नि-
खादेन्निशि । बलीपलितवर्जितस्तरुणागनुल्यो बली बृहस्पतिसमः पुमान्भ-
वति सोऽचिरेण ध्रुवम् ॥ ८ ॥ इति राजमार्तण्डान् ॥ असिततिलविमिश्रा-
न्पलवान्भक्षयेद्यः सततमिह पयोशी भृङ्गराजस्य मासम् । भवति च चिरजीवी
व्याधिभिर्मुक्तदेहो भ्रमरसदृशकेशः कामचारी मनुष्यः ॥ १ ॥ इति वृन्दान् ॥
ससितया वचयाऽऽमलकैरथ त्रिफलयया त्वथ वा घृतमिश्रया । कनकलोत-
रजः सदलं कृतं परमिदं हि रसायनमिष्यते ॥ १ ॥ इति चिकित्साकण्डिकाग्रः
॥ धात्रीतिलान्भृङ्गरजोविमिश्रान्ये भक्षयेद्युर्मनुजाः क्रमेण । ते कृष्णकेशा
विमलेन्द्रियाश्च निर्व्याधयोऽप्यामरणाद्भवेयुः ॥ १ ॥ पञ्च भक्ष्यात्काशितया
शोधयेद्विधिवज्जले । कपायं तं पिबेच्छीतं घृतेनाक्तोष्ठतालुकम् ॥ २ ॥ पञ्च-
वृद्ध्या पिबेद्यावत्सप्ततिं दासयेत्ततः । जीर्णेऽद्यादोदनं शीतं घृतक्षीरोपसंहि-
तम् ॥ ३ ॥ एतद्रसायनं मेध्यं बलीपलितनाशनम् । कुष्ठार्शकुमिदोपघ्नं
दुष्टशुक्रविशोधनम् ॥ ४ ॥ इति वृन्दान् ॥ गुह्यपामार्गविट्कशङ्किनीवना-
भयाशुण्ठिशतावरीः समाः । घृतेन लीढा प्रकरोति मानवं त्रिभिर्दिनैः श्लो-
कसहस्रधारिणम् ॥ १ ॥ ब्राह्मीवचाभयावासापिप्पल्यो मधुमेन्धवम् । अस्य
प्रयोगात्सप्ताहात्किन्नरैः सह गीयते ॥ २ ॥ हन्यन्म्लपित्तवमनारुचिदाहमोह-
खालित्यमेहतमिरार्मसशुकदोषान् । भुक्त्वा नरः सततमामलकीरसेन वृद्धो-
ऽपि तेन च भवेत्तरुणीरिरंसुः ॥ ३ ॥

अथ लोहगुग्गुलुः—अयः पलं गुग्गुलुरन्न योज्यः पलत्रयं व्योषपला-
नि पञ्च । पलानि चाष्टां त्रिफलारजश्च कर्षं लिहन्त्यात्यमरत्वमेव ॥ १ ॥ इति
लोहगुग्गुलुर्भावप्रकाशात् ॥ अथ गन्धकरसायनम् शुद्धो बलिर्गोप-
यसा विभाव्यस्ततश्चतुर्जातगुह्यचिकाभिः । पथ्याक्षधान्यौषधभृङ्गराजैर्भाव्यो-
ऽष्टवारं पृथगाद्रैकेण ॥ १ ॥ शुद्धे सितां योजय तुल्यभागां रसायनं गन्धक-
राजसंज्ञम् । कर्पोन्मितं सेवितमंति मर्त्यो वीर्यं च पुष्टिं दृढदेहवद्विम् ॥ २ ॥
कण्डूं च कुष्ठं विपदोपमुग्रं मासद्वयेनेह जयेत्प्रयोगः । धोरातिसारं ग्रहणीगदं
च हरेच्च रक्तं दृढशूलयुक्तम् ॥ ३ ॥ जीर्णज्वरे मेहगणे प्रकृष्टं वातामयानां
हरणे समर्थम् । प्रजाकरं केशमतीव कृष्णं करोति चेद्भक्षति चार्धवर्षम् ॥ ४ ॥
रसायनं पर्वतजात्मबीजं क्षाराम्लतैलादिकराजिवर्जम् । ससोमरोगं सहमुष्क-
वृद्धिं हरेच्च वै गन्धकराजयोगः ॥ ५ ॥ हरति सकलरोगान्गन्धकार्णवः प्रयो-
गो मृतसदृशनराणां प्राणदो दीर्घमायुः । तदनु विहितयोगो भस्मसूतं सहे-
म रमयति त्रिदशानां देहदीप्तिं सुरूपात् ॥ ६ ॥ वीर्यस्य वृद्धिं दृढदेहवद्वि-
मशीतिवातान्विनिहन्ति कुष्ठम् । प्रमेहदुष्टोदररोगजालं धिरोपतो हन्ति तु
संनिपातम् ॥ ७ ॥ दोषज्वरं राजरुजं प्रमेहं पाण्डुक्षयश्वासगुदाङ्गरादीन् ।

गुतान्हि रोगान्विनिहन्ति शीघ्रं रसायनं जल्पितमीश्वरेण ॥ ८ ॥ इति गन्ध-
करसायनम् ॥

अथ तैलानि—गुण्डतैलमथ निम्बफलास्थितैलमेतद्रसायनमनामयका-
यकारि । ज्योतिष्मतीफलपलाशफलोद्भवं वा तैलं वलीपलितहारि भिषक्प्र-
दिष्टम् ॥ १ ॥ न केवलं दीर्घमिहाऽऽयुरश्नुते रसायनं यो विविधं निपेवेते ।
गतिं सदेवर्पिनिपेवितां शुभां प्रपद्यते ब्रह्म तथैव चाक्षयम् ॥ २ ॥

इति रसायनाधिकारः ॥

अथ रोगानुसारेणौषधस्यानुपानानि ।

केराताम्बुदपर्पटं ज्वरगदे तक्रं ग्रहण्यामथातीसारे कुटजः कृमौ कृमिरिपु-
र्तुर्नामकेऽरुणकरम् । पाण्डौ किट्टमथ क्षये गिरिजतु श्वासे तु भान्यौषधं मेहे
न्वामलकं क्षये तृषि जलं संतप्तहेमभिवतम् ॥ १ ॥ शूले हिङ्गु करञ्जमामप-
वने तैलं रुबोर्मूत्रयुक्श्रेष्ठा झीङ्गि कणा विपे शुक्रतरुः कासे तु कण्टारिका ।
वातव्याधिषु गुग्गुलुश्च लशुनः स्याद्रक्तपित्ते वृषोऽपस्सारे तु वचा सवागथ
गरे हेमोदरे रेचनम् ॥ २ ॥ वातासे तु गुडूचिकाऽर्दितगदे मापेण्डरी मेद-
नि क्षौद्राम्भः प्रदरे तिरीटमरुचौ लङ्गो व्रणेऽऽयः पुरः । शोके मद्यमथाम्ल-
पित्तरुजि तु द्राक्षाऽथ कृच्छ्रे वरी कूष्माण्डाम्बु द्दगामये तु त्रिफलोन्मादे
पुराणं घृतम् ॥ ३ ॥ कुष्ठे खादिरसारवार्यथ पयो निद्राक्षये माहिपं श्वित्रे
वाकुचिफल्यजीर्णरुजि तु स्वापो भये तोषणम् । छर्दीं लाजमधूर्ध्वजत्रुविकृतौ
नस्यं सतीक्ष्णौषधं शूले पार्श्वभवे तु पुष्करजटा मुर्छासु शीतो विधिः ॥ ४ ॥
काश्यं मांसरसोऽश्मरीषु गिरिभिद्रुल्लमेषु शिग्रुत्वचा मोक्षोऽस्त्रस्य तु विद्रधौ
जतुरसैर्हिध्मासु नस्यं हितम् । दाहे शीतविधिर्मगंदरगदे तूर्वीलताश्वास्थिनी घृष्टे
रासभलोहितैः स्वरगदे मध्वन्वितं पौष्करम् ॥ ५ ॥ इति सर्वरोगेष्वनुपाना-
नि ॥ यत्किञ्चिदौषधं वैद्यैर्देयं रोगानुपानतः । तत्तद्गुणकरं ज्ञेयमनुपानब-
लादिह ॥ १ ॥ यावद्वयमनि बिम्बमम्बरमणेरिन्द्रोश्च विद्योतते यावत्सप्त पयो-
धयः सगिरयस्तिष्ठन्ति घृष्टे भुवः । यावच्चावनिमण्डलं फणिपतेरास्ते फणाम-
ण्डले तावत्सद्भिपजः पठन्तु परितः श्रीयोगरत्नाकरम् ॥ २ ॥

इति योगरत्नाकरः समाप्तः ॥

